Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सिद्धान्तशिखामणिः

मराठी भाषानुवादासह

शैवभारती भवन

जंगमवाडीमठ, वाराणसी

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

शिवधर्म ग्रन्थमाला : पुष्प ३६

शिवयोगिशिवाचार्यविरचितः

सिद्धान्तशिखामणिः

तत्त्वप्रदीपिकाख्यसंस्कृतव्याख्यया मराठिभावानुवादेन च संवलितः

संपादक

श्रीजगद्गुरुविश्वाराध्यज्ञानसिंहासनाधीश्वर

काव्य-सर्वदर्शनतीर्थ, वेदान्ताचार्य, विद्यावारिधि, विद्यावाचस्पति

श्री १००८ जगद्गुरु डॉ. चन्द्रशेखरशिवाचार्य महास्वामीजी

जंगमवाडी मठ, श्रीक्षेत्रकाशी

वाराणसी

मराठी भावानुवाद तथा संपादन सहायक

डॉ. चन्द्रशेखर शि. कपाळे एम्. ए. पी. एच्. डी.

वे. पं. शरणय्या शास्त्री काव्यतीर्थ

डॉ. शे. दे. पसारकर एम्. ए. पी. एच्. डी.

परिशिष्ट संयोजक

'राष्ट्रिय पंडित' व्रजवल्लभ द्विवेदी दर्शनाचार्य

पूर्वाचार्य, सांख्ययोगतन्त्रागम विभाग

संपूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी

प्रकाशक

शैवभारती भवन

जंगमवाडी मठ, वाराणसी

१९९३

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

SIDDHANT SHIKHAMANI
by **Shivayogi Shivacharya**
with Tatwapradeepika Commentary in Sanskrit
by **Shri Maritontadarya & Marathi Bhavanuvad**
by **Dr. C. S. Kapale, Pandit Sharanayya Shastri & Dr. S. D. Pasarkar**

Edited by:
Shri Kashi Jagadguru Dr. Chandrashekhar Shivacharya Mahaswamiji
With Appendix by **Prof. Vrajawallabha Dwivedi**

Published by:
Shaiva Bharati Bhavan, Jangámwadimath, Varanasi.

Publication No. 36

Second Edition: **Mahashivaratri, 19-2-1993**

Copies: 500

© President: **Shaiva Bharati Bhavan,**
Jangamwadimath, Varanasi

Price: Rs. 100/- (Paper back)
Rs. 125/- (Hard bound)

Copies can be had from:

1. Secretary,
   Shaiva Bharati Bhavan, Jangamwadimath,
   Varanasi-221001.
   (Ph. No.: STD – 0542/321146
2. Secretary,
   Shaiva Bharati Bhavan,
   Kashi Jangamwadimath, 876/77 Sadashiv Peth, PUNE-411030
   Contact Ph. No.: STD – 0212/457486

Printed by:
Jauhari Printers
Mahmoorganj, Varanasi.

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्राक्कथन

काशी जंगमवाडी मठ के शैवभारती भवन के द्वारा परिशिष्टयुक्त श्रीसिद्धान्तशिखामणि का प्रकाशन करते हुए हमें अपार हर्ष हो रहा है। १९९० ई० में इसकी पहली आवृत्ति सोलापुर में प्रकाशित हो चुकी थी। उस समय समयाभाव के कारण श्लोकार्धानुक्रमणी, व्याख्योद्धृत ग्रन्थसंकेत सूची, व्याख्योद्धृत वचनानुक्रमणी, मूलव्याख्याधृत-ग्रन्थ-ग्रन्थकार सूची, न्यायसूची तथा नामसूची आदि परिशिष्ट भाग तय्यार नहीं हो पाया था। अत्यन्त दुःसाध्य यह कार्य संपादनकार्य दक्ष 'राष्ट्रिय पंडित' प्रो. व्रजवल्लभ द्विवेदी के परिश्रम से सिद्ध हुआ है।

इस ग्रन्थ का परिशिष्ट भाग जिज्ञासु संशोधकों के एवं विद्वज्जनों के लिये बहुत ही उपयोगी सिद्ध होगा। इस ग्रन्थ की पहली आवृत्ति वीरशैव साहित्य संशोधन मंडल, सोलापूर से प्रकाशित हुई थी। इसका पुनर्मुद्रण का अधिकार काशी जंगमवाडी मठ के शैवभारती भवन को भी प्राप्त था। अत: परिशिष्ट से संवर्धित श्रीसिद्धान्तशिखामणि की द्वितीय आवृत्ति काशी ज्ञानसिंहासन के मूल आचार्य श्री जगद्गुरु विश्वाराध्यजी के विश्वेश्वरलिंगावतार के पावन पर्व महाशिवरात्रि के शिव मुहूर्त में काशी जंगमवाडी मठ के शैवभारती भवन द्वारा प्रकाशित की जा रही है।

महान् मानवतावादी तत्त्वों के प्रतिपादक इस ग्रन्थ के संपादक काशी ज्ञानसिंहासन के वर्तमान जगद्गुरु डॉ. चन्द्रशेखर शिवाचार्य महास्वामी जी को अनन्त प्रणिपात समर्पित करते हुए मराठी भावानुवादक डॉ. कपाळे, पं. शरणय्या जी तथा डॉ. पसारकर के एवं परिशिष्ट संयोजक प्रो. व्रजवल्लभ द्विवेदी के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करते हुए हम आशा करते हैं कि इस ग्रन्थ के अध्ययन से जिज्ञासु छात्रगण तथा विद्वद्गण लाभान्वित होंगे।

भवदीय

जंगमवाडी मठ, वाराणसी — महेश्वरदेव, कार्यदर्शी

१९-२-९३ — शैवभारती भवन

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्रस्तावना

काशी जंगमवाडी मठ के ज्ञानसिंहासनाधीश्वर श्री १००८ डॉ. चन्द्रशेखर शिवाचार्य महास्वामी जी ने मुझे सटीक सिद्धान्तशिखामणि को संशोधित कर देने का आदेश दिया था। उस प्रसंग में मैंने देखा कि सिद्धान्तशिखामणि केवल वीरशैव सम्प्रदाय के ही नहीं, जीव को शिवभाव तक पहुंचाने की प्रक्रिया को बताने वाले दार्शनिक ग्रन्थों के बीच एक अति उज्ज्वल नक्षत्र के समान स्थित है। मरितोण्टदार्य कृत इसकी टीका का भी विशिष्ट स्थान है। यह व्याख्या पूरी तरह से शास्त्रानुमोदित है, यह दिखाने के लिये व्याख्याकार ने लगभग १७० ग्रन्थों और ग्रन्थकारों को प्रमाण के रूप में प्रस्तुत किया है।

व्याख्याकार ने वीरशैव और सिद्धान्तशैव मत के आगमो के अतिरिक्त प्रत्यभिज्ञा दर्शन के भी अनेक ग्रन्थों को उद्धृत किया है। ईश्वरप्रत्यभिज्ञा, तत्त्वप्रकाश, त्रिपुरामहिम्नस्तव (दुर्वासा कृत), पञ्चाशिकाशास्त्र (विरूपाक्षपंचाशिका), परात्रीशिका, शिवदृष्टि आदि इनमें प्रमुख हैं। अनेक उपनिषदों के भी वचन यहां उद्धृत हैं। इनमें से प्राय: सभी का स्थाननिर्देश परिशिष्ट में कर दिया गया है, किन्तु अभी भी ऐसे वचन हैं, जिनका स्थाननिर्देश नहीं हो सका है। दुर्वासाकृत स्तव के यहां दो श्लोक उद्धृत हैं (पृ. १५३); किन्तु वहां उनमें से एक ही वचन मिलता है। व्याख्याकार ने "प्रकारे ब्रह्मणि स्थिता" (२०.३८) पाठ मान कर उसकी व्याख्या की है, किन्तु हमने देखा है कि अन्य संस्करणों में 'प्रकाशे' पाठ है। प्रकाश और विमर्श शब्द प्रत्यभिज्ञा के साथ वीरशैव दर्शन में भी शिव और शक्ति के लिये प्रयुक्त हैं। तदनुसार यहां 'प्रकाशे' पाठ ही उचित माना जायगा। एक स्थान पर (पृ. ५३०) त्रयीतन्त्रयुक्तियुक्ताभियुक्त का वचन उद्धृत है। यह श्लोक अप्पयदीक्षित का हो सकता है। त्रिमकुट (पृ. १८९) आदि तीर्थों की पहचान हमें करनी होगी और कोल्लिपाक आदि स्थानों का सही स्वरूप भी हमें ज्ञात करना होगा। द्वात्रिंशदुपनिषद् (पृ. ५३५) की यहां चर्चा है। हमें इनके नाम तलाशने होंगे। प्रसंगवश यहां अनेक कथानकों का उल्लेख मिलता है। उनके विस्तृत स्वरूप की जानकारी के लिये हमें प्रयत्न करना होगा।

विस्तार के भय से अभी कुछ अधिक न कह कर केवल इतना ही कहना है कि आध्यात्मिक प्रक्रिया में इन सबकी कोई अपेक्षा नहीं है, किन्तु भारतीय वाङ्मय के इस उज्ज्वल रत्न को इसके पारखियों के सामने सही रूप में प्रस्तुत करने के लिये इन सबकी अपेक्षा है। हम आशा कर सकते हैं कि निकट भविष्य में यह कार्य अवश्य संपन्न होगा॥

महाशिवरात्रि, संवत् २०४९ — विद्वद्वशंवद
जंगमवाडी मठ, वाराणसी। — व्रजवल्लभ द्विवेदी

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

श्रीमद्रंभापुरीवीरसिंहासनाधीश्वर
प. पू. श्री श्री श्री १००८ जगद्गुरु प्रसन्नरेणुक वीररुद्रमुनि शिवाचार्य महास्वामींचा

शुभसंदेश

रंभापुरी, (बाळेहोन्नूर)
१७ मार्च १९९०

श्रीमान् डॉ. चन्द्रशेखर कपाळे,
अध्यक्ष, वीरशैव साहित्य संशोधन मंडळ, सोलापूर-

वीरशैव साहित्य संशोधन मंडळ, सोलापूर या संस्थेच्या वतीने तुम्ही वीरशैवांच्या मौलिक ग्रथापैकी सर्वोपयोगी असा 'सिद्धान्तशिखामणि' हा श्रेष्ठ ग्रंथ मराठी भावानुवादासह प्रकाशित करीत असल्याचे वाचून फार संतोष झाला पूर्वी वारदग्रथमालेतून दोन भागामध्ये प्रसिद्ध झालेल्या सिद्धान्तशिखामणि ग्रथामध्ये पारिभाषिक शब्दयुक्त संक्षिप्त मराठी अर्थ असल्यामुळे सर्वसामान्य वीरशैवांना श्लोकाचा स्पष्ट अर्थबोध होत नव्हता. आता समस्त वीरशैवांच्या भाग्याने या ग्रथाचे मुख्य संपादक श्रीमद् वाराणसी ज्ञानसिंहासनाधीश्वर, ज्ञाननिधी श्री श्री श्री १००८ जगद्गुरु डॉ. चन्द्रशेखर शिवाचार्य महासन्निधी स्वतः असल्यामुळे आणि ते समीक्षक साहित्यिक असून सिद्धान्तशिखामणिग्रंथाचे परिपूर्ण ज्ञाते असल्यामुळे त्यांची विवेचक प्रस्तावना या ग्रथास भूषणास्पद आहे.

विशेष म्हणजे दुधात साखर घातल्याप्रमाणे या ग्रंथाचा मराठी भावानुवाद करणारे प्रसिद्ध साहित्यिक श्री. डॉ. चन्द्रशेखर कपाळे, डॉ. शे. दे. पसारकर व श्री. वे. मू. पं. शरणय्या शास्त्री, अचलेरी असे विद्वान लोक असल्यामुळे हा ग्रंथ सर्वांगसुंदर व संग्राह्य असाच ठरणार आहे.

प्राचीन काळी श्री जगद्गुरु रेणुकाचार्यांनी अगस्त्यमहर्षींच्या प्रार्थनेवरून जो शैवसिद्धान्त उपदेशिला होता, तोच अकराशे वर्षांपूर्वी श्री शिवयोगी शिवाचार्यांनी संग्रह करून सिद्धान्तशिखामणि या नावाने प्रसिद्ध केला. या शैवसिद्धान्ताचा आणि वीरशैवांचा कोठे संबंध येतो याचे स्पष्टीकरण पचम परिच्छेदामध्ये श्री रेणुक भगवत्पादांनी केलेले आहे.

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

श्रीसिद्धान्तशिखामणि हा वीरशैवांचा सर्वोत्कृष्ट सैद्धान्तिक ग्रंथ आहे. या ग्रंथामध्ये जगद्गुरु रेणुकाचार्यांनी पाचव्या परिच्छेदापासून विसाव्या परिच्छेदापर्यंत अर्थात् पिंडस्थलापासून ज्ञानशून्यस्थलापर्यंत भक्तादिषट्स्थलांतर्गत अंगस्थलाचे ४४ पोटभेद व लिंगस्थलाचे ५७ पोटभेद अगस्त्य महर्षींना उपदेशून ज्ञानकर्मसमुच्चयाचे सम्यग् समीकरण केलेले दिसून येते तसेच 'भावना विहित कर्म पावनादपि पावनम्' व 'न भावेनविना ज्ञान न भावोज्ञानमन्तरा' आदि श्लोकातून भक्तिभावनेला प्राधान्य दिलेले दिसून येते. सुसंस्कृत इष्टलिंगाची पूजा करताना पूजकाने इष्टलिंगामध्ये रोज आह्वान आणि विसर्जन करू नये कारण दीक्षा संस्काराने युक्त असलेल्या इष्टलिंगामध्ये शिव नेहमी वास्तव्य करीत असतो इत्यादींचा उपदेश करीत धर्माचारस्थलामध्ये सर्वलोकोपकारक असा आगमोक्त धर्मसंग्रह सांगून तात्त्विक सिद्धान्त प्रतिपादिला आहे. सिद्धान्तशिखामणि ग्रंथा विषयी कितीही वर्णन करण्याचा प्रयत्न केला तरी तो कोता पडणार आहे.

हा उपयुक्त सैद्धान्तिक ग्रंथ प्रत्येक वीरशैवाच्या घरी दिसावा हीच अभिलाषा आहे.

परमदयाळू पार्वतीपरमेश्वर व श्रीजगद्गुरु रेणुकादिपंचाचार्य मुख्य संपादक आचार्यांना उदंड आयुष्य देवोत आणि अनुवादक, प्रकाशक व वाचकांना आयुष्य, आरोग्य, भाग्य, सुख संपत्ती देवोत ही हार्दिक इच्छा.

समस्त सन्मङ्गलानि भवन्तु

इत्यनन्त शिवाशिषः

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्रकाशकीय निवेदन

महाराष्ट्रात वीरशैव सभेच्या रूपाने वीरशैवाच्या सघटनेने चागले मूळ धरले असले तरी साहित्य-सशोधन, प्रकाशन या महत्त्वाच्या गोष्टींकडे समाजकार्यकर्त्यांचे म्हणावे असे लक्ष गेलेले नाही, असे ध्यानी आल्यावरून केवळ त्याच कार्याला वाहून घेणारी एखादी संस्था स्थापन करण्याचा विचार दि. १६ व १७ नोव्हेंबर १९८५ रोजी सोलापूर येथे भरलेल्या महाराष्ट्र वीरशैव सभेच्या प्रथम अधिवेशनप्रसगी जमलेल्या काही वीरशैव साहित्यिकाच्या मनात आला आणि त्यानी तेथेच एक स्वतंत्र मेळावा भरवून त्यात साहित्यसशोधनासाठी एक राज्यस्तरावरील संस्था स्थापन करण्याचा निर्णय घेतला. एक समिती नियुक्त झाली. त्या समितीने तयार केलेल्या घटनेवर दि. २९ डिसे. १९८५ रोजी सोलापूर, कोल्हापूर, औसा, लातूर, यवतमाळ, गुलबर्गा इत्यादी ठिकाणच्या काही साहित्यिक विचारवंतांनी एकत्र येऊन विचार-विनिमय केला. आणि दि. १४ जानेवारी १९८५ या मकरसंक्रमणाच्या सुमुहूर्तावर संस्थेची स्थापना झाली. पुढे दि. २६/९/१९८६ रोजी रजि. न. इ. ३९४ सोलापूर या क्रमांकाने संस्था रजिस्टर झाली. (संस्थेच्या विश्वस्तांची नावे इतरत्र दिली आहेत.)

संस्थेच्या घटनेत व एका आवाहनाद्वारे नमूद केलेल्या सस्थेच्या उद्दिष्टानुसार मडळाचे एक सशोधनपर त्रैमासिक 'वीरशैव साहित्य संशोधन' या नावाने प्रकाशित करण्याचे ठरवून आतापर्यंत त्याचे दोन अंकही प्रसिद्ध केले आहेत. महाराष्ट्र व कर्नाटकातील अनेक नामवंत साहित्यिकांनी व सशोधकानी त्यांचे उत्कृष्ट स्वागत करून अत्यंत प्रोत्साहक असे अभिप्राय पाठविले आहेत.

नियतकालिक चालविण्याप्रमाणेच निबंध-स्पर्धा, चर्चा, अभ्यास मंडळे अशा काही नियोजित उपक्रमांपैकी एकदोन निबध-स्पर्धा घेऊन यशस्वी स्पर्धकांना पारितोषिकेही देण्यात आली आहेत.

मंडळाच्या उद्दिष्टांपैकी सर्वात महत्त्वाचे उद्दिष्ट म्हणजे दुर्मिळ ग्रंथांचे संशोधन आणि प्रकाशन. त्या दिशेने काय करता

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

येईल याचा विचार चालू असतानाच 'सिद्धान्तशिखामणी' या वीरशैव धर्मग्रंथाचे लेखक श्री शिवयोगी शिवाचार्यांच्या द्वादश शतमानोत्सवाच्या निमित्ताने इ. स. १९८८ च्या जुलै-ऑगस्ट महिन्यामध्ये सोलापूर येथील शिवानुभव मंगल कार्यालयात अमरेश्वरमठ, गुळेदगुड्ड येथील पू. श्री. ष. ब्र. डॉ. चन्द्रशेखर शिवाचार्य यांची सिद्धान्तशिखामणीवरील रसाळ आणि उद्‌बोधक प्रवचने ऐकण्याची संधी प्राप्त झाली. सिद्धान्तशिखामणी हा वीरशैवांचा प्राचीन आणि अत्यंत महत्त्वाचा धर्मग्रंथ असून तो प्रथम इ. स. १९०५ मध्ये पुण्यश्लोक लिं. आप्पासाहेब वारदांच्या वीरशैवलिंगीब्राह्मणधर्मग्रंथमालेच्या वतीने प्रकाशित झाला आहे (दोन भागांत). परंतु तो ग्रंथ आता दुर्मिळ झाला असल्यामुळे अनेक जिज्ञासू अभ्यासकांची मोठी अडचण होत होती. ही गोष्ट ध्यानी घेऊन हाच ग्रंथ आमच्या मंडळाच्या वतीने पुनर्मुद्रित करावा असा विचार मनात आला. आणि दि. २/१०/१९८८ रोजी पू. श्री. ष. ब्र. डॉ. चन्द्रशेखर शिवाचार्य स्वामीजींच्या सान्निध्यात विचार विनिमय होऊन 'सिद्धान्तशिखामणी' चे पुनर्मुद्रण करण्याचे ठरले. लगेच दुसऱ्या दिवशी म्हणजे दि. ३/१०/१९८८ रोजी शिवानुभव मंगलकार्यालयात पू. स्वामीजींच्या अध्यक्षतेखाली कार्यकर्त्यांची व समाजातील प्रतिष्ठितांची बैठक घेण्यात आली आणि ग्रंथप्रकाशनपूर्व नोंदणी करून निधी जमविण्याचे ठरले. ग्रंथाचे संपादन पू. श्री. डॉ. चन्द्रशेखर शिवाचार्य स्वामींनी करावे अशी आमची विनंती त्यांनी आनंदाने मान्य केली. त्यानंतर सुमारे दोन महिन्यांनी दि. ३० नोव्हेंबर १९८८ रोजी पुन्हा पू. स्वामीजींच्या उपस्थितीत आणि श्री बाबुराव चाकोते यांच्या अध्यक्षतेखाली ग्रंथनोदणीचा शुभारंभ जाहीर सभेत करण्यात आला.

सर्वश्री बाबुराव मैंदर्गीकर, गणेश शेट्टी, विश्वनाथ चाकोते, संगप्पा सावळगी, बसवराज शास्त्री, बिराजदार आणि शांतितीर्थ चाकूरकर अशा कित्येक मंडळींनी ग्रंथनोंदणीच्या कामी पुढाकार घेऊन मोठी मजल मारली महाराष्ट्रातल्या आणि महाराष्ट्राबाहेरच्याही अनेक लोकांनी आमच्या प्रयत्नाला चांगला प्रतिसाद दिला. नोंदणी पूर्ण झाल्यानंतर सहा महिन्यात ग्रंथ वाचकांच्या हाती देण्याचे आम्ही ठरविले, त्यावेळी तो ग्रंथ आहे तसा पुनर्मुद्रित करण्याचे ठरले होते. परंतु ही गोष्ट काही

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जाणकार वाचकांना योग्य वाटली नाही. कारण मूळच्या प्रतीतील मराठी अर्थ त्रोटक असल्यामुळे सामान्य वाचकांना विषय समजणे कठीण झाले होते. म्हणून आम्ही संपूर्ण ग्रंथाचा नव्याने मराठी भावानुवाद करण्याचे ठरविले. यामुळे वेळ आणि पैसा दोन्ही अधिक लागणार होते. तरीही आम्ही प्रथम जाहीर केलेले प्रकाशनपूर्व नोंदणीमूल्य तीस रुपये हेच कायम करून नोंदणी चालू ठेवली. यामागे ना नफा ना तोटा या आधारावर ग्रंथ प्रकाशित करून हा महत्त्वाचा धर्मग्रंथ वाचकांना सहज सुलभ व्हावा हाच आमचा हेतू होता.

अनुवादकार्यासाठी डॉ. चन्द्रशेखर कपाळे, वे. प. शरणय्या शास्त्री आणि डॉ. शे. दे. पसारकर या तिघाची समिती नेमण्यात आली. लगेच अनुवादाचे काम सुरू झाले. प्रथम वे. प. शरणय्या शास्त्री यांनी संस्कृतवरून मराठी भाषांतराचे काम मोठ्या तडफेने अल्पावधीत पूर्ण केले. त्यावरून पुढे डॉ. शे. दे. पसारकरांनी ग्रंथाच्या प्रथम भागाचा भावानुवाद सिद्ध केला. झालेल्या कामासबंधी मुख्य संपादकांशी चर्चा होणे अगत्याचे होते. परंतु मध्यंतरीचा काही काळ त्यांच्या आणि पर्यायाने आमच्याही दृष्टीने फार घाईगर्दीचा गेला. दि. २ ऑक्टो १९८९ रोजी प. पू. श्री काशी जगद्गुरू विश्वेश्वर शिवाचार्य महास्वामीजी हे पुणे येथे लिंगैक्य पावले. या दुःखद घटनेनंतर पुढे दि. १७ नोव्हेंबर १९८९ रोजी या ग्रंथाचे मुख्य संपादक पू. श्री. ष. ब्र. डॉ चन्द्रशेखर शिवाचार्यांना वाराणसीच्या श्री ज्ञानसिंहासनावर विश्वाराध्य पीठाचे ८६ वे जगद्गुरू म्हणून पट्टाभिषेक झाला. या आनददायक घटनेनंतर पू. सन्निधींच्या देशसंचारावर काही स्वाभाविक बंधने आली. आम्ही केलेल्या भावानुवादावर पूर्वी ठरल्याप्रमाणे सोलापूर येथेच सपादकीय संस्कार होण्याऐवजी आम्हालाच वाराणसी येथे जाऊन उर्वरित भावानुवादाचे कार्य पूर्ण करावे लागले. त्या प्रमाणे डिसेंबर ८९ ते जून ९० या काळात वे. पं. शरणय्या शास्त्री व डॉ चन्द्रशेखर कपाळे यानी वाराणसी येथे राहून प्रथम अनुवाद आणि नंतर ग्रंथमुद्रण अशी दोन्ही कामे पार पाडली. अनुवादकार्याच्या काळातील आमचे वास्तव्य वाराणसी येथील जंगमवाडी मठात अत्यंत सुखाचे झाले. तेथील विद्यार्थीवर्ग आणि सेवक यांनी नेहमीच आपुलकीने सहकार्य केले. प्रथम पासूनच विशेषतः सर्वश्री पंचाक्षरी लिगाडे, महेश्वर देव बदामी,

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

डॉ. शिवानद आणि शेवटच्या काही दिवसांत श्री.ष. ब्र. विरूपाक्ष शिवाचार्य (ओंकारस्वामी) बाळापूरकर तसेच सोलापूरचे श्री एम. एस. वाकळे यांचे आम्हास फार साहाय्य झाले. काशी येथील सुप्रसिद्ध संस्कृत विद्वान आणि तन्त्रसाहित्याचे गाढे अभ्यासक पं. व्रजवल्लभ द्विवेदी व पं. जनार्दन पाण्डेय या उभयतांनी अपार कष्ट घेऊन संस्कृत संहितेचे शुद्धीकरण केले. पं. द्विवेदीजी तर ग्रंथाच्या पूर्णावस्थेपर्यंत तो सर्वांगसुंदर होण्याच्या दृष्टीने मार्गदर्शन करीत राहिले.

या ग्रंथाचे प्रमुख संपादक प. पू. श्री १००८ जगद्गुरू डॉ. चन्द्रशेखर शिवाचार्य महास्वामीजी यानी तर ग्रंथ प्रकाशनाच्या योजनेपासून ते ग्रंथवितरणापर्यंत प्रत्येक बाबीत जातीने लक्ष घालून प्रत्येक काम व्ययस्थितपणे पार पडेल या दृष्टीने मार्ग-दर्शन केले. जगद्गुरूच्या सर्वोच्च पदावर आरूढ झाल्यावर त्यांच्या कार्याचे क्षेत्रआणि व्याप खूप वाढला असूनही त्यानी प्रसंगी स्वतःची गैरसोय सहन करून ग्रंथाचे काम वेळेवर व चांगल्या प्रकारे पूर्ण होण्यासाठी कष्ट घेतले. त्याच्या अनेक प्रकारच्या व्यापातून वेळ काढून बऱ्याचशा घाईने परंतु ग्रंथाचे सर्वांगीण विश्लेषण-विवेचन करणारी सुदीर्घ व अभ्यासपूर्ण प्रस्तावना त्यांनी लिहून दिली. अधिक सखोल व विस्तृत विवेचन करण्याची त्यांची इच्छा असूनही काही विषय त्यांना संक्षेपाने सांगावे लागले. तरीही प्रस्तुत प्रस्तावनेमुळे वाचकांच्या अनेक शंकांचे समाधान होऊन त्यांना नव्या दृष्टीने या ग्रंथाचे आगळेवेगळे दर्शन घडेल अशी आम्हांस पूर्ण खात्री आहे प. पू. महास्वामीजींच्या या अनुग्रहाचे मोल शब्दानी व्यक्त होऊ शकणार नाही. या ग्रंथाचा मराठी भावानुवाद जरी आम्ही केला असला तरी त्याचा मुख्य आशय महास्वामीजींचाच असल्यामुळे या कार्यातील सर्व गुणांचे श्रेय त्यांनाच आहे. घाईगर्दी आणि अनवधानामुळे काही त्रुटी राहिल्या असल्यास त्यांचा दोष मात्र सर्वस्वी आमच्याकडे आहे. वाचकांनी अशा त्रुटी आमच्या नजरेस आणून दिल्यास पुढील आवृत्तीत त्या अवश्य दूर केल्या जातील.

प. पू. महास्वामीजींचे संपादनकार्य हे जसे आमच्यावरील त्यांच्या अनुग्रहाचे द्योतक आहे तसेच ते त्यांच्या विद्याव्यासंगी वृत्तीचेही निदर्शक आहे. काशीच्या श्रीज्ञानसिंहासनावर पट्टाभिषिक्त या ज्ञानमूर्तीकडून आमच्या आणि वीरशैव समाजाच्या फार

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

मोठ्या अपेक्षा आहेत. सिद्धान्तशिखामणी ग्रथाचे आपणाकडून झालेले संपादन हा आमच्या मंडळाच्या गौरवाचा व सन्मानाचा विषय आहे. आपल्या कृपा-आशीर्वादाने आणि मार्गदर्शनानेच मंडळाचे या पुढील कार्य यशस्वी होत राहील अशी आशा आम्ही बाळगून आहोत. सिद्धान्तशिखामणी ग्रथाचे प्रस्तुत स्वरूपात प्रकाशित होणे हा केवळ पू. महास्वामीजींच्या अनुग्रहाचा प्रसाद आहे असे आम्ही मानतो. तो महाप्रसाद वाचकवर्गापर्यंत पोचविण्याचा आम्ही जो प्रयत्न केला आणि ज्या निष्ठावंत वाचकानी ग्रंथाची नोंदणी करून ते या प्रसादाचे वाटेकरी झाले त्याना आम्ही भाग्यवान आणि धन्य समजतो.

'सिद्धातशिखामणी' हा वीरशैवांचा धर्मग्रंथ आहे म्हणून त्याचे प्रकाशन, वितरण, सग्रह, वाचन, अध्ययन आणि मनन-विवेचन-प्रवचन ही सर्व पुण्यकर्मे आहेत. त्यामुळे या ग्रंथाच्या सपादन-प्रकाशनापासून ते ग्रंथ नोदणी-वितरणापर्यंत ज्यांनी ज्यानी जी जी कामे केली आहेत ती ती सर्व कर्तव्य भावनेने केली आहेत. त्यात कोणीही स्वार्थ पाहिला नाही. हे परमार्थाचे काम. ते काम एकट्याचे नव्हेच. ते सर्वांचे होते आणि सर्वांनी ते आपलेपणाने पार पाडले. त्यामुळे कोणी कोणाचे आभार मानायचे? सिद्धातशिखामणीच्या शेवटच्या ऐक्यस्थळी ज्याप्रमाणे आप-पर-भाव नाहीसा होऊन सर्व जग शिवमय असल्याचे ज्ञान होते, तसे वाचकाच्या ठिकाणी या ग्रंथाच्या अध्ययनाने 'शिवो भूत्वा शिव यजेत्' अशी भावना जागी व्हावी आणि शेवटी 'शिवोऽहं' भावनेच्या प्रतीतीने त्यांचा जन्म सफळ व्हावा अशी सदिच्छा व्यक्त करतो आणि मंडळाच्या भावी कार्यात सर्वांकडून वाढते सहकार्य लाभावे अशी अपेक्षा बाळगतो.

प. पू. श्री १००८ जगद्गुरू प्रसन्न रेणुक वीर रुद्रमुनि शिवाचार्य महास्वामी, बाळेहोन्नूर (रंभापुरी) यांनी या ग्रंथाला शुभसंदेशरूपी मंगल आशीर्वाद पाठवून आमच्या कार्याविषयी प्रसन्नता व्यक्त केली हे आमचे महद्भाग्य होय. त्यांचे आशीर्वाद म्हणजे त्या पीठाचे मूळ जगद्गुरू आणि 'सिद्धान्तशिखामणी' ग्रंथाचे उपदेशक असे श्री रेणुकाचार्य याचेच आशीर्वाद होत. आम्ही आपले चिरऋणी राहू.

हा ग्रथ प्रकाशित होत असताना मनात दाटलेल्या कृतकृत्यतेच्या भावनेने आनंद होत असला तरी त्या आनंदाला

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

दोन दुःखद घटनांचे गालबोट लागल्याची खंत वाटते. या ग्रंथ प्रकाशनाने ज्यांना अत्यानंद झाला असता अशा दोन महनीय व्यक्तींचा आम्हाला चिरवियोग झाला आहे. त्यांपैकी एक म्हणजे ज्यांनी आमच्यावर अपत्यवत् प्रेम केले असे प. पू. श्री १००८ काशी जगद्‌गुरू विश्वेश्वर शिवाचार्य महास्वामी आणि दुसरे, ज्यांनी आमच्या कार्याला सतत सक्रिय प्रेरणा दिली असे आमच्या मंडळाचे उपाध्यक्ष श्री सुधाकर चौधरी. या दोघांच्या स्फूर्तिदायी स्मृतीला आम्ही या प्रसंगी विनम्र भावांजली अर्पण करीत आहोत.

या ग्रंथाचे सुंदर मुखपृष्ठ सोलापूरचे चित्रकार Sapar बंधू यानी करून दिले. तसेच वाराणसी येथील रत्ना प्रिंटिंग वर्क्सचे मालक आणि कामगार व पुस्तक बांधणी करणारे श्री देवनारायण यांनी ग्रंथ सर्वांग सुंदर करण्यासाठी केलेल्या परिश्रमाबद्दल आम्ही त्यांचे मनःपूर्वक आभार मानतो.

'शिवरत्न'
१०-२/३६, एस. बी. कॉलेज रोड,
गुलबर्गा-५८५१०३ (कर्नाटक)

चन्द्रशेखर शि. कपाळे
प्रकाशक व अध्यक्ष,
वीरशैव साहित्य संशोधन मंडळ
सोलापूर

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

काशीज्ञानसिंहासनाधीश्वर श्री १००८ जगद्गुरू
डॉ. चन्द्रशेखर शिवाचार्य महास्वामीजींचे
संपादकीय

दर्शनशास्त्रांचे माहेरघर असलेल्या आपल्या भारतदेशात निगम आणि आगम नावाची दोन शास्त्रे अत्यंत प्रसिद्ध आहेत. यापैकी शिवाच्या निःश्वासापासून उत्पन्न झालेले ते निगम होत आणि त्याच्या वाणीतून प्रकटलेले ते आगम म्हणविले जातात. म्हणून 'निश्चयेन तत्त्वंगमयतीति निगमः' अशी निगमागमांची व्युत्पत्ती प्रसिद्ध आहे. निगमांमध्ये परस्पर विरुद्धार्थ प्रतिपादक असे मत्र असल्यामुळे उपक्रमोपसंहारादी श्रुतिषड्लिंगाच्या साहाय्याविना त्यांचा अर्थ लावणे शक्य नसल्याच्या भावनेने भगवंताने सर्व जनांच्या उपयोगासाठी पार्वतीला उपदेश करण्याच्या निमित्ताने सांगितलेले शास्त्र म्हणजे आगम होत. म्हणून—

आगतं शिववक्त्रात्तु गतं च गिरिजामुखे।
मतं श्रीवासुदेवेन आगमस्तेन कीर्तितः।।

(भास्करी, द्वि. भाग पृ. ८५)

शिवाच्या मुखातून आलेला आणि गिरिजेच्या श्रवणसंपुटात गेलेला असा उपदेश श्री वासुदेवानेही समत केला म्हणून त्या शिवोपदिष्ट शास्त्राला आगम म्हणतात, असा आ, ग, म या अक्षरांनी सिद्ध झालेल्या आगम शब्दाचा रूढार्थ सांगितला जातो.

आगम शब्दाचा यौगिक अर्थ असा- 'आसमन्ताद् अर्थंगमयतीति आगमः।' म्हणजे संपूर्ण तत्त्वांचा उपदेश करणारे ते आगमशास्त्र होय. तसेच 'आगच्छन्ति बुद्धिमारोहन्ति यस्माद् अभ्युदय निःश्रेयसोपायाः स आगमः।' (योगसूत्र, १२५ तत्त्ववैशारदी) या व्युत्पत्त्यनुसार ज्या शास्त्रामुळे ऐहिक अभ्युदय आणि पारलौकिक मुक्ती या दोन्हींच्या प्राप्तीचे उपाय सहज रीतीने समजतात त्याला आगम म्हणावे, असा वाचस्पति मिश्रांचा स्पष्ट अभिप्राय आहे.

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

आगमांना तंत्र असे पर्यायी नावही आहे 'तन्यते विस्तार्यते ज्ञानमनेन' म्हणजे ज्याच्या अध्ययनाने सर्व प्रकारचे ज्ञान प्राप्त होते, तेच तत्र होय. तत्र शब्दाचे हे स्पष्टीकरण कामिक आगमात ही अशा प्रकारे दिले आहे-

तनोति विपुलानर्थान् तंत्रमंत्रसमन्वितान्।
त्राणं च कुरुते यस्मात् तन्त्रमित्यभिधीयते।।

आगमांचे भेद :

आगमा बहुधा प्रोक्ताः शिवेन परमात्मना।
शैवं पाशुपत सोम लाकुलं चेति भेदतः।।

(सि. शि. ५. ९)

अशा ह्या श्री रेणुकाचार्यांच्या उपदेशानुसार आगमांचे शैव, पाशुपत, सोम आणि लाकुल इत्यादी अनंत भेद आहेत. त्यामध्ये शैवागम वाम, दक्षिण, मिश्र आणि सिद्धात अशा चार प्रकारचे आहेत. शक्तितत्त्वाचे प्रतिपादन करणारे वामागम, भैरव तत्त्वाचा बोध करणारे दक्षिणागम, सप्तमातृकांची उपासना सागणारे मिश्रागम आणि वेदसमत तत्त्वांचा उपदेश करणारे सिद्धान्तागम म्हणविले जातात.

या शिवाय सौर, गाणपत्य, असेही अनेक आगम आहेत. एकंदरीत पाचरात्र आगम १०८, शाक्तागम ६४ आणि त्याचे उपागम ३२७, शैवागम २८ आणि त्याचे उपागम १२७, वैष्णवागम ७५ आणि त्याचे उपागम २०५ असे आगम अथवा तंत्रशास्त्राचे साहित्य विपुल आहे. (या विषयीची अधिक माहिती श्री रामदास गौड यांच्या 'हिंदुत्व' या ग्रंथात मिळू शकेल)

शैवागम (सिद्धान्तागम) :

शिवाने उपदेशिलेल्या कामिकादि वातुलान्त अठ्ठावीस आगमांना शैवागम असे म्हणतात. त्यांनाच सिद्धांतागम असेही नाव आहे. 'आप्तोक्तिरत्र सिद्धान्तः शिव एवाप्तिमान्यतः श्रीकंठसूरीच्या या श्लोकाचे व्याख्यान लिहिताना श्री अघोर शिवाचार्यांनी 'सिद्धात शब्दः पङ्कजादिशब्दवद् योगरूढ्या शिवप्रणीतेषु कामिकादिषु दशाष्टदशतन्त्रेषु प्रसिद्धः' (रत्नत्रय, पृ. ५) असे लिहिले आहे. याचे तात्पर्य असे की, यथार्थ वक्ता असणाऱ्या आप्त पुरुषाकडून सांगितल्या गेलेल्या वचनाला सिद्धात असे म्हणतात.

'समौ सिद्धान्त राधान्तौ' (अमरकोश, १-५.४) अशा श्री अमरसिहाच्या वचनानुसार अंतिम निर्णयाला सिद्धात अथवा

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

राधान्त असे म्हणतात. असे असताना सिद्धात शब्दापासून शैवागम असा अर्थबोध कसा होईल? असा प्रश्न उपस्थित झाल्यास श्री अघोर शिवाचार्य असा निर्णय सांगतात की, शब्दाचे यौगिक आणि रूढ असे दोन प्रकारचे अर्थ असतात. शब्दाचा व्युत्पत्तीने सिद्ध होणारा अर्थ—पङ्क म्हणजे चिखल, ज म्हणजे जन्मलेले अर्थात् चिखलात जन्मलेले. हा अर्थ यौगिक अर्थ होय. चिखलात अनेक कृमिकीटकांप्रमाणे कमलही जन्मते. परंतु लोकांमध्ये पङ्कज शब्दाचा अर्थ कमल असाच रूढ आहे. लोकांत रूढ असलेल्या अर्थाला रूढार्थ असे म्हणतात. पङ्कज शब्दाला योगरूढीने जसा कमल असा अर्थ प्राप्त होतो, तसा सिद्धान्त शब्दालाही योगरूढीने शिवागम असा अर्थ प्राप्त झाला आहे. तो कसा तर देवीपुराणात सिद्धी म्हणजे दुर्गा असा अर्थ घेतलेल आहे. त्यावरून सिद्ध म्हणजे शिव आणि अत म्हणजे त्याचा निश्चय अथवा उपदेश असा अर्थ होतो. हा व्युत्पत्तिसिद्ध यौगिक अर्थ असून शिवाचा निर्णय तो अतिम निर्णय असा लोकात रूढार्थ आहे. अशा प्रकारे या योगरूढार्थाच्या आधाराने सिद्धान्त या शब्दाचा अर्थ शिवागम असाच होतो. म्हणून शिवोक्त अशा- १. कामिक, २. योगज, ३. चिन्त्य, ४. कारण, ५. अजित, ६. दीप्त, ७. सूक्ष्म, ८. सहस्र, ९. अंशुमान, १०. सुप्रभेद, ११. विजय, १२. निश्वास, १३. स्वायंभुव, १४. अनल, १५. वीर, १६. रौरव, १७. मुकुट, १८. विमल, १९. चन्द्रज्ञान, २०. बिम्ब, २१. प्रोद्गीत, २२. ललित, २३. सिद्ध, २४. संतान, २५. शर्वोक्त, २६. पारमेश्वर, २७. किरण आणि २८. वातुल या अठ्ठावीस शिवागमांना सिद्धांत असे म्हणतात. या मध्ये क्रमशः पहिले दहा आगम शिवाकडून आणि उललेले अठरा आगम श्री रुद्राकडून उपदेशिलेले आहेत.

आगमांचा काल :

आगमसंस्कृती हरप्पा-मोहोंजदारो ग़ेथील उत्खननात सापडलेल्या अवशेषांवरून त्या कालात अस्तित्वात होती असे सिद्ध झालेले आहे. त्यामुळे आगमांचा काळ पाच हजार वर्षापेक्षा अधिक प्राचीन असला पाहिजे असा अनेक इतिहासज्ञाचा अभिप्राय आहे. इतके प्राचीन असे आमचे आगमशास्त्र कालौघात मोठ्या प्रमाणात नष्ट झालेले असून सध्या त्यापैकी काही अल्पप्रमाणातच उपलब्ध आहे, हे भारतियाचे मोठे दुर्भाग्य म्हटले पाहिजे.

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

आगमांचे विषय :

आगमांमध्ये क्रियापाद, चर्यापाद, योगपाद आणि ज्ञान (विद्या) पाद असे चार भाग असतात. यापैकी क्रियापादामध्ये देवालयाची स्थापना, मूर्तीचे निर्माण आणि त्याची प्रतिष्ठापना या विषयांचे प्रतिपादन असते. चर्यापादात प्रतिष्ठित मूर्तीची पूजा, उत्सव, तसेच हवनादी विषयांचे निरूपण केलेले असते. योगपादामध्ये अष्टांगयोगसाधना आणि ज्ञानपादामध्ये दार्शनिक विषय असे पती, पशू आणि पाशाच्या बरोबरच जगदुत्पत्तीमध्ये येणाऱ्या छत्तीस तत्त्वांचे स्वरूप विशेष करून वर्णिलेले असते.

वीरशैव सिद्धान्ताचे मूलस्रोत :

सिद्धान्ताख्ये मतातन्त्रे कामिकाद्ये शिवोदिते।
निर्दिष्टमुत्तरे भागे वीरशैवमत परम्।।

(सि. शि. ५. १४)

अशा ह्या श्री रेणुकाचार्यांच्या उपदेशानुसार पूर्वी सिद्धान्त शब्दाने प्रतिपादिलेल्या अठ्ठावीस शैवागमाच्या उत्तर भागात म्हणजे त्या त्या आगमांच्या क्रिया, चर्या, योग आणि ज्ञान पादाच्या उत्तर भागांत वीरशैव धर्माचे तत्त्वत्रय असे अष्टावरण, पचाचार आणि षट्स्थलांचे निरूपण आलेले आहे.

वीरशैव धर्माच्या अष्टावरणात येणारे इष्टलिंग, भस्म आणि रुद्राक्ष धारणादीचे वेदांतही अधूनमधून प्रतिपादन आलेले असल्यामुळे सिद्धान्तागमोक्त अशी तत्त्वे केवळ आगमसमतच आहेत असे नसून वेदसंमतही आहेत असे समजले पाहिजे.

अशा रीतीने वीरशैव धर्माला आगम हेच मूळ असले तरी आगमसंमत असे वेदभागही वीरशैवानी स्वीकारल्यामुळे वीरशैव सिद्धान्त तांत्रिक-वैदिक मानला जातो.

वीरशैव वैष्णवंच शाक्तं सौरं विनायकं।
कापालमिति विज्ञेयं दर्शनानि षडेव हि।।

(पारमेश्वरागम, १-२२, २३)

या पारमेश्वरागमाच्या उक्तीमध्ये आगमसमत अशा षड्दर्शनांचा उल्लेख आला आहे. यांमध्ये वीरशैवाचाही अंतर्भाव असल्यामुळे वीरशैवांना आगम साहित्याचा मूलाधार असल्याचे दृष्टोत्पत्तीस येते. इतकेच नव्हे-

न वीरशैवसदृशमतमस्ति जगत्त्रये।
सर्व भोगप्रदं पुण्यं शिवसायुज्यदायकं।। (पारमेश्वरागम, १-४२)

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

असे त्याच पारमेश्वरागमात पूर्वोक्त अशा षड्दर्शनामध्ये वीरशैव दर्शन हे आपल्या समन्वयात्मक उदात्त भावनेमुळे सर्वोत्कृष्ट झाले आहे, असे प्रतिपादन केले आहे. त्यामुळे या धर्माचे उत्कृष्ट आचार आचरणात आणून या धर्माचे श्रेष्ठत्व टिकविणे हे प्रत्येक वीरशैवाचे आद्य कर्तव्य झाले आहे.

वीरशैवशब्दार्थ निरूपण :

विद्यायां शिवरूपायां विशेषाद्रमणं यतः।
तस्मादेते महाभागा वीरशैवा इति स्मृताः।।
वीशब्देनोच्यते विद्या शिवजीवैक्यबोधिका।
तस्यां रमन्ते ये शैवा वीरशैवास्तु ते मताः।।
वेदान्तजन्यं यज्ज्ञानं विद्येति परिकीर्त्यते।
विद्यायां रमते तस्यां वीर इत्यभिधीयते।।

(सि. शि. ५, १५-१६-१७)

सिद्धान्तशिखामणीमध्ये श्री रेणुक भगवत्पादानी अगस्त्य महर्षींना उद्देशून या रीतीने वीरशैव शब्दाचा तत्त्वार्थ सांगितला आहे. तो कसा, तर—वीरशैव शब्दात येणाऱ्या वी धातूविषयी —'वी गति-व्याप्ति-प्रजनन कान्त्यसन खादनेषु' (अदादि ११२३) अशा या पाणिनीय धातुपाठातील सूत्रानुसार वी धातूला अनेक अर्थ असल्या प्रमाणे गति अर्थात् गमन असाही अर्थ आहे. 'ये गत्यर्थकास्ते ज्ञानार्थकाः' या नियमानुसार गमनार्थ सांगणारे सर्व धातू ज्ञानार्थही सांगत असल्यामुळे येथे 'वी' धातूचा अर्थ विद्या अथवा ज्ञान असाही होतो. त्याचप्रमाणे वीर शब्दातील 'र' अक्षराचा अर्थ रमणे अर्थात् आनंद घेणे असाही होतो. अशा प्रकारे 'वी' धातूपासून शिवजीव अथवा लिंगांगाचे एकत्व बोधित होणाऱ्या विद्येत जो शिवभक्त विशेषत्वाने रमतो अथवा आनंद घेतो तोच वीरशैव होय हे तात्पर्य जाणावे.

वीरशैव शब्दाच्या अर्थावरील आक्षेपांचा परिहार :

भारतीय तत्त्वज्ञानाच्या इतिहासाचे सुप्रसिद्ध लेखक श्री. एस. एन. दासगुप्ता यानी सिद्धान्तशिखामणी ग्रंथात सांगितलेल्या वीरशैव शब्दाच्या अर्थाविषयी आपल्या A History of Indian Philosophy, Vol V या ग्रंथाच्या पृ. ४४-४५ वर जो आक्षेप घेतला आहे, त्याचा सारांश असा —'सिद्धान्तशिखामणी ग्रंथात 'वीर' शब्दाची विचित्र व्युत्पत्ती दिली असून 'वी' म्हणजे ब्रह्मविद्या आणि 'र' म्हणजे त्या विद्येत रमणारा असा अर्थ दिला आहे.

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

परंतु ही व्युत्पत्ती योग्य नाही. कारण 'वी' अक्षरापासून 'विद्या' असा अर्थ घ्यायचा म्हटल्यास 'वी' हे अक्षर 'वि' असे ह्रस्व असायला हवे होते, ते दीर्घ का आहे याचे स्पष्टीकरण दिलेले नाही. दुसरी अडचण अशी की अशा विद्येत रमणारे अन्य शैवही असतात, मग त्यानाही वीरशैव का म्हणू नये? ते केवळ वीरशैवाचे वैशिष्ट्च कसे होऊ शकते? त्यामुळे वीरशैव या शब्दाचा दिलेला हा अर्थ पटण्यासारखा नाही'.

श्री दासगुप्तांचे हे दोन्ही आक्षेप सकृद्दर्शनी योग्य वाटले तरी ते अविचारीपणाचे द्योतक आहेत असे दिसून येते. सिद्धान्तशिखामणी मध्ये विद्याबोधक असा 'वी' धातू मानलेला आहे. एवढेच नव्हे तर पाणिनीय धातुपाठातही विद्यावाचक धातू म्हणून 'वी' अक्षर सांगितलेले आहे. त्यामुळे विद्यावाचक अक्षर दीर्घ 'वी' कसे झाले अशा आक्षेपाला जागाच नाही. असा विद्यावाचक 'वी' धातू संस्कृत व्याकरणशास्त्रात आहे हे माहीत नसल्यामुळे श्री दासगुप्तांची गफलत झालेली दिसते. आता त्यांच्या दुसऱ्या आक्षेपाचा परिहार असा—येथे सर्वांनी जाणून घेण्यासारखे रहस्य आहे ते असे की 'अथातो ब्रह्म जिज्ञासा' (ब्र. सू-१. १. १.) या ब्रह्मसूत्राचे वीरशैव सिद्धान्तानुसार श्रीकरभाष्य लिहिताना श्रीपतिपण्डिताराध्यानी, 'लिंगधारणात्मक पाशुपत दीक्षानन्तर्यमित्यथ शब्दार्थो निर्णीयते' अशा प्रकारे अथ शब्दाचा अर्थ स्पष्ट केला आहे. तात्पर्य असे की उपरोल्लेखित ब्रह्मसूत्रात अथ, अतः ब्रह्मजिज्ञासा ही दोन पदे आली आहेत. या पैकी अथ म्हणजे नंतर, अतः म्हणजे म्हणून आणि ब्रह्मजिज्ञासा या शब्दाचा अर्थ ब्रह्म जाणून घेतले पाहिजे असा होतो. स्वर्गादी फले अनित्य असल्यामुळे नित्य सुखाची अपेक्षा बाळगणाऱ्या साधकाने नंतर ब्रह्म-जिज्ञासा बाळगली पाहिजे, असा या सूत्राचा पूर्ण अर्थ आहे.

येथे नंतर ब्रह्मजिज्ञासा बाळगावी असे श्री व्यास महर्षींनी सांगितले असल्यामुळे कशाच्यानंतर असा प्रश्न उद्भवतो. या प्रश्नाच्या उत्तरादाखल श्रीपति पण्डिताराध्यांनी वर सांगितलेल्या त्यांच्या भाष्यांशात सद्गुरूच्या कृपेने दीक्षासंस्कारयुक्त होऊन इष्टलिंग धारण केल्यानंतर ब्रह्मजिज्ञासा बाळगावी असे सांगितले आहे. वेदांतशास्त्रात विवेक, वैराग्य, शमदमादी षट्संपत्ती आणि मुमुक्षूच्या साधन चतुष्टयाच्या प्राप्तीनंतर ब्रह्मजिज्ञासा

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

करण्याविषयी जसे सागतात तसे वीरशैव सिद्धान्तात वेधा, मंत्र आणि क्रियादीक्षाद्वारे आपल्या ठिकाणच्या आणव, मायीय आणि कार्मिक अशा मलत्रयाच्या निवृत्तीनंतर आपल्या शरीरावर शास्त्रसंमत पद्धतीने इष्टलिंग नेहमी धारण करून, अष्टावरणांवर निष्ठा ठेवून, पंचाचाराचे जो पालन करतो तोच ब्रह्मजिज्ञासेचा अधिकारी होतो असे मानले आहे.

याचा निष्कर्ष असा की, सद्गुरूकडून दीक्षा घेऊन, इष्टलिंग-धारी होऊन शिवजीवाचे एकत्व शिकविणाऱ्या विद्येत जो शिवभक्त सदा रमतो तोच वीरशैव होय. शिवजीवाच्या एकत्वबोधक विद्येत रमणारे वेदांती असोत, काश्मीर शैवसप्रदायी असोत ते दीक्षेद्वारे प्राप्त झालेल्या इष्टलिंगाचे धारण करीत नसल्यामुळे त्यांच्या ठिकाणी वीरशैवांची लक्षणे दिसून येत नाहीत, म्हणून येथे अतिव्याप्तीचा दोष होत नाही. एखादे वेळी त्यांनीही इष्टलिंग धारण केले तर त्यांचाही समावेश वीरशैवांत होऊ शकेल.

म्हणून येथे वीरशैव शब्द पङ्कज शब्दाप्रमाणे योगरूढ आहे असे जाणून त्यावरून केवळ सद्गुरूकडून दीक्षोत्तर इष्टलिंग धारण करणारा शिवभक्त असा विशेष अर्थ घेतला जातो हे ध्यानात असावे.

इष्टलिंग वियोगे वा व्रतानां वा परिच्युतौ।
तृणवत् प्राण सन्त्याग इति वीरव्रतंमतम्।।
भक्त्युत्साह विशेषोऽपि वीरत्वमिति कथ्यते।
वीरव्रत समायोगाद् वीरशैव प्रकीर्तितम्।।

(चं ज्ञा. क्रियापाद १०, ३३-३४)

चंद्रज्ञानागमाच्या या श्लोकात गुरुप्रदत्त इष्टलिंग शरीरापासून वियुक्त झाल्यास आपल्या प्राणांचा क्षणात तृणवत् त्याग करण्याचे वीरव्रत पालन करणारे शिवभक्तच वीरशैव होत असा वीरशैव शब्दाचा तत्त्वार्थ सांगितला आहे.

येथे ध्यानात घेण्यासारखे रहस्य म्हणजे वीरशैव धर्मगुरू आपल्या शाखानुयायी शिष्याना क्रियादीक्षा देऊन, पचाक्षर मंत्रोपदेशाने इष्टलिंग प्रदान करतात. म्हणून दीक्षा घेतलेल्या व्यक्तीला-

प्राणवद्धारणीयं तत्प्राणलिङ्गमिदं तव।
कदाचित् कुत्रचिद्वापि न वियोजय देहतः।। (सि. शि. ६, २६)

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

म्हणजे हे इष्टलिग प्राणाइतकेच प्रीतीने धारण कर. हे कधीही व कोठेही शरीरापासून विलग होऊ देऊ नकोस, असा उपदेश करतात. श्रीगुरूचा हा आदेश चुकून पाळला गेला नाही आणि अकस्मात् प्रमादाने इष्टलिंग शरीरापासून वेगळे झाले असता आपला प्राणत्याग करण्याचे वीरव्रत पालन करणारा शिवभक्तच वीरशैव होय, हे तात्पर्य जाणावे.

अशा रीतीने वीरशैव शब्दातील 'वीर' या विशेषणाने भक्तीचा उत्कर्ष हा अर्थ सूचित होतो. धन अथवा शरीरबलाने प्राप्त होणारे वीरत्व या ठिकाणी अभिप्रेत नाही.

हाच अभिप्राय व्यास महर्षींनी स्कंद पुराणातील शकर संहितेत पुढील प्रमाणे व्यक्त केला आहे.

योहस्तपीठे निजमिष्टलिङ्ग विन्यस्य तल्लीनमनः प्रचारः।
बाह्यक्रियासङ्कुलनिःस्पृहात्मा सम्पूजयत्यङ्ग स वीरशैवः।।

याचा अर्थ असा की, करपीठावर इष्टलिग ठेवून, त्या इष्टलिगात आपले मन केन्द्रित करून, बाह्य क्रियाविषयी निःस्पृह होऊन अत्यंत निष्ठेने त्याची पूजा करणाराच वीरशैव होय. येथे बाह्य उपचारांत अधिक वेळ न घालविता इष्टलिंगाशी शिवयोग साधण्याचे अधिक महत्त्व सूचित केले आहे. यामुळे करपीठावर इष्टलिंगाची अर्चना सागणारा हा वीरशैव धर्म व्यास महर्षी पेक्षाही पूर्वी प्रचारात होता हे सिद्ध होते. एवढेच नव्हे तर श्री नीलकंठ शिवाचार्यांनी 'विरोधरहितं शैवं वीरशैवं विदुर्बुधाः' (क्रियासार, भाग १, पृ-११) अशी व्युत्पत्ती सांगून विरोधरहित असणारा तो वीरशैव असे वीरशैवाचे लक्षण प्रतिपादन केले आहे. म्हणजे कोणत्याही भारतीय दर्शनाचे विरोधभावनेने खंडन न करता त्या सर्वांकडे समन्वयदृष्टीने पाहाणे हाच वीरशैव धर्माचा उद्देश आहे. म्हणूनच श्री जगद्‌गुरू रेणुकाचार्यांनी सिद्धान्तशिखामणी मध्ये-

सांख्यं योगः पाञ्चरात्रं वेदाः पाशुपतं तथा।
एतानि मानभूतानि नोपहन्यानि युक्तिभिः।।

(सि. शि. ५, ४)

या श्लोकात वेदसंमत अशा सांख्ययोगादि दर्शनांचे युक्तीने खंडन करू नये, असा अगस्ती महर्षींना उपदेश करून वीरशैव विरोधरहित आणि समन्वयवादी असल्याचे फार पूर्वीच-स्पष्ट केले आहे.

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अशा प्रकारे वीरशैव शब्दाच्या विभिन्न अर्थप्रतिपादक उक्तीचे पर्यालोचन केल्यानंतर निघणारे तात्पर्य म्हणजे सद्गुरूकडून दीक्षासंस्कार मिळवून त्याच्या अनुग्रहाने प्राप्त झालेले इष्टलिंग नेहमी शरीरावर धारण करून प्रसंगी प्राणत्याग करण्याची वेळ आली तरी इष्टलिंगपूजा मात्र सोडू नये, अशा निष्ठेने युक्त होऊन, कोणताही धर्म असो, कोणताही प्राणी असो, त्याचा द्वेष न करता, वैरभावरहित होऊन, उदात्त भावनेने सर्वांशी मिळून मिसळून, प्रेमाने वर्तन करून शिवजीवैक्यबोधक विद्येत सदैव रमणारा शिवभक्तच वीरशैव होय.

आगमानुयायी शैवदर्शनांमध्ये वीरशैव दर्शनाचे वैशिष्ट्य :

कामिकादिवातुलान्त अठ्ठावीस शैवागमांमध्ये पहिल्या दहा आगमांचा अंगीकार करून द्वैतप्रधान सिद्धान्त शैवदर्शन निर्माण झाले. तशाच प्रकारे पुढील अठरा आगमांना प्रमाण मानून अद्वैताचे प्रतिपादन करणारा काश्मीर शैवसिद्धान्त प्रकट झाला. परंतु द्वैताद्वैत समन्वयवादी वीरशैवाचार्यांनी त्या सर्व अठ्ठावीस आगमांना स्वीकारून आपला समन्वयात्मक सिद्धान्त प्रस्थापित केला. म्हणूनच सिद्धान्त शिखामणीमध्ये जगद्गुरु रेणुकाचार्यांनी—

सिद्धान्ताख्ये महातन्त्रे कामिकाद्ये शिवोदिते।
निर्दिष्टमुत्तरे भागे वीरशैवमतं परम्।।

(सि. शि. ५, १४)

असे प्रतिपादन करून वीरशैवांना अठ्ठावीस शैवागम मान्य आहेत, असे सांगून वीरशैवांची द्वैताद्वैत समन्वयाची भूमिकाच स्पष्ट केली आहे. म्हणून शैवागमानुयायी असे सिद्धान्तशैव आणि काश्मीर शैवांपेक्षा वीरशैव सिद्धान्त आपल्या वैशिष्ट्याने वेगळा दिसतो.

वीरशैव दार्शनिक सिद्धान्ताचे स्वरूप :

द्वैताद्वैत समन्वयात्मक असा वीरशैव दार्शनिक सिद्धान्त शिवाद्वैत, विशेषाद्वैत आणि शक्तिविशिष्टाद्वैत अशा विविध नावांनी ओळखला जातो. यांपैकी शिवाद्वैत शब्द सिद्धान्तशिखामणीमध्ये, विशेषाद्वैत शब्द श्रीकरभाष्यात आणि शक्तिविशिष्टाद्वैत शब्द क्रियासारादिग्रंथांमध्ये योजिला आहे. हे तिन्ही शब्द वाचकांना वेगवेगळे दिसत असले तरी त्या मागील तात्त्विक भूमिका सारखीच आहे. आता त्या शब्दांचे व्युत्पत्तीने सिद्ध होणारे अर्थ पाहू या.

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

शिवाद्वैत :

'शिवश्च शिवश्च शिवौ, तयोरद्वैत शिवाद्वैतम्' ही शिवाद्वैत शब्दाची व्युत्पत्ती आहे. येथे पहिल्या शिव शब्दाचा अर्थ परमात्म्याचा अश असणारा जीवात्मा असा घ्यावा. ससारदशेत उपास्य-उपासकरूपाने दोघांत भेद दिसला तरी मुक्तावस्थेत या दोघामध्ये अद्वैत प्रतिपादन करणाऱ्या वीरशैव सिद्धान्ताला श्रीरेणुकाचार्य शिवाद्वैत सिद्धान्त असे सबोधतात.

विशेषाद्वैत :

'विश्व शेषश्च विशेषौ ईशजीवौ, तयोरद्वैत विशेषाद्वैतम्' ही विशेषाद्वैत शब्दाची व्युत्पत्ती आहे. याचे तात्पर्य असे की, एकाक्षर कोशात वि शब्दाचे नेत्र, आकाश, वायू, पक्ष आणि परमात्मा असे पाच अर्थ दिले आहेत. म्हणून 'वाति उत्पादयति जगदिति विः अशा व्युत्पत्तीवरून जगताचा निर्माता अशा परमेश्वराला विः म्हणून ओळखतात. तसेच शेष म्हणजे त्या परमात्म्याचा अंशभूत असा जीवात्मा असे जाणावे. असा अंश आणि अशीरूप असणाऱ्या जीव आणि परमात्म्याचा अभेद सागणारा सिद्धान्तच विशेषाद्वैत सिद्धान्त होय. तात्पर्य असे की, समुद्राला मिळण्यापूर्वी नदी समुद्रापेक्षा निराळी दिसत असली तरी समुद्रात मिसळल्यानतर ती जशी स्वतःचे नामरूप हरवून त्याच्याशी अभिन्न होते. तशा प्रकारे संसारदशेत परमात्म्यापेक्षा भिन्न दिसणारा अंशरूप जीवात्मा मुक्त झाल्यावर परमात्म्याशी अभिन्नत्वाने एकरूप होतो. या प्रकाराने वि शब्द वाच्य शेषशब्द जीवात्म्याचे परमात्म्याशी मुक्तीच्या स्थितीत अद्वैत सागणारा सिद्धान्तच विशेषाद्वैत सिद्धान्त होय.

शक्तिविशिष्टाद्वैत :

'शक्तिश्च शक्तिश्च शक्ती, ताभ्यां विशिष्टौ जीवेषौ, तयोरद्वैत शक्तिविशिष्टाद्वैतम्' ही या शब्दाची व्युत्पत्ती आहे. याचे तात्पर्य असे की शक्ती स्थूल आणि सूक्ष्मभेदाने द्विविध झाली आहे. यातील सूक्ष्म शक्ती ईश्वराच्या व स्थूल शक्ती जीवाच्या आश्रयाने असते. सूक्ष्म शक्तीच्या कारणाने शिव सर्वज्ञ, सर्वकर्ता झालेला आहे. स्थूल शक्तीच्या कारणाने जीवात्मा अल्पज्ञ आणि अल्पकर्ता झाला आहे. या सर्वज्ञत्व आणि अल्पज्ञत्व धर्मभेदामुळे जीवेश्वरामध्ये भेद झालेला आहे.

शिवाचा अंश असणारा जीव पुन्हा शिवामध्ये समरस झाल्याशिवाय कृतकृत्य होत नाही. जीवात्मा शिवामध्ये समरस

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

होण्याचा मार्ग उपदेशिणारा वीरशैव दार्शनिक सिद्धान्त शक्तिविशिष्टाद्वैत सिद्धांत म्हणून ओळखला जातो.

आणवादिमलत्रयानी आवृत होऊन अल्पज्ञत्वादी सकुचित शक्तीने युक्त जीवात्म्याला सद्गुरू दीक्षेद्वारे मलत्रयापासून मुक्त करण्यासाठी त्याच्या ठिकाणच्या अल्पज्ञत्वादी शक्तीचे भक्तिरूपात परिवर्तन करतात. त्याची साधना जसजशी वाढत जाते तसतसे श्रद्धा, निष्ठा, अवधान, अनुभव, आनंद आणि समरस या नावांच्या भक्ती सिद्ध होतात. या भक्तींच्या साहाय्याने साधक भक्त, महेश, प्रसादी, प्राणलिंगी, शरण आणि ऐक्य नावांच्या स्थलांना प्राप्त होऊन शेवटी ऐक्यस्थली समरस भक्तीच्या प्रभावाने आपल्या संकुचित शक्तीचा विकास करून घेऊन, तशा विकसित शक्तिरूपी परशिवाशी सामरस्य प्राप्त करून घेतो. हीच मुक्ती होय. ह्या मार्गाचा उपदेश करणाऱ्या वीरशैव सिद्धान्ताला शक्तिविशिष्टाद्वैत सिद्धान्त म्हणून ओळखतात.

अशा रीतीने उपरोक्त तिन्ही नावांचा व्युत्पत्तीच्या दृष्टीने विचार केल्यास, बद्धावस्थेत परस्पर भिन्न असणारे जीव आणि परमात्मा मुक्तावस्थेत समरस होत असल्याचे प्रतिपादन ही तिन्ही नावे करतात. म्हणून नावे जरी भिन्न दिसत असली तरी त्यांचा प्रतिपाद्य विषय एकच आहे.

वीरशैव धर्मसंस्थापनाचार्य :

आतापर्यंत वीरशैव धर्माचे स्वरूप आणि त्याचा तात्त्विक अर्थ याचे विवेचन झाले. आता असा उत्कृष्ट धर्म भूतलावर स्थापन करणारे कोण, हे समजून घेणे अत्यावश्यक असल्यामुळे त्याविषयी येथे संक्षेपाने विचार करावयाचा आहे.

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भूतले।
तदा तदाऽवतारोऽयं गणेशस्य महीतले ।।

या स्कंद पुराणोक्ती प्रमाणे भूतलावर जेव्हा जेव्हा धर्मग्लानी येते त्या त्या वेळी शिव आपल्या गणांना पाठवून धर्मस्थापना करवितात असे समजून येते. त्या प्रमाणे स्वायंभुवागम, 'वीरशैव-सदाचारसंग्रह' इत्यादी ग्रंथांतून शिवगण असणारे रेवणाराध्य, मरुळाराध्य, एकोरामाराध्य, पंडिताराध्य आणि विश्वाराध्य असे पाच आचार्य परशिवांच्या आज्ञेने कलियुगाच्या आरंभी अवतार धारण करून त्यांनी वीरशैव महामताची स्थापना केल्याचे उल्लेख

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

आहेत. हे आचार्य या पूर्वीच्या युगांतही भिन्न-भिन्न नावांनी भूतलावर अवतरले असल्याचा उल्लेख वीरशैव सदाचार संग्रहात—

एतेषा प्रतिनामानि युगभेदेनच श्रुणु।
एकाक्षरो द्वयक्षरश्च त्र्यक्षरश्चतुरक्षरः।।
पञ्चाक्षरः कृतयुगे पञ्च नामानि सर्वशः।
एकवक्त्रो द्विवक्त्रश्च त्रिवक्त्रश्चतुराननः।।
पञ्चवक्त्र इतिख्याता स्त्रेयां तु महेश्वरि।
द्वापरे रेणुकश्चेति दारुकश्च द्वितीयकः।।
तृतीयः शङ्कुकर्णश्च चतुर्थो धेनुकर्णकः।
पञ्चमो विश्वकर्णाख्यः पञ्च नामानि वै श्रुणु।।
रेवणो मरुळश्चेकोरामः पण्डित एव च।
विश्वाराध्य इति प्रोक्तः कलावपि मम प्रिये।।

(वी. स. सं. १, ३०-३४)

अशा प्रकारे स्पष्टपणे आलेला आहे. कृतयुगात एकाक्षर-शिवाचार्य, द्वयक्षर शिवाचार्य. त्र्यक्षरशिवाचार्य, चतुरक्षर शिवाचार्य आणि पञ्चाक्षर शिवाचार्य या नावानी; त्रेतायुगात— एकवक्त्रा शिवाचार्य, द्विवक्त्रशिवाचार्य, त्रिवक्त्रशिवाचार्य, चतुर्वक्त्रशिवाचार्य आणि पचवक्त्र ह्या नावांनी; द्वापरयुगात—रेणुक शिवाचार्य, दारुक शिवाचार्य, घण्टाकर्ण शिवाचार्य, धेनुकर्ण शिवाचार्य आणि विश्वकर्ण शिवाचार्य या नावांनी, तसेच कलियुगात—रेवणाराध्य, मरुळाराध्य, एकोरामाराध्य, पण्डिताराध्य आणि विश्वाराध्य या नावांनी अवतार धारण केल्याचे वरील श्लोकांवरून दिसून येते.

पंचाचार्यांची अवतारस्थाने आणि धर्मपीठे :

पूर्वोक्त पंचाचार्य भूलोकातील सुप्रसिद्ध पंच शिवलिंगातून आविर्भूत होऊन त्यांनी पंचपीठांची स्थापना केली असल्याची माहिती स्वायंभुव आगमात दिली आहे. त्यांची अवतार स्थाने आणि धर्मपीठे पुढील प्रमाणे आहेत.

आंध्रप्रदेशातील कोलनुपाक क्षेत्रात श्री सोमेश्वर लिंगातून अवतार धारण केलेले श्री रेवणाराध्य यांनी धर्मप्रचारासाठी कर्नाटकातील चिक्कमगलूर जिल्ह्याच्या बाळेहोन्नूर क्षेत्रात एका धर्मपीठाची स्थापना केली. त्याचे नाव वीर पीठ अथवा वीर सिंहासन असे आहे. मध्यप्रदेशातील अवंतिका (उज्जैन) नगरात वटक्षेत्रामध्ये श्री सिद्धेश्वर महालिंगातून अवतरलेले श्री मरुळाराध्य यांनी कर्नाटकातील बल्लारी जिल्ह्याच्या उज्जयिनी

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

नावाच्या गावात एक धर्मपीठ स्थापिले. त्याचे नाव सद्धर्मपीठ अथवा सद्धर्म सिंहासन असे आहे. द्राक्षाराम क्षेत्रातील रामनाथ लिंगापासून अवतरलेल्या एकोरामाराध्यांनी उत्तर प्रदेशातील केदार क्षेत्री उखीमठात एका पीठाची स्थापना केली. त्याला वैराग्य पीठ अथवा वैराग्य सिंहासन असे नाव आहे. आंध्रप्रदेशात श्री शैल क्षेत्रातील श्री मल्लिकार्जुन ज्योतिर्लिंगातून अवतरलेल्या श्री पण्डिताराध्यांनी त्याच ठिकाणी स्थापिलेल्या धर्मपीठाचे नाव सूर्यपीठ अथवा सूर्य सिंहासन असे आहे. तशाच रीतीने काशी क्षेत्रातील विश्वेश्वर ज्योतिर्लिंगातून श्री विश्वाराध्यांनी अवतार घेऊन तेथेच एका धर्मपीठाची स्थापना केली. त्याला ज्ञानपीठ अथवा ज्ञान सिंहासन असे नाव आहे. आजही ते पीठ जंगमवाडी मठ या नावाने प्रसिद्ध आहे.

ही पंचपीठे अत्यंत प्राचीन असल्याचे अनेक ऐतिहासिक पुरावे उपलब्ध आहेत. अनादिकालापासून ह्या पीठांच्या परंपरेत अनेक आचार्य होऊन गेले असून आजपर्यंत त्यांची परंपरा अखडितपणे चालू आहे. या पंचपीठांची विस्तृत माहिती प्रस्तुत संपादकांच्या 'वीरशैव पंचपीठ परंपरे' या कन्नड ग्रथात मिळू शकेल.

वीरशैव धर्मातील बसवेश्वरांचे स्थानमान :

बाराव्या शतकात विजापूर जिल्ह्यातील बागेवाडी या गावी एका कम्मा ब्राह्मण कुलातील मादरस आणि मादलांबिका या दंपतीच्या उदरी श्रीबसवांचा जन्म झाला. त्यांनी वयाच्या आठव्या वर्षी आपला ब्राह्मणधर्मोचित उपनयन संस्कार करून घेण्यास नकार देऊन कूडल संगम क्षेत्रास प्रयाण केले. आणि तेथील सारंग हिरेमठ या उज्जयिनी सद्धर्म पीठाच्या शाखामठाचे पट्टाधिकारी श्री जातवेदमुनी शिवाचार्यांकडून वीरशैव धर्मोचित इष्टलिंगदीक्षा घेतल्याचा इतिहास प्रसिद्ध आहे. श्री बसवेश्वराना बाल्यावस्थेतच सनातन ब्राह्मण धर्मातील अनिष्ट रूढी आणि स्त्री-पुरुषांतील विषमता इ. जाणवल्यामुळे त्या धर्माविषयी तिरस्कार भावना निर्माण झाली होती. त्या अनिष्ट रूढी, अन्याय आणि विषमतेचा परिहार केवळ वीरशैव धर्माच्या प्रगत शिकवणुकीनेच होऊं शकेल या भावनेने श्री बसवेश्वरांनी ब्राह्मण धर्माचा त्याग करून वीरशैव धर्माची दीक्षा घेतली आणि पुढील काळात वीरशैव धर्माच्या अत्यंत प्रगत तत्त्वांचा समाजात हिरीरीने प्रचार केला. बसवेश्वरांनी बिज्जलाच्या साहाय्याने

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

राजकीय अधिकार प्राप्त झाल्यामुळे, वीरशैव धर्माची क्रांतिकारक तत्त्वे व्यवहारात आणण्याचे महान ऐतिहासिक कार्य केले. परंतु त्यांच्या या अलौकिक कर्तृत्वामुळे अलीकडील लोक त्यांनाच वीरशैव धर्माचे सस्थापक मानू लागले. वस्तुतः ते वीरशैव धर्माचे संस्थापक नसून धर्मजागृती करणारे समर्थ सुधारक होते, ही गोष्ट ध्यानी घेतली पाहिजे. दुसरे असे की, त्यांनी स्वतःच वीरशैव धर्माची दीक्षा घेतली होती हे स्पष्ट असल्यामुळे ते वीरशैव धर्माचे संस्थापक होते, असे मानणे सर्वस्वी चुकीचे होईल. अशा भ्रामक प्रचाराने लोकांनी आपली दिशाभूल होऊ देऊ नये. या विषयी वीरशैव धर्माचे सुप्रसिद्ध संशोधक लेखक डॉ. एस. सी. नंदीमठ यांनी आपल्या A Hand book of Virasaivism या ग्रथात पृ. २ वर म्हटले आहे.

"The darkness surrounding the early history of the Sect has led almost all scholars (Dr. Bhandasker excepted) to conclude that it was founded by Basava, the minister of Kalachuri King Bijjal (1162-1167 A.D.). However this is far from the truth, for none of the books on Virasaivism either in Kannada or in Sanskrit ascribe the foundation of the Sect to Basava."

(वीरशैव धर्माच्या धूसर इतिहासामुळे डॉ. भांडारकरांचा अपवाद वगळता बहुतेक विद्वानांचे असे मत झाले आहे की, या धर्मपंथाची स्थापना कलचुरी राजा बिज्जलाचा (इ. स. ११६२-११६७) प्रधान असणाऱ्या बसवेश्वरांनी केली. परंतु वस्तुस्थिती तशी नाही. कारण कन्नड अथवा संस्कृत अशा कोणत्याही ग्रथात बसवेश्वरानी या धर्मपंथाची स्थापना केल्याचा उल्लेख आढळत नाही.) या उताऱ्यावरूनही वीरशैव धर्मातील बसवेश्वराच्या स्थानमानाविषयी चांगली कल्पना येऊ शकेल. म्हणून वीरशैव धर्माचे संस्थापक श्री बसवेश्वर नसून त्याची स्थापना फार प्राचीन काळी पंचाचार्यांनी केलेली आहे, ही गोष्ट स्पष्ट होते.

वीरशैवांचे संस्कृत साहित्य :

पूर्वी सांगितल्या प्रमाणे वीरशैवांचे मूल साहित्य कामिकादि वातुलान्त असे अठ्ठावीस शैवागम हेच होय. वेद आणि उपनिषदांत वीरशैव सिद्धान्त आणि इष्टलिंगधारणा इत्यादींचे उल्लेख आलेले आहेत. त्यानतरच्या काळात व्यास महर्षी विरचित स्कंद, शिव, लिंग महापुराणांत प्रसंगानुसार वीरशैव सिद्धान्ताचे

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्रतिपादन केलेले आढळते. यामुळे वेद, आगम, उपनिषद आणि पुराणे हे वीरशैव सिद्धान्ताचे आधारग्रंथ म्हणविले जातात.

या नंतरचा वीरशैव सिद्धान्ताचे समग्र स्वरूप वर्णन करणारा सर्वप्रथम ग्रथ म्हणजे 'सिद्धान्तशिखामणी' हा होय. या ग्रंथा विषयी विस्तृत विवेचन पुढे करण्यात येईल. या शिवाय अगस्ती महर्षींनी लिहिलेला 'लघुसूत्रवृत्ती', आदिनीळकंठ शिवाचार्य विरचित 'ब्रह्मसूत्र नीळकंठ भाष्य' (आठवे शतक), ईशानगुरूचे 'रेणुकचम्पू', सिद्धनाथ शिवाचार्यांचे 'रेणुक विजय चम्पू' (दहावे शतक), श्रीपति पण्डिताराध्य विरचित 'ब्रह्म सूत्रावरील श्रीकरभाष्य', शिवानुभव शिवाचार्यांचे 'शिवाद्वैत दर्पण', श्रीमज्ज्योतिर्नाथांचे 'शैवरत्नाकर' (अकरावे शतक), नीळकण्ठ नागनाथाचार्यांचे 'वीरमाहेश्वराचार संग्रह' (१३वे शतक), वृषभ पण्डिताराध्याचे 'महानारायणोपनिषद भाष्य' (१४वे शतक), मायिदेवाचे 'अनुभवसूत्र' आणि 'विशेषार्थ प्रकाशिका', नंदिकेश्वर शिवाचार्यांचे 'लिंगधारण चंद्रिका', (१५ वे शतक), गुळूरु सिद्धवीरणाचार्यांचे 'अनादि वीरशैवसारसंग्रह' (१६ वे शतक), स्वप्रभानंद शिवाचार्यांचे 'शिवाद्वैत मंजिरी', श्री मरितोंटदार्यांचे 'वीरशैवानंदचंद्रिका', केळदी बसवभूपालाचे 'शिवतत्त्वरत्नाकर', जक्कणाचार्यांचे 'एकोत्तरशतस्थली', सोसले रेवणाराध्यांचे 'चोळ रेणुकसंवाद', गुरुराजकवीचे 'पण्डिताराध्य चरित्र', षडक्षर देवांचे 'भक्ताधिक्य रत्नावलि', षडक्षर मंत्री यांचे 'वीरशैवाचारप्रदीपिका', गुरुबसवांचे 'वीरशैवाचारसुधानिधी' (सर्व १७ वे शतक), उमचगी शंकर शास्त्रीचे ईश, केन, मुण्डक, सिद्धान्तशिखोपनिषदांचे वीरशैव भाष्य (२०वे शतक) इत्यादी शेकडो ग्रंथांतून वीरशैव सिद्धान्ताचे निरूपण केलेले आहे.

कन्नड, मराठी आदी भाषांतील साहित्य :

या शिवाय कन्नड भाषेत बाराव्या शतकातील बसवेश्वर, चन्न बसवेश्वर, अल्लम, अक्क महादेवी, सिद्धराम इत्यादीचे वचन साहित्य विपुल प्रमाणात उपलब्ध आहे. या सर्वांतून वीरशैव सिद्धान्त आणि आचार-धर्माचे स्वानुभवपूर्ण वर्णन आलेले आहे. मराठी भाषेतील विसोबखेचर कृत 'शडूच्छळ', (षट्स्थल) शांतलिंगांचे 'विवेकचिंतामणी', 'करणहसुगे' हे अनुवाद ग्रंथ, मन्मथ स्वामींचे परमरहस्य, गुरुगीता, ज्ञानबोध, अनुभवानंद व स्वयंप्रकाश, आणि अभंग वाङ्मय तसेच लिंगेश्वर, बसवलिंग, शिवदास, लक्ष्मण आदी वीरशैव संतांचे विपुल अभंग व अन्य

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्रकारचे साहित्य प्रसिद्ध आहे. या शिवाय तेलुगू आणि तमिळ भाषांमध्येही फार प्राचीन काळापासून अनेक प्रकारचे वीरशैव साहित्य प्रसिद्ध होत आले आहे.

वीरशैव साहित्यात सिद्धान्तशिखामणीचे स्थान :

वीरशैव सिद्धान्ताची तत्त्वे वेद, आगम, उपनिषदे, पुराणे आणि इतिहासादी ग्रंथांतून अधूनमधून प्रतिपादन केलेली असली तरी समग्र तत्त्वांचे एकत्र अवलोकन करावयाचे झाल्यास 'सिद्धान्तशिखामणी' शिवाय दुसरा प्राचीन ग्रंथ नाही. म्हणूनच हा वीरशैव धर्मग्रथ म्हणून मान्यता पावलेला आहे. वेदांतशास्त्राच्या प्रस्थानत्रयीत प्रसिद्ध असलेली श्रीमद्‌भगवद्गीता जशी सकल उपनिषदांचे सारस्वरूप आहे. तशा प्रकारे सिद्धान्तशिखामणी हा ग्रथ कामिकादिवातुलान्त अठ्ठावीस शैवागमांचे सारस्वरूप असा आहे.

श्रीकृष्णाने अर्जुनास केलेला उपदेश श्रीव्यास महर्षींनी श्रीमद्‌भगवद्गीतेच्या रूपाने जसा संग्रहीत केलेला आहे, तशाच प्रकारे श्री रेणुकाचार्यांनी अगस्त्य महर्षींना केलेला उपदेश श्री शिवयोगी शिवाचार्यांनी सिद्धान्तशिखामणी नामक या ग्रंथात संग्रहीत केलेला आहे, असे मरितोंटदार्यांच्या—

रेणुकागस्त्य संवाद निगमागम विश्रुतम्।
प्रदीपति गुप्तार्थमुद्धृत्य शिवयोगिराट्।।

या उक्तीवरून स्पष्ट होते. या ग्रंथाला 'रेणुकगीता' असेही म्हणतात. तरीही सिद्धान्तशिखामणी या नावानेच तो विशेष प्रसिद्ध आहे.

ग्रंथनाम रहस्य :

रेणुक अगस्त्य संवादात्मक अशा ग्रंथाला शिवयोगी शिवाचार्यांनी सिद्धान्तशिखामणी असे नाव देण्यामागील रहस्य असे की यापूर्वी सांगितल्या प्रमाणे कामिकादिवातुलान्त शैवागमाना सिद्धान्त असेही म्हणतात. या आगमांच्या उत्तर भागांत अर्थात् शेवटी वीरशैव सिद्धान्ताचे निरूपण आलेले आहे. अशा प्रकारे सिद्धान्त नामक शैवागमांच्या शेवटी आलेला सिद्धान्तच या ग्रंथात प्रतिपादिलेला असल्यामुळे याला सिद्धान्तशिखामणी असे नाव दिले आहे. हाच अभिप्राय श्री शिवयोगी शिवाचार्यांनी—

सर्वेषां शैव तन्त्राणामुत्तरत्वा निरुत्तरम्।
नाम्ना प्रतीयते लोके यत् सिद्धान्तशिखामणिः।।(सि. शि. १.३१)

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अशा शब्दांत व्यक्त केला आहे. एवढेच नव्हे तर सांख्य, योग, पांचरात्र, पाशुपत इ. सर्व मते वेदाचाच आधार घेऊन प्रतिपादन केली असल्यामुळे युक्तिप्रयुक्तीने कोणत्याही दर्शनाचे खंडन करू नये, या उदात्त भावनेने द्वैत अद्वैतादी मतांचा समन्वयात्मक असा सिद्धान्त या ग्रंथात प्रतिपादन केला असल्याने सर्वग्राह्य असा हा सिद्धान्त सकल सिद्धान्तांचा शिखामणी झाला आहे. असे सांगण्यासाठी श्री शिवयोगी शिवाचार्यांनी या ग्रंथाचे नाव यथार्थपणे 'सिद्धान्तशिखामणि' असे ठेवले आहे.

ग्रंथ आणि ग्रंथकर्त्याचा कालनिर्णय :

या ग्रंथाचे कर्ते श्री शिवयोगी शिवाचार्य यांनी या ग्रंथाच्या प्रथम परिच्छेदात १३ व्या श्लोकापासून २० व्या श्लोकांपर्यंत आठ श्लोकांतून आपल्या वंशाचे वर्णन केले आहे. त्या वरून असे समजते की, अति प्राचीन काळात आचार्य सिद्धांचे अग्रगण्य, शिवज्ञानमहौदधी असे शिवयोगी नावाचे पूर्वाचार्य होते. त्यांच्या वंशात शिवयोगींचे मूर्धन्य असे मुद्ददेव नावाचे आचार्य होते. प्रत्येक प्राण्याला आपल्या दर्शनाने आणि सदुपदेशाने मुद अर्थात् संतोष देत असल्याने त्यांना मुद्ददेव या नावाने प्रसिद्धी मिळाली होती. त्या मुद्ददेवाचार्यांना अत्यंत पवित्र, शिवसिद्धान्ताचा निर्णय करण्याचे सामर्थ्य असणारा सिद्धनाथ शिवाचार्य नावाचा एक पुत्र झाला. हा सिद्धनाथ शिवाचार्य विशिष्ट आचाराचा आणि अपारशिवज्ञानसपन्न असल्याने याला वीरशैव शिखारत्न अशा नावाने लोक ओळखत असत. या सिद्धनाथाला शिवयोगी नावाचा एक पुत्र झाला. शिवयोगाच्या सामर्थ्याने शिवानुभवाची प्राप्ती करून घेतलेल्या याला शिवयोगी हे नाव सार्थपणे शोभत होते.

ग्रंथोक्त वंशवर्णनावरून असे ध्यानी येते की ग्रंथकार श्री शिवयोगी शिवाचार्य प्राचीन शिवयोगी शिवाचार्यांचे पणतू, मुद्ददेव, शिवाचार्यांचे नातू आणि सिद्धनाथ शिवाचार्यांचे पुत्र होते. या पेक्षा अधिक त्यांच्या देशकालादिकाबद्दल कोणताही स्पष्ट असा उल्लेख या ग्रंथात् आढळून येत नाही. आजा आणि पणज्याचे नाव मुलाला आणि नातवाला ठेवण्याची पद्धत आजही रूढ असलेली दिसते. त्या प्रथेनुसार या ग्रंथाचे कर्ते आपल्या पणज्याच्या नावाने प्रसिद्ध होते असे स्पष्ट होते.

या वंशवर्णनात येणाऱ्या मुद्ददेव आणि सिद्धनाथ या नावांनी बहुतेक विद्वानांची फसगत केलेली असावी. इसवी सनाच्या

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सतराव्या शतकात झालेले संस्कृत घनपंडित श्री मरितोंटदार्य यांनी या ग्रंथाला तत्त्वप्रदीपिका या नावाची टीका लिहिलेली आहे. त्यांनी ग्रंथारंभी 'रेवणसिद्ध दृष्टिगर्भसंभूतः सिद्धरामेश्वर सप्रदाय प्रसिद्धः सकल निगमागम पारगः शिवयोगीश्वर इत्यभिधानवान्' या अवतरणिकांशात ग्रंथकार शिवयोगी शिवाचार्य हे श्री रेवणसिद्धेश्वरांच्या वरप्रसादाने जन्मलेले सोलापूरचे श्री सिद्धरामेश्वर यांच्या संप्रदायातील होत असे म्हटले आहे. मात्र हे म्हणणे योग्य दिसत नाही.

येथे अत्यंत सूक्ष्मपणे विचार करण्यासारखी गोष्ट अशी की शा. श. १०२० मध्ये सोलापूरचे श्री मुद्दगौडा आणि सौ. सुग्गलादेवी या दंपतीच्या पोटी जन्मलेल्या श्री सिद्धरामाचा विषय आणि ते श्री रेवणसिद्धेश्वराच्या वरप्रसादाने जन्मले असल्याची माहिती राघवांकाच्या 'सिद्धरामचारित्र्य' नावाच्या पुराणग्रथावरून समजते. श्री मरितोंटदार्यांनी सिद्धान्तशिखामणीची टीका लिहीत असताना कवीच्या वंशानुक्रमात येणारे मुद्ददेव हे नाव आणि त्याच्या मुलाचे नाव सिद्धनाथ असल्याचे पाहून मुद्ददेव म्हणजे मुद्दगौड आणि सिद्धनाथ म्हणजे सिद्धराम असे समजून त्या सिद्धनाथाचा पुत्र शिवयोगी शिवाचार्य असल्याने तो सोलापूरच्या सिद्धरामांचा पुत्र आहे अशी चुकीची समजूत करून घेतली. त्याच्या समजुतीप्रमाणे विचार केल्यास सिद्धान्तशिखामणीचा काल बाराव्या शतकापर्यंत पुढे येतो. परंतु मरितोंटदार्यांचा हा पक्ष अनेक कारणांनी सयुक्तिक ठरत नाही. तो कसा तर, मरितोंटादार्यांनी योजिलेला सिद्धरामेश्वर संप्रदाय या शब्दाचा अर्थ एकवेळ सिद्धरामाचा वंश असा जरी घेतला तरी सिद्धरामेश्वराच्या कोणत्याही पुराणात सिद्धरामेश्वरांना पुत्र असल्याचा उल्लेख येत नाही. सिद्धरामेश्वर हे अविवाहित शिवयोगी असल्याकारणाने त्यांना पुत्र असणे संभवत नाही. आणखी असे की शिवयोगी शिवाचार्यांचे पिता सिद्धरामेश्वर असते तर ग्रंथकाराने आपल्या पित्याचे नाव सिद्धराम असे लिहिण्याऐवजी सिद्धनाथ असे लिहिले नसते.

'तस्यासी नन्दनः शांतः सिद्धनाथाभिधः शुचिः' असे लिहिण्याऐवजी 'तस्यासी नन्दनः शांतः सिद्धरामाभिधः शुचिः' असे लिहिल्याने छंदोभंग होण्याचाही संभव नव्हता. इतकेच नव्हे तर

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सिद्धरामाच्या वंशात शिवयोगी शिवाचार्य या नावाची इतकी प्रसिद्ध व्यक्ती होऊन गेली असा उल्लेखही कोठे आढळत नाही.

आणखी एक महत्त्वाची गोष्ट अशी की सोलापूरच्या सिद्धरामांच्या पित्याचे नाव मुद्दगौडा असे होते, ते मुद्ददेव असे नव्हते. म्हणून नावाच्या अक्षरात किंचित साम्य पाहून अशा तऱ्हेचा संबंध भक्कम आधाराविना जोडणे योग्य ठरत नाही. एखादे वेळी मुद्ददेव हेच मुद्दगौड होत असा तर्क केला तरी सोलापूरच्या मुद्दगौडांच्या पित्याचे नाव सोमदेव असे असण्याऐवजी शिवयोगी असे आले असते. परंतु सिद्धराम पुराणात मुद्दगौडाच्या पित्याचे नाव सोमदेव असेच स्पष्टपणे आले आहे.

एखादे वेळी ग्रंथकाराचे मूळ पुरुष शिवयोगी हे सोलापूरचे सिद्धरामच असे गृहीत धरले तर तेही योग्य नव्हे कारण त्याची पुढील परंपरा मुद्ददेव-सिद्धनाथ आणि शिवयोगी अशी असल्याचा उल्लेखही कोठे सापडत नाही.

'सिद्धराम सप्रदाय' याचा अर्थ वंशपरंपरा असा घेण्याऐवजी शिष्य परंपरा असा घेतला तरी, तशी परंपरा असल्याचाही उल्लेख कोठे आढळत नाही. कारण सिद्धरामांचे शिष्य शिवयोगी या नावाचे कोणी होऊन गेले असा पुरावा अन्यत्र कोठेच उपलब्ध नाही. म्हणून ग्रंथकार शिवयोगी यांच्या वंश अथवा शिष्य परंपरेचा सोलापूरच्या सिद्धरामांशी कसलाही संबंध जुळू शकत नाही. एवढेच नव्हे तर शिवयोगी शिवाचार्यांनी शैवागम आणि शैवपुराणांचा जसा उल्लेख केलेला आहे, तशा प्रकारे त्यांनी बाराव्या शतकातील कोणत्याही शरणांच्या वचनांचा उल्लेख केलेला नसल्यामुळे हे शिवयोगी सिद्धरामेश्वर आणि बसवेश्वर याच्या पूर्वी होऊन गेले आहेत ही गोष्ट सिद्ध होते.

या सर्व दृष्टींनी विचार केल्यास शिवयोगी शिवाचार्यांचा पुत्र मुद्ददेव शिवाचार्य, मुद्ददेव शिवाचार्यांचा पुत्र सिद्धनाथ शिवाचार्य, सिद्धनाथ शिवाचार्यांचा मुलगा शिवयोगी शिवाचार्य अशी ही ग्रंथकाराची वंश-परंपरा सोलापूरच्या सिद्धरामेश्वराच्या वंश-परंपरेपेक्षा अत्यंत भिन्न असल्यामुळे शिवयोगी शिवाचार्य हे सोलापूरच्या सिद्धरामेश्वर संप्रदायाचे होते, असे श्री मरितोंटदार्यांचे मत पूर्णपणे तर्कशून्य असे दिसून येते यात कसलाही सदेह नाही.

सुप्रसिद्ध विद्वान वे. प. एन. आर. करिबसव शास्त्री यानी सिद्धान्तशिखामणी ग्रथाची तात्पर्यदीपिका ही कन्नड टीका लिहिली

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

आहे. त्यांनी त्या ग्रंथाच्या प्रस्तावनेत—'ह्या ग्रथाचे कर्ते श्री शिवयोगी शिवाचार्य पीठिका भागात आपला वंशानुक्रम सांगतात त्यावरून ते कोणत्या काळातील, कोणत्या देशातील याबद्दल स्पष्ट काही कळत नाही. त्यांना सोलापूरच्या सिद्धरामाचा पुत्र म्हणणे याला समंजसपणाचा, पटण्यासारखा आधार नाही. शिवाय हा ग्रंथ बसवादी शरणाच्या अवतारापूर्वीचा आहे' (पृ. ५) असे लिहून पूर्वी सांगितलेले श्री मरितोंटदार्यांचे विधान अनुचित असल्याचे सुचवून आपला योग्य आभिप्राय व्यक्त केला आहे.

श्री शिवयोगी शिवाचार्य आपली वंशपरंपरा सांगत असताना त्यांनी आपल्या आईचे नाव न सांगता केवळ पित्याचे, आज्याचे, पणज्याचे हीच नावे सांगितली आहेत. त्यावरून त्यांची गृहस्थ परंपरा नसून ती गुरुपरंपरा आहे असे म्हणावे लागते. परंपरेतील सर्वांना शिवाचार्य ही उपाधी असलेली पाहून ही गुरुपरंपरा असल्याचे स्पष्ट दिसून येते. त्यातून पुन्हा ही पुत्रवर्गी गुरुपरंपरा असली पाहिजे असेही म्हणावे लागते. पुत्रवर्गी परंपरेत येणारे गुरुवर्गाचे शिवाचार्य आपला वंशस्थ असणाऱ्या योग्य बटूला दीक्षा देऊन त्याला पुढे आपला उत्तराधिकारी शिवाचार्य करतात. ही परंपरा आजही प्रसिद्ध व प्रचलित आहे. त्या दृष्टीने पाहाता प्राचीन शिवयोगी शिवाचार्यांचा शिष्य मुद्ददेव शिवाचार्य त्या मुद्ददेव शिवाचार्यांचा शिष्य सिद्धनाथ शिवाचार्य, त्या सिद्धनाथ शिवाचार्यांचा शिष्य ह्या ग्रंथाचा कर्ता शिवयोगी शिवाचार्य असे म्हणण्यात कसलीही अडचण नाही असे आमचे मत आहे.

सिद्धान्तशिखामणीचा कालनिर्णय : श्री दासगुप्तांची दिशाभूल :

भारतीय तत्त्वज्ञानाचा इतिहास लिहिणारे श्री एस. एन. दासगुप्ता यांनी 'A History of Indian Philosophy' या नावाचा भारतीय तत्त्वज्ञानाचा इतिहास पाच भागांतून लिहिला आहे. त्यापैकी Southern Schools of Saivism या पाचव्या भागात वीरशैव दर्शनाचा इतिहास आणि साहित्याविषयी विवेचन आलेले आहे. तेथे सिद्धान्तशिखामणी ग्रंथाचा कालनिर्णय करीत असताना 'Siddhant Shikhamani refers to Basava and is itself referred to by Sripati. This shows that the book must have been written between the dates of Basava and Sripati (H.I.P.-P.44) (सिद्धान्तशिखामणी मध्ये श्री बसवाचा उल्लेख आहे आणि श्रीपति पंडितांनी आपल्या श्रीकर भाष्यात सिद्धान्तशिखामणीचा उल्लेख प्रमाणासाठी म्हणून केलेला आहे. या

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

वरून हा ग्रंथ श्री बसवेश्वरांच्या नतर आणि श्रीपति पंडिताच्या पूर्वी झालेला आहे.) असा अभिप्राय त्यांनी व्यक्त केला आहे. येथे सिद्धान्तशिखामणी हा ग्रथ श्रीपति पंडिताराध्यांपेक्षा पूर्वीचा आहे, असे श्री दासगुप्ताचे मत योग्य असले तरी सिद्धान्तशिखामणी मध्ये श्री बसवांचा उल्लेख असल्यामुळे तो श्री बसवांच्या नंतरचा असला पाहिजे हे म्हणणे भ्रामक आहे. श्री दासगुप्तांनी—'Even the Siddhanta Shikhamani refers to the view of Basava that those who decried Shiva should be Killed' (P.5) म्हणजे शिवनिंदा करणाऱ्यांचा अवश्य वध केला पाहिजे. असे सांगून त्याला प्रमाण म्हणून सिद्धान्तशिखामणीचा—

'अथ वीरभद्राचार—बसवेश्वराचारं सूचयन् भक्ताचारभेद प्रतिपादयति—

शिवनिन्दाकरं दृष्ट्वा घातयेदथवा शपेत्।
स्थानं वा तत्परित्यज्य गच्छेद्यद्यत्क्षमो भवेत्।।

(सि. शि. ९.३६)

हा भाग उद्धृत केला आहे. वरील उल्लेखामध्ये श्रीबसवेश्वरांचे नाव मूलग्रंथाचा भाग नसून ते त्या संस्कृत ग्रंथाची सस्कृत टीका लिहिणाऱ्या श्री मरितोंटदार्यांच्या अवतरणिकेत आलेले आहे.

वर दिलेल्या सिद्धान्तशिखामणीच्या श्लोकांत वीरशैवांच्या पंचाचारांपैकी गणाचाराचे स्वरूप .वर्णन केलेले आहे. ते असे- शिवभक्त असणाऱ्याने कोणाच्या मुखातून शिवनिंदा ऐकू नये. म्हणजे असे की कोणी आपल्यापुढे शिवनिंदा केली तर त्याचा वध केला पाहिजे अथवा वध करणे शक्य नसल्यास त्याला शाप द्यावा, अर्थात् आपल्या बोलण्याने त्याचे ताडन केले पाहिजे. तेही जमले नाही तर आपण स्वतःच ते स्थान सोडून निघून जावे, असा गणाचार आहे. हा अर्थ सांगण्यासाठी वरील श्लोकाची टीका लिहिताना हा विषय स्पप्टपणे समजावा या हेतूने श्री वीरभद्र आणि श्री बसवेश्वरांची नावे अवतरणिकेत आली आहेत.

तात्पर्य असे की दक्षब्रह्म शिवाचा अपमान करण्यासाठी यज्ञ करीत असताना शिवगण श्रीवीरभद्राने त्या यज्ञमडपात जाऊन यज्ञाचा विध्वंस करून, दक्षब्रह्माचा शिरच्छेद केला आणि त्याला एडक्याचे मुंडके लावले. तसेच बिज्जलाची राजधानी-कल्याण नगरीत शरणांची क्राती झाल्यावेळी राजसैनिक शिवभक्तांचा जागोजाग पाहाताक्षणी वध करीत असताना त्यांचा प्रतिकार करणे

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अशक्य झाल्यामुळे श्री बसवेश्वर त्या स्थानाचा त्याग करून आपले दीक्षागुरू श्रीजातवेदमुनी शिवाचार्यांचे निवासस्थान असलेल्या कूडलसंगमक्षेत्राकडे निघून गेले व तेथेच लिंगैक्य झाले, असा इतिहास आहे.

येथे श्री मरितोटदार्यांच्या अभिप्रायानुसार शिवनिंदकाचा वीरभद्राप्रमाणे संहार करणे हा वीरभद्राचार आणि तसे करण्यास असमर्थ असल्यास बसवेश्वराप्रमाणे आचरण करणे हा बसवाचार. पूर्वीच्या श्लोकाचा अभिप्राय लोकांना स्पष्टपणे कळावा या उद्देशाने श्री मरितोंटदार्यांनी अवतरणिकेत श्रीवीरभद्र आणि श्री बसवेश्वरांच्या नावांचा उल्लेख केला आहे. मात्र मूळ सिद्धान्तशिखामणीच्या श्लोकामध्ये बसवेश्वरांचा उल्लेख कोठे ही आलेला नाही.

अशा प्रकारे मूळ ग्रथ कोणता आणि त्याची टीका कोणती याचे ज्ञान नसल्यामुळे श्री दासगुप्तांचे 'Siddhant Shikhamani refers to Basava......' हे म्हणणे पाहून समीक्षकाना आश्चर्य वाटल्या वाचून राहाणार नाही. त्यामुळे सिद्धान्तशिखामणी हा ग्रंथ बसवोत्तर कालातील आहे असे श्री दासगुप्ताचे म्हणणे प्रमादपूर्ण आणि प्रमाणशून्यही आहे.

दासगुप्तांनी केलेला आणखी एक मोठा प्रमाद म्हणजे—श्री बसवेश्वरांनी लहान वयात आपले जन्मस्थान बागेवाडी सोडून (आपला मामा बलदेवाकडे), बिज्जलाची राजधानी असलेल्या कल्याण नगराकडे प्रमाण केले असा इतिहास आहे. हे सांगत असताना त्यांनी—

'From his native place Bagewadi he went to Kalyan near Bombay at a comparatively young age when Bijjal was reining there as King. (A.D. 1157-1167)." (A.H.I.P. Vol.V.P.42).

येथें बसवेश्वर आपल्या मामाकडे गेले ते कल्याण बिदरजवळ असल्याचे सांगण्याऐवजी मुंबई जवळचे कल्याण असे सांगितले आहे. दासगुप्तांचे हे वाक्य वाचल्यावर कोणाही इतिहासकाराला हसू आल्यावाचून राहाणार नाही. असे इतिहास आणि भौगोलिक वस्तुस्थितीचे ज्ञान नसलेले श्री दासगुप्तांचे विधान उपहासास्पद असून ते मुळीच मान्य होण्यासारखे नाही. इंग्रजी भाषेतील त्यांच्या या ग्रंथाचा प्रमाण म्हणून सदर्भ देणारे अनेक लेखक असू शकतील. त्या सर्वांनी या पुढे दासगुप्तांची ही चूक मान्य करून

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ती सुधारली पाहिजे आणि निःपक्षपाती विद्वानानी सिद्धान्तशिखामणी हा ग्रथ बसवेश्वराच्या नतरचा होय या चुकीच्या मताचे सर्वत्र खंडन केले पाहिजे.

इतकेच नाही तर श्री बसवेश्वरानी आपल्या–

'नी नोलिड्डत्ते पुण्य नी नोल्लदुदे पाप' (तुझी कृपा होणे हेच पुण्य, तुझी कृपा नसणे हेच पाप) या वचनात

प्रसादादेव सा भक्तिः प्रसादो भक्तिसंभवः।
यथैवाङ्कुरतो बीजं बीजतो वा यथाङ्कुरः।।

(सि. शि. ९,११)

हा सिद्धान्तशिखामणीतील श्लोक जशाचा तसा प्रमाण म्हणून उद्धृत केला आहे. अशा प्रकारे बसवेश्वरांनी स्वतः आपल्या वचनांत सिद्धान्तशिखामणीतील श्लोक प्रमाण म्हणून उपयोजिला असल्यामुळे सिद्धान्तशिखामणी हा ग्रथ बसवेश्वरापूर्वीचा होय असा अभिप्राय बेंगलोरच्या श्री च. सुंदरेशन या विद्वानाने व्यक्त केला असून तो योग्य आहे.

आणखी एका आक्षेपाचे खंडन :

सिद्धान्तशिखामणीच्या ताडपत्रावरील ग्रंथाच्या आरंभी 'श्रीगुरुबसवलिगाय नमः' असे शीर्षक असलेले पाहून हा बसवेश्वरानंतरचा ग्रंथ आहे असा निरर्थक वाद काही लोक घालतात. परंतु तो योग्य नव्हे. कारण सध्या उपलब्ध असलेल्या सर्व ताडपत्रावरील प्रतींच्या प्रारंभी तसे लिहिलेले असते तर 'तुष्टतु दुर्जनः' या न्यायानुसार ते मत स्वीकारता आले असते. परंतु धारवाड येथील कर्नाटक विश्वविद्यालयाच्या 'कन्नड अध्ययन पीठ' आणि 'कन्नड अनुसंधान संस्थान' या दोन्ही विभागांतील हस्तलिखित संग्रहात असलेल्या सिद्धान्तशिखामणीच्या ताडपत्रांवरील सहा प्रतींचे आम्ही स्वतः सूक्ष्मावलोकन केले असून त्यांपैकी केवळ दोनच प्रतींमध्ये (क्र. २९४, कन्नड अनुसंधान आणि क्र. १५६०, कन्नड अध्ययन पीठ) मात्र 'श्री गुरुबसवलिंगाय नमः' असा प्रारंभ आहे. उरलेल्या चार प्रतींमध्ये 'श्री गुरुरेवणसिद्धाय नमः' (क्र. १५०७, क. अ. पीठ), श्री गुरु निरंजन संगमाय नमः (क्र. २३४१ क. अ. पीठ), श्री कालहस्तीश्वराय नमः (क्र. २४६८, क. अ. पीठ) आणि श्री गुरुनाथाय नमः (क्र. २३७७, क. अ. पीठ) अशा प्रकारे भिन्न भिन्न शीर्षके आहेत. यावरून असे लक्षात येते की, ह्या सर्व प्रती मूळ ग्रथकार श्री

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

शिवयोगी शिवाचार्यांनी स्वतःच्या हस्ताक्षरात लिहिलेल्या नाहीत तर, उत्तरकालीन प्रतकारानी आपापल्या इष्टदेवताचे स्मरण-वंदन करून ग्रंथाच्या आरंभी त्या इष्टदेवतेचे नाव घातले आहे. केवळ त्यावरूनच सिद्धान्तशिखामणी हा ग्रंथ बसवेश्वरानतरचा होय असे म्हणणे इतिहासप्रज्ञाशून्यतेचे लक्षण असून खऱ्या इतिहासकाराला ते मान्य होण्यासारखे नाही.

श्रीकरभाष्याच्या आधाराने सिद्धान्तशिखामणीचा कालनिर्णय :

सिद्धान्तशिखामणी ग्रंथ बसवादिशरणापेक्षा प्राचीन होय हे सिद्ध झाले. तरीपण तो किती प्राचीन आहे याचा आता शोध घेऊ या. बादरायणाने लिहिलेल्या ब्रह्मसूत्रावर श्रीपति पंडिताराध्यानी शक्तिविशिष्टाद्वैत सिद्धान्त प्रतिपादक असे वीरशैव भाष्य लिहिले आहे. त्या भाष्यात अनेक ठिकाणी—

'पवित्रंते (ऋग्वेद ९-८३-१) इति ऋग्वेद मंत्रस्य—

ऋगित्याह पवित्रते वितत ब्रह्मणस्पते।
तस्मात् पवित्र तल्लिङ्गं धार्य शैवमनामयम्।।
दीक्षया रहितः साक्षान्नाप्नुयाल्लिङ्गमुत्तमम्।

इति सिद्धान्तशिखामणौ श्री रेणुकाचार्येण लिङ्गधारण परत्वेन निर्देशात्' (ब्र. सू. श्रीकर १.१.१.) असे सिद्धान्तशिखामणीतील श्लोक प्रमाण रूपाने अनेक ठिकाणी उद्धृत केले असल्यामुळे सिद्धान्तशिखामणी हा ग्रंथ श्रीपतिपंडिताराध्यापेक्षा पूर्वकालीन असल्याचे स्पष्ट होते.

काशीचे सुप्रसिद्ध विद्वान, भारतीय तत्त्वज्ञानाचे इतिहासज्ञ पं. बलदेव उपाध्याय यांनी स्वतः लिहिलेल्या 'भारतीय दर्शन' नावाच्या हिंदी ग्रंथात (पृ. ४६९) श्रीपतिपंडिताराध्य इ. स. १०६० मध्ये होते आणि त्यानी लिहिलेले श्रीकरभाष्य त्याच वेळी प्रसिद्धी पावले होते असे लिहिले आहे. इतकेच नव्हे तर श्री टी. एस. नारायण शास्त्री यांनी प्राचीन शिलालेखांच्या आधाराने श्रीपति पंडिताराध्यांचा काल इ. स. १०७२ असल्याचा निर्णय दिला आहे. (The Indian Review, Vol 16 May 1915, p. 5) पूर्वीचे काशी पीठाचे जगद्गुरू श्री १००८ वीरभद्र शिवाचार्य (चिदरे मठाचे श्री वीरभद्र शर्मा) महास्वामींनी आंध्रप्रदेशातील विजयवाडा येथील मल्लेश्वर देवालयातील पल्लकेत राजा कडून कोरविलेल्या शिलालेखाच्या आधाराने श्रीपति पंडिताराध्यांचा काल

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इ. स. १०७० (श्रीकरभाष्य चतुःसूत्री पीठिका पृ. ९) असल्याचे प्रतिपादन केले आहे.

श्री हयवदनराव यांच्या मताचा परामर्श :

बेंगलोरचे श्री सी. हयवदन राव (श्रीकरभाष्याचे संपादक) यानी श्रीकरभाष्याच्या 'मध्वाद्वैत क्षपणक तार्किकादयः (तार्किकादिभिः) जीवाना विभूत्वाङ्गीकारात् तन्निरासार्थमेतदधिकरण प्रारंभः (ब्रह्मसूत्र, श्रीकर, २-३-१८ पृ. २६३) ह्या अवतरणात आलेला मध्व शब्द पाहून श्रीकरभाष्य मध्वाचार्यांच्या नतरचे होय असे प्रतिपादन केले आहे-(श्रीकरभाष्याची इंग्रजी प्रस्तावना-पृ. ९५-९८, बेंगलोर प्रेस, १९३६) परंतु हे म्हणणे तर्कसंगत नाही. कारण येथे आलेला 'मध्व' शब्द प्रक्षिप्त होय. श्रीपति पंडिताराध्य-'उत्क्रान्ति गत्या गतीनाम्' (ब्र. सू. २-३-१८.) या बादरायण सूत्राचे भाष्य लिहिताना जीवात्मा विभु म्हणून मानल्यास तो लोकान्तर, देहान्तर, गमनागमन आणि उत्क्रान्ति करू शकत नाही, त्यामुळे आत्मा अणु परिमाण होय असे मान्य करून त्यांनी आत्म्याचे विभुत्व नाकारले आहे. येथे अद्वैत वेदान्ती आणि तार्किक आत्म्याला विभुरूप मानीत असल्यामुळे त्या मताचे निराकरण करणे संभवनीय असले तरी मध्वमताचे निराकरण या ठिकाणी असंमजस असल्याचे दिसते. कारण 'हेतूनाम् सकाशादणुरेव' (ब्र. सू. पूर्णप्रज्ञ-भाष्य, २-३-२०) तसेच 'अणोरपि जीवस्य सर्व शरीरव्याप्तिर्युज्यते;, यथा हरिचन्दन विप्लुष एकदेश पतितायाः सर्व शरीरव्याप्तिः' (ब्र. सू. पूर्णप्रज्ञ भाष्य, २-३-२४) अशा मध्वमतानुयायी भाष्यामध्ये आत्मा हा अणु परिमाण म्हणून मानलेला आहे. त्यामुळे उपरिनिर्दिष्ट श्रीकर भाष्याच्या अवतरणात आलेला मध्व शब्द अप्रासगिक व असमजस असल्यामुळे तो प्रक्षिप्त आहे, असे म्हणण्यास कसलाही सदेह नाही. तसेच प्रसिद्ध विद्वान श्री एम. जी. नजुण्डाराध्य यानी ताडपत्रप्रतीमध्ये 'मध्व' शब्द कोठेही आलेला नाही (श्रीकर भाष्य, भूमिका पृ. १२१ , म्हैसूर विश्वविद्यालय प्रकाशन १९७७) असे म्हटले आहे.

तशाच प्रकारे चिदरेमठाचे श्री वीरभद्र शर्मा (काशी पीठाचे ८४ वे जगद्गुरू) यांनी संपादित केलेल्या श्रीकरभाष्याच्या चतुःसूत्री (पीठिका पृ. १०, शैवभारती भवन, जंगमवाडीमठ, वाराणसी, १९५६) या ग्रंथात-'शंकर, रामानुजाच्या भाष्यांतील

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

वाक्ये जशा प्रकारे आढळतात, तसे मध्वभाष्यातील एक ही वाक्य त्यात आढळत नाही. येथे आलेले द्वैतमताचे खंडन हे मध्वाचार्यांचे द्वैतगतखंडन नसून ते प्राचीन काळातील द्वैतमताचे खंडन असावे' असे प्रतिपादन करून श्रीकर भाष्यातील 'मध्व' हा शब्द प्रक्षिप्त होय असे मानतात.

आणखी असे की, मध्वाचार्यांचा काल इ. सनाचे बारावे शतक होय असे डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन् (Indian Philosophy Vol.II P. 738) मानतात. श्रीपतिपंडिताराध्यांचा काळ अकरावे शतक होय असे या पूर्वीच सिद्ध झाले असल्यामुळे मध्वाचार्य हे श्रीपति पंडिताराध्यांपेक्षा अर्वाचीन होत असे श्री. टी. एस. नारायण शास्त्री (The Indian Review. Vol. 16, P, 5, May 1915) यानी पटवून दिले आहे. एकंदरीत सर्व विद्वानाच्या मताचा विचार केल्यास श्रीपति पंडिताराध्य अकराव्या शतकात झाले असून त्यांनी लिहिलेल्या श्रीकरभाष्यात प्रमाण म्हणून दिलेला सिद्धान्तशिखामणी हा ग्रंथ दहाव्या शतकापेक्षा प्राचीन होय हे निर्विवाद सत्य होय.

श्रीकण्ठ भाष्यापेक्षा सिद्धान्तशिखामणीचे प्राचीनत्व :

श्रीकण्ठशिवाचार्यांनी 'अविभागेन दृष्टत्वात्' (ब्र. सू. ४.४.४.) या ब्रह्मसूत्राच्या श्रीकण्ठभाष्यात 'मुक्तः शिवसमोभवेत्' (सि.शि. ७.१४) हा सिद्धान्त शिखामणीचा भाग प्रमाणरूपाने उद्धृत केला आहे. श्रीकण्ठशिवाचार्यांचा काल दहावे शतक असल्याचे विद्वानांनी मान्य केले आहे. या ग्रंथात सिद्धान्तशिखामणीतील श्लोक उदाहरण म्हणून दिलेला असल्याकारणाने सिद्धान्तशिखामणीचा काल दहाव्या शतकापूर्वीचा होय हे स्पष्टपणे सिद्ध होते.

आदिशंकराचार्यांपेक्षा सिद्धान्तशिखामणीये प्राचीनत्व :

गुरुवंशकाव्य, शिवतत्त्वरत्नाकरादि ग्रंथांमध्ये श्री रेणुकांचे अपरावतार असणाऱ्या श्री रेवणसिद्धांकडून आद्य शंकराचार्यांना चन्द्रमौलीश्वर लिंग आणि रत्नगर्भ गणपती दिले गेल्याचा उल्लेख आला आहे. तरीपण हा प्रसंग सिद्धान्तशिखामणीचे लेखक श्री शिवयोगी शिवाचार्यांना माहीत नसावा. एरव्ही ईशान्य गुरू, चतुर्मुख ब्रह्मरस, यांच्यासारखे ग्रथकार आपल्या रेणुकचम्पू, रेवणसिद्धेश्वर पुराणादि ग्रंथामध्ये श्री रेणुकाचार्य आणि श्री रेवणसिद्धांच्या चरित्रातील लीलांचे वर्णन करतात तशा प्रकारे शिवयोगी शिवाचार्यांनीही ग्रथाच्या शेवटी रेणुकाचार्यांनी बिभीषणासाठी तीन कोटी लिंगाची स्थापना केल्याच्या प्रसंगासह

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

श्री रेवणासिद्धांनी आदि शंकराचार्यांना चन्द्रमौलीश्वर लिंग प्रदान केल्याचा प्रसंगही वर्णिला असता. परंतु त्यांनी तो प्रसग उल्लेखिला नसल्यामुळे शिवयोगी शिवाचार्य हे आद्यशकराचार्यांपूर्वी होऊन गेले असावे असे रास्त अनुमान करता येते. यावरून सिद्धान्तशिखामणीचा काल इ. सनाच्या आठव्या शतकापूर्वीचा असला पाहिजे यात सशय नाही.

बौद्धमत आणि सिद्धान्तशिखामणी :

नागणूर बृहन्मठाध्यक्ष लिं. प. काशीनाथ शास्त्री याच्या मते-

येन रक्षावती जाता शिवभक्तिः सनातनी।
बौद्धादिप्रतिसिद्धान्तमहाध्वान्तांशुमालिना।।

(सि. शि. १,२३)

ह्या श्लोकात शिवयोगी शिवाचार्यांनी स्वतःला बौद्धादिनास्तिक मतांचा गाढ अंधःकार नाहीसा करणाऱ्या सूर्यासारखा असे म्हटले आहे. भारतात सुमारे दोन हजार वर्षांपूर्वी बौद्धमताचा प्रचार प्रबल झाला असल्यामुळे शिवयोगी शिवाचार्य आणि त्यांची कृती सिद्धान्तशिखामणी यांचा काळ दोन हजार वर्षांपूर्वीचा असला पाहिजे. (सि. शि. प्रस्तावना, पृ. ७ काशीनाथ ग्रथमाला म्हैसूर, १९३६)

लिं. श्री १००८ जगद्गुरू वागीश पंडिताराध्य शिवाचार्य महास्वामीजी यांच्या मते-'रेणुक संप्रदायी सिद्धान्तशिखामणीचे कर्ते शिवयोगी शिवाचार्य हे बौद्धमताचे विरोधक होते असे स्वतःच सांगत असल्यामुळे आणि शंकराचार्य व सिद्धरामेश्वराच्या काळातील रेवणसिद्धाचे चरित्र-वर्णन सिद्धान्तशिखामणी मध्ये केले नसल्यामुळे या शिवयोगी शिवाचार्यांचा काळ दोन हजार वर्षांपूर्वीचा असला पाहिजे.' (सि. शि. सत्यार्थ प्रकाश, पृ. २)

या सर्व विद्वानांच्या व महास्वामीजींच्या मतानुसार सिद्धान्तशिखामणी ग्रंथ दोन हजार वर्षापूर्वीचा असावा असे अनुमानच करता आले तरी निश्चित पुराव्यावरून तो आठव्या शतका इतका प्राचीन आहे असे खात्रीने म्हणता येते.

शिवयोगी शिंवाचार्यांचा देशविचार :

शिवयोगी शिवाचार्य आपल्या ग्रंथात कोठेही स्वतःच्या जन्मस्थानाचा उल्लेख करीत नाहीत. तरीही त्यांच्या आज्याचे नाव मुद्देव असल्यामुळे ते कर्नाटकातील अले पाहिजे. मुद्द, मुद्दु हे शब्द प्रीतिवाचक असून ते कन्नड भाषेत रूढ आहेत, असे

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

मत लिं. वे. पं. काशीनाथ शास्त्री यांनी व्यक्त केले आहे. निडुमामडीचे (डॉ. जचनि) श्री चन्नबसव देशिकेंद्र शिवाचार्य यांनी शिवयोगी शिवाचार्य हे कर्नाटकातील विजापूर जिल्ह्याच्या सालोटगी गावात प्राचीन काळी असलेल्या सस्कृत विद्यापीठाचे प्राचार्य होते अशी माहिती दिली आहे. सालोटगी गावात आजही त्या विद्यापीठाचे अवशेष दिसतात. तेथेच श्री शिवयोगी शिवाचार्यांची समाधी असल्याचेही सांगतात. या विषयी विद्वानांनी, संशोधक इतिहासज्ञांनी निष्पक्षपातीपणाने अधिक संशोधन करून एक योग्य आणि सर्वसंमत निर्णय समाजाला सांगितला पाहिजे.

सिद्धान्तशिखामणीच्या प्राचीन प्रती :

धारवाडच्या कर्नाटक विश्वविद्यालयातील कन्नड अध्ययन पीठाच्या हस्तलिखित ग्रंथभांडारात ताडपत्रावरील पाच हस्तलिखित प्रती उपलब्ध आहेत. त्यांचे क्रमांक या पूर्वी दिले आहेत. त्यापैकी २४६८ क्रमांकाची प्रत तेलुगू लिपीत असून उरलेल्या सर्व प्रती कन्नड लिपीत आहेत. त्यापैकी २३७७ क्रमांकाची प्रत कन्नड टीकेसह आहे. तेथील कन्नड अनुसंधान संस्थेमध्येही २९४ क्रमांकाची ताडपत्रावरील प्रत कन्नड लिपीतच आहे. या सर्व प्रतींचे आम्ही अवलोकन केले आहे.

त्याच प्रमाणे मद्रासच्या गव्हर्न्मेंट ओरिएन्टल मॅन्युस्क्रिप्ट लायब्ररीत ताडपत्रावरील हस्तलिखितांची सूची पाहिल्यावर Vol IX Book No. 5551, Vol. X Book No. 5119 आणि 5120 अशा एकूण तीन प्रती सिद्धान्तशिखामणीच्या ताडपत्रावरील तेलुगूलिपीत आहेत. भारतात अन्यत्र असलेल्या प्राचीन ग्रंथालयांत आणखी काही प्रती असू शकतील. त्यांचा शोध घेणे आवश्यक आहे.

सिद्धान्तशिखामणीचे टीकाकार :

सिद्धान्तशिखामणीच्या उपलब्ध टीकाग्रथामध्ये श्री मरितोंटदार्यांची प्रस्तुत तत्त्वप्रदीपिका टीका हीच आज तरी सर्वात प्राचीन टीका उपलब्ध आहे. ही टीका सतराव्या शतकातील आहे. कारण तिचे लेखक श्री मरितोंटदार्यांचा काळ इ. स. सतरावे शतक असल्याचे विद्वान मानतात. त्याच काळातील सोसले रेवणाराध्य यांनी सिद्धान्तशिखामणीची 'सिद्धान्तबोधिनी' नावाची कन्नड टीका लिहिली असल्याचे समजते. मरितोंटदार्यांच्या टीकेसह सिद्धान्तशिखामणीची पहिली प्रत म्हैसूर नगरनिवासी लिं. वाय. वीरसंगप्पा यांनी कन्नड लिपीत प्रसिद्ध केली. त्यानंतर लिं.

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पुण्यश्लोक आप्पासाहेब वारदानी तोच ग्रथ देवनागरी लिपीत आणि श्लोकाच्या मराठी भावानुवादासह दोन भागात इ. स. १९०५ मध्ये प्रकाशित केला.

म्हैसूरचे राजपडित लिं. एन. आर. करिबसवशास्त्री यांनी सिद्धान्तशिखामणीवर तात्पर्यदीपिका नावाची कन्नड टीका लिहिली आहे. तिच्यामध्ये त्यानी मूळ श्लोकार्थासह मरितोंटदार्यांच्या संस्कृत व्याख्यानाचे तात्पर्य आपल्या टीकेत लिहिले आहे. हा ग्रंथ इ. स. १९१९ आणि १९२१ अशा दोन आवृत्त्यांत म्हैसूरहून प्रकाशित झाला आहे.

लिं. वे. पं. काशीनाथ शास्त्री यांनी या ग्रंथावर भावप्रकाश या नावाची कन्नड टीका लिहिली आहे. ती म्हैसूरहून काशीनाथ ग्रंथमालेकडून अनेक वेळा पुनमुर्द्रित होऊन अत्यत लोकप्रिय झालेली आहे.

म्हैसूरनिवासी लि. एम. एल. नागण्णा यानी मरितोटदार्य विरचित तत्त्वप्रदीपिका व्याख्यानाचा कन्नडमध्ये अनुवाद करून कन्नड लिपीत इ. स. १९५९ मध्ये प्रकाशित केला आहे.

निडुमामडीचे डॉ. चन्नबसवराज देशिकेंद्र शिवाचार्य स्वामींनी सिद्धान्तशिखामणीच्या समग्र श्लोकाचा कन्नड पद्यानुवाद केला असून तो 'मणिमुकुर' या नावाने प्रसिद्ध झाला आहे. या शिवाय त्यानी 'जीवन सिद्धान्त' या नावाने सिद्धान्तशिखामणीवरील सहा कन्नड व्याख्याने इ. स. १९६९ आणि १९७० मध्ये निडुमामडी पुस्तक भांडार, बेंगलोर या प्रकाशन संस्थेतर्फे प्रथम प्रकाशित केली आहेत. त्याना विद्वन्मान्यता प्राप्त होऊन त्या आधारावर त्यांना म्हैसूर विश्वविद्यालयाची मानद डॉक्टरेट पदवी प्राप्त झाली आहे.

विजापूर शहरातील ज्ञानयोग आश्रमाचे श्री मल्लिकार्जुन स्वामी यानी कन्नड आणि मराठी भाषांमधून सिद्धान्तशिखामणी विस्तृत भावानुवादासह प्रकाशित केला आहे.

कर्नाटकातील चित्रदुर्ग निवासी 'निजगुण सिद्ध' या कविनामाने श्री. एस. एम. सिद्धय्या यांनी हा ग्रंथ कन्नडच्या भामिनी षट्पदी छंदातून अनुवादित केला असून तो 'रेणुक गीता' या नावाने प्रकाशिंत केला आहे. या ग्रंथाची काव्यशैली अत्यंत सरळ व सुबोध असल्यामुळे हा ग्रंथ कन्नडभाषिकांना सिद्धान्तशिखामणीच्या अभ्यासासाठी अत्यंत उपयुक्त आहे.

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

बेंगलोर विश्वविद्यालयातील संस्कृत विभागाचे प्रमुख डॉ. एम. कुमार स्वामी यांनी सिद्धान्तशिखामणीचा इंग्रजी भाषेत अनुवाद केला आहे. तो इ. स. १९६८ मध्ये 'रेणुक गीता' या नावाने प्रकाशित झाला आहे. सिद्धान्तशिखामणीचा हा समग्र अनुवाद नसून त्यातील एकशे एक स्थलापैकी प्रत्येक स्थलातील काही निवडक श्लोकांचा अनुवाद मात्र आहे.

काशी विद्यापीठातील कन्नड प्राध्यापक डॉ. शान्त शर्मा (श्री. ष. ब्र. श्रीपतिपण्डिताराध्य शिवाचार्य स्वामीजी, हिरेजेवरगी) हिरेमठ यानी सिद्धान्तशिखामणीवर 'भावमंजूषा' या नावाने हिंदी टीका लिहिली आहे. ती सध्या मुद्रणालयात असून लौकरच प्रकाशित होणार आहे.

सिद्धान्तशिखामणीच्या एकशेएक स्थलांवर प्रवचन शैलीतून लहान पुस्तिका 'सिद्धान्तशिखामणी प्रवचन प्रभे' या नावानी कन्नड भाषेतून लिहिण्याचा आम्ही पूर्वीच संकल्प सोडला असून त्यापैकी आतापर्यंत आठ किरणे गुळेदगुड्ड येथील अमरेश्वर मठाच्या वतीने प्रकाशित झाली आहेत. त्यांपैकी पहिल्या दोन पुस्तिकांचा अनुवाद मराठी भाषेतही झाला आहे. उरलेले भाग ही यथाशीघ्र प्रकाशित करण्याचा विचार आहे.

सिद्धान्त शिखामणीचे अंतरंग :

आतापर्यन्त सिद्धान्तशिखामणीच्या बहिरंगाच्या संदर्भात ग्रंथकाराचा वंश, काल, देशादिसंबंधी विस्तार पूर्वक विवेचन केले आहे. आता सिद्धान्तशिखामणीच्या अंतरंगाचे स्वरूप पाहू.

या ग्रंथामध्ये एकूण एकवीस परिच्छेद आहेत. त्याची एकूण श्लोकसख्या १३९५ आहे. पहिल्या चार आणि शेवटच्या एकविसाव्या परिच्छेदात चरित्रविषयक वर्णन आलेले असून उरलेल्या पाचव्या ते विसाव्या परिच्छेदापर्यंत एकशेएक अवांतर स्थलांमधून वीरशैव षट्स्थल सिद्धान्ताचे विस्तृत विवेचन आले आहे. या ग्रंथात आलेले ग्रंथकाराचे चरित्र या पूर्वी विवेचिले असल्यामुळे आता या ग्रंथाचे उपदेशक श्री जगद्गुरू रेणुकाचार्यांच्या अवतारादी घटनांबद्दल थोडा विचार करू या.

जगद्गुरू रेणुकाचार्यांच्या अवताराविषयी समीक्षा :

श्री जगद्गुरु रेणुक भगवत्पादांनी महामहिम अगस्त्य मुनींना उपदेशिलेला सिद्धान्तच सिद्धान्तशिखामणी ग्रंथात संग्रहीत केला आहे, याबद्दल पूर्वी सांगितलेच आहे. तर आता श्री रेणुकाचार्यांचा

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अवतार कधी झाला, कसा झाला याबद्दल विचार करणे योग्य होईल.

श्री रेणुकाचार्य, श्री दारुकाचार्य, श्री घंटाकर्णाचार्य, श्री धेनुकर्णाचार्य आणि श्री विश्वकर्णाचार्य हे पचाचार्य वीरशैव महामताचे संस्थापक होत असे आगमांत वर्णिलेले प्रसिद्ध आहे. हे आचार्य शिवाचे निकटवर्ती असे गणश्रेष्ठ होत. त्यापैकी श्री रेणुक आणि श्री दारुक हे दोघे शिवाचे अत्यंत निकटवर्ती असे प्रमथ होते. एकदा सभेत विराजमान असलेल्या शिवाने रेणुकावर संतुष्ट होऊन त्यांना तांबूल प्रसाद स्वीकारण्यासाठी बोलावल्यावर उल्हसित झालेल्या श्री रेणुक गणेश्वरांनी आपल्या जवळ असलेल्या श्री दारुक गणेश्वरांना ओलांडून आल्याचे पाहून श्री शिवाने 'हे रेणुका, माझा भक्त असणाऱ्या श्री दारुकाला ओलाडून आल्याबद्दल तू भूलोकात जन्म घेतला पाहिजेस' अशी आज्ञा केली (सि. शि. ३.७७). शिवाची ही आज्ञा ऐकून श्री रेणुक भयभीत होऊन 'हे करुणानिधी,मला भूलोकात मनुष्यजन्म घ्यायला नको या साठी अनुग्रह करावा' अशी प्रार्थना करू लागले. तेव्हा शिवाने 'रेणुका, भिऊ नकोस तुला प्राकृतरूपाने मनुष्य जन्म घ्यावा लागणार नाही. श्रीशैल्य पर्वताच्या उत्तर भागात त्रिलिंग देशाच्या कोलनुपाक क्षेत्रात मी सोमेश्वर नावाच्या लिंगरूपात वास्तव्य करून आहे. तेथे तू दिव्य देहधारी होऊन त्या शिवलिंगापासून अयोनिजरूपाने प्रादुर्भूत होशील. सोमेश्वर लिंगापासून उद्भवलेला तू वेदागमांना संमत, सर्व मानवांना हितकारक असा शिवाद्वैत नावाचा वीरशैव सिद्धान्त भूलोकात स्थापन करून माझा अतुल प्रताप आणि माझ्या भक्ताचा उज्ज्वल महिमा सर्वत्र प्रकट करणारा हो' (सि. शि. ३. ९३, ९४, ९६, ९७) असा आदेश दिला. परमात्म्याच्या या आदेशानुसार श्री रेणुक कोलनुपाक येथील श्री सोमेश्वर महालिंगातून दिव्य देहरूपाने प्रकट होऊन मलय पर्वतावर असलेल्या अगस्त्याश्रमाकडे आकाश मार्गाने जाऊन लोपामुद्रा सहित असलेल्या अगस्त्यऋषीकडून पूजा स्वीकारून श्री रेणुकानी त्यांना या एकोत्तर शत स्थलांचा सिद्धान्त विस्तारपूर्वक उपदेशिला.

लिंगोद्भव विमर्श :

परमात्मा असो की परमात्म्याचे गण असोत ते सर्वतंत्र स्वतंत्र असल्याकारणाने जनसामान्यां प्रमाणे त्यांनी मातापित्याच्या उदरातून

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जन्म घेतला पाहिजे असा निर्बंध नसतो. प्रल्हादासाठी श्री विष्णूने स्तंभामधून नृसिंहाचा अवतार घेतल्याप्रमाणे अथवा मार्कंडेयासाठी परमात्म्याने शिवलिंगातून प्रकट होण्याप्रमाणे श्री रेणुकाचार्य सोमेश्वर लिंगातून आविर्भूत झाले.

पूज्यपाद शिवलिंगातून आविर्भूत झाले असे ऐकल्याबरोबर अनेक लोकाना ही असंभाव्य आणि कपोलकल्पित कथा वाटते. त्यातले आणखी काही कुतर्कवादीजन जडवस्तू अशा शिवलिंगातून चेतन व्यक्ती उद्भवणे शक्य नाही असा तर्क करतात. तरी पण श्री जगद्‌गुरू रेणुकांचा लिंगावतार ही कल्पित कथा नसून विज्ञान निकषावर उतरणारी, लोकसंमत आणि शास्त्रसंमतही दिसते.

आपण पाहातो त्या जीवमात्रांमध्ये उद्‌भिज्ज, स्वेदज, अण्डज आणि जरायुज असे चार प्रकार आहेत. भूमीतून उत्पन्न होणारे वनस्पती आदी हे उद्‌भिज्ज, घामातून जन्मणारे उवा, लिखा इ. स्वेदज, अंड्यातून जन्मणारे पक्षी, सर्प इ. अडज आणि मातेच्या उदरातील जरायु नावाच्या पिशवीतून जन्मणारे पशू, मनुष्य इत्यादी जरायुज म्हणून ओळखले जातात. या शिवाय जड अशा दगडातून बेडुक, शेणातून किडेआदि कृमी जन्मल्याचे आपण नित्य व्यवहारात पाहातो. त्याचप्रमाणे चेतन अशा माणसाच्या शरीरातून जड अशी नखे, केस इ. उत्पन्न होतात. अशा प्रकारे लोकानुभवात जडापासून चेतन आणि चेतनापासून जडाची उत्पत्ती होत असल्याचे नित्य परिचयाचे आहे.

आता वैज्ञानिक आणि आध्यात्मिक रीतीने पर्यालोचन केल्यास जगातील प्रत्येक वस्तू चैतन्यमयच आहे. पूर्वी आपण वृक्षवेलींना जड समजत होतो. परंतु त्यांच्या ठिकाणीही मनुष्य प्राण्याप्रमाणे श्वासोच्छ्वास होत असतो असे वैज्ञानिकांनी सिद्ध केले आहे. विज्ञानाच्या विकासाबरोबरच वृक्षवेली श्वासोच्छ्वास करतात., इतकेच नव्हे तर त्यांनाही माणसाप्रमाणे मन आहे, त्यांनाही सुखदुःखाचा अनुभव येतो असे ज्ञात झाले आहे.

वृक्षवेली चेतन असू शकतील परंतु दगडमाती हे तरी जड आहेत ना, असे कोणी म्हटले तर तेही अज्ञानाचे प्रदर्शन मानले पाहिजे. सर्वत्र चेतनाचा साक्षात्कार झालेले अनुभवी 'सर्व खल्विद ब्रह्म', 'यासाक्षादपरोक्षाद् ब्रह्म' असे सर्वत्र चेतन असल्याचेच सांगतात. श्री जगद्‌गुरू रेणुकभगवत्पादांनी-

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पत्रशाखादिरूपेण यथा तिष्ठति पादपः।
तथा भूम्यादिरूपेण शिव एको विराजते।।
(सि. शि. १०.७०)

असे सिद्धान्तशिखामणांच्या 'शिवजगन्मयस्थला' मध्ये पृथिव्यादि पंचमहाभूते म्हणजे परमात्माच होय, असे प्रतिपादन केले आहे. जगाच्या कणाकणात खेळणारी चेतनशक्ती न अनुभवणाऱ्या व्यक्तीच जड म्हटल्या पाहिजेत, दगडमाती हे जड नव्हेत. म्हणून 'अत्यंतगूढचैतन्यं जडमव्यक्तमुच्यते' (सि. शि. ५.४३) म्हणजे अत्यंत गूढ अशा चैतन्याला लोक जड म्हणून ओळखतात, असे म्हणून श्रीजगद्गुरू रेणुक भगवत्पादांनी दगडमातीमध्ये गूढ अशा चैतन्याचे अस्तित्व प्रतिपादन केले आहे. बसवण्णांनीही असाच भाव आपल्या वचनात व्यक्त केला आहे- 'जेथे पाहावे तेथे तूच आहेस देवा, सर्व विस्ताराचे तूच रूप आहेस देवा, विश्वातील सर्व डोळे तुझेच आहेत. विश्वातील सर्व मुखे तुझीच आहेत. विश्वातील सर्वबाहू तुझेच आहेत, विश्वातील सर्व पाय तुझेच आहेत. हे कूडलसंगमदेवा!' या वचनात सर्वत्र चेतनाचे अस्तित्वच व्यक्त झाले आहे. अशारीतीने वैज्ञानिक आणि आध्यात्मिक विचाराच्या निकषावर घासून पाहिले असता जग हे सर्व चैतन्यमय असल्याचे सिद्ध होते.

पाषाणामध्ये असलेल्या या सुप्त चैतन्याचा महिमा जगाला दाखवून देण्यासाठी—

माघकृष्ण चतुर्दश्यामादिदेवो महानिशी।
शिवलिंगतयोद्भूतः सूर्यकोटिसमप्रभः।।

या प्रमाणवचनानुसार महाशिवरात्रीच्या दिवशी ज्योतिर्लिंगरूपामध्ये परशिव भूलोकात अवतरला आहे.

अशी लिंगे बाह्यरूपात पाषाणाची दिसली तरी ते पाषाण नव्हेत. म्हणूनच 'गुरूला सामान्य नर मानणारे, शिवलिंगाला पाषाण म्हणणारे आणि पादोदक प्रसादाला उच्छिष्ट समजणारे, या सर्वांना अंती नरक चुकणार नाही' अशा अर्थाचे वचन प्रसिद्ध कन्नड संतकवी सर्वज्ञाचे आहे.

वीर विरागिणी अक्कमहादेवी म्हणते-

लिंगदिंदुयिसी अंगविडिदिप्प पुरातनर
इंगितवनेन्यदु बेसगोंबिरय्य
अवर नडेय आगम अवर नुडिये वेद

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अवर लोकद मानवरेंदन्न बहुदे। अदेंतेंदोडे-
वृक्षाद्भवन्ति बीजानि तद्वृक्षे लीयते पुनः।
रुद्रलोक परित्यज्य शिवलोके भविष्यति।।
यंदुदागि
अंकोलेय बीजादिंदायित्तु वृक्षवु
आ वृक्षवु मरळि बीजदोळडगित्तु
आ प्रकारदिं लिंगद्बोळगइद्द पुरातनरू
आलिगद्बोळगे बेरसिदरु नोडिरय्य।

इंतप्प पुरातनरिगे नानु शरणेदु हुट्टुगेट्टनय्य, चन्नमल्लिकार्जुना.

(लिंगापासून आविर्भूत होऊन दिव्यदेहधारी झालेल्या या शिवगणाचा महिमा मी काय सांगू? त्यांचे आचरण हेच आगम आणि त्यांचे वचन हेच वेद. त्यांना सामान्यजन समजू नये. अकोलवृक्षाच्या बिया जशा वृक्षापासून निर्माण होऊन त्याच्यातच लय पावतात, तसे लिंगापासून उद्भवलेले शिवगण पुन्हा त्या लिंगातच विलीन होतात. अशाना शरण जाऊन मी माझे जन्मपाश तोडले आहेत, हे चन्नमल्लिकार्जुना!) अशा या वचनात पुरातन असे श्रीजगद्गुरु पंचाचार्य लिंगोद्भवरूपाने उदित होऊन पुन्हा लिंगात लीन झाल्याचा विषय अकोले बीज वृक्षाच्या दृष्टान्ताने समजावण्याचा प्रयत्न केला आहे. म्हणजे, बीजापासून वृक्ष जन्मून पुन्हा तो वृक्ष बीजामध्ये विलय पावल्या प्रमाणे आचार्य परमात्मस्वरूप लिंगातून उद्भूत होऊन पुन्हा त्या लिंगातच लय पावले आहेत असे मर्म सांगून त्यांचे आचरण म्हणजेच आगम आणि त्यांचे बोलणे हेच वेद होय अशा प्रकारे त्यांचा महिमा वर्णन करून, 'त्या पूज्यांना शरण जाऊन माझा भवरोग दूर झाल्याने 'माझ्या जन्माचे साफल्य झाले' अशी कृतकृत्यतेची भावना अक्क महादेवींनी व्यक्त केली आहे.

तसेच अनादि तोंटद सिद्धलिंगेश्वरांच्या-

आदियल्ली शिवतत्त्वदल्ली रेणुकनुदयनागदिद्दरे
इल्लि शिवलिंगदल्ली उदयवाद परियंतो
आ शिवनल्लिये हुट्टि शिवनल्लिये लयवाद
रेवणसिद्धेश्वरनु अनादिमुक्तनल्ल
अवांतर मुक्तन्यंब अज्ञानिगळिगे
नायक नरक तप्पदु

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(आदिकालात शिवतत्त्वातून श्री रेणुकांचा उदय झाला नसता तर पुन्हा शिवलिंगातून त्याचा प्रादुर्भाव कसा झाला असता? येथे शिवलिंगातून उद्भवून त्या शिवलिंगातच लय पावणारे श्री रेवणसिद्ध हे आदिमुक्त नसून अवातर लोक मुक्त होत असे म्हणणाऱ्या अज्ञान्याना नरकवास चुकणार नाही.) अशा वचनात आचार्य लिंगोद्भूत असल्याचे स्पष्टपणे प्रतिपादिलेले दिसून येते. इतकेच नव्हे तर सुप्रभेदागम, स्वयंभुवागम, वीरलैंग्योपनिषद इत्यादी आगमोपनिषदातूनही श्री जगद्गुरू पंचाचार्यांचा लिंगोद्भव विषय प्रतिपादन केला असल्यामुळे तो केवळ काल्पनिक नसून तो शास्त्रीय, वैज्ञानिक आणि यौगिकही झाला आहे.

ततोऽणिमादि प्रादुर्भवः कायसंपत् तद्धर्माभिघातश्च। (योगसूत्र ३. ४५ भोजवृत्ति) या भोजवृत्तीमध्ये योगसिद्धीमुळे पंचमहाभूते वश करून घेतलेल्या योग्याला अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ती, प्राकाम्य, ईशत्व आणि वशित्व अशा अष्टसिद्धी साध्य होतात असे म्हटले आहे.

हा योगसिद्ध पुरुष परमाणुप्रमाणे सूक्ष्माकार असो, आकाशाप्रमाणे विभुरूप असो, कापसाप्रमाणे हलके रूप असो अथवा पर्वताप्रमाणे प्रचड रूप असो, तो धारण करू शकतो. हा योगी जो जो संकल्प करतो ते सर्व सुलभरीतीने पूर्ण होतात. सकल प्राणी त्याला वश होतात. स्वेच्छा सकल्पाने शरीरधारण करणारा योगी सर्वतंत्र स्वतत्र होऊन सूक्ष्माकार प्राप्त करून अत्यत कठीण अशा वज्रामध्येही प्रवेश करू शकतो, असे पुढे प्रतिपादन केले आहे.

या विषयी विवेकानदानी—

'The yogis and saints of India can enter into diamond also by their fantastic Yoga power'.

असे सांगून योगाचे सामर्थ्य दाखवून दिले आहे. योगसामर्थ्याने सामान्यांना असाध्य वाटणारी कार्ये योगसिद्धांना सहजपणे साध्य होतात त्यामुळे सहजयोगी, परशिवाचे अपरावतार असे श्रीरेणुकाचार्यादि आचार्य लिंगातून उद्भूत होणे ही घटना असंभाव्य नव्हे. आपल्या देशातील योग, तंत्र आणि ज्योतिष इत्यादी गूढ विद्या आज लुप्त झाल्या असल्यामुळे पामर जनसामान्यांना महापुरुषांची दिव्य चरित्रे समजणे कठीण झाले आहे. म्हणूनच 'लोकोत्तराणां चरितं कोहि विज्ञातुमर्हति' असे

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

म्हटले आहे. अनुभविकाना या सर्व शास्त्रीय परिशीलनानंतर श्री रेणुकाचार्य लिंगोद्भूत असल्याचे स्पष्ट होईलच.

रेणुक किती जण ?:

वीरशैव आचार्य परंपरेत रेणुक, रेवण, रेवणसिद्ध आणि रेवणसिद्धेश्वर अशा नावाचे चार आचार्य प्रसिद्ध आहेत. ते सर्वजण भिन्न भिन्न काळातील होत. यांच्या पैकी श्री रेणुक है द्वापर युगात प्रकटले. त्यांनीच अगस्त्य महर्षींना शिवाद्वैत सिद्धान्ताचा उपदेश केला. तसेच बिभीषणाच्या प्रार्थनेमुळे श्रीलंकेमध्ये तीन कोटी शिवलिंगांची त्यांनी स्थापना केली. हा विषय सिद्धान्तशिखामणी ग्रंथावरून स्पष्ट होतो. त्यामुळे सिद्धान्तशिखामणीचे उपदेशक असे श्रीरेणुक अथवा श्री रेणुकगणेश्वर हे अगस्त्य आणि बिभीषणाचे समकालीन होते असे सिद्ध होते.

हरिभद्र सूरीच्या 'षड्दर्शन समुच्चय' ग्रंथाच्या व्याख्यानात मणिभद्र सूरींनी—

उत्पलः कारिका वेत्ति मंत्रवेत्ति प्रभाकरः।
वामनस्तूभय वेत्ति नकिंचिदपि रेवणः।।

(ष. स. पृ. ४)

असे उत्पल, प्रभाकर, वामनादि दार्शनिकाच्या पक्तीत श्री रेवणाचे नावही दिलेले आहे. या वरून श्री रेवण हे मणिभद्रसूरी याच्यापेक्षा प्राचीन अथवा निदान समकालीन तरी असलेच पाहिजेत असे म्हणावे लागते.

वीरशैव आचार्य परंपरेतील श्री रेवणसिद्ध हे आद्यशकराचार्यांचे समकालीन होते असे दिसून येते. त्यांनी आद्य शंकराचार्यांना चंद्रमौलीश्वर लिंग आणि रत्नगर्भ गणपती प्रदान केल्याची माहिती 'गुरुवश' काव्य आणि शिवतत्त्वरत्नाकरादि ग्रंथांतून आलेली आहे. श्रीशृंगेरी पीठाचे आस्थान विद्वान काशी लक्ष्मण शास्त्री यांनी आपल्या 'गुरुवंश' काव्यात—

श्री चन्द्रमौलीश्वर लिङ्गमस्मै सद्रत्नगर्भं गणनायकंच।
स विश्वरूपाय सुसिद्धदत्तं दत्वान्यगादीच्चिरमर्चयेति।।

(गुरुवंशकाव्यम्-सर्ग 3-33)

अशी दिलेली माहिती महत्त्वाची आहे. तात्पर्य असे की, आदिशंकराचार्य शृंगेरीहून कांचीकडे प्रयाण करीत असताना त्यांनी आपले प्रथम शिष्य सुरेश्वराचार्य यांना बोलावून रेवणसिद्ध

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

महायोग्याकडून प्राप्त झालेले चन्द्रमौलीश्वर लिंग आणि रत्नगर्भ गणपती हे त्यांच्या स्वाधीन करून त्यांची त्यांनी निरंतर पूजा करावी असा आदेश देऊन मग ते पुढे कांचीला गेले ही माहिती वरील श्लोकात आलेली आहे. गुरुवंश काव्याचे लेखक श्री काशी लक्ष्मण शास्त्र्यांनी स्वतःच त्या ग्रंथावर व्याख्यान लिहीत असताना 'सुसिद्ध दत्तं' या पदाचा अर्थ 'सुसिद्धेन रेवणसिद्ध महायोगिना' असा सुसिद्ध शब्दाचा अर्थ रेवणसिद्ध महायोगी असा स्पष्टपणे दिला आहे. हे रेवणसिद्ध दुसरे कोणी नसून ते वीरशैव आचार्य रेवणसिद्धच होत. या संबंधी भारतीय चरित्र कोश कर्ते श्री सिद्धेश्वरशास्त्री चित्राव यांनी आपल्या 'मध्ययुगीन चरित्र कोशा'त पृ. ७१४ वर श्री रेवणसिद्ध याच्याबद्दल 'रेवणसिद्ध—याने शकराचार्यांना चद्रमौलीश्वर लिंग दिले अशी प्रसिद्धी आहे. हे शंकराचार्य म्हणजे आद्य शंकराचार्य होत. हा जातीने जंगम होता.' अशी माहिती दिली आहे. या माहितीवरूनही श्री रेवणसिद्ध हे वीरशैव आचार्य होते या वस्तुस्थितीला पुष्टी मिळते.

काशीचे सुप्रसिद्ध इतिहासतज्ञ आचार्य बलदेव उपाध्याय यांनी 'शंकरदिग्विजय' या संपादित पुस्तकाच्या परिशिष्ट 'क' पृ. ८८ वर गुरुवंशकाव्याचा संदर्भ देऊन आद्यशकराचार्यांना रेवणसिद्धांनी चन्द्रमौलीश्वर लिंग प्रदान केल्याची माहिती दिली आहे.

केळदी बसव भूपाल याच्या 'शिवतत्त्वरत्नाकर' (पृ. १० प्रका- B. M. Nath & Co Vepery, Madras, 1927) या ग्रथाच्या प्रस्तावनेतही श्री रेवणसिद्ध परंपरेतील श्री चन्द्रमौलीश्वरलिग श्रीशंकराचार्यानंतर विद्यारण्यांनाही प्राप्त झाल्याचा उल्लेख आलेला आहे.

या रेवणसिद्धांनी वेदमंत्रावर अनेक वीरशैवपर भाष्ये लिहिली आहेत, असा उल्लेख वृषभेंद्रपंडितविरचित 'नारायणोपनिषद शैवभाष्य' (पृ. ६५) ग्रंथात सापडतो. त्या शिवाय हे अनेक तंत्रमंत्रविद्यादी मध्ये सिद्ध पुरुष होते अशीही माहिती मिळते. याचे चरित्र आणि महिमा या विषयी संस्कृत, तेलुगू, मराठी, कन्नड इत्यादी अनेक भाषांतील शेकडो ग्रथातून उल्लेख आहेत असे लिं. प.पू. ज. वीरभद्र शिवाचार्य महास्वामीजींनी लिहिलेल्या 'श्री रेणुकविजय' (तेलुगू) या ग्रथाच्या प्रस्तावनेत म्हटले आहे.

आणखी एक रेवणसिद्धेश्वर या नावाचे आचार्य इ.स.च्या अकराव्या शतकात होऊन गेले असल्याचे दिसून येते. तेही मोठे

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

महिमाशाली सिद्धपुरुष होऊन गेले. रेणावी, माचणूर, सोलापूर, मंगळवेढा, रटकल इत्यादी ठिकाणी त्यांची प्रसिद्ध स्मारकमंदिरे आहेत. त्यावरून त्यांचा संचार देशाच्या अनेक भागात होत होता असे दिसते. गोरक्षाचे गर्वहरण यानीच केल्याचे सांगतात. यांच्या आशीर्वादानेच सोलापूरच्या सिद्धरामेश्वरांचा जन्म झाला अशी ख्याती आहे.

अशा प्रकारे श्री रेणुक, रेवण, रेवणसिद्ध आणि रेवणसिद्धेश्वर हे वीरशैव आचार्य भिन्न भिन्न काळात होऊन गेले असले तरी उत्तरकालीन चरित्रकारानी या सर्वांच्या चरित्राची भेसळ केल्यामुळे त्या त्या आचार्यांच्या खऱ्या चरित्राविषयी लोकमानसात गोंधळ निर्माण झाला आहे. पचपीठापैकी रंभापुरी पीठाच्या परंपरेतील भिन्न-भिन्न काळात होऊन गेलेले हे सर्व आचार्य होत. ते सर्व एकाच पीठाच्या परंपरेतील आचार्य असल्याने लोकांनी त्यांच्या चरित्राविषयींची माहिती एकमेकात मिसळली आहे. यापैकी श्रीरेणुकाचार्य हेच रंभापुरी पीठाचे मूळ पुरुष होत आणि त्यानीच सिद्धान्तशिखामणीतील उपदेश अगस्त्य मुनीना उद्देशून केलेला आहे. म्हणून या ग्रंथात त्यांचा उल्लेख श्री रेणुक, रेणुकगणेश्वर अशा प्रकारे आला आहे.

अगस्त्यमुनींचा देशकालविचार :

सिद्धान्तशिखामणी या ग्रंथात श्री रेणुकाचार्यांनी अगस्त्यमुनींना उपदेश केलेला असल्यामुळे श्री रेणुकाचार्यांप्रमाणेच अगस्त्यमुनींच्या देशकालाविषयी विचार करणे अगत्याचे आहे. म्हणून उपलब्ध प्रमाणांच्या आधाराने त्याचे विवेचन करीत आहोत.

बंगाल देशचे O. C. गांगूली यांनी 'पूर्वकालिक दीपांतर संचारी अगस्त्य' या नावाचा लेख लिहिला असून त्याचा अनुवाद फ. गु. हळकट्टी यांनी कन्नडमध्ये केला आहे. त्यानुसार अगस्त्यमुनी प्राचीन काळी काशीमध्ये राहात असत असे समजते. पुढे ते विंध्यपर्वत ओलांडून दक्षिणापथाकडे गेले. मार्गात नासिकजवळ त्यानी एक आश्रम निर्माण केला. तेथे वातापि आणि इल्वल नावाच्या दोन असुराचा त्यानी केवळ संकल्पाने संहार केला. त्यानंतर अगस्त्यानी दक्षिणेकडील पांड्य राज्यात प्रवेश करून तेथे राजगुरू ही पदवी प्राप्त केली. तमिल भाषेत 'अगत्ति' या नावाचे व्याकरणशास्त्र लिहिले असल्याचे समजते. कन्याकुमारीच्या जवळ पोधीय नावाच्या पर्वतावर अगस्त्य अदृश्य होऊन काही दिवस

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तेथेच तप करीत राहिले. त्यानंतर ते सागर ओलांडून कंबोडिया देशात गेले. म्हणून त्यांनी सप्तसागरांचे प्राशन केले असे पुराणात वर्णन येते. कंबोडियाच्या अंकोरवाट येथील शिलालेखात 'आर्य देशातील अगस्त्य नावाचा ब्राह्मण कंबोडिया द्वीपात येऊन, योगसिद्धी प्राप्त केलेल्या अशा त्या ब्राह्मणाने आपल्या अलौकिक शक्तीने येथील भद्रेश्वर देवाचे पूजन केले' असा उल्लेख आहे.

जावा देशाच्या पूर्वभागातील दिनमय नावाच्या गावाजवळ एक शिलालेख खि. पू. ७६० मधील असून त्यात अगस्त्याची मूर्ती कोरलेली आहे. शिवाय त्याला 'शिवगुरु' आणि 'भट्टारक गुरु' अशा नावांनी संबोधिले आहे.

फ. गु. हळकट्टी यांच्या मते अगस्त्याची जन्मभूमी कर्नाटकाच्या चिक्कमंगलूर जिल्ह्यातील कलश नावाचे गाव असले पाहिजे. कारण आजही त्याठिकाणी त्यांच्या स्मारकाचे अवशेष सापडतात. म्हणूनच त्यांना कलशसभव किवा कुंभसभव अशा नांवानी ओळखतात. (श्री गांगुली व हळकट्टी यांच्या विचाराचा सार आम्हास श्री एम. जी. नजुंडाराध्यांनी श्रीकरभाष्याला लिहिलेल्या भूमिकेवरून उपलब्ध झाला आहे.)

श्री गागुली आणि श्री हळकट्टी या दोघांच्या विचारात अगस्त्यमुनींच्या जन्मस्थानाविषयी महदंतर दिसते. त्या दोघांच्या मतांचा समन्वय साधावयाचा असेल तर आमच्यामतें मूलतः अगस्त्य हे उत्तरभारताचेच असून त्यांनी दक्षिणेकडे विंध्यपर्वत ओलांडून चिक्कमंगलूर भागातील मलयपर्वताच्या जवळ कलश नावाच्या गावी आश्रम निर्माण केला असावा. तेथेच श्री रेणुकाचार्यांनी अगस्त्यमुनींना शिवाद्वैत सिद्धान्ताचा उपदेश केल्यामुळे लाक्षणिक अर्थाने त्यांना नवा जन्म प्राप्त झाला, या कल्पनेने पुढे त्यांना कलशसंभव (कलश गावात ज्यांना गुरूपदेशानंतर नवा जन्म प्राप्त झाला या अर्थाने) या नावाने संबोधू लागले असावेत. सिद्धान्तशिखामणीत मलय पर्वताचे व अगस्त्यांच्या आश्रमाचे वर्णन आले असले तरी कलश नावाच्या गावाचा उल्लेख आलेला नाही. तरीपण अगस्त्यमुनींचा आश्रम गावापासून दूर अरण्यात असल्यामुळे त्या गावाचा उल्लेख आला नसावा असे म्हणता येईल. जवळपास असलेल्या गावाच्या नावावरून त्यांना कलशसंभव असे नाव प्राप्त झाले असणे अशक्य नाही. या वरून अगस्त्यमुनी हे मूलतः उत्तरभारतातील

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

असून ते विंध्याचल ओलांडून मलय पर्वताकडे गेले असा निष्कर्ष काढणे संयुक्तिक होईल. त्याचप्रमाणे अगस्तीमुनींचा उल्लेख जावा देशातील दिनमय गावच्या ख्रि. पू. ७६० मधील शिलालेखात आलेला असल्यामुळे अगस्त्यांचा काळ त्यापूर्वीचा म्हणजे सुमारे तीन हजार वर्षा- पूर्वीचा असला पाहिजे असे म्हणता येईल.

अगस्त्यमुनीच्या देशकालाशिवाय त्यांच्या ग्रंथनिर्मिती संबंधी अधिक संशोधन होणे आवश्यक आहे. त्या दिशेने पंजाब राज्यातील जगरावो (जि. लुधियाना) येथील 'पंजाब संस्कृत अकाडमी' प्रयत्न करीत असून त्यांनी महर्षी अगस्त्यांच्या साहित्याचे संशोधन चालविले आहे, ही अत्यंत समाधानाची बाब आहे. त्यांच्या संशोधनाचा आपणांस पुढेमागे खूपच उपयोग होणार असल्यामुळे जिज्ञासूंनी त्या संस्थेशी संपर्क अवश्य साधला पाहिजे.

सिद्धान्तशिखामणीतील तात्त्विक विचार :

सिद्धान्तशिखमणी हा वीरशैव तत्त्वज्ञानाचा सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ आहे. या ग्रंथातील पाचव्या परिच्छेदापासून विसाव्या परिच्छेदापर्यंत एकूण सोळा परिच्छेदातून वीरशैवाच्या षट्स्थल सिद्धान्ताचे एकशेएक अवातर स्थलांच्या रूपाने विस्तृत विवेचन आले आहे. यांपैकी पहिल्या ४४ अंगस्थलामध्ये अंगषट्स्थल आणि त्यापुढील ५७ लिंगस्थलामध्ये लिंगषट्स्थलाचे प्रतिपादन केले आहे. ४४ अंगस्थलांत अंगपदवाच्य जीवात्मा गुरूनी उपदेशिलेल्या तत्त्वमार्गाची क्रमशः आध्यात्मिक साधना करीत भक्तस्थलापासून ऐक्यस्थलापर्यंत जीवन्मुक्त अवस्था प्राप्त करून घेतो. असा जीवन्मुक्त झालेला साधक पुढील ५७ स्थलांमध्ये येणाऱ्या लिंगषट्स्थलातून जीवन्मुक्ताची विशेष अवस्था प्राप्त करून घेत, संसारात राहूनही त्यापासून अलिप्त वृत्तीने आचरण करीत, शेवटी लिंगषट्स्थलातील ऐक्यस्थलाचे शेवटचे ज्ञानशून्यस्थल प्राप्त करून पाण्यात पाणी, अग्नीत अग्नी यांच्या प्रमाणे तो आपले मूलरूप अशा परशिवाशी समरस होऊन जातो. यालाच वीरशैव सिद्धान्तात लिंगांग सामरस्य असे म्हणतात.

ही स्थिती प्राप्त करून घ्यावयाची असल्यास साधकाने प्रथम द्वैतस्थिती, त्यानंतर द्वैताद्वैत स्थिती आणि शेवटी अद्वैत स्थिती प्राप्त करून घ्यावी लागते. म्हणून वीरशैव सिद्धान्त हा

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

द्वैताद्वैताचा समन्वय साधणारा सिद्धान्त होय, अशी त्याची प्रसिद्धी आहे. म्हणून भाष्यकार श्रीपतिपंडिताराध्यांनी-

द्वैताद्वैत मते शुद्धे विशेषाद्वैत संज्ञके।
वीरशैवैक सिद्धान्ते सर्वश्रुति समन्वयः।।

असे सांगून वीरशैवांची समन्वयदृष्टी व्यक्त केली आहे. भारतीय दर्शनांमध्ये काही दर्शने केवल द्वैतसिद्धान्त आणि काही केवल अद्वैत सिद्धान्त मानणारी आहेत. वेदमंत्रामध्ये द्वैत सिद्धान्ताचे प्रतिपादन करणारे तसेच अद्वैत सिद्धान्ताचेही प्रतिपादन करणारे मत्र दिसून येतात. द्वैत सिद्धान्ती द्वैत मत्राना मात्र प्रमाण मानून आणि अद्वैतमंत्राना औपचारिक समजून अद्वैताचे खडन करतात. त्या उलट अद्वैतसिद्धान्ती अद्वैतमत्रांना मात्र प्रमाण मानून आणि द्वैतमंत्रांना औपचारिक समजून द्वैताचे खंडन करतात. येथे द्वैत अथवा अद्वैत या दोन्हीपैकी कोणता तरी एक पक्ष घेऊन दुसऱ्या पक्षाचे खंडन केले तर वेदाच्या एका भागाचे खंडन केल्यासारखे होते. त्यामुळे सुदोपसुंद न्यायानुसार दोन्ही प्रकारचे मंत्र अप्रमाण होण्याचा प्रसंग येतो. म्हणून वीरशैवाचार्यांनी समन्वयदृष्टी ठेवून उभयविध मंत्र प्रमाण मानून द्वैताद्वैत प्रतिपादक अशा शक्तिविशिष्टाद्वैत सिद्धान्ताचे प्रतिपादन केले आहे. जीवाला बद्धावस्थेत अर्थात् संसार दशेत द्वैतस्थिती असल्यामुळे तेथे द्वैतमंत्रांची सार्थकता असून मुक्तावस्थेत अद्वैत स्थिती प्राप्त होत असल्यामुळे तेथे अद्वैतमंत्रांची सार्थकता मानली जाते. अशा रीतीने जीवात्म्याच्या अवस्थाभेदामुळे द्वैताद्वैत मंत्रांचा समन्वय केवळ वीरशैव सिद्धान्तातच झालेला आहे. म्हणून हा वीरशैवसिद्धान्त सर्वोत्कृष्ट सिद्धान्त होय असे म्हणावे लागते व अशा सर्वोत्कृष्ट सिद्धान्ताचे प्रतिपादन प्रस्तुत सिद्धान्तशिखामणी ग्रंथात केले असल्यामुळे हा ग्रंथ सर्व सिद्धान्ताचा शिखामणी शोभून दिसतो. त्यामुळेच या ग्रंथाला 'सिद्धान्तशिखामणी' असे नाव दिलेले आहे.

या ग्रंथात प्रामुख्याने वीरशैवांच्या दार्शनिक सिद्धान्ताचे म्हणजे भक्त, माहेश्वर प्रसादी, प्राणलिंगी, शरण आणि ऐक्य या षट्स्थलांचेच विस्तृत विवेचन आलेले असले तरी प्रसगानुसार गुरू, लिंग, जंगम, पादोदक, प्रसाद, विभूती, रुद्राक्ष आणि मंत्र या अष्टावरणांचे स्थूल आणि सूक्ष्म स्वरूपाचे विश्लेषण अत्यंत शास्त्रीय पद्धतीने निरूपिले आहे. त्या शिवाय लिंगाचार, सदाचार,

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

शिवाचार, गणाचार आणि भृत्याचार या पचाचाराचे स्वरूपही यामध्ये प्रतिपादिलेले असून प्रत्येक वीरशैवाने या आचाराचे काटेकोरपणे पालन केल्याने व अष्टावरणांच्या साह्यानेच त्याला षट्स्थलसोपानावरून शिव-ऐक्य स्थलापर्यंत पोचता येते. (जे वीरशैव सिद्धान्ताचे अंतिम लक्ष्य आहे). या प्रमाणे वीरशैव धर्माची वेदागमोक्त मूलतत्त्वे आणि आचारधर्म या सर्वांचे अत्यंत पद्धतशीर विवेचन या ग्रंथात आले असल्याकारणाने हा ग्रंथ वीरशैव धर्माचा एक प्राचीन आणि प्रमाणभूत ग्रथ होय असे मानले जाते. जिज्ञासू वाचकाना या ग्रंथाच्या अध्ययनाने वीरशैव धर्माचे तत्त्वज्ञान, आचारधर्म इत्यादीविषयी सपूर्ण माहिती प्राप्त होते.

सिद्धान्तशिखामणीचे साहित्यिक सौन्दर्य :

पारंपरिक पद्धतीने एखाद्या ग्रंथाचे साहित्यिक मूल्याकन करताना त्या ग्रंथातील आशय आणि अभिव्यक्ती या दोन्ही अगाचा विचार केला जातो. आतापर्यंत ग्रंथाच्या आशयासबंधी व्यापक विचार झाला. आता तो आशय ग्रंथकाराने ज्या पद्धतीने माडला आहे त्या पद्धतीचा अलकार, गुण, रस, शैली इत्यादीच्या संदर्भाने विचार करणे आवश्यक आहे. या सर्वांच्या समुच्चयाने ग्रंथाचे साहित्यिक सौंदर्य सिद्ध होते.

सिद्धान्तशिखामणीचे लेखक श्री शिवयोगी शिवाचार्य हे केवळ श्रेष्ठ दार्शनिक ग्रंथकारच होते असे नसून ते उत्कृष्ट कवीही होते याची प्रतीती ग्रंथाच्या अध्ययनाने अवश्य येते. श्री रेणुक आणि अगस्त्यमुनीच्या संवादरूपाने हा ग्रंथ लिहिलेला असून त्यांच्यातील प्रश्नोत्तरे वाचकाचीही उत्कण्ठा वाढविणारी तसेच जिज्ञासा-पूर्ती करणारी अशी आहेत. या ग्रंथाचा मूळ विषय तत्त्वदर्शनाचा असला तरी लेखकाच्या वर्णनचातुर्यामुळे तो काव्यगुणपूर्ण झाला आहे. या ग्रंथाची वर्णनशैली सहज व स्वाभाविक असून लेखकाने अलकार, गुण, रस आदींची योजना कौशल्यपूर्ण रीतीने केली असल्यामुळे साहित्यगुणांच्या दृष्टीनेही या ग्रंथाचे मूल्य श्रेष्ठ दर्जाचे ठरते.

अलंकार : सस्कृत काव्यशास्त्रात अलकाराचे विशेष महत्त्व आहे. त्यामुळे या ग्रथात अलकाराचे वैपुल्य दिसून येते. उदा. उपमा हा अलंकार विषयाचे स्पष्टीकरण आणि सौंदर्यवृद्धी या

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

दोन्ही दृष्टींनी उपयुक्त असल्याने त्याचा उपयोग अनेक ठिकाणी केलेला आहे.

उपमाः

तस्य वीरशैव शिवाचार्य शिखारत्नस्य नदनः।
अभवत् शिवयोगीति सिन्धोरिव सुधाकरः।।

(सि. शि. १-२०)

आपल्या वशाचे वर्णन करीत असताना योजिलेल्या या उपमा अलकाराचे साम्य कालिदासाच्या रघुवशातील प्रथम सर्गात आलेल्या-

तदन्वये शुद्धिमतिप्रसूतः शुद्धिमत्तरः ।
दिलीप इति राजेन्दुरिन्दु क्षीरनिधाविव।।

(रघु. १-१२)

या दिलीपाच्या वर्णनाशी असलेले दिसते तशाच प्रकारे-

नाभिस्थानावलबिन्या नवमौक्तिक मालया।
गंगयेव कृताश्लेष मौलिभागावतीर्णया।।

(सि. शि. १-२२)

या श्लोकात शिवयोगी शिवाचार्यांनी शिवाच्या गळ्यात नाभिप्रदेशापर्यंत रुळणाऱ्या नव्या मोत्यांच्या माळेला गंगेची उपमा दिली आहे. त्यामुळे शिवाच्या गळ्यातील मोत्यांची माळ पाहून गंगेने शिवाला आलिंगन दिल्यासारखा शिव दिसत असल्याचे सुदर वर्णन केले आहे. या दोन्ही उदाहरणात शिवयोगी शिवाचार्यांनी उपमा अलकारात योजिलेल्या उपमान आणि उपमेय यांच्या लिंगवचनाचीही योग्य योजना केली असल्यामुळे अलकारात कुठलाही दोष उरला नाही. यात कवीचे रचनाचातुर्य दिसून येते.

आता **मालोपमा** अलंकाराचे एक उदाहरण पाहावे-

अर्थहीना यथावाणी पतिहीना यथा सती।
श्रुतिहीना यथा बुद्धिर्भावहीना तथा क्रिया।।

(सि. शि. १६-१९)

या उदाहरणात भावहीन क्रिया ही अर्थहीन वाणीप्रमाणे, पतीविना सतीसारखी आणि श्रुतीच्या अध्ययनाविना असलेल्या बुद्धीसारखी होय अशा ओळीने तीन उपमा दिल्या असल्यामुळे येथे सुंदर मालोपमा अलंकार साधला आहे.

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्रतिवस्तूपमा :

परिज्ञाते शिवे साक्षात्कोवान्यमाभिकांक्षिति।
निधाने महति प्राप्ते कः काचं याचतेऽन्यतः।।

(सि. शि. १३. ६)

म्हणजे श्रुत्यादि प्रमाणांनी साक्षात् शिवच आपल्या अनुभवाला येत असताना अन्य देवाला कोण बोलावील? महत्त्वपूर्ण संपत्ती हस्तगत झाल्यावर काचेची अपेक्षा कोण करील? या श्लोकात शिवज्ञान प्राप्त झालेल्याला दुसऱ्या वस्तूची अपेक्षा नसते ही गोष्ट प्रतिवस्तूपमा अलकाराच्या साह्याने सुंदरपणे सांगितली आहे. तशाच प्रकारे पुढे—

शिवानंद समासाद्य को वान्यमपुतिष्ठते।
गंगामृतं परित्यज्य कः कांक्षेन्मृगतृष्णिकाम्।।

(सि. शि. १३.७)

या श्लोकातही गंगामृत प्राशन केलेली व्यक्ती जशी मृगजळाची अपेक्षा करणार नाही तशा प्रकारे शिवानंदाची साधना करणारा अन्य कशाचीही अपेक्षा करणार नाही हे प्रतिवस्तूपमा अलंकाराच्या साह्याने स्पष्ट केले आहे. वरील दोन्ही उदाहरणात प्रश्नार्थक रचना असून तेथेच त्या प्रश्नाचे उत्तरही सूचित केले असल्यामुळे प्रश्नालंकारही झाला आहे. शिवाय दुसऱ्या उदाहरणात गंगाजलाला अमृत म्हटल्याने रूपक अलंकारही होतो. अशा प्रकारे एकाच श्लोकात अनेक अलंकार साधल्याचीही अनेक उदाहरणे दिसून येतात.

परिकर : मलकोशे शरीरेऽस्मिन् महादुःख विवर्धने।
तडिदंकुरसंकाशे को वा रुच्येत पंडितः।।

(सि. शि. ५-७२)

या वर्णनात मानवी शरीरासाठी वापरलेली मलकोश, महादुःख विवर्धन, आणि तडिदंकुर संकाश म्हणजे विजेप्रमाणे क्षणिक ही विशेषणे सहेतुक आणि अर्थगर्भ असल्यामुळे येथे परिकर अलंकार झाला आहे.

रूपक : श्री शिवयोगी शिवाचार्यांनी ग्रंथाच्या प्रारंभीच रूपक अलंकाराची योजना केली आहे-

त्रैलोक्यसम्पदालेख्य समुल्लेखनभित्तये।
सच्चिदानंदरूपाय शिवाय ब्रह्मणे नमः।।

(सि. शि. १. १)

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

या ठिकाणी शिव या उपमेयावर त्रैलोक्य-संपदेचे चित्र रेखाटण्यासाठीची भिंत या उपमानाचा आरोप केल्यामुळे तसेच त्रिलोकावर संपदा आणि चित्राचा आरोप केल्यामुळे सुंदर रूपकालंकार झाला आहे.

ज्ञानचन्द्र समुद्भूता परमानंदचन्द्रिकाम्।
पशन्ति परमाकाशे मुक्तिरात्रौ महाधियः।।

(सि. शि. १९. १४)

जीवन्मुक्त झालेले महाज्ञानी आपल्या ठिकाणी उत्पन्न झालेल्या आंत्मज्ञानामुळे सदा आनंद अनुभवीत असतात, असे श्री शिवयोगी शिवाचार्यांनी या श्लोकात महाज्ञानी मुक्तिरूपी रात्री चिद्रूपरूपी आकाशात ज्ञानरूपी चंद्रापासून स्रवणारी परमानंदरूपी चंद्रिका पाहात असतात असे या सागरूपकाद्वारे सुंदर रीतीने वर्णिले आहे.

या शिवाय कैलास व अगस्त्याश्रमाच्या वर्णनप्रसंगी उदात्त तसेच अन्यत्र दृष्टांत, उत्प्रेक्षा, प्रश्न, श्लेष, सार इ. अनेक अर्थालंकारांची मनोहर योजना केलेली आढळते.

अर्थालंकाराप्रमाणे शब्दालकारांचाही उपयोग जागोजाग केला असल्याचे दिसून येते. वर्णाच्या पुनरावृत्तीमुळे नादमाधुर्य निर्माण करणारा अनुप्रास अलकार पुढील वर्णनात पाहावा-

कालिम्ना कालकूटस्य कण्ठनाले कलङ्कितम्। (सि. शि. ३-१९) या चरणातील क वर्णाची पुनरावृत्ती लक्षणीय आहे. तसेच-

ज्योतिर्लिंगानुसन्धानमान्तरं लिङ्गधारणम्। (सि. शि. ६.३९) या चरणातील अनुनासिकाचे पुनरावर्तन श्रुतिमधुर झाले आहे.

अशा प्रकारे या ग्रंथात विविध अर्थालंकार व शब्दालंकारांची योजना केलेली असूनही वर्णनात क्लिष्टता आलेली नाही. उलट सरळ सुबोध शैलीमुळे प्रसादमाधुर्यादी गुणांचा प्रत्यय येतो. ग्रंथाचा विषय तत्त्वज्ञान असला तरी प्रसंगानुसार शांत, भक्ती, शृंगार, अद्‌भुत, वीर, बीभत्स इत्यादी रसांच्या छटा निर्माण करण्यात कवीला यश लाभले आहे. संपूर्ण ग्रंथात कोठेही क्लिष्टता, कर्णकटुता, दूरान्वय, दुर्बोधता, संदिग्धता असे दोष दिसून येत नाहीत. एकंदरीत सिद्धान्तशिखामणी हा ग्रंथ तत्त्वज्ञानपर असला तरी श्रीशिवयोगी शिवाचार्यांनी आपल्या सुंदर शैलीने विषय अतिशय रोचक रीतीने प्रतिपादन केला आहे.

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

येथे प्रामुख्याने ग्रंथाच्या दार्शनिक सिद्धान्ताचे स्वरूप स्पष्ट करणे हा हेतू असल्यामुळे ग्रंथाच्या साहित्यिक सौंदर्याच्या केवळ काही वैशिष्ट्याचा निर्देश करता आला. या विषयाचा विस्तृत आणि चिकित्सक अभ्यास एखाद्या प्रबधाचा विषय होईल इतका महत्त्वाचा आहे, एवढाच उल्लेख करून या विषयाचा समारोप करीत आहोत.

या ग्रंथाच्या नव्या आवृत्तीचे प्रयोजन :

सिद्धान्तशिखामणी हा वीरशैवधर्माचा महत्त्वपूर्ण ग्रंथ असून तो इ. स. १९०५ मध्ये सोलापूर येथील लिं. अप्पासाहेब वारदाच्या 'वीरशैवलिंगीब्राह्मणधर्मग्रंथमाले' तर्फे मराठी अर्थासह प्रकाशित झाला होता. परंतु तो आता दुर्मिळ झाल्यामुळे पुन्हा प्रकाशित करावा असा विचार सोलापूर येथील 'वीरशैव साहित्य सशोधन मंडळा'च्या पदाधिकाऱ्यानी आमच्यापुढे व्यक्त केला. आम्हाला तो योग्य वाटला. तसेच या ग्रंथाचे सपादन आम्ही करावे व वाचकांच्या मनात वीरशैव धर्म व या ग्रंथासबंधी असलेल्या काही शंकांचे समाधान होईल अशी प्रस्तावना लिहावी अशी इच्छाही त्यांनी प्रदर्शित केल्यावरून आम्ही ती जबाबदारी स्वीकारली. आरंभी या ग्रंथाची यथामूल दुसरी आवृत्ती काढण्याची योजना होती. परंतु काही जिज्ञासू वाचकांच्या मतानुसार पूर्वीच्या ग्रंथातील मराठी अर्थ अत्यंत त्रोटक असल्यामुळे तो नव्याने लिहावा अशी मागणी आल्यावरून ग्रंथातील मूळ श्लोक व श्री मरितोंटदार्य यांनी त्यावर लिहिलेले व्याख्यान या दोहोंच्या भावानुवादासह नवी आवृत्ती प्रसिद्ध करावी असे निश्चित झाले.

भावानुवादाची जबाबदारी या ग्रंथाचे प्रकाशक आणि वी. सा. सं. मंडळाचे अध्यक्ष डॉ. चन्द्रशेखर कपाळे, कार्यवाह डॉ. शे. दे. पसारकर आणि वे. पं. शरणय्या शास्त्री, अचलेरी या विद्वानांनी स्वीकारून त्यांनी ती अत्यंत चोखपणे पार पाडली. सपादनाची जबाबदारी आम्ही स्वीकारली त्यावेळी गुळेदगुड्डच्या अमरेश्वरमठाचे आम्ही पट्टाधिकारी होतो. नतर काही महिन्यानी काशीच्या श्रीज्ञानसिंहासनावर आम्हांस पीठाधिकार प्राप्त झाला. या नव्या परिस्थितीत आमच्या अन्य जबाबदाऱ्या वाढल्या, काही बंधने पाळावी लागली. त्यामुळे अनुवादकांना काशीला बोलावून घेऊन येथेच त्यांच्याकडून अनुवादकार्य करवून घ्यावे लागले. अनेक प्रकारच्या अडचणी आणि गैरसोयी सहन करून डॉ.

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

चन्द्रशेखर कपाळे आणि वे. पं. शरणय्या शास्त्री येथे जगमवाडी मठात राहिले आणि त्यांनी अनुवादाचे बिकट काम मोठ्या जिद्दीने पूर्ण केले. ग्रंथाचे मुद्रणही अन्य ठिकाणच्या ऐवजी काशीतच करविणे इष्ट वाटल्यावरून येथील रत्ना प्रेसमधून ग्रंथ मुद्रित करवून घेण्याचे परिश्रमही स्वतः डॉ. चन्द्रशेखर कपाळे यांनी येथे राहून केले. मंडळाच्या सर्व कार्यकर्त्यांची कार्याची तळमळ आणि जिद्द कौतुकास्पद आहे. वीरशैव साहित्य संशोधन मंडळाचे हे पहिले प्रकाशन भाग्याचे ठरो आणि मंडळाकडून उत्तरोत्तर वीरशैव धर्मसाहित्याची अधिक सेवा घडो अशी इच्छा आम्ही व्यक्त करतो.

शेवटी संपादनाच्या संदर्भात आणखी एका गोष्टीचा उल्लेख करणे आम्हांस आवश्यक वाटते. सिद्धान्तशिखामणीच्या पहिल्या वारदप्रकाशित आवृत्तीत अवतरणिकेतील श्लोकसंख्येचा उल्लेख आणि प्रत्यक्ष श्लोकसंख्या यात अनेक ठिकाणी अंतर दिसून येते. बहुतेक ठिकाणी एखादा श्लोक कमीच असल्याचे आढळून आले. तरीपण आम्ही त्यात बदल केला नाही. कमी अधिक श्लोकांचा शोध पुढील संशोधकांनी घ्यावा. क्वचित् मूळ ग्रंथाचा श्लोक अवतरणिकेत घातला गेला आहे. विसाव्या परिच्छेदातील श्लोक १७ हा वारद प्रतीत अवतरणिकेत दिला आहे व त्यावरील व्याख्यान ही तेथेच आहे. तो श्लोक निराळा काढून आम्ही मूळ ग्रंथात जोडल्यामुळे त्या परिच्छेदातील श्लोकसंख्या एकाने वाढली आहे. सहाव्या परिच्छेदातही श्लोकसंख्या एकाने वाढली आहे. असे करीत असताना अर्थातच आम्ही सिद्धान्तशिखामणीच्या अन्य प्रतींचा आधार पाहूनच हा बदल केला आहे. त्यामुळे वारदप्रतीतील मूळची श्लोकसंख्या १३९३ ऐवजी आता १३९५ अशी झाली आहे.

सिद्धान्तशिखामणी ग्रंथावर संशोधनात्मक दृष्टिकोनातून आणखी खूपच काम होण्यासारखे आहे. अनेक हस्तलिखित प्रती मिळवून त्यांवरून चिकित्सक पाठशुद्ध प्रत तयार करण्याची योजना विचाराधीन आहे. ग्रथातील अवतरणांची संदर्भसूची तसेच श्लोकार्धसूची या तर सिद्ध होत आल्या आहेत. या ग्रंथाचे प्रकाशन अतिशय घाईने होत असल्यामुळे इच्छा असूनही त्या सूचींचा समावेश या ग्रंथात करता आला नाही. अभ्यासकांच्या

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सोयी साठी लौकरच त्या सूचीसह ग्रथाच्या काही प्रती उपलब्ध होतील.

सिद्धान्तशिखामणी हा ग्रंथ अतिशय संदर्भसमृद्ध आहे. या ग्रंथात आलेल्या वेद, उपनिषद, आगम, पुराण इत्यादीतील अनेक अवतरणाचे मूळसंदर्भ शोधण्याचे किचकट काम करून संदर्भसूची आणि श्लोकार्धसूची तयार करण्याच्या कामी काशी येथील तंत्रसाहित्याचे सुप्रसिद्ध संशोधक व अभ्यासक पंडित व्रजवल्लभ द्विवेदी यांचे अमोल साहाय्य लाभले असून आम्ही हाती घेतलेल्या अनेक महत्त्वपूर्ण साहित्यिक प्रकल्पांमध्ये त्यांचे सहकार्य लाभणार आहे हे नमूद करण्यात आम्हांस आनंद वाटत आहे.

सिद्धांतशिखामणीची ही मराठी भावानुवादासह प्रसिद्ध होत असलेली आवृत्ती लोकप्रिय होईल असा विश्वास वाटतो. महाराष्ट्रातील प्रत्येक वीरशैवाला हा ग्रंथ सुलभ व सुबोध व्हावा या उद्देशानेच या ग्रंथाचे संपादनकार्य आम्ही स्वीकारले. या ग्रंथाचे महत्त्व जाणून प्रत्येक मराठी भाषिक वीरशैवाने आणि जिज्ञासू वाचकांनी या ग्रंथाचा अभ्यास आवर्जून करावा. त्यामुळे सर्व वाचकांना श्रेष्ठ आत्मिक सुख आणि शांती लाभावी हे आशीर्वाद.

जंगमवाडीमठ, काशी
दि. १२-६-१९९०

इत्यनन्त शिवाशिषः

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

विषयानुक्रमणिका.

पृ.

परिच्छेद १

शिवपार्वतीनमस्काररूप मंगलाचरणाचे कथन................................ १
शिवयोगिवंशानुगत आचार्यांचे प्रकटन.. ७
ग्रंथ कर्त्याच्या नामाची प्रशंसा व या ग्रंथाच्या अवतारक्रमाचे निरूपण.................................... ९

परिच्छेद २

पार्वतीपरमेश्वरनमस्काररूप मंगलकथन.. १४
जगाच्या सृष्टीचा क्रम सांगण्यासाठी प्रथम परवस्तूच्या स्वरूपाचे कथन........................ "
जगत्सृष्टिप्रकारकथन...................... १६
जगाची सृष्टी करावयासाठी आधी ब्रह्मदेवास उत्पन्न करून त्याला शंकराने सर्व विद्यांचा उपदेश केला.. १९
जगत्सृष्टी करण्याचा उपाय मला सांगा असा प्रश्न ब्रह्मदेवाने शंकरास केला. २०
जगत्सृष्टी करण्याचा उपाय ब्रह्मदेवास शंकराने सांगितला. २१
सष्टी करण्याचा तो उपाय न समजल्यामुळे सष्टी प्रत्यक्ष करून दाखवा मग मी सष्टी करतो, असे ब्रह्मदेवाने विचारल्यावरून परमेश्वराने प्रमथांची सष्टी करून दाखविली.................................. २२
प्रमथांच्या सृष्टीमध्ये रेणुक दारुकांची उत्पत्ती सांगून त्यांच्या माहात्म्याचे वर्णन केले.. २३

परिच्छेद ३

शिवयोगी अशा रेणुकाचार्याचे भूलोकावतरण सांगावयाकरिता प्रथम कैलासाचे वर्णन. २५
सिंहासनावर बसलेल्या परमेश्वराचे वर्णन.. २७
परमेश्वराच्या वामांकी असलेल्या पार्वतीचे वर्णन. ३१
देवांनी केलेल्या शिवसेवेचे वर्णन. .. ३४
प्रमथगणांचे वर्णन. ३७
वसिष्ठादिमुनींनी केलेल्या शिवसेवेचे वर्णन. ३९
परमेश्वराच्या राजव्यापाराचे दर्शन. "
श्रीरेणुकगणेश्वरास शिवभक्तीचे महत्त्व सांगितले. ४१
दारुकगणेश्वराचा अपमान केल्यामुळे त्या दोषाचा परिणाम भोग, असे श्रीरेणुकगणेश्वरास सांगितले...................................... ४२
जन्म घेण्यासाठी भ्यालेल्या श्रीरेणुकाने शिवाची प्रार्थना केली. ... ४४
स्तोत्र करीत असलेल्या श्रीरेणुकगणेश्वरास समाधानपर वाक्य कथन केले. ४५

परिच्छेद ४

श्रीरेणुकगणेश्वराच्या स्वरूपाचे निरूपण...................................... ४८

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

मर्त्य लोकास आलेल्या श्रीरेणुकास 'तू कोण आहेस' असा प्रश्न लोकांनी केला, नंतर त्यांना उत्तर देत देत रेणुकाने मलयाचलाला प्रयाण केले. ५०
मलयपर्वताचे वर्णन. ५१
अगस्त्याश्रमाचे वर्णन. .... "
अगस्त्यमुनीचे वर्णन. ५३
आपल्या आश्रमात आलेल्या रेणुकाची पूजा अगस्त्याने केली. ५५
कुशलप्रश्नपूर्वक अगस्त्याचे वर्णन श्रीरेणुकाने केले. ५७
श्रीरेणुकाचार्याच्या दर्शनाने प्राप्त झालेल्या आपल्या सौभाग्याचे वर्णन अगस्त्याने केले. ५८
वेदालाही समत असलेला शैवसिद्धांत आम्हांस साग, अशी प्रार्थना अगस्त्याने श्रीरेणुकास केली.. ६०

परिच्छेद ५

प्रथम मंगलाचरण करून शैवसिद्धांत अगस्त्यास सांगावयास श्रीरेणुकाने आरंभ केला. ६२
शैवसिद्धांताचे आधिक्य प्रतिपादन करण्यासाठी इतर सिद्धांत पुष्कळ आहेत, असे सांगणे. ६३
सिद्धांतग्रंथांच्या नामाचे प्रतिपादन करून त्या ग्रंथाला प्रामाण्य सिद्ध करून दाखविले. ६४
शिवाने सांगितलेले सिद्धांत नांवाचे शैवतंत्र वेदाप्रमाणे प्रमाणभूत आहे, असे सांगणे. ६६
सिद्धांताख्य शिवागमांमध्ये वीरशैव मत श्रेष्ठ आहे असे सांगणे. ६७
वीरशैवपदाचे निर्वचन. ६८
वीरमाहेश्वर शब्दाचे निर्वचन. ६९
वीरशैव वीरमाहेश्वर शब्दाचे निर्वचन.. "
वीरशैवभेदनिरूपण. ७२
स्थलक्रमनिरूपण. .... "
भक्तस्थलाचे व त्याच्या अवांतरस्थलाचे निरूपण. ७३
पिंडादी भक्तस्थल व अवांतर स्थल मिळून १५ आहेत, असे वर्णन करणे.. ७४
एकोत्तरशतस्थलांमध्ये मुख्य अशा पिंडस्थलाचे निरूपण. ७५
पिंडज्ञानस्थलनिरूपण. ९०
संसारहेयस्थलनिरूपण. ९६

परिच्छेद ६

दीक्षालक्षण व गुरुकारुण्यस्थलनिरूपण.. १०३
लिंगधारणस्थलनिरूपण. ११०

परिच्छेद ७

भस्मधारणस्थलनिरूपण. १२६
रुद्राक्षधारणस्थलाचे निरूपण. १४०

परिच्छेद ८

पचाक्षरीजपस्थलाचे निरूपण. १४९

परिच्छेद ९

भक्तमार्गक्रियास्थलाचे निरूपण. १७३
उभय (गुरुलिंगोभय) स्थलाचे निरूपण.. १९१
त्रिविध (गुरु लिंग जगम) संपत्तिस्थलाचे निरूपण. १९४
चतुर्विधसारायस्थलाचे निरूपण. १९७
सोपाध्यादि दानत्रयस्थलांचे निरूपण... २०१

परिच्छेद १०

भक्तस्थलाचे निरूपण झाल्यानंतर माहेश्वरस्थलाचे निरूपण. २०८
लिंगनिष्ठास्थलाचे निरूपण. २१४
पूर्वाश्रयनिरसनस्थलाचे निरूपण. ... २१७
सर्वाद्वैतनिरसनस्थलाचे निरूपण. २२१
शिवलिंगामध्ये शिवाह्वाननिरसन स्थलाचे निरूपण. २२४
अष्टमूर्तिनिरसनस्थलाचे निरूपण. . २२५
सर्वगत्वनिरसनस्थलाचे निरूपण. ... २२९
शिवजगन्मयस्थलांचे निरूपण. २३१

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भक्तदेहिक लिंगस्थलाचे निरूपण. .२३६

परिच्छेद ११

प्रसादिस्थलाचे निरूपण. २४०
गुरुमाहात्म्यस्थलाचे निरूपण. २४५
लिंगमाहात्म्यस्थलाचे निरूपण. २४७
जंगममाहात्म्यस्थलाचे निरूपण. २५१
भक्तमाहात्म्यस्थलाचे निरूपण. २५५
शरणमहत्त्वस्थलाचे निरूपण. २६०
प्रसादमहत्त्वस्थलाचे निरूपण. २६३

परिच्छेद १२

प्राणलिंगिस्थल समजून घेण्याकरिता अगस्त्याने प्रश्न केला. त्यावर श्रीरेणुकाने उत्तर दिले. २६८
प्राणलिंगार्चनस्थलनिरूपण. २७३
शिवयोगसमाधिस्थलनिरूपण. २७५
लिंगनिजस्थलनिरूपण. २८१
अंगलिंगस्थलनिरूपण. २८५

परिच्छेद १३

शरणस्थलनिरूपण. २८९
तामसनिरसनस्थलनिरूपण. २९३
निर्देशस्थलनिरूपण. २९७
शीलसंपादनस्थलनिरूपण. ३००

परिच्छेद १४

ऐक्यस्थलनिरूपण. ३०४
आचारसंपत्तिस्थलनिरूपण. ३१०
एकभाजनस्थलनिरूपण. ३१५
सहभोजनस्थलनिरूपण. ३१८

परिच्छेद १५

दीक्षागुरुस्थलनिरूपण. ३२४
शिक्षागुरुस्थलनिरूपण. ३२८
ज्ञानगुरुस्थलनिरूपण. ३३२
क्रियालिंगस्थलनिरूपण. ३३५
भावलिंगस्थलनिरूपण. ३३८
ज्ञानलिंगस्थलनिरूपण. ३४२
स्वयस्थलनिरूपण. ३४४
चरस्थलनिरूपण. ३४७
परस्थलनिरूपण. ३४९

परिच्छेद १६

क्रियागमस्थलनिरूपण. ३५४
भावागमस्थलनिरूपण. ३५९
ज्ञानागमस्थलनिरूपण. ३६३
सकायस्थलनिरूपण. ३६७
अकायस्थलनिरूपण. ३७०
परकायस्थलनिरूपण. ३७२
धर्माचारस्थलनिरूपण. ३७७
भावाचारस्थलनिरूपण. ३८०
ज्ञानाचारस्थलनिरूपण. ३८४

परिच्छेद १७

प्रसादिस्थलनिरूपण. ३८९
कायानुग्रहस्थलनिरूपण. ३८९
इंद्रियानुग्रहस्थलनिरूपण. ३९३
प्राणानुग्रहस्थलनिरूपण. ३९७
कायार्पितस्थलनिरूपण. ४०१
करणार्पितस्थलनिरूपण. ४०३
भावार्पितस्थलनिरूपण. ४०८
शिष्यस्थलनिरूपण. ४११
शुश्रूषुस्थलनिरूपण. ४१५
सेव्यस्थलनिरूपण. ४२०

परिच्छेद १८

प्राणलिंगिस्थलाश्रितआत्मस्थल-निरूपण. ४२४
अंतरात्मस्थलनिरूपण. ४३२
परमात्मस्थलनिरूपण. ४३६
निर्देहागमस्थलनिरूपण. ४३९
निर्भावागमस्थलनिरूपण. ४४२
नष्टागमस्थलनिरूपण. ४४५
आदिप्रसादिस्थलनिरूपण. ४४९
अंत्यप्रसादिस्थलनिरूपण. ४५२
सेव्यप्रसादिस्थलनिरूपण. ४५५

परिच्छेद १९

शरणस्थलाश्रितदीक्षापादोदकस्थल-निरूपण. ४६१
शिक्षापादोदकस्थलनिरूपण. ४६४
ज्ञानपादोदकस्थलनिरूपण. ४६७
क्रियानिष्पत्तिस्थलनिरूपण. ४७१
भावनिष्पत्तिस्थलनिरूपण. ४७४

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ज्ञाननिष्पत्तिस्थलनिरूपण. ४७७
पिंडाकाशस्थलनिरूपण. ४८०
बिंद्वाकाशस्थलनिरूपण. ४८४
महाकाशस्थलनिरूपण. ४८६
क्रियाप्रकाशस्थलनिरूपण. ४८९
भावप्रकाशस्थलनिरूपण. ४९२
ज्ञानप्रकाशस्थलनिरूपण. ४९५

परिच्छेद २०

ऐक्यस्थलगतस्वीकृतप्रसादैक्यस्थल-निरूपण. ५०१
शिष्टोदनस्थलनिरूपण. ५०४
चराचरविनाशस्थलनिरूपण. ५०७
भांडस्थलनिरूपण. ५११
भाजनस्थलनिरूपण. ५१५
अगालेपनस्थलनिरूपण. ५१९
स्वपराज्ञास्थलनिरूपण. ५२२
भावाभावलयस्थलनिरूपण. ५२४
ज्ञानशून्यस्थलनिरूपण. ५२६
अगस्त्यमुनिकृतश्रीरेणुकस्तुतिकथन. ५३३
श्रीरेणुकगणेंद्राने अगस्त्याची प्रशंसा केली. ५३४

परिच्छेद २१

अगस्त्यमुनी पाहाता पाहातानाच श्रीरेणुक अंतर्धान पावले. ५३७
श्रीरेणुकगणेंद्र लंकेला गेले. ५३८
बिभीषणाने श्रीरेणुकांचा सत्कार केला. .... "
बिभीषणरेणुकसंवाद. ५३९
बिभीषणाचे मनोरथ श्रीरेणुकाने पूर्ण केले. ५४५
परमताचे खंडन करून कामिकादि-शिवागमांची प्रतिष्ठा करून (शिवमताचे पुनरुज्जीवन करून) कोल्लिपाकीला श्रीरेणुक गेले. ५४७
श्रीरेणुकाने सोमेश्वराची स्तुती केली. ५४८
श्रीरेणुकास श्रीशिव प्रत्यक्ष झाले, व त्या शिवाच्या ठिकाणी श्रीरेणुक ऐक्य पावले. ५५१
ग्रंथमहत्त्वकथन..................................५५२

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

वीरशैव साहित्य संशोधन मंडळ, सोलापूर

(नोंदणी क्र. इ.-३९४ सोलापूर) २६-९-१९८६

विश्वस्त

१. प्राचार्य डॉ. चंद्रशेखर शिवलिंग कपाळे, अध्यक्ष,
'शिवरत्न', १०-२/३६ एस. बी. कॉलेज रोड, गुलबर्गा-५८५१०३

२. श्री रवी सुधाकर चौधरी, उपाध्यक्ष,
६४, रेल्वेलाईन्स, सोलापूर-४१३००१

३. प्रा. डॉ राजशेखर गंगाधर हिरेमठ, कार्याध्यक्ष
५६, संतोषनगर, भारती विद्यापीठाजवळ, सोलापूर-४१३००४

४. प्रा. डॉ. शेषनारायण देवाप्पा पसारकर, कार्यवाह,
'उषास्वप्न' १२६ मार्कंडेय नगर, सोलापूर-४१३००३

५. श्री शांतितीर्थ संगय्या स्वामी, सहकार्यवाह,
मु. पो. चाकूर, ता. अहमदपूर, जि. लातूर-४१३५१३

६. श्री शंकर कल्याण हिरेमठ, सदस्य,
११७४ सी, सुसरबाग, कोल्हापूर-४१६००२

७. प्रा. डॉ. भीमाशंकर शिवय्यास्वामी, सदस्य,
महाराजगल्ली, औसा, जि. लातूर-४१३५२०

८. श्री आनंद नागप्पा कुंभार, सदस्य
प्लॉट नं. ३४ न्यू पाच्छा पेठ, सोलापूर-४१३००६

६. श्री बाबूराव बंडप्पा मैंदर्गीकर, सदस्य, ३७४ उत्तर कसबा, सोलापूर-४१३००७

ग्रंथ पुढील ठिकाणी उपलब्ध होतील

१. डॉ. चंद्रशेखर कपाळे,
'शिवरत्न', १०-२/३६ एस्. बी. कॉलेज रोड, गुलबर्गा-५८५१०३ (दूरध्वनी २२६३४)

२. डॉ. शे. दे. पसारकर,
कार्यवाह, वीरशैव साहित्य सशोधन मंडळ, 'उषास्वप्न', १२६ब-मार्कंडेय नगर, सोलापूर- ४१३००३

३. श्री बाबूराव मैंदर्गीकर
३७४ उत्तर कसबा, जयती पेपर्स अँन्ड प्रिन्टर्स, सोलापूर-४१३००७ (दूरध्वनी २४४१५)

४. सेक्रेटरी, शैव भारती भवन,
जंगमवाडी मठ, वाराणसी (यू. पी.) २२१००१
(दूरध्वनी : ६४४०२)

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

श्रीसिद्धान्तशिखामणिः

शिवयोगिशिवाचार्यविरचितः

तत्त्वप्रदीपिकाख्यसंस्कृतव्याख्यया मराठीभावानुवादेन च सहितः

प्रथमः परिच्छेदः

तत्त्वप्रदीपिका

श्रीनाथः सोममूर्तिर्जयति परशिवस्त्र्यम्बकस्ताररूपः
स्वच्छश्रीब्रह्मरन्ध्रस्थितसितजलजप्रोद्यदब्जत्रिकोणे।
इच्छाज्ञानक्रियाख्ये त्रिविधलिपिमये हृक्षलार्णाग्रपार्श्वे
कृत्स्नार्णोन्मुख्यबिन्दौ चिदचिदुदयकृद्दृक्क्रियाङ्घ्रिद्वयाढ्यः।।

जो निर्मल ब्रह्मरंध्रामध्ये असणाऱ्या शुभ्र कमलाप्रमाणे सुशोभित, कमलाच्या तीन कोनाप्रमाणे इच्छा, ज्ञान आणि क्रिया अशा तीन प्रकारच्या लिपीने सपन्न असलेल्या, ह ळ क्ष हे वर्ण पुढे मागे असणाऱ्या, सर्व वर्णांमध्ये श्रेष्ठतम असलेल्या बिन्दूमध्ये असणारा, चित् आणि अचित् ह्या द्वंद्वाचा उदय करणारा, दृष्टी आणि क्रियारूपी दोन दृढ चरण असलेला श्रीनाथ सोमेश्वर, ज्याचे तेज चंद्राप्रमाणे असून जो ताररूप (तारक ब्रह्म) आणि त्रिनेत्रधारी आहे, तो श्रेष्ठ परशिव सर्वत्र विजयी होतो.।।

अनेकविधसिद्धान्तशिखामणिमनामयम्।
श्रीवीरशैवसिद्धान्तमेकोत्तरशतस्थलम्।।

अनेकविध सिद्धातशास्त्रात हा सिद्धांतशिखामणि ग्रंथ श्रेष्ठ आणि दोषरहित असून यात वीरशैव सिद्धांतातील एकशेएक स्थलांचे वर्णन आहे.।।

रेणुकागस्त्यसंवादं निगमागमविश्रुतम्।
प्रदीपयति गुप्तार्थमुद्धृत्य शिवयोगिराट्।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

निगमागमांत प्रख्यात अशा वीरशैव सिद्धांताचा गुह्यार्थ ग्रंथकार शिवयोगी शिवाचार्यांनी रेणुक आणि अगस्ती याच्या संवादरूपाने या ग्रंथात सुबोध रीतीने, सर्वांना कळेल अशा पद्धतीने प्रकट केला आहे.।।

अत्र कलिकालप्रवेशानन्तरं लोकहितार्थं रेणुकगणेश्वर इति प्रसिद्धो रेवणसिद्धेश्वरः कुम्भसम्भवाय वीरशैवशास्त्रमुपदिष्टवान्। तदनन्तरं रेवणसिद्धेश्वरदृष्टिगर्भसंभूतसिद्धरामेश्वरसंप्रदायप्रसिद्धः सकलनिगमागमपारगः शिवयोगीश्वर इत्यभिधानवान् कश्चिन्माहेश्वरः तद्रेणुकागस्त्यसंवादं निर्विघ्नेन स्वशिष्यान् बोधयितुं स्वमनसि कृतसकलसिद्धान्तश्रेष्ठनिगमागमैक्यगर्भीकारलक्षणस्वेष्टदेवतानमस्काररूपमङ्गलं शिष्यशिक्षार्थं सप्तभिः श्लोकैर्निबध्नाति—

त्रैलोक्यसम्पदालेख्यसमुल्लेखनभित्तये।
सच्चिदानन्दरूपाय शिवाय ब्रह्मणे नमः।।१।।

जगद्रूपमायिकसम्पच्चित्रसमुल्लेखनाधारभित्तिरूपाय सच्चिदानन्दस्वरूपाय जडजीवविलक्षणाय ब्रह्मणे वेदान्तप्रतिपाद्याय शिवाय शिवसिद्धान्तप्रसिद्धपरमशिवाय नम इत्यर्थः।।१।।

कलियुगाच्या प्रारंभी लोकहितासाठी श्री रेणुक-गणेश्वरांनी रेवणसिद्ध या प्रसिद्ध नावाने कुंभोद्भव अगस्ती ऋषीला वीरशैवशास्त्राचा उपदेश केला. त्यानंतर रेवणसिद्धाच्या कृपादृष्टीने सिद्धरामाचा उदय झाला. सिद्धरामांच्या संप्रदायात निगमागम पारंगत श्रीशिवयोगीश्वर नामक कोणी माहेश्वराने श्री रेणुक व अगस्ती यांचा उद्बोधक संवाद आपल्या शिष्यांसमोर प्रकट केला. या सर्वशास्त्रसमन्वय झालेल्या सिद्धांताचे निरूपण करण्याआधी इष्टदेवतेचे मंगल स्तवन, शिष्यांना शिकविण्यासाठी पुढील सात श्लोकांत करतात— त्रैलोक्याच्या वैभवाचे विशाल चित्र काढण्यासाठी आधारभूत भिंत म्हणजे शिव होय. त्या सच्चिदानंदरूप, परब्रह्म अशा शिवाला नमस्कार असो.।।१।।

ब्रह्मेति व्यपदेशस्य विषयं यं प्रचक्षते।
वेदान्तिनो जगन्मूलं तं नमामि परं शिवम्।।२।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ब्रह्मेति व्यपदेशस्य परब्रह्मेति शब्दस्य वेदान्तिनो यं परमात्मानं विषयमर्थं प्रचक्षते, तं जगत्कारणं परशिवं शिवसिद्धान्तप्रसिद्धपरमशिवं नमामीत्यर्थः।।२।।

वेदान्ती लोक ज्याला ब्रह्म असे म्हणतात, त्या जगाचे मूलकारण असलेल्या सर्वश्रेष्ठ परशिवाला नमस्कार असो.।।२।।

यस्योर्मिबुद्बुदाभासः षट्त्रिंशत्तत्त्वसंचयः।
निर्मलं शिवनामानं तं वन्दे चिन्महोदधिम्।।३।।

शिवादिक्षित्यन्तषट्त्रिंशत्तत्त्वसमूहो यस्य परशिवाख्यचित्समुद्रस्य ऊर्मि-बुद्बुदाभासो घृतकाठिन्यन्यानेनैकदेशे तरङ्गादिवदाभाति, निर्मलं मलत्रयरहितं शिवनामानं तं चिन्महोदधिं वन्दे नमस्करोमीत्यर्थः।।३।।

परशिव हा चैतन्याचा महासागर आहे. छत्तीस तत्त्वांचा समूह—१) शिव २) शक्ती ३) सदाशिव ४) ईश्वर ५) शुद्ध विद्या (ही पाच शुद्ध तत्त्वे) ६) माया ७) कला ८) विद्या ९) राग १०) काल ११) नियती १२) पुरुष (ही सात शुद्धाशुद्ध तत्त्वे) १३) प्रकृती १४) महत् १५) अहंकार १६) मन १७) श्रोत्र १८) त्वक् १९) चक्षु २०) जिव्हा २१) घ्राण २२) वाक् २३) पाणि २४) पाद २५) पायु २६) उपस्थ २७) शब्द २८) स्पर्श २९) रूप ३०) रस ३१) गंध ३२) आकाश ३३) वायु ३४) अग्नी ३५) जल ३६) पृथ्वी (ही चोवीस अशुद्ध तत्त्वे) अशी एकूण छत्तीस तत्त्वे, त्या सागरावरील लाटांचे बुडबुडे आहेत.।।३।।

यद्भासा भासते विश्वं यत्सुखेनानुमोदते।
नमस्तस्मै गुणातीतविभवाय परात्मने।।४।।

"तस्य भासा सर्वमिदं विभाति" इति श्रुतेर्विश्वं यस्य परब्रह्मणः प्रकाशेन प्रकाशते, "अस्यैवानन्दस्यान्यानि भूतानि मात्रामुपजीवन्ति" इति श्रुतेः यत्परब्रह्मसुखेनानुमोदते, तस्मै मायिकसत्त्वरजस्तमोगुणातीतविभवाय परमात्मने शिवाय नम इत्यर्थः।।४।।

'त्याच्या तेजाने सर्व विश्व प्रकाशित होते' असे श्रुतिवचन आहे. ज्या शंकराच्या तेजाने सर्व विश्व प्रकाशित होते, ज्याच्या सुखाने सर्व जग सुखी असते, जो मायिक सत्त्व-रज-तम या त्रिगुणांच्या पलीकडला आहे, अशा ऐश्वर्यसंपन्न परमेश्वर शिवाला माझा नमस्कार असो.।।४।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सदाशिवमुखाशेषतत्त्वोन्मेषविधायिने।
निष्कलङ्कस्वभावाय नमः शान्ताय शम्भवे।।५।।

मयूराण्डरसन्यायेन स्वविमर्शशक्तिसामरस्यापन्नसदाशिवादिभूम्यन्तषट्त्रिंशत्तत्त्वविकासकारिणे विश्वदोषरहितस्वरूपाय सुखभोक्त्रे सुखधात्रे शम्भवे नम इत्यर्थः।।५।।

मयूराण्डरसन्यायाने (म्हणजे मयूरीच्या अंड्यात ज्या प्रमाणे पिलाचे सर्व अवयव व वर्णवैचित्र्य अव्यक्त रूपात असतात त्या प्रमाणे) आपल्या विमर्श शक्तीने सदाशिवापासून भूमीपर्यंत अशा छत्तीस तत्त्वांचा विकास करणाऱ्या, विश्वाच्या सर्व दोषांपासून मुक्त, सुखभोक्ता व सुखाचे मूलकारण असलेल्या शभूला माझा नमस्कार असो.।।५।।

स्वेच्छाविग्रहयुक्ताय स्वेच्छावर्तनवर्तिने।
स्वेच्छाकृतत्रिलोकाय नमः साम्बाय शम्भवे।।६।।

"स्थिरेभिरङ्गैः पुरुरूप उग्रः" इति श्रुतेर्भक्तानुग्रहार्थं स्वेच्छाकल्पितदिव्यमङ्गलविग्रहयुक्ताय स्वच्छन्दचारिणे स्वेच्छाशक्तिनिर्मितलोकत्रयाय पार्वतीपतये परशिवाय नम इत्यर्थः।।६।।

परशिव हा निराकार, निरवयव असला तरी भक्तांवर अनुग्रह करण्यासाठी तो स्वेच्छेने दिव्य देह धारण करतो. असा स्वेच्छेने वर्तन करणारा, इच्छाशक्तीने त्रैलोक्याची निर्मिती करणारा, पार्वतीसह असणाऱ्या शिवाला नमस्कार असो.।।६।।

यत्र विश्राम्यतीशत्वं स्वाभाविकमनुत्तमम्।
नमस्तस्मै महेशाय महादेवाय शूलिने।।७।।

यत्र वेदागमप्रसिद्धपरब्रह्माख्यपरशिवे, अनुत्तमं विश्वतः श्रेष्ठं स्वाभाविकममायीयमीशत्वमुमामहेश्वरत्वं विश्राम्यति, "घृतकाठिन्यवन्मूर्तिः सच्चिदानन्दलक्षणा। शिवाभिधेन सैवास्ति शिव एव हि सा सदा।।" इति सूतगीतोक्तेस्तादात्म्यं भजते, तस्मै महेश्वराय "तमीश्वराणां परमं महेश्वरम्" इति श्रुतेर्ब्रह्मादिकारणेश्वराय महादेवाय अपरिमितप्रकाशरूपाय शूलिने इच्छाज्ञानक्रियाशक्तिमयत्रिशूलिने परमशिवाय नम इत्यर्थः। अनेनायं सिद्धान्तो निर्विशेषब्रह्माद्वैतलक्षण इत्यनुसन्धेयः। एवंविधश्लोकसप्तकप्रतिपादितं वस्तु तत्परं ब्रह्म स एकः "स एको रुद्रः स ईशानः स

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भगवान् स महेश्वरः स महादेवः" इत्यथर्वशिरउपनिषदुक्तप्रकारेणैकमेवेति शिवाद्वैतशास्त्रप्रवीणैरवगन्तव्यम्।।७।।

वेद आणि आगमांत परब्रह्म या नावाने प्रसिद्ध असलेल्या परशिवामध्ये जगात सर्वश्रेष्ठ आणि स्वतःसिद्ध असलेले ईशत्व अर्थात् उमामहेश्वरत्व विश्राम पावते. 'तूप पातळ असो की घट्ट, त्याचे मूळतत्त्व एकच, तसे सच्चिदानंद लक्षणांनी युक्त मूर्तीला शिव अथवा शिवा म्हणता येते,' असे सूतगीतेचे वचन आहे. ब्रह्मादिदेवांचा कारण सर्वेश्वर, अपरिमित प्रकाशरूप, इच्छा-ज्ञान-क्रिया-शक्तिरूपी त्रिशूल धारण करणारा अशा परमशिवाला नमस्कार असो. अथर्वशिरोपनिषदात ब्रह्म, रुद्र, ईशान, भगवान, महेश्वर, महादेव इत्यादी नावांनी एकाच ब्रह्माद्वैताचे वर्णन आहे असे शिवाद्वैतशास्त्रज्ञांनी जाणावे.।।७।।

एवं वेदागमसम्मत्या सप्तभिः श्लोकैः शिवं नमस्कृत्य तथैव वेदागमादिप्रसिद्धनित्यसमवेतशिवशक्तिं पञ्चभिः श्लोकैः प्रस्तौति—

यामाहुः सर्वलोकानां प्रकृतिं शास्त्रपारगाः।
तां धर्मचारिणीं शम्भोः प्रणमामि परां शिवाम्।।८।।

वेदागमादिशास्त्रपारंगताः शिवज्ञानिनो यां परशिवसमवेतशक्तिं सर्वलोकानां प्रकृतिं मूलकारणीभूतज्ञानक्रियासामरस्यात्मिकामाहुः, तां शम्भोर्धर्मचारिणीं धर्मस्वरूपां परां सर्वोत्कृष्टां शिवां भवानीं प्रणमामीत्यर्थः।।८।।

अशा रीतीने वेदागमसमत शिवाला सात श्लोकांत नमन करून पुढील पाच श्लोकांत वेदागमप्रसिद्ध, नित्य शिवाशी अभिन्न असलेल्या शक्तीचे स्तवन करतात—

वेदागमादीशास्त्रपारंगत विद्वान जिला परशिवासमवेत असलेली, सर्व जगाची प्रकृती, इच्छा-ज्ञान-क्रिया यांचे मूळरूप असलेली, शंभूची धर्मस्वरूपिणी, भवाची भवानी, सर्वोत्कृष्ट अशी मानतात; अशा पार्वतीला मी नमस्कार करतो.।।८।।

यया महेश्वरः शम्भुर्नामरूपादिसंयुतः।
तस्यै मायास्वरूपायै नमः परमशक्तये ।।९।।

यया स्वसमवेतशक्त्या महेश्वरो ब्रह्मादिसर्वकारणेश्वरः शम्भुः शिवः "शक्तो यया स शम्भुर्भुक्तौ मुक्तौ च पशुगणस्यास्य" इति तत्त्वप्रकाश-

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

वाक्यानुसारेण नामरूपक्रियाविशिष्टो जीवानां भुक्तिमुक्तिप्रदः स्यात्, तस्यै मायास्वरूपायै "मायां तु प्रकृतिं विन्द्यान्मायिनं तु महेश्वरम्" इति श्रुतेः प्रतिस्फुरणगत्या जगदुपादानकारणीभूतसत्त्वरजस्तमोगुणात्ममायाख्यमूल-प्रकृत्यै परमशक्त्यै परमशिवसमवेतनित्यशक्त्यै नम इत्यर्थः।।९।।

शक्तीसह शिव ब्रह्मादिदेवांचा कारण असून शक्तीमुळे तो निर्गुणाचा सगुण, निष्क्रिय असला तरी सक्रिय, अनाम असला तरी सनाम, निरवयव असला तरी सावयव, निराकार असला तरी साकार होतो. तिच्या साह्याने तो भुक्तिप्रद व मुक्तिप्रद झाला. त्या शक्तीला-प्रकृतीलाच माया आणि महेश्वराला मायावान म्हणतात. प्रतिस्फुरणशील, जगताचे कारण, त्रिगुणात्मक माया ही प्रकृती होय. त्या परशिवाशी नित्य समवेत असलेल्या श्रेष्ठ शक्तीला नमस्कार असो.।।९।।

शिवाद्यादिसमुत्पन्नशान्त्यतीतपरोत्तराम्।
मातरं तां समस्तानां वन्दे शिवकरीं शिवाम्।।१०।।

शिवात् परशिवादाद्यादिपटगतशुक्लत्ववत् पूर्वं समुत्पन्ननिवृत्तिप्रतिष्ठा-विद्याशान्तिशान्त्यतीतकलापरकुण्डलिनीशक्त्यपेक्षया उत्तरां श्रेष्ठां समस्तानां मातरं शिवकरीं मङ्गलकरीं तां शिवां सर्वमङ्गलां नमामीत्यर्थः।।१०।।

परशिवापासून सर्वप्रथम प्रकट झालेली जी शात्यतीतोत्तरा कला, तिच्याहून श्रेष्ठ असलेली, अर्थात् निवृत्ती, प्रतिष्ठा, विद्या, शांती, शात्यतीत आणि शांत्यतीतोत्तरा (परा कुंडलिनी) या सहा कलांची माता असणारी, कल्याणकारी आणि सर्वमंगला अशा त्या शक्तीला नमस्कार असो.।।१०।।

इच्छाज्ञानादिरूपेण या शम्भोर्विश्वभाविनी।
वन्दे तां परमानन्दप्रबोधलहरीं शिवाम्।।११।।

शम्भोः परमेश्वरस्य या समवेतशक्तिः, इच्छाज्ञानादिरूपेण "परास्य शक्तिर्विमला वितर्का स्वाभाविकी रुद्रसमानधर्मिणी। ज्ञानक्रियेच्छादि-सहस्ररूपा तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु।।" इति श्रुतेरिच्छादिरूपेण विश्वभाविनी विश्वप्रकाशिनी, तां परमानन्दप्रबोधलहरीं चिदानन्दोल्बणां शिवां वन्दे इत्यर्थः।।११।।

परशिवाची ती समवेत शक्ती आहे. ती इंच्छा ज्ञान-क्रिया-रूपिणी असून, विमल, विशेष तर्क करणारी, स्वभावसिद्ध, रुद्राच्या

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सर्व गुणधर्मांनी युक्त असलेली, ज्ञान-क्रिया-इच्छा आदी सहस्र रूपांनी नटलेली, विश्वप्रकाशिनी व विश्वनिर्मिती करणारी आहे. परमानंद व प्रकर्षज्ञान यांची मूर्ती असलेल्या त्या शक्तीला नमस्कार असो.।।११।।

अमृतार्थं प्रपन्नानां या सुविद्याप्रदायिनी।
अहर्निशमहं वन्दे तामीशानमनोरमाम्।।१२।।

अमृतार्थं मुक्त्यर्थं प्रपन्नानां शरणागतानां या शिवसमवेतशक्तिः सुविद्याप्रदायिनी "वेदान्तवाक्यजा विद्या" इति सूतसंहितोक्तेस्तत्त्वमस्यादि-वेदान्तमहावाक्यप्रकाशितशिवजीवैक्यविद्याप्रदायिनी, तां शिवप्राणकान्ता-महर्निशं वन्दे नमस्करोमीत्यर्थः। "अनन्या स्याच्छिवा सैव वस्तुतो मूर्तिरीश्वरी" इति पौष्करवचनादेतत्पञ्चसूत्रप्रतिपादितां शक्तिं शिवाभेदेनैव परामृशेदिति।।१२।।

जी मुक्तीसाठी शरणागतांना विद्या प्रदान करते, 'तत् त्वम् असि' या वेदांतमहावाक्याने प्रकाशित झालेल्या जीव शिवाचे ऐक्य घडविणारी विद्या देते, शिवाच्या मनाला आनंद देणाऱ्या त्या शिवकांतेला माझा नमस्कार असो.।।१२।।

एवं सग्रंहेण पार्वतीपरमेश्वरौ नमस्कृत्वाऽनन्तरमष्टभिः श्लोकैः शिवयोगिवंशानुगताचार्यान् प्रकटयति—

कश्चिदाचारसिद्धानामग्रणीः शिवयोगिनाम्।
शिवयोगीति विख्यातः शिवज्ञानमहोदधिः।।१३।।

शिवयोगिनां मध्ये अग्रणीः श्रेष्ठः, शिवज्ञानमहोदधिः शिवज्ञानस्य समुद्रः, कश्चिद्रेवणसिद्धेश्वरदृष्टिगर्भसंभूतसिद्धरामेश्वरः, आचारसिद्धानां सदाचारसम्पन्नानां वंशे शिवयोगीति विख्यातः, आसीदित्यर्थः।।१३।।

अशा रीतीने थोडक्यात पार्वती-परमेश्वराला नमन केल्यानंतर आठ श्लोकांत शिवयोगी यांच्या वंशातील आचार्यांची माहिती देतात— शिवयोग्यांत अग्रणी असा श्रेष्ठ शिवज्ञानाचा समुद्र, श्री रेवणसिद्धांच्या कृपादृष्टीमुळे जन्मलेला कोणी सिद्धरामेश्वर, आचारसिद्ध आणि सदाचारसंपन्न अशा वंशात शिवयोगी म्हणून प्रसिद्ध होता.।।१३।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

शिवभक्तिसुधासिन्धुजृम्भणामलचन्द्रिका।
भारती यस्य विदधे प्रायः कुवलयोत्सवम्।।१४।।

यस्य शिवयोगीति प्रसिद्धस्य सिद्धरामेश्वरस्य भारती वाक् शिवभक्तिसुधासमुद्रवर्धनस्यामलचन्द्रिकाप्राया आधिक्येन कुवलयोत्सवं भूमण्डलाख्यनीलोत्पलस्योत्सवं विदधे कृतवतीत्यर्थः।।१४।।

शिवयोगी सिद्धरामाची वाणी शिवभक्तिरूपी अमृत-सागराला भरती आणणारी निर्मल चद्रिकाच होती. त्या वाणीरूपी चद्रिकेमुळे भूमंडळावर जनमनरूपी नीलोत्पलांना बहर आल्यामुळे सर्व जगाला संतोष होत होता.।।१४।।

तदेव विवृणोति—

तस्य वंशे समुत्पन्नो मुक्तामणिरिवामलः।
मुद्ददेवाभिधाचार्यो मूर्धन्यः शिवयोगिनाम्।।१५।।

तस्य सिद्धरामेश्वरस्य वंशे शिववेदिनां शिवज्ञानिनां मध्ये मूर्धन्यः श्रेष्ठो मुद्ददेवाख्याचार्यो निर्मलमुक्तामणिरिव समुत्पन्नः, उद्भूतवानित्यर्थः।।१५।।

त्या सिद्धरामाच्या वंशात मोत्यासारखे शुद्ध असे मुद्ददेव नावाचे आचार्य जन्माला आले. ते शिवज्ञानसंपन्न शिवयोग्यांचे मुकुटमणी होते.।।१५।।

मुद्दानात् सर्वजन्तूनां प्रणतानां प्रबोधतः।
मुद्ददेवेति विख्याता समाख्या यस्य विश्रुता।।१६।।

सर्वप्राणिनां सन्तोषदानात् प्रणतानां प्रबोधनाद् मुद्ददेवेति यस्यान्वर्थरूढिभ्यां विख्याता समाख्या विश्रुता लोकप्रसिद्धेत्यर्थः।।१६।।

त्यांना शरण आलेल्या प्राणिमात्रांना ते आपल्या बोधामुळे संतोष देत असत. त्यामुळे त्याचे मुद्ददेव (संतोष देणारा) असे नाव प्रसिद्धीला आले.।।१६।।

तस्यासीन्नन्दनः शान्तः सिद्धनाथाभिधः शुचिः।
शिवसिद्धान्तनिर्णेता शिवाचार्यः शिवात्मकः।।१७।।

तस्य मुद्ददेवस्य, शुचिः पवित्रः, शान्तः रागद्वेषरहितः, शिवात्मकः शिवस्वरूपः, शिवसिद्धान्तनिर्णेता त्रिपदार्थचतुष्पादयुक्तशिवागमार्थनिर्णायकः,

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

शिवाचार्यः शिवसमयस्थापनाचार्यः, सिद्धनाथाभिधः सिद्धरामेश्वराभिधा-संयुक्तः सिद्धनाथाचार्याख्यो नन्दनः कुमार आसीदभवदित्यर्थः।।१७।।

या मुद्दुदेवांचा सिद्धनाथ नामक पुत्र होता. तो अत्यंत पवित्र, रागद्वेषादिरहित, शिवस्वरूप व शिवसिद्धांताचा निर्णय करणारा, शिवागमांतील पती, पशु, पाश या तीन पदार्थांचा आणि क्रियापाद, चर्यापाद, योगपाद, ज्ञानपाद या चतुष्पादाचा अर्थ उलगडून दाखविणारा, शिवसिद्धान्ताची स्थापना करणारा एक महान आचार्य होता.।।१७।।

वीरशैवशिखारत्नं विशिष्टाचारसम्पदम्।
शिवज्ञानमहासिन्धुं यं प्रशंसन्ति देशिकाः।।१८।।

विशिष्टाचारसम्पदं सदाचारसम्पन्नं शिवज्ञानमहासिन्धुं यं सिद्धनाथाचार्यं देशिका आचार्या वीरशैवशिखारत्नं वीरशैवानां शिरोमणिं श्रेष्ठं सन्तं प्रशंसन्ति कथयन्तीत्यर्थः।।१८।।

सिद्धनाथ हा वीरशैवांचा मुकुटमणी संत आहे, तो सदाचार-संपन्न असून शिवज्ञानाचा महासमुद्रच आहे; अशी त्याची प्रशंसा तत्कालीन श्रेष्ठ आचार्य करीत असत.।।१८।।

यस्याचार्यकुलाज्जाता सतामाचारमातृका।
शिवभक्तिः स्थिरा यस्मिन् जज्ञे विगतविप्लवा।।१९।।

सतां सत्पुरुषाणां आचारमातृका यस्य सिद्धनाथाचार्यस्य आचार्यकुलाद् आचार्यवंशाद् जाता। विगतविप्लवा विगतदोषा शिवभक्तिरष्टविधा यस्मिन् स्थिरा जज्ञे जातेत्यर्थः।।१९।।

सज्जनांनी आचरावेत अशा आचारांचा उगम ज्या आचार्यकुलात झाला, त्या कुलात सिद्धनाथांचा जन्म झाल्यामुळे त्यांच्या अंगी निर्दोष अशी अष्टविधा भक्ती दृढ झाली होती.।।१९।।

तस्य वीरशिवाचार्यशिखारत्नस्य नन्दनः।
अभवच्छिवयोगीति सिन्धोरिव सुधाकरः।।२०।।

वीरशैवशिखामणेस्तस्य सिद्धनाथाचार्यस्य नन्दनः कुमारः, सिन्धोः समुद्रस्य सुधाकर इव शिवयोगीति आसीत् प्रसिद्धो जात इत्यर्थः।।२०।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

वीरशैवाचार्यांचा मुकुटमणी अशा त्या सिद्धनाथ शिवाचार्यांचा पुत्र शिवयोगी नामक होता. समुद्राचा पुत्र चंद्र तसा तो आपल्या पित्याला सुख देणारा पुत्र शोभत होता.।।२०।।

अथैतच्छास्त्रसंग्रहकर्ताऽयं शिवयोगी द्वादशसूत्रैः स्वनामप्रशंसापूर्वकं शास्त्रावतारक्रमं निरूपयति—

चिदानन्दपराकाशशिवानुभवयोगतः।
शिवयोगीति नामोक्तिर्यस्य याथार्थ्ययोगिनी।।२१।।

यस्य आचार्यस्य "सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म", "आकाशशरीरं ब्रह्म" इत्यादिश्रुतेश्चिदानन्दपराकाशरूपशिवानुभवयोगात् शिवयोगीति नामोक्ति-र्याथार्थ्ययोगिनी यथार्थेन संयुक्ता भवतीत्यर्थः।।२१।।

आता या शास्त्राचे कर्ते शिवयोगी पुढील बारा श्लोकात स्वनामाची प्रशंसा करून शास्त्रावताराचा क्रम सांगतात—

श्रुतींमध्ये परशिवब्रह्माचे सच्चिदानंदस्वरूप, आकाशरूप असे वर्णन केले आहे. अशा सच्चिदानंद पराकाशस्वरूप परशिवाचा त्यांना स्वानुभवाने साक्षात्कार प्राप्त झाला असल्यामुळे त्यांचे शिवयोगी हे नाव सार्थ व अन्वर्थक होते.।।२१।।

शिवागमपरिज्ञानपरिपाकसुगन्धिना।
यदीयकीर्तिपुष्पेण वासितं हरितां मुखम्।।२२।।

उक्तलक्षणशिवागमपरिज्ञानपरिपाकसुगन्धिना यदीयकीर्तिपुष्पेण यस्याचा-र्यस्य कीर्तिकुसुमेन हरितां दिशां मुखं वासितं पोषितमित्यर्थः।।२२।।

शिवागमांचे परिपूर्ण ज्ञान झाल्यामुळे त्यांच्या कीर्ति-पुष्पाचा सुगंध दाही दिशांत दरवत होता. अर्थात् शिवयोगी हे शिवागमांचे संपूर्ण ज्ञाते आहेत, अशी त्यांची कीर्ती सर्वत्र पसरली होती.।।२२।।

येन रक्षावती जाता शिवभक्तिः सनातनी।
बुद्धादिप्रतिसिद्धान्तमहाध्वान्तांशुमालिना।।२३।।

बौद्धादिशिवसमयप्रतिकूलसिद्धान्तान्धकारचण्डकिरणेन येनाचार्येण सना-तनी शिवभक्ती रक्षावती जाता रक्षिताऽभूदित्यर्थः।।२३।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

शिवसिद्धांताला प्रतिकूल असलेल्या बौद्धादी मतरूपी अंधःकाराचे त्यांनी सूर्याप्रमाणे खंडन करून सनातन अशा शिवभक्तीचे रक्षण केले.।।२३।।

स महावीरशैवानां धर्ममार्गप्रवर्तकः।
शिवतत्त्वपरिज्ञानचन्द्रिकावृतचन्द्रमाः।।२४।।

शिवतत्त्वज्ञानरूपचन्द्रिकावृतचन्द्रमाः स शिवयोगी महावीरशैवानां धर्ममार्गप्रवर्तकः, तदीयाचारमार्ग एव वर्द्धनवानित्यर्थः।।२४।।

ते शिवयोगी महावीरशैवधर्माचे स्वतः आचरण करून लोकांना त्या मार्गाच्या अनुसरणास प्रवर्तित करणारे असल्याने शिवतत्त्वज्ञानरूपी चांदण्याने युक्त अशा चंद्रासारखे शोभत होते.।।२४।।

आलोक्य शैवतन्त्राणि कामिकाद्यानि सादरम्।
वातुलान्तानि शैवानि पुराणान्यखिलानि तु।।२५।।

कामिकादिवातुलान्तशैवतन्त्राणि शैवान्यखिलानि पुराणानि च प्रीतियुक्तं यथा भवति तथा आलोक्य।।२५।।

त्यांनी कामिकापासून वातुलागमापर्यंत अठ्ठावीस शैवागमांचे आणि सर्व शैव पुराणांचे आदरपूर्वक अध्ययन केले होते.।।२५।।

वेदमार्गाविरोधेन विशिष्टाचारसिद्धये ।
असन्मार्गनिरासाय प्रमोदाय विवेकिनाम् ।।२६।।

वैदिकमार्गाविरोधेन सदाचारसिद्धये दुर्जनजैनबौद्धादिशास्त्रमार्गनिरासाय वेदागमविवेकिनां सन्तोषाय ।।२६।।

वेदमार्गास बाध न आणता, शिवाचाराच्या सिद्धीसाठी, जैन बौद्धादी कुमार्गाच्या निराकरणासाठी आणि विद्वान लोकांच्या संतोषासाठी।।२६।।

सर्वस्वं वीरशैवानां सकलार्थप्रकाशनम् ।
अस्पृष्टमखिलैर्दोषैरादृतं शुद्धमानसैः ।।२७।।

वीरशैवानां सर्वस्वं समस्तार्थप्रकाशकं समस्तदोषैरसंस्पृष्टं शुद्धमानसैर्निगमागमज्ञानिभिरादृतं सन्तोषितम् ।।२७।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

वीरशैवांचे सर्वस्व, सर्व अर्थांचे प्रकाशक, सर्व दोषांपासून मुक्त आणि शुद्धान्तःकरणाच्या शिवयोग्याना स्वीकरणीय आणि सतोष देणारे।।२७।।

तेष्वागमेषु सर्वेषु पुराणेष्वखिलेषु च ।
पुरा देवेन कथितं देव्यै तन्नन्दनाय च ।।२८।।

पूर्वोक्तागमपुराणेषु शिवेन देव्यै तन्नन्दनाय षण्मुखायानुगृह्य कथितम् ।।२८।।

सर्व शिवागमात आणि सर्व पुराणात वर्णिलेले असून, पूर्वी शंकरानी पार्वतीला व षडाननाला ते सांगितले होते.।।२८।।

तत्सम्प्रदायसिद्धेन रेणुकेन महात्मना ।
गणेश्वरेण कथितमगस्त्याय पुनः क्षितौ ।।२९।।

तत्सम्प्रदायसिद्धेन महात्मना रेणुकगणाधीश्वरेण पुनः क्षितावगस्त्याय कथितम् ।।२९।।

शिवसंप्रदायात प्रसिद्ध असलेले, सकल शिवगणांचे अधिपती, महात्मा रेणुकाचार्यांनी तेच पुन्हा पृथ्वीवर अगस्ती ऋषीला सांगितले.।।२९।।

वीरशैवमहातन्त्रमेकोत्तरशतस्थलम् ।
अनुग्रहाय लोकानामभ्यधात् सुधियांवरः ।।३०।।

एकोत्तरशतस्थलं पिण्डादिज्ञानशून्यान्तैरेकोत्तरशतस्थलं वीरशैवसिद्धान्तं लोकानामनुग्रहाय निर्मलज्ञानिनां मध्ये श्रेष्ठः शिवयोगिनाम्ना प्रख्याताचार्यः, अभ्यधात् संग्रहेण प्रकटितवानित्यर्थः।।३०।।

पूर्वापार चालत आलेले, पिण्डस्थलापासून ज्ञानशून्य स्थलापर्यंत असलेल्या एकशे एक स्थलांत वर्णिलेले वीरशैव महातंत्र, पंडिताग्रणी अशा शिवयोगी शिवाचार्यांनी वीरशैवांवर अनुग्रह करण्यासाठी पुन्हा प्रकट केले.।।३०।।

सर्वेषां शैवतन्त्राणामुत्तरत्वान्निरुत्तरम् ।
नाम्ना प्रतीयते लोके यत्सिद्धान्तशिखामणिः ।।३१।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

यद्वीरशैवतन्त्रं सर्वेषां शैवतन्त्राणामुत्तरत्वाद् निरुत्तरं स्वस्मादुत्तररहितं सत् सिद्धान्तशिखामणिरिति नाम्ना लोके प्रतीयते प्रतिभातीत्यर्थः।।३१।।

वीरशैव महातंत्राचा हा ग्रथ शैवतंत्रातील सर्व ग्रंथांमध्ये श्रेष्ठतम असून, सर्वांच्या शिरोभागी असल्यामुळे यास 'सिद्धान्तशिखामणि' असे नाव दिले आहे.।।३१।।

अनुगतसकलार्थे शैवतन्त्रैः समस्तैः ।
प्रकटितशिवबोधाद्वैतभावप्रसादे ।
विदधतु मतिमस्मिन् वीरशैवा विशिष्टाः
पशुपतिमतसारे पण्डितश्लाघनीये ।।३२।।

समस्तैर्वीरशैवतन्त्रैरनुगतसमस्तरहस्यार्थे प्रकटितशिवाद्वैतज्ञानसमरसभाव-प्रसन्नतायुक्ते शिवसिद्धान्तसारे विद्वद्भिः स्तूयमानेऽस्मिन् सिद्धान्तशिखा-मणौ विशिष्टाः श्रेष्ठा वीरशैवा वीरशैवाचार्या मतिं विदधतु कुर्वन्त्वित्यर्थः।।३२।।

इति श्रीमत्पदवाक्यप्रमाणपारावारधुरीणश्रीमरितोण्टदार्येण विरचितायां तत्त्वप्रदीपिकाख्यायां सिद्धान्तशिखामणिव्याख्यायां
प्रथमः परिच्छेदः समाप्तः।।

समस्त वीरशैव तंत्रांचा रहस्यार्थ व्यक्त करणारा, समरस-भावाने युक्त, प्रासादिक, शिवाद्वैतज्ञान प्रकट करणारा, विद्वानांनी प्रशंसिलेला, पाशुपतमताचा सारसर्वस्व असणारा अशा या सिद्धान्तशिखामणि ग्रंथाकडे वीरशैवांनी विशेष लक्ष द्यावे अर्थात् त्याचे लक्षपूर्वक अध्ययन करावे.।।३२।।

असा हा सिद्धांतशिखामणीतील अनुक्रमवर्णन
नावाचा पहिला परिच्छेद संपला.
प्रथम परिच्छेद समाप्त।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

द्वितीयः परिच्छेदः

अथ शिवयोगिनामाचार्यः सूत्रद्वयेन निगमागमसम्मत्या पार्वतीपरमेश्वरौ प्रणमति—

सच्चिदानन्दरूपाय सदसद्व्यक्तिहेतवे ।
नमः शिवाय साम्बाय सगणाय स्वयम्भुवे ।।१।।

सदसद्व्यक्तिहेतवे भावाभावमण्डलप्रपञ्चाविर्भावकारणाय भवानीपतये प्रमथगणसहिताय स्वयम्भुवे अयोनिजाय सच्चिदानन्दरूपाय शिवाय नम इत्यर्थः।।१।।

ग्रंथकार शिवयोगी शिवाचार्य निगमागमांना अनुसरून पार्वती-परमेश्वराला दोन श्लोकांतून वंदन करतात—

भावाभावरूप प्रपंचनिर्मितीला कारण असणाऱ्या, प्रमथगणासहित व पार्वतीयुक्त असणाऱ्या, सच्चिदानंदरूप स्वयभू शिवाला नमस्कार असो.।।१।।

सदाशिवमुखाशेषतत्त्वमौक्तिकशुक्तिकाम् ।
वन्दे माहेश्वरीं शक्तिं महामायादिरूपिणीम् ।।२।।

सदाशिवादिभूम्यन्तषट्त्रिंशत्तत्त्वमौक्तिकोत्पत्तिशुक्तिरूपां शुद्धविद्याख्य-महामायाप्रकृतिरूपिणीं शिवसमवेतशक्तिं भवानीं वन्दे नौमीत्यर्थः।।२।।

जी सदाशिवापासून भूमीपर्यंत असणाऱ्या, छत्तीस तत्त्वरूप मोत्यांच्या निर्मितीस कारण अशी शिंपली आहे, जी शुद्धविद्या-महामाया-प्रकृती या नावांनी प्रसिद्ध आहे, त्या शिवासह अभिन्न रूपाने असलेल्या पार्वतीला नमस्कार असो.।।२।।

अथ विश्वसृष्टिक्रममुपपादयितुं चतुर्भिः सूत्रैर्वस्तुनिर्देशं करोति—

अस्ति सच्चित्सुखाकारमलक्षणपदास्पदम् ।
निर्विकल्पं निराकारं निरस्ताशेषविप्लवम् ।।३।।

सच्चिदानन्दस्वरूपं चिह्नशून्यपदास्पदं भेदरहितम् आकारशून्यं निवारितसकलोपप्लवम्।।३।।

विश्वसृष्टीचा क्रम सांगण्यासाठी चार श्लोकातून प्रपचाच्या मूलपरशिवतत्त्वाचे निर्देशन करतात—

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जी मूळ वस्तू आहे तिचे नेमक्या शब्दांत लक्षण सांगणे अत्यंत कठीण आहे. तिला विकल्प नाही अर्थात् ती भेदरहित आहे. तिला आकार नाही. सर्व उपद्रवापासून ती मुक्त आहे. अशी ती वस्तू म्हणजेच सच्चिदानंदरूप परब्रह्म शिव होय.।।३।।

परिच्छेदकथाशून्यं प्रपञ्चातीतवैभवम् ।
प्रत्यक्षादिप्रमाणानामगोचरपदे स्थितम् ।।४।।

विच्छिन्नप्रसङ्गरहितमप्राकृतवैभवं रूपरसाद्यभावेन प्रत्यक्षप्रमाणागम्यम् अत एवानुमानाद्यगम्यम्, तेषामपि प्रत्यक्षमूलत्वात् परिच्छिन्नत्वाच्च।।४।।

त्या परब्रह्माचे देश-वस्तु-कालानुसार विभाग होत नाहीत. ते प्राकृतिक प्रपंचाच्या पलीकडले असून, प्रत्यक्ष अनुमानादी सर्व प्रमाणांना अगोचर स्थानी आहे.।।४।।

स्वप्रकांशविराजन्तमनामयमनौपमम् ।
सर्वज्ञं सर्वगं शान्तं सर्वशक्ति निरङ्कुशम् ।।५।।

स्वप्रकाशेनैव प्रकाशमानं जननमरणादिदोषरहितम्, उपमातीतं सर्वज्ञं सर्वानुस्यूतं रागद्वेषरहितं सर्वसामर्थ्यम् अनर्गलं निरोधरहितमिति यावत् ।।५।।

तो परब्रह्म-शिव स्वयंप्रकाशित असून जन्ममरणादी दोषांपासून मुक्त असतो. तो उपमातीत, सर्वज्ञ, सर्वांतर्यामी, रागद्वेषापासून मुक्त, शांत, सर्वसामर्थ्यवान्, गतिशील असून त्याला कोठेही प्रतिबंध होत नाही.।।५।।

शिवरुद्रमहादेवभवादिपदसंज्ञितम् ।
अद्वितीयमनिर्देश्यं परं ब्रह्म सनातनम् ।।६।।

शिवरुद्राद्यनेकपदसंज्ञितं द्वितीयशून्यमवाच्यं नित्यं परं ब्रह्म अस्ति, अस्तीत्यङ्गीकरणीयम्, अन्यथा जगदान्ध्यप्रसङ्गात्, "असन्नेव स भवति असद् ब्रह्मेति वेद चेत्। अस्ति ब्रह्मेति चेद्वेद सन्तमेनं ततो विदुः।।" इति श्रुतेः।।६।।

त्याला शिव, रुद्र, महादेव, भव इत्यादी नावे आहेत. तो सजातीय-विजातीय-स्वगतभेदरहित आहे. तो अमुक तऱ्हेचा आहे असे सांगता येत नाही. तो नित्य असून परब्रह्मरूप आहे.।।६।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अथैवंविधक्रियाशक्तिमतः परब्रह्मणः सकाशात् "सदेव सौम्येदमग्र आसीत्" इति श्रुतेर्बीजाङ्कुरन्यायेन विश्वसृष्टिप्रकारं दर्शयति—

तत्र लीनमभूत् पूर्वं चेतनाचेतनं जगत् ।
स्वात्मलीनं जगत्कार्यं स्वप्रकाश्यं तदद्भुतम् ।।७।।

तत्र तस्मिन्नुक्तलक्षणे परब्रह्मणि चराचरमयं विश्वं पूर्वं सृष्टेः प्राग् लीनम् अनुभयेन्द्रियगोचरत्वेन तादात्म्येन स्थितं तदुद्भुतमाश्चर्यम्। अनन्तरमिति शेषः, स्वात्मलीनं स्वात्मशक्तिलीनं जगद् योग्योपादानान्तरराहित्येन स्वप्रकाश्यं द्वितीयस्याभावात् स्वेनैव प्रकाश्यं सत् कार्यमुभयेन्द्रियगोचरत्वेन कर्तुं योग्यमभूदित्यर्थः।।७।।

अशा प्रकारे शक्तियुक्त परब्रह्मापासून बीजाकुर-न्यायाने विश्वनिर्मिती झाल्याचे स्पष्ट करतात—

पूर्वोक्त लक्षणांनी युक्त परब्रह्मात चराचर विश्व, निर्मितीपूर्वी लीन झालेले होते. त्यामुळे आंतरबाह्य इंद्रियांना ते अगोचर होते. आत्मरूपात सर्वदा लीन असलेल्या जगाला परब्रह्म आपल्या तेजाने प्रकाशित करते. असे ते अद्भुत आहे.।।७।।

अथ घृतकाठिन्यन्यायेन विश्वसृष्ट्युन्मुखीभूतशिवशक्तिस्वरूपं सूत्रषट्केन प्रदर्शयति—

शिवाभिधं परं ब्रह्म जगन्निर्मातुमिच्छया ।
स्वरूपमादधे किञ्चित् सुखस्फूर्तिविजृम्भितम् ।।८।।

शिवाख्यं परं ब्रह्म विश्वसृष्ट्यर्थं स्वेच्छया सुखबाहुल्योच्छूनं किञ्चित् स्वरूपमङ्गीचकारेत्यर्थः।।८।।

पातळ तूप नंतर घट्ट होते, या न्यायाने, विश्वनिर्मितीला उद्युक्त होणाऱ्या शिव-शक्तीचे स्वरूप सहा श्लोकांत सांगतात— त्या शिवनामक परब्रह्माने जग निर्माण करण्याच्या इच्छेमुळे किंचित् स्फूर्तिमय व उल्हसित रूप धारण केले.।।८।।

तत्स्वरूपं कुलकेनाह—

निरस्तदोषसम्बन्धं निरुपाधिकमव्ययम् ।
दिव्यमप्राकृतं नित्यं नीलकण्ठं त्रिलोचनम् ।।९।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

निरस्तजरामरणादिसकलदोषसम्बन्धं स्वातिरिक्ताविद्याद्युपाधिशून्यं नाशरहितमत एव नित्यं कालत्रयाबाध्यमित्यर्थः। अप्राकृतं प्रकृतिसम्बन्धरहितं नीलकण्ठं त्रिलोचनम्॥९॥

परब्रह्माच्या रूपाचे वर्णन पाच श्लोकांत करतात—ते स्वरूप, जन्ममरणादी सर्व दोषांपासून मुक्त, आपणांपासून भिन्न अविद्यादी उपाधिरहित, शाश्वत, त्रिकालाबाधित, दिव्य, त्रिगुणात्म प्रकृतीचा संबंध नसलेले आणि नित्य असे आहे. त्यालाच नीलकंठ आणि त्रिलोचन म्हणतात॥९॥

चन्द्रार्धशेखरं शुद्धं शुद्धस्फटिकसन्निभम् ।
शुद्धमुक्ताफलाभासमुपास्यं गुणमूर्तिभिः ॥१०॥

चन्द्रखण्डशेखरं शुद्धं पवित्रं शुद्धस्फटिकसंकाशं निर्मलमुक्तामणिप्रभं गुणमूर्तिभिर्ब्रह्मादिभिरुपास्यम्॥१०॥

त्याच्या मस्तकावर अर्धचंद्र आहे, ते शुद्ध आहे, स्फटिकासारखे निर्मल आहे, मोत्यासारखे तेजस्वी आहे ब्रह्मादी देवताकडून उपासना करण्यास योग्य आहे.॥१०॥

विशुद्धज्ञानकरणं विषयं सर्वयोगिनाम् ।
कोटिसूर्यप्रतीकाशं चन्द्रकोटिसमप्रभम्॥११॥
अप्राकृतगुणाधारमनन्तमहिमास्पदम् ।

दिव्यं स्तुत्यं निर्मलज्ञानमयचक्षुरादिकरणप्रपञ्चं योगिनां प्रत्यक्षं कोटिसूर्यप्रकाशं चन्द्रकोटिसमाभासमप्राकृतानन्तकल्याणगुणाश्रयमतिदुर्घटकारिताद्यनेकमहिमाधारं किञ्चित् स्वरूपमादध इति पूर्वेण सम्बन्धः ॥११॥

ते निर्मल ज्ञान होण्यास कारणीभूत असून सर्व योग्यांच्या ज्ञानाचा विषय झालेले आहे. ते कोटिसूर्यांसारखे तेजस्वी असून कोटिचंद्रांसारखे कांतिमान आहे. ते प्राकृतिक सत्त्वादिगुणांपेक्षा विलक्षण अशा सर्वज्ञत्वादी अनंत कल्याणकारी गुणांचा आश्रय असून अघटित घटनादी अनंत महिम्यांचा आधार आहे.॥११॥

अथ शिवस्य शक्तिस्वरूपं प्रकटयति—

तदीया परमा शक्तिः सच्चिदानन्दलक्षणा॥१२॥
समस्तलोकनिर्माणसमवायस्वरूपिणी ।

2

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तदीया परशिवसम्बन्धिनी परमा शक्तिः परारूपा विमर्शशक्तिः सच्चिदानन्दलक्षणा, अस्तीति शेषः।।१२।।

शिवाच्या शक्तीचे स्वरूप वर्णन करतात—परशिवाची जी विमर्शशक्ती आहे ती सच्चिदानंद-स्वरूपिणी आहे. ही विमर्शशक्ती विश्वाच्या निर्मितीचे उपादान कारण असून तीच विश्वस्वरूप होते.।।१२।।

तदिच्छयाऽभवत् साक्षात्तत्स्वरूपानुसारिणी ।।१३।।

"अहमस्मि" इति श्रुतेः, अस्मिन् प्रकाशे नन्दामीत्यनुत्पन्नमलोल्लासा-कर्मकाक्रमोत्तमस्फूर्तिरूपापि समस्तलोकनिर्माणे पूर्वोक्तप्रकारेण "नासतो विद्यते भावः" इति भगवदुक्तेः स्वात्मन्यण्डरसन्यायेनाहमित्यविभागपरा-मर्शात्मनानुभयेन्द्रियगोचरत्वेन स्थितस्य विश्वस्येदन्तालक्षणविभाग-परामर्शमयसृष्टिलीलायां स्वस्वातन्त्र्यमहिम्ना भेदाभेदं प्रतिपाद्य वृक्षगत-फलपुष्पादिन्यायेन विकारराहित्येन समवायस्वरूपिणी उपादानकारणीभूता भवति (न्ती) पुनः स्वाऽन्तराकर्षणलक्षणसंहारलीलायां तदिच्छया कूर्मभङ्गिन्यायेन स्वकिरणायमानज्ञानक्रियाशक्तिद्वारा सर्वं स्वात्मन्याकृष्य साक्षादपरोक्षेणाहमिति तत्स्वरूपानुकारिणी शिवाभिन्नस्वरूपिणी अभवत्, भवतीत्यर्थः। न च भेदाभेदयोर्विरोध इति वाच्यम्, तद्भेदस्य स्वातन्त्र्य-परिकल्पितत्वात्, स्वाभाविकभेदाभेदयोरेव विरोधात्, समानसत्ताकयोरिति यावत्, भगवतः शक्तेरघटनघटनापटीयस्त्वात्। तदेतदग्रे तत्र तत्र स्फुटीभविष्यतीति नैष (नात्र) विस्तरः। देवः क्रीडाशील इत्यर्थः।।१३।।

परशिवांच्या ठिकाणी जगाच्या निर्मितीची इच्छा झाल्या-बरोबर त्याच्या ठिकाणी अविनाभाव रूपाने राहाणारी विमर्शशक्ती परशिवाच्या स्वरूपाप्रमाणे सच्चिदानंदस्वरूप स्वीकारून पुढे विभागपरामर्शाच्या अवस्थेत समस्त प्रपंचाच्या उत्पत्तीला उपादान कारण झाली. तात्पर्य, 'नासतो विद्यते भावः' या उक्तीप्रमाणे सृष्टीच्या पूर्वी हे जग परशिवामध्ये अविनाभाव संबंधाने असणाऱ्या विमर्शक्तीमध्ये लीन होते. त्यावेळी मयूराण्डरसाच्या न्यायाप्रमाणे म्हणजे, मोराच्या अंड्यात रस एक प्रकारचाच दिसून आला तरी त्यात त्या पक्ष्याचे पाय, पंख वगैरे अवयव जसे दडलेले असतात तसे ह्या विमर्शशक्तीमध्ये सर्व जग ज्ञानेंद्रियांना किंवा कर्मेंद्रियांना अगोचर अशा स्थितीत लपलेले असते. शिवाच्या इच्छेने ते प्रकट होत असताना, एकाच बीजातून झाड, त्याची पाने, फुले, फळे जशी वेगवेगळ्या रूपात निर्माण झालेली

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

दिसतात, तसे हे जगही विभिन्न रूपांत भासत असले तरी ते मुळात शक्तिस्वरूपच असते. अशा रीतीने शक्ती आणि जग या दोहोंमध्ये भेदाभेद सबंध असतो. कासव आपले परसरलेले पाय जसे संकुचित करून घेते, तसे ही शक्ती जगाचा संहार करते वेळी प्रपंच आपल्यामध्ये लीन करून घेऊन ती स्वतःही परशिवामध्ये लीन होऊन जाते. अशा प्रकारे वीरशैव सिद्धांतामध्ये शक्तीच्या विकासाने सृष्टी घडते आणि तिच्या संकोचाने सृष्टीचा संहार होतो, असे प्रतिपादन केले जाते.।।१३।।

एवं शिवशक्तिस्वरूपं निरूप्याथ "स ऐक्षत लोकानसृजत", "यथापूर्वमकल्पयत्" इत्यादिश्रुत्युक्तप्रकारेण सृष्टिक्रमं निरूपयति—

जगत्सिसृक्षुः प्रथमं ब्रह्माणं सर्वदेहिनाम् ।
कर्तारं सर्वलोकानां विदधे विश्वनायकः ।।१४।।

लोकानां चतुर्दशभुवनानां देहिनां तत्तल्लोकमाश्रित्य विद्यमानानां प्राणिनामित्यर्थः। शिष्टं स्पष्टम्। अस्मिन्नर्थे—"विश्वाधिको रुद्रो महर्षिः। हिरण्यगर्भं जनयामास पूर्वम्" इति याजुषश्रुतेः।।१४।।

शिवसमवेत शक्तीचे स्वरूप सांगून झाल्यावर 'स ऐक्षत' इ. अनेक श्रुतिवचनांनुसार सृष्टीचा क्रम सांगतात—

जगनिर्मितीच्या हेतूने सर्व प्रकारच्या संपत्ती, ज्ञान, यश, शोभा वैराग्य आणि धर्म अशा षड्विध ऐश्वर्यसंपन्न, भगवान, देव, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, आणि विश्वनायक अशा शिवाने चौदा भुवने व त्या भुवनांत आश्रय घेणाऱ्या प्राण्यांची निर्मिती करण्यासाठी समर्थ अशा ब्रह्मदेवाची प्रथम निर्मिती केली. 'विश्वाचा अधिपती असलेल्या रुद्राने प्रथम हिरण्यगर्भ ब्रह्माचे सृजन केले'. असे याजुषश्रुतीत म्हटले आहे. तो ब्रह्मदेवच सृष्टीचा कर्ता झाला. ।।१४।।

अथ—"यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै" इति श्वेताश्वतरश्रुत्यर्थं प्रकटयति—

तस्मै प्रथमपुत्राय शङ्करः शक्तिमान् विभुः ।
सर्वज्ञः सकला विद्याः सानुग्रहमुपादिशत् ।।१५।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

शक्तिमान् समवेतशक्तिमानित्यर्थः। अनुग्रहेण सहितं यथा भवति तथा वेदादिसकलशास्त्रमुपदिष्टवानित्यर्थः।।१५।।

यापुढे श्वेताश्वतंर श्रुतीच्या वचनानुसार ब्रह्मचास उपदेश करतात—सर्वज्ञ शिवाने शक्तियुक्त होऊन त्या प्रथम निर्मिलेल्या आपल्या मुलाला—ब्रह्मदेवाला अनुग्रहपूर्वक सर्व विद्यांचा उपदेश केला.।।१५।।

समस्तलोकान्निर्मातुं समुद्यमपरोऽभवत् ।
कृतोद्योगोऽपि निर्माणे जगतां शङ्कराज्ञया ।।
अज्ञातोपायसम्पत्तेरभवन्माययावृतः ।।१६।।

स्पष्टम् ।।१६।।

जगन्नियामक परमेश्वर-श्रीशंकरापासून प्राप्त झालेल्या सर्व विद्यांच्या आधाराने आणि त्याच्या आज्ञेने ब्रह्मदेवाने जगनिर्मितीचा उद्योग सुरू केला. तरीही तो मायेने आवृत झाल्यामुळे त्याला सृष्टी निर्माण करण्याचा उपाय सुचेना.।।१६।।

विधातुमखिलान् लोकानुपायं प्राप्तुमिच्छया ।
पुनस्तं प्रार्थयामास देवदेवं त्रियम्बकम् ।।१७।।

मग सर्व जग कसे उत्पन्न करावे याचा उपाय समजण्यासाठी ब्रह्मदेवाने पुन्हा देवाधिदेव महादेवाची प्रार्थना केली.।।१७।।

अथ तत्प्रार्थनप्रकारं दर्शयति—

नमस्ते देवदेवेश नमस्ते करुणाकर ।
अस्मदादिजगत्सर्वनिर्माणनविधिक्षम ।।१८।।

ब्रह्मदेवाने केलेल्या प्रार्थनेचे प्रकार सांगतात— हे देवाधिदेवा, तुला नमस्कार असो. हे करुणाकरा तुला नमस्कार असो. माझ्यासहित सर्व त्रैलोक्याची उत्पत्ती करण्यास त्त समर्थ आहेस.।।१८।।

उपायं वद मे शम्भो जगत्स्रष्टः! जगत्पते ।
सर्वज्ञः सर्वशक्तिस्त्वं सर्वकर्ता सनातनः ।।१९।।

अत्रोपायकथने सर्व इत्यादिकं हेतुगर्भविशेषणम्।।

सृष्टिनिर्माता, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान आणि नित्य अशा जगदीशा, सृष्टी उत्पन्न करण्याचा उपाय मला सांग.।।१९।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इति संप्रार्थितः शम्भुर्ब्रह्मणा विश्वनायकः ।
उपायमवदत् तस्मै लोकसृष्टिप्रवर्तनम् ।।२०।।

या प्रमाणे ब्रह्मदेवाने विश्वनायक शकराची प्रार्थना केली तत्क्षणी शकराने त्याला सृष्टिनिर्मितीचा उपाय सांगितला.।।२०।।

उपायमीश्वरेणोक्तं लब्ध्वाऽपि चतुराननः।
न समर्थोऽभवत् कर्तुं नानारूपमिदं जगत्।।२१।।

विश्वनिर्माणे शिवेन लब्धोपायवानपि ब्रह्मा न समर्थोऽभवत्। कुत इत्यत्र हेतुगर्भविशेषणम्--नानारूपमिति। जगतो नानारूपत्वादिति भावः।।२१।।

शंकराने जगनिर्मितीचा उपाय ब्रह्मदेवाला शिकविला, तरी त्याला हे विविध प्रकारचे जग निर्माण करता येईना.।।२१।।

अथ तत्प्रकारं वर्णयति--

पुनस्तं प्रार्थयामास ब्रह्मा विह्वलमानसः।
देवदेव महादेव जगत्प्रथमकारण ।।२२।।

अतो विह्वलमानसो भययुक्तमानसः सन् पुनः शिवं प्रार्थयामासेत्यर्थः।।२२।।

भयभीत ब्रह्मदेवाने पुन्हा शंकराची प्रार्थना केली; देवाधिदेवा, महादेवा, तू जगतोत्पत्तीचे मूल कारण आहेस.।।२२।।

नमस्ते सच्चिदानन्द स्वेच्छाविग्रहराजित ।
भव शर्व महेशान सर्वकारणकारण ।।२३।।

भव सर्वलोकोत्पादक, शर्व सर्वसंहारक, सर्वकारणकारण बिन्दुमायादिसर्वकारणकारणेत्यर्थः ।।२३।।

तुला भव (सर्वलोकोत्पादक) शर्व (सर्वसंहारक), महेशान (सर्वशासक) अशी नावे असून तू सर्व बिंदुमायादी कारणांचा कारण आहेस. तू सच्चिदानंदस्वरूप आहेस. तू आपल्या इच्छेप्रमाणे शरीर धारण करतोस, अशा तुला नमस्कार असो.।।२३।।

तर्हि किं कर्तव्यमित्यत्राह--

भवदुक्तो ह्युपायो मे न किञ्चिज्ज्ञायतेऽधुना ।
सृष्टिं विधेहि भगवन् प्रथमं परमेश्वर ।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ज्ञातोपायस्ततः कुर्यां जगत्सृष्टिमुमापते ।।२४।।

स्पष्टम्।।२४।।

तू जगनिर्मिताचा उपाय मला सागितलास खरा, परंतु त्यापैकी मला काहीही समजले नाही. म्हणून हे भगवन्, तू अगोदर सृष्टी निर्माण कर. उमापते, तू निर्माण केलेली सृष्टी पाहून मला सृष्टिनिर्मिती कशी करावी हे कळेल. नतर मी सृष्टी निर्माण करीन.।।२४।।

अथ— "प्रजाः सृजेति निर्दिष्टश्चन्द्रमौलिर्विरिञ्चिना। ससर्ज मनसा रुद्रानात्मतुल्यान् महेश्वरान्।। नीलकण्ठांस्त्रिनेत्रांश्च जटामुकुटमण्डितान्।।" इत्याद्यादित्यपुराणवचनानुसारेण सृष्टवानित्याह—

इत्येवं प्रार्थितः शम्भुर्ब्रह्मणा विश्वयोनिना ।
ससर्जात्मसमप्रख्यान् सर्वगान् सर्वशक्तिकान् ।।२५।।

स्पष्टम्।।२५।।

'प्रजा निर्माण करावी अशी ब्रह्मदेवाची प्रार्थना ऐकून महादेवाने आपल्या सारखेच जटाधारी, नीलकण्ठ, त्रिनेत्रधारी अशा रुद्राची सृष्टी निर्माण करून दाखविली,' असे आदित्यपुराणवचन आहे. त्या प्रमाणे सृष्टी निर्माण केली असे सांगतात—

या प्रमाणे विश्व उत्पन्न करणाऱ्या ब्रह्मदेवाने शंकराची प्रार्थना केली. तेव्हा शंकरानी आपल्यासारखेच प्रसिद्ध, सर्वगामी व शक्तियुक्त असे प्रमथगण निर्माण केले.।।२५।।

प्रबोधपरमानन्दपरिवाहितमानसान् ।
प्रमथान् विश्वनिर्माणप्रलयापादनक्षमान् ।।२६।।

स्पष्टम्।।२६।।

ते प्रमथगण ज्ञानसंपन्न असून शिवानंदात त्यांची मने सदैव डुंबत असत. जग निर्माण करणे, त्याचे पालन करणे व त्याचा संहार करणे ह्या गोष्टी सहज करण्याचे सामर्थ्य त्यांच्याजवळ होते.।।२६।।

तेषु प्रमथवर्गेषु सृष्टेषु परमात्मना ।
रेणुको दारुकश्चेति द्वावभूतां शिवप्रियौ ।।२७।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

स्पष्टम्।।२७।।

परमात्म्याने निर्मिलेल्या त्या पूर्वोक्त प्रमथ-समुदायात रेणुक आणि दारुक या नावाचे दोघे प्रमथ शिवाला अत्यंत प्रिय होते.।।२७।।

अथ तद्गणेश्वरयोर्माहात्म्यं पञ्चभिः श्लोकैः प्रकटयति—

सर्वविद्याविशेषज्ञौ सर्वकार्यविचक्षणौ ।
मायामलविनिर्मुक्तौ महिमातिशयोज्ज्वलौ ।।२८।।

स्पष्टम्।।२८।।

त्या दोन प्रमथांचे माहात्म्य पुढील पाच श्लोकांत स्पष्ट करतात—ते दोघे सर्व विद्येतील मर्म जाणणारे असून सर्व कार्यात अत्यंत चतुर होते. आणव, मायिक व कार्मिक या त्रिमलापासून ते मुक्त होते. ते अत्यंत प्रभावी असून तेजःपुंज होते.।।२८।।

आत्मानन्दपरिस्फूर्तिरसास्वादनलम्पटौ ।
शिवतत्त्वपरिज्ञानतिरस्कृतभवामयौ ।।२९।।

मायामलविनिर्मुक्तौ मायाशक्तिपरिकल्पिताणवादिमलत्रयसम्बन्धरहिता-वित्यर्थः।।२९।।

आत्मानंदातून निर्माण झालेल्या रसास्वादात ते तल्लीन झाले होते आणि शिवतत्त्वाचे यथार्थ ज्ञान झाल्यामुळे त्याचा संसाररूपी रोग दूर झाला होता. अर्थात् त्याना जन्ममरणाचे भय नव्हते.।।२९।।

नानापथमहाशैवतन्त्रनिर्वाहतत्परौ ।
वेदान्तसारसर्वस्वविवेचनविचक्षणौ ।।३०।।

स्पष्टम्।।३०।।

अनेक युक्तिप्रयुक्तीने महाशैवतंत्राची प्रतिष्ठापना करण्याचे सामर्थ्य असलेले व उपनिषदांचे सारसर्वस्व उलगडून दाखविण्यात प्रवीण असे ते दोघे होते.।।३०।।

नित्यसिद्धौ निरातङ्कौ निरङ्कुशपराक्रमौ ।
तादृशौ तौ महाभागौ संवीक्ष्य परमेश्वरः ।।३१।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

नित्यसिद्धौ नित्यभूतसिद्धिमन्तौ, स्पष्टमन्यत्।।३१।।

शाश्वत रूपाने अणिमादिसिद्धी प्राप्त झालेले अपराजित पराक्रमी अशा त्या दोघा भाग्यवंताना पाहून,।।३१।।

समर्थौ सर्वकार्येषु विश्वासपरमाश्रितौ ।
अन्तःपुरद्वारपालौ निर्ममे नियतौ विभुः ।।३२।।

नियतौ शुद्धात्मानौ एवंरूपरेणुकदारुकौ विभुः स्वतन्त्रः परमेश्वरः, अन्तःपुरद्वारपालौ निर्ममे निर्मितवानित्यर्थः।।३२।।

अत्यंत परिशुद्ध आत्म्याचे, सर्व कामांत समर्थ आणि अत्यंत विश्वसनीय, अशा त्या दोघांस महादेवांनी आपल्या अंतःपुराचे द्वारपाल केले.।।३२।।

अथ तौ रेणुकदारुकौ शिवसेवां चक्रतुरित्याह—

गणेश्वरौ रेणुकदारुकावुभौ विश्वासभूतौ नवचन्द्रमौलेः।
अन्तःपुरद्वारगतौ सदा तौ वितेनतुर्विश्वपतेस्तु सेवाम्।।३३।।

इति श्रीसिद्धान्तशिखामणौ रेणुकदारुकावतरणं नाम
द्वितीयः परिच्छेदः।।

स्पष्टम्।।३३।।

इति श्रीमत्पदवाक्यप्रमाणपारावारधुरीणश्रीमरितोण्टदार्येण विरचितायां तत्त्वप्रदीपिकाख्यायां सिद्धान्तशिखामणिव्याख्यायां रेणुकदारुकावतरणं नाम द्वितीयः परिच्छेदः।।

मस्तकावर नवचंद्र धारण करणाऱ्या शंकराचे रेणुक आणि दारुक हे दोघे गणेश्वर अत्यंत विश्वासातील होते व अंतःपुराच्या दारावर पहारा करून ते सदैव शंकराची सेवा करीत होते.।।३३।।

ह्या प्रमाणे सिद्धांतशिखामणी ग्रंथातील रेणुक आणि दारुक ह्या दोघा प्रमथगणांचा जन्म नावाचा दुसरा परिच्छेद संपला

द्वितीय परिच्छेद समाप्त।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तृतीयः परिच्छेदः

अथात्र शिवयोगिनो रेणुकस्य भूलोकावतरणप्रसङ्गकथनार्थं प्रथममष्टभिः श्लोकैः कैलासवर्णनं करोति–

कदाचिदथ कैलासे कलधौतशिलामये ।
गन्धर्ववामनयनाक्रीडामौक्तिकदर्पणे ।।१।।

अथ रेणुकावतरणानन्तरं कदाचिद् रजतमयपाषाणप्रदेशे गन्धर्ववनिता-क्रीडाया मौक्तिकदर्पणे ।।१।।

श्रीजगद्गुरू रेणुकाचार्यांचे भूलोकी अवतरणप्रसंगाचे वर्णन करण्यापूर्वी आठ श्लोकांत कैलासाचे वर्णन करतात–

एकदा चांदीच्या शिलांनी भरलेला कैलासपर्वत गंधर्वस्त्रियांच्या क्रीडेसाठी केलेला मोत्यांचा आरसा असल्यासारखा दिसत होता.।।१।।

मन्दारवकुलाशोकमाकन्दप्रायभूरुहे ।
मल्लीमरन्दनिष्यन्दपानपीनमधुव्रते ।।२।।

मन्दारमाकन्दादिनानावृक्षवति मल्लिकाकुसुममकरन्दस्रवणपानपरिपुष्ट-भ्रमरे।।२।।

कैलास पर्वत मंदार, बकुल, अशोक, आंबा आदी जातीच्या अनेक वृक्षांची दाटी असलेला, बटमोगरा वगैरे फुलझाडांच्या फुलांतील मकरंद पिऊन पुष्ट झालेल्या भ्रमरांनी भरलेला होता.।।२।।

कुङ्कुमस्तबकामोदकूलङ्कषहरिन्मुखे ।
कलकण्ठकुलालापकन्दलद्रागबन्धुरे ।।३।।

कुङ्कुमकुसुमगुच्छामोदभरितकूलस्पृशन्नदीप्रवाहवति कोकिलसमूहरवबाहुल्यो-द्भवपञ्चमस्वरमनोहरे ।।३।।

लाल रंगाच्या सुवासिक फुलांच्या झुपक्यांमुळे कैलासपर्वताच्या सर्व दिशा सुगंधित झालेल्या होत्या. तेथील झाडांवर अनेक कोकिलपक्षी बसून मधुर गायन करीत होते. त्यांचा मधुर शब्द सर्वत्र भरून राहिला होता.।।३।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

किन्नरींगीतमाधुर्यपरिवाहितगह्वरे ।
सानन्दवरयोगीन्द्रवृन्दालङ्कृतकन्दरे ।।४।।

किन्नरस्त्रीगीतमाधुर्यप्रवाहितगुहाप्रदेशे सानन्दगणेशमुख्यशिवयोगिसमूहालङ्कृतप्रदेशभागवति ।।४।।

कैलास पर्वतावर किन्नरस्त्रिया मधुर स्वराने गायन करीत होत्या. त्यांच्या मंजुळ शब्दाने तेथील सर्व गुहा दुमदुमत होत्या व त्या गुहांत सानंदगणेश्वरादी शिवयोगी ध्यान लावून बसल्यामुळे त्यांस अप्रतिम शोभा आली होती.।।४।।

हेमारविन्दकलिकासुगन्धिरसमानसे ।
शातकुम्भमयस्तम्भशतोत्तुङ्गविराजिते ।।५।।

हेमारविन्दकलिकामोदरसभरितमानससरोवरे स्वर्णमयस्तम्भशतौन्नत्यप्रकाशमाने ।।५।।

कैलास पर्वतावर सुवर्ण-कमलकलिकांच्या सुगंधरसाने मानस सरोवर भरलेले होते. तेथील शेकडो उंच शिखरे सुवर्णमय स्तंभाप्रमाणे शोभत होती.।।५।।

माणिक्यदीपकलिकामरीचिद्योतितान्तरे ।
द्वारतोरणसंरूढशङ्खपद्मनिधिद्वये ।।६।।

मणिप्रदीपकलिकाकारशिखामयूखप्रकाशितान्तःपुरे द्वारतोरणस्तम्भसंलग्नशङ्खपद्मनिधिद्वये ।।६।।

माणिक्य-रत्न-दीपांच्या किरणप्रकाशाने कैलासाचे अंतःपुर उजळलेले होते. महाद्वाराच्या तोरण-स्तंभावर शंख आणि पद्म ठेवलेले होते.।।६।।

मुक्तातारकितोदारवितानाम्बरमण्डिते ।
स्पर्शलक्षितवैडूर्यमयभित्तिपरम्परे ।।७।।

मुक्तामणिरचितनक्षत्रवन्महावितानपटालङ्कृते स्पर्शविद्युपलक्षितवैडूर्यरत्नमयभित्तिश्रेणिमति।।७।।

कैलास पर्वतावरील गृहाला आकाशासारखा मोठा मंडप असून त्याला मोत्यांच्या झालरी बांधलेल्या होत्या. त्यातील मोत्ये नक्षत्रांसारखी शोभत होती. तेथील भिंतीत परिस आणि

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इंद्रनीलमणी रत्नांचे तुकडे जडविल्यामुळे त्या फार शोभत होत्या.।।७।।

संचरत्प्रमथश्रेणीपदवाचालनूपुरे ।
प्रवालवलभीशृङ्गशृङ्गारमणिमण्टपे ।।८।।

संचरत्प्रमथपादप्रदेशकूजत्कटके प्रवालवलभीमुख्यशृङ्गारमणिमण्टपे।।८।।

जेथे प्रमथगणांच्या संचारामुळे त्यांच्या पायातील घुंगुरांचा ध्वनी होत होता. असा तो मंडप पोवळ्यांनी जडविलेल्या प्राकारशिखरांनी शोभत होता.।।८।।

सिंहासनमध्यस्थितं परमेश्वरं पञ्चदशभिः श्लोकैर्वर्णयति—

वन्दारुदेवमुकुटमन्दाररसवासितम् ।
रत्नसिंहासनं दिव्यमध्यस्तं परमेश्वरम् ।।९।।

नमनशीलत्रयस्त्रिंशत्कोटिदेवतामुकुटकल्पप्रसूनरसमनोहरं नवरत्नमयसिंहासनं तन्मण्टपमध्ये भाति ।।९।।

वर वर्णिलेल्या मंडपाच्या मध्यभागी असलेल्या सिंहासनावर बसलेल्या परमेश्वराचे वर्णन पंधरा श्लोकांतून करतात—

वंदना करणाऱ्या तेहतीस कोटी देवांच्या मुकुटांतील मंदारपुष्पांच्या परिमळाने सुगंधित झालेल्या दिव्य अशा नवरत्नखचित सिंहासनावर परमेश्वर विराजमान होता.।।९।।

तमास्थानगतं देवं सर्वलोकमहेश्वरम् ।
त्रय्यन्तकमलारण्यविहारकलहंसकम् ।।१०।।

तत्र विद्यमानः परमेश्वरः कीदृश इत्यत्राह—देवमित्यादिना । क्रीडाशीलः सर्वलोकेशो वेदान्तमयकमलसमूहविहारराजहंसः ।।१०।।

देवांच्या दरबारात मध्यभागी बसलेल्या सर्व लोकांचा महेश्वर हा उपनिषदरूपी कमलारण्यात विहार करणाऱ्या राजहंसाप्रमाणे शोभत होता.।।१०।।

उदारगुणमोङ्कारशुक्तिकापुटमौक्तिकम् ।
सर्वमङ्गलसौभाग्यसमुदायनिकेतनम् ।।११।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

त्यागशील ॐकारशुक्तिकापुटमौक्तिकः सर्वमङ्गलसौभाग्यसमूहस्थानभूतः ।।११।।

सर्व प्रकारचे मंगल आणि सौभाग्यसमूहाचे आगार असणारा अत्यंत उदार असा परमेश्वर ओंकाररूपी शिंपल्यातील मोत्याप्रमाणे शोभत होता.।।११।।

संसारविषमूर्च्छालुजीवसंजीवनौषधम् ।
नित्यप्रकाशनैर्मल्यकैवल्यसुरपादपम् ।।१२।।

संसारविषमूर्च्छितजीवसंजीवनौषधः स्वप्रकाशेनैव निर्मलः परमुक्तिप्रदानकल्पद्रुमः ।।१२।।

तो परमेश्वर संसारविषाने मूर्च्छित झालेल्या जीवांना संजीवनी औषधासारखा, स्वयंप्रकाशी, निर्मल स्वभावाचा आणि शरणागत भक्तांसाठी मोक्षदायक कल्पवृक्षच होता.।।१२।।

अनन्तपरमानन्दमकरन्दमधुव्रतम् ।
आत्मशक्तिलतापुष्यत्त्रिलोकीपुष्पकोरकम् ।।१३।।

अपारपरमानन्दरसास्वादनमधुव्रतः स्वसमवेतशक्तिकल्पलतापुष्यल्लोकत्रयकुसुमकोरकः ।।१३।।

अमर्याद परमानंदरूपी मकरंदाचा आस्वाद घेणाऱ्या भ्रमराप्रमाणे आणि आपल्या ठिकाणी नित्य असलेल्या शक्तिरूपी लतेवर उमलणाऱ्या त्रिलोकरूपी पुष्पाच्या कळीसारखा शोभत होता.।।१३।।

ब्रह्माण्डकुण्डिकाषण्डपिण्डीकरणपण्डितम् ।
समस्तदेवताचक्रचक्रवर्तिपदे स्थितम् ।।१४।।

ब्रह्माण्डसमूहलोलीकरणप्रवीणो नारायणादिसकलदेवतासमूहचक्रवर्ती ।।१४।।

अनंत ब्रह्मांडरूपी पात्राना एकरूप करण्याच्या कार्यात कुशल असा परमेश्वर सर्व देवतांच्या सभूहात चक्रवर्ती सम्राटासारखा शोभत होता.।।१४।।

चन्द्रबिम्बायुतच्छायादायादद्युतिविग्रहम् ।
माणिक्यमुकुटज्योतिर्मञ्जरीपिञ्जराम्बरम् ।।१५।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

चन्द्रायुतप्रभास्पर्धमानतेजा मुकुटगतनवरत्नज्योतिर्मञ्जरीविचित्राम्बरः ।।१५।।

दहा हजार चंद्रबिंबांच्या कांतीशी स्पर्धा करणारी अशी त्याची देहकांती होती. आणि वंदन करणाऱ्या देवतांच्या मुकुटांवर जडविलेल्या रत्नांच्या प्रभेने त्याचे वस्त्र पिंगट दिसत होते.।।१५।।

चूडालं सोमकलया सुकुमारबिसाभया ।
कल्याणपुष्पकलिकाकर्णपूरमनोहरम् ।।१६।।

कोमलकन्दाभसोमकलाशिरोभूषणः परममङ्गलसुमकुड्मलकर्णाभरणमनोहरः ।।१६।।

कोमल कमलतंतूसारखी चंद्रकला त्याच्या मस्तकावर तुऱ्याप्रमाणे शोभत होती आणि कल्याणपुष्पाची कळी कर्णालंकाराप्रमाणे धारण केल्यामुळे तो शोभून दिसत होता.।।१.६।।

मुक्तावलयसम्बद्धमुण्डमालाविराजितम् ।
पर्याप्तचन्द्रसौन्दर्यपरिपन्थिमुखश्रियम् ।।१७।।

मुक्ताप्रकरवलितमुण्डमालाविराजितः पूर्णचन्द्रसौन्दर्यपरिपन्थिमुखश्रीः ।।१७।।

मोत्यांनी गुंफलेली मुंडमाला त्याने आपल्या गळ्यात घातली असल्यामुळे शोभणाऱ्या परमेश्वराची मुखकांती पूर्णचंद्राच्या सौंदर्याला लाजवीत होती.।।१७।।

प्रातःसंफुल्लकमलपरियायत्रिलोचनम् ।
मन्दस्मितमितालापमधुराधरपल्लवम् ।।१८।।

प्रातःप्रफुल्लकमलपर्यायित्रिलोचनः, मन्दस्मितपरिमितवचोविलासमनोहराधरपल्लवः ।।१८।।

शंकराचे तीन नेत्र सकाळी उमललेल्या कमलांप्रमाणे प्रफुल्लित दिसत होते. मंदस्मित व मितभाषणामुळे त्याच्या ओठांच्या पाकळ्या सुंदर दिसत होत्या.।।१८।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

गण्डमण्डलपर्यन्तक्रीडन्मकरकुण्डलम् ।
कालिम्ना कालकूटस्य कण्ठनाले कलङ्कितम् ।।१९।।

कपोलाभोगपर्यन्तचलन्मकरकुण्डलः कालकूटकालिम्ना कलङ्कितकण्ठनालः ।।१९।।

त्याच्या कानातील मकरकुंडले गालापर्यंत रुळत होती आणि हलाहल विषप्राशनामुळे त्याचा गळा निळसर दिसत होता.।।१९।।

मणिकङ्कणकेयूरमरीचिकरपल्लवैः ।
चतुर्भिः संविराजन्तं बाहुमन्दारशाखिभिः ।।२०।।

मणिमयकङ्कणकेयूरप्रकाशमानकरपल्लवचतुष्कः, बाहुकल्पद्रुमभासमानः ।।२०।।

रत्नकंकण आणि बाजुबंदातील रत्नप्रभेमुळे त्याच्या हाताची बोटे नव्या पालवी प्रमाणे दिसत असून त्याचे चार बाहू कल्पवृक्षाच्या शाखांप्रमाणे शोभत होते.।।२०।।

गौरीपयोधराश्लेषकृतार्थभुजमध्यमम् ।
सुवर्णब्रह्मसूत्राङ्कं सूक्ष्मकौशेयवाससम् ।।२१।।

उमापयोधरालिङ्गनकृतार्थवक्षःस्थलः, कनकमयब्रह्मसूत्राङ्कितः, अतिसूक्ष्मदुकूलाम्बरः ।।२१।।

पार्वतीच्या आलिंगनाने शंकराच्या वक्षस्थलाचे सार्थक झाले होते. त्याच्या गळ्यात सोन्याचे यज्ञोपवीत असून त्याने तलम व उंची रेशमी वस्त्र नेसलेले होते.।।२१।।

नाभिस्थानावलम्बिन्या नवमौक्तिकमालया ।
गङ्गयेव कृताश्लेषं मौलिभागावतीर्णया ।।२२।।

नाभिपर्यन्तगतनवमौक्तिकमालया मस्तकावतीर्णया गङ्गयेव कृतालिङ्गनः ।।२२।।

त्याने आपल्या गळ्यात नाभीपर्यंत रुळणारी उत्तम तेजस्वी मोत्यांची माळ घातली होती. त्यामुळे जटेतून निघणाऱ्या गंगेने जणू त्याला आलिंगन दिल्यासारखे दिसत होते.।।२२।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पदेन मणिमञ्जीरप्रभापल्लवितश्रिया ।
चन्द्रवत्स्फाटिकं पीठं समावृत्य स्थितं पुरः ।।२३।।

मणिमयनूपुरप्रकाशपल्लवितश्रिया पादेन सिंहासनस्य पुरतश्चन्द्रकान्तमयफलकमावृत्य वर्तमान इत्यर्थः ।।२३।।

चंद्र कांतमणिनिर्मित चौरंगावर, रत्ननूपुरांच्या तेजाने शोभीवंत दिसणारा एक पाय पुढे सोडून व दुसरा दुमडून श्रीशंकर ताठ बसले होते.।।२३।।

एवं महेश्वरं वर्णयित्वाऽथ तद्वामाङ्कसंस्थितां भवानीं त्रयोदशसूत्रैर्वर्णयति--

वामपार्श्वनिवासिन्या मङ्गलप्रियवेषया ।
समस्तलोकनिर्माणसमवायस्वरूपया ।।२४।।

तद्वामपार्श्ववर्तिनी माङ्गल्येनासेचनकरूपवती सकललोकसृष्टावुपादानकारणीभूता ।।२४।।

अशा प्रकारे महेश्वराचे वर्णन केल्यानंतर त्याच्या डाव्या मांडीवर बसलेल्या पार्वतीचे वर्णन तेरा श्लोकांतून करतात—

सर्व जगाच्या निर्मितीला उपादान कारणभूत असलेली पार्वती परमेश्वराच्या वामभागी मंगल व प्रिय वेषात बसलेली होती.।।२४।।

इच्छाज्ञानक्रियारूपबहुशक्तिविलासया ।
विद्यातत्त्वप्रकाशिन्या विनाभावविहीनया ।।२५।।

इच्छाज्ञानक्रियादिबहुशक्तिविलासवती आत्मविद्याप्रकाशिनी शिवेनाविनाभूता ।।२५।।

इच्छा-ज्ञान-क्रियारूप बहुविध शक्तींनी युक्त, आत्मविद्यातत्त्व प्रकाशणारी पार्वती परमात्म्याशी अविनाभाव संबंधाने शोभत होती.।।२५।।

संसारविषकान्तारदाहदावाग्निलेखया ।
धम्मिल्लमल्लिकामोदझङ्कुर्वद्भृङ्गमालया ।।२६।।

संसारविषविपिनदाहदावाग्निराजिः, धम्मिल्लमल्लिकामोदझङ्कुर्वदलिमालिका ।।२६।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

संसार-विषाच्या वनाला दावाग्निज्वालेसमान असणाऱ्या पार्वतीच्या केशकलापात खोवलेल्या मल्लिकापुष्पाच्या सुवासाने भ्रमर मंडलाकार गतीने गुंजारव करीत होते.।।२६।।

सम्पूर्णचन्द्रसौभाग्यसंवादिमुखपद्मया ।
नासामौक्तिकलावण्यनाशीरस्मितशोभया ।।२७।।

पूर्णचन्द्रकान्तिविवदन्मुखपङ्कजा नासामौक्तिकलावण्यबाहुल्यच्छुरित-मन्दस्मितकान्तिमती ।।२७।।

पूर्णचंद्रासमान कांतियुक्त असे मुखकमल असणाऱ्या पार्वतीने तेजस्वी मोत्यांची नथ धारण केल्यामुळे तिचे मंद हास्य अधिकच शोभायमान दिसत होते.।।२७।।

मणिताटङ्करङ्गान्तर्वलितापाङ्गलीलया ।
नेत्रद्वितयसौन्दर्यनिन्दितेन्दीवरत्विषा ।।२८।।

रत्नखचितताटङ्करङ्गमण्टपमध्यलास्यमानापाङ्गलीला नयनद्वयसौन्दर्य-निन्दितेन्दीवरश्रीः ।।२८।।

पार्वतीने कानात धारण केलेल्या अलंकारांच्या रंगमंचावरील तिच्या नेत्रकटाक्षलीलेमुळे तिच्या नेत्रांना नीलकमलांना लाजविणारी शोभा प्राप्त झाली होती.।।२८।।

कुसुमायुधकोदण्डकुटिलभ्रूविलासया ।
बन्धूककुसुमच्छायाबन्धुभूताऽधरश्रिया ।।२९।।

मारकार्मुककुटिलभ्रूलताविलासवती बन्धूककुसुमकान्तिबन्धुराधरश्रीः ।।२९।।

तिच्या भुवयांची वक्र लीला मदनाच्या धनुष्याप्रमाणे शोभत होती. तिचे दोन्ही ओठ जास्वंदीच्या फुलांप्रमाणे लालचुटुक दिसत होते.।।२९।।

कण्ठनालजितानङ्गकम्बुबिब्बोकसम्पदा ।
बाहुद्वितयसौभाग्यवञ्चितोत्पलमालया ।।३०।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कण्ठनालजितानङ्गजयशङ्खनिनादवती बाहुद्वितयसौभाग्यन्यक्कृतोत्पल-मालिका ।।३०।।

पार्वतीचा गळा आकृतीने आणि ध्वनिमाधुर्याने मदनाच्या विजयशंखाला जिंकणारा आणि तिचे दोन्ही हात नीलकमलाच्या माळेस लाजविणारे होते.।।३०।।

स्थिरयौवनलावण्यशृङ्गारितशरीरया ।
अत्यन्तकठिनोत्तुङ्गपीवरस्तनभारया ।।३१।।

स्थिरयौवनलावण्यालङ्कृतकलेवरा अत्यन्तकठिनोत्तुङ्गस्तनभारवती।।३१।।

चिरयौवनाच्या लावण्याने आणि उन्नत व पुष्ट स्तनभाराने तिचे शरीर शोभत होते.।।३१।।

मृणालवल्लरीतन्तुबन्धुभूतावलग्नया ।
शृङ्गारतटिनीतुङ्गपुलिनश्रोणिभारया ।।३२।।

कमलनालतन्तुनिभातिसूक्ष्ममध्यप्रदेशा शृङ्गारतरङ्गिणीतुङ्गपुलिनश्रोणि-भारविराजिता ।।३२।।

कमळवेलीच्या देठासारखी नाजुक कंबर असलेल्या पार्वतीचे नितंब श्रृंगाररूपी सरितेच्या वाळवंटातील उंचवट्या प्रमाणे शोभत होते.।।३२।।

कुसुम्भकुसुमच्छायाकोमलाम्बरशोभया ।
शृङ्गारोद्यानसंरम्भरम्भास्तम्भोरुकाण्डया ।।३३।।

कुसुम्भकुसुमकान्तिमत्कोमलाम्बरशोभमाना शृङ्गारोद्यानसम्भ्रमरम्भा-स्तम्भायमानोरुकाण्डा ।।३३।।

पार्वतीने कुसुंब्याच्या फुलांचा रंग असलेले कोमल वस्त्र परिधान केले होते. तिच्या मांड्या शृंगारोद्यानातील केळीच्या गाभ्यासारख्या नाजुक होत्या.।।३३।।

चूतप्रवालसुषुमासुकुमारपदाब्जया। ।
स्थिरमङ्गलशृङ्गारभूषणालङ्कृताङ्गया ।।३४।।

चूतपल्लवमनोहरसुकुमारपदाब्जा स्थिरमाङ्गल्यभूषणालङ्कृताङ्गी।।३४।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तिचे चरणकमल आंब्याच्या कोवळ्या पानासारखे तांबूस रंगाचे होते. तिने आपले शरीर चिरमंगलदायक सौभाग्यलंकारांनी सुशोभित केले होते.।।३४।।

हारनूपुरकेयूरंचमत्कृतशरीरया ।
चक्षुरानन्दलतया सौभाग्यकुलविद्यया ।।३५।।

मुक्ताहारमञ्जीरकेयूरचमत्कृतशरीरिणी नयनानन्दलतिका सौभाग्यस्य कुलविद्यारूपिणी ।।३५।।

गळ्यात मोत्यांच्या माळा, पायात पैंजण, दंडात बाजूबंद अशा अलंकारांनी तिचे शरीर विलक्षण सुंदर दिसत होते. डोळ्याना आनंद देणारी तिची देहलता सर्वसौभाग्याची कुलविद्यास्वरूपिणी होती.।।३५।।

उमया सममासीनं लोकजालकुटुम्बया ।
अपूर्वरूपमभजन् परिवाराः समन्ततः ।।३६।।

लोकसमूहकुटुम्बिनी एवंरूपयोमया दिव्यकन्यकया सह दिव्यसिंहासने समासीनमपूर्वरूपं परमेश्वरं समन्तान्नारायणादित्रयस्त्रिंशत्कोटिदेवता अभजन्नित्यर्थः ।।३६।।

जगातील सर्व लोक जिचे कुटुंब आहेत अशा उमेसह शंकर कैलाससभेत सिंहासनावर बसले असता सभोवताली तेहतीस कोटी देवतांच्या परिवाराला अपूर्व शोभा प्राप्त झाली होती.।।३६।।

एवं पार्वतीपरमेश्वरौ वर्णयित्वाग्रे विंशतिसूत्रैस्ताभिर्देवताभिर्विधीयमानां सेवां वर्णयति—

पुण्डरीकाकृति स्वच्छं पूर्णचन्द्रसहोदरम् ।
दधौ तस्य महालक्ष्मीः सितमातपवारणम् ।।३७।।

श्वेतकमलवन्निर्मलं पूर्णचन्द्रसहोदरं श्वेतच्छत्रं महालक्ष्मीस्तस्य परमेश्वरस्य धृतवतीत्यर्थः ।।३७।।

अशा रीतीने पार्वती-परमेश्वराचे वर्णन केल्यानंतर देवतांकडून केल्या जाणाऱ्या सेवेचे वर्णन पुढील वीस श्लोकांत करतात—

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

महालक्ष्मीने श्वेतकमलाप्रमाणे स्वच्छ, पौर्णिमेच्या चंद्रासारखे मनोहर असे शुभ्र छत्र पार्वती-परमेश्वराच्या डोक्यावर धरून ती त्याची सेवा करीत होती.।।३७।।

तन्त्रीझङ्कारशालिन्या सङ्गीतामृतविद्यया ।
उपतस्थे महादेवमुपान्ते च सरस्वती ।।३८।।

कूजन्नवरत्नमयकङ्कणसमूहयुक्तहस्तेनोपनिषद्भास्वरमण्डलतन्त्रीझङ्कारशोभमानसङ्गीतरसविद्यया सरस्वती समीपे महादेवं सेवितवतीत्यर्थः ।।३८।।

सरस्वती उमामहेश्वराच्या समीप राहून आपल्या नवरत्न-कंकणयुक्त हाताने वीणेच्या तारा छेडून मधुर झंकारयुक्त अमृतमय गायनाने त्यांची सेवा करीत होती.।।३८।।

झणत्कङ्कणजातेन हस्तेनोपनिषद्वधूः ।
ओङ्कारतालवृन्तेन वीजयामास शङ्करम् ।।३९।।

कूजन्नवरत्नमयकङ्कणसमूहयुक्तहस्तेनोपनिषद्वधूः ॐकारव्यजनेन शिवं वीजयामासेत्यर्थः ।।३९।।

उपनिषद्रूपी स्त्रिया ॐकाररूप पंख्याने उमाशंकरास, रत्न-जडित कंकणांचा मधुर ध्वनी होत असलेल्या हातांनी वारा घालीत होत्या.।।३९।।

चलच्चामरिकाहस्ता झङ्कुर्वन्मणिकङ्कणाः ।
आसेवन्त तमीशानमभितो दिव्यकन्यकाः ।।४०।।

दिव्यकन्यका इन्द्राणीप्रभृतिदेवस्त्रिय इत्यर्थः। स्पष्टमन्यत् ।।४०।।

रत्नजडित कंकणांचा रुणुझुणु ध्वनी करणाऱ्या हातांनी इंद्राणी आदी देवस्त्रिया उमामहेश्वरासभोवती उभा राहून त्यांच्यावर चवऱ्या ढाळून सेवा करीत होत्या.।।४०।।

चामराणां विलोलानां मध्ये तन्मुखमण्डलम् ।
रराज राजहंसानां भ्रमतामिव पङ्कजम् ।।४१।।

विलोलानां चामराणां मध्ये शिवस्य मुखमण्डलं भ्रमतां राजहंसानां मध्ये कमलमिव रराजेत्यर्थः ।।४१।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

देवकन्याकडून ढाळल्या जाणाऱ्या चवऱ्याच्या मध्ये दिसणारे शंकराचे मुख राजहंसाच्या भ्रमणामुळे मधूनच दिसणाऱ्या कमलाप्रमाणे शोभत होते.।।४१।।

मन्त्रेण तमसेवन्त वेदाः साङ्गविभूतयः ।
भक्त्या चूडामणिं कान्तं वहन्त इव मौलिभिः।।४२।।

साङ्गविभूतयः शिक्षाद्यङ्गविशिष्टा ऋगादिवेदपुरुषा उपनिषद्भागरूपमस्तकैस्तं परमेश्वरं कान्तं चूडारत्नमिव वहन्तः सन्तः प्रणवमन्त्रेण भक्त्या असेवन्तेत्यर्थः ।।४२।।

शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छंद आणि ज्योतिष या षडगांनी युक्त ऋग्वेदादी वेद, उपनिषद्‌रूपी आपल्या मस्तकावर परमात्म्याला मनोहर शिरोरत्नाप्रमाणे धारण करून आपल्या प्रणव मंत्रांनी त्याची भक्तिभावपूर्वक स्तुती करीत होते.।।४२।।

तदीयायुधधारिण्यस्तत्समानविभूषणाः ।
अङ्गभूताः स्त्रियः काश्चिदासेवन्त तमीश्वरम् ।।४३।।

वेदपुरुषायुधधारिण्यस्तत्समानविभूषणा अङ्गदेवतास्तं शिवमासेवन्तेत्यर्थः ।।४३।।

वेदपुरुषाप्रमाणेच सर्व आयुधे धारण करणाऱ्या वेदांगरूपी काही स्त्रिया वेद-पुरुषांसारखेच अलंकार धारण करून परमेश्वराची सेवा करीत होत्या.।।४३।।

आप्ताधिकारिणः केचिदनन्तप्रमुखा अपि ।
अष्टौ विद्येश्वरा देवमभजन्त समन्ततः ।।४४।।

परमाप्ताधिकारिणः केचिदनन्तसूक्ष्मशिवोत्तमैकनेत्रैकरुद्रत्रिमूर्तिश्रीकण्ठशिखण्डिसंज्ञका अष्टविद्येश्वराः परमेश्वरमभितोऽसेवन्त इत्यर्थः ।।४४।।

शंकराचे अत्यंत विश्वसनीय असलेले आप्ताधिकारी अनंत सूक्ष्म, शिवोत्तम, एकनेत्र, एकरुद्र, त्रिमूर्ती, श्रीकंठ आणि शिखंडी या नावांचे आठ विद्येश्वर त्याच्या सभोवती राहून त्याची सेवा करीत होते.।।४४।।

ततो नन्दी महाकालश्चण्डो भृङ्गी रिटिस्ततः ।
घण्टाकर्णः पुष्पदन्तः कपाली वीरभद्रकः ।।४५।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

एवमाद्या महाभागा महाबलपराक्रमाः ।
निरङ्कुशमहासत्त्वा भेजिरे तं महेश्वरम् ।।४६।।

स्पष्टम् ।।४५-४६।।

तसेच नंदी, महाकाळ, चंड, भृंगी, रिटि, घंटाकर्ण, पुष्पदंत, कपाली, वीरभद्र इत्यादी प्रमुख भाग्यवान, मोठमोठे शक्तिमान पराक्रमी व अप्रतिहत शक्तीने युक्त प्रमथगण शंकराची सेवा करीत होते.।।४५-४६।।

अथ प्रमथगणान् पञ्चभिः सूत्रैर्वर्णयति—

अणिमादिकमैश्वर्यं येषां सिद्धेरपोहनम् ।
ब्रह्मादयः सुरा येषामाज्ञालङ्घनभीरवः ।।४७।।

अणिमाद्यष्टैश्वर्यं येषां प्रमथगणानां सिद्धेः सकाशात्तुच्छम्, ब्रह्मादयः सुरा येषां आज्ञालङ्घने भयशीला इत्यर्थः ।।४७।।

आता पाच श्लोकांत नंदीआदी प्रमथगणांचे वर्णन करतात— अणिमादी अष्टसिद्धी त्या प्रमथांच्या सिद्धीपुढे तुच्छ होत्या आणि ब्रह्मादिदेवही त्यांच्या आज्ञेचे उल्लंघन करण्यास भीत होते.।।४७।।

मोक्षलक्ष्मीपरिष्वङ्गमुदिता येऽन्तरात्मना ।
येषामीषत्करं विश्वसर्गसंहारकल्पनम् ।।४८।।

अन्तर्मुखीभूतबुद्ध्या मोक्षलक्ष्म्यालिङ्गने मुदिताः, येषां विश्वसृष्ट्यादि-कल्पनमीषत्करं तुच्छमित्यर्थः ।।४८।।

हे प्रमथ मोक्षरूपी लक्ष्मीच्या आलिंगनामुळे अंतरात संतुष्ट झालेले होते. त्यांना विश्वाची निर्मिती अथवा संहार करणे या गोष्टी सहज सुलभ होत्या.।।४८।।

ज्ञानशक्तिः परा येषां सर्ववस्तुप्रकाशिनी ।
आनन्दकणिका येषां हरिब्रह्मादिसम्पदः ।।४९।।

येषां ज्ञानशक्तिः सर्ववस्तुप्रकाशिनी परा श्रेष्ठा, ब्रह्मादीनां सम्पदो येषाम् आनन्दकणिकाः, लेशा इत्यर्थः ।।४९।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

त्या प्रमथगणांना सर्वोत्कृष्ट ज्ञानशक्ती लाभल्यामुळे सर्व वस्तूंचे यथार्थ ज्ञान झाले होते. विष्णु ब्रह्मादिकांची संपत्तीही त्यांना आनंदाचा एक कण असल्यासारखी होती.।।४९।।

आकाङ्क्षन्ते पदं येषां योगिनो योगतत्पराः ।
काङ्क्षणीयफलो येषां संकल्पः कल्पपादपः ।।५०।।

शिवयोगतत्परा योगिनो येषां पदं काङ्क्षन्ते अपेक्षन्ते, येषां संकल्पः कामितार्थफलयुतकल्पपादप इत्यर्थः ।।५०।।

योगसाधनात निमग्न असणारे शिवयोगी आपणास प्रमथाची योग्यता कधी लाभेल याची प्रतीक्षा करीत असतात. प्रमथांचे संकल्प म्हणजे सर्वसिद्धिदायक कल्पवृक्षच होते.।।५०।।

कर्मकालादिकार्पण्यचिन्ता येषां न विद्यते ।
येषां विक्रमसन्नाहा मृत्योरपि च मृत्यवः ।।५१।।
ते सारूप्यपदं प्राप्ताः प्रमथा भेजिरे शिवम् ।।

संचितादिकर्मभूतादिकालकामप्रभृत्युद्भूतकार्पण्यचिन्ता येषां न विद्यते, येषां पराक्रमप्रसङ्गा मृत्योरपि मृत्यवः, सारूप्यपदं प्राप्तास्ते प्रमथा हरं भेजिरे। भज सेवायामिति धातुः ।।५१।।

कर्म-काल-कामादी पासून निर्माण होणाऱ्या कृपणतेची (न्यूनतेची) ज्यांना चिंता नव्हती, प्रसंगी ज्याच्या पराक्रमामुळे मृत्यूलाही आपल्या मृत्यूची भीती वाटावी असे, परमेश्वराशी सारूप्य पावलेले प्रमथगण शिवाची सेवा करीत होते.।।५१।।

ब्रह्मोपेन्द्रमहेन्द्राद्या विश्वतन्त्राधिकारिणम् ।
आयुधालङ्कृतप्रान्ताः परितस्तं सिषेविरे ।।५२।।

ब्रह्मविष्णुरुद्रेन्द्रप्रभृतित्रयस्त्रिंशत्कोटिदेवाः स्वकीयायुधालङ्कृतश्रेणियुग्माः, विश्वसृष्टावधिकारवन्तं तं शिवं परितः सिषेविरे इत्यर्थः ।।५२।।

ब्रह्माविष्णुइंद्रादी तेहतीस कोटी देव आपापली शस्त्रास्त्रे हाती घेऊन, त्रैलोक्याची सूत्रे हाती असलेल्या शंकराभोवती उभे राहून त्याची सेवा करीत होते.।।५२।।

आदित्या वसवो रुद्रा यक्षगन्धर्वकिन्नराः ।
दानवा राक्षसा दैत्याः सिद्धा विद्याधरोरगाः ।
अभजन्त महादेवमपरिच्छिन्नसैनिकाः ।।५३।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

आदित्या द्वादशादित्याः, अष्टौ वसवः, एकादश रुद्राः, कुबेरप्रभृतियक्षाः, हाहाप्रभृतिगन्धर्वाः, अश्वमुखादिकिन्नराः, बाणादिदानवाः, रावणादिराक्षसाः, तारकादिदैत्याः, आदिनाथादिसिद्धाः, मणिभद्रादिविद्याधराः, शेषाद्युरगाः, अविच्छिन्नसैनिकाः सन्तो महादेवमभजन्त इत्यर्थः ।।५३।।

बारा सूर्य, आठ वसू, अकरा रुद्र, कुबेरादी यक्ष, हाहा हूहू आदी गंधर्व, अश्वमुखादी किन्नर, रावणादी राक्षस, बाणासुरादी दानव, तारकादी दैत्य, आदिनाथादी सिद्ध, मणिभद्रादी विद्याधर, शेषादी नाग, हे आपल्या संपूर्ण सेनेसह शंकराची सेवा करीत होते.।।५३।।

वसिष्ठो वामदेवश्च पुलस्त्यागस्त्यशौनकाः ।
दधीचिर्गौतमश्चैव सानन्दशुकनारदाः ।।५४।।
उपमन्युभृगुव्यासपाराशरमरीचयः ।
इत्याद्या मुनयः सर्वे नीलकण्ठं सिषेविरे ।।५५।।

वसिष्ठ, वामदेव, पुलस्त्य, अगस्त्य, शौनक, दधीचि, गौतम, सानंद, शुक, नारद, उपमन्यु, भृगु, व्यास, पाराशर, मरीचि इत्यादी महर्षी नीलकंठ परमेश्वराची सेवा करीत होते.।।५४-५५।।

पार्श्वस्थपरिवाराणां विमलाङ्गेषु बिम्बितः ।
सर्वान्तर्गतमात्मानं स रेजे दर्शयन्निव ।।५६।।

सभोवताली उभ्या असणाऱ्या सेवकांच्या निर्मल शरीरात शंकराची प्रतिबिंबे उमटलेली दिसत असल्यामुळे तो जणू आपण सर्वांतर्यामी आहोत असे दाखवून शोभत होता.।।५६।।

अथ परमेश्वरस्य राजव्यापारं दशभिः सूत्रैः प्रदर्शयति—

क्षणं स शम्भुर्देवानां कार्यभागं निरूपयन् ।
क्षणं गन्धर्वराजानां गानविद्यां विभावयन् ।।५७।।

आता परमेश्वराच्या राजव्यापाराचे वर्णन दहा श्लोकांत करतात— एखादे वेळी शंकर सर्व देवांना अमुक अमुक कामे करा असे सांगत, तर कधी गंधर्वांचे सुस्वर गाणे ऐकत.।।५७।।

ब्रह्मविष्ण्वादिभिर्देवैः क्षणमालापमाचरन् ।
क्षणं देवमृगाक्षीणां लालयन्नृत्यविभ्रमम् ।।५८।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कधी ब्रह्मदेव, विष्णु आदी देवाबरोबर सुखसंवाद करीत असत, तर कधी देवांगनांचे नृत्य पाहात असत.।।५८।।

व्यासादीनां क्षणं कुर्वन् वेदोच्चारेषु गौरवम् ।
विदधानः क्षणं देव्या मुखे बिम्बाधरे दृशः ।।५९।।

स्पष्टम् ।।५९।।

कधी व्यासादिकांचे वेदोच्चार उत्तम आहेत असा त्याचा गौरव करीत, तर कधी पार्वतीच्या बिंबफलासमान ओठ असलेल्या मुखाकडे दृष्टी लावीत.।।५९।।

हास्यनृत्यं क्षणं पश्यन् भृङ्गिणा परिकल्पितम् ।
नन्दिना वेत्रहस्तेन सर्वतन्त्राधिकारिणा ।।६०।।
अमुञ्चता सदा पार्श्वमात्माभिप्रायवेदिना ।
चोदितान् वासयन् कांश्चिद्विसृजन् भ्रूविलासतः ।
सम्भावयंस्तथा चान्याननन्यानपि नियामयन् ।।६१।।

भ्रूसंज्ञया कांश्चिद्विसृजन् प्रेषयंस्तथान्यान् सम्भावयन्, प्रियोक्तिं वदन्नन्यान्नियामयन् शिक्षयन्। शिष्टं स्पष्टम् ।।६०-६१।।

कधी भृंगीच्या विनोदपूर्ण नृत्याकडे लक्ष देत असत तर कधी सर्व कार्यांचा अधिपती असलेला, हातात दंड धारण केलेला, सदा समीप असणारा, आपले मनोगत जाणणारा अशा नंदीश्वराकडून काही लोकांना जवळ बोलावीत असत. काहीजणांना नेत्रसंकेताने दूर धाडीत असत, काही लोकांना आपल्या प्रिय भाषणाने संतुष्ट करीत तर काही लोकांना शासन करीत असत. असा शंकराचा राजव्यापार चालला होता.।।६०-६१।।

समस्तभुवनाधीशमौलिलालितशासनः ।
अकुण्ठशक्तिरव्याजलावण्यललिताकृतिः ।।६२।।

समस्तभुवनाधीशः, ब्रह्ममस्तकस्थापितसमस्तज्ञानशक्तिमानप्रतिहतशक्तिः, निजलावण्यमनोहराकृतिरित्यर्थः ।।६२।।

अप्रतिहत शक्ती असणारा, स्वाभाविक सौंदर्यामुळे मनोहर दिसणारा अशा त्रैलोक्याधिपती शंकराची आज्ञा सर्व भुवनांचे अधिपती शिरसा पालन करीत होते.।।६२।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

स्थिरयौवनसौरभ्यशृङ्गारितकलेवरः ।
आत्मशक्त्यमृतास्वादरसोल्लासितमानसः ।।६३।।

वृद्धिक्षयरहितयौवनोद्रेकशृङ्गारितकलेवरः, स्वसमवेतशक्तिलक्षणपरमानन्द-रसास्वादनोज्जृम्भितान्तरङ्गः ।।६३।।

त्या शंकराच्या अंगी चिरतारुण्य असल्यामुळे त्याचे शरीर सुगंधित व सुशोभित दिसत होते. त्यास आत्मशक्तिरूप अमृतरसाची गोडी लागली असल्यामुळे तो नेहमी आनंदित असे.।।६३।।

स्वाभाविकमहैश्वर्यविश्रामपरमावधिः ।
निष्कलङ्कमहासत्त्वनिर्मितानेकविग्रहः ।।६४।।

स्वाभाविकेति। अनौपाधिकसर्वज्ञतादिमहैश्वर्यविश्रान्तिपर्यन्तभूमिः, अकलङ्कमहाशक्तिनिर्मितानेकदिव्यमङ्गलमूर्तिमान् ।।६४।।

स्वाभाविक अशा महाऐश्वर्याचे विश्रामस्थान असलेला शंकर निष्कलंक अशा महाशक्तीतून निर्माण झालेल्या अनेक दिव्य रूपांना धारण करणारा होता.।।६४।।

अखण्डारातिदोर्दण्डकण्डूखण्डनपण्डितः ।
चिन्तामणिः प्रपन्नानां श्रीकण्ठः परमेश्वरः ।।६५।।

अपरिमितसज्जनारातिबाहुदण्डकण्डूखण्डनविचक्षणः, अत एव निर्मलान्तः-करणानामिष्टार्थप्रदः श्रीकण्ठः परमेश्वरो राजत इति शेषः ।।६५।।

अपरिमित सज्जन-शत्रूंच्या बाहुबलाची रग जिरविण्यास समर्थ असणारा श्रीकंठ शंकर निर्मल अंतःकरणाच्या शरणागतांना सर्वमनोरथ पूर्ण करणाऱ्या चिंतामणीप्रमाणे होता.।।६५।।

एवं शिवस्य वैभवं वर्णयित्वाग्रे सूत्रैकादशकेन रेणुकगणेशस्य शिवभक्तिमहत्त्वं सूचयति—

सभान्तरगतं तन्त्रं रेणुकं गणनायकम् ।
प्रसादं सुलभं दातुं ताम्बूलं स तमाह्वयत् ।।६६।।

स शिवः सभामध्यगतं तन्त्रं मुख्यम् अथवा प्रसिद्धं तं रेणुकं प्रति सुलभं ताम्बूलप्रसादं दातुं शिरसा आह्वयत्, आकारितवानित्यर्थः।।६६।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अशा रीतीने शिवाचे वैभव वर्णन केल्यानंतर आता रेणुकगणेश्वराच्या शिवभक्तीचे वर्णन अकरा श्लोकांतून करतात— शिवसभेत बसलेल्या, सर्व शिवगणांत प्रमुख असणाऱ्या रेणुकगणाला सुलभ असा तांबूल प्रसाद देण्यासाठी शंकराने जवळ बोलाविले.।।६६।।

शम्भोराह्वानसन्तोषसंभ्रमेणैव दारुकम् ।
उल्लङ्घ्य पार्श्वमगमल्लोकनाथस्य रेणुकः ।।६७।।

पार्श्वं वामभागमित्यर्थः ।।६७।।

शंकराने आपणास जवळ बोलावले, या आनंदाच्या भरात मार्गात बसलेल्या दारुकगणाला गडबडीत ओलांडून गणाधीश रेणुक लोकनायक शंकराजवळ गेला.।।६७।।

तमालोक्य विभुस्तत्र समुल्लङ्घितदारुकम् ।
माहात्म्यं निजभक्तानां द्योतयन्निदमब्रवीत् ।।६८।।

विभुः स्वतन्त्र इत्यर्थः। स्पष्टमन्यत् ।।६८।।

त्या सभेत दारुकाला ओलांडून आलेल्या रेणुकाला पाहून, आपल्या भक्ताचा मोठेपणा दाखविणारा, सर्वतंत्र स्वतंत्र असा शिव रेणुकास असे म्हणाला,।।६८।।

रे रे रेणुक दुर्बुद्धे कथमेष त्वयाऽधुना ।
उल्लङ्घितः सभामध्ये मम भक्तो हि दारुकः ।।६९।।

अरेरे, हे दुर्बुद्धी रेणुका, माझा परमभक्त असणाऱ्या दारुकाला या सभेत तू ओलांडून कसा आलास?।।६९।।

लङ्घनं मम भक्तानां परमानर्थकारणम् ।
आयुः श्रियं कुलं कीर्तिं निहन्ति हि शरीरिणाम् ।।७०।।

हि प्रसिद्धमित्यर्थः ।।७०।।

माझ्या भक्तांना ओलांडून कोणी त्यांचा अपमान केल्यास त्याच्या आयुष्याचा, संपत्तीचा, कुलाचा आणि कीर्तीचा निश्चित नाश होतो.।।७०।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

मम भक्तमवज्ञाय मार्कण्डेयं पुरा यमः ।
मत्पादताडनादासीत् स्मरणीयकलेवरः ।।७१।।

विनष्टकलेवरत्वात् स्मरणीयकलेवर आसीदित्यर्थः। स्पष्टमन्यत् ।।७१।।

पूर्वी माझा भक्त मार्कंडेयाचा एकदा यमाने अपराध केल्यामुळे मी त्याला लाथ मारल्याने तो लगेच नामशेष झाला होता.।।७१।।

भृगोश्च शङ्कुकर्णस्य मम भक्तिमतोस्तयोः ।
कृत्वानिष्टमभूद् विष्णुर्विकेशो दशयोनिभाक्।।७२।।

विकेशः शिरःपूर्वभागोत्पादितकेशवानित्यर्थः ।।७२।।

तसेच माझे परमभक्त अशा भृगु आणि शंकुकर्ण यांचाही विष्णूने पूर्वी छळ केला होता म्हणून त्याचे केश नाहीसे होऊन त्याला दहा वेळा निरनिराळ्या योनीत जन्म घ्यावा लागला.।।७२।।

मद्भक्तेन दधीचेन कृत्वा युद्धं जनार्दनः ।
भग्नचक्रायुधः पूर्वं पराभवमुपागमत् ।।७३।।

पूर्वी माझा भक्त दधीचीबरोबर विष्णूने युद्ध केल्यामुळे त्याचे सुदर्शन चक्र मोडून त्याचा पराभव झाला होता.।।७३।।

कृताश्वमेधो दक्षोऽपि मद्भक्तांश्च गणेश्वरान् ।
अवमत्य सभामध्ये मेषवक्त्रोऽभवत् पुरा ।।७४।।

अवमत्य उदास्येत्यर्थः ।।७४।।

पूर्वी अश्वमेध यज्ञ करणाऱ्या दक्ष ब्रह्म्याचानेही सभेत माझे भक्त आणि गणेश्वरांविषयी उदासीनता दाखवून त्यांचा अपमान केल्यामुळे वीरभद्राकडून त्याचे मस्तक छाटले गेले आणि पुन्हा त्याच्याच अनुग्रहाने त्याला बोकडाचे मुंडके लावावे लागले.।।७४।।

श्वेतस्य मम भक्तस्य दुरतिक्रमतेजसः ।
औदासीन्येन कालोऽपि मया दग्धः पुराऽभवत् ।।७५।।

दुरतिक्रमतेजसः अनिन्दिततेजस इत्यर्थः ।।७५।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पूर्वी अत्यंत पराक्रमी अशा श्वेत नावाच्या माझ्या भक्ताकडे यमाने दुर्लक्ष केल्यामुळे मी त्या यमाला जाळून टाकले होते.।।७५।।

एवमन्येऽपि बहवो मद्भक्तानामतिक्रमात् ।
परिभूता हताश्चासन् भक्ता मे दुरतिक्रमाः।।७६।।

अशाच रीतीने माझ्या भक्तांना ओलांडून त्यांचा अवमान केल्यामुळे पूर्वी काही लोक पराभूत झाले व काही मारले गेले. म्हणून माझ्या भक्तांना कोणीही ओलांडून जाऊ नये, अर्थात् त्यांचा अवमान करू नये.।।७६।।

एवं भक्तमाहात्म्यं वर्णयित्वा तदुल्लङ्घनदोषस्य फलं निर्दिशति—

अविचारेण मद्भक्तो लङ्घितो दारुकस्त्वया ।
एष त्वं रेणुकानेन जन्मवान् भव भूतले ।।७७।।

एष दारुक इति सम्बन्धः।।७७।।

असे भक्तांचे माहात्म्य वर्णन करून त्यांना ओलाडून जाण्याच्या दोषाचे फल सांगतात—

हे रेणुका, माझ्या भक्ताला अविचाराने ओलाडून जाण्याचा अपराध केल्यामुळे तू भूमितलावर जन्म घेतला पाहिजेस.।।७७।।

अथ रेणुको जन्मनि भीतः सन् पञ्चभिः सूत्रैः शिवं विज्ञापयति—

इत्युक्तः परमेशेन भक्तमाहात्म्यशंसिना ।
प्रार्थयामास देवेशं प्रणिपत्य स रेणुकः ।।७८।।

इत्युक्तो लोकहितार्थमित्युक्तो भवदाह्वानसंभ्रान्त्या मया अज्ञानादयं लङ्घितः, मां पाहीति प्रार्थयामासेत्यर्थः।।७८।।

आता जन्म घ्यावा लागेल या भीतीने रेणुकाने पाच श्लोकांतून शिवाची विनवणी केली—

भक्ताचे माहात्म्य वर्णन करणाऱ्या परमेश्वराची आज्ञा ऐकल्यावर रेणुकाने त्यांना नमस्कार करून प्रार्थना केली.।।७८।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

मानुषीं योनिमासाद्य महादुःखविवर्धिनीम् ।
जात्यायुर्भोगवैषम्यहेतुकर्मोपपादिनीम् ।।७९।।
समस्तदेवकैङ्कर्यकार्पण्यप्रसवस्थलीम् ।
महातापत्रयोपेतां वर्णाश्रमनियन्त्रिताम् ।।
विहाय त्वत्पदाम्भोजसेवां किं वा वसाम्यहम् ।।८०।।

त्वत्पदाम्बुजसेवां विहाय, एवंरूपमानुषीं योनिमासाद्य स्थातुं योग्यः किमहमित्यर्थः ।।७९-८०।।

मनुष्य योनीमध्ये मोठमोठी दुःखे वरचेवर येतात, जाती, आयुष्य, सुखोपभोग यांच्यातील विषमता उत्पन्न करणारी अनेक प्रकारची कर्मे तेथे घडतात. मनुष्य योनीमध्ये अनेक देवांची सेवा करावी लागते, मनुष्ययोनी तर दैन्याची जन्मभूमी आहे. आध्यात्मिक, आधिभौतिक व आधिदैविक अशी मोठमोठी दुःखे तेथे भोगावी लागतात. त्या योनीत ब्राह्मणादी वर्ण आणि ब्रह्मचर्यादी आश्रम यांच्या नियंत्रणात राहावे लागते. तुझ्या चरणकमलाची सेवा करण्याचे सोडून अशा मनुष्ययोनीत मी कसा राहू शकेन?।।७९-८०।।

यथा मे मानुषो भावो न भवेत् क्षितिमण्डले ।
तथा प्रसादं देवेश विधेहि करुणानिधे ।।८१।।

म्हणून हे करुणासागर परमेश्वरा, भूलोकी मला जन्म घ्यावा लागणार नाही असा माझ्यावर अनुग्रह करा.।।८१।।

एवं प्रार्थितवन्तं रेणुकं स्वात्मत्वेन निश्चित्याभयं दत्वा षड्भिः सूत्रैः प्रयोजनं दर्शयति—

इति संप्रार्थितो देवो रेणुकेन महेश्वरः।
मा भैषीर्मम भक्तानां कुतो भीतिर्हिष्यति ।।८२।।

अशी प्रार्थना केलेल्या रेणुकाला आत्मीयतेने निश्चयात्मक अभय देऊन त्याच्या अवताराचे प्रयोजन सहा श्लोकांत सांगतात—

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

रेणुकाने अशी प्रार्थना केल्यावर महादेव म्हणाले, हे रेणुका तू भिऊ नकोस, माझ्या भक्तांना या जगात भीती कशी असेंल.।।८२।।

श्रीशैलस्योत्तरे भागे त्रिलिङ्गविषये शुभे ।
कोल्लिपाक्यभिधानोऽस्ति कोऽपि ग्रामो महत्तरः।।८३।।

त्रिलिङ्गविषये आन्ध्रदेशे कोल्लिपाक्याख्यमहाग्रामोऽस्ति ।।८३।।

श्रीशैल पर्वताच्या उत्तर दिशेस तेलंग देशात कोल्लिपाकी (कोलनुपाक) नावाचा मोठा गाव आहे.।।८३।।

सोमेश्वराभिधानस्य तत्र वासवतो मम ।
अस्पृशन् मानुषं भावं लिङ्गात् प्रादुर्भविष्यसि।।८४।।

तत्र वासवतः सोमेश्वराभिधानस्य मम लिङ्गाद् मानुषं भावमस्पृशन् प्रादुर्भविष्यसीत्यर्थः।।८४।।

सोमेश्वरलिग या नावाने मी त्या गावात प्रसिद्ध आहे म्हणून हे रेणुका, तू अमानवी अशा दिव्य रूपाने त्या लिंगापासून जन्म घेशील.।।८४।।

मदीयलिङ्गसम्भूतं मद्भक्तपरिपालकम् ।
विस्मिता मानुषाः सर्वे त्वां भजन्तु मदाज्ञया।।८५।।

माझ्या आज्ञेने सोमेश्वर लिंगापासून अवतरलेल्या भक्तपालक अशा तुला पाहून सर्वलोक आश्चर्यचकित होऊन तुझी सेवा करू लागतील.।।८५।।

मदद्वैतपरं शास्त्रं वेदवेदान्तसम्मतम् ।
स्थापयिष्यसि भूलोके सर्वेषां हितकारकम् ।।८६।।

हे रेणुका, जगातील सर्व लोकांच्या हितासाठी वेद, आगम, आणि उपनिषदांना संमत असणारे शिवाद्वैत (वीरशैव सिद्धांत) तू स्थापन करशील. (वीरशैव सिद्धांत, शिवाद्वैत, विशेषाद्वैत, शक्तिविशिष्टाद्वैत आणि भेदाभेद अशा अनेक नावांनी प्रसिद्ध आहे. येथे श्लोकात 'मदद्वैत' असा शब्द आलेला आहे, त्याचा अर्थ शिवाद्वैत असा होतो.)।।८६।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

मम प्रतापमतुलं मद्भक्तानां विशेषतः ।
प्रकाशय महीभागे वेदमार्गानुसारतः ।।८७।।

हे रेणुका, तू भूलोकात अवतरल्यानंतर माझा व विशेषतः माझ्या भक्तांचा अतुलनीय पराक्रम वेदमार्गाला अनुसरून पृथ्वीवर प्रसिद्धीस आण.।।८७।।

अथ संग्रहकर्तुः शिवयोगिनो वाक्यम्—

इत्युक्त्वा परमेश्वरः स भगवान् भद्रासनादुत्थितो
ब्रह्मोपेन्द्रमुखान् विसृज्य विबुधान् भ्रूसंज्ञया केवलम्।
पार्वत्या सहितो गणैरभिमतैः प्राप स्वमन्तःपुरं
क्षोणीभागमवातरत् पशुपतेराज्ञावशाद् रेणुकः ।।८८।।

इति श्रीसिद्धान्तशिखामणौ रेणुकस्य भूलोकावगतिर्नाम
तृतीयः परिच्छेदः समाप्तः।।

अभिमतैः अत्याप्तैः नन्द्यादिभिः। स्वकमन्तःपुरं भगवान् प्राप । अथ रेणुको ब्रह्माधिपतेः शिवस्य आज्ञावशाद् भूभागं प्राप्तवानित्यर्थः।।८८।।

इति श्रीमत्पदवाक्यप्रमाणपारावारधुरीणश्रीमरितोण्टदार्येण विरचितायां
तत्त्वप्रदीपिकाख्यायां सिद्धान्तशिखामणिव्याख्यायां रेणुकस्य
भूलोकावगतिर्नाम तृतीयः परिच्छेदः समाप्तः ।।

ग्रथकार शिवयोगी शिवाचार्यांचे वाक्य—

इतके बोलून शंकर आपल्या सिंहासनावरून उठले. ब्रह्मा विष्णू वगैरे देवांना त्यांनी नेत्रसंकेताने आपापल्या स्थानी जाण्यास सांगितले व आपले प्रियगण आणि पार्वतीसह ते आपल्या अतःपुरात गेले. शंकराच्या आज्ञेप्रमाणे रेणुक कोल्लिपाक गावातील सोमेश्वर लिंगापासून पृथ्वीवर प्रकट झाले.।।८८।।

ह्या प्रमाणे सिद्धांतशिखामणी ग्रंथातील रेणुकाचे
भूलोकी झालेल्या अवताराचे वर्णन असलेला
हा तिसरा परिच्छेद संपला.

तृतीय परिच्छेद समाप्त।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

चतुर्थः परिच्छेदः

अथाष्टभिः सूत्रैः शिवयोगी रेणुकगणेश्वरस्य स्वरूपं वर्णयति—

अथ त्रिलिङ्गविषये कोल्लिपाक्यभिधे पुरे ।
सोमेश्वरमहालिङ्गात् प्रादुरासीत् स रेणुकः ।।१।।

आता शिवयोगी शिवाचार्य रेणुकगणेश्वराचे स्वरूपवर्णन आठ श्लोकातून करतात—

शिवापासून आज्ञा घेऊन आलेले रेणुकगणेश्वर तेलग देशात सुप्रसिद्ध क्षेत्र असलेल्या कोल्लिपाक नगरातील सोमेश्वर लिंगापासून प्रादुर्भूत झाले.।।१।।

प्रादुर्भूतं तमालोक्य शिवलिङ्गात् त्रिलिङ्गजाः ।
विस्मिताः प्राणिनः सर्वे बभूवुरतितेजसम् ।।२।।

महालिंगापासून प्रकट झालेले ते श्री रेणुकगणेश्वर अत्यंत तेजस्वी होते. त्यांना पाहून तेलंग देशातील सर्व लोक अत्यंत आश्चर्यचकित झाले.।।२।।

भस्मोद्धूलितसर्वाङ्गं साररुद्राक्षभूषणम् ।
जटामुकुटसंयुक्तं त्रिपुण्ड्राङ्कितमस्तकम् ।।३।।

सारशब्देन बाहुल्यमुच्यते।।३।।

श्री रेणुकांचे सर्वांग भस्मविलेपित होते. त्यांच्या शरीरावर उत्तमोत्तम रुद्राक्षांची आभूषणे होती. ते जटाजूटधारी होते. आणि त्यांच्या भालप्रदेशावर भस्माचे सुंदर त्रिपुंड्र होते.।।३।।

कटीतटीपटीभूतकन्थापटलबन्धुरम् ।
दधानं योगदण्डं च भस्माधारं कमण्डलुम् ।।४।।

त्यानी आपल्या कमरेस वस्त्राप्रमाणे कंथा बांधल्याने ते मनोहर दिसत होते. त्यांनी हातात योगदड व भस्म ठेवण्याचा कमंडलू घेतला होता.।।४।।

शिवाद्वैतपरिज्ञानपरमानन्दमोदितम्।
निर्धूतसर्वसंसारवासनादोषपञ्जरम् ।।५।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

शिवाद्वैतज्ञानप्राप्तीच्या परमानंदाने ते आनंदित झालेले होते. त्यांच्या सर्व संसारवासनांचा दोषरूपी पिंजरा तुटलेला होता, अर्थात् ते सर्व संसारवासनांतून मुक्त झालेले होते.।।५।।

शिवागमसुधासिन्धुसमुन्मेषसुधाकरम् ।
चित्तारविन्दसंगूढशिवपादाम्बुजद्वयम् ।।६।।

शिवागमरूपी अमृत समुद्रास भरती आणणारे ते मूर्तिमंत चंद्रच होते. त्यांनी आपल्या चित्तारविंदात शिवाचे चरणकमल गुप्तपणे धारण केले होते. अर्थात् ते आपल्या अंतःकरणात शिवचरणाचे गुप्तपणे चिंतन करीत होते.।।६।।

यमादियोगतन्त्रज्ञं स्वतन्त्रं सर्वकर्मसु ।
समस्तसिद्धसन्तानसमुदायशिखामणिम् ।।७।।

यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान आणि समाधी या अष्टांगयोगाचे स्वरूप त्यांना अवगत असून ते सर्व कार्यात स्वतंत्र होते. सर्व सिद्धवंशाच्या समुदायात ते सर्वश्रेष्ठ होते.।।७।।

वीरसिद्धान्तनिर्वाहकृतपट्टनिबन्धनम् ।
आलोकमात्रनिर्भिन्नसमस्तप्राणिपातकम् ।।८।।

वीरसिद्धान्तशब्देन वीरशैवसिद्धान्त उच्यते। स्पष्टमन्यत् ।।८।।

वीरशैव सिद्धांताच्या प्रतिष्ठापनेसाठी ते कटिबद्ध झाले होते. आपल्या केवळ दृष्टिक्षेपाने सर्व प्राणिमात्रांची दुःखे नष्ट करीत होते.।।८।।

अथ मर्त्यं प्राप्त एष रेणुको जनैः पृष्टः सन्नुत्तरं दत्वा मलयाद्रिमगमदित्याह तमपृच्छन्नित्यादिश्लोकपञ्चकेन—

तमपृच्छन् जनाः सर्वे नमन्तः को भवानिति ।
इति पृष्टो महायोगी जनैर्विस्मितमानसैः ।।९।।

आता भूलोकात अवतार घेतलेले रेणुकगणेश्वर लोकांनी विचारलेल्या प्रश्नांची उत्तरे देऊन मलयाचल पर्वताकडे गमन केल्याचे वर्णन पाच श्लोकांतून करतात—

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अवतार घेतलेल्या महायोगी रेणुक गणेश्वराना पाहून तेलग देशातील आश्चर्यचकित झालेल्या लोकांनी त्याना साष्टाग नमन केले आणि आपण कोण आहात असा प्रश्न केला.।।९।।

प्रत्युवाच शिवाद्वैतमहानन्दपरायणः।
पिनाकिनः पार्श्ववर्ती रेणुकाख्यगणेश्वरः।।१०।।

शिवाद्वैताच्या महानंदांत निमग्न असणारा, शिवाच्या सहवासात राहाणारा मी रेणुक नावाचा गणेश्वर आहे, असे त्यांनी उत्तर दिले.।।१०।।

केनचित् कारणेनाहं शिवलिङ्गादिहाभवम् ।
नाम्ना रेणुकसिद्धोऽहं सिद्धसन्ताननायकः ।।११।।

हे लोकहो, काही विशिष्ट कार्याच्या निमित्ताने या सोमेश्वर लिगापासून प्रकट झालो असून सिद्धसतानात सर्वश्रेष्ठ असा रेणुक नावाचा मी सिद्ध आहे.।।११।।

स्वच्छन्दचारी लोकेऽस्मिन् शिवसिद्धान्तपालकः ।
खण्डयन् जैनचार्वाकबौद्धादीनां दुरागमान् ।।१२।।

मी या लोकात स्वच्छंदपणे वावरणारा, शिव-सिद्धाताचे सरक्षण करणारा आणि नास्तिकवादी चार्वाक, जैन, बौद्धाच्या अनिष्ट आगमाचे खडन करणारा आहे.।।१२।।

इत्युक्त्वा पश्यतां तेषां विषयस्थिरचक्षुषाम् ।
उत्थाय व्योममार्गेण मलयाद्रिमुपागमत् ।।१३।।

एवढे सांगून, लोक त्यांच्याकडे टक लावून पाहात असतानाच ते एकाएकी उठून आकाशमार्गे मलयपर्वताकडे निघून गेले.।।१२।।

अथ सूत्रत्रयेण मलयाद्रिं वर्णयति—

नवचन्दनकान्तारकन्दलन्मन्दमारुतम् ।
अभङ्गुरभुजङ्गस्त्रीसंगीतरससंकुलम् ।।१४।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

नूतनश्रीचन्दनभेदनक्षममन्दमारुतः, अतिनिबिडभुजङ्गस्त्रीसंगीतरसव्याप्तः ।।१४।।

आता तीन श्लोकात मलयपर्वताचे वर्णन करतात—

नव्या चंदनाच्या वृक्षराजीवरून वाहाणाऱ्या सुगंधित मंद वाऱ्याने तो पर्वत दरवळून गेला होता आणि विपुल नागस्त्रियांच्या मंजुळ गानरसाने तो भरलेला होता ।।१४।।

करिपोतकराकृष्टस्फुरदेलातिवासितम् ।
वराहदंष्ट्रिकाध्वस्तमुस्तासुरभिकन्दरम् ।।१५।।

करिकलभकराकर्षणविकीर्णैलाफलसुगन्धवासितो वराहदंष्ट्रोत्खातभद्रमुस्तासुरभिसानुप्रदेशः ।।१५।।

हत्तीच्या छाव्यांनी आपल्या सोंडींनी उपटून टाकलेल्या वेलदोड्यांच्या वेलींमुळे सर्वत्र सुवास भरला होता. तसेच रानडुकरानी आपल्या सुळ्यानी उकरलेल्या वाळ्याचा घमघमाट पर्वतावरील गुहामध्ये भरून गेला होता ।।१५।।

पटीरदलपर्यङ्कप्रसुप्तव्याधदम्पतिम् ।
माधवीमल्लिकाजातीमञ्जरीरेणुरञ्जितम् ।।१६।।

कर्पूरकदलीपत्रपर्यङ्कनिद्रितकिरातदम्पतिः, सेवन्त्यादिकुसुमगुच्छपरागरञ्जितः। एतादृशं मलयाद्रिमगमदिति पूर्वेणान्वयः ।।१६।।

मलयाचलावरील किरातदंपती चंदन, कर्पूर आणि केळींच्या पानांनी केलेल्या शय्येवर झोपलेले होते, त्यामुळे आणि जाई, जुई, बटमोगरा यांची फुले, मंजिऱ्या आणि परागांचा सुवास सर्वत्र पसरलेला होता.।।१६।।

अथाष्टभिः सूत्रैरगस्त्याश्रमं वर्णयति—

तत्र कुत्रचिदाभोगसर्वर्तुकुसुमद्रुमे ।
अपश्यदाश्रमं दिव्यमगस्त्यस्य महामुनेः ।।१७।।

सम्पूर्णवसन्तादिसर्वर्तुकुसुममयवृक्षवति तत्र मलयाचले कुत्रचित् कस्मिश्चत् प्रदेशे दिव्यं मनोहरम् अगस्त्याश्रममपश्यत्, दृष्टवानित्यर्थः ।।१७।।

आता आठ श्लोकातून अगस्त्याश्रमाचे वर्णन करतात—

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तो मलयपर्वत ऋतुमानाचा संबंध नसता एकाचवेळी सर्व ऋतूत बहरणाऱ्या पुष्पवृक्षांनी भरलेला होता. अशा त्या मलयपर्वतावरील एका विशाल प्रदेशात असणारा अगस्ती ऋषींचा अत्यंत दिव्य आणि मनोहर असा सुशोभित आश्रम रेणुकांनी पाहिला.।।१७।।

मन्दारचन्दनप्रायैर्मण्डितं तरुमण्डलैः।
शाखाशिखरसंलीनतारकागणकोरकैः ।।१८।।

शाखाग्रसंविलीनतारकागणरूपकुसुमकुड्मलैः कल्पवृक्षश्रीचन्दनादितरुसमूहै-र्मण्डितं शोभितमित्यर्थः ।।१८।।

त्या आश्रमातील पारिजात चंदनादी वृक्ष इतके उंच होते की त्यांच्या शिरोभागी दिसणारी आकाशातील नक्षत्रे ही त्या शेंडयांना आलेल्या पांढऱ्या शुभ्र कळ्याप्रमाणे भासत होती.।।१८।।

मुनिकन्याकरानीतकलशाम्बुविवर्धितैः ।
आलवालजलास्वादमोदमानमृगीगणैः ।।१९।।

ऋषिकन्या आपल्या हातातील कलशांनी आश्रमातील झाडांना पाणी घालत होत्या. त्यामुळे ती झाडे वाढत होती आणि त्या झाडांच्या आळ्यातील पाणी पिऊन हरिणींचा समुदाय आनंदित होत होता.।।१९।।

हेमारविन्दनिष्यन्दमकरन्दसुगन्धिभिः ।
मरालालापवाचालुवीचिमालामनोहरैः ।।२०।।

मरालालापेन वाचालुरित्यर्थः ।।२०।।

तेथील सरोवराच्या पाण्याला, सुवर्णकमलांतून गळणाऱ्या मधुर मकरंदाचा सुवास येत होता. आणि कमलपुष्पावर बसून राजहंस पक्षी मधुर शब्द करीत असल्यामुळे मुखरित होणाऱ्या जलतरंगांची शोभा मनोहर दिसत होती.।।२०।।

इन्दीवरवरज्योतिरन्धीकृतहरिन्मुखैः ।
लोपामुद्रापदन्यासचरितार्थतटाङ्कितैः ।।२१।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तेथील सरोवरात नीलकमलांची इतकी दाटी होती, की त्याच्या निळ्या प्रभेने दाही दिशाही अंधुक झाल्या होत्या. आणि अगस्त्यऋषिपत्नी लोपामुद्रेच्या चरणचिन्हांनी सरोवराचा किनारा कृतार्थ झालेला दिसत होता.।।२१।।

हारनीहारकर्पूरहरहासामलोदकैः ।
नित्यनैमित्तिकस्नाननियमार्थैस्तपस्विनाम् ।।२२।।

सरोवरातील पाणी इतके स्वच्छ होते, की ते मोत्यांच्या माळा, कापूर आणि शिवाच्या मंदस्मिता प्रमाणे अत्यंत शुभ्र दिसत होते. अशा पाण्यात तपस्वीजन नित्य आणि नैमित्यिक स्नान करीत असत.।।२२।।

प्रकृष्टमणिसोपानैः परिवीतं सरोवरैः ।
विमुक्तसत्त्ववैरस्यं ब्रह्मलोकमिवापरम् ।।२३।।

श्रेष्ठ श्रेष्ठ रत्नांच्या पायऱ्यांनी युक्त सरोवरांनी अगस्ती ऋषींचा आश्रम वेढलेला होता. आश्रमातील प्राण्यांमध्ये वैरभाव मुळीच नव्हता, त्यामुळे तो परिसर प्रतिब्रह्मलोकच भासत होता.।।२३।।

हूयमानाज्यसन्तानधूमगन्धिमहास्थलम् ।
शुकसंसत्समारब्धश्रुतिशास्त्रोपबृंहणम् ।।२४।।

शुकसंसदेत्यर्थः। स्पष्टमन्यत्। एतादृशमगस्त्याश्रममपश्यदित्यर्थः।।२४।।

तेथे जागोजाग होत असलेल्या होमहवनात जळणाऱ्या तुपाचा वास येणारा धूर सर्वत्र भरला होता. आणि तेथील पोपट आपसात वेदशास्त्र-वचनांची चर्चा करीत होते. असा अगस्त्याश्रम श्रीरेणुकानी पाहिला.।।२४।।

अथागस्त्यमुनिं नवभिः सूत्रैर्वर्णयति—

तस्य मध्ये समासीनं मूले चन्दनभूरुहः ।
सुकुमारदलच्छायादूरितादित्यतेजसः ।।२५।।

आता त्या आश्रमातील अगस्तीऋषींचे वर्णन नऊ श्लोकांतून करतात—

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

आश्रमातील चदनाच्या झाडाखाली अगस्ती ऋषी बसले होते. चंदनवृक्षाच्या कोवळ्या आणि दाट पानाच्या छायेमुळे त्याना सूर्याचे ऊन मुळीच लागत नव्हते.।।२५।।

तडित्पिङ्गजटाभारैस्त्रिपुण्ड्राङ्कितमस्तकैः ।
भस्मोद्धूलितसर्वाङ्गैः स्फुरद्रुद्राक्षभूषणैः ।।२६।।
नववल्कलवासोभिर्नानानियमधारिभिः ।
परिवीतं मुनिगणैः प्रमथैरिव शङ्करम् ।।२७।।

विजेसारख्या, पिंगट रगाच्या जटा डोक्यावर असलेले, कपाळावर भस्माचे त्रिपुंड्र धारण केलेले, सर्वांगाला भस्मलेपन केलेले, गळ्यात उत्तमोत्तम रुद्राक्षांच्या माळा घातलेले, नूतन वल्कलांचे वस्त्र नेसलेले, नाना नियमांचे पालन करणारे असे मोठमोठे ऋषी ज्यांच्या सभोवती बसलेले आहेत असे अगस्तीऋषी, प्रमथगणांनी घेरलेल्या शंकराप्रमाणे दिसत होते.।।२६-२७।।

समुज्वलजटाजालैस्तपःपादपपल्लवैः ।
स्फुरत्सौदामिनीकल्पैर्ज्वालाजालैरिवानलम् ।।२८।।

शिवप्रसादभूततपोवृक्षपल्लवैः स्फुरद्विद्युल्लतासदृशैर्जटाजालैरग्निमिव समुज्वलन्तमित्यर्थः ।।२८।।

शिवप्रसादभूत तपश्चर्यारूपी वृक्षाची ताबूस पालवी असल्याप्रमाणे आणि लखलखत्या विजेच्या लोळाप्रमाणे जटा असलेले अगस्ती, उफाळणाऱ्या ज्वालायुक्त अग्नीप्रमाणे दिसत होते.।।२८।।

विशुद्धभस्मकृतया त्रिपुण्ड्राङ्कितरेखया ।
त्रिस्रोतसेव सम्बद्धशिलाभागं हिमाचलम् ।।२९।।

त्रिभागेन प्रवहद्गङ्गासम्बद्धशिलाभागं हिमाद्रिमिव शितत्रिपुण्ड्ररेखाङ्कितमस्तकमित्यर्थः ।।२९।।

कपाळावर विशुद्ध भस्माचे त्रिपुंड्र धारण केलेले अगस्ती, ज्याच्या कड्यावरून गंगेच्या तीन धारा वाहात आहेत अशा हिमालय पर्वतासारखे दिसत होते.।।२९।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भस्मालङ्कृतसर्वाङ्गं शशाङ्कमिव भूगतम् ।
वसानं वल्कलं नव्यं बालातपसमप्रभम् ।।३०।।

सकाळच्या कोमल उन्हासारखे नवे वल्कल नेसलेले अगस्तीऋषी, सर्वांगावर भस्मविलेपन केले असल्यामुळे भूलोकावर जणू चंद्रच अवतरल्यासारखे दिसत होते.।।३०।।

वडवाग्निशिखाजालसमालीढमिवार्णवम् ।
सर्वासामपि विद्यानां समुदायनिकेतनम् ।।३१।।

समालीढं व्याप्तमित्यर्थः।।३१।।

सर्व विद्यांचे निधान असणारे अगस्तीऋषी वडवाग्नीच्या ज्वालांनी व्याप्त अशा समुद्राप्रमाणे दिसत होते.।।३१।।

न्यक्कृतप्राकृताहन्तं निरूढशिवभावनम् ।
तृणीकृतजगज्जालं सिद्धीनामुदयस्थलम् ।।३२।।

तिरस्कृतप्राकृतशरीराद्यहङ्कारवन्तमित्यर्थः। सिद्धीनामणिमादिसिद्धीनामित्यर्थः।।३२।।

अगस्तीऋषी सर्व अष्टसिद्धींचे उगमस्थान असून त्याच्या ठिकाणी प्राकृतिक अहंकार उरलेला नव्हता. त्यांनी संसाराला कस्पटासमान लेखले होते आणि त्याच्या ठिकाणी शिवाविषयी दृढ निष्ठा वसत होती.।।३३।।

मोहान्धकारतपनं मूलबोधमहीरुहम् ।
ददर्श स महायोगी मुनिं कलशसम्भवम् ।।३३।।

मूलबोधस्य स्वरूपज्ञानस्य कल्पद्रुममित्यर्थः। एवमादिविशेषणविशिष्टं कलशसंभवमगस्त्यं स रेणुकाचार्यो ददर्श दृष्टवानित्यर्थः ।।३३।।

मोहरूपी अंधाराला सूर्यासारखे असणाऱ्या आणि मूळज्ञानाचे कल्पवृक्षच अशा अगस्तीऋषीस महायोगी श्रीरेणुकाचार्यांनी पाहिले.।।३३।।

अथ समागतं तं रेणुकाचार्यमगस्त्यः पूजयामासेति चतुर्भिः सूत्रैः प्रतिपादयति—

तमागतं महासिद्धं समीक्ष्य कलशोद्भवः ।
गणेन्द्रं रेणुकाभिख्यं विवेद ज्ञानचक्षुषा ।।३४।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

आता आश्रमात आलेल्या श्रीरेणुकाचार्यांची पूजा अगस्ती ऋषींनी केल्याचे वर्णन चार श्लोकांतून करतात—

आश्रमात आलेल्या त्या महासिद्धाकडे पाहून ते रेणुकाचार्यनामक गणेश्वर आहेत, हे अगस्तीऋषींनी आपल्या ज्ञानचक्षूंनी ओळखले.।।३४।।

तस्यानुभावं विज्ञाय सहसैव समुत्थितः ।
लोपामुद्राकरानीतैरुदकैरतिपावनैः ।।
पादौ प्रक्षालयामास स तस्य शिवयोगिनः ।।३५।।

स अगस्त्यः, तस्य रेणुकस्यानुभावं सामर्थ्यं समन्वीक्ष्य तस्मिन्नेव क्षणे समुत्थाय प्रणम्यासने उपवेशयदित्यर्थः ।।३५।।

अगस्ती ऋषी, रेणुकाचार्य येताच त्यांचा प्रभाव ओळखून आदराने उभे राहिले, त्यांना नमस्कार करून आसनावर बसविले आणि लोपामुद्रेच्या हातून अत्यंत पवित्र जल आणवून त्यानी त्यांचे पादप्रक्षालन केले.।।३५।।

सम्पूज्य तं यथाशास्त्रं तन्नियोगपुरस्सरम् ।
मुनिर्विनयसम्पन्नो निषसादासनान्तरे ।।३६।।

अथेति शेषः। तं रेणुकं शास्त्रोक्तप्रकारेण भक्तियुक्तः सन् अगस्त्यमुनिः सम्पूज्य तदाज्ञापुरःसरं यथा तथा पीठान्तरे उपविष्ट इत्यर्थः।।३६।।

नंतर त्या शिवयोग्याची त्यानी शास्त्रोक्त पद्धतीने पूजा केली. आणि त्यांची आज्ञा घेऊन अत्यंत विनयाने ते दुसऱ्या आसनावर बसले.।।३६।।

समासीनं मुनिवरं सर्वतेजस्विनां विभुम् ।
उवाच शान्तया वाचा रेवणः सिद्धशेखरः ।।३७।।

सर्व तेजस्वीऋषींमध्ये श्रेष्ठ अशा त्या बसलेल्या अगस्ती ऋषीला उद्देशून सिद्धांचे मुकुटमणी असे रेणुकाचार्य शांत स्वरात म्हणाले,।।३७।।

अथाष्टभिः सूत्रैः श्रीरेणुकोऽगस्त्यं कुशलप्रश्नपूर्वकं प्रस्तौति—

निर्विघ्नं वर्तसे किं नु नित्या ते नियमक्रिया ।
अथ वाऽगस्त्य तेजस्विन् कुतः स्युस्तेऽन्तरायकाः ।।३८।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तेजस्विन् भो अगस्त्य, अथ माङ्गल्येन निर्विघ्नं भवान् वर्तसे, किं नु ते नियमक्रिया नित्या वा विच्छेदरहिता वेत्यर्थः, ते अन्तरायका विघ्न कारिणः कुतः स्युः? न स्युरित्यर्थः ।।३८।।

आता आठ श्लोकातून श्रीरेणुकाचार्य अगस्ती ऋषींची कुशलप्रश्नपूर्वक स्तुती करतात–

हे अगस्ती महर्षे, तुझी नित्यनियमक्रिया निर्विघ्नपणे पार पडते आहे ना? परंतु हे तेजस्वी अगस्त्या, तुझ्यावर विघ्ने कशी येतील बरे? ।।३८।।

विन्ध्यो निरुद्धो भवता विश्वोल्लङ्घनविभ्रमः ।
नहुषो रोषलेशात् ते सद्यः सर्पत्वमागतः ।।३९।।

विश्वोल्लङ्घनविभ्रमो महामेरुप्रभृतिमहापर्वतोल्लङ्घनविलासवान् विन्ध्यः विन्ध्याद्रिः, निरुद्धः भूमौ निपातित इत्यर्थः। भो अगस्त्य ते क्रोधलेशात् सद्य एव नहुषः सर्पतां गतः ।।३९।।

हे अगस्त्या, मेरूपर्वतापेक्षाही उंच होण्याच्या ईर्षेने उचच उंच वाढत जाणाऱ्या दुरभिमानी अशा विध्यपर्वताला तू प्रतिबंध करून त्याला जमिनीवर आडवा घातलास. तसेच देवेंद्राचे स्थान मिळविलेल्या नहूष राजाने तुझा अपराध केल्यामुळे, तुझ्या अल्पशा रागाने तो लगेच सर्प झाला.।।३९।।

आचान्ते भवता पूर्वं पङ्कशेषाः पयोधयः ।
जीर्णस्ते जाठरे वह्नौ दृप्तो वातापिदानवः ।।४०।।

पूर्वं भवता आचान्ते आचमने कृते सति पयोधयः समुद्राः पङ्कशेषेण अवशिष्टाः कृताः। ते जठराग्नौ दृप्तः उद्धतः वातापिदानवः वातापि-नामासुरः, जीर्णो जात इत्यर्थः ।।४०।।

हे अगस्त्या, पूर्वी तू सप्तसमुद्राचे एका आचमनातच प्राशन केल्यामुळे तेथे केवळ चिखलच शिल्लक राहिला. आणि पूर्वी तुझ्या पोटात शिरलेला वातापी दानव जठराग्नीत भस्म होऊन गेला.।।४०।।

एवंविधानां चित्राणां सर्वलोकातिशायिनाम् ।
कृत्यानां तु भवान् कर्ता कस्तेऽगस्त्य समप्रभः।।४१।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सर्वजनातिशायिनाम् एवंविधचित्रकर्मणां त्वं कर्ता कर्माणि कुर्वाण इत्यर्थः। तस्माद् भो अगस्त्य ते समानप्रभावः कः? न कोऽपीत्यर्थः ।।४१।।

हे अगस्त्या, अशा प्रकारची लोकविलक्षण आणि चमत्कारिक कार्ये करणारा तुझ्यासारखा प्रभावी असा दुसरा कोणी या जगात नाही.।।४१।।

शिवाद्वैतपरानन्दप्रकाशनपरायणम् ।
भवन्तमेकं शंसन्ति प्रकृत्या सङ्गवर्जितम् ।।४२।।

अत्र लोका भवन्तमेकमेव शिवाद्वैतविज्ञानाविर्भूतपरमानन्दप्रकाशनतत्परं प्रकृतिसम्बन्धरहितं कथयन्तीत्यर्थः ।।४२।।

हे अगस्त्या, शिवाद्वैत परिज्ञानाचा आनंद प्रकाशित करण्यात तत्पर आणि स्वभावतः सर्वसंगपरित्यागी असा एकमेव तूच आहेस, अशी तुझी प्रशंसा सर्व लोक करतात.।।४२।।

तत्कथमित्यत्राह—

पुरा हैमवतीसूनुरवदत् ते षडाननः ।
शिवधर्मोत्तरं नाम शास्त्रमीश्वरभाषितम् ।।४३।।

हैमवतीसूनुः पार्वतीनन्दन इत्यर्थः ।।४३।।

हे अगस्त्या, पूर्वी पार्वतीपुत्र कार्तिकाने, शिवाने सांगितलेले शिवधर्मोत्तर नावाचे शास्त्र तुला उपदेशिले होते.।।४३।।

भक्तिः शैवी महाघोरसंसारभयहारिणी ।
त्वया राजन्वती लोके जाताऽगस्त्य महामुने ।।४४।।

स्कन्दोपदेशमहिम्ना अतिक्रूरसंसारभयनाशिनी शिवभक्तिस्त्वया भूलोके राजन्वती सम्यक्प्रकाशमाना जातेत्यर्थः।।४४।।

हे अगस्त्या, महाघोर अशा संसाराची भीती दूर करणारी शिवभक्ती तुझ्यामुळेच या जगात प्रसिद्धीस आली.।।४४।।

अथागस्त्यमुनिवचनम्

अथ अगस्त्यः स्वस्य रेणुकाचार्यदर्शनोत्थसौभाग्यं दशभिः सूत्रैर्वर्णयति—

इति तस्य वचः श्रुत्वा सिद्धस्य मुनिपुङ्गवः ।
गम्भीरगुणयां वाचा बभाषे भक्तिपूर्वकम् ।।४५।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

आता अगस्तीऋषी श्रीरेणुकाचार्यांच्या दर्शन-सौभाग्याचे वर्णन दहा श्लोकांतून करतात—

अशा प्रकारचे रेणुकसिद्धांचे बोलणे ऐकून ते ऋषिश्रेष्ठ अगस्ती भक्तियुक्त गंभीर वाणीने त्यांना म्हणू लागले.।।४५।।

अहमेव मुनीन्द्राणां लालनीयोऽस्मि सर्वदा ।
भवदागमसम्पत्तिर्मां विना कस्य संभवेत्? ।।४६।।

अहमेव सदा मुनीन्द्रैः लालनीयः श्लाघनीयः, तत्र हेतुर्भवदागमः, त्वदागमनसंपत्तिर्मां विना न कस्यापीत्यहमेव सर्वैः श्लाघनीयोऽस्मीति भावः।।४६।।

हे आचार्यवरा, आपण माझ्या आश्रमात येऊन मला दर्शन दिले, या अन्य कोणा ऋषीला न मिळणाऱ्या सौभाग्यामुळे मीच एकटा सर्वऋषींमध्ये स्तुत्य आणि धन्य झालो आहे.।।४६।।

स्थिरमद्य शिवज्ञानं स्थिरा मे तापसक्रिया ।
भवद्दर्शनपुण्येन स्थिरा मे मुनिराजता ।।४७।।

हे गणश्रेष्ठा, आपल्या दर्शनाच्या पुण्याईनेच आज माझे शिवज्ञान स्थिर झाले, माझ्या तपश्चर्येच्या सर्व क्रिया स्थिर झाल्या. आणि सर्वश्रेष्ठमुंनी म्हणून माझी पदवीही स्थिर झाली.।।४७।।

संसारसर्पदष्टानां मूर्च्छितानां शरीरिणाम् ।
कटाक्षस्तव कल्याणं समुज्जीवनभेषजम् ।।४८।।

तापत्रयात्मसर्पदष्टानामत एव मूर्च्छितानां प्राणिनां ते कटाक्षः कल्याणं मङ्गलात्मकं समुज्जीवनभेषजसंजीवनौषमित्यर्थः।।४८।।

हे आचार्यवरा, तापत्रयात्मक संसाररूपी सर्पाच्या दंशाने मूर्च्छित झालेल्या प्राण्यांना आपला कृपाकटाक्ष म्हणजे कल्याणकारी संजीवक औषधच आहे.।।४८।।

समस्तलोकसंदाहतापत्रयमहानलः ।
त्वत्पदाम्बुकणास्वादादुपशाम्यति देहिनाम् ।।४९।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

हे योगिवरा, सर्व लोकांना भाजणाऱ्या संसाराच्या तापत्रयरूपी महाअग्नीचा दाह आपल्या पादोदकाचा एक थेंबही प्राशन केल्यास शांत होतो.।।४९।।

तर्हि कोऽहमित्याकाङ्क्षायामाह—

रेणुकं त्वां विजानामि गणनाथं शिवप्रियम् ।
अवतीर्णमिमां भूमिं मदनुग्रहकाङ्क्षया ।।५०।।

हे गणश्रेष्ठा, शिवाच्या अत्यंत प्रेमास पात्र झालेले, गणांचे नाथ असे आपण रेणुकाचार्य आहात आणि माझ्यावर अनुग्रह करण्यासाठी आपण भूमीवर अवतरला आहात हे मी जाणतो.।।५०।।

भवादृशानां सिद्धानां प्रबोधध्वस्तजन्मनाम् ।
प्रवृत्तिरीदृशी लोके परानुग्रहकारिणी ।।५१।।

प्रवृत्तिः संचार इत्यर्थः, ईदृशी एव परानुग्रहरूपिणीत्यर्थः ।।५१।।

हे योगीश्वरा, शिवज्ञानामुळे जन्ममरण चुकलेले आणि सर्व सिद्धी प्राप्त झालेले आपणांसारखे योगीश्वर लोकांवर अनुग्रह करण्यासाठीच पृथ्वीवर संचार करतात.।।५१।।

त्वन्मुखाच्छ्रोतुमिच्छामि सिद्धान्तश्रुतिसंमतम् ।
सर्वज्ञ वद मे साक्षाच्छैवं सर्वार्थसाधकम् ।।५२।।
सद्यः सिद्धिकरं पुंसां सर्वयोगीन्द्रसेवितम् ।
दुराचारैरनाघ्रातं स्वीकृतं वेदवेदिभिः ।।
शिवात्मैक्यमहाबोधसम्प्रदायप्रवर्तकम् ।।५३।।

दुराचारैर्जैनबौद्धादिभिरनाघ्रातम् अस्वीकृतमित्यर्थः। साक्षाच्छिवात्म्यैक्येति सकललोकप्रत्यक्षभूतशिवजीवैक्यज्ञानसंप्रदायप्राप्तमित्यर्थः। एवमादिविशेषण-विशिष्टं शैवसिद्धान्तं त्वन्मुखाच्छ्रोतुमिच्छामि, भो सर्वज्ञ मे मह्यं वद कृपयेत्यर्थः ।।५२-५३।।

हे सर्वज्ञा, दुराचारी, नास्तिक व पाखंडी मतांच्या लोकांचा ज्याला स्पर्शही झालेला नाही व वैदिकांनी ज्याचा स्वीकार केला आहे, जो सर्वार्थसाधक असून जो योगिश्रेष्ठांना मनापासून आवडतो आणि जगातील सर्व प्राणिमात्रांचे मनोरथ ज्याच्यामुळे

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तात्काळ पूर्ण होतात अशा शिवजीवैक्यमहाज्ञान शिकविणाऱ्या वीरशैव सिद्धाताचा बोध मी प्रत्यक्ष आपल्या तोंडून ऐकू इच्छितो. तरी आपण कृपा करून मला त्याचा उपदेश करावा.।।५२-५३।।

उक्त्वा भवान् सकललोकमहोपकारं
सिद्धान्तसंग्रहमनादृतबाह्यतन्त्रम् ।
सद्यः कृतार्थयितुमर्हति दिव्ययोगिन्
नानागमश्रवणवर्तितसंशयं माम् ।।५४।।

इति श्रीसिद्धान्तशिखामणौ रेणुकागस्त्यदर्शनप्रसङ्गो नाम चतुर्थः परिच्छेदः समाप्तः ।।

दिव्ययोगिन् मनोहरशिवयोगयुक्त रेवणसिद्धेश्वर, अनादृतबाह्यतन्त्रं खण्डितजैनबौद्धादितन्त्रं सकललोकमहोपकारकं सकलप्राण्यनुग्राहकं सिद्धान्त-संग्रहं वेदसंमतसिद्धान्तसारमुक्त्वा उपदिश्य नानागमश्रवणवर्तितसंशयं कामिकादिवातुलान्तानेकागमश्रवणप्राप्तसंशयं मां भवान् सद्यः कृतार्थयितुमर्हति योग्योऽसीत्यर्थः ।।५४।।

इति श्रीमत्पदवाक्यप्रमाणपारावारधुरीणश्रीमरितोण्टदार्येण विरचितायां तत्त्वप्रदीपिकाख्यायां सिद्धान्तशिखामणिव्याख्यायां चतुर्थः परिच्छेदः।।

महायोगी अशा हे रेणुकाचार्या, कामिकादिवातुलांत अठ्ठावीस आगमांचे अध्ययन करून माझ्या मनात अनेक शंका निर्माण झाल्या आहेत. तरी वेदांना संमत आणि नास्तिक मताचे खंडन करणाऱ्या, जगातील सर्व लोकांचे कल्याण करणाऱ्या अशा शिव-सिद्धांतशास्त्राचा उपदेश करून, माझ्या सर्व शंकाचे निरसन करून मला त्वरित कृतार्थ करावे.।।५४।।

सिद्धांतशिखामणीतील रेणुकाचार्य आणि अगस्त्य
यांच्या भेटीचे वर्णन असलेला
हा चवथा परिच्छेद संपला.

चतुर्थ परिच्छेद समाप्त।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पञ्चमः परिच्छेदः

एवमगस्त्यविज्ञापनावाक्यश्रवणानन्तरं तच्छास्त्रप्रचारार्थमेव भूलोकमधिगतः शिवगणाधीशः श्रीरेणुकाचार्यः क्षणमचञ्चलमना दयया प्रारम्भणीयशिवशास्त्रपरिसमाप्तिप्रतिबन्धकीभूतविघ्नदेवतासङ्घसमाधानशक्तशिवध्यानरूपमङ्गलं मनसि विधाय तस्योत्तरमाहेति शिवयोगी निरूपयति, इत्यवतारिकयैव अस्यार्थस्य स्फुटत्वेऽपि योजनाद्वारेण ईषद्विशेषः सूच्यते—

अथागस्त्यवचः श्रुत्वा रेणुको गणनायकः ।
ध्यात्वा क्षणं महादेवं साम्बमाह समाहितः ।।१।।

अगस्त्यवचः श्रुत्वाऽथ गणनायको रेणुकः क्षणमेकाग्रचित्तः सन् साम्बमम्बया जगज्जनन्या शक्तिप्रणवरूपोंमुख्यस्वसमवेतचित्क्रियासामरस्यलक्षणचिदम्बरशक्त्या सह वर्तमानं महादेवं क्रीडाविजिगीषाद्यनेकगुणरत्नाकरं परब्रह्म तेजोलिङ्गं ध्यात्वा आह तस्योत्तरवचनं निरूपयतीत्यर्थः ।।१।।

महामुनी अगस्तीऋषींनी केलेली विज्ञापना ऐकून निगमागमोक्त शिवसिद्धांत-शास्त्राच्या प्रचारासाठी भूलोकावर अवतरलेले शिवगणांचे अधिपती श्रीरेणुकाचार्य क्षणैक स्थिरचित्त होऊन अगस्तीमुनीवरील दयेमुळे प्रारंभ होणाऱ्या शिवशास्त्राच्या निर्विघ्न परिसमाप्तीला प्रतिबंधक असलेल्या विघ्नदेवतासमूहाचे समाधान करण्यास समर्थ असलेले शिवध्यानरूपमंगल आपल्या हृदयात करून श्रीअगस्तीऋषींच्या प्रश्नाला उत्तर देते झाले, असे शिवयोगी शिवाचार्य सांगतात—

तिन्ही लोकांची जननी, प्रणवरूपिणी, स्वसमवेत, चित्क्रियासामरस्यस्वरूप अशी चिदंबरशक्ती आणि तिच्यासह असलेले लीलाविजिगीषु, गुणरत्नाकर, परब्रह्मरूपी ज्योतिर्लिंग शिव यांचे ध्यान करून स्थिरचित्ताने श्रीरेणुकाचार्य आगस्तीऋषींच्या प्रश्नाला उत्तर देतात—।।१।।

अगस्त्य मुनिशार्दूल समस्तागमपारग ।
शिवज्ञानकरं वक्ष्ये सिद्धान्तं शृणु सादरम् ।।२।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

समस्तागमपारग सकलनिगमागमपारङ्गत शिवशास्त्रप्रभुत्वान्मुनिशार्दूल मुनिश्रेष्ठ भो अगस्त्य, शिवज्ञानकरं स्वतन्त्रशिवाद्वैतज्ञानप्रकाशकं सिद्धान्तं सिद्धान्तशास्त्रं वक्ष्ये सादरः प्रीतियुक्तः सन् त्वं शृण्वित्यर्थः ।।२।।

सकल निगमागमात पारंगत व शिवशास्त्रावर प्रभुत्व असलेल्या हे मुनिश्रेष्ठ अगस्त्या, अन्य कोणत्याही शास्त्राचे साहाय्य न घेता स्वतत्रपणे शिवाद्वैताचे ज्ञान प्रकाशित करणारे असे जे शिवसिद्धात-शास्त्र मी सांगणार आहे ते तू आदराने ऐक.।।२।।

अथ तस्य सिद्धान्तस्याधिक्यं प्रतिपादयितुं सिद्धान्ता बहवः सन्तीत्याह—

अगस्त्य खलु सिद्धान्ता विख्याता रुचिभेदतः ।
भिन्नाचारसमायुक्ता भिन्नार्थप्रतिपादकाः ।।३।।

भो अगस्त्य रुचिभेदतः कपिलपतञ्जल्यादि-ऋषिप्रीतिवैचित्र्याद् भिन्नाचारस्य भिन्नप्रमेयस्य प्रतिपादकाः सिद्धान्ता बहव इति शेषः, विख्याताः खलु प्रसिद्धाः सन्तीत्यर्थः ।।३।।

शिवसिद्धाताचे श्रेष्ठत्व प्रतिपादन करण्यासाठी प्रथम अन्य सिद्धाताची माहिती देतात—

हे अगस्त्या,. कपिल, पतंजली आदी ऋषींनी आपापल्या रुचिभेदानुसार सांगितलेले, भिन्न-भिन्न अर्थ प्रतिपादन करणारे आणि भिन्न आचारांनी युक्त असे अनेंक सिद्धात प्रसिद्धच आहेत.।।३।।

ते क इत्याकाङ्क्षायामाह—

सांख्यं योगः पाञ्चरात्रं वेदाः पाशुपतं तथा ।
एतानि मानभूतानि नोपहन्यानि युक्तिभिः ।।४।।

सांख्यं कापिलं प्रकृतिपुरुषलक्षणपदार्थद्वयप्रतिपादकम्, तत्रानीश्वराङ्गीकारः। योगो योगशास्त्रं पतञ्जलिप्रणीतम्, तत्रेश्वराङ्गीकारः, कष्टकरयम-नियमाद्यष्टाङ्गप्रतिपादकम्। पाञ्चरात्रं वासुदेवप्रणीतं वैष्णवं विष्णुदीक्षाङ्ग-भूततप्तमुद्राधारणादिप्रतिपादनद्वारा चिदचिदीश्वरलक्षणत्रिपदार्थप्रतिपादकम्। पाशुपतं शिवप्रणीतं पशुपाशपतिलक्षणत्रिपदार्थप्रतिपादकम्। वेदाः "यस्य निश्वसिता वेदाः" इति शिवस्याप्रयत्नसिद्धनिश्वासरूपाः, अत एव अकृत्रिमा ऋग्यजुःसामरूपाः, तत्पूर्वकाण्डानुसारेण जैमिनिप्रोक्तं पूर्व-

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

मीमांसाख्यं यागादिकर्मप्राधान्यप्रतिपादकं निरीश्वरम् एतानि शास्त्राणि मानभूतानि प्रमाणभूतानि युक्तिभिर्नोपहन्यानि तर्कयुक्तिभिर्न खण्डनीयानि, "त्रयी सांख्यं योगः पशुपतिमतं वैष्णवमिति" इति महिम्नस्तोत्रप्रसिद्धत्वा-दित्यर्थः ।।४।।

श्रीकपिलमहर्षींनी सांख्यशास्त्र रचले. त्यात प्रकृती व पुरुष यांनाच प्राधान्य देऊन अनीश्वरवादाचा पुरस्कार केला आहे. योगशास्त्राचे निर्माते श्रीपतंजलीऋषी यांनी ईश्वराचे अस्तित्व मानून आपल्या शास्त्रात कष्टसाध्य अशा यमनियमादी अष्टांगांचे प्रतिपादन केले आहे. श्रीवासुदेवप्रणीत पांचरात्रनामक शास्त्रात विष्णूला मुख्य देव मानून त्याच्या अंगभूत दीक्षादी तप्तमुद्रा धारणादी विषयांचे प्रतिपादन केले आहे. आणि आपल्या तात्त्विक भूमिकेला अनुसरून चित्-अचित्-ईश्वर-लक्षणात्मक तीन पदार्थांचे निरूपण केले आहे. श्रीशिवाने रचलेले शास्त्र म्हणजे पाशुपतशास्त्र होय. त्यात पशु, पाश व पती या तीन पदार्थांना प्राधान्य देऊन त्यावर सखोल खंडनमंडनात्मक चर्चा करून, त्यांच्या मुख्य स्वरूपांचे दिग्दर्शन करून, शिवजीवाचा संबंध सुंदर रीतीने स्पष्ट केला आहे. शिवाचे निःश्वासस्वरूप असे ऋग्वेदादी चार वेद आणि त्यांत सांगितलेल्या कर्मकांडाला धक्का न लावता जैमिनीने पूर्वमीमांसा हे शास्त्र निर्माण केले. त्यात त्याने यागादी कर्मांना प्राधान्य देऊन अनीश्वरवादाचा पुरस्कार केला आहे. अशी ही शास्त्रे सर्व प्रमाणभूत असून त्यांचा युक्तिवादाने कोणीही उपमर्द करू नये असा आदेश वेदांनी दिला आहे.।।४।।

ननु कथमेषां प्रामाण्यमित्यत्राह—

वेदः प्रधानं सर्वेषां सांख्यादीनां महामुने ।
वेदानुसरणादेषां प्रामाण्यमिति निश्चितम् ।।५।।

उक्तलक्षणानां सर्वेषां सांख्यादीनां मध्ये वेदः प्रधानं मुख्यप्रमाणम्, अपौरुषेयत्वात्। एषां सांख्यादिसिद्धान्तानां वेदानुसरणाद् वेदमूलकत्वात् प्रामाण्यमिति शास्त्रज्ञैर्निश्चितमित्यर्थः ।।५।।

उपरोक्त शास्त्रांचे प्रामाण्य कशावरून ग्राह्य होय? याचे उत्तर सांगतात—

हे महामुने, सांख्यादी साही शास्त्रे अपौरुषेय वेदांना प्रमाण मानतात. आणि ती वेदांच्या आधाराने आपापल्या विषयांचे

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्रतिपादन करतात, म्हणून वेद हे मुख्य प्रमाण व शास्त्रे ही उपप्रमाण होत.।।५।।

ननु सांख्यादिशास्त्राणामपि वेदमूलत्वादेभ्यः शैवशास्त्रस्य को विशेष इत्यत्राह—

पाञ्चरात्रस्य सांख्यस्य योगस्य च तथा मुने ।
वेदैकदेशवर्तित्वं शैवं वेदमयं मतम् ।।६।।

अत्र चकारादविशिष्टद्वयं संगृहीतम्। एवं चोक्तलक्षणपाञ्चरात्रादिपञ्च-सिद्धान्तानां वेदैकदेशनिष्ठत्वम्, शैवं शिवशास्त्रं वेदमयं वेदस्वरूपमिति मतं निगमागमज्ञैरङ्गीकृतमित्यर्थः ।।६।।

सांख्यादी सर्व शास्त्रे वेदमूलक व वेदाश्रित आहेत, तर मग सांख्यादी शास्त्रांपेक्षा शैवशास्त्राचे वेगळे वैशिष्ट्य कोणते? याचे उत्तर असे की, हे मुने, सांख्यादी शास्त्रे ही वेदांच्या काही थोड्या भागास अनुसरून आहेत, सर्वथैव वेदांस अनुसरून नाहीत. तशी शैवशास्त्राची स्थिती नसून ते सर्वतोपरी वेदमय, वेदस्वरूप असल्याचे निगमागमज्ञात्यांनी मान्य केले आहे.।।६।।

एवं स्थिते सर्ववेदमयत्वात् शैवतन्त्रं सांख्यादिभ्यः श्रेष्ठमित्याह—

वेदैकदेशवर्तिभ्यः सांख्यादिभ्यो महामुने ।
सर्ववेदानुसारित्वाच्छैवतन्त्रं विशिष्यते ।।७।।

अत्र तन्त्रशब्देन शास्त्रमुच्यते। स्पष्टमन्यत् ।।७।।

हे महामुने, वेदांच्या काही भागास अनुसरणाऱ्या सांख्यादी शास्त्रापेक्षा वेदाचे संपूर्ण अनुसरण करणारे शैवशास्त्र वेदमय असून ते सर्व शास्त्रांमध्ये अग्रगण्य मानले गेले आहे.।।७।।

ननु तर्हि शैवतन्त्रं केनचित् कल्पितमिति प्रतीयमानत्वात् कथमस्य प्रामाण्यमित्यत्राह—

शैवतन्त्रमिति प्रोक्तं सिद्धान्ताख्यं शिवोदितम् ।
सर्ववेदार्थरूपत्वात् प्रामाण्यं वेदवत् सदा ।।८।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

शैवतन्त्रं शिवोक्तं सर्वज्ञशिवप्रोक्तं तत्सिद्धान्ताख्यमिति प्रोक्तम्, सर्ववेदार्थरूपत्वात् सकलोपनिषदर्थस्वरूपत्वात् सदा कालभेदराहित्येन वेदवत् प्रमाणमित्यर्थः ।।८।।

शैवशास्त्र कोणा एकाच्या कल्पनेतून निर्माण झालेले असेल तर अशा कल्पित शैवशास्त्राला प्रामाण्य कसे प्राप्त होऊ शकेल? अशा शंकेचे समाधान करण्यासाठी आचार्य म्हणतात की, सर्वज्ञ शिवाने सांगितलेल्या शैवशास्त्रास 'सिद्धांत' असे म्हणतात. ते शैवतंत्र-शैवशास्त्र सकल वेदस्वरूपी आहे. त्याच प्रमाणे सर्व उपनिषदांचाही अर्थ त्यात असून ते कालातीतही आहे, म्हणून त्याला वेदांप्रमाणे प्रमाण मानतात.।।८।।

आगमा बहुधा प्रोक्ताः शिवेन परमात्मना ।
शैवं पाशुपतं सोमं लाकुलं चेति भेदतः ।।९।।

परमात्मना शिवेन शैवमिति पाशुपतमिति सोममिति लाकुलमिति च भेदाद् आगमा बहवः प्रोक्ताः ।।९।।

सर्वज्ञ परशिवाने सांगितलेले आगम अनेक आहेत. त्यांचे शैव, पाशुपत, सोम आणि लाकुल असे चार भेद आहेत.।।९।।

ननु शिवोक्ततन्त्राणां बाहुल्यात् तानि सर्वाणि वेदवत् प्रमाणानि किमित्यत्राह—

तेषु शैवं चतुर्भेदं तन्त्रं सर्वविनिश्चितम् ।
वामं च दक्षिणं चैव मिश्रं सिद्धान्तसंज्ञकम् ।।१०।।

तेषु शैवतन्त्रं चतुर्भेदवदिति सर्वैरागमज्ञैर्निश्चितम्। ते के भेदा इत्यत्राह—वामं च दक्षिणं चैव मिश्रं सिद्धान्तसंज्ञकमिति ।।१०।।

असे हे शिवाने सांगितलेले आगम पुष्कळ असून ते सर्वच आगम वेदांप्रमाणे प्रमाण आहेत काय? याचे उत्तर असे की, त्या आगमांचे वाम, दक्षिण, मिश्र व सिद्धांत असे चार भेद विद्वानांनी मानले आहेत.।।१०।।

अथ तत्स्वरूपं प्रकटयति शक्तीत्यादिना—

शक्तिप्रधानं वामाख्यं दक्षिणं भैरवात्मकम् ।
सप्तमातृपरं मिश्रं सिद्धान्तं वेदसंमतम् ।।११।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

वामाख्यतन्त्रं शक्तिपरम्, दक्षिणतन्त्रं भैरवपरम्, मिश्रतन्त्रं ब्राह्म्यादिसप्तमातृकापरम्, सिद्धान्तं वेदसंमतं सिद्धान्ताख्यं शैवतन्त्रं वेदसंमतम्। अनेन सिद्धान्ताख्यशैवतन्त्रमेव वेदसंमतत्वाद्वेदवत् प्रमाणम्। शिष्टमवेदसंमतत्वात् त द्वन्न भवतीति सूचितम् ।।११।।

त्या चार सिद्धांतांचे मूल स्वरूप असे आहे--वाम नामक शैवतंत्र शक्तीची उपासना करणारे, दक्षिण नामक शैवतंत्र भैरवाची उपासना करणारे, मिश्र नामक शैवतंत्र सप्तमातृकांची (ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वराही, इंद्राणी आणि चामुण्डा या सप्तमातृकांची) उपासना करणारे आणि सिद्धान्त नामक शैवतंत्र शिवाची उपासना करणारे असून ते वेदानुसारी व वेदमय आहे. अन्य तीन तंत्रे वेदानुसारी नाहीत.।।११।।

ननु सिद्धान्ताख्यशैवतन्त्रं कथं वेदसंमतमित्यत्राह—

वेदधर्माभिधायित्वात् सिद्धान्ताख्यः शिवागमः ।
वेदबाह्यविरोधित्वाद् वेदसंमत उच्यते ।।१२।।

वेदोक्तभस्मलिङ्गधारणादिधर्मप्रतिपादकत्वाद् वेदबाह्यजैनचार्वाकादिमतनिरासकत्वात् सिद्धान्ताख्यः शिवागमो वेदसंमत इत्युच्यत इत्यर्थः ।।१२।।

सिद्धान्त नामक शैवतंत्रास वेदानुसारी व वेदसंमत कसे मानता येईल? अशी शंका आल्यास उत्तर असे की, वेदामध्ये भस्म-रुद्राक्ष-लिंगधारणादी धर्म प्रतिपादन केला असल्यामुळे व त्या वेदांप्रमाणेच सिद्धान्त नामक शैवतंत्रातही भस्म-रुद्राक्ष-लिंगधारणादी विषयांना प्राधान्य देऊन भक्तीला उत्तेजन देणारे असे सरस निरूपण केले आहे, या शिवाय वेदविरोधी असलेल्या चार्वाक, बौद्धादी नास्तिक मतांचे खंडन करून शैवसिद्धान्ताचे सप्रमाण, साधार, सयुक्तिक मंडन केलेले आहे, म्हणून सिद्धान्त नामक शिवागम वेदसंमत आहेत.।।१२।।

एवं वेदसंमतत्वात् सिद्धान्तो वेदवत् प्रमाणमित्याह—

वेदसिद्धान्तयोरैक्यमेकार्थप्रतिपादनात् ।
प्रामाण्यं सदृशं ज्ञेयं पण्डितैरेतयोः सदा ।।१३।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"सर्ववेदेषु यद् दृष्टं तत्सर्वं तु शिवागमे" इति वीरागमोक्ते-र्वेदसिद्धान्तयोरेकार्थकत्वाद् वेदवत् सिद्धान्तोऽपि प्रमाणमिति भावः।।१३।।

वेद आणि शैवसिद्धांत यात समान विषय प्रतिपादिलेले आहेत. वीरागमानुसार 'सर्व वेदानी जे जे सांगितले आहे ते ते सर्व शिवागमांत आहे' वेद आणि शैव-सिद्धांत समान अर्थाचे प्रतिपादन करीत असल्यामुळे विद्वानानी सिद्धान्त-आगमाना वेदाप्रमाणेच प्रमाण मानले आहे.।।१३।।

अथैवंविधसिद्धान्ताख्यशिवागमे किं प्रतिपाद्यत इत्यत्राह—

सिद्धान्ताख्ये महातन्त्रे कामिकाद्ये शिवोदिते ।
निर्दिष्टमुत्तरे भागे वीरशैवमतं परम् ।।१४।।

शिवोक्ते सिद्धान्ताख्ये कामिकादिवातुलान्ते महातन्त्रे उत्तरभागे परं सर्वोत्कृष्टं वीरशैवमतं निर्दिष्टमुपदिष्टम्। अनेन पूर्वभागे शैवमुपदिष्टमिति सूचितम् ।।१४।।

अशा सिद्धान्तनामक शैवतत्रात कोणत्या विषयांचे प्रतिपादन केले आहे? याचे उत्तर असे की, शिवाने उपदेशिलेले कामिकापासून वातुलापर्यंत असलेल्या अठ्ठावीस शिवागमांना 'सिद्धान्त' नामक महातंत्र म्हणतात, त्यांच्या उत्तरभागांत सर्वश्रेष्ठ वीरशैव मताचे प्रतिपादन असून पूर्वभागात शैवमताचे विवरण आहे.।।१४।।

अथ वेदशिरस्यपि वीरशैवशब्दं दर्शयति—

विद्यायां शिवरूपायां विशेषाद् रमणं यतः ।
तस्मादेते महाभागा वीरशैवा इति स्मृताः ।।१५।।

शिवरूपायां ब्रह्मस्वरूपायां विद्यायां "वेदान्तवाक्यजा विद्या" इति सूतगीतोक्तेर्वेदान्तवेद्यायां विद्यायां विशेषाद् यतः कारणाद् रमणं रतिरस्ति, तस्माद् एते तत्र रतिमन्तो महाभागाः परमश्रेष्ठा वीरशैवा इति स्मृता इत्यर्थः ।।१५।।

वेदांचा उत्तरभाग असलेल्या उपनिषदातही 'वीरशैव' शब्दाचे स्पष्टीकरण आहे असे सांगतात—

'वेदान्तवाक्यातून जन्मणारी जी विद्या तीच ब्रह्मरूपी विद्या होय'. असे सूतगीतेचे वचन आहे. त्या शिवस्वरूपी विद्येत

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

विशेषत्वाने रमणारे, रस घेणारे असे जे महाभाग त्याना 'वीरशैव' असे म्हणतात.।।१५।।

अथ वेदागममस्तकयोरपि वीरशैवशब्दनिर्वचनं दर्शयति—

वीशब्देनोच्यते विद्या शिवजीवैक्यबोधिका ।
तस्यां रमन्ते ये शैवा वीरशैवास्तु ते मताः ।।१६।।

शिवजीवैक्यबोधिका लिङ्गाङ्गरूपशिवजीवैक्यप्रकाशिका विद्या वीशब्देन उच्यते पण्डितैः कथ्यत इत्यर्थः, "वी गतिव्याप्तिप्रजनकान्त्यसनखादनेषु" इति धातोस्तस्यां विद्यायां ये शैवाः शिवभक्ता रमन्ते, ते तु वीरशैवा इति मताः संमता इत्यर्थः ।।१६।।

वेद व आगम याच्या उत्तरभागात 'वीरशैव' शब्दाचे निरूपण आढळते— 'वी' शब्दाचा अर्थ विद्या, आणि 'र' शब्दाचा अर्थ रमणारे असे विद्वानांचे सागणे आहे. जी विद्या शिव (लिग) आणि जीव (अग) याच्या ऐक्याचे ज्ञान करून देणारी आहे, त्या विद्येत जे शैव लोक रमतात, सुख मानतात ते वीरशैव होत.।।१६।।

अथ वीरमाहेश्वरशब्दनिर्वचनं करोति—

विद्यायां रमते यस्मान्मायां हेयां श्ववद् रहेत् ।
अनेनैव निरुक्तेन वीरमाहेश्वरः स्मृतः ।।१७।।

यस्माद् लिङ्गाङ्गसम्बन्धकरणार्थं शिवजीवैक्यप्रकाशिकायां विद्यायां रमते, मायां जगद्रूपां हेयां त्यजनीयां श्ववत् शुनकवद् रहेत् निवारयेत्, अनेनैव निरुक्तेन एकद्वित्र्यादिपदगताद्यक्षरप्रवचनेनैव वीरमाहेश्वर इत्यन्वर्थनाम्ना स्मृत इत्यर्थः ।।१७।।

यापुढे 'वीरमाहेश्वर' शब्दाचे निर्वचन असे की, (वी=विद्या, र=रमणे, मा=माया, हे=हेय, श्व=श्वान, र=रहित) शिवजीवैक्य-बोधक विद्येमध्ये जे रममाण होतात आणि संसाररूपी मायेला श्वान समजून, तिचा त्याग करतात त्यांना 'वीरमाहेश्वर' या अन्वर्थक नावाने संबोधिले जाते.।।१७।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

एवं वेदान्तसिद्धवीरशब्दसिद्धान्तप्रसिद्धशैवशब्दमहेश्वरशब्दांश्च विविच्यानन्तरं वेदागमशिरःसिद्धवीरशैववीरमाहेश्वरस्वरूपं षड्भिः सूत्रैर्विशदयति। तत्र प्रथमं वीरशब्दः कथं वेदान्तप्रसिद्ध इत्यत्राह—

वेदान्तजन्यं यज्ज्ञानं विद्येति परिकीर्त्यते ।
विद्यायां रमते तस्यां वीर इत्यभिधीयते ।।१८।।

"वेदान्तवाक्यजा विद्या" इति सूतगीतोक्तेर्वेदान्तवाक्यप्रकाश्यं यज्ज्ञानं विद्या, तस्यां यो रमते स वीर इत्यर्थः ।।१८।।

अशा रीतीने वेदान्तसिद्ध 'वीर' शब्द आणि सिद्धान्त-सिद्ध 'शैव' व 'माहेश्वर' या शब्दाचे विवेचन केल्यानंतर वेद आणि आगम यांच्यामध्येही प्रख्यात असलेले वीरशैव आणि वीरमाहेश्वर याचे स्वरूप सहा श्लोकातून विशद करतात—

त्यापैकी प्रथम 'वीर' शब्द कसा वेदान्तप्रसिद्ध आहे ते पाहा. 'जे ज्ञान वेदान्तापासून उत्पन्न होते ती विद्या' असे सूतगीतेचे वचन आहे. आणि त्या विद्येमध्ये जे रमतात, म्हणजे तिचे श्रवण-मनन-निदिध्यासन करतात त्यांना 'वीर' असे म्हणतात.।।१८।।

एवं वेदान्तप्रसिद्धवीरशब्दपूर्वकत्वेन सिद्धान्तप्रसिद्धशिवतत्त्वज्ञाननिष्ठान् शैवान् माहेश्वरतत्त्वकर्मनिष्ठान् माहेश्वरांश्च सार्धसूत्रेण स्फुटयति—

शैवैर्माहेश्वरैश्चैव कार्यमन्तर्बहिःक्रमात् ।
शिवो महेश्वरश्चेति नात्यन्तमिह भिद्यते ।।१९।।

शैवैर्वीरशब्दपूर्वकशैवैः, वीरशैवैरित्यर्थः। माहेश्वरैर्वीरमाहेश्वरैश्च अन्तर्बहिःक्रमात्, शिवलिङ्गार्चनमिति शेषः, कार्यं कर्तुं योग्यम्। एवंस्थिते शिवो निष्कलः शिवो महेश्वरः, सकलः सदाशिवश्चेति स्थितौ। इह "शिवः शूली महेश्वरः" इत्यभिधानगुणपाठे यथाऽत्यन्तं न भिद्यते, तयोरात्यन्तिकभेदो नास्ति ।।१९।।

अशा रीतीने वेदान्तात प्रसिद्ध असलेले शिवज्ञाननिष्ठ वीरशैव व कर्मनिष्ठ वीरमाहेश्वर यांचे वर्णन पुढील प्रमाणे करतात— वीरशैव व वीरमाहेश्वर या दोघांच्या क्रियेमध्ये भेद आहे. तो असा की, वीरशैव अंतरक्रियेवर भर देतात तर वीरमाहेश्वर बाह्यक्रियेवर भर देतात. दोघांच्या क्रियेत भेद दिसून येत असला तरी वस्तुतः दोघांची लिंगार्चना एकच असते. जसे निष्कल-शिव

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

आणि महेश्वर-सकल-सदाशिव ही एकाच परशिवाची रूपे आहेत, तशी त्यांच्या उपासकांची नावे भिन्न असली तरी त्याच्या उपासनेचे लक्ष्य एकच आहे.।।१९।।

अथ शैवमाहेश्वरयोरन्तर्बाह्यरूपलिङ्गार्चनं यदुक्तं तत्कीदृशमित्यत्राह—

यथा तथा न भिद्यन्ते शैवा माहेश्वरा अपि ।
शिवाश्रितेषु ते शैवा ज्ञानयज्ञरता नराः ।।२०।।

तथा शैवाः शिवसम्बन्धिनो वीरशैवा माहेश्वरा अपि महेश्वरसम्बन्धिनो वीरमाहेश्वराश्च न भिद्यन्ते भिन्ना न भवन्ति। अत्र सदाशिवस्य सोपाधिकत्वेऽपि तदुपाधेर्वक्ष्यमाणरीत्या सत्वगुणप्रधानत्वेन नापरत्वात् तयोरात्यन्तिकभेदो नास्तीति भावः। शिवाश्रितेषु ये नराः पुरुषा ज्ञानयज्ञरता हृत्कमलस्थचिल्लिङ्गपूजायां प्रीतियुक्तास्ते शैवा वीरशैवा इत्यर्थः ।।२०।।

वीरशैव व वीरमाहेश्वर यांच्या अंतर्बाह्यरूप लिंगार्चनेत अंतर असते, ते कसे? याचे उत्तर असे की, शिवाशी अंतरंगउपासनेने अनन्य संबंध बाळगणारे ते वीरशैव आणि महेश्वराशी बाह्यपूजेने अनन्य संबंध बाळगणारे ते वीरमाहेश्वर होत. वीरमाहेश्वरांना पूज्य असणारा महेश्वर हा उपाधियुक्त असून, त्याची उपाधी सत्त्वप्रधान असल्यामुळे त्याच्यात व निष्कल, निरुपाधिक शिवामध्ये मुळीच भेद नाही. शिवाशी अनन्य संबंध बाळगणाऱ्या वीरशैवांना आपल्या हृदयकमलात असणाऱ्या चिल्लिंगाची पूजा करणे अत्यंत प्रिय असते.।।२०।।

माहेश्वराः समाख्याताः कर्मयज्ञरता भुवि ।
तस्मादभ्यन्तरे कुर्युः शैवा माहेश्वरा बहिः ।।२१।।

कर्मयज्ञरताः करकमलस्थक्रियालिङ्गपूजायां प्रीतियुक्ता माहेश्वरा वीरमाहेश्वरा इति भुवि समाख्याताः प्रख्याता इत्यर्थः। तस्मात् शैवा वीरशैवा अभ्यन्तरे हृत्कमले कुर्युः, ज्ञानकाण्डप्रतिपादितप्राणलिङ्गिशरण-शिवैक्यस्थलोक्तधर्माचरणं कुर्युरित्यर्थः। माहेश्वरा वीरमाहेश्वरा बहिः कर्मकाण्डस्थभक्तमाहेश्वरप्रसादिस्थलोक्तधर्माचरणं कुर्युरित्यनुषङ्गः।"ज्ञानं प्रधानं न तु कर्महीनं कर्म प्रधानं न तु चिद्विहीनम्। तस्माद् द्वयोरेव भवेत् प्रसद्धिर्न ह्येकपक्षो विहगः प्रयाति।।", "न क्रियारहितं ज्ञानं न ज्ञानरहिता क्रिया। अपश्यन्नन्धको दग्धः पश्यन् पङ्गुश्च दह्यते।।" इत्यादिवचनात्

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

शैवमाहेश्वरयोर्ज्ञानं क्रिया च समानैवेत्यनुसन्धेयम्, किन्तु बाह्यान्तरपूजाप्रीतिमात्रं विशिष्यत इति ।।२१।।

आपल्या हातात इष्टलिंगाची पूजा करण्यात रमणारे ते वीरमाहेश्वर या नावाने प्रसिद्ध आहेत. आणि हृदयात, ज्ञानकांडामध्ये प्रतिपादिलेल्या प्राणलिंगी-शरण-ऐक्य स्थलांत सांगितल्याप्रमाणे धर्माचरण करणारे शैव ते वीरशैव होत. वीरमाहेश्वर हे बाह्यकर्मकांडस्थ भक्त-माहेश्वर-प्रसादी या स्थलात वर्णिल्याप्रमाणे धर्माचरण करतात. वीरशैव तत्त्वज्ञानात ज्ञान व कर्म या दोहोंना सारखेच महत्त्व आहे. ज्ञान आणि कर्म हे पक्ष्याच्या दोन पंखाप्रमाणे आहेत. एका पंखाने पक्ष्याला जसे उडता येणे अशक्य असते, तसे ज्ञान व कर्म यापैकी एकानेच संसारापासून मुक्ती मिळणे कठीण. आग लागलेल्या ठिकाणी, पाहू न शकणारा आंधळा व चालू न शकणारा पांगळा हे जसे एकमेकांचे साहाय्य घेतल्याविना आगीत जळून जाण्याची शक्यता असते, तद्वत् केवळ ज्ञान किंवा केवळ कर्म याचा अवलंब करणाऱ्याची स्थिती होते. म्हणून शैव व माहेश्वर या दोघांना ज्ञान व क्रिया या द्वंद्वाची नितांत आवश्यकता असते. यालाच समुच्चयवाद असे म्हणतात. बाह्य व अंतर पूजेला फक्त वैयक्तिक आवड व अधिकार कारण असतात.।।२१।।

वीरशैवास्तु षड्भेदाः स्थलधर्मविभेदतः ।
भक्तादिव्यवहारेण प्रोच्यन्ते शास्त्रपारगैः ।।२२।।

अथ वीरमाहेश्वरा इति प्रसिद्धवीरशैवास्तु भक्तादिशिवैक्यान्तव्यवहारेण स्थलधर्मविभेदतः पिण्डादिवृत्तिज्ञानशून्यान्तःस्थलाचारभेदतः षड्भेदाः षड्विधभेदवन्त इति शास्त्रपारगैः प्रोच्यन्त इत्यर्थः ।।२२।।

स्थलभेद, आचरणभेद आणि अंतर्बाह्य लिंगार्चन यांच्या वैविध्याने वीरशैवांचे सहा भेद होतात. त्या भेदांना शास्त्रपारंगत विद्वानांनी भक्त, माहेश्वर, प्रसादी, प्राणलिंगी, शरण आणि ऐक्य अशी नावे दिली आहेत.।।२२।।

अथ तच्छास्त्रभेदं दर्शयति—

शास्त्रं तु वीरशैवानां षड्विधं स्थलभेदतः ।
धर्मभेदसमायोगादधिकारिविभेदतः ।।२३।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

वीरशैवानां शास्त्रं तु विशेषद्योतकम्, स्थलभेदतः स्थलभेदात्, धर्मभेद-समायोगात्, स्थलोक्तसदाचारभेदसम्बन्धात्, अधिकारिविभेदतः स्थलनिष्ठ-भक्ताद्यधिकारिभेदतश्च षड्विधः षट्प्रकारवदित्यर्थः। अस्य शास्त्रस्य वीरशैवधर्मनिष्ठः सन् मुमुक्षुर्भक्तोऽधिकारी, शिवभक्तिलभ्यशिवैक्यरूप-परमुक्तिः प्रयोजनम्, एकोत्तरशतस्थलज्ञानं विषयः, अस्य ज्ञानस्य शास्त्रेण प्रकाश्यप्रकाशकभाव एव सम्बन्धः । एवमनुबन्धचतुष्टयवदेतच्छास्त्रम् ।।२३।।

वीरशैवांचे शास्त्र अन्य शास्त्रांपेक्षा वैशिष्ट्यपूर्ण आहे. षट्स्थलांच्या भेदामुळे, त्यांत वर्णिलेल्या धर्माचरणसंबंधामुळे, स्थलाला अनुसरून असलेल्या धर्मविधिसबंधामुळे आणि स्थलनिष्ठ भक्तादी अधिकारभेदामुळे वीरशैव मतात वरील प्रमुख सहा स्थले मानतात. प्रत्येक शास्त्राच्या आरंभी अनुबंधचतुष्टय सागणे आवश्यक असते, तसे येथे वीरशैव धर्मात निष्ठा असलेला व मुक्तीची अपेक्षा बाळगणारा शिवभक्त 'अधिकारी', ज्ञानाला शास्त्राद्वारे मिळणारा प्रकाश्य-प्रकाशक-भाव हा 'संबंध', एकशे एक स्थलांचे ज्ञान होणे हा 'विषय' आणि शिवभक्तीपासून प्राप्त होणारी शिवैक्यमुक्ती हे 'प्रयोजन' आहे. असे वीरशैवसिद्धांत-शास्त्रातील अनुबंधचतुष्टय समजावे.।।२३।।

अथ स्थलक्रमं निरूपयति—

आदौ भक्तस्थलं प्रोक्तं ततो माहेश्वरस्थलम् ।
प्रसादिस्थलमन्यत्तु प्राणलिङ्गस्थलं ततः ।।२४।।

स्पष्टम् ।।२४।।

उपरोक्त स्थलांचा क्रम असा—प्रथमस्थल हे भक्तस्थल, दुसरे माहेश्वर, तिसरे प्रसादी, चौथे प्राणलिंगी, पाचवे शरण आणि सहावे ऐक्य अशी ही सहा स्थले होत.।।२४।।

भक्तस्थलम्

भक्तस्थलं प्रवक्ष्यामि प्रथमं कलशोद्भव ।
तदवान्तरभेदांश्च समाहितमनाः शृणु ।।२५।।

अथैवमुद्दिष्टस्थलेषु क्रमप्राप्तभक्तस्थलं तदवान्तरभेदांश्च वक्ष्यामि, शृण्वित्यन्वयः ।।२५।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

हे अगस्त्या, आता उद्दिष्ट सहा स्थलांपैकी प्रथम असणाऱ्या भक्तस्थलासह त्याचे अवांतर पिंडस्थलादी भेद कोणते ते सांगेन. तू नीट लक्ष देऊन ऐक.।।२५।।

अथ भक्तस्थलं लक्षयति—

शैवी भक्तिः समुत्पन्ना यस्यासौ भक्त उच्यते ।
तस्यानुष्ठेयधर्माणा मुक्तिर्भक्तस्थलं मतम् ।।२६।।

यस्य शिवसम्बन्धिनी भक्तिरुत्पन्ना, सोऽसौ भक्त इत्युच्यते। तस्य भक्तस्यानुष्ठेयधर्माणामाचरणीयवीरशैवधर्माणाम्, उक्तिः— "सदाचारः शिवे भक्तिर्लिङ्गे जङ्गम एकधीः। लाञ्छने शरणे भक्तिर्भक्तस्थलमनुत्तमम्।।" इत्याद्युपदेशनं भक्तस्थलमिति मतम्, संमतमित्यर्थः ।।२६।।

आता भक्तस्थलाचे निरूपण असे—ज्याच्या मनात शिवाविषयी भक्ती उत्पन्न झाली आहे त्याला शिवभक्त म्हणावे. त्याचे आचरण कसे असावे याविषयी वीरशैव धर्मात पुढील गोष्टी सांगितल्या आहेत. 'तो सदाचारी असावा, त्याची शिवावर भक्ती असावी, गुरु-लिंग-जंगमावर समान निष्ठा असावी. तसेच शिवशरण आणि त्यांच्या भगव्या वेषाविषयी पूज्यभाव असावा. एवंगुणविशिष्ट आचरण असलेले भक्तस्थल होय.।।२६।।

अथ पिण्डादिभक्तस्थलावान्तरस्थलानि पञ्चदशेत्युक्त्वा तान्युद्दिशति—

अवान्तरस्थलान्यत्र प्राहुः पञ्चदशोत्तमाः ।
पिण्डता पिण्डविज्ञानं संसारगुणहेयता ।।२७।।

भक्तस्थलाचे पिंडादी पंधरा पोटभेद आहेत, ते असे—१, पिंडस्थल २, पिंडज्ञानस्थल ३, संसारहेयस्थल.।।२७।।

दीक्षा लिङ्गधृतिश्चैव विभूतेरपि धारणम् ।
रुद्राक्षधारणं पश्चात् पञ्चाक्षरजपस्तथा ।।२८।।

४, दीक्षाप्राप्तिरूप गुरुकारुण्यस्थल ५, लिंगधारणस्थल ६, विभूतिधारणस्थल ७, रुद्राक्षधारणस्थल ८, रुद्राक्षजपस्थल.।।२८।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भक्तमार्गक्रिया चैव गुरोर्लिङ्गस्य चार्चनम् ।
जङ्गमस्य तथा ह्येषा प्रसादस्वीकृतिस्तथा ।।२९।।

९, भक्तमार्गक्रियास्थल १०, उभयस्थल ११, त्रिविधसंपत्ति-स्थल १२, चतुर्विधसारायस्थल १३, सोपाधिदानस्थल १४, निरुपाधिदानस्थल १५, सहजदानस्थल.।।२९।।

अत्र दानत्रयं प्रोक्तं सोपाधिनिरुपाधिकम् ।
सहजं चेति निर्दिष्टं समस्तागमपारगैः ।।३०।।
एतानि शिवभक्तस्य कर्तव्यानि प्रयत्नतः ।

अत्र भक्तस्थले, उत्तमा आर्याः, अवान्तरस्थलानि पञ्चदशेत्याहुः। तानि कानीत्यत्र— पिण्डतेत्यादि। पिण्डस्थलम्, पिण्डज्ञानस्थलम्, संसारहेयस्थलम्, दीक्षालक्षणगुरुकारुण्यस्थलम्, लिङ्गधारणस्थलम्, विभूतिधारणस्थलम्, रुद्राक्षधारणस्थलम्, पञ्चाक्षरीजपस्थलम्, भक्तमार्गस्थलम्, गुरुलिङ्गार्चन-रूपोभयस्थलम्, जङ्गमार्चनलक्षणत्रिविधसंपत्तिस्थलम्, एतत्त्रयप्रसाद-स्वीकारलक्षणचतुर्विधसारायस्थलम्, अत्र भक्तस्थले प्रोक्तदानत्रयमेव उपाधिमाटम्, निरुपाधिमाटम्, सहजमाटं चेति स्थलत्रयमेतान्येवान्तर-रूपपञ्चदशस्थलानि शिवभक्तस्य विधेयानीत्यर्थः ।।३०।।

सर्व आगमांत पारंगत असलेल्या विद्वानांनी सांगितल्यानुसार या पंधरा अवांतर स्थलांत वर्णिल्याप्रमाणे शिवभक्तांनी प्रयत्नपूर्वक आचरण करावे.।।३०।।

पिण्डस्थलम्

समस्तवेदागमशिरःसिद्धाङ्गषट्स्थललिङ्गषट्स्थलान्तर्गतत्वेन समाचरणीय-पिण्डतादिवृत्तिज्ञानशून्यान्तैकोत्तरशतस्थलानां मुख्यं पिण्डस्थलं निरूपयति—

बहुजन्मकृतैः पुण्यैः प्रक्षीणे पापपञ्जरे ।
शुद्धान्तःकरणो देही पिण्डशब्देन गीयते ।।३१।।

अनेकजन्मकृतधर्मैर्मनोवाक्कायकर्मकृतपापसमूहे नष्टे सति निर्मलान्तः-करणवानात्मा पिण्डशब्देन कथ्यत इत्यर्थः, "पुनर्जन्मान्तरकर्मयोगात् स एव जीवः" इति श्रुतेः। उक्तप्रकारेण शुद्धान्तःकरणः स एव जीवः पिण्डाभिधान इति यावत् । अत्र पिण्डस्थलं साधनम्, वक्ष्यमाणपिण्ड-ज्ञानादिशतस्थलानि साध्यानि। नेत्रे द्वे अपि यथा दर्शनमेकम्, पादौ द्वावपि यथा गमनमेकम्, तथा "आत्मलाभान्न परं विद्यते", "नात्मनः परदेवता"

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इति श्रुत्यागमप्रतिपाद्यपिण्डस्थलं गुरूपदेशस्वानुभावाभ्यामेकं सद्विज्ञेयमिति भावः ।।३१।।

सकल वेदागमांमध्ये शिरोभागी असलेले अगषट्स्थल व लिंगषट्स्थल यांच्या अंतर्गत असलेली, सम्यक् आचरण करण्यास योग्य अशी पिंडस्थलापासून वृत्तिज्ञानशून्यापर्यंत एकशेएक स्थले आहेत. त्या स्थलांमध्ये मुख्य असे प्रथम पिंडस्थल, त्याचे निरूपण असे—अनेक जन्मांमध्ये केलेल्या सुकृतात्मक पुण्याने मन, वाणी व शरीरकर्मांनी संचित पापांचा समूह समूळ नष्ट झाल्यानतर ज्याचे अंतःकरण नितांत परिशुद्ध झाले आहे, अशा जीवास पिंड असे नाव आहे. याला श्रुतीचा आधार आहे. येथे पिंडस्थल हे साधन असले तरी, पुढील शंभर स्थले ही पिंडस्थलाच्या माध्यमातूनच साध्य होतात. ही स्थले भिन्न भासली तरी त्यांचे साध्य एकच होय. जसे डोळे दोन असले तरी दृष्टी एकच. पाय दोन असले तरी चालणे एकच. श्रुतिवचनानुसार (नात्मनाःपरदेवता) आत्म्यापेक्षा दुसरा श्रेष्ठ देव नाही. आणि 'आत्मलाभान्नपरंविद्यते' म्हणजे आत्मलाभाशिवाय दुसरा मोठा लाभही नाही. म्हणून वेदागमांनी प्रतिपाद्य असलेले पिंडस्थल गुरूच्या उपदेशाने आणि स्वानुभवाच्या माध्यमातून जाणून घेण्यास योग्य आहे.।।३१।।

नन्वयं पिण्डशब्दवाच्यः किं लोकसाधारणो वा तद्विशिष्टो वेत्यत्राह—

शिवशक्तिसमुत्पन्ने प्रपञ्चेऽस्मिन् विकल्प्यते ।।३२।।
पुण्याधिकः क्षीणपापः शुद्धात्मा पिण्डनामकः ।

शिवशक्तिसमुत्पन्ने "लिङ्गाङ्कितं पश्य जगद्भगाङ्कम्" इति व्यासवचनात् शिवशक्तिभ्यामुत्पन्नेऽस्मिन् प्रपञ्चे पुण्याधिक्यात् पापक्षयात् शुद्धात्मा निर्मलान्तःकरणः पिण्डाभिधानः पुरुषः, विशिष्यत इतरजनापेक्षया श्रेष्ठो भवतीत्यर्थः ।।३२।।

शिव आणि शक्ती यांच्यापासून उत्पन्न झालेल्या या जगात जन्माला आलेला हा जीव पुण्याच्या आधिक्याने आणि पापाच्या क्षयाने शुद्धात्मा झाल्यावर त्याला पिंड असे नाव प्राप्त होते. तो पिंड नावाचा जीव इतर सामान्य लोकांपेक्षा श्रेष्ठ असतो.।।३२।।

ननु तर्ह्ययं पिण्डनामकः शिवो वा तदन्यो वा? इत्यत्राह—

एक एव शिवः साक्षाच्चिदानन्दमयो विभुः।।३३।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

निर्विकल्पो निराकारो निर्गुणो निष्प्रपञ्चकः ।
अनाद्यविद्यासम्बन्धात् तदंशो जीवनामकः ।।३४।।

चिदानन्दमयः स्वतन्त्रप्रकाशः, अत एव साक्षाद् अहमिति देशकालाद्यचुम्बितत्वेन सर्वलोकप्रत्यक्षः, "उतैनं गोपा अदृशन्" इत्यादिश्रुतेः। विभुः पूर्णः, निर्विकल्पो भेदरहितः, अत एव निष्प्रपञ्चको मायिकप्रपञ्चशून्यः, निराकारो नीलपीताद्याकाररहितः, निर्गुणो मायिकसत्त्वरजस्तमोगुणरहितः शिवः अकुण्ठितेच्छाद्यनेककल्याणपूर्णः परमात्मा एक एव, "एकमेवाद्वितीयम्" इति श्रुतेः शिवातिरेकेण पदार्थान्तरं नास्तीत्यर्थः। तथाप्यनाद्यविद्यासम्बन्धाद् जीवब्रह्मविभागवद्वक्ष्यमाणस्वविमर्शशक्त्यनादिपरिकल्पितमायासम्बन्धात् तदंशो ज्ञानक्रियासामरस्यात्मनः शिवस्य अंशश्चित्क्रियालक्षणो जीवनामको जीव इत्यभिधानवानित्यर्थः, "ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः" इति भगवदुक्तेः, "अंशो नानाव्यपदेशात्" इति ब्रह्मसूत्रस्थितेश्च ।।३३-३४।।

पिंड नावाचा हा जीव शिवच आहे की त्यापेक्षा वेगळा आहे? या प्रश्नाचे उत्तर—जीव हा शिवाचा अंशच आहे. तो शिव कसा? तर चिदानंदस्वरूप अर्थात् स्वयंप्रकाशी असलेला म्हणून देशकालसंबंधभेदविरहित सर्वांना अहम् स्वरूपाने प्रत्ययास येणारा, विभु म्हणजे सर्वव्यापी अर्थात् पूर्ण, निर्विकल्प अर्थात् भेदरहित, निष्प्रपंचक अर्थात् मायिक प्रपंचरहित, निराकार अर्थात् नीलपीतादिआकाररहित, निर्गुण म्हणजे मायिक सत्त्वरजस्तमोगुणरहित, शिव म्हणजे अबाधित इच्छादी अनेक कल्याणगुणपूर्ण परमात्मा एकच असून तो शिवाखेरीज अन्य कोणताही पदार्थ नाही. तथापि अनादी अशा अविद्येच्या संबंधाने जीव व ब्रह्म यांच्या विभागानुसार पुढे सांगण्यात येणारा स्वविमर्शशक्तीपासून अनादी कल्पित मायेचा जो संबंध शिवाशी आलेला आहे, त्या सबंधापासून ज्ञानक्रियासमवेत परब्रह्म परशिवाचा अंशभूत असलेल्या चित्क्रियास्वरूपी अंशाला 'जीव' असे अभिधान आहे. गीतेत आणि ब्रह्मसूत्रातही जीव हा परमात्म्याचा अंश असल्याचा उल्लेख आहे. म्हणून पिंड नावाचा जो जीव तो शिवाचा अंश आहे असे समजावे.।।३३–३४।।

अथ कथं शिवस्तदन्तरङ्गे तिष्ठतीत्यत्राह—

देवतिर्यङ्मनुष्यादिजातिभेदे व्यवस्थितः ।
मायी महेश्वरस्तेषां प्रेरको हृदि संस्थितः ।।३५।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

स जीवो देवतिर्यङ्मनुष्यादिजातिभेदेऽप्यवस्थितः, "देवाः षोडशलक्षाणि नवलक्षाणि मानुषाः। दशभिर्दशभिस्तद्वज्जलजा विहगा मृगाः।। सरीसृपास्तु लक्षाणि एकादश चरेतराः।। अष्टौ च दशलक्षाणि सप्तजन्मान्यमूनि वै।।" अत्र सरीसृपाः सर्पाः। स्पष्टमन्यत्। इति स्कान्दवचनात् सुरनरोरगादिनानाजातिभेदे तिष्ठतीत्यर्थः। महेश्वर उक्तलक्षणः परशिवः, "मायां तु प्रकृतिं विन्द्यान्मायिनं तु महेश्वरम्" इति श्रुतेः। उक्तलक्षणमायाशक्तिसहितः सन् तेषामुक्तविधजीवानां प्रेरको धर्माधर्मगोचरबुद्धिवृत्तिप्रेरकः सन् हृदि तदन्तरङ्गे संस्थितः, तिष्ठतीत्यर्थः ।।३५।।

आता जीवाच्या अंतरंगात शिव कसा राहातो? याचे उत्तर असे की– तो जीव, देव, मनुष्य, पशू आदी चौऱ्याशी लक्ष योनींतील (सप्तजन्म–१, देव-१६लक्ष, २, मनुष्य-९लक्ष, ३, जलज-१०लक्ष, ४, विहग-१०लक्ष, ५, मृग-१० लक्ष, ६, सर्प-११लक्ष, आणि ७, वृक्ष इत्यादी-१८ लक्ष, असे एकूण चौऱ्यांशी लक्ष योनींतील) सर्व रूपात असतो. त्या सर्वांच्या हृदयात पूर्वोक्त मायाशक्तिविशिष्ट महेश्वर नावाचा तो परशिव वसत असतो व त्यांना आपापल्या संस्कारानुसार धर्माधर्माने वागण्यास प्रेरक होतो.।।३५।।

एवंरूपायां स्थितौ जीवेश्वरौ न ब्रह्मातिरिक्तौ, किन्तु ब्रह्मणि जीवत्वमीश्वरत्वं च कल्पितमाह–

चन्द्रकान्ते यथा तोयं सूर्यकान्ते यथाऽनलः ।
बीजे यथाङ्कुरः सिद्धस्तथात्मनि शिवः स्थितः ।।३६।।

जीवे शिवस्तादात्म्यसम्बन्धेन तिष्ठतीत्यर्थः ।।३६।।

तो आणखी कसा असतो तर–चंद्रकात मण्यामध्ये जसे पाणी असते, सूर्यकांत मण्यामध्ये जसा अग्नी असतो, धान्यबीजात जसा अंकुर स्वाभाविकपणे असतो तसा जीवामध्ये शिव राहातो.।।३६।।

ननु प्रतिबिम्बस्य दर्पणाद्युपाधिकृतत्वेन प्रतिबिम्बत्वं तन्निरूपितबिम्बत्वं च सूर्ये कल्पितमिति वक्तुं युक्तम्, ब्रह्मणि तद्व्यतिरिक्तोपाधिर्नास्तीति तदयुक्तमिति दृष्टान्तोऽयं विषम इत्यत्राह–

आत्मत्वमीश्वरत्वं च ब्रह्मण्येकत्र कल्पितम् ।
बिम्बत्वं प्रतिबिम्बत्वं यथा पूषणि कल्पितम् ।।३७।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

एकत्र एकस्मिन्नित्यर्थः। शिष्टं स्पष्टम् ।।३७।।

दर्पणादी उपाधीमुळे सूर्यामध्ये बिंब आणि प्रतिबिंबत्वाची कल्पना केली जाते. परंतु ब्रह्माला कोणतीही उपाधी नसल्यामुळे जीवत्व आणि ईश्वरत्व यांची कल्पना ब्रह्मामध्ये कशी केली जाते? म्हणून येथे हा दृष्टांत लागू पडणार नाही, अशा आक्षेपाला उत्तर असे की—ज्या प्रमाणे सूर्यामध्ये बिंबपणा आणि प्रतिबिंबपणा कल्पित आहेत, त्याचप्रमाणे ब्रह्मामध्ये ईश्वरत्व आणि जीवत्व हेसुद्धा कल्पित आहेत.।।३७।।

गुणत्रयविभेदेन परतत्त्वे चिदात्मनि ।
भोक्तृत्वं चैव भोज्यत्वं प्रेरकत्वं च कल्पितम् ।।३८।।

सात्त्विकादिगुणत्रयभेदेन परतत्त्वे चिदात्मनि शुद्धचैतन्ये भोक्तृत्वं भोज्यत्वं प्रेरकत्वं च कल्पितमित्यर्थः ।।३८।।

शुद्ध चिद्रूप परशिवात सत्त्वादी गुणत्रयाचा संबंध नसतो असे पूर्वी सांगितले आहे. तर मग परब्रह्मात भोक्तृत्व, भोज्यत्व आणि प्रेरकत्व असतात, असे म्हणणे कसे सिद्ध होईल? याचे उत्तर असे— चिद्रूप अशा परमात्म्यात सत्त्वादी गुणत्रयाच्या भेदामुळे भोक्तृत्व, भोज्यत्व आणि प्रेरकत्व हे तिन्हीही कल्पिलेले आहेत.।।३८।।

ननु शुद्धचिद्रूपे. परमशिवे सात्त्विकादिगुणत्रयसम्बन्धो नास्तीत्युक्तत्वात् कथमुक्तार्थसिद्धिरित्यत्राह—

गुणत्रयात्मिका शक्तिर्ब्रह्मनिष्ठा सनातनी ।
तद्वैषम्यात् समुत्पन्ना तस्मिन् वस्तुत्रयाभिधा।।३९।।

ब्रह्मनिष्ठा संयोगस्य क्रियापूर्वत्वादन्यतरोभयकर्मजश्च संयोगस्तावद्भिन्नदेशस्थितयोरेवोपपद्यत इति ब्रह्मबाह्यदेशाभावेन संयोगस्यासंभवाद् अक्रियापूर्वसंयोगस्याप्रसिद्धत्वाद्विष्णोरविच्छिन्नप्रसरत्वेन विच्छेदशून्यतया सन्धिबन्धानवकाशश्च, "रसोऽहमप्सु कौन्तेय प्रभाऽस्मि शशिसूर्ययोः" इति भगवदुक्तेः, "औष्ण्यं हुताश इव शीतलिमानमिन्दौ शय्यासु मार्दवमिवाश्मसु कर्कशत्वम्। बाह्येषु मोह इव योगिषु च प्रबोधः स्वातन्त्र्यमस्ति हि नियन्त्रयितुर्महन्मे ।।"इत्यभियुक्तोक्तेश्च सामरस्याभेदलक्षणतादात्म्यसम्बन्धेन वर्तमाना, नातो भेदाभेदयोर्विरोधः सार्वत्रिकः। सनातनी नित्या शक्तिः ज्ञानक्रियासामरस्यात्मिका स्वाभाविकी विमर्शशक्तिः, अस्तीति शेषः।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अन्यथा प्रकाशरूपत्वेऽपि ब्रह्मणः प्रतिबिम्बनक्षमत्वादिस्वस्वरूपपरामर्श-शून्यत्वाच्च स्फटिकमणिमुकुरादिप्रकाशवत् सच्चिदानन्दात्मकस्वरूपपरामर्श-शून्यत्वेन जडतापत्तिरनिवार्यैवेति सा "पराऽस्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च" इति श्रुतेश्चिदानन्देच्छाज्ञानक्रियादिनाना-रूपिणी, चकारस्यानुक्तार्थप्रकाशकत्वात्। तत्र चिदानन्दयोरखण्डत्वेन विक्षोभाभावादिच्छादिशक्तीनां सविषयत्वेन विक्षोभसंभवाद् भेदाभेदस्फुरण-मयी मयूराण्डरसगतपादपक्षवर्णवैचित्र्यन्यायेन स्वतादात्म्यक्रोडीकृतचराचर-विश्वमयी। एवंरूपिणी विमर्शशक्तिरविभागपरामर्शदशायां स्वस्थाविभाग-परामर्शदशायां गुणत्रयात्मिका भवति। कथमिति चेत्, उच्यते—

तद्विमर्शशक्तेरंशमात्रे घृतकाठिन्यन्यायेन क्रियांशस्य ज्ञातृतावियोगाद् ज्ञानांशस्य कर्तृतावियोगाद् उत्तमकर्तृताविनिर्मुक्तज्ञानांशात् सत्त्वगुणात्मिका विद्याशक्तिरुत्पन्ना भवति, तादृशज्ञातृताविनिर्मुक्तक्रियांशात् किञ्चित्सत्त्वत-मोमिश्ररजोगुणशक्तिराविर्भवति। जानामीति व्यवहारे ज्ञानस्य क्रिया-भिन्नत्वात् करोमीत्यत्र कर्तृताया अपि स्फुरद्रूपत्वाज्ज्ञानक्रिययोर्वस्तुत ऐक्येऽपि विभागपरामर्शमहिम्ना ज्ञानं क्रिया न भवति, क्रिया ज्ञानं न भवतीत्यन्योन्याभावबुद्धिरेव तमोगुणशक्तिरित्येवं गुणत्रयात्मिका सती तद्वैषम्याद् गुणत्रयतारतम्यात्तस्मिन् शुद्धचिद्रूपे परमशिवे वस्तुत्रयाभिधाभोज्य-भोक्तृप्रेरकलक्षणनामरूपक्रियावती सती समुत्पन्ना प्रतिस्फुरणगत्या मायाख्ययाविर्भूतेत्युक्तार्थसिद्धिरिति भावः। अनेन सर्वं विश्वमण्डरसन्यायेन विभागपरामर्शरूपेणास्तीति सूचितमिति न परिणामवादकृतशङ्कावकाशः, "चिदात्मैव हि देवोऽन्तःस्थितमिच्छावशाद्बहिः। योगीव निरुपादानमर्थजातं प्रकाशयेत्।।" इति श्रीमदीश्वरप्रत्यभिज्ञोक्तेश्च असदुत्पत्त्यसंभवादतिप्रसङ्गात् "नासतो विद्यते भावः" इति गीतत्वाच्च। नन्वेवं चेद्विश्वस्य सत्यतापत्त्या बन्धनिवृत्तिर्न स्यात्, "नाभावो विद्यते सतः" इति गीतत्वादिति चेन्न, आद्यन्तकोटचोश्चिदेकरूपत्वेनाकार्यकारित्वादिच्छाभूमिप्रविष्टघटादिवन्मुक्तस्या-पि न पुनर्बन्धः। ईश्वरेच्छायास्तत्र नियामकत्वादिति। नन्वनाद्यविद्या-सम्बन्धादिति पूर्वमुपक्रान्तत्वेनानिर्वचनीयसंबन्धेन ब्रह्मनिष्ठा सनातनी ब्रह्मसमानसत्ताका गुणत्रयमयी शक्तिरध्यासरूपिण्यनाद्यविद्याशक्तिरस्ति, तद्वैषम्यात्तद्गुणवैषम्यात्तस्मिन् ब्रह्मणि वस्तुत्रयाभिधा वस्तुत्रयमित्यभिधा समुत्पन्नेति व्याख्यातुं शक्यत्वत् किमित्येतावान् प्रयास इति चेन्न, "तदीया परमा शक्तिः सच्चिदानन्दलक्षणा। समस्तलोकनिर्माणसमवायस्वरूपिणी।। तदिच्छयाऽभवत्साक्षात्तत्स्वरूपानुकारिणी" इति ततोऽपि पूर्वोपक्रान्तवचन-विरोधात्, "ब्रह्माण्डशतकोटीनां सर्गस्थितिलयान् प्रति। स्थानभूतो विमर्शो यस्तद्ब्राण्डस्थलमुच्यते।। पराहन्तासमावेशपरिपूर्णविमर्शवान्। सर्वज्ञः सर्वगः

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

साक्षी सर्वकर्ता महेश्वरः।। विश्वाधारं महासंवित्प्रकाशपरिपूरितम्। पराहन्तामयं प्राहुर्विमर्शं परमात्मनः।। यथा चन्द्रे स्थिरा ज्योत्स्ना विश्ववस्तुप्रकाशिनी। तथा शक्तिर्विमर्शात्मा प्रकारे ब्रह्मणि स्थिता।।" इति वक्ष्यमाणभाण्डभाजनस्थलवचनविरोधाच्च। अत्र शक्तेः शिवाभिन्नत्वेन निरवयवत्वात् कथं सांशप्रपञ्चोपादानकारणत्वं संभवतीति नाशङ्कनीयम्, यथा परमाणूनां निरवयवत्वेऽपि तत्कार्यरूपद्व्यणुकादेः सावयवताप्राप्त्या विश्वोपादानत्वमङ्गीक्रियते, तथा तत्स्वातन्त्र्यपरिकल्पिताया मायाशक्तेः सावयवत्वसंभवाद्विश्वोपादानत्वं संभवतीति शक्तेरघटनघटनापटीयस्त्वात् अथ भवदङ्गीकृताविद्याङ्गीकारोऽपि न संभवति, तस्य दोषरूपत्वेन ब्रह्मणस्तदाश्रयत्वे दोषित्वप्रसङ्गात्। ननु शुक्तिकाशकलभासमानरजतस्य यथा तत्संपर्को न विद्यते, तथा ब्रह्मणि भासमानाविद्याया अपि तत्संपर्काभावान्नोक्तदोष इति चेत्, तर्हि जीवेश्वरविवेक एव न स्यात्, अविद्यासंपर्काभावात्। न च प्रतिबिम्बद्वारा तद्विवेकः संभवतीति वाच्यम्, मुखादिबिम्बबाह्यदर्पणादिवद् बिम्बरूपब्रह्मबाह्यदेशे दर्पणस्थानापन्नाविद्यास्थित्यङ्गीकारासम्भवाद् ब्रह्मबाह्यदेशाभावाज्जलप्रविष्टमुखवद्दर्पणरेखावच्च तत्रैव मग्नस्य तत्रैव प्रतिफलनासंभवाद् ब्रह्मापेक्षया अविद्याया अस्वच्छत्वाच्च। तथापि दर्पणप्रतिबिम्बितमह्यादिवत् प्रतिबिम्बितपदार्थस्यार्थक्रियाशून्यत्वेन भोक्तृत्वादेर्निराश्रयत्वप्रसङ्गः । न च दर्पणप्रतिबिम्बितादित्यस्य नेत्रचञ्चुत्ववत् संभवतीति वाच्यम्, तद्वद् बिम्बरूपे ब्रह्मणि भोक्तृत्वादेरभावात्। न च हरिद्राचूर्णयोगेनानुभयनिष्ठलौहित्यभासनमिव संभवतीति वाच्यम्, तद्वदविद्याप्रतिबिम्बयोः साक्षाद्वस्तुत्वाभावात् संयोजकान्तरशून्यत्वाच्च मुख्यप्रकाशस्यासंगत्वादनेनैव लोहमणिदृष्टान्तस्यापि दूरीकृतत्वात्, तथापि प्रतिबिम्बस्य दर्पणाद्युपाधिनिबन्धनत्वेन निश्चिततया मायाकार्यत्वेन मिथ्यात्वात् प्रत्यगैक्यं न संभवतीति तत्त्वमसीत्युपदेशो निरर्थक एव स्यात्। नन्वविद्यानिवृत्तिद्वारा तस्यापि निवृत्तिर्जायत इतीदमेव प्रत्यगैक्यमिति चेत्, आत्महानिरपुरुषार्थ इति कस्यापि भवदभिमतमुक्तौ प्रवृत्तिरेव न स्यादिति संक्षेपः। अथ तद्विशिष्टत्वमपि न संभवति, दोषित्वप्रसक्त्या ब्रह्मणस्तत्संपर्काभावादित्युक्तत्वात्, तथाप्यंशे वा साकल्ये वा? नाद्यः, ब्रह्मणो निरंशत्वेनोर्ध्वाधस्तिर्यग्भागभेदशून्यत्वात्। कल्पितांशभेदोऽपि न संभवति, कुत्र स्थित्वा कल्पयत्यविद्येति विज्ञातुमशक्यत्वद् ब्रह्मबाह्यदेशाभावात्। न च निरंशेऽप्याकाशे नक्षत्रादिस्थितिरिव संभवतीति वाच्यम्, तस्या वाय्वाधारत्वादाकाशस्यापि जन्यद्रव्यत्वेन सांशत्वाङ्गीकारेण तद् दृष्टान्तस्यानुभयवादिसिद्धत्वाच्च। नन्वघटनघटनापटीयसी सेति चेत्, सत्यम्, तद्भावस्य चैतन्याश्रयबलाधीनत्वेनोक्तरीत्या तदसंभवादन्यथा

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

चैतन्यं खण्डितमेव भवेत्, सांख्यमतप्रवेशापत्तिश्च। नापि द्वितीयः, शुद्धाशुद्धविभागासंभवात्। ननु संसारावस्थायामशुद्धत्वं मुक्त्यवस्थायां शुद्धत्वमिति चेन्न, "जीव ईशो विशुद्धा चित् तथा जीवेशयोर्भिदा । अविद्यातच्चितोर्योगः षडस्माकमनादयः।।" इति संसारावस्थायामेव शुद्धाशुद्धविभागस्याङ्गीकृतत्वात्। नन्वेवं निर्वक्तुमशक्यत्वेऽपि "तम आसीत्" इत्यादिश्रुत्यादिप्रमाणबलादविद्याऽङ्गीकरणीयैवेति चेत्तेषां श्रुत्यादिप्रमाणानां सत्यत्वप्रसङ्गः, प्रमाणप्रमेययोर्घटं प्रति चक्षुरादिरिव तद्विजातीयताया अङ्गीकरणीयत्वात्। न च व्यवसायं प्रत्यनुव्यवसायस्य प्रामाण्याङ्गीकारान्नायं नियम इति वाच्यम्, ज्ञानस्य ज्ञातृविश्रान्तत्वेन कदापीदमिति प्रमेयपदनिष्ठत्वाभावेनानुव्यवसायस्य व्यवसायभूतघटहृदयङ्गमीकरणप्रवीण-त्वात्, अन्यथा व्यवस्थाहानिरनवस्थापत्तिः, घटोऽपि घटान्तरविषयः स्यादित्यतिप्रसङ्गश्चेति तद्दृष्टान्तस्यानुभयवादिसिद्धत्वात्। अविद्यायाश्च सत्यत्वप्रसङ्गः, अनादिभावत्वेनाङ्गीकृतत्वात्, न चाप्रयोजकोऽयं हेतुः, यदि सत्यत्वं न स्यात्तर्ह्यनादिभावत्वं च न स्याद् घटवदिति व्यतिरेकि-दृष्टान्तस्यापि विद्यमानत्वात्, ब्रह्मातिरिक्तत्वेनाङ्गीकृतत्वादसत्कल्पता-पत्तिश्च। तद्भिन्नस्य तद्बाह्यतानियमो नास्तीत्यत्र मानाभावात्, सकलप्रमाणशेषिमहाप्रकाशबाह्यत्वात् । न च घटगतरूपादिदृष्टान्तः, तद्वदसमवेतत्वात्। नापि घटाकाशदृष्टान्तः, "आत्मन आकाशः संभूतः" इत्यादिश्रुतेः पवनादीनां साक्षात्परम्परया तत्कार्यत्वेन तदन्तर्गतत्वसंभवात्। नेह तथा, द्वयोरप्यनादित्वात्। नापि क्षीरनीरन्यायः, आद्यन्तकोट्योः परस्परबाह्ययोर्मध्यकोटौ प्रमात्रा संयोजितत्वेन क्षीरस्य नीरान्तर्गतत्वात् । नेह तथा, चैतन्यस्यासङ्गत्वात्, तद्वत्सजातीयत्वाभावाच्च । यथाकथञ्चि-दङ्गीकारेऽपि तस्याः प्रमेयत्वात् प्रमेयस्य प्रमाद्वारा प्रमातृविश्रान्तिरङ्गी-करणीयेति विद्यैव भवेद् अविद्येति वार्तैव न स्यात्, अन्यथा नष्टघटविषयिणी स्मृतिर्न स्यात्। न च संस्कारात् संभवतीति वाच्यम्, तस्यापि सविषयत्वेनैवात्मसमवेतत्वात्। एवं भवदभिमताविद्यायां मानाभावात्, अङ्गीकारेऽपि निर्वाहाभावाद् बाधकाविर्भावाच्चानुपपन्नत्वेन ब्रह्मणो जडतानिवृत्त्यर्थं बलात्तत्स्वभावभूतविमर्शशक्तेरङ्गीकरणीयत्वेन तस्या विश्वोपादानकारणीभूतमायारूपत्वमुपपादयितुं प्रयासोऽयं सार्थक इति। नन्वेवं चेद् ब्रह्मणि किं प्रमाणम्, स्वातिरिक्तमानान्तराभावात्, अन्यथा ब्रह्म सदेव भवेदिति चेन्न, तस्य स्वप्रकाशत्वेनाहंपरामर्शमयस्वानुभूति-प्रमाणस्य जागरूकत्वात्, विमर्शशक्तेः प्रकाशाभिन्नत्वेऽप्यघटनघटनापटीय-

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

स्त्वात् स्वस्वातन्त्र्यपरिकल्पितसामरस्याभेदसद्भावात् प्रमेयप्रमाणव्यवहारः संभवतीति न काचिदनुपपत्तिः। स्वातिरिक्तमानान्तरगम्यत्वे घटवज्जडत्वापत्तिः श्रुत्यादिप्रमाणान "चत्वारि वाक्परिमिता पदानि" इति श्रुते रम्भविवक्षाध्यवसायोक्तिरूपे विमर्शमयत्वेन विभागपरामर्शदशायां तन्माहात्म्यप्रकाशनपरत्वात् श्रुत्यादिप्रसिद्धाविद्यादिशब्दानां स्वातन्त्र्यपरिकल्पितमायापरत्वसंभवात् सर्वं समञ्जसम् ।।३९।।

शुद्ध चिद्रूप परब्रह्मात सत्त्वादी त्रिगुणात्मक सनातन शक्ती असते. त्या त्रिगुणांच्या वैषम्यामुळे परब्रह्मात भोक्तृत्व, भोज्यत्व आणि प्रेरकत्व ही तीन रूपे प्रकट झाली. याचे अधिक स्पष्टीकरण असे— त्रिगुणात्म सनातन शक्ती ब्रह्मनिष्ठ आहे असे सांगितल्यावर, ब्रह्म आणि शक्तीमध्ये कोणता संबध मानावा? असा प्रश्न उपस्थित होतो. शास्त्रानुसार वस्तू-वस्तूतील संबंध अनेक तऱ्हेने दाखविले जातात. त्यामध्ये सयोग, समवाय, तादात्म्य असे काही संबंध महत्त्वाचे. दोन भिन्न वस्तूंच्या एकत्र येण्याला संयोग म्हणतात. परशिव आणि शक्ती ही भिन्न तत्त्वे नव्हेत. म्हणून त्यांच्यातील संबंध संयोगाचा नाही. वस्तू, व्यक्ती आदींच्या ठिकाणी जाती, गुण, क्रिया यांचा जो संबंध असतो तो समवाय संबंध होय. परंतु शक्ती ही शिवाच्या ठिकाणी अशा संबंधानेही दिसत नाही. कारण शक्ती म्हणजे जाती, गुण अथवा क्रिया नव्हे. साक्षात् नसलेला संबध तो परंपरासंबंध. शिव आणि शक्तीतील सबंध असाही नाही. शक्ती ही शिवाच्या ठिकाणी तादात्म्य रूपाने आहे, असे शिवाद्वैत सिद्धांतात सांगितले आहे. याला अविनाभाव संबंध असे म्हटले जाते. शिवाच्या ठिकाणची ही शक्ती अविभाग-परामर्श आणि विभाग-परामर्श अशा दोन अवस्थांत असते. जगाच्या उत्पत्तीपूर्वी शिवाच्या ठिकाणी असणाऱ्या शक्तीची अवस्था अविभाग-परामर्श स्वरूपाची असते. मोराच्या अंड्यातील बलकात जशा प्रकारे मोराचे अवयव, रंग, पिसारा इत्यादी रसस्वरूपात असतात, तशा प्रकारे शक्तीच्या अविभाग-परामर्श स्थितीत विश्वाचे विविधरूपत्त्व गुप्त रूपाने असते. या अवस्थेत तिच्यातील सत्त्व, रज आणि तम गुण साम्यावस्थेत असल्यामुळे निष्क्रिय असतात. परंतु शिवाच्या ठिकाणी विश्वरचनेची इच्छा जाग्रत झाल्यावर त्याच्यातील विमर्शशक्ती 'विभाग-परामर्श' स्वरूपाची (क्षुब्ध) होऊन तिच्यातील सत्त्व, रज, तम या गुणांच्या कमी अधिक प्रमाणातील

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्रभावामुळे वैचित्र्यपूर्ण विश्वाची निर्मिती होते. म्हणजे सृष्टीची जीव, जगत् आणि ईश्वर ही तीन रूपे व्यक्त होतात. त्यांच्या स्वरूपाचे स्पष्टीकरण असे— रजोगुणाच्या मिश्रणाने दूषित झालेला, सत्त्वगुणोपाधियुक्त अविद्येमध्ये असलेला शिवांश भोक्ता असा जीव होतो. तमोगुण प्रभावयुक्त प्रकृतीमध्ये असलेला शिव भोज्य असे जगत् म्हणून प्रकट होतो. आणि शुद्ध सत्त्वगुणोपाधियुक्त मायेच्या आवरणाने असलेला शिव चैतन्य प्रेरक असा ईश्वर म्हणून ओळखला जातो. स्थिर पाण्यात वायुलहरीने तरंग उठतात, त्याचप्रमाणे प्रशांत सुखसागररूप शिव आपल्या विभाग-परामर्श विमर्शशक्तीच्या गुणत्रयसंबधामुळे भोक्ता, भोज्य आणि प्रेरक अशा त्रिविध रूपांत प्रादुर्भाव पावतो. श्रुती, आगम आणि गीता या सारख्या प्रमाण ग्रंथातील वचनाच्या आधाराने विश्वाच्या निर्मितीचे स्वरूप असे असल्याचे समजून येते.।।३९।।

अथ केन गुणेन किं वस्तु जातमित्यत्राह—

किञ्चित्सत्त्वरजोरूपं भोक्तृसंज्ञकमुच्यते ।
अत्यन्ततामसोपाधिर्भोज्यमित्यभिधीयते ।
परतत्त्वमयोपाधिर्ब्रह्मचैतन्यमीश्वरः ।।४०।।

रजोगुणस्य किञ्चित्सत्त्वतमोमिश्रत्वात्, "चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः" इति भगवदुक्तेः, तादृग्रजोगुणमिश्रचैतन्यं भोक्तृजीवचैतन्यमित्यर्थः। अत्यन्ततामसोपाधिविशिष्टचैतन्यं भोज्यरसादिरूपं परतत्त्वमयोपाधिः आभ्यामुत्कृष्टत्वेन परतत्त्वरूपसत्त्वगुणोपाधिविशिष्टचैतन्यप्रेरकीभूतमहेश्वर इत्यर्थः ।।४०।।

आता कोणत्या गुणानी कोणत्या वस्तू झाल्या हे सांगतात—

किंचित् सत्त्व आणि तम गुणांनी मिश्रित रजोगुणयुक्त चैतन्याला जीव अर्थात् भोक्ता असे नाव आहे. अत्यंत तमोगुणरूप उपाधियुक्त चैतन्य हेच भोज्य अर्थात् रसादिरूपविषय होत. आणि या दोहोंपेक्षा उत्कृष्ट असा जो परतत्त्वरूप सत्त्व गुण आहे, अशा सत्त्वगुणउपाधिविशिष्ट चैतन्याला प्रेरक अर्थात् ईश्वर म्हणतात.।।४०।।

अथोक्तमर्थं द्रढयति—

भोक्ता भोज्यं प्रेरयिता वस्तुत्रयमिदं स्मृतम् ।
अखण्डे ब्रह्मचैतन्ये कल्पितं गुणभेदतः ।।४१।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

स्पष्टम् ।।४१।।

सांगितलेल्या विषयाची पुष्टी अशा रीतीने करतात—

ब्रह्मचैतन्य अखंड आणि एकच असले तरी त्यात अविनाभावसबंधाने असलेल्या सत्त्व, रज व तम या गुणांच्या तरतमभावामुळे भोक्ता, भोज्य आणि प्रेरयिता ह्या तीन वस्तू मानलेल्या आहेत.।।४१।।

अत्र प्रेरयिता शम्भुः शुद्धोपाधिर्महेश्वरः ।
समिश्रोपाधयः सर्वे भोक्तारः पशवः स्मृताः ।।४२।।

या तिन्हींपैकी शुद्ध सत्त्वगुणाने युक्त आणि सुखकारक असा जो प्रेरयिता आहे त्याला महेश्वर म्हणतात. मिश्र उपाधीने युक्त जे भोक्ते जीव आहेत त्यांना पशू म्हणतात.।।४२।।

अथ तेषां गुणनामान्तराण्याह—

भोज्यमव्यक्तमित्युक्तं शुद्धतामसरूपकम् ।
सर्वज्ञः प्रेरकः शम्भुः किञ्चिज्ज्ञो जीव उच्यते ।
अत्यन्तगूढचैतन्यं जडमव्यक्तमुच्यते ।। ४३।।

अधिकसत्त्वोपाधिकत्वान्महेश्वरः सर्वज्ञः सुखभोक्ता शम्भुः किञ्चित्तमोमिश्रत्वात् संहारकृत्यप्रवीणः क्रोधयुक्तः। जीवास्तु किञ्चित्सत्त्वतमोमिश्ररजोपाधिकत्वात् किञ्चिज्ज्ञा ज्ञानाज्ञानसंमिलिताः, अत एव सुखदुःखभोक्तारः। शुद्धतामसोपाधिकं भोज्यमव्यक्तं प्रकृतिरित्यर्थः। किमिदमव्यक्तमित्यत्राह— अत्यन्तेति । वृक्षादीनामिन्द्रियप्राणादिशून्यत्वेन केवलजडत्वेऽपि पिपासाया विद्यमानत्वात्, सस्यादीनां शिलादीनां वृद्धिदर्शनाद् अव्यक्तचैतन्यमिति व्यवहारः। अव्यक्तं प्रकृतिर्मायेति पर्यायाः।।४३।।

आता त्या गुणांचे वैशिष्ट्य सांगतात— सत्त्वगुणाच्या आधिक्याने महेश्वरास सर्वज्ञ, सुखकारक, शंभू असे म्हणतात, तर त्यातच किंचित् तमोगुण मिश्रित झाल्यावर तो क्रोधयुक्त होऊन संहारकृत्यप्रवीण होतो. जीव हा किंचित् सत्त्व व तम मिश्रित आणि अधिक रजोगुणयुक्त असल्याने ज्ञान व अज्ञानाने युक्त म्हणून सुखदुःखांचा भोक्ता असतो. तमोगुणाच्या आधिक्याने भोज्य असे जड पदार्थ होतात व त्यात चैतन्य अव्यक्त असते.

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्रकृतीतील वृक्ष, वेली इत्यादींना क्षुधा व तृषा असतात, त्याशिवाय शिलादिकाची वाढ होत असते असे अनुभवास येते. त्यांतील चैतन्य अव्यक्त असते. अव्यक्त प्रकृतीस 'माया' म्हणतात.।।४३।।

एवं मायागुणभेदरूपोपाधित्रयं प्रदर्श्यानन्तरं लिङ्गाङ्गरूपंशिवजीवस्वरूपं सुलक्षयितुं पूर्वोक्तमायोपाधिं द्विधा विभज्य दर्शयति—

उपाधिः पुनराख्यातः शुद्धाशुद्धविभेदतः ।
शुद्धोपाधिः परा माया स्वाश्रया मोहकारिणी ।।४४।।

उपाधिः पूर्वोक्तमायोपाधिः पुनः शुद्धाशुद्धभेदेन द्विधा भवति, तत्र शुद्धोपाधिः परा माया स्वाश्रया मोहकारिणीत्यूर्ध्वमायेत्यर्थः ।।४४।।

अशा रीतीने मायेच्या सत्त्वादिउपाधित्रयाचे दर्शन घडवून शिव आणि जीवाच्या सम्यक् स्वरूपाचे निरूपण करण्यासाठी पूर्वोक्त मायारूप उपाधीचे दोन भेद दाखवितात—

अशा या मायेचे (उपाधीचे) शुद्ध व अशुद्ध असे दोन भेद होतात. त्यांपैकी शुद्ध उपाधी ही श्रेष्ठ माया होय. ती आपल्या आश्रयाला (शिवाला) मोहित करीत नाही. तिला ऊर्ध्वमाया म्हणतात.।।४४।।

अशुद्धोपाधिरप्येवमविद्याश्रयमोहिनी ।
अविद्याशक्तिभेदेन जीवा बहुविधाः स्मृताः ।।४५।।

अशुद्धोपाधिरविद्या, आश्रयमोहिनीत्यधोमायेत्यर्थः। अविद्याशक्तिभेदेन अंशभेदेनेत्यर्थः, जीवा बहुविधाः स्मृताः ।।४५।।

अशुद्ध उपाधी हीच माया होय. ही अविद्या आपल्या आश्रयाला (जीवांना) मोहात पाडते. तिला अधोमाया म्हणतात. त्या अविद्येच्या अंशभेदाने अनेक प्रकारचे जीव झालेले आहेत.।।४५।।

मायाशक्तिवशादीशो नानामूर्तिधरः प्रभुः ।
सर्वज्ञः सर्वकर्ता च नित्यमुक्तो महेश्वरः ।।४६।।

ईशः शुद्धोपाधिमहेश्वरः, मायाशक्तिवशाद् महामायाशक्तिवशात् सद्योजातादिनानामूर्तिधरो जीवानां बुद्धिप्रेरकः प्रभुः कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

समर्थः, सर्वज्ञः सदसत्सकलपदार्थविषयकानादिज्ञानशक्तिमान्, सर्वकर्ता च सकलप्रपञ्चनिर्माणनिमित्तकारणीभूतः, नित्यमुक्त आणवाद्यनादिमलसम्बन्ध-रहितः, सर्वज्ञः सर्वकर्ता च, "सर्वज्ञः पञ्चकृत्यसम्पन्नः सर्वेश्वर ईशते" इति वृद्धजाबालश्रुतेः ।।४६।।

शुद्धोपाधियुक्त महेश्वर महामायेच्या प्रभावाने सद्योजातादी नाना रूपे धारण करतो, अनेक अवतार घेतो. तो जीवाच्या बुद्धीला प्रेरक ठरतो. शिवाय तो प्रभू म्हणजे कर्तुमकर्तुमंन्यथा कर्तुं असा समर्थ असतो. सर्वज्ञ म्हणजे सदसत् सकल पदार्थांचे अनादिज्ञान युक्त असणारा, सर्वकर्ता म्हणजे सकल प्रपंच निर्माण करण्यास निमित्तकारण असणारा, नित्ययुक्त म्हणजे आणवादिमलसबंधरहित असा असतो. परमेश्वराचे असेच वर्णन वृद्धजाबालश्रुतीतही आलेले आहे.।।४६।।

किञ्चित्कर्ता च किञ्चिज्ज्ञो बद्धोऽनादिशरीरवान् ।
अविद्यामोहिता जीवा ब्रह्मैक्यज्ञानवर्जिताः ।।४७।।

अथ जीवस्वरूपमाह—किञ्चित्कर्तेति। किञ्चित्कर्ता किञ्चिज्ज्ञो बद्ध आणवाद्यनादिमलपाशबद्ध ईशप्रेरितः स जीवोऽनादिशरीरवान् अनादितः प्राप्तशरीराभिमानवान्, "ज्ञाज्ञौ द्वावजावीशानीशावजो ह्येको भोक्तृभोगार्थ-युक्तः", "अनीशश्चात्मा बध्यते भोक्तृभावाद् ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः" इति श्वेताश्वतरश्रुतेः, "अनादिमलसम्बन्धात्किञ्चिज्ज्ञोऽणुर्मयोदितः। अनादिमलमुक्तत्वात् सर्वज्ञोऽसौ शिवः स्मृतः।।" इति किरणागमोक्तेश्च। एवंरूपा जीवा अविद्यामोहिताः सन्तो ब्रह्मैकज्ञानवर्जिता अहं ब्रह्मास्मीति तादात्म्यज्ञानशून्याः सन्तः ।।४७।।

जीव हा किंचित् कर्ता-ज्ञाता व आणवादी मलत्रयपाशानी बद्ध आणि ईश्वरीप्रेरणेच्या आधीन असा असून अनादी कालापासून प्राप्त अशा शरीराचा अभिमान बाळगणारा आहे. हे सत्य श्वेताश्वतरश्रुतीत व किरणागमातही वर्णिले आहे. अशा रीतीने जीव अविद्येने मोहित झालेले, ब्रह्मैक्य-ज्ञानापासून वर्जित म्हणजे 'अहं ब्रह्मास्मि' अशा ईश्वराशी असणाऱ्या तादात्म्य ज्ञानाने विरहित असतात.।।४७।।

परिभ्रमन्ति संसारे निजकर्मानुसारतः ।
देवतिर्यङ्मनुष्यादिनानायोनिविभेदतः ।।४८।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

निजकर्मानुसारतो देवतिर्यङ्मनुष्यादिनानायोनिभेदमधिगम्य संसारे परिभ्रमन्तीत्यर्थः। अत्र सृष्टेः प्राक् कर्माभावात् कथमिति नाशङ्कनीयम्, सद्वादमर्यादया सर्वं विश्वमण्डरसन्यायेन परब्रह्मण्यविभागपरामर्शात्मनाऽस्तीत्यङ्गीकृतत्वात् ।।४८।।

स्वकर्मानुसार देव, पशू, पक्षी, मनुष्य वगैरे चौऱ्याशी लक्ष योनीमध्ये जन्म घेऊन संसारचक्रात भ्रमत असतात. परंतु सृष्टिनिर्मितीपूर्वी प्राक्तनकर्मच नसल्यामुळे पुनःपुन्हा संसाराची फेरी का घडते, अशी शंका घेण्यात अर्थ नाही. कारण वीरशैव सिद्धांतात सत्कार्यवाद मानलेला आहे. त्यानुसार संपूर्ण विश्व मयूराण्डरसन्यायाने परब्रह्मात अविभाग-परामर्शशक्तीच्या स्वरूपाने राहाते व तेच सृष्टिनिर्मितीच्या वेळी वेगवेगळ्या रूपांत प्रकट होत असते।।४८।।

अथ कथं भ्रमन्तीत्यत्राह—

चक्रनेमिक्रमेणैव भ्रमन्ति हि शरीरिणः ।
जात्यायुर्भोगवैषम्यकारणं कर्म केवलम् ।।४९।।

रथाङ्गमस्तकगतलोहवलयवद् भ्रमन्तीत्यर्थः ।।४९।।

आता सर्व जीव संसारचक्रात कसे भ्रमत असतात? तर, गाडीचे चाक वाटेवरून फिरत असताना त्या चाकाबरोबरच त्याच्या आऱ्याही जशा सारख्या फिरत असतात, त्या प्रमाणेच देहधारी जीव अनेक योनींत जन्म घेऊन संसारात सदोदित फिरत असतात. त्या प्राण्याच्या जाती-आयुष्य-भोग याच्यातील वैषम्याला त्यांचे त्यांचे कर्मच केवळ कारणीभूत असते।।४९।।

ननु जीवाः कर्मानुसारेण परिभ्रमन्ति, तेषां जात्यायुर्भोगवैषम्यकारणं केवलं कर्मैवेत्युक्तत्वादीश्वरः किमर्थमङ्गीकरणीय इत्यत्राह—

एतेषां देहिनां साक्षी प्रेरकः परमेश्वरः ।
एतेषां भ्रमतां नित्यं कर्मयन्त्रनियन्त्रणे ।।५०।।

कर्मसूत्रबद्धे संसारचक्रे सदा परिभ्रमतामेतेषां विचित्रदेहिनाम्, एतेषां कर्मणामिति शेषः, परमेश्वरः प्रेरकः, कर्मणां जडत्वेन प्रेरकत्वासंभवात्, प्रेरकत्वेन साक्षित्वेनेश्वरोऽङ्गीकरणीय इत्यर्थः ।।५०।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

स्वकर्मामुळेच जर निरनिराळ्या योनीमध्ये जीवांचे भ्रमण होत असेल व त्यांचे कर्मच त्यास मुख्य कारण असेल तर ईश्वराचे अस्तित्व का मानावे? याचे उत्तर असे की—कर्मपाशाने बद्ध अशा प्रपंचचक्रात सदोदित भ्रमण करणाऱ्या भिन्न भिन्न शरीरे धारण केलेल्या या जीवांची जी जी भिन्न भिन्न कर्मे असतात, त्या त्या कर्मानुसार सर्व जीवांना प्रेरणा देणारा असा साक्षिभूत परमेश्वर असलाच पाहिजे. त्या शिवाय कर्म हे स्वतःसिद्ध जड असल्याकारणाने त्या कर्मामध्ये प्रेरकत्व सिद्ध होऊ शकत नाही. म्हणून प्रेरकत्व व साक्षित्व यांमुळे ईश्वराचे अस्तित्व मान्य करावे लागेल.।।५०।।

अथवाऽस्य नैतावन्मात्रम्, विशेषोऽप्यस्तीत्याह—

देहिनां प्रेरकः शम्भुर्हितमार्गोपदेशकः ।
पुनरावृत्तिरहितमोक्षमार्गोपदेशकः ।।५१।।

स्पष्टम् ।।५१।।

ईश्वर प्रेरक आणि साक्षी आहे म्हणूनच केवळ त्याचे अस्तित्व मानावे लागते असे नसून त्या ईश्वराचे आणखीही एक वैशिष्ट्य असे आहे की—सुखकारक शंभू हा सर्व प्राणिमात्रांचा प्रेरक तर आहेच; परंतु त्या बरोबरच तो कल्याणकारी मार्गाचा उपदेशक आणि जन्ममृत्यूच्या फेऱ्यातून मुक्ती देणाऱ्या सन्मार्गाचाही उपदेश करणारा आहे.।।५१।।

कथमित्यत्राह—

स्वकर्मपरिपाकेन प्रक्षीणमलवासनः ।
शिवप्रसादाज्जीवोऽयं जायते शुद्धमानसः ।।५२।।

अयं जीवः स्वकर्मपरिपाकेन "विज्ञानयोगसंन्यासैर्भोगाद्वा कर्मणः क्षयः" इति शिवागमोक्तेः स्वस्वकर्मपरिपाकेन विनष्टमलवासनः सन् शिवप्रसादात् शुद्धान्तःकरणो जायते ।।५२।।

तो कसा? तर— 'विज्ञानाने, योगाने, संन्यासाने अथवा भोगाने स्वकृत कर्मांचा क्षय होतो' अशी शिवागमांची उक्ती आहे. जीवाचे स्वकर्म परिपक्व झाले म्हणजे विज्ञान, योग, संन्यास अथवा भोगाच्या द्वारे त्याचा क्षय होऊन जेव्हा जीव वासनारहित

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

होतो, तेव्हा त्याच्यावर शिवाचा अनुग्रह होऊन तो जीव शुद्ध अंतःकरणाचा होतो.।।५२।।

शुद्धान्तःकरणे जीवे शुद्धकर्मविपाकतः ।
जायते शिवकारुण्यात् प्रस्फुटा भक्तिरैश्वरी ।।५३।।

तस्मिन् शुद्धकर्मविपाकतः श्रुत्यागमोक्तशुद्धकर्मपरिपाकवशात् शिवस्य कृपा भवति, शिवविषयिणी भक्तिः प्रस्फुटा भवति, तद्द्वारा मोक्षमार्गोपदेश इत्यर्थः ।।५३।।

श्रुती व आगम यांनी प्रतिपादिलेल्या शुद्ध कर्मांची परिपक्व दशा प्राप्त झाल्यावर जीव शुद्ध अंतःकरणाचा होतो आणि त्यावर शिवाची कृपा होते. त्यानंतर त्याच्या ठिकाणी शिवभक्ती उत्पन्न होऊन तिच्यामुळे त्याला मोक्षमार्गाचा उपदेश प्राप्त होतो.।।५३।।

एवमुत्पन्नशिवभक्तिमान् चरमदेही पिण्डशब्दाभिधेय इति पिण्डस्थलं समापयति—

जन्तुरन्त्यशरीरोऽसौ पिण्डशब्दाभिधेयकः ।।५४।।

असौ जन्तुर् एवमुत्पन्नशिवभक्तिमान् जीवः, अन्त्यशरीरः "तदस्य तृतीयं जन्म" इति श्रुतेश्चरमशरीरवान् सन् पिण्डशब्दाभिधेयकः पिण्डशब्दाभिधानवानित्यर्थः ।।५४।।

इति पिण्डस्थलम् ।।

अशा रीतीने ज्या जीवामध्ये शिवभक्ती प्रकट झाली आहे अशा जीवाचा तो जन्म अंतिम असतो असे श्रुतिवचन असून त्या परिशुद्ध जीवास 'पिंड' असे नाव आहे. येथे पिंडस्थलाचे विवेचन पूर्ण झाले.।।५४।।

अथ पिण्डज्ञानस्थलम्

ननु शरीरात्मविवेकः किमित्यपेक्षित इत्यत्राह—

शरीरात्मविवेकेन पिण्डज्ञानी स कथ्यते।
शरीरमेव चार्वाकैरात्मेति परिकीर्त्यते।।५५।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

शरीरात्मविवेकेन शरीरशरीरिणोर्विवेकेन पिण्डज्ञानीति शास्त्रज्ञैः कथ्यत इत्यर्थः। एवंविधवादिभिरात्मतत्त्वस्य संदिग्धत्वात् संदिग्धेऽर्थे न्यायः प्रवर्तत इति शास्त्रकृद्भिरङ्गीकृतत्वात् शरीरात्मत्वे विवेक आवश्यक इत्यर्थः।।५५।।

शरीर आणि आत्म्याचा विवेक म्हणजे काय? या प्रश्नाचे उत्तर असे—ज्याला शरीर आणि आत्मा यांचा विवेक असतो त्यास पिंडज्ञानी असे म्हणतात. निरनिराळ्या मतानुयायी लोकांच्या दृष्टिकोनांतून पाहिल्यास आत्मतत्त्वाबद्दल त्यांच्यात पुष्कळ संदिग्धता आढळते. संदिग्ध विषयाबद्दल न्याय अथवा सारासार विचार करावा लागतो. अशी विवेकात्मक विचारसरणी विद्वानांना आवडते. म्हणून शरीर आणि आत्मा याचा विचार करणे अत्यंत आवश्यक आहे. चार्वाकादी नास्तिक लोक शरीरालाच आत्मा म्हणतात.।।५५।।

इन्द्रियाणां तथात्मत्वमपरैः परिभाष्यते।
बुद्धितत्त्वगतैर्बौद्धैर्बुद्धिरात्मेति गीयते।।५६।।

इंद्रियांना प्राधान्य देणारे केवळ इंद्रियांच्या समूहालाच आत्मा म्हणतात. बुद्धी हेच मुख्य तत्त्व मानणारे बौद्ध बुद्धीलाच आत्मा म्हणतात.।।५६।।

कथं तद्विवेक इत्यत्राह—

नेन्द्रियाणां न देहस्य न बुद्धेरात्मता भवेत्।
अहंप्रत्ययवेद्यत्वादनुभूतस्मृतेरपि।।५७।।

शरीर आणि आत्म्याचा तो विवेक कसा करावा? तर—शरीर, इंद्रिये आणि बुद्धी यांना आत्मा म्हणता येत नाही: कारण मी (अहम्) असे म्हणविणारा त्या सर्वांपेक्षा वेगळाच असतो.।।५७।।

शरीरेन्द्रियबुद्धिभ्यो व्यतिरिक्तः सनातनः।
आत्मस्थितिविवेकी यः पिण्डज्ञानी स कथ्यते।।५८।।

अयं भावः—गृहक्षेत्रादिनाशे सति दुःखदर्शनात् तदभिवृद्धौ सुखातिशयाद् गृहक्षेत्रादिकमेवात्मेति विषयात्मवादिनो लौकिका मन्यन्ते। ततोऽपि समधिकविवेकभाजो गृहक्षेत्रादीनां मृगपक्षिसरिद्गिरिग्रामादिविवेका-भावाच्छरीरस्य तादृग्विवेकसद्भावाच्छरीरमेवात्मेति चार्वाका मन्यन्ते। शरीरे

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्राणवायुपरिस्पन्दाभावे ज्ञानानुदयान्न शरीरं प्राण एवात्मेति केचिद्वदन्ति, सुप्तिकाले प्राणस्पन्दस्य विद्यमानत्वेऽपीन्द्रियव्यापाराभावेन ज्ञानशून्यत्वादिन्द्रियमात्मेत्यपरे । अत्र इन्द्रियाणां बाहुल्याद् इन्द्रियसमूह आत्मेत्युच्यते वा व्यष्टिरूपस्यात्मत्वमुच्यते वेति विकल्पः। नाद्यः, तत्रैकस्य द्वयोर्वा नाशे समुदायनाशेन ज्ञानानुदयप्रसङ्गात्। न द्वितीयः, जलमिदं स्वच्छं मधुरमिति प्रतीतिर्न स्यादिति, एकैकार्थप्रकाशकत्वाद् व्यष्टेः। एवं शरीरादेर्ज्ञानशून्यत्वेन जडत्वाद् आत्मत्वं न संभवतीति बुद्धिरेवात्मा। अत्र बुद्धेश्चक्षुरादिकरणसाध्यत्वात् करणानां कुठारादिवत्कर्त्रधीनत्वाद् बुद्ध्युत्तीर्णः कश्चित् कर्ताऽङ्गीकरणीय इति नाशङ्कनीयम्, करणजन्यस्य जडत्वनियमेन बुद्धेर्जडतापत्त्यार्थग्रहणापटुत्वान्नेष्टापत्तिः, जडबुद्धेरात्मनोऽपि जडतापत्तेरनिवार्यत्वाल्लोकव्यवहारो विलुप्येतेति भवदभिमतात्मवद् बुद्धिः स्वतः सिद्धैवेत्यङ्गीकरणीयतया प्रथमं घटानुभवः, ततो घटविकल्पः, तदनन्तरं तज्जनितसंस्काराद्भाविकोटिनिष्ठा स्मृतिः, स्मृत्या लोकव्यवहार इति भिन्नकालभिन्नाकारभिन्नविषयिणी क्षणिकज्ञानसन्ततिरेवात्मेति बुद्धिप्राधान्यवादिनो बौद्धा वदन्ति।

अत्रोत्तरम्—अहंप्रत्ययवेद्यत्वादनुभूतस्मृतेरपि शरीरेन्द्रियबुद्धिभ्यो व्यतिरिक्तः सनातन आत्माऽस्तीति मम शरीरं ममेन्द्रियं मम बुद्धिर्मम स्मृतिः शरीर्यहं स्फुटेन्द्रियोऽहं जानामि स्मरामीति शरीरेन्द्रियबुद्ध्युत्तीर्णोऽहंप्रत्ययाधीनतया स्मृत्यादीनामपि भासमानत्वात्तद्व्यतिरिक्तः कश्चिदात्मास्तीत्यङ्गीकरणीयमित्यर्थः। नन्वहंप्रत्ययस्यास्माभिर्निर्विकल्पकसविकल्पकलक्षणज्ञानद्वयान्तर्गतत्वेनाङ्गीकृतत्वान्न तद्व्यतिरिक्तः, न च तर्ह्ययमात्मव्यतिरिक्तं न किञ्चिद्विकल्पयतीत्यात्मा सिद्ध इति वाच्यम्, स्थूलोऽहं कृशोऽहं सुख्यहं दुःख्यहमिति रूपवेदनासन्तानसंस्पर्शित्वेन शरीरादीन् विकल्पयतीति तस्मान्नास्मदङ्गीकृतरूपविवेदनसंज्ञानविज्ञानसंस्कारलक्षणपञ्चसन्तानोत्तीर्णः शरीरादिसन्तानमूर्धन्योऽप्यहंप्रत्ययो नात्मा भवितुमर्हति, रूपवेदनासन्तानसंस्पर्शित्वेनानित्यवात्, सुप्तिमूर्छादावभावाच्च। न च घटमहं जानामीत्यत्र वेद्यरूपकर्मप्रकाशाद् वेदनारूपज्ञानप्रकाशाच्चोत्तीर्णत्वेन भासमानत्वादहंप्रत्यय आत्मानमेव विकल्पयतीति वाच्यम्, तस्याहंप्रत्ययव्यतिरेकेणादृश्यत्वात्, अहंप्रत्ययस्यानित्यत्वात् । यदि प्रत्ययस्य सविषयताऽन्यथाऽनुपपत्त्या तद्व्यतिरिक्त आत्माऽनुमीयते, तर्हि कोऽयमनुमाता? अहंप्रत्ययो वा तद्व्यतिरिक्तो वा? नाद्यः, अनित्येऽहंप्रत्ययस्यानुमातृताङ्गीकारेणास्मन्मतप्रवेशापत्तेः, तद्व्यतिरिक्तस्यानुमातुरदृश्यत्वात् । यदि दृश्यस्तर्हि तस्य बुद्धितुल्यत्वप्रसङ्गाद् बुद्धिरेवात्मेति चेत्, मैवम्, बुद्धेः क्षणिकत्वेन भिन्नकालभिन्नविषयभिन्नाकारत्वेनाङ्गीकृतत्वात्, नीलं पीताद्भिन्नम्, पीतं

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

नीलाद्भिन्नम्, नीलमहं जानामि, पीतमहं जानामि, योऽहं बाल्ये पितरावन्वभूवं स एवाहमिदानीं पुत्रदाराननुभवामीत्येकसंविल्लग्नतया बाह्याभ्यन्तरानुसंधानासंभवात्, क्षणद्वयावगाहि संविदन्तरानङ्गीकारात्, रूपसंस्कारेण रसस्मृत्यनुदयात्, स्मृतेः स्वसमानविषयताव्यवस्थापकत्वेन संस्कारस्य कृतार्थत्वात्, स्मृतिजनकं न किञ्चित्पश्याम इति स्मृतेर्गगनकुसुमायमानत्वेन तन्मूलकस्य सर्वस्यापि लोकव्यवहार-स्योच्छित्तिप्रसङ्गाच्च। तस्मान्नित्यः कश्चिदात्मानुसंधाता ज्ञानस्मृत्यपोहन-शक्तिमानङ्गीकरणीयः, "मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च" इत्येतदभिप्रायेणैव भगवताऽपि गीतत्वात्। स चाहंप्रत्ययस्वरूप एव, तद्भिन्नस्यादृश्यत्वादिति सूक्तत्वात्, तस्य सुप्तिमूर्छादावभावान्नानित्यत्वमाशङ्कनीयम्, तदा तस्य शून्यस्थाननिमग्नत्वेन तदीयस्वप्रकाशस्य तिरोहितत्वात्, अन्यथोत्थितस्य सुखमहमस्वाप्समिति सुखस्मृत्यनुदयप्रसङ्गः, स्मृतेरनुभवमूलकत्वात्, स्वतन्त्रांशीभूतप्राणवायुपरिस्पन्दस्य विद्यमानत्वेन तस्य हानादानादिरूपतया कर्तृनिरूपितत्वात्, कर्तृज्ञानपुरःसरत्वादिति संक्षेपः। नन्वेतावता शरीरी कश्चिज्जीवात्मा सिद्धो न तत्प्रेरक ईश्वर इति चेत्, लोके विदारणादिक्रियाणां कुठारादिकरणसाध्यत्वात् करणानां कर्मेन्द्रियाधीनत्वात् तेषां ज्ञानेन्द्रियाधीनत्वात् तेषामन्तरिन्द्रियाधीनत्वात् तेषां शरीर्यधीनत्वात् तस्य देशकालादिपरतन्त्रत्वात् स्वतन्त्रेण विना न संभवतीति व्यवहारान्यथानुपपत्त्यैव सोऽपि सिद्ध इति वदन्तो वैयासिकाश्च प्रत्युक्ता इति मन्तव्यम्।।५६-५८।।

शरीर, इंद्रिय आणि बुद्धी यांच्यापेक्षा भिन्न असणारा जो सनातन आत्मा आहे त्याच्या स्वरूपाचे ज्ञान ज्याला असते त्याला पिंडज्ञानी म्हणतात.

या विषयाचे अधिक स्पष्टीकरण असे—जगातील वस्तु-विषया-पासून सुख मिळते म्हणून घर, शेत आदी वस्तूच खऱ्या सुखाला कारण आहेत असे समजून त्यानाच आत्मा मानणारे विषयात्मवादी होत. त्याच्यापेक्षा थोडे अधिक विचारी लोक सर्व सुखे उपभोगण्यास कारण असणाऱ्या शरीरालाच आत्मा समजतात. म्हणून चार्वाकाने शरीरापलीकडील कोणतेही तत्त्व अमान्य करून शरीरालाच प्राधान्य दिले. परंतु शरीरात प्राण असल्याशिवाय सुखाचे अथवा दुःखाचे ज्ञानच होऊ शकणार नाही. म्हणून प्राणच आत्मा होय असे प्राणात्मवादी प्रतिपादन करतात. इंद्रियवाद्याचे म्हणणे असे की, प्राणाचा स्पंद जरी सुषुप्तीच्या वेळी होत असला तरी इंद्रियांचा व्यापार होत नाही आणि इंद्रियाअभावी सुखदुःखाचे

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ज्ञान होत नाही. म्हणून इंद्रियेच आत्मा होत. परंतु इंद्रिये अनेक आहेत त्यामुळे कोणत्या एका इंद्रियाला आत्मा म्हणावे की इंद्रियसमूहाला? असा प्रश्न पडतो. इंद्रियजन्य ज्ञान होण्यास बुद्धीची आवश्यकता असते. म्हणून बुद्धीच आत्मा होय, असे बुद्धिवादी बौद्धांचे म्हणणे आहे. परंतु माझी बुद्धी तीक्ष्ण आहे अथवा माझी बुद्धी स्थिर आहे असे म्हणताना हा अनुभव घेणारा कोणी निराळा आहे हे सिद्ध होते. तसेच इंद्रियांचे नियामक मन सुद्धा आत्मा होऊ शकत नाही. कारण आपण मनाचा उल्लेख करतानाही 'माझे मन' असा करतो. याचा अर्थ 'मी' आणि 'माझे' असे म्हणणारा मनापेक्षाही कोणी निराळा आहे. यामुळे मनही आत्मा होऊ शकत नाही. तर शरीर, इंद्रिये, प्राण, बुद्धी, मन या सर्वांपेक्षा वेगळा आणि या सर्वांना जाणणारा असा जो 'अहम्' अथवा 'मी' म्हणविणारा आहे, तोच आत्मा होय, आणि तो क्षणिक नसून सनातन आहे. एकंदरीत, जगातील क्रिया करणाधीन, करण कर्मेंद्रियाधीन, कर्मेंद्रिये ज्ञानेंद्रियाधीन, ज्ञानेंद्रिये अंतरिंद्रियाधीन आणि अंतरिंद्रिये जीवात्म्याच्या अधिकाराखाली असतात. तसेच जीवात्मा हा परमात्म्याचा अंश असून तो त्याच्या आधीन असतो. आत्म्याचे अस्तित्व सर्व प्राणिमात्रांच्या ठिकाणी असते. परंतु त्याच्या अस्तित्वाची जाणीव होणे हे महत्त्वाचे असते. म्हणूनच श्री रेणुकाचार्यांनी 'आत्मस्थितिविवेकी यः पिण्डज्ञानी सकथ्यते' असे सांगून शरीरादींच्या पलीकडील आत्म्याचे अस्तित्व जाणणाराच 'पिण्डज्ञानी' म्हणविला जातो असे स्पष्ट केले आहे.।।५८।।

नश्वराणि शरीराणि नानारूपाणि कर्मणा।
आश्रितो नित्य एवासाविति जन्तोर्विवेकिता।।५९।।

कर्मवशात् प्राप्तानि नानारूपाणि शरीराणि नश्वराणीति जीवस्य विवेकिता पिण्डविवेकः, तादृक्पिण्डाश्रितो जीवो नित्य इति विवेकिता पिण्डज्ञविवेकः।।५९।।

कर्मानुसार धारण करावी लागणारी भिन्न भिन्न शरीरे नाशवंत आणि अनित्य आहेत, तर परिवर्तनशील आणि अशाश्वत अशा शरीरामध्ये राहाणारा आत्मा अमर व नित्य आहे, अशा विवेकाला पिण्डज्ञान म्हणावे.।।५९।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

नन्वयं विवेकः सांख्यमतसदृशो जात इत्यत्राह—

शरीरात् पृथगात्मानमात्मभ्यः पृथगीश्वरम्।
प्रेरकं यो विजानाति पिण्डज्ञानीति कथ्यते।।६०।।

स्पष्टम्। अयमेव नित्यानित्यलक्षणक्षेत्रक्षेत्रज्ञविवेकः, क्षेत्रज्ञे जीवे प्रेरकत्वेनेश्वरस्य "चन्द्रकान्ते यथा तोयम्" इत्याद्युक्तदृष्टान्तेन तादात्म्येन विद्यमानत्वात्। उक्तं च गीतायाम्— "इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते। एतद्यो वेद तं प्राहुः क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः।। क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं यत्तज्ज्ञानं मतं मम। क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत।।" इति। "सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा सम्यग्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम्। अन्तःशरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्रो यं पश्यन्ति यतयः क्षीणपापाः।।" इति मण्डूकश्रुतेः, "अशरीरं यदात्मानं पश्यति ज्ञानचक्षुषा। तदा भवति शान्तात्मा सर्वतो विगतस्पृहः।।" इति देवीकालोत्तरवचनाच्च देहदेहिस्वरूपं अङ्गाङ्गिनोर्जीवेश्वरयोः स्वरूपं च विज्ञेयम् ।।६०।।

इति पिण्डज्ञानस्थलम्

शरीरापासून आत्मा वेगळा, आत्म्यांहून ईश्वर वेगळा व तो त्या आत्म्यांना प्रेरक आहे, असे जो जाणतो त्याला पिंडज्ञानी म्हणावे. नित्य व अनित्य तसेच क्षेत्र व क्षेत्रज्ञ याच्या परस्पर भिन्न विचारास विवेक म्हणतात. क्षेत्र (शरीर) जाणणारा जो जीव असतो त्यात त्याला प्रेरणा देणारा ईश्वर असतो. जसे चंद्रकांत मण्यामध्ये पाणी असते इ. दृष्टांताच्या आधारे तादात्म्यसंबंधाने आत्म्यामध्ये परमेश्वर असतो, अशी गीतेचीही उक्ती आहे—'हे अर्जुना, या शरीराला 'क्षेत्र' असे म्हणतात. जो यास जाणतो त्याला मर्मज्ञ पंडित 'क्षेत्रज्ञ' असें म्हणतात. क्षेत्र व क्षेत्रज्ञ यांचे जे ज्ञान ते मला संमत आहे. हे भारत, सर्व शरीरामध्ये रहाणाऱ्या मला क्षेत्रज्ञ असे जाणून घे'. मंडुकोपनिषदात म्हटले आहे की, 'हा आत्मा सत्याने, तपाने, सम्यक् ज्ञानाने आणि ब्रह्मचर्याने प्राप्त करून घेण्यास योग्य आहे. शरीराच्या अंतर्भागात राहाणारा नित्य व शुभ्र असा, ज्योतिःस्वरूपी (प्रकाशमान) पुरुष (ईश्वर) असतो. ज्यांची पापे नाश पावली आहेत असे पुण्यशील यती व योगी त्याला पाहातात' देविकालोत्तराची उक्ती अशी आहे की, 'जे ज्ञाननेत्राने आत्मा अशरीरी आहे असे जाणतात ते सर्व विषयापासून निःस्पृह होऊन 'शांतात्मा' होतात'. शरीर व शरीरीचे, अंग व अंगीचे,

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जीव व शिवाचे स्वरूप जाणून घेणे हेच पिंडज्ञानस्थल होय.।।६०।।

अथ संसारहेयस्थलम्

अथैवंरूपपिण्डज्ञानिन उत्पद्यमानसंसारहेयस्थलं निरूपयति—

निरस्तहृत्कलङ्कस्य नित्यानित्यविवेकिनः।
संसारहेयताबुद्धिर्जायते वासनाबलात्।।६१।।

उक्तप्रकारेणानेकजन्मार्जितसुकृतवशात् प्रक्षीणपापत्वेन शुद्धान्तःकरणस्य नित्यानित्यविवेकिनः पुण्याधिक्येन सत्संस्कारबलात् संसारे त्यागबुद्धिरुत्पद्यत इत्यर्थः।।६१।।

यापुढे पिंडज्ञानी जीवात्म्यात उत्पन्न होणाऱ्या संसारहेयस्थितीचे वर्णन करतात—पूर्वी सांगितल्याप्रमाणे अनेक जन्मार्जित पुण्यामुळे पापे क्षीण होऊन ज्याच्या अंतःकरणातील वाईट वासना सर्व नाहीशा झाल्यामुळे जो प्राणी आत्मा नित्य आहे व शरीर अनित्य आहे असा मनामध्ये नेहमी विचार करतो, त्याला उत्तम संस्कारामुळे संसार हेय म्हणजे त्याज्य वाटू लागतो.।।६१।।

कुत इत्यत्राह—

ऐहिके क्षणिके सौख्ये पुत्रदारादिसंभवे।
क्षयित्वादियुते स्वर्गे कस्य वाञ्छा विवेकिनः।।६२।।

पुत्रदारादिजायमानसुखस्य नश्वरत्वं प्रत्यक्षेणानुभूयते। ज्योतिष्टोमादियागजन्यस्वर्गसुखस्यापि— "ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति" इति भगवदुक्तेर्नश्वरतावगम्यते। एवंरूपैहिकामुष्मिकसुखयोर्नित्यानित्यविवेकिनः कस्य वाञ्छा भवेत्? न कस्यापीत्यर्थः। नश्वरत्वाद् हेयबुद्धिरेव भवेदिति भावः।।६२।।

का बरे त्यांना संसार हेय वाटू लागतो? या प्रश्नाचे उत्तर असे की—इहलोकात मुले, पत्नी वगैरे पासून होणारे सुख क्षणभंगुर आहे, असे अनुभवास येते. पुण्यक्षय झाल्यावर स्वर्गातील जीवांना देखील पुन्हा मृत्युलोकी जन्म घ्यावा लागतो. असे गीतेचेही वचन आहे. त्यामुळे कोणता विवेकी मनुष्य स्वर्गसुखाची तरी आवड धरील? कोणीही नाही. त्यामुळे विवेकी लोकांना संसाराविषयी हेयबुद्धीच निर्माण होते.।।६२।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ननु सांसारिकसुखस्यानित्यत्वात् परित्यागो युक्तः; संसारः किमर्थं त्यजनीय इत्यत्र दोषानुद्भावयति—

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।
जन्तुर्मरणजन्मभ्यां परिभ्रमति चक्रवत्।।६३।।

विश्रान्त्यभावादिति भावः।।६३।।

संसारसुख अनित्य असल्यामुळे त्याचा त्याग करणे योग्य असले तरी संसाराचा त्याग का करावा? या प्रश्नाच्या उत्तरादाखल संसारातील दोषांचे वर्णन करतात— जो जन्मला त्याला मृत्यू निश्चित आहे. तसेच जो मरतो त्याला पुनर्जन्मही निश्चित आहे. एकंदरीत सर्व प्राणी जन्ममरणाच्या फेऱ्यात सतत भ्रमण करीत असतात.।।६३।।

अस्मिन्नर्थे कर्माधीनपुरुषदृष्टान्तमप्याह—

मत्स्यकूर्मवराहाद्यैर्नृसिंहमनुजादिभिः।
जातेन निधनं प्राप्तं विष्णुनापि महात्मना।।६४।।

दुष्टदैत्यनिबर्हणार्थं भक्तानुग्रहार्थं च मत्स्यकूर्मादिशरीरैः सह जातेन अवतारं धृतवता महात्मना महापुरुषेण कर्माधीनेन विष्णुनापि नारायणेनापि निधनं मरणं प्राप्तमित्यर्थः।।६४।।

ह्याविषयी कर्माधीन असणाऱ्या पुरुषोत्तम नारायणाचाही दृष्टांत देतात—महासामर्थ्यवान अशा विष्णूलाही दुष्टांच्या संहारासाठी, भक्तांच्या रक्षणासाठी मत्स्यकूर्मादी असे अनेक जन्म घ्यावे लागले. त्याला प्रत्येक वेळी मरणही चुकले नाही. म्हणजेच कर्माचे फळ भोगणे कोणालाही चुकत नाही.।।६४।।

एवंस्थिते पराधीनो जन्तुस्तापत्रयाद् दह्यत एवेत्याह—

भूत्वा कर्मवशाज्जन्तुर्ब्राह्मणादिषु जातिषु।
तापत्रयमहावह्निसन्तापाद् दह्यते भृशम् ।।६५।।

दह्यते, तप्यत इत्यर्थः।।६५।।

म्हणूनच कर्माधीन असलेला प्राणी तापत्रयाच्या अग्नीत जळत असतो, असे सांगतात— कर्माच्या आधीन असणारा प्राणी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र इ. कोणत्याही जातीमध्ये जन्मला तरी

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

आध्यात्मिक, आधिभौतिक व आधिदैविक या तीन प्रकारच्या दुःखरूपी अग्नीमध्ये भाजून सारखा तळमळत असतो.।।६५।।

ननु तापत्रयानुवृत्तिविच्छित्तिरस्मिन् संसारे कदाप्यस्ति वा न वेत्यत्राह—

कर्ममूलेन दुःखेन पीड्यमानस्य देहिनः।
आध्यात्मिकादिना नित्यं कुत्र विश्रान्तिरिष्यते।।६६।।

कर्ममूलेनाध्यात्मिकादिना दुःखेन सदा बाध्यमानस्य प्राणिनः कुत्र कस्मिन्नधिकरणे विश्रान्तिः विश्रमणम् इष्यते इच्छाविषयीक्रियते, न क्वापीत्यर्थः।।६६।।

ह्या तापत्रयापासून जीवाना कधी मुक्ती मिळते की नाही? याविषयी सांगतात—कर्मामुळे प्राप्त झालेल्या आध्यात्मिकादी दुःखानी नेहमी गाजलेल्या प्राण्यास या जगात विश्रांती कोठून मिळणार? मुळीच मिळणार नाही.।।६६।।

अथ किं तत्तापत्रयमित्यत्राह—

आध्यात्मिकं तु प्रथमं द्वितीयं चाधिभौतिकम्।
आधिदैविकमन्यच्च दुःखत्रयमिदं स्मृतम्।।६७।।

असे ते तापत्रय कोणते?— आध्यात्मिक दुःख पहिले, आधिभौतिक दुःख दुसरे आणि आधिदैविक हे तिसरे दुःख होय.।।६७।।

अथ तत्स्वरूपं लक्षयति—

आध्यात्मिकं द्विधा प्रोक्तं बाह्याभ्यन्तरभेदतः।
वातपित्तादिजं दुःखं बाह्यमाध्यात्मिकं मतम्।।६८।।

स्पष्टम्।।६८।।

त्यांचे स्वरूप असे— बाह्य व आंतर असे आध्यात्मिक दुःखाचे दोन भेद असून, वातपित्तादिकांपासून होणारी दुःखे बाह्य होत.।।६८।।

रागद्वेषादिसम्पन्नमान्तरं परिकीर्त्यते।
आधिभौतिकमेतद्धि दुःखं राजादिभूतजम्।।६९।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

रागद्वेषादिकापासून होणारी ती आतर दुःखे होत. राजा व इतर लोकापासून होणाऱ्या दुःखाना आधिभौतिक दुःखे म्हणतात.।।६९।।

आधिदैविकमाख्यातं ग्रहयक्षादिसंभवम्।
दुःखैरेतैरुपेतस्य कर्मबद्धस्य देहिनः।
स्वर्गे वा यदि वा भूमौ सुखलेशो न विद्यते।।७०।।

ग्रह, यक्ष, भूत, प्रेत, पिशाच्च इत्यादिकापासून होणाऱ्या दुःखांना आधिदैविक दुःखे म्हणतात. या तीन प्रकारच्या दुःखानी पीडित अशा कर्मबद्ध मनुष्याला तो स्वर्गात असो वा मृत्युलोकात त्याला सुख मुळीच मिळत नाही.।।७०।।

अथ राज्यादिसम्पत्तिः सुखं नास्ति वेत्यत्र नास्तीति दृष्टान्तपूर्वकमाह—

तटित्सु वीचिमालासु प्रदीपस्य प्रभासु च।
सम्पत्सु कर्ममूलासु कस्य वा स्थिरतामतिः।।७१।।

विद्युत्सु तरङ्गमालासु दीपशिखासु यथा स्थिरताबुद्धिर्नास्ति, तथा कर्ममूलासु सम्पत्स्वपि स्थिरताबुद्धिर्विवेकिनो नास्तीत्यर्थः।।७१।।

राज्यादी ऐश्वर्यापासून सुख होत नाही काय? याचे उत्तर असे की,—मेघातील विजांमध्ये, पाण्याच्या लाटामध्ये, दिव्याच्या ज्योतीमध्ये व कर्ममूलक ऐश्वर्यामध्ये स्थिरता कशी असेल? कारण त्या सर्व गोष्टी चंचल आहेत, हे सर्व जाणतातच. म्हणून विवेकी लोकाना ऐश्वर्यादी वस्तू स्थिर आहेत असे वाटत नाही.।।७१।।

ननु विद्युदादिविलक्षणत्वात् सुखसाधनत्वाच्छरीरं वाञ्छाविषयमस्त्वित्यत्र—"भगवन्नस्थिचर्मस्नायुमज्जामांसशुक्रशोणितश्लेष्माश्रुदूषिते विण्मूत्रवातपित्तकफसंघाते दुर्गन्धे निःसारे किं कामोपभोगैः" इति मैत्रेयश्रुत्यनुसारेणाह—

मलकोशे शरीरेऽस्मिन् महादुःखविवर्धने।
तडिदङ्कुरसंकाशे को वा रुच्येत पण्डितः।।७२।।

मलकोशे मलमूत्राद्याधारभूते क्षणिकेऽस्मिन् शरीरे को वा पापपिण्डे विवेकी प्रीतिं कुर्यात्, न कोऽपि कुर्यादित्यर्थः।।७२।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

वीज, पाण्यावरील लाटा इत्यादीं सारखे शरीर क्षणिक नसल्यामुळे व ते सुखाचे साधन असल्यामुळे त्या विषयी सर्वांना वाछा असणारच. असा मुद्दा उपस्थित झाल्यास, मैत्रेयी श्रुतीच्या आधाराने शरीरातील दोषांचे वर्णन करतात—हे शरीर, अस्थी, चर्म, स्नायू, मज्जा, मास, शुक्र, रक्त, शेवूड, मल, मूत्र, वात, पित्त, कफ वगैरे दुर्गंधी पदार्थांचे कोठार आहे. त्या पासून आत्म्यास अनेक प्रकारची मोठमोठी दुःखे भोगावी लागतात. विजे प्रमाणे चचल व अस्थिर असलेल्या शरीराविषयी कोणत्या शहाण्याला प्रेम वाटेल? कोणालाही वाटणार नाही.।।७२।।

ननु शरीरस्यैव परमप्रेमास्पदत्वात् तत्र रुचिरस्त्वित्यत्राह—

नित्यानन्दचिदाकारमात्मतत्त्वं विहाय कः।
विवेकी रमते देहे नश्वरे दुःखभाजने।।७३।।

नित्यानन्दस्वरूपस्यात्मतत्त्वस्य विद्यमानत्वात् तस्यैव परमप्रेमास्पदत्वात् तद्विहाय नश्वरे दुःखपात्रे शरीरे को विवेकी रमते, न कोऽपि रमत इत्यर्थः।।१३।।

शरीर हे अत्यत प्रेमाचे स्थान असल्यामुळे विवेकी माणसालाही तेथे आवड असण्यास काय हरकत आहे? याचे उत्तर असे की—आत्मतत्त्व नित्यानदस्वरूप असून चित्स्वरूपी आहे. त्या तत्त्वाचा त्याग करून कोणता शहाणा मनुष्य नाशिवंत अशा आणि अनेक प्रकारची दुःखे भोगण्यास लावणाऱ्या शरीरावर प्रेम करील? शहाणा मनुष्य शरीरावर प्रेम करून आत्मस्वरूपाकडे दुर्लक्ष कधीही करणार नाही.।।७३।।

अथ विवेकिनो नश्वरे शरीरमात्र एव विरक्तिरिति न, तत्संबन्धिषु सर्वेष्वपि विरक्तिरित्याह—

विवेकी शुद्धहृदयो निश्चितात्मसुखोदयः।
दुःखहेतौ शरीरेऽस्मिन् कलत्रे च सुतेषु च।।७४।।

शुद्धहृदयो निर्मलान्तःकरणः, अत एव निश्चितात्मसुखोदयः श्रुतिगुरुस्वानुभवैर्निश्चितनित्यानित्यसुखस्फूर्तिमान् विवेकी नित्यानित्यवस्तु-विवेकी दुःखहेतौ उक्तलक्षणसकलदुःखकारणेऽस्मिन् शरीरे, कलत्रे स्त्रीषु, सुतेषु।।७४।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

विवेकी लोकांना केवळ शरीरच नव्हे तर शरीराच्या संबंधित सर्व वस्तूविषयी विरक्ती उत्पन्न झालेली असते असे सांगतात—

ज्याचे मन निष्पाप आहे व ज्याला आत्मस्वरूपाचा वास्तविक अनुभव आला आहे तो विचारी मनुष्य दुःखाचे मूळ अशा आपल्या स्वतःच्या शरीराविषयी, स्त्रीविषयी, मुलाबाळांविषयी उदासीन असतो.।।७४।।

सुहृत्सु बन्धुवर्गेषु धनेषु कुलपद्धतौ।
अनित्यबुद्ध्या सर्वत्र वैराग्यं परमश्नुते।।७५।।

सुहृत्सु मित्रेषु बान्धवसमूहेषु कुलपद्धतौ कुलक्रमे धनेषु गोधनादिधनेषु सर्वत्र एतद्व्यतिरिक्तसकलवस्तुष्वपि अनित्यबुद्ध्या परं वैराग्यम् अश्नुते आश्रयतीत्यर्थः।।१५।।

मित्राविषयी, नातलगाविषयी, द्रव्याविषयी आणि वंशाच्या रीतिरिवाजाविषयी, हे सर्व क्षणभंगुर आहेत असे जाणून त्यावर प्रेम न करता उदासीन राहून वैराग्य धारण करतो.।।७५।।

अथैवमाद्यनित्यवस्तुविरक्तस्य नित्यवस्तुरागिणः संसारदुःखविच्छेदहेतौ बुद्धिरुत्पद्यत इत्याह—

विवेकिनो विरक्तस्य विषयेष्वात्मरागिणः।
संसारदुःखविच्छेदहेतौ बुद्धिः प्रवर्तते।।७६।।

स्पष्टम्।।७६।।

अशा अनित्य संसारातील दुःखापासून निवृत्त होण्याची बुद्धी कोणाला होते? याचे उत्तर असे की—जो विचारी आहे व विषयसुखाविषयी निरिच्छ आहे आणि ज्याला आत्मस्वरूपाची आवड आहे, त्या मनुष्याला संसारदुःखांचा नाश व्हावा अशी बुद्धी उत्पन्न होते.।।७६।।

अथ कोऽयं संसारदुःखच्छेदहेतुरित्यत्र पिण्डपिण्डज्ञानस्थलार्थं गर्भीकृत्य वृत्तेनाह—

नित्यानित्यविवेकिनः सुकृतिनः शुद्धाशयस्यात्मनो
ब्रह्मोपेन्द्रमहेन्द्रमुख्यविभवेष्वस्थायिता पश्यतः।
नित्यानन्दपदे निराकृतजगत्संसारदुःखोदये
साम्बे चन्द्रशिरोमणौ समुदयेद्भक्तिर्भवध्वंसिनी।।७७।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इति श्रीवीरशैवधर्मनिर्णये सिद्धान्तशिखामणौ भक्तस्थले पिण्ड-ज्ञानसंसारहेयस्थलप्रसङ्गो नाम पञ्चमपरिच्छेदः समाप्तः।।

सुकृतिनः निगमागमोक्तसत्कर्मिणः शुद्धाशयस्य निर्मलान्तःकरणस्य आत्मनः पिण्डशब्दवाच्यस्य नित्यानित्यविवेकिनः क्षेत्रज्ञाक्षेत्रज्ञविवेकिनः पिण्डज्ञानिनो ब्रह्मोपेन्द्रमहेन्द्रमुख्यसमस्तदेवसम्पत्सु, अस्थायितां क्षणिकत्वं पश्यतो जानतः, अत एव संसारहेयबुद्धिमतो नित्यानन्दपदे नित्यपरिपूर्णसच्चिदानन्दाश्रये निराकृतजगत्संसारदुःखोदये साम्बे उमासमेते चन्द्रशिरोमणौ "चन्द्रललाटाय कृत्तिवाससे नमो नमः" इत्यथर्वणश्रुतेश्चन्द्रधरादिनानालीलाविग्रहकारणीभूतमहालिङ्गे भक्तिर् अष्टविधा भवध्वंसिनी सती समुदयेत् प्रकाशत इत्यर्थः। अत्र शुद्धान्तःकरणस्य नित्यानित्यवस्तुविवेकिन ऐहिकामुष्मिकफलभोगविरागद्वारा रागद्वेषादिशब्दाद्यन्तर्बाह्येन्द्रियविषयवैमुख्येन शमदमादिसम्पत्त्या मुमुक्षुत्वेन संसारदुःखनिवृत्त्युपायभूते महालिङ्गे भक्तिरुत्पद्यत इत्युक्तं भवति।।७७।।

इति संसारहेयस्थलम्

इति श्रीमत्पदवाक्यप्रमाणपारावारधुरीणमरितोण्टदार्येण विरचितायां तत्त्वप्रदीपिकाख्यायां सिद्धान्तशिखामणिव्याख्यायां भक्तस्थले पिण्डज्ञानसंसारहेयस्थलप्रसङ्गो नाम पञ्चमपरिच्छेदः समाप्तः।।

तर मग ससारदुःखाची निवृत्ती कशाने होते? याचे उत्तर असे की—जो मनुष्य नित्य काय, अनित्य काय? याचा विचार करतो, जो वेदशास्त्रांत सांगितलेली सत्कर्मे करतो, ज्याचे मन निष्पाप आहे, ज्याला ब्रह्मदेव, विष्णू, इंद्र वगैरे मुख्य मुख्य देवाचे ऐश्वर्य देखील क्षणभंगुर असल्यामुळे तुच्छ वाटते, त्या मनुष्याला नित्य आनंदमय असणाऱ्या, सर्व जगातील लोकांच्या संसारदुःखाचा नाश करणाऱ्या व चंद्र मस्तकावर धारण केलेल्या शंकराविषयी भक्ती उत्पन्न होते. ती भक्ती संसारदुःखाचा नाश करते. शुद्ध अंतःकरणाचा, नित्यानित्य वस्तूचा विचार करणारा, इह-परलोकांतील भोगांमध्ये निःस्पृह असणारा, शमदमादी संपत्तीनी युक्त असलेला आणि मोक्षाची इच्छा बाळगणारा अशा साधनचतुष्टयांनी जो संपन्न असतो, त्या अधिकारी पुरुषाच्या मनात, संसारदुःखाच्या निवृत्तीला कारण असलेले जे महालिंग, त्याच्याविषयी भक्ती उत्पन्न होते।।७७।। येथे संसार हेयस्थलाचे निरूपण संपले.

सिद्धांतशिखामणीतील भक्तस्थलांतर्गत पिंडज्ञान
आणि संसारहेयस्थलाचे वर्णन असलेला
हा पाचवा परिच्छेद संपला.

पाचवा परिच्छेद समाप्त।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

षष्ठः परिच्छेदः

अथ "तद्विज्ञानार्थं सद्गुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्" इति मुण्डकश्रुतेः पूर्वोक्तपिण्डपिण्डज्ञानसंसारहेयस्थलसंपन्नः संसारनाशकरं महालिङ्गं जिज्ञासुः श्रीगुरुमुपैतीति कुम्भजं प्रति दीक्षा-लक्षणगुरुकारुण्यस्थलं निरूपयति श्रीरेणुकः—

ततो विवेकसंपन्नो विरागी शुद्धमानसः।
जिज्ञासुः सर्वसंसारदोषध्वंसकरं शिवम्।।१।।
उपैति लोकविख्यातं लोभमोहविवर्जितम्।
आत्मतत्त्वविचारज्ञं विमुक्तविषयभ्रमम्।।२।।
शिवसिद्धान्ततत्त्वज्ञं छिन्नसन्देहविभ्रमम्।
सर्वतन्त्रप्रयोगज्ञं धार्मिकं सत्यवादिनम्।।३।।
कुलक्रमागताचारं कुमार्गाचारवर्जितम्।
शिवध्यानपरं शान्तं शिवतत्त्वविवेकिनम्।।४।।
भस्मोद्धूलननिष्णातं भस्मतत्त्वविवेकिनम्।
त्रिपुण्ड्रधारणोत्कण्ठं धृतरुद्राक्षमालिकम्।।५।।
लिङ्गधारणसंयुक्तं लिङ्गपूजापरायणम्।
लिङ्गाङ्गयोगतत्त्वज्ञं निरूढाद्वैतवासनम्।।६।।
लिङ्गाङ्गस्थलभेदज्ञं श्रीगुरुं शिववादिनम्।

एवं सद्गुरुमधिगम्य तत्सेवा कर्तव्येत्याह--

सेवेत परमाचार्यं शिष्यो भक्तिभयान्वितः।।७।।

अत्र ततः संसारहेयबुद्ध्युत्पत्त्यनन्तरं शुद्धमानसो निर्मलान्तःकरणत्वेन पिण्डशब्दवाच्यः, विवेकसंपन्नः शरीरात्मविवेकेन पिण्डज्ञानवान्, विरागी अनित्यसुखवैमुख्येन संसारहेयबुद्धिमान् साधकः सर्वसंसारदोषध्वंसकरम्, दोषः दुःखमित्यर्थः, सांसारिकसकलदुःखनिवारकं शिवम्, परब्रह्मापरपर्यायपर-शिवमहालिङ्गं जिज्ञासुः सन्, शिववादिनं महालिङ्गस्वरूपमुपदेष्टारं श्रीगुरुमुपैतीति योजना । स कीदृश इत्यत्राह—लोकविख्यात इत्यादिना। सर्वलोकप्रसिद्धः, लोभमोहविवर्जितः, मोहः अज्ञानमित्यर्थः, आत्मतत्त्व-विचारज्ञः देहेन्द्रियादिवैलक्षण्येनात्मयाथार्थ्यस्वरूपज्ञः, विमुक्तविषयभ्रमः "यस्य

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

यस्य पदार्थस्य या या शक्तिरुदीरिता । सा सा सर्वेश्वरी देवी स स सर्वो महेश्वरः ।।" इति सर्वमङ्गलागमस्थितेः, "शब्दजालमशेषं तु धत्ते शर्वस्य वल्लभा। अर्थजालमशेषं तु धत्ते मुग्धेन्दुशेखर।।" इति वायुसंहितोक्तेश्च सर्वस्यापि विश्वस्य शिवशक्तिमयत्वात् तयोरभेदाद् विगलितविषयगतभेदभ्रान्तिरित्यर्थः। अत एव निरूढाद्वैतवासनः दृढीभूताद्वैतसंस्कारविशिष्टः, शिवसिद्धान्ततत्त्वज्ञः शिवागमसिद्धान्ताभिज्ञः, छिन्नसंदेहविभ्रमः निराकृतसंशयविपर्ययवानित्यर्थः, सर्वतन्त्रप्रयोगज्ञः चतुःषष्टितन्त्रप्रयोगज्ञः, धार्मिकः शिवधर्मनिष्ठः, सत्यवादी, कुलक्रमगताचारः गुरुवंशक्रमानुगताचारवान्, कुमार्गाचारवर्जितः कुलप्राप्तसमयाचारवर्जितः, शिवध्यानपरः शिवलिङ्गचिन्तानिष्ठः, शान्तः रागद्वेषरहितः, शिवतत्त्वविवेकी शिवपरशिवस्वरूपज्ञः, भस्मोद्धूलननिष्णातः, तत्र कुशलीत्यर्थः, भस्मतत्त्वविवेकी भस्मस्वरूपविवेकवान्, त्रिपुण्डधारणोत्कण्ठः, तत्रोत्सुक इत्यर्थः, धृतरुद्राक्षमालिकः, लिङ्गधारणसंयुक्तः बाह्यान्तर्लिङ्गधारणवान्, लिङ्गपूजापरायणः बाह्यान्तर्लिङ्गपूजानिष्ठः, लिङ्गाङ्गयोगतत्त्वज्ञः शिवजीवसंबन्धतत्त्वज्ञः, लिङ्गाङ्गस्थलभेदज्ञः लिङ्गाङ्गस्थलगतैकोत्तरशतस्थल-भेदज्ञानवानित्यर्थः, शिववादी माङ्गल्यवचनप्रयोक्ता, एवंविधसल्लक्षणसंपन्नं श्रीमन्तं सद्गुरुस्वामिनं संसारहेयबुद्धिमान् पक्वशिष्यः, मुमुक्षुरिति यावत्, उपैति उपायनपाणिः सन् अधिगच्छेदित्यर्थः।।१-७।।

'ब्रह्मज्ञानासाठी शास्त्रप्रवीण व ब्रह्मनिष्ठ अशा सद्गुरूला हातात दर्भ घेऊन शरण जावे' असे मुंडकश्रुती सांगते. पूर्वोक्त पिंड, पिंडज्ञान व संसारहेयस्थल यांनी संपन्न असलेला, संसाराचा नाश करणाऱ्या महालिंगाविषयी जिज्ञासा बाळगणारा साधक सद्गुरूला शरण जातो. त्यामुळे श्री रेणुकाचार्य दीक्षारूपी गुरुकारुण्यस्थलाचा उपदेश अगस्तीमुनीला अशा प्रकारे करतात— पूर्वी सांगितल्या प्रमाणे निर्मल अंतःकरणाचा, आत्मानात्म-विवेक संपन्न झालेला, सांसारिक अनित्य सुखाविषयी हेयबुद्धीमुळे वैराग्य उत्पन्न झालेला, असा साधक संसारातील सर्व दुःखांचे निवारण करणाऱ्या परशिवरूप महालिंगाला जाणून घेण्याची जिज्ञासा उत्पन्न होऊन तो त्या महालिंगस्वरूपाचा उपदेश करणाऱ्या सद्गुरूला शरण जातो.।।१।। हा सद्गुरू लोकांत अत्यंत प्रसिद्ध असावा, सांसारिक लोभ व अज्ञानापासून मुक्त असावा, देह-इंद्रियादिकापासून वेगळे असे जे आत्मतत्त्व आहे, त्याचे यथार्थ ज्ञान त्याला असावे, विषयसुखाच्या भ्रमात तो नसावा.।।२।। त्याच्यावर शिवाद्वैताचा दृढ संस्कार झालेला

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

असावा, तो शिवागमसिद्धांताचा जाणकार असावा, संशयज्ञान व विपरीतज्ञानरहित असावा आणि सत्यवक्ता असावा.।।३।। गुरुवशपरंपरेने प्राप्त आचारांचे पालन करणारा असावा, कुमार्गाचारवर्जित असावा, शिवलिंगाचे चिन्तन करणारा, रागद्वेषरहित, परशिवस्वरूपाचा ज्ञाता असावा.।।४।। भस्मोद्धूलनाची कला त्याला प्राप्त असावी, भस्मस्वरूपाचा विवेक त्याला असावा, त्रिपुंड्रधारणाची त्याला उत्कंठा असावी, रुद्राक्षमाला त्याने धारण केलेल्या असाव्या.।।५।। बाह्य देहावर त्याने इष्टलिंग धारण केलेले असावे, त्या इष्टलिंगाच्या पूजेत त्याला निष्ठा असावी, शिव आणि जीवाच्या संबंधाचे तत्त्व त्याला ज्ञात असावे, अद्वैतभावना त्याने जोपासलेली असावी.।।६।। लिंगस्थल आणि अंगस्थलातर्गत एकशेएक स्थलाचे त्याला ज्ञान असावे, तो नेहमी मंगल शब्दांचा वापर करणारा असावा, अशा लक्षणांनी युक्त सद्गुरूला मुमुक्षू सद्भक्ताने गुरुकारुण्यरूपदीक्षा प्राप्त करण्याठी हातात दर्भादी घेऊन शरण जावे.।।७।।

षण्मासान् वत्सरं वापि यावदेष प्रसीदति।

आप्तस्थानाङ्गसद्भावैः सेवेदित्यर्थः। शिष्टं स्पष्टम्।।

आता शरण गेलेल्या भक्ताने सद्गुरूची सेवा कशी करावी ते सांगतात— भक्ताने सद्गुरूविषयी भक्ती आणि भययुक्त अंतःकरणाने सद्गुरूची सेवा सहा महिने, वर्षभर अथवा गुरू प्रसन्न होईपर्यंत करावी. ही सेवा आप्त, स्थान, अग आणि सद्भाव अशा चतुर्विध स्वरूपाची असावी. ही सेवा १, गुरूला आप्ताप्रमाणे मानून, २, गुरूच्या घराची, मठाची व्यवस्था करून, ३, गुरूच्या चरणपादादिकांचे संवाहन करून ४, आणि सर्वात महत्त्वाचे म्हणजे गुरूविषयी नितात सद्भावना सदैव अंतःकरणात बाळगून करावयाची असते.।।८।।

अथ तद्विज्ञापनप्रकारं सूत्रद्वयेन वर्णयति—

प्रसन्नं परमाचार्यं भक्त्या मुक्तिप्रदर्शकम्।।८।।
प्रार्थयेदग्रतः शिष्यः प्राञ्जलिर्विनयान्वितः।
भो कल्याण महाभाग शिवज्ञानमहोदधे।।९।।
आचार्यवर्य संप्राप्तं रक्ष मां भवरोगिणम्।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भक्त्या सेवया प्रसन्नमनुग्रहोन्मुखं मुक्तिप्रदर्शकं परापरमोक्षप्रदर्शकं परमाचार्यं महागुरुं विनयान्वितः भयभक्तिसमन्वितः शिष्यः प्राञ्जलिः मुकुलितकरः सन् अग्रतः पुरतः प्रार्थयेत्। किमित्यत्र भो कल्याण मङ्गलात्मक महाभाग अतिश्रेष्ठ शिवज्ञानस्य समुद्र आचार्यवर्य गुरूत्तम भवरोगिणं संसारार्तं संप्राप्तं समागतं मां रक्ष पाहीति।।८-९।।

अशा शरण गेलेल्या शिष्याने करावयाच्या गुरुप्रार्थनेचे प्रकार दोन श्लोकांत सांगतात—सद्गुरू प्रसन्न झाल्यावर शिवतत्त्वाचे ज्ञान करून देणाऱ्या सद्गुरूची दोन्ही हात जोडून अत्यंत विनयाने प्रार्थना करावी. 'हे कल्याणकारक, महाभाग्यवंत, शिवज्ञानाचा सागर अशा श्रेष्ठ आचार्या, भवरोगाने ग्रस्त असलेल्या व आपणास शरण आलेल्या माझे रक्षण करावे'.।।८।।९।।

एवं प्रार्थितवन्तं शिष्यं गुरुरुपदेशाङ्गभूतदीक्षया योजयेदित्याह—

इति शुद्धेन शिष्येण प्रार्थितः परमो गुरुः।।१०।।
शक्तिपातं समालोक्य दीक्षया योजयेदमुम्।

इति एवंप्रकारेण शुद्धेन शुद्धान्तःकरणेन शिष्येण प्रार्थितो विज्ञापितः परमो गुरुः महागुरुः, तस्येति शेषः। शक्तिपातं तीव्रतरशक्तिपातं समालोक्य सम्यगवलोक्य अमुम् अग्रतः स्थितं शिष्यं दीक्षया योजयेत् संबन्धयेदित्यर्थः।।१०।।

आता गुरूपदेशाचे अंग अशी दीक्षा शिष्याची योग्यता पाहून गुरूने द्यावी असे सांगतात—अशा प्रकारे प्रार्थना करणाऱ्या शुद्ध अंतःकरणाच्या शिष्याच्या ठिकाणी शरणभाव, रोमांच, अश्रू इत्यादी शक्तिपाताची चिन्हे पाहून गुरूने त्याला दीक्षा द्यावी.।।१०।।

का नाम दीक्षेत्यत्राह—

दीयते च शिवज्ञानं क्षीयते पाशबन्धनम्।।११।।
यस्मादतः समाख्याता दीक्षेतीयं विचक्षणैः।

यस्मात् "दा दाने" इति धातुगत्या शिवज्ञानं परब्रह्मपरशिवाख्य-महालिङ्गज्ञानं दीयते स्वात्माभेदेन प्रदास्यते, पाशबन्धनं मलमायाकर्मबन्धनं "क्षि क्षये" इति धातुगत्या क्षीयते, अत इयं ज्ञानक्रियात्मिका शक्तिरेव दीक्षेति विचक्षणैः शास्त्रज्ञैः सम्यगाख्यातेत्यर्थः।।११।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

दीक्षा म्हणजे काय? परब्रह्म परशिव अशा महालिगाचे ज्ञान ते शिवज्ञान. हे ज्ञान गुरूकडून शिष्याला दिले जाते व त्याच्या मल-माया-कर्म या भवपाशांचा नाश होतो. ह्या ज्ञान-क्रियात्मक शक्तीलाच विचक्षण लोक दीक्षा असे म्हणतात.।।११।।

अथेयं दीक्षा त्रिविधेत्याह—

सा दीक्षा त्रिविधा प्रोक्ता शिवागमविशारदैः।।१२।।
वेधारूपा क्रियारूपा मन्त्ररूपा च तापस।

आता दीक्षेचे प्रकार वर्णन करतात—हे अगस्त्या, शिवागम पारंगत लोक दीक्षेचे तीन प्रकार सांगतात ते असे, १, वेधा दीक्षा २, क्रिया दीक्षा व ३, मंत्र दीक्षा.।।१२।।

अथ तद्दीक्षात्रयलक्षणमाह—

गुरोरालोकमात्रेण हस्तमस्तकयोगतः।।१३।।
यः शिवत्वसमावेशो वेधा दीक्षेति सा मता।

श्रीगुरोर्निरीक्षणमात्रेण हस्तमस्तकसम्बन्धाद् यो ज्ञानक्रियात्मकशिवतत्त्व-समावेशोऽस्ति, सा वेधा दीक्षेति, स्मृतेत्यर्थः। गुरोर्दृष्टिगर्भे स्थित्वा कर-कमले समुत्पन्नस्यात्मनश्चिन्मयस्वरूपोपदेशो वेधादीक्षेति तात्पर्यम्।।१३।।

त्या तीन दीक्षांची लक्षणे अशी आहेत—शिष्याकडे कृपादृष्टीने पाहून व त्याच्या मस्तकावर आपला वरदहस्त ठेवून श्रीगुरू त्याच्या ठिकाणी असलेल्या शिवतत्त्वाला जागे करतात व ते चिन्मयस्वरूपी आहे असा उपदेश करतात, त्याला वेधा दीक्षा असे म्हणतात.।।१३।।

मान्त्री दीक्षेति सा प्रोक्ता मन्त्रमात्रोपदेशिनी।।१४।।

मन्त्रमात्रोपदेशिनी सोऽहमिति- प्रणवमन्त्रस्वरूपस्य प्राणिनः पञ्चाक्षरी-मन्त्रमात्रोपदेशो योऽस्ति, सा मननत्राणधर्मिणी मान्त्री दीक्षेति कथितेत्यर्थः।।१४।।

मनन केल्यामुळे आयळे रक्षण करणाऱ्या प्रणवस्वरूपी पंचाक्षरी महामंत्राचा उपदेश ज्या दीक्षेत गुरूकडून गुप्तपणे

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

शिष्याच्या उजव्या कानात दिला जातो ती मान्त्री दीक्षा होय.।।१४।।

कुण्डमण्डलिकोपेता क्रिया दीक्षा क्रियोत्तरा।

कलशबन्धस्वस्तिकमण्डलसंयुक्ता क्रियापरा लिङ्गधारणक्रियासमेता क्रिया दीक्षेत्यर्थः।।

अथ तत्प्रकारं पञ्चभिः श्लोकैः प्रदर्शयति—

शुभमासे शुभतिथौ शुभकाले शुभेऽहनि।।१५।।
विभूतिं शिवभक्तेभ्यो दत्त्वा ताम्बूलपूर्वकम्।
यथाविधि यथायोगं शिष्यमानीय देशिकः।।१६।।
स्नातं शुक्लाम्बरधरं दन्तधावनपूर्वकम्।
मण्डले स्थापयेच्छिष्यं प्राङ्मुखं तमुदङ्मुखः।।१७।।
शिवस्य नाम कीर्तिं च चिन्तामपि च कारयेत्।

शुभमासे माघादिशुभमासे शुभतिथौ भद्रादिशुभतिथौ शुभेऽहनि सोमशुक्रादिशुभवासरे शुभकाले अमृतयुक्तशुभमुहूर्ते विध्युक्तप्रकारेण शास्त्रोक्तक्रमेण शिवभक्तेभ्यस्ताम्बूलपूर्वकं विभूतिं दत्त्वा आचार्यो दन्तधावनपूर्वकं स्नातं शुक्लाम्बरधरं शिष्यं स्वसमीपमाहूय प्राङ्मुखं कृत्वा स्वयमुदङ्मुखः सन् स्वस्तिकमण्डले स्थापयेत्। अनन्तरम्— "अपि वा यश्चाण्डालः शिवेति वाचं वदेत्तेन सह संवसेत्तेन सह संविशेत्तेन सह भुञ्जीत" इति श्रुतेः सकलप्रायश्चित्तरूपशिवनामकीर्तनं शिवध्यानं च कारयेदित्यर्थः।।१५-१७।।

ज्या दीक्षेत पंचकलशांची स्थापना, स्वतिवाचन, मंडपादी क्रियेसहित लिंगधारण केले जाते तिला 'क्रियादीक्षा' असे म्हणतात.।।१५।।

अशा दीक्षेचे क्रियाविधान सांगतात—माघकार्तिकादी शुभ महिन्यात, द्वितिया-तृतीया-पंचम्यादी चांगल्या तिथीस, सोम-गुरू-शुक्र अशा चागल्या दिवशी, अमृतादी शुभ मुहूर्तावर, शिवभक्तांना अगोदर निमंत्रणाचा विडा-विभूती देऊन, विधिपूर्वक योग्य रीतीने त्या शिष्याला दीक्षा द्यावयाच्या ठिकाणी आणून, श्रीगुरूने त्याला मंडपात पूर्वाभिमुख होऊन आसनावर बसवावे. त्यानंतर श्रींगुरूने उत्तराभिमुख होऊन आसनस्थ व्हावे, 'जो

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

चाडाल शिवनामस्मरण करतो त्याच्या बरोबर बोलावे, राहावे जावे व भोजन करावे' असे श्रुतिवचन आहे; म्हणून सर्व पापावर प्रायश्चितं असलेले जे शिवनाम त्याचे कीर्तन व शिवध्यान शिष्याला करावयास लावावे.।।१५ - १६ - १७।।

अनन्तरम्—

विभूतिपट्टं दत्त्वाग्रे यथास्थानं यथाविधि।।१८।।
पञ्चब्रह्ममयैस्तत्र स्थापितैः कलशोदकैः।
आचार्यः सममृत्विग्भिस्त्रिः शिष्यमभिषिञ्चयेत्।।१९।।

प्रथमं यथाविधि यथास्थानं विभूतिधारणं कृत्वा तत्र तस्मिन् मण्डले स्थापितैः पञ्चब्रह्ममयैर् ईशानादिपञ्चब्रह्मस्वरूपैः कलशोदकैः पञ्चाक्षरात्मककलशोदकैर् ऋत्विग्भिः भुवनप्रसिद्धपञ्चाचार्यसंप्रदायानुगैर् ऋत्विग्भिः समम् आचार्यस्तत्संप्रदाय एवाचार्यपट्टाभिषिक्तः श्रीगुरुः शिष्यं त्रिरभिषिञ्चयेत्।।१८-१९।।

प्रथम विधिपूर्वक व शास्त्रोक्त पद्धतीने अंगावर विभूती धारण केल्यानतर मडपात स्थापन केलेल्या ईशानादी पंचाक्षरात्मक पाच कलशातील पाण्याने जगविख्यात पचाचार्याच्या सप्रदायातील पुरोहिताकडून त्याच सप्रदायातील पट्टाभिषिक्त श्रीगुरूने शिष्यावर तीन वेळा सिंचन करावे.।।१८ - १९।।

अथ मांसपिण्डं मन्त्रपिण्डं विधातुं मन्त्रोपदेशं कुर्यादित्याह—

अभिषिच्य गुरुः शिष्यमासीनं परितः शुचिम्।
ततः पञ्चाक्षरीं शैवीं संसारभयतारिणीम्।।२०।।
तस्य दक्षिणकर्णे तु निगूढमपि कीर्तयेत्।
छन्दो रूपमृषिं चास्य देवतान्यासपद्धतिम्।।२१।।

अभिषिच्य ततस्तदनन्तरं गुरुः। शुचिं समीपे स्थितं शिष्यं प्रति तस्य दक्षिणकर्णे संसारभयतारिणीं शैवीं शिवसंबन्धिनीं पञ्चाक्षरीं नमः शिवाय चेति श्रीरुद्रप्रसिद्धां विद्यां परतत्त्वप्रकाशिनीं निगूढं परश्रुतिगोचरीभूतं यथा न भवति तथा कीर्तयेत्, उपदिशेदित्यर्थः। अस्याः पञ्चाक्षर्या रूपं स्वरूपं छन्दः ऋषिं मन्त्रद्रष्टारं महर्षिं देवतान्यासपद्धतिम् अधिदेवता-प्रत्यधिदेवतारूपपञ्चब्रह्मपञ्चसादाख्यपर्यायनामवदाचारादिपञ्चत्रिलिङ्गकराङ्ग-न्यासमार्गं न्यासक्रममित्यर्थः, कीर्तयेदित्यनुषङ्गः। आज्ञाचक्रस्थितप्रणवमय-

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

महालिङ्गं करतले स्थापयितुं प्रथममाधारादिपञ्चचक्रेषु नकारादिबीजमयाचारादिलिङ्गपञ्चकं शिवागमोक्तप्रकारेणोपदिशेदिति रहस्यम्।।२०-२१।।

इति गुरुकारुण्यस्थलम्

अभिसिंचनानंतर श्रीगुरूने शिष्याच्या मांसपिंडाचा मंत्रपिंड होण्यासाठी त्यास मंत्रोपदेश करावा. तो असा—आपल्या समीप बसलेल्या शिष्याच्या उजव्या कानात संसारभयाचा नाश करणारा शिवसबंधित असा 'नमः शिवाय' हा रुद्रामध्ये प्रसिद्ध असलेला व परतत्त्वावर प्रकाश टाकणारा जो शिवपचाक्षरी मत्र, तो इतरांनी श्रवण करू नये अशी काळजी घेऊन, सांगावा. या पचाक्षरी मंत्राचे स्वरूप, छंद, ऋषी, मंत्रद्रष्टे, देवता, न्यासपद्धती, अधिदेवता, पंचब्रह्म, पंचसादाख्य आणि पर्याय नावाप्रमाणे आचारादी पच, तीन लिंगे, करन्यास व अगन्यास वगैरे शिष्यास सागावेत. त्या शिवाय आज्ञाचक्रात राहाणारे प्रणवस्वरूप महालिंग शिष्याच्या करकमलामध्ये स्थापण्यासाठी आधारादी पाच चक्रामध्ये असलेली नकारादी बीजमय आचारलिंग वगैरे पाच लिंगे याच्या संपूर्ण रहस्याचा शिवागमानुसार उपदेश करावा. या ठिकाणी गुरुकारुण्यस्थलाचे विवेचन संपले.।।२०--२१।।

अथ लिङ्गधारणस्थलम्

अथ "एतत्सोमस्य सूर्यस्य सर्वलिङ्गं स्थापयति पाणिमन्त्रं पवित्रम्" इति श्रुत्युक्तप्रकारेण श्रीगुरुविधीयमानलिङ्गधारणस्थलं निरूपयति। पाणौ मननात् त्रायत इति पाणिमन्त्र इत्यर्थः। अत्रादौ धारणीयलिङ्गस्वरूपं निर्दिशति—

स्फाटिकं शैलजं वापि चन्द्रकान्तमयं तु वा।
बाणं वा सूर्यकान्तं वा लिङ्गमेकं समाहरेत्।।२२।।

शैलजं श्रीशैलादिमहापर्वतशिलासंभवमित्यर्थः। शिष्टं स्पष्टम्। एतेष्वेकं परीक्ष्य गृह्णीयादित्यर्थः।।२२।।

यजुर्वेदात सांगितलेल्या 'पाणिमंत्रपवित्रं' या मंत्राचा अर्थ हातातील इष्टलिंग असा होतो. म्हणून क्रियादीक्षेच्या वेळी हातात गुरूकडून प्राप्त होणारे ते लिंग कशाचे असावे हे सांगतात—नंतर श्रीगुरूने शिष्याकरिता स्फटिकाचे, श्रीशैलादी पर्वतावरील एखाद्या उत्तम शिलेचे, चंद्रकांत मण्याचे, नर्मदानदीत सापडणाऱ्या बाणाचे किंवा सूर्यकांत मण्याचे यापैकी परीक्षा करून कोणतेही एक लिंग घ्यावे.।।२२।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अथ तल्लिङ्गे शिवकलामावाहयेदित्याह—

सर्वलक्षणसंपन्ने तस्मिंल्लिङ्गे विशोधिते।
पीठस्थितेऽभिषिक्ते च गन्धपुष्पादिपूजिते।।२३।।
मन्त्रपूते कलां शैवीं योजयेद्विधिना गुरुः।

शिल्पशास्त्रोक्तसर्वलक्षणसंपन्ने पञ्चगव्यैः परिशुद्धे पञ्चामृताभिषिक्ते सुगन्धपुष्पादिना परिपूजिते मूलपञ्चाक्षरीमन्त्रसंस्कृते करपीठस्थिते तस्मिन् लिङ्गे, गुरुः आचार्यः, शैवीं कलां शिष्यमस्तकस्थितां शिवकलां विध्युक्तप्रकारेण आवाहयेदित्यर्थः। तत्प्रकार इत्थम्— शिष्यमस्तके सुगन्धेन पञ्चारचक्रं विलिख्य मध्ये प्रणवं पञ्चदलेषु पञ्चाक्षराणि विभाव्य, "नित्यानन्दां निरुपमपदां निष्कलां निर्विशेषां निर्व्याजेनोर्ध्वमायाविरचितवपुषं विश्ववन्द्यां परां ताम्। आधारामादिशक्तिं गुणगणनमितां देवदेवीं शिवाख्यां वन्दे हृत्पद्मपीठे परमशिवपदां श्रीमतीमूर्ध्वसंज्ञाम्।।" इति सकलजगद्व्यवहारप्रवृत्तिकां चराचरचैतन्यतेजोरूपिणीं शिवकलां ध्यात्वा गन्धादिनाभ्यर्च्य प्रदीपाद्दीपान्तरमिव क्रोमित्यङ्कुशमुद्रयाऽऽकृष्याऽऽवाह्य तदारं विचिन्त्य पुनर्गन्धाद्युपचारैः संपूजयेदिति ।।२३।।

आता त्या लिंगात शिवकलेचे संयोजन कसे करावे हे सांगतात—शिल्पशास्त्रानुसार सर्वलक्षणांनी युक्त, पंचगव्य (गाईचे दूध, दही, तूप, मूत्र आणि गोमय) यानी परिशुद्ध, पचामृताने (गाईचे दूध, दही, तूप, मध आणि साखर) अभिषिक्त, गंधपुष्पादींनी परिपूजित आणि मूल पंचाक्षरी मंत्राने सुसंस्कृत असे ते लिंग करपीठावर ठेवून शिष्याच्या मस्तकात स्थित असलेल्या शिवकलेचे आवाहन करण्यासाठी प्रथम गंधाने शिष्याच्या मस्तकावर पंचकोणांचे चक्र काढून मध्यभागी ॐकार काढावा, उरलेल्या पाच दलांवर पंचाक्षर मंत्रातील अक्षरे लिहून, शिवकलेचे ध्यान करावे. 'क्रोम' अशा मंत्राक्षराचा उच्चार करून अंकुश मुद्रेने त्या शिवकलेचे आवाहन करावे व तिची इष्टलिंगात स्थापना करावी.।।२३।।

अथ लिङ्गप्राणसामरस्यं कृत्वा तल्लिङ्गं शिष्यहस्ते स्थापयेदित्याह—

शिष्यस्य प्राणमादाय लिङ्गे तत्र निधापयेत्।।२४।।
तल्लिङ्गं तस्य तु प्राणे स्थापयेदेकभावतः।
एवं कृत्वा गुरुर्लिङ्गं शिष्यहस्ते निधापयेत्।।२५।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तत्र लिङ्गे शिवकलाभरितलिङ्गे शिष्यस्य जीवकलारूपं प्राणम् आदाय आकृष्य निधापयेत् प्रतिष्ठापयेत्। तल्लिङ्गं शिवकलापूरितलिङ्गं तस्य शिष्यस्य प्राणे प्रणवरूपत्वेन जीवकलारूपे प्राणे एकभावतस्तादात्म्येन स्थापयेत्, नियोजयेदित्यर्थः। एवंप्रकारेण गुरुर्लिङ्गं शिवजीवकला-सामरस्यात्मकं कृत्वा शिष्यकरकमले स्थापयेदित्यर्थः।।२४-२५।।

आता शिवकलायुक्त त्या लिंगात शिष्याचा जीवकलारूप प्राण प्रतिष्ठापित करण्याचा विधी सागतात—शिवकलेने परिपूर्ण अशा लिगामध्ये शिष्याच्या जीवकलारूप प्राणास आकर्षून त्याची स्थापना करावी. त्याच प्रमाणे शिवकलेने पूर्ण अशा लिंगाची शिष्याच्या प्रणवरूपी जीवकलेने युक्त अशा प्राणात एकभावाने व तादात्म्यसंबधाने स्थापना करावी. अशा प्रकारे श्रीगुरूने शिव व जीवकलेने सामरस्ययुक्त तें लिंग शिष्याच्या हातात ठेवावे.।।२४–२५।।

शिष्यं शिक्षयति—

प्राणवद्धारणीयं तत्प्राणलिङ्गमिदं तव।
कदाचित्कुत्रचिद्वापि न वियोजय देहतः।।२६।।

भो शिष्य! तदिदं प्राणलिङ्गं तव त्वया प्राणवद्धारणीयम्, जातु क्वापि देहतो न वियोजय शरीराद्वियुक्तं मा कुर्वित्यर्थः।।२६।।

आता त्या इष्टलिंग धारणेसंबधी विधिनिषेध सागतात—गुरूने शिष्यास करावयाचा उपदेश असा—हे शिष्या, हे लिग तुझे प्राणलिंग असल्यामुळे तू तुझ्या प्राणाप्रमाणेच ते धारण करावेस. केव्हाही व कोठेही हे लिंग तुझ्या शरीरापासून वेगळे ठेवू नकोस अर्थात् ते सदैव तुझ्या शरीरावरच राहू दे.।।२६।।

यदि प्रमादेन शरीराद्वियुक्तं चेत्तदा किं कर्तव्यमित्यत्राह—

यदि प्रमादात् पतिते लिङ्गे देहान्महीतले।
प्राणान् विमुञ्च सहसा प्राप्तये मोक्षसम्पदः।।२७।।

स्पष्टं बलात्कारेण प्राणत्यागे दुर्मरणं किं न स्यादित्यत्रोक्तम्-प्राप्तये मोक्षसंपद इति। अन्यथा नरक एवेति भावः।।२७।।

जर चुकून शरीरापासून लिग दूर झाले तर काय करावे? याचे उत्तर असे की एखादे वेळी जर अनवधानाने शरीरापासून

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

लिंग जमिनीवर पडले तर तत्क्षणीच प्राणत्याग कर. म्हणजे तुला मोक्ष प्राप्त होईल. असे केले नाहीस तर तुला नरक प्राप्त होईल.।।२७।।

इति संबोधितः शिष्यो गुरुणा शास्त्रवेदिना।
धारयेच्छाङ्करं लिङ्गं शरीरे प्राणयोगतः।।२८।।

यावत्पर्यन्तं शरीरे प्राणस्तिष्ठति, तावत्पर्यन्तं वीरशैवशास्त्रज्ञेन गुरुणा बोधितः शिष्यः शाङ्करं लिङ्गं धारयेदित्यर्थः।।२८।।

शास्त्रवेत्त्या अशा श्रीगुरूने शिष्यास उपदेश केल्यानुसार त्या शिष्याने शिवशक्तियुक्त असे ते लिंग शरीरावर आमरण आपल्या प्राणाप्रमाणे धारण करावे.।।२८।।

अथ किमस्य धारणेन प्रयोजनं कैरङ्गीकृतमित्यत्राह—

लिङ्गस्य धारणं पुण्यं सर्वपापप्रणाशनम्।
आदृतं मुनिभिः सर्वैरागमार्थविशारदैः।।२९।।

वीरशैवागमाभिज्ञैर्मुनिभिः सर्वैरप्यङ्गीकृतमित्यर्थः।।२९।।

या लिंगधारणेचे प्रयोजन कोणते आणि अशी लिंगधारणा कोणी कोणी स्वीकारली आहे? याचे उत्तर असे की, लिंगधारण करणे हे पुण्यकारक व सर्वपापनाशक आहे आणि आगमांचा अर्थ जाणणाऱ्या सर्व ऋषिमुनींनी ह्या लिंगधारणेचा स्वीकार केला आहे.।।२९।।

अथैवं लिङ्गधारणं मोक्षकाङ्क्षिभिर्मुनिभिर्द्विधाङ्गीकृतमित्यत्राह—

लिङ्गधारणमाख्यातं द्विधा सर्वार्थसाधकैः।
बाह्यमाभ्यन्तरं चेति मुनिभिर्मोक्षकाङ्क्षिभिः।।३०।।

सर्वार्थसाधकं भोगमोक्षप्रदमित्यर्थः। शिष्टं स्पष्टम्।।३०।।

आता लिंगधारणेचे प्रकार सांगतात—चारी पुरुषार्थ साधू इच्छिणाऱ्या, मोक्षप्राप्तीची आकांक्षा बाळगणाऱ्या सर्व मुनीश्वरांनी बाह्य व अभ्यंतर असे लिंगधारणेचे दोन प्रकार मानले आहेत.।।३०।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

किमिदमान्तरमित्यत्राह—

चिद्रूपं परमं लिङ्गं शाङ्करं सर्वकारणम्।
यत्तस्य धारणं चित्ते तदान्तरमुदाहृतम्।।३१।।

चिद्रूपं सच्चिदानन्दात्मकं परमम्। अत एव देशकालोत्तीर्णं सर्वकारणं देशकालाकारलक्षणविश्वकारणं शाङ्करं शिवसंबन्धि यल्लिङ्गमस्ति, तस्य महालिङ्गस्य चित्ते स्वहृत्कमले यद्धारणं ध्यानरूपेण धारणम्, तद् आन्तरम् अन्तर्लिङ्गधारणमित्युदाहृतमित्यर्थः।।३१।।

अभ्यंतर म्हणजे अंतर्लिंगधारणा कोणती? देशकाल आकाराने युक्त अशा विश्वाला कारणीभूत असलेले, सच्चिदानद, सर्वश्रेष्ठ, देशकालातीत शिवस्वरूप जे लिंग आहे, त्या महालिंगाचे आपल्या हृदय-कमलामध्ये ध्यानरूपाने धारण करणे हेच अभ्यतर लिंगधारण होय.।।३१।।

अथैतत्स्वरूपं बहुधा प्रकाशयति—

चिद्रूपं हि परं तत्त्व शिवाख्यं विश्वकारणम्।
निरस्तविश्वकालुष्यं निष्कलं निर्विकल्पकम्।।३२।।
सत्तानन्दपरिस्फूर्तिसमुल्लासकलामयम्।
अप्रमेयमनिर्देश्यं मुमुक्षुभिरुपासितम्।।३३।।
परं ब्रह्म महालिङ्गं प्रपञ्चातीतमव्ययम्।

जडविलक्षणत्वाच्चिद्रूपम्, जीवविलक्षणत्वात्परम्, अत एव चराचर-प्रपञ्चकारणं निरस्तसमस्तदोषं निरवयवं भेदरहितं नित्यानन्दप्रकाशात्मकत्वेन व्याप्रियमाणतुर्यातीतसप्तदशकलास्वरूपं प्रत्यक्षादिप्रमाणागम्यं वक्तुमशक्यं मोक्षकाङ्क्षिभिर्भजनीयं विश्वातीतं कालत्रयाबाध्यं शिवाख्यं परं ब्रह्म महालिङ्गं हि महालिङ्गमिति प्रसिद्धमित्यर्थः।।३२-३३।।

आता त्या अंतर्लिंगाचे स्वरूप विशद करतात—तो अंतर्लिंगरूपी परशिव जडप्रपंचापासून विलक्षण असल्यामुळे त्याला चिद्रूप म्हणतात. जीवाहून विलक्षण असल्यामुळे त्याला परमतत्त्व म्हणतात. तो चराचर प्रपंचाचा कारण असूनही प्रपचाच्या दोषापासून मुक्त आहे. तो निरवयव असल्यामुळे त्याला निष्कल म्हणतात. त्याच्यात कोणताही भेद नसल्यामुळे त्याला निर्विकल्प म्हणतात. तो सत्, चित्, आनद, स्फूर्ती, उत्साहादी सतरा

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कलांस्वरूप आहे. त्याचे स्वरूप कोणत्याही प्रमाणाने सिद्ध करता येत नसले, तरीही मुमुक्षूंकडून त्याची उपासना केली जाते. तो विश्वातीत असून त्रिकालाबाधित आहे. असा जो परब्रह्म शिव त्यालाच महालिंग म्हणतात आणि तेच अतर्लिंग होय.।।३२-३३।।

नन्वेतादृशस्य महालिङ्गस्य स्थानध्यानशून्यत्वात् (तत्) कथमुपासनीयं स्यादित्यत्राह—

तदेव सर्वभूतानामन्तस्त्रिस्थानगोचरम्।।३४।।
मूलाधारे च हृदये भ्रूमध्ये सर्वदेहिनाम्।
ज्योतिर्लिङ्गं सदा भाति यद्ब्रह्मेत्याहुरागमाः।।३५।।

तदेव पूर्वोक्तमहालिङ्गमेव समस्तप्राणिनामन्तः त्रिस्थानगोचरं स्थानत्रयवदित्यर्थः। यत् शिवागमप्रसिद्धमहालिङ्गतत्त्वम् आगमा उपनिषदो ब्रह्मेत्याहुः, तज्ज्योतिर्लिङ्गं सर्वदेहिनां समस्तप्राणिनां पूर्वहृदये मूलाधारे, मध्यहृदये हृदये, ऊर्ध्वहृदये भ्रूमध्ये सदा भाति, गुरूपदेशाद्विज्ञेय-मित्यर्थः।।३४-३५।।

अशा प्रकारच्या महालिंगाचे स्थान कोणते हे माहीत नसल्याने त्याचे ध्यान करणे शक्य नसल्यामुळे त्याची उपासना कशी करावी? तर, पूर्वोक्त महालिग अथवा ज्योतिर्लिंग यालाच आगमात ब्रह्म असे म्हटले आहे. ते सर्व प्राणिमात्राच्या अंतर्यामी असते. ते मूलाधार, हृदय आणि भ्रूमध्य अशा तीन ठिकाणी सदैव प्रकाशमान असते. तरी त्याचे स्वरूप केवळ गुरूपदेशानेच ज्ञात होते.।।३४-३५।।

नन्वखण्डितस्य महालिङ्गस्य खण्डितत्वं कथमित्यत्राह—

अपरिच्छिन्नमव्यक्तं लिङ्गं ब्रह्म सनातनम्।
उपासनार्थमन्तःस्थं परिच्छिन्नं स्वमायया।।३६।।

अखण्डितमप्रकटं नित्यं ब्रह्मशब्दाभिधेयम् अन्तःस्थं लिङ्गम् एकमपि, उपासनार्थं भक्तानां ध्यानपूजार्थं स्वमायया स्वस्वातन्त्र्यापरपर्यायमाया-शक्त्या परिच्छिन्नं स्थानभेदेन लिङ्गत्रयरूपं ज्ञातमित्यर्थः।।३६।।

तर मग अखंड असणारे ते महालिंग खंडित रूपाने कसे प्रकाशित होते? याचे उत्तर असे की, ते महालिग अपरिच्छिन्न,

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अव्यक्त, सनातन असे ब्रह्मच होय; आणि शिवभक्तांच्या पूजेसाठी व ध्यानासाठी आपल्या मायेच्या योगाने ते परिच्छिन्न अथवा खंडितरूपाने दिसते.।।३६।।

ननु परब्रह्म लिङ्गरूपमिति कथं व्यवह्रियत इत्यत्राह—

लयं गच्छति यत्रैव जगदेतच्चराचरम्।
पुनः पुनः समुत्पत्तिं तल्लिङ्गं ब्रह्म शाश्वतम्।।३७।।

यत्र ब्रह्मणि एतच्चराचरं जगद् लयं गच्छति, पुनः पुनरुत्पत्तिं गच्छतीति तच्छाश्वतं ब्रह्मलिङ्गमित्यर्थः।।३७।।

त्या परब्रह्माला लिंग असे का म्हणावे? कारण, ज्याच्यात सर्व चराचर विश्व लय पावते आणि ज्याच्यातून पुनःपुन्हा त्याची उत्पत्ती होते, असे जे शाश्वत ब्रह्म आहे त्याला लिंग म्हणतात.।।३७।।

उक्तार्थं निगमयति—

तस्माल्लिङ्गमिति ख्यातं सत्तानन्दचिदात्मकम्।
बृहत्वाद् बृंहणत्वाच्च ब्रह्मशब्दाभिधेयकम्।।३८।।

तस्मात् सच्चिदानन्दात्मकं लिङ्गं महालिङ्गं बृहत्वान्महत्त्वाद् बृंहणत्वाद् विश्वसृष्ट्युन्मुखत्वाच्च ब्रह्मशब्दाभिधेयकमिति ख्यातं प्रख्यातमित्यर्थः। एवं परब्रह्मैव महालिङ्गं महालिङ्गमेव परब्रह्मेति भावः।।३८।।

त्यामुळे सच्चिदानंदरूप असे महालिंग सर्वांत मोठे असल्याने व विश्वाच्या निर्मितीला कारण असल्यामुळे ते ब्रह्म या नावानेही प्रसिद्ध आहे. अशा रीतीने परब्रह्म म्हणजेच महालिंग आणि महालिंगच ब्रह्म होय असे समजावे.।।३८।।

अथोक्तस्थानेष्वेकत्र ज्योतिर्लिङ्गानुसन्धानमान्तरलिङ्गधारणमित्याह—

आधारे हृदये वापि भ्रूमध्ये वा निरन्तरम्।
ज्योतिर्लिङ्गानुसन्धानमान्तरं लिङ्गधारणम्।।३९।।

स्पष्टम्।।३९।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

आता अंतर्लिंगधारणेचे स्वरूप सांगतात—आधार, हृदय अथवा भ्रूमध्य ह्यापैकी कोणत्याही एका ठिकाणात ज्योतिर्मय लिंगाचे निरंतर ध्यान करणे हे अभ्यंतरलिंगधारण होय.।।३९।।

अथ केन प्रकारेणानुसन्धेयमित्यत्राह—

आधारे कनकप्रख्यं हृदये विद्रुमप्रभम्।
भ्रूमध्ये स्फटिकच्छायं लिङ्गं योगी विभावयेत्।।४०।।

स्पष्टम्।।४०।।

कोणत्या ठिकाणी व कोणत्या प्रकारे लिंगाचे अनुसंधान म्हणजे ध्यान करावे? उत्तर असे की शिवयोग्याने मूलाधार स्थलात सुवर्णासारखे, हृदयात पोवळ्यासारखे व भ्रूमध्यात स्फटिका सारखे प्रकाशमान लिंग आहे अशीं भावना करून त्याचे ध्यान करावे.।।४०।।

अथेदमन्तर्लिङ्गधारणं बाह्यलिङ्गधारणापेक्षया विशिष्टमित्याह—

निरुपाधिकमाख्यातं लिङ्गस्यान्तरधारणम्।
विशिष्टं कोटिगुणितं बाह्यलिङ्गस्य धारणात्।।४१।।

स्पष्टम्।।४१।।

अंतर्लिंगधारणा ही बाह्यलिंगधारणे पेक्षा वैशिष्ट्यपूर्ण आहे हे स्पष्ट करतात—ते असे. अंतर्लिंगधारणेस निरुपाधिक लिंगधारणा असे म्हणतात आणि ही अंतर्लिंगधारणा बाह्यलिंगधारणेपेक्षा कोटीपटीने अधिक श्रेष्ठ आहे.।।४१।।

ये धारयन्ति हृदये लिङ्गं चिद्रूपमैश्वरम्।
न तेषां पुनरावृत्तिर्घोरसंसारमण्डले।।४२।।

परमुक्तिरेवेत्यर्थः।।४२।।

जे शिवभक्त आपल्या हृदयकमलात चित्स्वरूप अंतर्लिंग धारण करतात त्यांना या संसारचक्रात पुन्हा जन्म घ्यावा लागत नाही. म्हणजेच त्यांना परममुक्ती प्राप्त होते.।।४२।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तत्कथमित्यत्राह—

अन्तर्लिङ्गानुसन्धानमात्मविद्यापरिश्रमः।
गुरूपासनशक्तिश्च कारणं मोक्षसम्पदाम्।।४३।।

"आत्मलाभान्न परं विद्यते" इति श्रुतेर्नाहमीश्वर इत्यज्ञाननिवारकीभूतात्मविद्यानैशित्यगुरुभजनसामर्थ्ययोरप्यन्तर्लिङ्गानुसन्धानं मोक्षसम्पत्कारणमित्यर्थः।।४३।।

ती परममुक्ती कशी प्राप्त होते? मोक्षप्राप्तीसाठी (१) आपल्या हृदयात असलेल्या चिद्रूप अंतर्लिंगाचे ध्यान करणे (२) आत्मविद्या प्राप्तीसाठी स्वाध्याय करणे आणि (३) गुरूची सेवा करणे. ही मुख्य तीन साधने कारणीभूत होतात. त्यांपैकी अंतर्लिंगाचे अनुसंधान हे एक असल्यामुळे त्यायोगे आत्मलाभरूपी मोक्षप्राप्ती होऊ शकते. या ससारात आत्मलाभापेक्षा दुसरा कोणताही श्रेष्ठ लाभ नाही असे श्रुतिवचनही आहे.।।४३।।

तस्मादचञ्चलहृदयानां शिवयोगिनामन्तर्लिङ्गानुसन्धान एव रुचिर्न बाह्य इत्याह—

वैराग्यज्ञानयुक्तानां योगिनां स्थिरचेतसाम्।
अन्तर्लिङ्गानुसन्धाने रुचिर्बाह्ये न जायते।।४४।।

स्पष्टम्।।४४।।

म्हणून स्थिरचित्त अशा शिवयोग्यांना अतर्लिंगानुसधानातच रुची असते असे सागतात—वैराग्यसपन्न व ज्ञानसंपन्न असे जे स्थिर चित्ताचे योगी आहेत, त्यांची आवड बाह्यलिगाच्या अनुसधानापेक्षा अंतर्लिंगाच्या अनुसंधानात अधिक असते.।।४४।।

किमुत परिपक्वब्रह्मादयोऽपि सुज्ञानयोगेनैव ज्योतिर्लिङ्गं पश्यन्तीत्याह—

ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च वासवाद्याश्च लोकपाः।
मुनयः सिद्धगन्धर्वा दानवा मानवास्तथा।।४५।।
सर्वे च ज्ञानयोगेन सर्वकारणकारणम्।
पश्यन्ति हृदये लिङ्गं परमानन्दलक्षणम्।।४६।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अत्र "ब्रह्मविष्णुरुद्रेन्द्रास्ते संप्रसूयन्ते" इति श्रुतेः कार्यकोटिप्रविष्टरुद्रो विवक्षितः, न तु त्रिमूर्तिकारणीभूतमहालिङ्गरुद्र इत्यनुसन्धेयम्।।४५-४६।।

केवळ शिवयोगीच नव्हे तर ब्रह्मादी देवदेवताही अंतर्लिंगाचे अनुसंधान करतात, असे सांगतात—ब्रह्मा, विष्णू, रुद्र इत्यादी सुरगण व लोकपाल, तसेच मुनी, सिद्ध, गंधर्व, दानव, मानव इत्यादी सर्व सकल कारणांचे कारण असलेल्या परमानदस्वरूपी लिंगास आपल्या हृदयात ज्ञानदृष्टीने पाहातात. येथे आलेल्या रुद्र शब्दाचा अर्थ कार्यकर्त्या त्रिमूर्तीपैकी संहारकर्ता रुद्र असा घ्यावा. या तिन्ही देवतांचा मूल कारणीभूत जो महालिंगरूप रुद्र तो हा नव्हे असे समजावे.।।४५--४६।।

तस्मात् सांसारिकदुःखनिवृत्त्यर्थमन्तर्लिङ्गानुसन्धानमेव कुर्यादित्याह—

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन शाङ्करं लिङ्गमुत्तमम्।
अन्तर्विभावयेद् विद्वानशेषक्लेशमुक्तये।।४७।।

स्पष्टम्।।४७।।

आता अंतर्लिंगाचेच अनुसधान का करावे ते सांगतात—अविद्या, राग, द्वेष, अस्मिता आणि अभिनिवेश या पंचक्लेशाची संपूर्ण निवृत्ती अंतर्लिंगाच्या अनुसधानानेच होऊ शकते, म्हणून विद्वान शिवभक्ताने सर्वप्रयत्नपूर्वक अंतर्लिंगाचेच अनुसधान करावे.।।४७।।

नन्वेवं चेद् बाह्यलिङ्गधारणं किमर्थमित्याकाङ्क्षायामाह—

अन्तर्धारयितुं लिङ्गमशक्तः शक्त एव वा।
बाह्यं च धारयेल्लिङ्गं तद्रूपमिति निश्चयात्।।४८।।

अन्तर्लिङ्गधारणे यद्यशक्तः शक्त एव वा, स्फटिकशिलादिनिर्मित-बाह्यलिङ्गं तद्रूपमिति हृदयकमलाश्रितचिन्मयमहालिङ्गस्वरूपवदिति निश्चयात् सन्देहराहित्येन धारयेत्, "बिन्दुस्वरूपामलमूलपीठं नादस्वरूपं स्फुरदूर्ध्वपीठम्। कलात्मतिर्यग्गतगोमुखाढ्यं चिद्रूपलिङ्गं हृदयाब्जसंस्थम्।।" इति शिवालोकवचनात् तद्रूपबाह्यलिङ्गमन्तर्लिङ्गस्मरणार्थं वीरशैवो धारयेदित्यर्थः।।४८।।

असे असेल तर बाह्यलिंगधारणेचे प्रयोजन कोणते? याचे उत्तर असे की, अंतर्लिंगधारणेमध्ये शिवभक्त समर्थ असो वा

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

असमर्थ असो त्याने स्फटिकादिनिर्मित इष्टलिंग हे हृदयकमलामध्ये स्थित असलेल्या चिन्मय अशा महालिंगाचे स्वरूपच आहे अशा निश्चयाने धारण करावे. 'ज्याचे मूलपीठ हे बिंदुस्वरूप, ऊर्ध्वपीठ हे नादस्वरूप व गोमुख हे कलास्वरूप आहे, असे चिद्रूप लिंग हृदयकमलामध्ये असते' असे शिवालोकवचनात म्हटले आहे. वीरशैवाने अंतर्लिंगाच्या स्मरणाकरिता तत्स्वरूप बाह्य (इष्ट) लिगाचे धारण अवश्य करावे.।।४८।।

अथ महालिङ्गभेदं निरूपयति—

लिङ्गं तु त्रिविधं प्रोक्तं स्थूलं सूक्ष्मं परात्परम्।
इष्टलिङ्गमिदं स्थूलं यद्बाह्ये धार्यते तनौ।।४९।।
प्राणलिङ्गमिदं सूक्ष्मं यदन्तर्भावनामयम्।
परात्परं तु यत्प्रोक्तं तृप्तिलिङ्गं तदुच्यते।।५०।।

लिङ्गं तु महालिङ्गमित्यर्थः, तत् स्थूलं सूक्ष्मं परात्परमिति त्रिविधम्। तत्र यद्बाह्ये तनौ धार्यते तदिदमिष्टलिङ्गं स्थूलम्। यद् यल्लिङ्गमन्तः हृदयकमले भावनामयं सन्मात्रभावनारूपं तत् प्राणलिङ्गं सूक्ष्मम्, यद् यल्लिङ्गं परात्परमिति प्रोक्तं तत् तृप्तिलिङ्गमित्युच्यत इत्यर्थः।।४९-५०।।

आता लिंगाचे भेद सांगतात—लिगाचे तीन भेद १, स्थूल, २, सूक्ष्म, व ३, परात्पर (भाव). यांपैकी स्थूल असे जे इष्टलिंग आहे ते बाह्य शरीरावर धारण करावे. हृदयात भावनात्मक जे सूक्ष्मलिंग आहे ते प्राणलिंग होय. परात्पर असे जे लिंग ते तृप्तिलिग (अथवा भावलिंग) होय.।।४९-५०।।

नन्विदं स्थूललिङ्गं किमर्थं धारणीयमित्यत्राह—

भावनातीतमव्यक्तं परब्रह्म शिवाभिधम्।
इष्टलिङ्गमिदं साक्षादनिष्टपरिहारतः।।
धारयेदवधानेन शरीरे सर्वदा बुधः।।५१।।

अव्यक्तं रूपाद्यभावादबाह्येन्द्रियगोचरम्, समलमानसवृत्त्यगम्यत्वाद् भावनातीतं शिवाभिधं परब्रह्म निगमागमप्रसिद्धशिवाख्यपरब्रह्मैव, अनिष्ट-परिहारतः संसारपाशलक्षणानिष्टपरिहारतः, इष्टरूपपरात्परमुक्तिप्रदानतः, साक्षात् प्रत्यक्षीभूतेष्टलिङ्गमिदम्— "इष्टमूर्जं तपसानुयच्छत" इत्यथर्वशिरः-

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

साक्षात् प्रत्यक्षीभूतेष्टलिङ्गमिदम्– "इष्टमूर्जं तपसानुयच्छत" इत्यथर्वशिरःसिद्धं लिङ्गं बुधो निगमागमनिपुणः, शरीरे सावधानेन सदा धारयेदित्यर्थः।।५१।।

स्थूललिग अथवा इष्टलिंग कशासाठी धारण करावे? याचे उत्तर असे की, अव्यक्त, भावनातीत व निगमागमांत शिव या नामाने प्रसिद्ध असे जे परब्रह्म तेच इष्टलिंग असून ते संसारपाशरूपी अनिष्टाचा नाश करणारे व इष्ट अशा परमुक्तीचा लाभ करून देणारे आहे. असे इष्टलिंग ज्ञानी लोकांनी आपल्या शरीरावर सावधानतेने सदैव धारण करावे. इष्टलिंग शब्दाचा हाच अर्थ अथर्व श्रुतीतही सागितलेला आहे.।।५१।।

अथेदमिष्टलिङ्गं शरीरे कुत्र धारणीयमित्यत्राह–

मूर्ध्नि वा कण्ठदेशे वा कक्षे वक्षःस्थलेऽपि वा।
कुक्षौ हस्तस्थले वापि धारयेल्लिङ्गमैश्वरम्।।५२।।

स्पष्टम्।।५२।।

आता इष्टलिंग शरीरावर कोठे धारण करावे, याविषयी सागतात– इष्टलिंग मस्तकावर, गळ्यात, काखेत, वक्षस्थलावर, पोटावर अथवा हातात धारण करावे.।।५२।।

अथ निषेधस्थानमाह–

नाभेरधस्ताल्लिङ्गस्य धारणं पापकारणम्।
जटाग्रे त्रिकभागे च मलस्थाने न धारयेत्।।५३।।

त्रिकभागः पृष्ठभाग इत्यर्थः। शिष्टं स्पष्टम्।।५३।।

इष्टलिंग कोठे धारण करू नये याविषयी असे सांगतात– नाभीच्या खाली, जटेच्यावर, पाठीवर व मलस्थानी लिंगधारण करू नये. केल्यास पापकारक आहे.।।५३।।

अथेदं लिङ्गं कुत्र पूजनीयमित्यत्राह–

लिङ्गधारी सदा शुद्धो निजलिङ्गं मनोरमम्।
अर्चयेद् गन्धपुष्पाद्यैः करपीठे समाहितः ।।५४।।

स्पष्टम्।।५४।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इष्टलिंग कोठे ठेवून पूजा करावी? इष्टलिंग धारण करणारा शिवभक्त सदा परिशुद्ध असतो. त्याने मनोहर अशा इष्टलिंगाला आपल्या करपीठावर ठेवून त्याची गंधपुष्पादी सामग्रीने, एकाग्र होऊन पूजा करावी.।।५४।।

बाह्यपीठार्चनादेतत् करपीठार्चनं वरम्।
सर्वेषां वीरशैवानां मुमुक्षूणां निरन्तरम्।।५५।।

स्पष्टम्।।५५।।

मुक्तीची इच्छा बाळगणाऱ्या सर्व वीरशैवांना बाह्य पीठावर लिंग ठेवून पूजा करण्यापेक्षा करपीठावर लिंग ठेवून निरंतर पूजा करणे श्रेयस्कर आहे.।।५५।।

अथेदं लिङ्गधारणं कैरङ्गीकृतमित्यत्राह—

ब्रह्मविष्ण्वादयो देवा मुनयो गौतमादयः।
धारयन्ति सदा लिङ्गमुत्तमाङ्गे विशेषतः।।५६।।
लक्ष्म्यादिशक्तयः सर्वाः शिवभक्तिविभाविताः।
धारयन्त्यलिकाग्रेषु शिवलिङ्गमहर्निशम्।।५७।।

अनेन स्त्रीपुरुषयोरपि लिङ्गधारणमुक्तं भवति।।५६-५७।।

अशी बाह्य लिंगधारणा कोणी कोणी केलेली आहे? याचे उत्तर असे की, ब्रह्मा, विष्णू इत्यादी देवगण, गौतमादी मुनिगण हे आपल्या मस्तकावर विशेषत्वाने सदैव लिंगधारण करतात. याशिवाय शिवभक्तिसंपन्न अशा लक्ष्मी इ. शक्तीही आपल्या मस्तकावर नेहमी शिवलिंग धारण करतात. अशा रीतीने पुरुष असो की स्त्री, सर्वांनीच लिंग धारण करावे हे सिद्ध होते.।।५६।।५७।।

अथेदं लिङ्गधारणं कुत्रोक्तमित्यत्राह—

वेदशास्त्रपुराणेषु कामिकाद्यागमेषु च।
लिङ्गधारणमाख्यातं वीरशैवस्य निश्चयात्।।५८।।

या बाह्यलिंगधारण-सिद्धांताचे प्रतिपादन कोठे केलेले आहे? याचे स्पष्टीकरण असे की, इष्टलिंग शरीरावर धारण करण्याचा

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सिद्धात वेद, शास्त्र, पुराणे व कामिकादी अठ्ठावीस आगमग्रंथांतून स्पष्टपणे प्रतिपादन केलेला आहे:।।५८।।

अथ श्रुतौ कुत्र प्रसिद्धमित्यत्राह—

ऋगित्याह पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते।
तस्मात्पवित्रं तल्लिङ्गं धार्यं शैवमनामयम्।।५९।।

"पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते" इति ऋग्वेद आह। भो ब्रह्मणस्पते ते तव लिङ्गमिति शेषः, विततं शिवादिभूम्यन्तं विस्तृतम्, पवित्रं पावनम्, तस्माद् अनामयं दोषरहितं शैवं तल्लिङ्गं धारयेदित्यर्थः।।५९।।

तरी, कोणत्या श्रुतीमध्ये लिगधारणेचा उल्लेख आहे? याचे उत्तर असे की, 'पवित्रंते' या ऋग्वेदाच्या मंत्रात शिवाला ब्रह्मणस्पती अर्थात् चतुर्मुख ब्रह्म्याचा अधिपती अशा अर्थाने संबोधिले आहे. 'हे ब्रह्मणस्पते, तुझे जे लिंगरूप आहे तें शिवादिभूम्यंत छत्तीस तत्त्वात व्यापलेले असून ते अत्यंत पवित्र आहे. म्हणून अशा दोषरहित लिगरूपी तुला शरीरावर धारण करावे' असे ऋग्वेदात सांगितले आहे.।।५९।।

ननु किमस्य धारणेनेत्याह—

ब्रह्मेति लिङ्गमाख्यातं ब्रह्मणः पतिरीश्वरः।
पवित्रं तद्धि विख्यातं तत्सम्पर्कात्तनुः शुचिः।।६०।।

तत्पवित्रमिति तत्संपर्कात् तनुः शरीरं पवित्रं भवतीत्यर्थः।।६०।।

ते लिंग परब्रह्म नावाने प्रसिद्ध असून ते चतुर्मुख ब्रह्म्याचा अधिपतीही आहे. शिवाय ते अत्यंत पवित्र असल्याने त्याच्या संपर्काने शरीर शुद्ध होते. म्हणून शरीरावर सदैव लिंगधारण करावे.।।६०।।

अथैतादृशं लिङ्गं दीक्षया रहितो न धारयेदित्याह—

अतप्ततनुरज्ञो वै आमः संस्कारवर्जितः।
दीक्षया रहितः साक्षान्नाप्नुयाल्लिङ्गमुत्तमम्।।६१।।

अतप्ततनुः तपोरहितदेहः, आमः अपरिपक्वः, अवैराग्यशील इत्यर्थः, संस्कारवर्जितः शिवसंस्काररहितः, अज्ञः नित्यानित्यवस्तुविवेकशून्यः, दीक्षया

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

रहितः गुरुकारुण्यरहितः, साक्षात् प्रत्यक्षम् उत्तमं श्रेष्ठलिङ्गं नाप्नुयाद् न धारयेत्। अस्मिन्नर्थे— "अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते" इति श्रुतिः। तद् आम इति विच्छेदः, तत् तल्लिङ्गमित्यर्थः। अनेन सुप्रसन्नेन गुरुणा दत्तं लिङ्गमेव भोगमोक्षप्रदम्, स्वेच्छया धृतं विफलमिति सूचितम्।।६१।।

असे हे लिंग दीक्षेशिवाय धारण करू नये, हे स्पष्ट करतात—ज्याने तपश्चर्या केलेली नाही, ज्याचे अंतःकरण परिपक्व झालेले नाही अर्थात् ज्याला वैराग्य प्राप्त झालेले नाही, ज्याच्यावर शिवसंस्कार झालेले नाहीत, नित्यानित्य वस्तूंचा विवेक ज्याला नाही, ज्याच्यावर गुरुकारुण्यरूप दीक्षासंस्कार झालेला नाही, त्याने स्वतःच ते उत्तम असे शिवलिंग आपण होऊन शरीरावर धारण करू नये. म्हणजेच गुरूकडून दीक्षेद्वारा प्राप्त झालेल्या लिंगधारणेनेच भोग आणि मोक्षाची प्राप्ती होते, अन्यथा होत नाही.।।६१।।

अथ लिङ्गधारणे याजुषी श्रुतिरप्यस्तीत्याह—

अघोरा पापकाशीति या ते रुद्र शिवा तनूः।
यजुषा गीयते यस्मात् तस्माच्छैवोऽघवर्जितः।।६२।।

"या ते रुद्र शिवा तनूरघोरा पापकाशिनी" इति श्रीरुद्रश्रुतिः। अस्याः श्रुतेरयमर्थः— भो रुद्र, ते तव, शिवा मङ्गलस्वरूपा, या तनूः, "लिङ्गं तु शिवयोर्देहः" इत्यागमोक्तेः शिवशक्त्या(त्मिका) लिङ्गमूर्तिः, सा अघोरा शान्ता, अपापकाशी अपापेषु भक्तेषु काशत इति अपापकाशी, इष्टलिङ्गरूपेण तत्र स्थिता, इति यजुषा यजुर्वेदेन, यस्माद् गीयते, तस्मात् शैवः शिवलिङ्गसंबन्धी, अघवर्जितः पापरहित इत्यर्थः।।६२।।

आता यजुर्वेदातही लिंगधारणा प्रतिपादिली असल्याचे सांगतात—लिंगधारणेबद्दल यजुर्वेदात असे म्हटले आहे की, 'हे रुद्रा, तुझे शरीर मंगलस्वरूप व शांत आहे. लिंगमूर्ती म्हणजे शिवभक्तीचा देह होयं. ती निष्पाप भक्तांच्या मनात विराजमान असते. इष्टलिंग रूपात ती स्थित आहे'. म्हणून इष्टलिंग धारण करणारा वीरशैव निष्पाप असतो.।।६२।।

अथ लिङ्गधारणस्थलं समाप्य तत्सम्पन्नस्य भस्मधारणस्थलं सूचयति—

यो लिङ्गधारी नियतान्तरात्मा नित्यं शिवाराधनबद्धचित्तः।
स धारयेत् सर्वमलापहत्यै भस्मामलं चारु यथाप्रयोगम्।।६३।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इति श्रीवीरशैवधर्मनिर्णये सिद्धान्तशिखामणौ भक्तस्थले
गुरुकारुण्यलिङ्गधारणप्रसङ्गो नाम
षष्ठः परिच्छेदः समाप्तः।।

यः पुरुषो लिङ्गधारी लिङ्गधारणसम्पन्नः, नियतान्तरात्मा निर्मलान्तःकरणः, नित्यं शिवपूजाबद्धचित्तः, स शिवलिङ्गधारकः सर्वमलापहत्यै सर्वदोषनिवृत्त्यै चारु मनोहरम् अमलं निर्मलं भस्म यथाप्रयोगं शास्त्रोक्तप्रकारेण धारयेदित्यर्थः।।६३।।

श्रीमत्पदवाक्यप्रमाणपारावारधुरीणश्रीमरितोण्टदार्येण विरचितायां तत्त्वप्रदीपिकाख्यायां सिद्धान्तशिखामणिव्याख्यायां भक्तस्थले गुरुकारुण्यलिङ्गधारणप्रसङ्गो नाम षष्ठः परिच्छेदः समाप्तः।।

आता लिंगधारणस्थलाची समाप्ती करून लिंगधारी भक्ताच्या भस्मधारणस्थलाची सूचना करतात– लिगधारी, निर्मल अंतःकरणाचा, नित्य शिवपूजेत आसक्ती बाळगणारा, अशा शिवलिंगधारी भक्ताने आपल्या सर्व दोषांचे परिमार्जन होण्यासाठी मनोहर आणि निर्मल असे भस्म शास्त्रोक्त पद्धतीने धारण केले पाहिजे.।।६३।।

सिद्धात शिखामणीतील भक्तस्थलांतर्गत गुरुकारुण्यलिंगधारण
प्रसंग नावाचा सहावा परिच्छेद संपला.
सहावा परिच्छेद समाप्त।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सप्तमः परिच्छेदः

भस्मधारणस्थलम् .

अथ "भूत्यै न प्रमुदितव्यम्" इति श्रुतिप्रसिद्धभस्मधारणस्थलं निरूपयति श्रीरेणुकः। अत्रादौ निरुपाधिकभस्मधारणं सूत्रद्वयेन निरूपयति—

भस्मधारणसंयुक्तः पवित्रो नियताशयः।
शिवाभिधानं यत्प्रोक्तं भासनाद्भसितं तथा।।१।।
महाभस्मेति संचित्य महादेवं प्रभामयम्।
वर्तन्ते ये महाभागा मुख्यास्ते भस्मधारिणः।।२।।

भस्मधारणसंयुक्तः शिवलिङ्गधारकः, नियताशयः—"भस्मध्यानात् संधानं भवति, भस्मध्यानात् पञ्चाक्षरीस्मरणं भवति, तस्माद् ध्यानात् स्थाणुत्वं च गच्छति। स एष भस्मज्योतिः स एष भस्मज्योतिः" इति भस्मजाबालश्रुतेर्भस्मज्योतिर्लिङ्गमयमिति नियमितचित्तः सन्, पवित्रः शुद्धो यद्भस्मज्योतिर्लिङ्गं शिवाभिधानं परशिवपरब्रह्माभिधानं सत् प्रोक्तमिति प्रभामयं ज्योतिर्लिङ्गस्वरूपम्, तं महादेवं भासनात् प्रकाशनाद् भसितं भसितमिति तथा महाभस्मेति संचित्य महाभागाः श्रेष्ठा ये केचिल्लिङ्गधारका वर्तन्ते, ते मुख्या मुख्यभस्मधारिणो निरुपाधिकभस्मधारिण इत्यर्थः।।१-२।।

आता श्री रेणुकाचार्य श्रुतिस्मृतिप्रसिद्ध भस्मधारणस्थलाचे निरूपण सुरू करून प्रथम निरुपाधिक भस्मधारणाचे दोन श्लोकांत वर्णन करतात—लिंगधारी भक्तांनी भस्म धारण केल्याने ते पवित्र आणि निर्मल चित्ताचे होतात. जाबालश्रुतीत शिवाला भस्म असे म्हटले आहे. त्यामुळे भस्मध्यानाने शिवध्यान आणि पंचाक्षरी मंत्राचे स्मरण केल्यासारखे होते. तसेच ह्या भस्माच्या ध्यानानेच साधक शिवस्वरूप होतो. आपल्या प्रकाशाने जगाला प्रकाशित केल्यामुळे परमात्म्याला भसित असे म्हणतात. असा प्रकाशमान असलेल्या महादेवाला महाभस्म असे समजून जे त्याचे निरंतर ध्यान करीत असतात तेच श्रेष्ठ असे निरुपाधिक भस्मधारी होत.।।१ - २।।

अथ सोपाधिकभस्मस्वरूपं निरूपयति—

शिवाग्न्यादिसमुत्पन्नं मन्त्रन्यासादियोगतः।
तदुपाधिकमित्याहुर्भस्मतन्त्रविशारदाः।।३।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

यद्भस्म मन्त्रन्यासादियोगतः पञ्चब्रह्ममन्त्रन्यासादिसम्बन्धात् शिवाग्न्यादिसमुत्पन्नं शिवमन्त्रसंस्कृताग्निसमुत्पन्नं भवति, तत् तद्भस्म तन्त्रविशारदाः शिवागमप्रवीणा उपाधिकं भस्म सोपाधिकं भस्मेत्याहुरित्यर्थः।।३।।

आता सोपाधिक भस्माचे स्वरूप सांगतात—जे भस्म पंचब्रह्म, मंत्र व न्यास यांच्या योगाने व शिवमंत्रामुळे सुसस्कृत झालेल्या अग्नीपासून निर्माण झाले आहे, त्या भस्माला तंत्रविशारद सोपाधिक भस्म या नावाने ओळखतात.।।३१।

अथास्य भस्मनः कारणभेदेन नामपञ्चकमस्तीत्याह—

विभूतिर्भसितं भस्म क्षारं रक्षेति भस्मनः।
एतानि पञ्चनामानि हेतुभिः पञ्चभिर्भृशम्।।४।।

स्पष्टम्।। ४।।

कारणभेदामुळे त्या सोपाधिक भस्माची पाच नावे होतात, ती अशी—१, विभूती, २, भसित, ३, भस्म, ४, क्षार व ५, रक्षा.।।४।।

तत्कारणमन्वर्थनाम कृत्वा कथयति—

विभूतिर्भूतिहेतुत्वाद् भसितं तत्त्वभासनात्।
पापानां भर्त्सनाद्भस्म क्षरणात् क्षारमापदाम्।।५।।
रक्षणात् सर्वभूतेभ्यो रक्षेति परिगीयते।

अणिमाद्यष्टैश्वर्यकारणत्वाद् विभूतिः, शिवतत्त्वप्रकाशनाद्भसितम्, पापानां मनोवाक्कायजन्यानां भर्त्सनाद् भयोत्पादनाद्भस्म, आपदां तापत्रयोत्पन्नविपदां क्षारणात् क्षयीकरणात् क्षारम्, सर्वभूतेभ्यो ग्रहयक्षादिभ्यो रक्षेति परिगीयत इत्यर्थः।।५।।

आता त्या नावांची अन्वर्थकता स्पष्ट करतात—भस्म धारणामुळे अणिमादी आठ ऐश्वर्यांची प्राप्ती होते म्हणून त्यास विभूती, शिवतत्त्वाचे प्रकाशन होते म्हणून भसित, मनोवाक्कायजन्य अशा सर्व पापांना भयोत्पादक असल्याने भस्म, तापत्रयाचा क्षय होतो म्हणून क्षार आणि भूतप्रेतादी व अनिष्ट ग्रहांपासून रक्षण होते म्हणून रक्षा असे म्हणतात.।।५।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

नन्वेवंविधक्रियाभेदः किं निबन्धन इत्यत्र गोमूलक इत्याह—

नन्दा भद्रा च सुरभिः सुशीला सुमनास्तथा।।६।।
पञ्च गावो विभोर्जाताः सद्योजातादिवक्त्रतः।

शिवस्य सद्योजातमुखान्नन्दा, वामदेववदनाद् भद्रा, अघोरास्यात् सुरभिः, तत्पुरुषवक्त्रात् सुशीला, ईशानाननात् सुमनाः। एवं पञ्च गावो जाताः। तत्कृतोऽयं कार्यभेद इत्यर्थः।।६।।

अशा प्रकारे भिन्न क्रियामुळे झालेल्या भेदाची कारणे कोणती? याचे उत्तर देतात—सर्वसमर्थ अशा शिवाची पाच मुखे आहेत. त्या मुखापासून पाच दिव्य गाई उत्पन्न झाल्या. सद्योजात मुखापासून नंदा, वामदेव मुखापासून भद्रा, अघोर मुखापासून सुरभी, तत्पुरुष मुखापासून सुशीला व ईशान मुखापासून सुमना अशा त्या होत.।।६।।

तर्हि किमासां रूपमित्यत्राह—

कपिला कृष्णा च धवला धूम्रा रक्ता तथैव च।।७।।
नन्दादीनां गवां वर्णाः क्रमेण परिकीर्तिताः।

तथैव क्रमेणेति सम्बन्धः।।७।।

त्यांचे रंग कोणते? त्यांची रूपे अनुक्रमे अशी होत. कपिला, कृष्णा, धवला, धूम्रा व रक्ता. नंदा कपिल वर्णाची, भद्रा काळी, सुरभी पांढरी, सुशीला धुरकट रंगाची व सुमना लाल रंगाची अशा त्या आहेत.।।७।।

अथ कया गवा कीदृशं भस्मोत्पन्नमित्यत्राह बृहज्जाबालश्रुत्यर्थमेव—

सद्योजाताद्विभूतिश्च वामाद्भसितमेव च।।८।।
अघोराद्भस्म संजातं तत्पुरुषात्क्षारनाम च।
रक्षा चेशानवक्त्राच्च नन्दादिद्वारतोऽभवत्।।९।।

सद्योजातमुखोत्पन्ननन्दया विभूतिः, वामदेवमुखोद्भूतभद्रया भसितम्, अघोरमुखसंजातसुरभिगवा भस्म, तत्पुरुषमुखाविर्भूतसुशीलया क्षारम्, ईशानमुखनिर्गतसुमनसा रक्षा, अभवदासीदित्यर्थः।।८-९।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कोणत्या गाईच्या गोमयापासून कोणते भस्म उत्पन्न होते ते बृहज्जाबाल स्मृतीला अनुसरून सांगतात—सद्योजात मुखापासून उत्पन्न झालेल्या कपिलवर्णी नंदेच्या गोमयापासून विभूती, वामदेव मुखापासून उत्पन्न झालेल्या कृष्णवर्णी भद्रेच्या गोमयापासून भसित, अघोर मुखापासून उत्पन्न झालेल्या धवलवर्णी सुरभीच्या गोमयापासून भस्म, तत्पुरुष मुखापासून उत्पन्न झालेल्या धूम्रवर्णी सुशीलेच्या गोमयापासून क्षार आणि ईशान मुखापासून उत्पन्न झालेल्या रक्तवर्णी सुमनेच्या गोमयापासून रक्षा अशी पाच प्रकारची भस्मे होतात.।।८-९।।

अथैषां विनियोगमाह—

धारयेन्नित्यकार्येषु विभूतिं च प्रयत्नतः।
नैमित्तिकेषु भसितं क्षारं काम्येषु सर्वदा।।१०।।
प्रायश्चित्तेषु सर्वेषु भस्म नाम यथाविधि।
रक्षा च मोक्षकार्येषु प्रयोक्तव्या सदा बुधैः।।११।।

बुधैः वीरशैवमतप्रविष्टविद्वज्जनैः प्रयोक्तव्यं धार्यमित्यर्थः। शिष्टं स्पष्टम् ।।१०-११।।

आता त्या भस्मांचा विनियोग सांगतात—नित्य कर्माच्या वेळी विभूती, नैमित्तिक कर्माच्या वेळी भसित, काम्यकार्याच्या वेळी क्षार, प्रायश्चित्त घ्यावयाच्या वेळी भस्म आणि मोक्षप्राप्तीकरिता रक्षा, अशी भस्मे वीरशैवमताच्या विशिष्ट विद्वानांनी इच्छित हेतूसाठी प्रयत्नपूर्वक धारण करावीत.।।१०-११।।

अथैवंविधभस्मनां वर्णमाह—

नन्दादीनां तु ये वर्णाः कपिलाद्याः प्रकीर्तिताः।
त एव वर्णा विख्याता भूत्यादीनां यथाक्रमम्।।१२।।

स्पष्टम्।।१२।।

त्या त्या गाईच्या रंगाप्रमाणे भस्माचे वर्ण असतात—विभूती-कपिलवर्ण, भसित-काळा, भस्म-पाढरा, क्षार-धुरकट आणि रक्षा-लाल असे पाच भस्मांचे पाच रंग असतात.।।१२।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अथैतद्भस्मोत्पत्तिश्चतुर्विधेत्याह—

भस्मोत्पादनमुद्दिष्टं चतुर्धा तन्त्रवेदिभिः।
कल्पं चैवानुकल्पं तूपकल्पमकल्पकम्।।१३।।
एषामादिममुत्कृष्टमन्यत् सर्वमभावतः।

कल्पानुकल्पोपकल्पाकल्पाख्यचतुर्विधभस्मस्वादिमं प्राथमिकं कल्पं भस्मोत्कृष्टम्, अन्यत् सर्वं शिष्टं त्रिविधं भस्म अभावतः कल्पभस्मालाभादङ्गीकरणीयमित्यर्थः।।१३।।

आता त्या भस्मांच्या उत्पत्तीचे प्रकार सांगतात—तंत्रविशारद लोक भस्माच्या उत्पत्तीचे कल्प, अनुकल्प, उपकल्प आणि अकल्प असे चार प्रकार सांगतात. या चारांपैकी कल्प हे अत्युत्तम होय. कल्प भस्म कदाचित् मिळाले नाही तर अन्य तीन भस्मांचा उपयोग करावा.।।१३।।

अथ तेषां स्वरूपं क्रमेण कथयति—

यथाशास्त्रोक्तविधिना गृहीत्वा गोमयं नवम्।।१४।।।
सद्येन वामदेवेन कुर्यात्पिण्डमनुत्तमम्।
शोषयेत्पुरुषेणैव दहेद् घोराच्छिवाग्निना।।१५।।
कल्पं तद्भस्म विज्ञेयमनुकल्पमथोच्यते।
वनेषु गोमयं यच्च शुष्कं चूर्णीकृतं तथा।।१६।।
दग्धं चैवानुकल्पाख्यमापणादिगतं तु यत्।
वस्त्रेणोत्तारितं भस्म गोमूत्राबद्धपिण्डितम्।।१७।।
दग्धं प्रागुक्तविधिना भवेद्भस्मोपकल्पकम्।
अन्यैरापादितं भस्माप्यकल्पमिति निश्चितम्।।१८।।

शास्त्रोक्तप्रकारेण नन्दादिभिराविर्भूतनूतनगोमयं सद्येन सद्योजातमन्त्रेणान्तरे गृहीत्वा वामदेवमन्त्रेण पिण्डीकृत्य तत्पुरुषमन्त्रेण शोषयित्वा शिवमन्त्रसंस्कृताग्निना घोरादघोरमन्त्राद् दहेद् भस्मीकुर्यादित्यर्थः। अथैशानमन्त्रेण विल्वादिपात्रे स्थापितं तद्भस्म कल्पमिति ज्ञातुं योग्यमित्यर्थः। अरण्येषु यच्छुष्कं गोमयं चूर्णीकृत्य पूर्ववद्दग्धं भस्मानुकल्पाख्यमित्यर्थः। अत्र मन्त्रत्रयलोपः। आपणादिगतं यद्भस्मास्ति तद्वस्त्रेण संशोधितं सत् पुनर्गोमूत्रेण पिण्डीकृतं सत् पश्चात् प्रागुक्तविधिना दग्धं चेदुपकल्पाख्यं

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भस्म भवेत् स्यादित्यर्थः। अन्यैः अमन्त्रज्ञैः, आपादितं संपादितं भस्म अकल्पमिति कल्पितं कथितमित्यर्थः।।१४-१८।।

आता कल्पादी भस्मे तयार करण्याची रीती क्रमशः सांगतात— नंदादी गाईचे ताजे गोमय सद्योजात मंत्राचे उच्चारण करीत, जमिनीवर न पडू देता वरच अलगद धरावे. वामदेव मंत्राचा उच्चार करीत त्या ताज्या गोमयाचे लहान लहान गोळे करावेत. तत्पुरुष मंत्राचा उच्चार करीत ते गोळे चांगले वाळवावे. त्यानंतर अघोर मंत्राचा उच्चार करीत, शिवमंत्रसंस्कृत अग्नीत जाळून त्यांचे भस्म करावे. ईशान मंत्राचे उच्चारण करीत ते भस्म बिल्व-सुवर्ण-रजतादींच्या पात्रात ठेवावे. अशा विधीने तयार केलेले ते भस्म 'कल्पभस्म' होय असे जाणावे. रानातील वाळलेले गोमय (रानशेणी) आणून त्याचे चूर्ण करून पूर्वोक्त विधीने जाळून जे भस्म तयार होते ते 'अनुकल्प' होय. या ठिकाणी 'कल्प' भस्माप्रमाणे आरंभीच्या गोमय धरणे, त्याचे गोळे करणे व वाळविणे या तीन संस्कारक्रिया नसतात. बाजारातील भस्म वस्त्रगाळ करून गोमूत्रात चांगले भिजवून त्याचे गोळे करावे व वाळलेले गोळे पूर्वोक्त विधीने जाळून तयार झालेल्या भस्मास 'उपकल्प' म्हणतात. मंत्रादी विधी न जाणणाऱ्या व्यापाऱ्याकडून आणलेले भस्म 'अकल्प' होय।।१४-१५-१६-१७-१८।।

अथैवंविधभस्मना स्नानं कुर्यादित्याह—

एष्वेकतममादाय पात्रेषु कलशादिषु।
त्रिसन्ध्यमाचरेत् स्नानं यथासंभवमेव वा।।१९।।

कलशादिपात्रेषु भिन्नतया स्थापितेष्वेषु भस्मसु, एकतमं भस्मादाय, त्रिकालमेककालं वा स्नानं कुर्यादेवेत्यर्थः।।१९।।

आता अशा भस्मांनी करावयाच्या स्नानाचे वर्णन करतात— वरीलपैकी कोणतेही एक भस्म कळशीत वा एखाद्या पात्रात घेऊन रोज विधिपूर्वक तीन वेळा भस्मस्नान करावे अथवा शक्तिप्रमाणे एक वेळ तरी अवश्य करावे।।१९।।

कथं कर्तव्यमित्यत्राह—

स्नानकाले करौ पादौ प्रक्षाल्य विमलाम्भसा।
वामहस्ततले भस्म क्षिप्त्वाच्छाद्यान्यपाणिना।।२०।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अष्टकृत्वाथ मूलेन मौनी भस्माभिमन्त्र्य च।
शिर ईशानमन्त्रेण पुरुषेण मुखं तथा।।२१।।
हृत्प्रदेशमघोरेण वामदेवेन गुह्यकम्।
पादौ सद्येन सर्वाङ्गं प्रणवेनैव सेचयेत्।।२२।।

भस्मस्नानकाले स्वच्छोदकेन हस्तौ पादौ प्रक्षाल्य वामकरतले भस्म संस्थाप्य दक्षिणपाणिनाऽऽच्छाद्य दक्षिणोरौ निवेश्य "मौनी भस्माभिमन्त्रयेत्" इति शिवागमवचनाद् मौनी भूत्वा मूलेनाष्टवारमभिमन्त्र्य शिरोमुखहृदयनाभिपादेषु प्रणतिपूर्वकैरीशानादिमन्त्रैरभ्युक्षयेत् प्रणवेन सर्वाङ्गं प्रोक्षयेदित्यर्थः।।२०-२२।।

भस्मस्नान कसे करावे? तर, भस्मस्नानाच्या वेळी स्वच्छ पाण्याने हातपाय धुवून आपल्या उजव्या माडीवर डावा हात ठेवावा आणि त्यात भस्म ठेवून त्यावर उजवा हात झाकावा. मौन धारण करून मूळमंत्राने आठ वेळा भस्म अभिमंत्रित करावे. नतर ते ईशान मंत्राने मस्तकावर, तत्पुरुषाने मुखावर, अघोर मंत्राने हृदयावर, वामदेव मंत्राने गुह्यस्थानावर, सद्योजात मंत्राने दोन्ही पायावर आणि ॐकार मंत्राचा जप करीत सर्वांगावर त्याचे सिंचन करावे. ह्यालाच भस्मस्नान म्हणतात.।।२० - २१ - २२।।

अथेदं जलस्नानादुत्कृष्टमित्याह—

भस्मना विहितं स्नानमिदमाग्नेयमुत्तमम्।
स्नानेषु वारुणाद्येषु मुख्यमेतन्मलापहम्।।२३।।

गङ्गोदकदिव्यवायव्यादिस्नानेषु भस्मना विहितं स्नानमिदमाग्नेयमुत्तमम्, अग्नेः सर्वभस्मकत्वेनैतदाग्नेयस्नानम्, सकलमलापहमिति मुख्यमित्यर्थः।।२३।।

जलादी सप्तस्नानांत भस्मस्नानाचे श्रेष्ठत्व आता प्रतिपादन करतात—धर्मशास्त्रात मांत्र, भौम, आग्नेय, वायव्य, दिव्य, वारुण आणि मानस या नावांची सप्तविध स्नाने सांगितली आहेत. 'आपोहिष्ठा' इत्यादि वैदिक मंत्रपठण करीत मस्तकावर जलप्रोक्षण करून घेणे हे मांत्र स्नान, गंगादी पवित्र नद्यांतील मातीचा टिळा गंधासारखा मस्तकावर लावून घेणे हे भौमस्नान, यालाच पार्थिव स्नान असेही म्हणतात. पूर्वी सांगितलेल्या भस्माच्या स्नानालाच आग्नेय स्नान म्हणतात. जसे अग्नीस सर्व

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

दोष जाळून टाकण्याचे सामर्थ्य असते, तसे या भस्मस्नानातही असल्यामुळे ह्यास आग्नेय स्नान म्हणतात. संध्याकाळी घरी परतणाऱ्या गाईच्या खुरांनी उडालेल्या धुळीने मिश्र अशा वायूच्या स्पर्शाने होणाऱ्या स्नानास वायव्य स्नान म्हणतात. ऊन असताना पडत असलेल्या पावसाच्या पाण्यात केलेल्या स्नानास दिव्य स्नान म्हणतात. पवित्र नदी अथवा सरोवरात केलेल्या स्नानास वारुण स्नान म्हणतात. आणि मनात सतत भगवताचे स्मरण करीत राहाणे यास मानस स्नान म्हणतात. अशा रीतीने शास्त्रात वर्णिलेल्या सात स्नानांपैकी मांत्र, भौम, वायव्य, दिव्य आणि वारुण या स्नानांमुळे केवळ बाह्य मलांचा दोष नाहीसा होतो तर मानसस्नानाने केवळ आतरिक मल नाहीसा होतो. परन्तु आग्नेय नावाच्या या भस्मस्नानामुळे मात्र अंतर्बाह्य सर्व दोष नाहीसे होतात. म्हणून हे भस्मस्नान सर्व स्नानांत श्रेष्ठ मानले आहे.।।२३।।

ननु जलादिस्नानस्य सकलमलनिवर्तकत्वं नास्ति वेत्यत्राह—

भस्मस्नानवतां पुंसां यथायोगं दिने दिने।
वारुणाद्यैरलं स्नानैर्बाह्यदोषापहारिभिः।।२४।।

यथायोगं शास्त्रोक्तप्रकारमनतिक्रम्य प्रतिदिनं भस्मस्नानवतां पुंसां बाह्याभ्यन्तरमलक्षयाद् भस्मनो ज्ञानाङ्गत्वाद् बाह्यमलमात्रनिवर्तकैर्जलादि-स्नानैरलं किं प्रयोजनमित्यर्थः।।२४।।

प्रतिदिनी भस्मस्नान करणाऱ्यांना इतर स्नानांची आवश्यकता नसल्याचे सागतात—शास्त्रोक्त पद्धतीने प्रतिदिनी भस्मस्नान करणाऱ्या शिवभक्ताच्या बाह्य व आभ्यंतर मलांचा नाश होतो भस्मस्नान हे ज्ञानाचे एक अंग मानले आहे, म्हणून असे भस्मस्नान करणाऱ्यांना केवळ बाह्य मलाचाच नाश करणाऱ्या जलादी स्नानांचे काही प्रयोजन नसते.।।२४।।

अत एव यतिभिर्जलस्नानादाग्नेयमेव श्रेष्ठमिति भस्मस्नानमेव विधीयत इत्याह—

आग्नेयं भस्मना स्नानं यतिभिस्तु विधीयते।
आर्द्रस्नानात् परं भस्म आर्द्रे जन्तुवधो ध्रुवम्।।२५।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भस्मना स्नानमाग्नेयमिति यतिभिर्विधीयते, वह्नेः प्रकाशकत्वेन ज्ञानप्रदत्वात्। भस्मस्नानं (यतिभिः?) आर्द्रस्नानात्परं श्रेष्ठम्। आर्द्रे जलस्नाने जन्तुवध इति ध्रुवं निश्चयः, जलचरप्राणिपीडनया शैत्येन च प्राणिहिंसाकरमित्यर्थः, अत्र तादृशदोषाभावाच्च।।२५।।

म्हणून शिवयोगी हे आग्नेय स्नानच करतात असे सांगतात– अग्नीत जसा प्रकाश असतो तसे भस्मस्नानात ज्ञान प्रदान करण्याची शक्ती असते. म्हणून तपस्वी व योगी लोक आग्नेय नावाचे भस्मस्नानच करतात. जलस्नानापेक्षा ते श्रेष्ठ असून जलस्नानात जसा जीवजंतूंचा नाश होतो तसा या भस्मस्नानात होत नाही.।।२५।।

अथ जलस्य दोषान्तरमुद्भावयति–

आर्द्रं तु प्रकृतिं विन्द्यात् प्रकृतिं बन्धनं विदुः।
प्रकृतेस्तु प्रहाणार्थं भस्मना स्नानमिष्यते।।२६।।

आर्द्रं जलं प्रकृतिं गर्भवासप्रकृतिं विन्द्यात्, रक्तशुक्लयोर्जलमयत्वात्, "स वा एष पुरुषोऽन्नरसमयः" इति श्रुतेः। प्रकृतिं बन्धनं भोज्यभोजन-रूपेण पुरुषस्य पाशरूपं विदुः, अभिज्ञाः जानन्ति, "पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुङ्क्ते प्रकृतिजान् गुणान्" इति भगवदुक्तेः पुरुषस्य प्रकृतिबद्धत्वात्, प्रकृतेस्तु प्रहाणार्थं जलस्नानोत्थदोषनिवृत्त्यर्थं भस्मना स्नानमिच्छाविषयी-क्रियत इत्यर्थः।।२६।।

आता जलस्नानाचे अन्य दोष सांगतात–शुक्र व शोणित हे दोन्ही जलांश असून ते गर्भवासास कारण आहेत. तो गर्भवास म्हणजे प्रकृती हे बंधन होय. भोज्य-भोजनरूपाने प्रकृती पुरुषाला बंधनकारक आहे असे ज्ञाते मानतात. 'प्रकृतिस्थ झाल्यानेच पुरुषाला प्रकृती पासून उत्पन्न होणाऱ्या सुखदुःखाचा उपभोग घ्यावा लागतो', असे गीतेत म्हटले आहे. पुरुष प्रकृतीमुळे बद्ध होतो. म्हणून प्रकृतीच्या नाशाकरिता अर्थात् जलस्नानामुळे उत्पन्न होणाऱ्या दोषाच्या निवृत्तीकरिता भस्मस्नान हेच योग्य होय.।।२६।।

अथेदं भस्मना स्नानं कैरङ्गीकृतमित्यत्राह–

ब्रह्माद्या विबुधाः सर्वे मुनयो नारदादयः।
योगिनः सनकाद्याश्च बाणाद्या दानवा अपि।।२७।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भस्मस्नानयुताः सर्वे शिवभक्तिपरायणाः।
निर्मुक्तदोषकलिला नित्यशुद्धा भवन्ति हि।।२८।।

कलिलाः समूहा इत्यर्थः। शिष्टं स्पष्टम्।।२७-२८।।

आता असे भस्मस्नान कोणी कोणी केलेले आहे? या संबंधी ते सांगतात की, शिवभक्तिपरायण असे जे ब्रह्मादी सर्व देव, नारदादी ऋषिगण, सनकादी योगी, बाणासुरादी दैत्य हे सर्व नित्य भस्मस्नान करीत असल्यामुळे सर्व दोषांपासून मुक्त होऊन सदैव परिशुद्ध असतात.।।२७-२८।।

अथ भस्मोद्धूलनं त्रिपुण्ड्रधारणं च कर्तव्यमित्याह—

नमश्शिवायेति भस्म कृत्वा सप्ताभिमन्त्रितम्।
उद्धूलयेत् तेन देहं त्रिपुण्ड्रं चापि धारयेत्।।२९।।

भस्म नमश्शिवायेति मन्त्रेण सप्ताभिमन्त्रितं सप्तजन्मकृतदोषनिवृत्त्यर्थं सप्तवारमभिमन्त्रितं कृत्वा तेन भस्मना देहमुद्धूलयेत्, त्रिपुण्ड्रं चापि देहे रचयेदित्यर्थः।।२९।।

आता भस्मोद्धूलन आणि त्रिपुंड्रधारणाविषयी सांगतात— सप्तजन्मांतील दोषांच्या निवृत्तीकरिता 'नमःशिवाय' या मंत्राने सात वेळा भस्म अभिमंत्रित करून ते शरीरावर उधळून घ्यावे, नंतर त्या भस्माचे त्रिपुंड्र धारण करावे.।।२९।।

अत्रोद्धूलनापेक्षया त्रिपुण्ड्रस्याधिक्यमाह—

सर्वाङ्गोद्धूलनं चापि न समानं त्रिपुण्ड्रकैः।
तस्मात् त्रिपुण्ड्रमेवैकं लिखेदुद्धूलनं विना।।३०।।

स्पष्टम्।।३०।।

आता भस्मोद्धूलनापेक्षा त्रिपुंड्रधारणाचे महत्त्व सांगतात— आपल्या सर्वांगावर भस्माचे अभिसिंचन करण्यापेक्षा शरीरावर एक त्रिपुंड्र धारण करणे श्रेष्ठ होय. कारण शरीरभर भस्माचे अभिसिंचन केले तरी एका त्रिपुंड्रधारणाची ते बरोबरी करू शकत नाही. म्हणून अभिसिंचनाशिवाय मुख्य त्रिपुंड्र धारण करावे.।।३०।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अथ त्रिपुण्ड्रं कदा कथं कुत्र धारणीयमित्यत्राह—

त्रिपुण्ड्रं धारयेन्नित्यं भस्मना सलिलेन च।
स्थानेषु पञ्चदशसु शरीरे साधकोत्तमः।।३१।।

स्पष्टम्।।३१।।

आता त्रिपुंड्र केव्हा, कोठे व कसे धारण करावे याविषयी सांगतात— श्रेष्ठ साधकाने शरीराच्या पंधरा स्थानांवर जलमिश्रित भस्माने त्रिपुंड्र धारण करावे.।।३१।।

तानि कानीत्यत्राह—

उत्तमाङ्गे ललाटे च श्रवणद्वितये तथा।
गले भुजद्वये चैव हृदि नाभौ च पृष्ठके।।३२।।
बाहुयुग्मे ककुद्देशे मणिबन्धद्वये तथा।
त्रिपुण्ड्रं भस्मना धार्यं मूलमन्त्रेण साधकैः।।३३।।

त्रियायुषत्रियम्बकप्रणवपञ्चाक्षरमन्त्रैर्धारयेत्, "शिरोललाटकण्ठस्कन्धवक्षःस्थलेषु त्रियायुषत्रियम्बकैस्तिस्रो रेखाः कुर्वीत। व्रतमेतच्छाम्भवम्" इति श्रुतेः।।३२-३३।।

त्या पंधरा स्थानांची नावे अशी—मस्तकावर, कपाळावर, दोन्ही कानांवर, गळ्यावर, दोन्ही खांद्यांवर, हृदयावर, बेंबीवर, पाठीवर, दोन्ही दंडांवर, मानेवर आणि दोन्ही मनगटांवर साधकाने त्रियायुष, त्रियंबक, प्रणव अथवा पंचाक्षर यापैकी कोणत्याही मंत्राचा उच्चार करीत त्रिपुंड्र धारण करावे. अशा या भस्मधारणव्रताला श्रुतीत शांभवव्रत असे म्हटले आहे.।।३२-३३।।

अथ तदभिमन्त्रणप्रकारपूर्वकं समन्त्रकत्रिपुण्ड्रधारणस्य फलमाह—

वामहस्ततले भस्म क्षिप्त्वाच्छाद्यान्यपाणिना।
अग्निरित्यादिमन्त्रेण स्पृशन् वाराभिमन्त्र्य च।।३४।।
त्रिपुण्ड्रमुक्तस्थानेषु दध्यात् सजलभस्मना।
शिवं शिवङ्करं शान्तं स प्राप्नोति न संशयः।।३५।।

"अग्निरिति भस्म वायुरिति भस्म जलमिति भस्म स्थलमिति भस्म व्योमेति भस्म सर्वं ह वा इदं भस्म मन एतानि चक्षूंषि भस्मानि" इति

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

मन्त्रेः स्पृशन् वारा उदकेन सप्तवारं मूलेनाभिमन्त्रयेदित्यर्थः ।।३४-३५।।

आता भस्माच्या अभिमंत्रणाचे प्रकार सांगून भस्म मंत्रपुरस्सर धारण केल्याचे फळ सांगतात—साधकाने आपल्या डाव्या तळहातावर भस्म घेऊन त्यावर उजवा हात झाकावा. नंतर 'अग्निरितिभस्म' या मंत्राने त्यास स्पर्श करून त्यावर पाणी शिंपडावे. नंतर पाण्याने भिजविलेले भस्म घेऊन वर सांगितलेल्या पंधरा स्थानांवर त्रिपुंड्र धारण करावे. असे त्रिपुंड्र धारण करणारा मनुष्य शुभकारक व शांत असे शिवस्वरूप प्राप्त करून घेतो हे निस्संशय होय.।।३४-३५।।

अथ त्रिपुण्ड्ररचनाप्रकारमाह—

मध्याङ्गुलित्रयेणैव स्वदक्षिणकरस्य तु।
षडङ्गुलायतं मानमपि वाऽलिकमानकम्।।३६।।
नेत्रयुग्मप्रमाणेन फाले दध्यात् त्रिपुण्ड्रकम्।

स्पष्टम्।।३६।।

आता त्रिपुंड्र धारणाचे प्रकार सांगतात—त्रिपुंड्र धारणाचे प्रकार दोन आहेत-आपल्या उजव्या हाताच्या तर्जनी, मध्यमा व अनामिका या तीन बोटांनी सहा अंगुलीपर्यंत कपाळभरून अथवा दोन्ही डोळ्यांच्या मर्यादिपर्यंत त्रिपुंड्र धारण करावे हा पहिला प्रकार होय.।।३६।।

अथ प्रकारान्तरेण त्रिपुण्ड्रीकरणमाह—

मध्यमानामिकाङ्गुष्ठैरनुलोमविलोमतः।।३७।।
धारयेद्यस्त्रिपुण्ड्राङ्कं स रुद्रो नात्र संशयः।

मध्यमानामिकाभ्याम् अनुलोमतः प्रदक्षिणतो रेखाद्वयं तन्मध्ये अङ्गुष्ठेन विलोमतः अप्रदक्षिणतः, एकां रेखां रचयेत्। एवं धृतत्रिपुण्ड्रो रुद्र इत्युक्तत्वात्, पूर्वापेक्षया विशेष इत्यर्थः।।३७।।

त्याचा दुसरा प्रकार असा की, मध्यमा व अनामिका या दोन बोटांनी प्रथम अनुलोम म्हणजे कपाळाच्या डावीकडून सुरू करून कपाळाला प्रदक्षिणारूपाने भस्माच्या दोन रेषा काढाव्या आणि त्यामध्ये अंगठ्याने प्रतिलोम पद्धतीने म्हणजे कपाळाच्या

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

उजवीकडून डावीकडे फक्त मध्यभागी एक रेषा काढावी. या दुसऱ्या प्रकाराला अनुलोम-प्रतिलोम प्रक्रिया म्हणतात. असे त्रिपुड्र धारण करतो तो मनुष्य प्रत्यक्ष रुद्र होय, यात संशय नाही. यामुळे पहिल्या प्रकारापेक्षा हा दुसरा प्रकार श्रेष्ठ मानला जातो.।।३७।।

अथ तल्लक्षणं कथयति—

ऋजु श्वेतमनुव्याप्तं स्निग्धं श्रोत्रप्रमाणकम्।।३८।।
एवं सल्लक्षणोपेतं त्रिपुण्ड्रं सर्वसिद्धिदम्।

ऋजु सरलं श्वेतं शुभ्रम् अनुव्याप्तम् अविच्छिन्नम्, स्निग्धं सान्द्रं श्रोत्रप्रमाणकं श्रवणपरिमितमित्यर्थः।।३८।।

आता त्रिपुंड्राचे स्वरूप सांगतात—त्रिपुड्र हे सरळ, शुभ्र, एकमेकास न चिकटलेले, अखंड, मृदू, ठळक व कानापर्यंत लांब गेलेले असावे. या प्रमाणे सर्व लक्षणांनी युक्त असणारे त्रिपुड्र धारण केले म्हणजे साधकाचे सर्व मनोरथ पूर्ण होतात.।।३८।।

अथास्य त्रिपुण्ड्रस्य महत्त्वं सूत्रद्वयेन सूचयति—

प्रातःकाले च मध्याह्ने सायाह्ने च त्रिपुण्ड्रकम्।।३९।।
कदाचिद्भस्मना कुर्यात् स रुद्रो नात्र संशयः।
एवंविधं विभूत्या च कुरुते यस्त्रिपुण्ड्रकम्।
स रौद्रधर्मसंयुक्तस्त्रयीमय इति श्रुतिः।।४०।।

यो विभूत्या च भस्मना एवंविधम् ऋजुश्वेतादिसल्लक्षणोपेतं त्रिपुण्ड्रकं कुरुते, स रौद्रधर्मसंयुक्तो रुद्रसंबन्धी यो धर्मः शिवाचारः, तेन संयुक्तः सन्, त्रयीमयो वेदत्रयस्वरूप इति श्रुतिः, "य इदं त्रिपुण्ड्रं धरते स वेदत्रयधारी भवति स सन्ततं त्रेताग्निर्भवति स पुष्करत्रयस्नातो भवति। यस्त्रिपुण्ड्रधारी पुरुषः स रुद्रः स परमेष्ठी, य इदं त्रिपुण्ड्रं धृतवन्तं पुरुषं पश्यति स सर्वपापेभ्यो विनिर्मुक्तो भवति स सर्ववेदाध्ययनजन्य-फलवान् भवति" इति वृद्धजाबालादिबहुश्रुतिसिद्धोऽयमर्थः। तस्मात् प्रातरादिकालत्रये कदाचित् त्रिपुण्ड्रं यः कुर्यात्, स रुद्रः शिव एव न संशय इत्यर्थः।।३९-४०।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

आता त्रिपुंड्राचे महत्त्व दोन श्लोकांत सांगतात—वर सांगितलेल्या लक्षणांनी युक्त असे त्रिपुंड्र जो धारण करतो तो रुद्रसंबंधी शिवाचारसंपन्न होऊन वेदत्रयस्वरूपी म्हणून ओळखला जातो. 'त्रिपुंड्र धारण करणारा पुरुष वेदत्रयस्वरूपी व अग्नित्रयस्वरूपी असतो, तो पुष्करत्रयस्नात. होतो. तो रुद्र व परमेष्ठी असून त्याच्या दर्शनाने दर्शकाची पापापासून मुक्तता होऊन त्याला सर्व वेदाध्ययनाचे फळ मिळते' असे वृद्धजाबालादी श्रुतीमध्ये म्हटले आहे. म्हणून सकाळी, मध्यान्ही, सायंकाली अशा तिन्हीवेळी अथवा केव्हाही जो त्रिपुंड्र धारण करतो तो प्रत्यक्ष शिवच असतो, यात संशय नाही.।।३९ -४०।।

अथैतादृशं त्रिपुण्ड्रं कैर्धृतमित्यत्राह—

ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च देवाः शक्रपुरोगमाः।
त्रिपुण्ड्रं धारयन्त्येव भस्मना परिकल्पितम्।।४१।।
वसिष्ठाद्या महाभागा मुनयः श्रुतिकोविदाः।
धारयन्ति सदाकालं त्रिपुण्ड्रं भस्मना कृतम्।।४२।।

स्पष्टम्।।४१-४२।।

अशा प्रकारे त्रिपुंड्र कोणी कोणी धारण केले आहे ते सागतात—ब्रह्मा, विष्णू, रुद्र, इंद्रादी सुरगण भस्माचे त्रिपुंड्र धारण करतात. वसिष्ठादी ऋषी व वेदज्ञ मुनी सदैव त्रिपुंड्र धारण करतात.।।४१ –४२।।

अथेदं कुत्र विहितमित्यत्राह—

शैवागमेषु वेदेषु पुराणेष्वखिलेषु च।
स्मृतीतिहासकल्पेषु विहितं भस्मपुण्ड्रकम्।।
धारणीयं समस्तानां शैवानां च विशेषतः।।४३।।

कल्पेषु कल्पसूत्रेष्वित्यर्थः। शिष्टं स्पष्टम्।।४३।।

परंतु हे कोठे सांगितलेले आहे? याचे उत्तर येणेप्रमाणे—शिवागमांत, वेदांत, सर्व पुराणांत, स्मृतींत व इतिहासात देखील सागितलेले असे भस्माचे त्रिपुंड्र विशेषेकरून समस्त वीरशैवानी अवश्य धारण करावे.।।४३।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अथानेन त्रिपुण्ड्रधारणेन सकलपापक्षय इत्युक्त्वा भस्मधारणस्थलं समापयति—

नास्तिको भिन्नमर्यादो दुराचारपरायणः।
भस्मत्रिपुण्ड्रधारी चेन्मुच्यते सर्वकिल्बिषैः।।४४।।

वेदविरुद्धाचारनिष्ठो नास्तिकः शरीरेन्द्रियबुद्धिव्यतिरेकेण कश्चिदात्मा नास्तीति वदन् चार्वाकादिः। अत एव दुराचारपरायणस्तादृशोऽपि भस्मत्रिपुण्ड्रधारी चेत्, सर्वकिल्बिषैः समस्तपापैर्मुच्यत इत्यर्थः।।४४।।

इति भस्मधारणस्थलम्

अशा त्रिपुंड्रधारणाने सर्व पापांचा क्षय होतो असे सांगून भस्मधारणस्थल संपवितात—वेदविरुद्धाचारी असा नास्तिक असो, धर्मशास्त्राची मर्यादा उल्लंघन करणारा दुराचारी असो, त्याने त्रिपुंड्र धारण केल्यास तो सर्व पापापासून मुक्त होतो.।।४४।।

अथ रुद्राक्षधारणस्थलं निरूपयति—

भस्मना विहितस्नानस्त्रिपुण्ड्राङ्कितमस्तकः।
शिवार्चनपरो नित्यं रुद्राक्षमपि धारयेत्।।४५।।

मस्तको ललाट इत्यर्थः। शिष्टं स्पष्टम्।।४५।।

भस्मधारणस्थलात सांगितलेल्या विधीप्रमाणे भस्मस्नान, भस्मोद्धूलन तसेच मस्तकावर त्रिपुड्र धारण करून शिवपूजा करणाऱ्या साधकाने नित्य शिवपूजेच्या वेळी रुद्राक्षदेखील धारण करावे.।।४५।।

किमनेन प्रयोजनमित्यत्राह—

रुद्राक्षधारणादेव मुच्यन्ते सर्वपातकैः।
दुष्टचित्ता दुराचारा दुष्प्रज्ञा अपि मानवाः।।४६।।

स्पष्टम्।।४६।।

आता रुद्राक्षधारणाचे प्रयोजन सांगतात—ते असे की, जे मनाने दुष्ट आहेत, दुराचारी आणि दुष्ट बुद्धीचे आहेत, अशा मनुष्यांनी रुद्राक्ष धारण केल्यास त्यांचीही सर्व पापे नाहीशी होतात. म्हणून सर्वांनी रुद्राक्षधारण करावे.।।४६।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

नन्वेते रुद्राक्षाः कथमुत्पन्नाः? कुत एतादृक् सामर्थ्यमित्यत्राह—

पुरा त्रिपुरसंहारे त्रिनेत्रो जगतां पतिः।
उदपश्यत् पुरां योगमुन्मीलितविलोचनः।।४७।।
निपेतुस्तस्य नेत्रेभ्यो बहवो जलबिन्दवः।
तेभ्यो जाता हि रुद्राक्षा रुद्राक्षा इति कीर्तिताः।।४८।।
रुद्रनेत्रसमुत्पन्ना रुद्राक्षा लोकपावनाः।

पूर्वं त्रिपुरसंहारप्रस्तावे जगतां पतिः विश्वपतिः त्रिनेत्रः सोमसूर्याग्नि-नयनः शिवः उन्मीलितविलोचनः संहारकाल एव ललाटनेत्रस्योन्मेषाद् विकसितनेत्रत्रयः सन् पुरां त्रिपुराणां योगं संबन्धम् उदपश्यद् ऊर्ध्वं दृष्टवान् । तस्य नेत्रेभ्यो बहवो जलबिन्दवः उदककणाः निपेतुः भूमौ पतिताः। तेभ्यो जलबिन्दुभ्यो रुद्राक्षा जाताः। हि यस्मात् कारणाद् रुद्रनेत्रसमुत्पन्नास्तस्मात् कारणाद् रुद्राक्षा इति कीर्तितास्तत एव लोकपावना इत्यर्थः। "अत्र पुरा त्रिपुरवधायोन्मीलिताक्षोऽहं तेभ्यो जलबिन्दवो भूमौ पतितास्ते रुद्राक्षा जाताः सर्वानुग्रहार्थाय। तेषां नामोच्चारणेन दशशतगोदानफलं भवति, दर्शनस्पर्शनाभ्यां द्विगुणं त्रिगुणं फलं भवति। अत ऊर्ध्वं वक्तुं न शक्यम्" इति बृहज्जाबालादिश्रुतिः।।४७-४८।।

या रुद्राक्षांची उत्पत्ती कशी झाली व त्यांना हे सामर्थ्य कोठून प्राप्त झाले? तर, पूर्वी ब्रह्म्याच्या वराने मातलेल्या त्रिपुरासुरांचा संहार करणे आवश्यक झाले होते. त्यांचा वध जगाचा पती असणाऱ्या त्रिनेत्रधारी शिवाकडून झाला. त्याची थोडक्यात कथा अशी—त्रिपुरासुरांचे पुत्र तारकाक्ष, कमलाक्ष आणि विद्युन्माली या तिघांना ब्रह्म्याने दिलेल्या वरानुसार त्यांची तीन नगरे आकाशात भ्रमण करीत होती. ती चार युगांच्या अंतानंतर एका क्षणी एकत्र आल्यावरच त्यांचा नाश होऊ शकेल असा त्यांना वर मिळाला असल्यामुळे ती केव्हा एकत्र येतात हे सतत नेत्र उघडे ठेवून शिव पाहात असताना त्यांच्या नेत्रांतून जे अश्रू भूमीवर पडले त्यापासून रुद्राक्ष झाले. ते रुद्राक्ष शिवाच्या योगाश्रूंपासून उत्पन्न झाल्यामुळे आणि त्यांच्या ठिकाणी पापनाशनाचे सामर्थ्य असल्यामुळे त्यास रुद्राक्ष (रुद्र+अक्ष) म्हणतात. त्यामुळेच ते सर्व लोकांत पवित्र मानले जातात. याला बृहज्जाबालादी श्रुतीचाही आधार आहे. त्यानुसार रुद्राक्ष हे सर्वांवर अनुग्रह करणारे असून त्यांच्या नामोच्चाराने दशशत

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

गोदानादीचे पुण्यफल प्राप्त होते. तसेच दर्शन-स्पर्शनामुळे त्यापेक्षा दुपटीतिपटीने फळ मिळते.।।४७–४८।।

एवं रुद्रनेत्रसमुत्पन्नत्वात् तत्कलाभेदेनाष्टत्रिंशत्प्रकारेणोत्पत्तिं भजन्त इत्याह—

अष्टत्रिंशत्प्रभेदेन भवन्त्युत्पत्तिभेदतः।।४९।।

स्पष्टम्।।४९।।

अशा रीतीने रुद्राच्या नेत्रांपासून उत्पन्न झालेल्या रुद्राक्षाचे त्यांच्या उत्पत्तीच्या वेगळेपणावरून अडतीस भेद झाले आहेत.।।४९।।

अथ कस्मान्नेत्रात् कियन्त उत्पन्ना इत्यत्राह—

नेत्रात् सूर्यात्मनः शम्भोः कपिला द्वादशोदिताः।
श्वेताः षोडशसंजाताः सोमरूपाद्विलोचनात्।।५०।।
कृष्णा दशविधा जाता वह्निरूपाद्विलोचनात्।
एवमुत्पत्तिभेदेन रुद्राक्षा बहुधा स्मृताः।।५१।।

शिवस्य सूर्यात्मनो नेत्रात् कपिलाः कपिलवर्णा द्वादश द्वादशभेदवन्तो रुद्राक्षा उदिताः, उत्पन्ना इत्यर्थः, सूर्यनेत्रस्य तपिन्यादिद्वादशकलात्मकत्वात्। सोमरूपाद्विलोचनात् चन्द्रनयनात् श्वेताः शुभ्रवर्णाः षोडश षोडशभेदवन्तः संजाता उत्पन्नाः, तन्नेत्रस्यामृतादिषोडशकलात्मकत्वात्। वह्निरूपाद्विलोचनाद् वह्निनयनात् कृष्णाः कृष्णवर्णाः दशविधाः दशभेदवन्तः जाता उत्पन्नाः, तन्नेत्रस्य धूम्रार्चिःप्रभृतिदशकलात्मकत्वात्। एवमुत्पत्तिभेदेन रुद्राक्षा बहुधा बहुविधाः स्मृता इत्यर्थः।।५०-५१।।

आता कोणत्या नेत्रापासून किती रुद्राक्ष निर्माण झाले ते सांगतात—त्रिनेत्रधारी शंकराचे तीन नेत्र म्हणजे सूर्य, चंद्र आणि अग्नी. सूर्याच्या बारा, चंद्राच्या सोळा आणि अग्नीच्या दहा कला आहेत. सूर्याच्या तपिनी, तापिनी, धूम्रा, मरिची, ज्वलिनी, रुची, सुषम्ना, भोगदा, विश्वा, बोधिनी, धारिणी आणि क्षमा या बारा कलांपासून कपिल वर्णाचे बारा प्रकारचे रुद्राक्ष उत्पन्न झाले. चंद्राच्या अमृता, मानदा, पूषा, तुष्टी, पुष्टी, रती, धृती, शशिनी, चंद्रिका, कांती, ज्योत्स्ना, श्री, प्रीती, अंगदा, पूर्णा आणि पूर्णामृता या सोळा कलांपासून सोळा प्रकारचे पांढरे रुद्राक्ष निर्माण झाले.

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अग्नीच्या धूम्रा, अर्ची, ऊष्मा, ज्वलिनी, ज्वालिनी, विस्फुलिंगिनी, सुश्री, सुरूपा, कपिला आणि हव्यकव्यवहा या दहा कलांपासून दहा प्रकारचे काळे रुद्राक्ष उत्पन्न झाले. या प्रमाणे उत्पत्तीच्या वेगळेपणावरून रुद्राक्षांचे एकूण अडतीस प्रकार झाले. सूर्य, चंद्र आणि अग्नीच्या कलांविषयीची माहिती शारदातिलक या तंत्रग्रंथात दिली आहे.।।५०—५१।।

अथ धार्यरुद्राक्षलक्षणमाह—

अच्छिद्रं कनकप्रख्यमनन्यधृतमुत्तमम्।
रुद्राक्षं धारयेत् प्राज्ञः शिवपूजापरायणः।

अच्छिद्रमकृमिचुम्बितमित्यर्थः। शिष्टं स्पष्टम्।।५२।।

आता धारण करण्यास योग्य अशा रुद्राक्षाचे स्वरूप सांगतात—ज्याला किड्याने छिद्र पाडलेले नसेल व ज्याचा रंग सोन्यासारखा असेल आणि जो पूर्वी कोणी वापरला नसेल असा रुद्राक्ष उत्तम जाणावा. बुद्धिवंत शिवपूजकाने असे रुद्राक्ष धारण करावेत.।।५२।।

अत्र कुत्र कथं कति धारणीया इत्यत्राह—

यथास्थानं यथावक्त्रं यथायोगं यथाविधि।
रुद्राक्षधारणं वक्ष्ये रुद्रसायुज्यसिद्धये।।५३।।

स्पष्टम्।।५३।।

हे अगस्त्या, रुद्रसायुज्यमुक्तीसाठी. कोणत्या ठिकाणी, किती मुखांचे, किती रुद्राक्ष धारण करावे हे शास्त्रानुसार मी सांगतो. ते तू लक्ष देऊन श्रवण कर.।।५३।।

प्रतिज्ञाय स्थानं संख्यां चाह—

शिखायामेकमेकास्यं रुद्राक्षं धारयेद् बुधः।
द्वित्रिद्वादशवक्त्राणि शिरसि त्रीणि धारयेत्।।५४।।
षट्त्रिंशद्धारयेन्मूर्ध्नि नित्यमेकादशाननान्।
दशसप्तपञ्चवक्त्रान् षट् षट् कर्णद्वये वहेत्।।५५।।
षडष्टवदनान् कण्ठे द्वात्रिंशद्धारयेत् सदा।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पञ्चाशद्धारयेद् विद्वान् चतुर्वक्त्राणि वक्षसि।।५६।।
त्रयोदशमुखान् बाह्वोर्धरेत् षोडश षोडश।
प्रत्येकं द्वादश वहेन्नवास्यान् मणिबन्धयोः।।५७।।
चतुर्दशमुखं यज्ञसूत्रमष्टोत्तरं शतम्।
धारयेत् सार्वकालं तु रुद्राक्षं शिवपूजकः।।५८।।

अत्र दशसप्तपञ्चवक्त्रान् षट्षट्कर्णद्वय इत्यत्र दशमुखं द्वयं पञ्चमुखं द्वयं सप्तमुखं द्वयम् एवं षट् षट् कर्णद्वये धारणीयमित्यर्थः, "समं स्यादश्रुतत्वात्" इति न्यायात्, "षट् षट् कर्णयोरेकमेकम्" इति रुद्राक्षजाबालश्रुतेः। एकमेकं वा कर्णद्वये धारयेत्। एवं कण्ठेऽपि षडष्टवदनान् समत्वेन धारयेदिति। शिष्टं स्पष्टम्। अयं भावः— शुद्ध-मिश्रसंकीर्णभुवनाधीशशिवाष्टविद्येश्वरशतरुद्रसंख्यातयज्ञोपवीतधारणेन भुवनाध्वशुद्धिः, वर्णसंख्यातवक्षोमालया वर्णाध्वशुद्धिः, पदसंख्यातमणिबन्धबाहुकण्ठमालया पदाध्वशुद्धिः, षडङ्गपञ्चब्रह्मप्रणवमन्त्रसंख्यातकर्णाभरणेन मन्त्राध्वशुद्धिः, शिवशक्त्यात्मककर्णाभरणेन वा तत्त्वसंख्यातमस्तकमालया तत्त्वाध्वशुद्धिः, अष्टत्रिंशत्कलापूर्णसोमसूर्याग्निलक्षणशिरोरन्ध्रमालया कलाध्वशुद्धिः। एवंरूपषडध्वकारणीभूतपरशिवब्रह्ममयशिखागतैकरुद्राक्षधारणेन परशिवस्वरूप एव, "यो रुद्राक्षं धत्ते स सत्यं परमः शिवः स सत्यं परमः शिवः" इति श्रुतेः।।५४-५८।।

आता रुद्राक्षधारणाचे स्थान, त्याची मुखे आणि संख्या यांचे निरूपण करतात—सुज्ञ मनुष्याने आपल्या शेंडीमध्ये एक मुखाचा एक रुद्राक्ष धारण करावा. दोन, तीन आणि बारा मुखांचे असे तीन रुद्राक्ष मस्तकावर धारण करावेत. अकरा मुखांचे छत्तीस रुद्राक्ष कपाळाभोवती धारण करावेत. दहा, सात आणि पाच मुखांचे प्रत्येकी दोन दोन असे सहा, सहा रुद्राक्ष दोन्ही कानांत धारण करावेत. सहा आणि आठ मुखांचे प्रत्येकी सोळा असे बत्तीस रुद्राक्ष गळ्यात धारण करावेत. तसेच विद्वान मनुष्याने आपल्या वक्षस्थळावर चार मुखांचे पन्नास रुद्राक्ष धारण करावेत. तेरा मुखांचे सोळा, सोळा रुद्राक्ष आपल्या दोन्ही दंडांवर बांधावेत व नऊ मुखांचे बारा बारा रुद्राक्ष दोन्ही मनगटावर बांधावेत. चौदा मुखांच्या एकशे आठ रुद्राक्षांची माळा यज्ञोपवितामप्रमाणे शिवभक्ताने सदैव गळ्यात धारण करावी. वीरशैवांनी शिवपूजेच्यावेळी धारण करावयाच्या रुद्राक्षांचा असा विधी आहे. रुद्राक्ष एक मुखापासून चौदामुखांपर्यंत असतात. त्यांच्या मुखांप्रमाणे

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

त्यांचे माहात्म्यही असते. याची माहिती रुद्राक्षजाबालोपनिषद, शिवमहापुराण, शिवार्चनचंद्रिका आदी ग्रंथातून विशेषरूपाने सांगितली आहे.।।५४-५५-५६-५७-५८।।

अथैवं रुद्राक्षधारणात् सर्वपापक्षय इत्याह—

एवं रुद्राक्षधारी यः सर्वकाले तु वर्तते।
तस्य पापकथा नास्ति मूढस्यापि न संशयः।।५९।।

एवमुक्तप्रकारेण एषु स्थानेषु सदा रुद्राक्षधारिणो मूढस्यापि पापवार्ता नास्ति, कुतः पापसंबन्ध इत्यर्थः।।५९।।

अशा रीतीने जो मनुष्य सदासर्वकाळी रुद्राक्ष धारण करतो तो मूर्ख असला तरी त्याला पापाचा स्पर्श होत नाही.।।५९।।

ननु क्षुद्रपापसम्बन्धो नास्तीत्युच्यते वा महापातकसंबन्धो नास्तीत्युच्यते वेत्यत्राह—

ब्रह्महा मद्यपायी च स्वर्णहृद् गुरुतल्पगः।
मातृहा पितृहा चैव भ्रूणहा कृतघातकः।
रुद्राक्षधारणादेव मुच्यते सर्वपातकैः।।६०।।

अत्र सर्वशब्देनानुक्तपातकानि संगृहीतानीति बोध्यम्।।६०।।

असे रुद्राक्ष धारण करणाऱ्याला केवळ क्षुद्र पापेच लागत नाहीत की, महापापेही लागत नाहीत? या प्रश्नाचे उत्तर असे की, मनुष्य ब्रह्महत्या करणारा असो, दारू पिणारा असो, सोने चोरणारा असो, गुरुपत्नीकडे पापी दृष्टीने पाहाणारा असो, मातेचा किंवा पित्याचा घात करणारा असो, भ्रूणहत्या करणारा किंवा विश्वासघात करणारा असो, त्याने रुद्राक्ष धारण केल्यामुळेच त्याची सर्व पापे नष्ट होतात. धर्मशास्त्रात अतिपातक, महापातकादी नऊ प्रकारची पातके सांगितली आहेत. ती सर्वविध पातके रुद्राक्षधारणाने नाहीशी होतात असे समजावे.।।६०।।

अथ विशेषमाह—

दर्शनात् स्पर्शनाच्चैव स्मरणादपि पूजनात्।
रुद्राक्षधारणाल्लोके मुच्यन्ते पातकैर्जनाः।।६१।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

स्पष्टम्।।६१।।

रुद्राक्षाच्या दर्शनाने, स्पर्शनाने, स्मरणाने, पूजनाने किंवा धारण केल्याने या प्रपचातील सर्व लोक पापापासून मुक्त होतात.।।६१।।

अत्र जनशब्देन को वा विवक्षित इत्यत्राह—

ब्राह्मणो वान्त्यजो वापि मूर्खो वा पण्डितोऽपि वा।
रुद्राक्षधारणादेव मुच्यते सर्वपातकैः।।६२।।

अनेन रुद्राक्षधारणे सर्वेऽप्यधिकारिण इत्युक्तं भवति।।६२।।

कोणते लोक मुक्त होतात? तर, ब्राह्मण असो अत्यज असो, अज्ञ असो अथवा पंडित असो त्याची सर्व पापे नाहीशी होतात.।।६२।।

नन्वनेन पापक्षयमात्रं वा, पुण्यमपि किञ्चिदस्ति वेत्यत्राह—

गवां कोटिप्रदानस्य यत्फलं भुवि लभ्यते।
तत्फलं लभते मर्त्यो नित्यं रुद्राक्षधारणात्।।६३।।

स्पष्टम्।।६३।।

रुद्राक्ष धारण केल्याने केवळ पापेच नाहीशी होतात की पुण्य ही लाभते? उत्तर असे की, एक कोटी गाईचे दान केल्याने जे पुण्य लाभते तेवढे पुण्य रुद्राक्ष धारण करणाऱ्या मनुष्यास लाभते. म्हणून रुद्राक्ष धारणाने उत्कृष्ट पुण्याची प्राप्तीही होते.।।६३।।

अथास्यैतावन्मात्रमेव न, क्रियाभेदेनान्योऽपि चमत्कारोऽस्तीत्याह—

मृत्युकाले च रुद्राक्षं निष्पीड्य सह वारिणा।
यः पिबेच्चिन्तयन् रुद्रं रुद्रलोकं स गच्छति।।६४।।

स्पष्टम्।।६४।।

इतकेच नाही तर क्रियाभेदाने इतर चमत्कारही होतात—जसे, मरणकाळी पाण्यात रुद्राक्ष उगाळून ते पाणी पिऊन शंकराचे चिंतन केल्याने तो मनुष्य रुद्रलोकास जातो.।।६४।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

एवं निश्चित्य ये भस्मरुद्राक्षधारिणः सन्ति, ते रुद्रा एवेत्याह—

भस्मोद्धूलितसर्वाङ्गा धृतरुद्राक्षमालिकाः।
ये भवन्ति महात्मानस्ते रुद्रा नात्र संशयः।।६५।।

स्पष्टम्।।६५।।

पूर्वी सांगितलेल्या वचनावर विश्वास ठेवून ज्यांनी आपल्या सर्वांगास भस्म लावले असून जे नेहमी रुद्राक्षमाळा गळ्यात धारण करतात त्यांचे महत्त्व फार असून ते प्रत्यक्ष रुद्रच होत यात संशय नाही.।।६५।।

अथ भस्मरुद्राक्षधारणशून्येन द्विजेन विधीयमानं नित्यनैमित्तिकादिकं कर्मापि व्यर्थमित्याह—

नित्यानि काम्यानि निमित्तजानि
कर्माणि सर्वाणि सदापि कुर्वन्।
यो भस्मरुद्राक्षधरो यदि स्याद्
द्विजो न तस्यास्ति फलोपपत्तिः।।६६।।

उपपत्तिः प्राप्तिरित्यर्थः। शिष्टं स्पष्टम्।।६६।।

आता भस्मरुद्राक्ष धारण न करता केलेली कर्मे निष्फळ होतात या विषयी सांगतात—नित्य, नैमित्तिक, काम्य आदी सर्व कर्मे सर्वदा शास्त्रोक्त रीतीने करणारा ब्राह्मण असला तरी जर तो भस्म व रुद्राक्ष धारण करीत नसेल तर त्याला आपल्या कर्माची फळे मिळत नाहीत.।।६६।।

तस्माद्वर्णाश्रमाचारनिष्ठेषु भस्मरुद्राक्षधर एक एव गरीयानित्याह—

सर्वेषु वर्णाश्रमसंगतेषु नित्यं सदाचारपरायणेषु।
श्रुतिस्मृतिभ्यामिह चोद्यमानो विभूतिरुद्राक्षधरः समानः।।६७।।

इति श्रीषट्स्थलब्रह्मिणा शिवयोगिनाम्ना प्रणीते वीरशैवधर्मनिर्णये सिद्धान्तशिखामणौ भक्तस्थले विभूतिरुद्राक्षधारणप्रसङ्गो नाम सप्तमः परिच्छेदः समाप्तः।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ब्राह्मणादिवर्णब्रह्मचर्याद्याश्रमसंयुतेषु सर्वेषु विषये इह लोके विभूतिरुद्राक्षधरः समानो भस्मरुद्राक्षधर एक एव श्रुतिस्मृतिभ्यां चोद्यमानः श्लाघनीयः।।६७।।

इति श्रीमत्पदवाक्यप्रमाणपारवारधुरीणश्रीमरितोण्टदार्येण विरचितायां तत्त्वप्रदीपिकाख्यायां सिद्धान्तशिखामणिव्याख्यायां

सप्तमः परिच्छेदः समाप्तः।।

म्हणून वर्णाश्रमाच्या आचारधर्मानुसार वागणाऱ्या लोकात भस्म आणि रुद्राक्ष धारण करणाराच श्रेष्ठ होय असे सागतात— ब्राह्मणादी चार वर्ण आणि ब्रह्मचर्यादी चार आश्रम यांच्यातील आपापल्या आचारांत संपन्न असलेल्या सर्व लोकात भस्म धारण करणाराच सर्वश्रेष्ठ होय. श्रुतिस्मृती देखील त्याची स्तुती करतात.।।६७।।

सिद्धातशिखामणीतील भक्तस्थलातर्गत विभूती आणि रुद्राक्षधारण-स्थलाचे वर्णन असलेला सातवा परिच्छेद संपला.

सातवा परिच्छेद समाप्त।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अष्टमः परिच्छेदः

अथैवं शिवलिङ्गरुद्राक्षधारणसंपन्नः शिवतत्त्वप्रकाशार्थं पञ्चाक्षरीं जपेदिति पञ्चाक्षरीजपस्थलमगस्त्याय निरूपयति श्रीरेणुकः—

धृतश्रीभूतिरुद्राक्षः प्रयतो लिङ्गधारकः।
जपेत् पञ्चाक्षरीविद्यां शिवतत्त्वप्रबोधिनीम्।।१।।

धृतमाङ्गल्यभूतिरुद्राक्षपवित्रितः शिवलिङ्गधारकः शिवतत्त्वप्रबोधिनीं परशिवतत्त्वप्रकाशिनीं पञ्चाक्षरीविद्यां नमश्शिवायेति श्रीरुद्रमन्त्रप्रसिद्ध-पञ्चाक्षरीमन्त्रं जपेत्, मानसोपांशुवाचिकस्वरूपेणोच्चरेत् "जप अव्यक्तायां वाचि" इति धातोरित्यर्थः।।१।।

अशा रीतीने शिवलिंग, भस्म, रुद्राक्ष धारण केलेल्या साधकाने शिवतत्त्वप्रकाशासाठी पंचाक्षरी मंत्राचा जप करावा या उद्देशाने श्री रेणुकाचार्य अगस्तीमुनीला पंचाक्षरीजपस्थलाचा उपदेश करतात—विभूती-रुद्राक्ष-धारणाने पवित्र झालेल्या शिवलिंगधारक शिवभक्ताने परशिवतत्त्वाचे प्रकाशन करणारा व श्रीरुद्रात प्रसिद्ध असलेला नमःशिवाय या पंचाक्षरी मंत्राचा मानस, उपांशु व वाचिक रूपाने जप करावा.।।१।।

ननु शिवतत्त्वप्रकाशकानां मन्त्राणां बाहुल्यात् किमित्येष पञ्चाक्षरमन्त्र एव जप्य इत्यत्राह—

शिवतत्त्वात् परं नास्ति यथा तत्त्वान्तरं महत्।
तथा पञ्चाक्षरीमन्त्रान्नास्ति मन्त्रान्तरं महत्।।२।।

"शिव एको ध्येयः" इत्यादिश्रुतेः शिवतत्त्वात् परं व्यतिरिक्तं महद् बृहत् तत्त्वान्तरं यथा नास्ति, तथा पञ्चाक्षरीमन्त्राद् नमश्शिवायेति पञ्चाक्षरीमन्त्रात्, महद् मन्त्रान्तरं नास्तीत्यर्थः, "विद्यासु श्रुतिरुत्कृष्टा रुद्रैकादशिनी श्रुतौ । तत्र पञ्चाक्षरी तस्यां शिव इत्यक्षरद्वयम्।।" इति पौराणिकोक्तेः शिव इत्यक्षरद्वयस्य वेदसारत्वात्, तत्रत्याकारस्य ऋक्साम-संग्रहरूपत्वात्, तयोरकाराद्यत्वात्, इकारस्य यजुःसंग्रहरूपत्वात्, तस्येकारा-द्यत्वात्, शकारस्याथर्वसंग्रहरूपत्वात्, तस्य शकाराद्यत्वात्, वकारस्य व्याकरणसंग्रहरूपत्वात्, तस्य वकाराद्यत्वात्, एवं वेदवेदाङ्गसाररूपत्वात्

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तादृक् शिवशब्दघटितत्वेनैष पञ्चाक्षरीमन्त्र एव सर्वमन्त्रोत्कृष्ट इत्यर्थः।।२।।

शिवतत्त्वप्रकाशन करणारे अनेक मंत्र असले तरी पंचाक्षरी महामंत्राचाच जप का करावा? या विषयी सांगतात—'शिव हाच ध्यान करण्यास योग्य आहे' असे श्रुतींनी सांगितले आहे. शिवतत्त्वापेक्षा अन्य कोणतेही तत्त्व श्रेष्ठ नाही, तसेच 'नमःशिवाय' या पचाक्षरी मंत्रापेक्षा अन्य कोणताही मंत्र श्रेष्ठ नाही. 'विद्येमध्ये श्रुती, श्रुतीमध्ये रुद्र, रुद्रामध्ये पचाक्षरी आणि पंचाक्षरीत शिव ही दोन अक्षरे श्रेष्ठ आहेत' असे पुराणात म्हटले आहे. 'शिव' ही दोन अक्षरे वेदमय अर्थात् वेदांचे साररूप आहेत. श्+इ=शि, व्+अ=व=शिव. अकारापासून ऋग्वेद व सामवेद यांचा प्रारंभ होत असल्यामुळे ह्या दोन वेदांचे सार अकारात सामावलेले आहे. इकारापासून यजुर्वेदाचा प्रारंभ होतो म्हणून इकारात या वेदाचे सार साठविलेले आहे. शकारापासून अथर्वणवेदाचा आरंभ होत असल्यामुळे शकारात अथर्वणवेदाचे सार समाविष्ट आहे. वकारापासून व्याकरणाचा प्रारंभ होतो म्हणून वकारात व्याकरणाचे सार सामावलेले आहे. या प्रमाणे 'शिव' शब्द वेद-वेदांगांचे सार असल्यामुळे व 'शिव' हा शब्द पंचाक्षरी मत्राचा घटक असल्यामुळे पंचाक्षरी मंत्र हा सर्व मंत्रामध्ये श्रेष्ठ आहे.।।२।।

एवं पञ्चाक्षरीमन्त्रे शिवे च ज्ञाते सति मन्त्रान्तरैर्देवतान्तरैः किं प्रयोजनमित्यत्राह—

ज्ञाते पञ्चाक्षरीमन्त्रे किं वा मन्त्रान्तरैः फलम्।
ज्ञाते शिवे जगन्मूले किं फलं देवतान्तरैः।।३।।

"एको ह वै नारायण आसीत्" इति श्रुतेर्विष्ण्वादिसकलविश्वमूलत्वेन परशिवे ज्ञाते सति तदीयसृष्ट्यन्तर्गतत्वेन जननमरणपरिपीडितैर्विष्ण्वादिदेवतान्तरैः किं फलम्? न किञ्चित्फलमित्यर्थः। "नहि भिक्षुको भिक्षुकान्तरं याचयति, सत्यन्यस्मिन् भिक्षुके दातरि" इति न्यायात्। ननु—"एको ह वै नारायण आसीत्" इत्यत्र "सदेव सोम्येदमग्र आसीत्" इत्यादिब्रह्मप्रतिपादकवाक्यसाम्यताश्रवणा कथमुत्पत्तिपरत्वमिति चेन्न, "रोहितो लोहितादासीच्छक्तेरासीत् पराशरः" इतिवदुत्पत्तिसत्तापरतोपपत्तेः। न च तद्वद् हेतुश्रवणाभावात् कथमुत्पत्तिपरत्वमिति वाच्यम्,

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"ब्रह्मविष्णुरुद्रेन्द्रास्ते संप्रसूयन्ते" इति शिखोपनिषद्वचनाद् विष्णोरुत्पत्तेः श्रूयमाणत्वात्, तदनुसारेणोत्पत्तिपरतासंभवात्। न चात्र नारायणस्योत्पत्तिर्न श्रूयते, किन्तु विष्णोरेव, तस्य नारायणांशीभूतत्वात्, "आदित्यानामहं विष्णुः" इति गीतत्वाद् अंशपरत्वमेवेति वाच्यम्, मुख्यब्रह्मरुद्रमध्यपठित-विष्णुशब्दस्यांशपरत्वासंभवात्, प्रायःपाठविरोधात्, "विष्णुरित्था परममस्य विद्वान् जातो बृहन्नभि पाति तृतीयम्" इति श्रुतेर्महाविष्णोरेवोत्पत्ति-श्रवणाच्च, "अजात इत्येवं कश्चिद्भीरुः प्रपद्यते। रुद्र यत्ते दक्षिणं मुखं तेन मां पाहि नित्यम्।।" इति श्वेताश्वतरश्रुतेः कारणीभूतमहारुद्रस्या-जातत्वश्रवणाच्चेति दिक्।।३।।

आता पचाक्षरीमंत्राचे ज्ञान झाल्यावर अन्य मंत्राची आवश्यकता नाही, आणि परशिवाचे ज्ञान झाल्यावर अन्य देवताचे ज्ञान करून घेण्याची गरज नाही असे सागतात—ब्रह्मा, विष्णु इत्यादी देवांना जन्ममृत्यू असल्यामुळे ते मायेच्या आधीन होत. म्हणून ते आणवादी मलांनी युक्त आहेत. असे श्रुतींमध्ये म्हटले आहे. फक्त शिवच अजात (जन्मरहित) असून त्रिमलापासून मुक्त आहे. म्हणून अनादी शिवाचे ज्ञान झाल्यावर इतर देवाच्या ज्ञानाची आवश्यकता उरत नाही. तसेच सर्व मंत्राचे मूळ असणाऱ्या पचाक्षरीमंत्राचे ज्ञान झाल्यावर इतर कोणत्याही मंत्राची गरज राहात नाही. म्हणून पंचाक्षरी मंत्राला मूलमंत्र असे नाव आहे.।।३।।

ननु सप्तकोटिमहामन्त्रेषु कोऽप्यस्य समानमन्त्रो नास्ति वेत्यत्राह—

सप्तकोटिषु मन्त्रेषु मन्त्रः पञ्चाक्षरो महान्।
ब्रह्मविष्ण्वादिदेवेषु यथा शम्भुर्महत्तरः।।४।।

"सर्वमन्यत् परित्यज्य हेयान् विष्ण्वादिकान् सुरान्। शिव एव सदा ध्येयः सर्वसंसारनाशनः।।" इति पिप्पलादश्रुतेः, "अजात इत्युदाहृतः" इति श्रुतेश्च मुमुक्षूपास्यत्वादजातत्वेन ब्रह्मादिषु शिवो यथा महान्, तथा सप्तकोटिमहामन्त्रेषु वेदसारत्वात् पञ्चाक्षरमन्त्रो महानित्यर्थः।।४।।

सात कोटी मंत्रांत पचाक्षरी मंत्राचे वैशिष्ट्य सांगतात— 'विष्णुआदी सर्व देवांचा त्याग करून केवळ एका शिवाचे ध्यान केल्यास सर्व संसाराचा नाश होतो'. असे पिप्पलादीश्रुतीचे वचन आहे. शिव अजात असल्याने मुमुक्षू लोकांचे उपास्यदैवत आहे. ब्रह्मादी तेहतीस कोटी देवतांत जसा शिव श्रेष्ठ आहे, तसा सात

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कोटी मंत्रांत पचाक्षरी मत्र श्रेष्ठ आहे. कारण हा मंत्र म्हणजे वेदांचे सारच होय.।।४।।

ननु विष्ण्वादिसकलविश्वमूलत्वात् शिवः सर्वोत्तमो भवतु, पञ्चाक्षरीमन्त्रस्य कथं सर्वोत्तमत्वमित्याशङ्क्याह—

अशेषजगतां हेतुः परमात्मा महेश्वरः।
तस्य वाचकमन्त्रोऽयं सर्वमन्त्रैककारणम्।।५।।

शिवो यथा सकलजगत्कारणम्, तथा तद्वाचकमन्त्रोऽपि सकलमन्त्रकारणमित्यर्थः ।।५।।

सर्व जगाचे मूळ कारण असा शिव, विष्णू आदी सर्व देवतात श्रेष्ठ असला तर असू दे, परंतु पचाक्षरीमत्र सर्व मत्रापेक्षा श्रेष्ठ आहे हे कसे? तर, तिन्ही लोकाच्या उत्पत्ति-स्थिति-लय यांना मूळ कारण परमात्मा महेश्वर आहे. आणि हा मंत्र त्याचाच वाचक असल्यामुळे सर्व मत्रापेक्षा श्रेष्ठ ठरतो व सर्व मत्राना कारण होतो. म्हणून पचाक्षरी मंत्र सर्व मत्रात श्रेष्ठ होय.।।५।।

तत्कथमित्यत्राह—

तस्याभिधानमन्त्रोऽयमभिधेयश्च स स्मृतः।
अभिधानाभिधेयत्वान्मन्त्रात् सिद्धः परः शिवः।।६।।

अयं मन्त्रस्तस्य शिवस्य अभिधानमन्त्रः, नाम्नो मन्त्र इत्यर्थः, सः शिवः अभिधेयश्च तन्मन्त्रेणाभिधातुं योग्य इति स्मृतः, अभिधानाभिधेयत्वात्, शिवाभिधानाभिधेयत्वात्। मन्त्रादस्मान्मन्त्रात् परः शिवः सिद्धः प्रकाशितः, मन्त्राणां यजनीयदेवताप्रकाशकत्वेनैतन्मन्त्राभावे शिवस्य स्फूर्तिरिव न स्यात्। किं तावतेति नाशङ्कनीयम्, शिवस्य सकलतत्त्वोपादानकारणत्वात् तद्वाचकपञ्चाशद्वर्णमयत्वं च युक्तमिति तस्य सकलमन्त्रमूलत्वात् तत्प्रकाशकत्वेन सकलमन्त्रकारणत्वमिति। तत्कथमिति चेत्, उच्यते, "अथाद्यास्तिथयः सर्वाः स्वरा बिन्द्ववसानकाः। तदन्तः कालयोगेन सोमसूर्यौ प्रकीर्तितौ।। पृथिव्यादीनि तत्त्वानि पुरुषान्तानि पञ्चसु। क्रमात् कादिषु वर्गेषु मकारान्तेषु सुव्रते।। वाय्वग्निसलिलेन्द्राणां धारणानां चतुष्टयम्।। तदूर्ध्वे शादि विख्यातं पुरस्ताद् ब्रह्मपञ्चकम्। आमूलात्तत्क्रमाज्ज्ञेया क्षान्ता सृष्टिरुदाहृता।। सर्वेषां चैव मन्त्राणां विद्यानां च यशस्विनी। इयं योनिः समाख्याता सर्वतन्त्रेषु सर्वदा।।"

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इति श्रीपरात्रिंशिकाशास्त्रस्थित्या शिव इत्यत्र शकारस्य ब्रह्मादिपञ्चब्रह्मवाचकत्वात्, वकारस्य मायातत्त्ववाचकत्वेन तत्कार्यरूपकलादिक्षितिपर्यन्तत्रिंशत्तत्त्वात्मकत्वात्, एवं शकारवकारयोः षट्त्रिंशत्तत्त्ववाचकत्वात्, अकारस्य शिवतत्त्वकलारूपषोडशस्वरमयत्वात्, इकारस्येच्छाशक्तिवाचकत्वात्, एवं शब्दार्थमयप्रपञ्चयोरन्तर्भावात् सकलमन्त्रकारणत्वम्, मातृकादेः सकलशब्दप्रपञ्चोपादानकारणत्वात्। "पञ्चाशन्निजदेहजाक्षरभवैर्नानाविधैर्धातुभिर्बह्वर्थैः पदवाक्यमानजनकैरर्थाविनाभावितैः। साभिप्रायसदर्थकर्मफलदानन्दैरनन्तैरिदं विश्वं व्याप्य चिदात्मनाहमहमित्युज्जृम्भसे मातृके।। पञ्चाशद्वर्णमालाबहुविधनिनदोच्चारणात् तत्त्वजालव्यक्तिव्यापारसत्तानिरिशगुरुमुखाम्नायविद्यास्वरूपाः। धात्वाद्युत्पत्तिपूर्वं श्रुतिमुखविविधानेकसिद्धान्तविद्या नानाभाषाः क्रियाभिः प्रकटयति यतः सैव ते साङ्गवेदे।।" इति दूर्वासभगवदुक्तेरिति ।।६।।

तो कसा? तर, पंचाक्षरीमंत्र परशिवाचे अभिधान आहे आणि परशिव हा अभिधेय होय. अशा रीतीने या मंत्रात आणि परमात्म्यात अभिधान-अभिधेय संबंध असल्यामुळे हा मंत्रच परमात्म्याची सिद्धी करतो. या मंत्रामुळे परमात्मा प्रकाशित होतो. शिव हा सर्व तत्त्वांचा उपादान कारण आहे आणि तत्त्व-वाचक सर्व वर्ण शिवतत्त्वमय आहेत. असे असले तरीही 'शिव' या शब्दांतील वर्णांचा संबंध विशेषरूपाने पुढीलप्रमाणे सांगितला जातो. 'शिव' हा शब्द 'श्' आणि 'व्' ही व्यंजने आणि 'इ' व 'अ' या स्वरांच्या संयोगाने बनला आहे. 'श्' हे व्यंजन सदाशिवादिपंचब्रह्माचे द्योतक आहे. 'व्' हे व्यंजन कलादिपृथ्वीपर्यंतच्या तीस तत्त्वांना कारण असलेल्या मायेचे वाचक आहे. 'अ'कार परशिवाचा वाचक तर 'इ'कार हा शक्तीचा वाचक आहे. त्यामुळे 'शिव' या शब्दामध्ये शिव आणि शक्तीचा संयोग झालेला आहे. म्हणून 'शिव' शब्दयुक्त पंचाक्षरी मंत्र सर्व विश्वाचा द्योतक असून तो सर्व तत्त्वांचे मूळ आणि सर्व सिद्धींचे केंद्र आहे.।।६।।

नन्वेवं चेद् द्व्यक्षरत्वमेव युक्तम्, किमिति पञ्चाक्षररूपेण सर्वश्रुतिशिरोगतः सन् मन्त्रोऽयं प्रतिभाति? अत्र नमस्कारेण जीवत्वमित्यत्राह—

नमःशब्दं वदेत् पूर्वं शिवायेति ततः परम्।
मन्त्रः पञ्चाक्षरो ह्येष सर्वश्रुतिशिरोगतः।।७।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

शिवजीवैक्यप्रकाशनार्थं नमःशब्दपूर्वकत्वेन चित्तत्त्वेन च पञ्चाक्षररूपेण सर्वश्रुतिशिरोगतः सन् मन्त्रोऽयं प्रतिभाति। अत्र नमस्कारेण जीवत्वम्, शिवशब्देन परब्रह्मत्वम्, आयेत्यैक्यम्, "अय गतौ" इति धातोरिति भावः।।७।।

'शिव' या दोन अक्षराचे एवढे महत्त्व असल्यास त्या दोन अक्षरांचाच मंत्र असू द्यावा, पंचाक्षर मंत्राची काय आवश्यकता आहे? याचे उत्तर असे की, नमःशिवाय या मंत्रात नमः पद हे जीवात्म्याचे वाचक आहे तर शिव शब्द परशिवब्रह्मवाचक असून अय या शब्दाने दोघांतील अभेद दाखविला जातो. यामुळे शिवजीवाचे ऐक्य अथवा सामरस्य दाखविणारा हा मत्र आहे. याच्या जपाने शिवजीवाचे ऐक्य सिद्ध होते. हा पाच अक्षराचा मंत्र सर्व वेदात श्रेष्ठ गणला जात असून तो पंचाक्षर मत्र या नावाने ओळखला जातो.।।७।।

ननु सच्चिद्घनस्य परब्रह्मणः शिव इत्यभिधानं कथमित्यत्राह—

आदितः परिशुद्धत्वान्मलत्रयवियोगतः।
शिव इत्युच्यते शम्भुश्चिदानन्दघनः प्रभुः।।८।।

चिदानन्दघनः सच्चिदानन्दस्वरूपः प्रभुः स्वतन्त्रः शम्भुः सुखभोक्तृत्वात् सुखप्रदत्वाच्च परब्रह्म आदितः कदापि मलत्रयवियोगत आणवादिमलत्रयसम्बन्धाभावेन परिशुद्धत्वाद् निर्मलत्वात् शिव इत्युच्यते, "वश कान्तौ" इति धातोः स्वच्छप्रकाशरूपत्वादिति भावः।।८।।

आता सच्चिदानंदस्वरूपी परब्रह्माला शिव हे अभिधान का आहे, ते सांगतात—सच्चिदानंदस्वरूप परशिवब्रह्माला आणवादी मलत्रयाचा सबंध मुळीच नसल्यामुळे तो अत्यंत निर्मळ अर्थात् परिशुद्ध असतो. म्हणून त्यास शिव हे नाव प्राप्त झाले आहे. शिव या शब्दाचा अर्थ स्वच्छ प्रकाश असाही आहे. म्हणून परशिवब्रह्म स्वच्छ प्रकाशरूप असल्यानेही त्यास शिव हे अभिधान आहे.।।८।।

अथ सकलमङ्गलावासभूमित्वाच्च शिवशब्दाभिधेयं ब्रह्मेत्याह—

आस्पदत्वादशेषाणां मङ्गलानां विशेषतः।
शिवशब्दाभिधेयो हि देवदेवस्त्रियम्बकः।।९।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अत्र त्रियम्बकशब्देन सृष्टिस्थित्यादिकारणं परब्रह्मोच्यते, सूर्यादीनां सृष्ट्यादिकारणत्वात्, "ऋतं सत्यं परं ब्रह्म पुरुषं कृष्णपिङ्गलम्। ऊर्ध्वरेतं विरूपाक्षम्" इति श्रुतेः। त्रियम्बको देवदेवो ब्रह्मादीनामपि देवः परमेश्वरः, अशेषाणां समस्तानां मङ्गलानां विशेषतो विष्ण्वादिभ्योऽधिकत आस्पदत्वाद् आश्रयत्वात् शिवशब्दाभिधेयो हि, "कल्याणं मङ्गलं शिवम्" इति प्रसिद्धत्वात्।।९।।

तो परशिवब्रह्म केवळ प्रकाशकच नसून मंगलस्वरूपही आहे असे सांगतात—सृष्टि-स्थिति-लयास कारणीभूत असणाऱ्या त्या परशिवब्रह्माला त्र्यंबक असे नाव असून तो ब्रह्मादिदेवांचाही देव आणि समस्त मंगलांचे आश्रयस्थान आहे. म्हणूनच शिव शब्दाचा अर्थ मंगल असा असून तो सर्वांना मंगलकारक असल्यामुळे त्या परशिवब्रह्माला शिव हे यथार्थ अभिधान प्राप्त झाले आहे.।।९।।

नन्वनेकनाम्नां विद्यमानत्वात् शिवशब्देनैव किमिति परब्रह्माभिधीयते, इत्यत्राह—

शिव इत्यक्षरद्वन्द्वं परब्रह्मप्रकाशकम्।
मुख्यवृत्त्या तदन्येषां शब्दानां गुणवृत्तयः।।१०।।

शिव इत्यक्षरद्वयं मुख्यवृत्त्या परब्रह्मप्रकाशकम्, तदन्येषां शब्दानां शिवशब्दातिरिक्तभवादिशब्दानां गुणवृत्त्या सिंहो माणवक इत्यादिवद् गुणयोगेन परब्रह्मप्रकाशकत्वमित्यर्थः।।१०।।

अनेक नामे असताना देखील केवळ 'शिव' शब्दानेच परब्रह्म का ओळखले जाते? तर, 'शिव' ही दोन अक्षरेच मुख्य वृत्तीने परब्रह्माची साक्षात् प्रकाशक होत. आणि त्याशिवाय भव, शंकर, ईशान इत्यादी इतर नावे गुणवृत्तीने परब्रह्माची प्रकाशक आहेत. म्हणजे त्याच्या काही गुणांद्वारा त्याचे स्वरूप-वर्णन करतात. (सरळ व साक्षात स्वरूपाचा बोध करणारी ती मुख्यवृत्ती तर परंपरादी संबंधाने विशिष्ट स्वरूपाचा बोध करणारी ती गुणवृत्ती-) म्हणून 'शिव' शब्दानेच परब्रह्म ओळखले जाते.।।१०।।

अथोक्तार्थमुपसंहरति—

तस्मान्मुख्यतरं नाम शिव इत्यक्षरद्वयम्।
सच्चिदानन्दरूपस्य शम्भोरमिततेजसः।।११।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

एतन्नामावलम्बेन मन्त्रः पञ्चाक्षरः स्मृतः।

महानिति शेषः। शिव इत्यक्षरद्वयमपरिमितप्रकाशरूपस्य सच्चिदानन्दघनस्य शम्भोः परब्रह्मणो मुख्यतरमत्यन्तमुख्यं नाम । एतन्नामावलम्बेन एतन्नामघटितत्वेन पञ्चाक्षरो मन्त्रो महानिति स्मृत इत्यर्थः।।११।।

अपरिमित, तेजस्वी, सच्चिदानदस्वरूपी असा जो परब्रह्म शभू आहे, त्याचेच मुख्य व श्रेष्ठ नाव 'शिव' होय. पचाक्षरी मत्र हा शिव शब्दाने घटित असल्यामुळे त्याला अत्यंत महत्त्व प्राप्त झाले आहे.।।११।।

अथ किमनेन कर्तव्यं किं फलमित्यत्र दृष्टान्तपूर्वकमाह—

यस्मादतः सदा जप्यो मोक्षकाङ्क्षिभिरादरात्।।१२।।
यथानादिर्महादेवः सिद्धः संसारमोचकः।
तथा पञ्चाक्षरो मन्त्रः संसारक्षयकारकः।।१३।।

यस्मात् शिवनामघटितत्वेन पञ्चाक्षरमन्त्रो महान्, अतः तस्मात् कारणाद् मोक्षकाङ्क्षिभिः पुरुषैर् आदरात् सदा जप्यः। अत्र दृष्टान्तः— "सर्वमन्यत् परित्यज्य हेयान् विष्ण्वादिकान् सुरान्। शिव एव सदा ध्येयः सर्वसंसारनाशनः।।" इति पिप्पलादश्रुतेर् अनादिभूतः परशिवो यथा संसारपाशविमोचक इति प्रसिद्धः, तथा पञ्चाक्षरमन्त्रः संसारपाशक्षयकारक इति प्रसिद्धः, "अशेषपाशविच्छित्त्यै शिव इत्यक्षरद्वयम्। अलं नमस्क्रियायुक्तो मुक्तये कल्पितो मनुः।।" इति ब्रह्मोत्तरखण्डवचनादिति ।।१२-१३।।

पंचाक्षरी मंत्र श्रेष्ठ असला तरी आम्ही काय करावे? तर, मोक्षाची इच्छा बाळगणाऱ्या मुमुक्षू शिवभक्ताने शिव शब्दाने घटित अशा पंचाक्षरी मंत्राचा सदोदित आदरपूर्वक जप करावा. अनादी असा परशिव संसारबंधनातून मुक्त करणारा आहे अशी त्याची प्रसिद्धी आहे. त्याच प्रमाणे ससार-पाशाचा क्षय करणारा अशी शिवपंचाक्षरमंत्राची ख्याती आहे. 'शिव ही दोन अक्षरे सर्व पाशांचा नाश करण्यास समर्थ असून नमस्काराने युक्त असा 'नमःशिवाय' हा पंचाक्षरमंत्र मुक्तीसाठी निर्माण झालेला आहे'. अशा प्रकारे ब्रह्मोत्तर खंडातसुद्धा या मंत्राचे महत्त्व वर्णिले आहे.।।१२-१३।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

नन्वयं मन्त्रः शिववत् संसारक्षयकारकश्चेत्, विश्वकारणत्वं (ण) तद्वदस्ति किमित्यत्राह—

पञ्चभूतानि सर्वाणि पञ्चतन्मात्रकाणि च।
ज्ञानेन्द्रियाणि पञ्चापि पञ्चकर्मेन्द्रियाणि च।।१४।।
पञ्चब्रह्माणि पञ्चापि कृत्यानि सह कारणैः।
बोध्यानि पञ्चभिर्वर्णैः पञ्चाक्षरमहामनोः।।१५।।

पृथिव्यादिपञ्चभूतानि, गन्धादिपञ्चतन्मात्राः, ज्ञानशक्तिरूपघ्राणादिपञ्चज्ञानेन्द्रियाणि, क्रियाशक्तिरूपोपस्थादिपञ्चकर्मेन्द्रियाणि, पञ्चसादाख्यपञ्चब्रह्मपर्यायाचारादिपञ्चलिङ्गानि, भवमृडहरादिकारणेशैः सह सृष्ट्यादिपञ्चकृत्यानि पञ्चविधानि सर्वाण्यपि पञ्चाक्षरमहामन्त्रस्य पञ्चभिर्वर्णैर्बोध्यानि प्रकाश्यानीत्यर्थः।।१४-१५।।

पंचाक्षरी मंत्र हा शिवाप्रमाणेच संसाराचा नाश करणारा असेल तर हा सृष्टीचे कारण देखील आहे काय? याचे उत्तर असे— पंचमहाभूते (पृथ्वी, आप, तेज, वायू व आकाश), पंच तन्मात्रा (गंध, रस, रूप, स्पर्श व शब्द), पंचज्ञानेंद्रिये (डोळे, नाक, कान, जीभ व त्वचा), पंचकर्मेंद्रिये (वाक्, हस्त, पाद, शिश्न व गुदस्थान), पंच सादाख्य (शिवसादाख्य, अमूर्तसादाख्य, मूर्तसादाख्य, कर्तृसादाख्य व कर्मसादाख्य), सदाशिव, ईश, ब्रह्म, ईश्वर व ईशान या पंचब्रह्माचे पर्याय असणारी आचारलिंग, गुरुलिंग, शिवलिंग, जंगमलिंग व प्रसादलिंग हीं पांच लिंगे आणि सृष्टी, स्थिती, लय, निग्रह व अनुग्रह ही पंचकृत्ये करणारी परमात्म्याची भव, मृड, हर इत्यादी पांच रूपे ही सर्व पंचाक्षरी मंत्रापासूनच प्रकाशित झालेली आहेत. म्हणून पंचाक्षरी मंत्र सृष्टीचा कारण सुद्धा आहे.।।१४–१५।।

नन्वालोकेन घटादिवत् प्रकाश्यानि वा स्वर्णकुण्डलादिवत् प्रकाश्यानि वेत्यत्राह—

पञ्चधा पञ्चधा यानि प्रसिद्धानि विशेषतः।
तानि शर्वाणि वस्तूनि पञ्चाक्षरमयानि हि।।१६।।

पञ्चशक्तिपञ्चाङ्गुलिवचनादानादिपञ्चकर्मेन्द्रियार्थाः, मनोबुद्ध्यहङ्कारप्रकृतिपुरुषादीनि पञ्च पञ्च प्रकारेण यानि विशेषतः प्रसिद्धानि, तानि

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सर्वाणि स्वर्णकुण्डलन्यायेन पञ्चाक्षरमयानि पञ्चाक्षरकार्याणि तत्प्रकाश्यानि चेत्यर्थः, वर्णानां शक्तिरूपत्वादिति।।१६।।

पंचाक्षर मंत्र उपरोक्त वस्तूंचे प्रकाशन कसे करतो? दिवा घटाला प्रकाशित करतो तसा की सुवर्णच जसे कुंडलाच्या रूपाने प्रकाशित होते तसे हे आहे? तर, पराशक्ती, आदिशक्ती, इच्छाशक्ती, ज्ञानशक्ती व क्रियाशक्ती ह्या पाच शक्ती, आचारादी पंचलिंगे, पंचज्ञानेंद्रिये, पंच कर्मेंद्रिये, मन, बुद्धी, अहंकार, प्रकृती व पुरुष ही पाच तत्त्वे आणि अशा पाच संख्येने निर्दिष्ट होणाऱ्या सर्व वस्तू पंचाक्षर मंत्रातूनच निर्माण झाल्या आहेत. म्हणून हे सर्व सुवर्णकुंडल न्यायाने पंचाक्षरमंत्रमय आहे.।।१६।।

ननु मोक्षकारणं प्रणवः, पञ्चाक्षर्यां तदभावात् कथं मोक्षप्रदत्व-मित्यत्राह—

ॐकारपूर्वो मन्त्रोऽयं पञ्चाक्षरमयः परः।
शैवागमेषु वेदेषु षडक्षर इति स्मृतः।।१७।।

पर उक्तप्रकारेण सर्वोत्कृष्टः पञ्चाक्षरमयोऽयं मन्त्रः ॐकारपूर्वः षडक्षर इति शिवागमेषु वेदेषु स्मृतः। श्रीरुद्रे— "नमस्ताराय नमः शम्भवे च" इति, ईशानमन्त्रान्ते— "मे अस्तु सदाशिवोम्" इति च श्रूयमाणत्वात्। "ॐकारात्मतया भाति शान्त्यतीतः परः शिवः" इत्यागमोक्तेः, "शिवो वा प्रणवः प्रोक्तः प्रणवो वा शिवः स्मृतः। वाच्यवाचकयोर्भेदो नात्यन्तं विद्यते क्वचित्।।" इति पौराणिकोक्तेश्च शिवप्रणवयोरभेदाद् ॐकारपूर्वत्वेन षडक्षर इत्यर्थः।।१७।।

मोक्षाचे कारण प्रणव (ॐकार) आहे, परंतु पंचाक्षरी मंत्रात प्रणव नसल्यामुळे तो मोक्षाचे कारण कसा होईल? याचे उत्तर असे—पंचाक्षरमंत्र ॐकारपूर्वक 'ॐ नमः शिवाय' असा उच्चारला जातो. हा षडक्षरमत्र या नावाने शैवागमात व वेदांत प्रसिद्ध आहे. 'तारक प्रणवरूप शंभूला वंदन असो' असे रुद्रात म्हटले आहे. 'ॐकाररूप सदाशिव माझा होऊ दे' असे ईशान मंत्रात म्हटले आहे. 'ॐकारस्वरूपाने शांत्यतीत असा परशिव प्रकाशतो' अशी आगमाची उक्ती आहे. 'शिवाला प्रणव व प्रणवाला शिव म्हणावे. वाच्य व वाचक यांच्यात अत्यंत भेद असत नाही' असे पुराणात म्हटले आहे. शिव हा वाच्य व प्रणव हा वाचक होय. प्रणव व शिव यात भेद नाही. म्हणून शिव शब्दयुक्त पंचाक्षर मत्र असो

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अथवा प्रणवयुक्त षडक्षरमंत्र असो दोन्हीही मोक्षकारक आहेत.।।१७।।

अथ—"प्रथमं तारकारूपं द्वितीयं दण्ड उच्यते। तृतीयं कुण्डलाकारं चतुर्थं चार्धचन्द्रकम्।। पञ्चमं दर्पणाकारं षष्ठं ज्योतिःस्वरूपकम्। नकारस्तारकारूपं मकारो दण्ड उच्यते।। शिकारः कुण्डलाकारो वकारश्चार्धचन्द्रकः। यकारो दर्पणाकार ॐकारः पञ्चवर्णराट्।।" इति शिवागमवचनात् पञ्चाक्षरकल्पतरोर्बीजभूतस्य ॐकारस्य माहात्म्यं सूत्रत्रयेण निरूपयति—

मन्त्रन्यासादिभूतेन प्रणवेन महामनोः।
प्रबोध्यते महादेवः केवलश्चित्सुखात्मकः।।१८।।

महामन्त्ररूपस्यास्य पञ्चाक्षरमन्त्रस्यादिभूतेन प्रणवेन सच्चिदानन्दात्मकः परशिवः प्रकाश्यत इत्यर्थः, "यो वै रुद्रः स भगवान्" इत्युपक्रम्य "य ॐकारः स प्रणवो यः प्रणवः स सर्वव्यापी यः सर्वव्यापी सोऽनन्तो योऽनन्तस्तत्तारं यत्तारं तत्सूक्ष्मं यत्सूक्ष्मं तच्छुक्लं यच्छुक्लं तद्वैद्युतं यद्वैद्युतं तत्परंब्रह्म स एकः स एको रुद्रः स ईशानः स भगवान् स महेश्वरः स महादेवः" इत्यथर्वशिरःश्रुत्या प्रणव एव सच्चिदानन्दात्मकं परब्रह्मेति श्रूयमाणत्वादिति।।१८।।

पंचाक्षररूपी कल्पवृक्षाचे बीज असणाऱ्या ॐकाराचे स्वरूप तीन श्लोकातून सांगतात—पंचाक्षर मंत्राच्या आधी असलेल्या ॐकाराने चिदानंदरूपी शिवाचा बोध होतो. अथर्वशिरश्रुतीत असे म्हटले आहे की, जो रुद्र आहे तोच प्रणव असून तो सर्वव्यापी, अनंत, तारक, सूक्ष्म, परात्पर, ब्रह्म, अद्वय, रुद्र, ईशान, भगवान, महेश्वर, महादेव, इत्यादी नावांनी ओळखला जातो. एकूण सार असे की प्रणवच सच्चिदानंद परब्रह्म होय.।।१८।।

ननु शिवः प्रणवेन विना न केनापि प्रकाश्यते वेत्यत्राह—

प्रणवेनैकवर्णेन परब्रह्म प्रकाश्यते।
अद्वितीयं परानन्दं शिवाख्यं निष्प्रपञ्चकम्।।१९।।

"शिवं परात्परं सूक्ष्मं नित्यं सर्वगमव्ययम्" इति शिवागमोक्तेः शिवाख्यं परानन्दं सच्चिदानन्दलक्षणम् अद्वितीयम् "एकमेवाद्वितीयम्" इति श्रुतेर्द्वितीयशून्यम्, "नेह नानास्ति किञ्चन" इति श्रुतेर्निष्प्रपञ्चकम्,

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अत एव प्रापञ्चिकभेदशून्यं परंब्रह्म प्रणवेनैकवर्णेन प्रणवरूपैकवर्णेन, प्रणवेनैवेत्यर्थः, प्रकाश्यते प्रबोध्यते, प्रणवांशीभूताकारोकारमकाराणां सच्चिदानन्दवाचकत्वादिति। एवं च नमश्शिवायेति पञ्चाक्षराण्याचारगुरुशिवचरप्रसादलिङ्गबीजाक्षराणि, ॐकारो महालिङ्गबीजमिति बीजवृक्षरूपप्रणवपञ्चाक्षर एव षट्स्थलबीजमिति तात्पर्यम्।।१९।।

प्रणवाशिवाय इतर कोणत्या मंत्राने परशिव प्रकाशित होतो की नाही? याचे उत्तर असे की, ज्या शिवाचे परात्पर, सूक्ष्म, नित्य, सर्वव्यापी व अव्यय असे शिवागमांनी वर्णन केले आहे, ज्याबद्दल एकमेव, अद्वितीय असे श्रुतींनी सांगितले आहे; त्याच्याशिवाय या जगात अन्य काहीही नाही असे ज्याच्याविषयी श्रुती बोलतात तो निष्प्रपंच, सच्चिदानंद, अद्वितीय परशिव ॐ या एकाच वर्णानें प्रकाशित होतो, बोधित होतो. प्रणवातील अंशभूत अकार, उकार व मकार हे सत्, चित् व आनंद याचे वाचक आहेत. 'नमः शिवाय' ही पाच अक्षरे आचारलिंग, गुरुलिंग, शिवलिंग, जंगमलिंग व प्रसादलिंग ह्या पाच लिंगाची बीजाक्षरे असून ॐकार हे महालिंगाचे बीजाक्षर होय. असा बीजवृक्षरूप प्रणवासह पंचाक्षरमंत्रच षट्स्थलाचे बीज आहे.।।१९।।

नन्वस्य लिङ्गाङ्गषट्स्थलयोगकारणस्य प्रणवस्य सच्चिदानन्दलक्षणब्रह्मप्रकाशकत्वमस्तु, निष्प्रपञ्चब्रह्मप्रतिपादकत्वं कथमित्यत्राजपागायत्रीमन्त्रयोगपूर्वकं तत्स्वरूपं प्रदर्शयति—

परमात्ममनुर्ज्ञेयः सोऽहंरूपः सनातनः।
जायते हंसयोर्लोपादोमित्येकाक्षरो मनुः।।२०।।

परमात्ममनुः परमात्ममन्त्रः सोऽहंरूपः प्रत्यभिज्ञानरूप इति ज्ञेयः, "योऽसौ पुरुषः सोऽहम्" इति श्रुतिगुरूपदेशस्वानुभवैर्विज्ञातुं योग्यः, एवं प्रतिदिनं षट्शताधिकमेकविंशतिसहस्रसंख्यातं जपित्वाथास्य भेदघटितत्वात् केवलकुम्भकेन सकारहकारयोस्त्यागात् सनातनो नित्यः ॐमित्येकाक्षरमनुर्जायते । ततः किमिति चेत्, उच्यते, सकारस्य चन्द्रबीजत्वेन वेद्यरूपत्वात्, हकारस्यार्कबीजत्वेन वेदनरूपत्वात्, एवंरूपसकारहकारयोस्त्यागाद् वृत्तिशून्यवेदकमात्रप्रकाशकरूप ॐकार एवावशिष्यत इति निष्प्रपञ्चब्रह्मप्रतिपादकः प्रणव इत्युक्तं भवति। तेन शिवजीवैक्यलक्षणलिङ्गाङ्गसामरस्यरूपश्रुत्यागमप्रसिद्धपरमुक्तिरिति बोध्यम्।।२०।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्रणव हा लिंगागषट्स्थलयोगाचे कारण व सच्चिदानंद ब्रह्माचा प्रकाशक आहे. परंतु तो निष्प्रपंच ब्रह्माचे प्रतिपादन करणारा आहे हे कसे? तर, त्याचे स्वरूप अजपा गायत्री मंत्राच्या योगाने स्पष्ट करतात—'सोऽहम्' हा अजपा गायत्री मंत्र असून तो एका दिवसात २१,६०० वेळा जपला जातो. 'सोऽहम्' म्हणजे 'तो (परमात्मा) मीच आहे'. हा मंत्र भेदघटित असल्यामुळे त्या सकाराचा व हकाराचा त्याग करावा. स आणि ह या दोन्ही उपाधी असून सकार हे चंद्रबीज व हकार हे सूर्यबीज आहे. ह्या दोहोंचा त्याग केल्यावर ॐ हा एकाक्षर मंत्र अवशिष्ट राहतो. हा ॐकार म्हणजे प्रणव निष्प्रपंच ब्रह्माचा प्रतिपादक असून लिंगांगसामरस्यरूप परमुक्तीचे कारण आहे.।।२०।।

एवंस्थिते प्रणवेन निष्कलज्ञानं पञ्चाक्षर्या सकलज्ञानं प्रणवसहित-पञ्चाक्षर्या सकलनिष्कल (ज्ञान) मिति सूत्रद्वयेन प्रतिपादयति—

प्रणवेनैव मन्त्रेण बोध्यते निष्कलः शिवः।
पञ्चाक्षरेण मन्त्रेण पञ्चब्रह्मतनुस्तथा।।२१।।
निष्कलः संविदाकारः सकलो विश्वमूर्तितः।
उभयात्मा शिवो मन्त्रे षडक्षरमये स्थितः।।२२।।

अत्र निष्कलशब्देन शुद्धचिद्रूपत्वमुच्यते, सकलशब्देन प्रपञ्चविशिष्टत्व-मुच्यते। एवं च प्रणवमन्त्रेणैव निष्कलः शिवः सच्चिदानन्दात्मकः परशिवः बोध्यते प्रकाश्यते। पञ्चाक्षरेण मन्त्रेण पञ्चब्रह्मतनुः पञ्चब्रह्ममयः शिव-स्तथा बोध्यते, "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" इति श्रुतेः प्रकाश्यत इत्यर्थः। उभयात्मा शिवः सकलनिष्कलरूपः परमात्मा षडक्षरमये मन्त्रे प्रणवयुक्त-पञ्चाक्षर्यां स्थितः प्रकाशत इत्यर्थः। अत्र यद्यपि— "अकारं ब्रह्माणं नाभौ, उकारं विष्णुं हृदये, मकारं रुद्रं भ्रूमध्ये, ॐकारं सर्वेश्वरं द्वादशान्ते" इति तापनीयश्रुतेः प्रणवस्यापि सप्रपञ्चब्रह्ममयत्वमेव, तथापि वेद्यसंस्कारात्मक-बिन्दुघटितत्वेन सूक्ष्मप्रपञ्चमयत्वान्निष्कलत्वव्यपदेशः। स्थूलप्रपञ्चमयस्य पञ्चाक्षरमन्त्रद्रुमस्य प्रणवो बीजम्, तस्य अकारोकारमकारबिन्दुनादलक्षण-पञ्चावयवसंपन्नत्वादिति संक्षेपः।।२१-२२।।

प्रणवयुक्त पचाक्षरी महामंत्राच्या योगाने परमात्म्याच्या सकल निष्कल रूपाचा बोध होतो, असे दोन श्लोकांत सांगतात— प्रणवामुळे परमात्म्याच्या निष्कल स्वरूपाचे व पंचाक्षरी मंत्राने परमात्म्याच्या सकल स्वरूपाचे ज्ञान होते. निष्कल म्हणजे शुद्ध

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

चिन्मय ब्रह्म आणि सकल म्हणजे सगुण ईश्वर किंवा सद्योजातादिपंचब्रह्मस्वरूप होय. प्रणवमंत्राने निष्कल शिवाचे आणि पंचाक्षरी मंत्राने पचब्रह्मस्वरूप शिवाचे ज्ञान होते. 'सर्वं खलु इद ब्रह्म' या श्रुतिवचनानुसार सर्व दृश्यमान चराचर जगत् हे ब्रह्मस्वरूपी आहे. सकल व निष्कल असा उभयस्वरूपी परशिव प्रणवयुक्त पंचाक्षरी मंत्रात प्रकाशतो. 'अकाररूपी ब्रह्मा नाभीत, उकाररूपी विष्णू हृदयात व मकार रूपी रुद्र भ्रूमध्यात असतात', असे तापनीय श्रुतीत सांगितले आहे. पचाक्षर मंत्र वृक्ष असून प्रणव त्याचे बीज होय. अकार, उकार, मकार, बिंदू व नाद अशा पाच अवयवांनी प्रणव संपन्न आहे. अशा रीतीने प्रणवयुक्त पंचाक्षरी मंत्राने परमात्म्याच्या सकल निष्कल स्वरूपाचा बोध होतो.।।२१-२२।।

अथास्य पञ्चाक्षरमन्त्रस्य पर्यायनामानि कथयति—

मूलं विद्या शिवः शैवं सूत्रं पञ्चाक्षरस्तथा।
एतानि नामधेयानि कीर्तितानि महामनोः।।२३।।

महामनोः पञ्चाक्षरमहामन्त्रस्य मूलं विद्या शिवः शैवसूत्रं तथा पञ्चाक्षर इत्येतानि नामधेयानि वर्णसंख्यया कीर्तितानीत्यर्थः।।२३।।

आता त्या पंचाक्षरमंत्राची पर्यायनावे सांगतात—या शिवपंचाक्षर महामंत्राची मूल, विद्या, शिव, शैवसूत्र व पंचाक्षर अशी पाच पर्यायनामे मानली जातात. पंचाक्षरी मंत्र हा सर्व मंत्रांचे मूळ असल्याने त्याला मूल हे नाव आहे. ह्याच्या जपाने शुद्ध विद्येची प्राप्ती होते म्हणून याला विद्या म्हणतात. हा मंगलकारक असल्यामुळे याला शिव म्हणून ओळखले जाते. शिवसबधी सर्व तत्त्वाचा बोध या पंचाक्षर मंत्रामुळे होत असल्याने याला शैवसूत्र म्हणतात आणि हा मंत्र न, मः, शि, वा, य या पाच अक्षरांनी बनला असल्यामुळे याला पंचाक्षर हेही नाव प्राप्त झाले आहे.।।२३।।

अथैतादृशीं पञ्चाक्षरीं प्रणवेन सह षडक्षरीं विद्यां जपेदित्याह—

पञ्चाक्षरीमिमां विद्यां प्रणवेन षडक्षरीम्।
जपेत् समाहितो भूत्वा शिवपूजापरायणः।

समाहित एकाग्रचित्तः सन्नित्यर्थः। शिष्टं स्पष्टम्।।२४।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

आता प्रणवयुक्त मंत्राच्या जपाविषयी सागतात— हा पचाक्षरी मंत्र महाविद्या असून त्यात ॐकार मिसळला की ती षडक्षरी विद्या होते. एकाग्रतेने शिवपूजा करणाऱ्या शिवभक्ताने प्रणवयुक्त शिवपंचाक्षरी मंत्राचा जप करावा.।।२४।।

कथं जपेदित्यत्राह—

> प्राणायामत्रयं कृत्वा प्राङ्मुखोदङ्मुखोऽपि वा।
> चिन्तयन् हृदयाम्भोजे देवदेवं त्रियम्बकम्।।२५।।
> सर्वालङ्कारसंयुक्तं साम्बं चन्द्रार्धशेखरम्।
> जपेदेतां महाविद्यां शिवरूपामनन्यधीः।।२६।।

शुद्धे स्थले मृगाजिनचित्रकम्बलाद्यास्तरणे सिद्धपद्माद्यासने प्राङ्मुखोदङ्मुखो वोपविश्य भस्मरुद्राक्षालङ्कृतः सन् शिवलिङ्गपूजको भूत्वा "असंपूज्य शिवं स्तोत्रजपात् फलमुदीरितम्। संपूज्य च शिवं पश्चात् फलं वक्तुं न शक्यते।। सहस्रं वा तदर्धं वा तदर्धं वा शताष्टकम्।। अष्टोत्तरसहस्रं वा जपं कुर्यादतन्द्रधीः।। पूजाकोटिसमं स्तोत्रं स्तोत्रकोटिसमो जपः। जपकोटिसमं ध्यानं ध्यानकोटिसमो लयः।।" इति शिवागमवचनात् शिवपूजानन्तरं पुनः प्राणायामं कृत्वा करषडङ्गं विन्यस्य हृदयकमले त्रियम्बकं मण्डलत्रयगुणत्रयदेवत्रयादित्रिविधवस्तुकारणीभूतं देवदेवं भवानीपतिं सर्वालङ्कारसंयुक्तं चन्द्रार्धशेखरं शिवम् अनन्यधीः परिचिन्तयन्, एकां महाविद्यामुक्तविधेष्वेकप्रकारेण गुरूपदिष्टमार्गेण सगर्भजपं कुर्यादित्यर्थः।।२५-२६।।

जप कसा करावा याचे विधान सांगतात— जपाची जागा शुद्ध करून तेथे मृगाजिन अथवा चित्रित कंबळ आदी आसन घालावे त्यावर सिद्धासन अथवा पद्मासन घालून पूर्वाभिमुख किंवा उत्तराभिमुख बसावे. भस्मरुद्राक्षविभूषित शिवभक्ताने शिवपूजा करताना एकहजार आठ, एक हजार पाचशे, अडीशचे अथवा एकशे आठवेळा आपल्या अनुकूलते-प्रमाणे निश्चित सख्येने जप करावा. शिवपूजा केल्यावर केलेल्या जपाचे विषेश फल असल्यामुळे जप करणारांनी शिवपूजा करूनच जप करावा. शिवपूजेनंतर तीन प्राणायाम करावे. करन्यास व अंगन्यास करून आपल्या हृदयकमलात भुवनत्रय, गुणत्रय, देवत्रय आदि सर्व त्रिविध वस्तूंना कारणीभूत असलेल्या देवाधिदेव, भवानीपती,

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सर्वालकारयुक्त, मस्तकावर अर्धचंद्र धारण केलेल्या शिवाचे अनन्य बुद्धीने चिंतन करून गुरूने सांगितल्यानुसार पंचाक्षरी महाविद्येचा सगर्भ जप करावा. सगर्भ जप म्हणजे काय? याचे स्पष्टीकरण असे-१ कोटी पूजा केल्याने १ स्तोत्राची बरोबरी होते. १ कोटी स्त्रोत पठणाने १ वेळ जप केल्यासारखे होते. १ कोटी जपामुळे १ वेळ ध्यान केल्यासारखे होते आणि शिवस्वरूपात मनोलय साधल्याने १ कोटी वेळा ध्यान केल्यासारखे होते, असे शिवागमाचे वचन असल्यामुळे जप करणारांनी आपल्या मनाचा शिवामध्ये लय साधून केलेल्या जपाला सगर्भ जप म्हणतात.।।२५--२६।।

अथ जपभेदं प्रदर्शयति—

जपस्तु त्रिविधः प्रोक्तो वाचिकोपांशुमानसः।
श्रूयते यस्तु पार्श्वस्थैर्यथा वर्णसमन्वयः।।२७।।
वाचिकः स तु विज्ञेयः सर्वपापप्रभञ्जनः।
ईषत्स्पृष्ट्वाधरपुटं यो मन्दमभिधीयते।।२८।।
पार्श्वस्थैरश्रुतः सोऽयमुपांशुः परिकीर्तितः।
अस्पृष्ट्वाधरमस्पन्दि जिह्वाग्रं योऽन्तरात्मना।
भाव्यते वर्णरूपेण स मानस इति स्मृतः।।२९।।

जपो मन्त्रोच्चारस्तु वाचिक इति, उपांशुरिति, मानस इति त्रिविधः। तत्र यस्तु मन्त्रोच्चारो यथावर्णसमन्वयं वर्णसन्तानमनतिक्रम्य पार्श्वस्थैः श्रूयते, स मन्त्रोच्चारो मनोवचनकायजन्यसर्वपापनिवारको वाचिकजप इति विज्ञातुं योग्य इत्यर्थः। यः यो मन्त्रोच्चारः किञ्चिदधरपुटं स्पृष्ट्वा पार्श्वस्थैरश्रुतः सन् मन्दमभिधीयते, सोऽयमुपांशुजप इति परिकीर्तितः। यः यो मन्त्रोच्चारः अधरमस्पृष्ट्वा अस्पन्दिजिह्वाग्रं स्पन्दनरहितजिह्वाग्रं यथा भवति तथा वर्णरूपेणान्तरात्मना मन्त्राक्षरस्वरूपवता चित्तेन भाव्यते, सः स मन्त्रोच्चारो मानस इति मानसजप इति स्मृत इत्यर्थः ।।२७-२९।।

आता जपाचे भेद सांगतात—मंत्रोच्चाराला जप म्हणतात. वाचिक, उपांशु व मानस असे जपाचे तीन भेद आहेत. जवळ बसलेल्या लोकांना स्पष्ट ऐकू येईल असा मंत्राचा स्वच्छ उच्चार करणे हा वाचिक जप होय. या जपाने मन, वाणी व शरीर याच्यापासून उद्‌भवलेली पापे नष्ट होतात. ज्यामध्ये ओठाची किंचित हालचाल होते परंतु जवळ बसलेल्या लोकांना मंत्रोच्चार ऐकू येत नाहीत असा जप उपांशू जप होय. ओठ किंवा जीभ न

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

हालवता मनातल्या मनात मंत्रोच्चार केला जातो, तेव्हा त्यास मानसजप असे म्हणतात ।।२७-२८-२९।। ।

अथास्य जपयज्ञस्य माहात्म्यमुद्भावयति—

यावन्तः कर्मयज्ञाद्या व्रतदानतपांसि च।
सर्वे ते जपयज्ञस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्।।३०।।

यावन्तः कर्मयज्ञाद्या ज्योतिष्टोमादयः सन्ति, व्रतदानतपांसि यावन्ति सन्ति, ते सर्वे जपयज्ञस्य षोडशीं कलां प्रति षोडशभागेष्वेकभागं च प्रति, नार्हन्ति न समाना भवन्तीत्यर्थः।।३०।।

ह्या जपयज्ञाचे माहात्म्य सांगतात—ज्योतिष्टोमादी कर्मयज्ञ, चांद्रायणादी व्रते, गोभूदानादी दाने, पंचाग्नी आदी तपे ही सर्व एकत्र केली तरी शिवपंचाक्षरी महामंत्राच्या सोळाव्या हिश्श्याची देखील बरोबरी करू शकत नाहीत. म्हणून पंचाक्षरी मंत्राचा जप सर्वश्रेष्ठ होय.।।३०।।

अथोक्तत्रिविधजपानां माहात्म्यमेकप्रकारं किमित्यत्राह—

माहात्म्यं वाचिकस्यैतज्जपयज्ञस्य कीर्तितम्।
तस्माच्छतगुणोपांशुः सहस्रो मानसः स्मृतः।।३१।।

वाचिकजपस्य यदेतन्माहात्म्यं कीर्तितं तस्मात् वाचिकजपाद् उपांशुजपः शतगुणः, तस्मादुपांशोर्मानसः सहस्रः सहस्रगुण इति स्मृत इत्यर्थः।।३१।।

वरील त्रिविध जपांची श्रेष्ठता वाढत्या क्रमाने सांगतात—शिवपंचाक्षरी मंत्राच्या जपयज्ञाचे वर सांगितलेले माहात्म्य वाचिक जपाचे असून त्यापेक्षा उपांशू जपाचे शतपट आहे. आणि त्यापेक्षाही मानसजपाचे सहस्रपट अधिक आहे. अशा रीतीने वाचिक जपापेक्षा उपांशू व उपांशू जपापेक्षा मानस जप श्रेष्ठ होय असे समजावे.।।३१।।

तर्ह्येतेषु को वा जपः कर्तव्य इत्यत्र मोक्षार्थिभिर्मानस एव जपः कर्तव्य इत्याह—

वाचिकात् तदुपांशोश्च जपादस्य महामनोः।
मानसो हि जपः श्रेष्ठो घोरसंसारनाशकः।।३२।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अस्य महामनोः, वाचिकाज्जपादुपांशोश्च जपात्, मानसो जपः क्रूरसंसारनाशकः सन् श्रेष्ठ इत्यर्थः।।३२।।

त्यापैकी कोणता जप करावा? तर, मुमुक्षू साधकाने मानस जप करावा. कारण वाचिक व उपाशू या जपापेक्षा मानस जप श्रेष्ठ असून तो घोर अशा संसारांचा नाशकु आहे.।।३२।।

तर्हि तयोः का गतिरित्यत्राह

एतेष्वेतेन विधिना यथाभावं यथाक्रमम्।
जपेत् पञ्चाक्षरीमेतां विद्यां पाशविमुक्तये।।३३।।

एतेषु विषयेषु वाचिकादिजपविषयेषु, एतेन विधिना एतदुक्तप्रकारेण, यथाक्रमं क्रममनतिक्रम्य यथाभावं यथासंभवम् एतां पञ्चाक्षरीं विद्यां पाशविमुक्तये मलमायादिपञ्चपाशविमुक्त्यर्थं जपेत्, उच्चरेदित्यर्थः।।३३।।

तर मग इतर दोन जपाचे काय प्रयोजन? उत्तर असे की, पूर्वोक्त तीन जपापैकी कोणताही जप योग्य विधीने, भक्तिभावाने व यथाक्रमाने जपावा. त्यामुळे संसारपाशातून मुक्ती मिळते.।।३३।।

अथ अनेनैव मन्त्रेण शिवलिङ्गार्चनं च कर्तव्यमित्याह—

अनेन मूलमन्त्रेण शिवलिङ्गं प्रपूजयेत्।
नित्यं नियमसम्पन्नः प्रयतात्मा शिवात्मकः।।३४।।

नियमसंपन्नः यमनियमादिसम्पन्नः सन्, प्रयतात्मा शुद्धान्तःकरणवान् सन्, शिवात्मकः "नारुद्रो रुद्रमर्चयेत्" इति श्रुतेः शिवभावसंपन्नः, अनेन मूलमन्त्रेण एतत्प्रणवपञ्चाक्षरमन्त्रेण शिवलिङ्गं नित्यं सदा पूजयेद् विभवेन पूजयेदित्यर्थः।।३४।।

याच मत्राने शिवलिंगाचे पूजनही करावे, हे सागतात— यमनियमादींनी संपन्न अशा, शुद्धान्तःकरणी, भस्मरूद्राक्षविभूपित अशा पवित्र शिवभक्ताने प्रणवयुक्त पंचाक्षर मत्रानेच नित्य शिवालिंगपूजा करावी.।।३४।।

नन्वस्य समन्त्रकशिवपूजनस्य किं फलमित्यत्राह—

भक्त्या पञ्चाक्षरेणैव यः शिवं सकृदर्चयेत्।
सोऽपि गच्छेच्छिवस्थानं मन्त्रस्यास्यैव गौरवात्।।३५।।

स्पष्टम्।।३५।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

या मंत्राने शिवलिंगपूजा केली तर कोणते फल मिळते? तर, भक्तिपूर्वक ह्या शिवपंचाक्षरी मंत्राने जो मनुष्य एकवेळ शिवलिंगपूजा करील त्याला ह्या मंत्राच्या सामर्थ्याने शिवलोक प्राप्त होईल.।।३५।।

ननु व्रतनियमादिना सद्गतिसंभवात् पूजा किमर्थं विधेयेत्यत्राह—

अब्भक्षा वायुभक्षाश्च ये चान्ये व्रतकर्शिताः।
तेषामेतैर्व्रतैर्नास्ति शिवलोकसमागमः।।३६।।

अब्भक्षा जलाहारिणः, वायुभक्षाश्च वायुपर्णाहारिणः, ये चान्ये व्रतकर्शिताः कृच्छ्रचान्द्रायणादिव्रतकृशा ये सन्ति, तेषामेतैर्व्रतैः शिवलोकप्राप्तिर्नास्तीत्यर्थः।।३६।।

अन्य कोणत्याही व्रतनियमापेक्षा शिवपूजा केल्यानेच सद्गती मिळते असे सागतात—जे केवळ पाणी पिऊन राहातात किंवा वायू भक्षण करून राहातात आणि तसेच जे खडतर तपश्चर्या करतात त्यांना तपश्चर्येने देखील शिवलोकाची प्राप्ती होत नाही. ती शिवभक्तांना शिवपंचाक्षरी मंत्राने सहज होते.।।३६।।

तस्माज्जपयज्ञादयः सर्वे लिङ्गार्चनस्य कोटचंशेनापि नो समा इत्याह—

तस्मात्तपांसि यज्ञाश्च व्रतानि नियमास्तथा।
पञ्चाक्षरार्चनस्यैते कोटचंशेनापि नो समाः।।३७।।

स्पष्टम्।।३७।।

आता सर्व व्रतादी पेक्षा जपयज्ञाचे महत्त्व सागतात— म्हणून तपे, यज्ञ, व्रते आणि नियम हे शिवपचाक्षरी मत्राच्या एक कोट्याशाची देखील बरोबरी करू शकणार नाहीत. या सर्वापेक्षा पचाक्षरी मत्र एक कोटी पट अधिक फलदायी आहे. या साठी अन्य कोणत्याही व्रतापेक्षा जपयज्ञ करावा.।।३७।।

ननु शिवार्चने निर्मलज्ञानादिसंपन्नोऽधिकारीत्युक्तत्वाद् अशुद्धबुद्धीनां का गतिरित्यत्राह—

अशुद्धो वा विशुद्धो वा सकृत् पञ्चाक्षरेण यः।
पूजयेत् पतितो वापि मुच्यते नात्र संशयः।

पतितो व्रतभ्रष्ट इत्यर्थः। मुच्यते सर्वपापैः प्रमुच्यत इत्यर्थः।।३८।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

शिवपूजेसाठी निर्मल व ज्ञानसंपन्न मनुष्य अधिकारी आहे, तर मग ज्याची बुद्धी अशुद्ध आहे त्याची गती कोणती? याचे उत्तर असे की, पापी असो, पुण्यवान असो अथवा पतित (व्रतापासून भ्रष्ट झालेला) असो, त्याने एकदा जर शिवपंचाक्षरीचा जप करून पूजा केली तर तो मुक्त होतो यात शंका नाही.।।३८।।

अथ पञ्चाक्षरमन्त्रस्य सकृदुच्चारणादेव सर्वेषामपि सर्वपापक्षयः स्यादित्याह—

सकृदुच्चारमात्रेण पञ्चाक्षरमहामनोः।
सर्वेषामपि जन्तूनां सर्वपापक्षयो भवेत्।।३९।।

स्पष्टम्।।३९।।

पंचाक्षर मंत्राच्या एक वेळ केलेल्या जपाचे महत्त्व सांगतात— पंचाक्षर महामंत्राचा एकवेळ उच्चार केला तरी सर्व प्राणिमात्राच्या सर्व पातकांचा नाश होतो.।।३९।।

ननु शिवागमप्रसिद्धा मन्त्रा बहवः सन्ति, तेभ्यः कस्मादस्य वैशिष्ट्यमित्यत्राह—

अन्येऽपि बहवो मन्त्रा विद्यन्ते सकलागमे।
भूयो भूयः समभ्यासात् पुरुषार्थप्रदायिनः।।४०।।

एष मन्त्रो महाशक्तिरीश्वरप्रतिपादकः।
सकृदुच्चारणादेव सर्वसिद्धिप्रदायकः।।४१।।

सकलागमे समस्तशिवागमे, एतत्पञ्चाक्षरीव्यतिरिक्तमन्त्रा बहवः सन्ति, ते पुरश्चरणबाहुल्यात् पुरुषार्थप्रदायिनः। एष पञ्चाक्षरमन्त्रो महाशक्तिः महासामर्थ्यवान्, ईश्वरस्य विश्वमयविश्वोत्तीर्णसामरस्यलक्षणमाहात्म्य-प्रतिपादकः। तस्मात् सकृदुच्चारणादेव सर्वसिद्धिप्रदायक इत्यस्य वैशिष्ट्यमित्यर्थः।।४०-४१।।

शिवागमामध्ये प्रसिद्ध असे अनेक मंत्र असताना या पंचाक्षरी मंत्राचे असे कोणते वैशिष्ट्य आहे? तर, शिवागमात पंचाक्षरी शिवाय अनेक मंत्र आहेत. या मंत्रांचा अनेकवार पुरश्चरणपूर्वक जप केल्यावर उपासकांचे मनोरथ पूर्ण होतात. परंतु हा पंचाक्षरीमंत्र मात्र महासामर्थ्यवान असून शिवजीवसामरस्याचे

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्रतिपादन करणारा आहे. आणि याचा फक्त एकदाच उच्चार केला तरी सर्व सिद्धी प्राप्त होतात.।।४० ४१।।

अथ समन्त्रकपूजाफलं प्रकाशयति—

पञ्चाक्षरीं समुच्चार्य पुष्पं लिङ्गे विनिःक्षिपेत्।
यस्तस्य वाजपेयानां सहस्रफलमिष्यते।।४२।।

निक्षिपेत् समर्पयेदित्यर्थः। शिष्टं स्पष्टम्।।४२।।

पंचाक्षरी मत्रोच्चारणपूर्वक केलेल्या पूजेचे फल सांगतात— अशा ह्या शिवपंचाक्षर मत्राचा जप करीत जो मनुष्य शिवलिगावर फूल वाहातो त्याला हजार वाजपेय यज्ञ केल्याचे फल मिळते.।।४२।।

अथ पञ्चाक्षरीजपफलं प्रकाशयति—

अग्निहोत्रं त्रयो वेदा यज्ञाश्च बहुदक्षिणाः।
पञ्चाक्षरजपस्यैते कोटचंशेनापि नो समाः।।४३।।

अग्निहोत्रं सायंप्रातर्विधीयमानाग्निहोत्रम्, त्रयो वेदा ऋग्यजुः-सामाध्ययनम्, यज्ञा ज्योतिष्टोमाद्याः, बहुदक्षिणाः षोडशमहादानरूपाः, एते पञ्चाक्षरजपस्य कोटचंशेनापि समाना न भवन्तीत्यर्थः।।४३।।

आता पंचाक्षरीजपाचे फल सांगतात—प्रातःकाली व सायंकाली केलेले अग्निहोत्र, ऋक, यजु, साम आदी वेदांचा अभ्यास, ज्योतिष्टोमादी यज्ञ, सोळा प्रकारची महादाने ही शिवपंचाक्षरी मंत्राच्या कोटी हिश्शाची देखील बरोबरी करू शकत नाहीत. म्हणून वेदाध्ययनादी सर्व अनुष्ठानांपेक्षा पंचाक्षरीजपाचे फल अधिक आहे.।।४३।।

अथैतन्मन्त्रसिद्धिमतां महापुरुषाणां माहात्म्यप्रतिपादनद्वारा तस्याधिक्यं वर्णयति—

पुरा सानन्दयोगीन्द्रः शिवज्ञानपरायणः।
पञ्चाक्षरं समुच्चार्य नारकानुदतारयत्।।४४।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पुरा शिवज्ञानयोगनिष्ठः सानन्दगणेशः पञ्चाक्षरमन्त्रं वाचकरूपेणोच्चार्य नारकान् अष्टाविंशतिकोटिनायकनरकस्थितान् पापिन उदतारयद् उद्धृतवानित्यर्थः।।४४।।

आता अशा मंत्राची सिद्धी प्राप्त झालेल्या पुरुषाच्या माहात्म्य-प्रतिपादनाद्वारा पचाक्षर मंत्राचे श्रेष्ठत्व सागतात– पूर्वी शिवज्ञान व शिवयोगात निपुण असलेल्या सानद नामक गणेश्वराने शिवपंचाक्षरी मंत्राचा उच्चार करून अठ्ठावीस कोटी प्रकारच्या नरकात खितपत पडलेल्या जीवांचा उद्धार केला.।।४४।।

सिद्ध्या पञ्चाक्षरस्यास्य शतानन्दः पुरा मुनिः।
नरकं स्वर्गमकरोत् सङ्गिरस्यापि पापिनः।।४५।।

पुरा शतानन्दः पञ्चाक्षरीजपस्य सिद्ध्या पापिनः सङ्गिरस्य नरकमपि स्वर्गमकरोदित्यर्थः।।४५।।

पूर्वी शतानंद नामक ऋषीने शिवपचाक्षरी मंत्राच्या सामर्थ्याने संगिर नावाच्या पातकी पुरुषासाठी नरकाचाही स्वर्ग केला.।।४५।।

उपमन्युः पुरा योगी मन्त्रेणानेन सिद्धिमान्।
लब्धवान् परमेशानाच्छैवशास्त्रप्रवक्तृताम्।।४६।।

शिवशास्त्राचार्यतां लब्धवानित्यर्थः।।४६।।

ह्या मंत्राने सिद्धी मिळविलेल्या उपमन्यू नामक योग्याने पर-शिवाकडून शिवशास्त्रातील प्रवक्तृत्व व आचार्यपद प्राप्त करून घेतले.।।४६।।

वसिष्ठवामदेवाद्या मुनयो मुक्तकिल्बिषाः।
मन्त्रेणानेन संसिद्धा महातेजस्विनोऽभवन्।।४७।।

मुक्तकिल्बिषा विमुक्तपापकर्माणः, वसिष्ठवामदेवाद्या ऋषयः, अनेन पञ्चाक्षरमन्त्रेण, सिद्धिमन्तः सन्तः, महातेजस्विनः शापानुग्रहसमर्था अभवन्नित्यर्थः।।४७।।

वसिष्ठ-वामदेवादी ऋषिगण याच मंत्राने पापमुक्त होऊन सिद्धिसंपन्न व महातेजस्वी झाले.।।४७।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अथ ब्रह्मादयोऽप्येतन्मन्त्रसामर्थ्यादेव सृष्ट्यादिकृत्याधिकारिणो जाता इत्याह—

ब्रह्मादीनां च देवानां जगत्सृष्ट्यादिकर्मणि।
मन्त्रस्यास्यैव माहात्म्यात् सामर्थ्यमुपजायते।।४८।।

ब्रह्मविष्णुरुद्रादिदेवानां विश्वसृष्टिस्थितिसंहारादिकर्मणि सामर्थ्यमस्य मन्त्रस्य प्रभावादेवेत्यर्थः।।४८।।

आता ब्रह्मादी देवतासुद्धा या मंत्राच्या सामर्थ्यानेच आपापल्या सृष्ट्यादिकर्मांत अधिकारी झाले असल्याचे सांगतात— ब्रह्मा-विष्णु-रुद्रादी देवांना याच मंत्रामुळे सृष्टीची उत्पत्ति-स्थिती-संहारादी कार्ये करण्यासाठी सामर्थ्य प्राप्त झाले आहे.।।४८।।

किं बहुना, अस्य प्रणवसहितषडक्षरमन्त्रस्य जपेन तत्कृत-शिवलिङ्गपूजनेन च मोक्षमेवाप्नोतीत्युक्त्वा पञ्चाक्षरीजपस्थलं समापयति—

किमिह बहुभिरुक्तैर्मन्त्रमेवं महात्मा
प्रणवसहितमादौ यस्तु पञ्चाक्षराख्यम्।
जपति परमभक्त्या पूजयन् देवदेवं
स गतदुरितबन्धो मोक्षलक्ष्मीं प्रयाति।।४९।।

इति श्रीमत्षट्स्थलब्रह्मिणा शिवयोगिनाम्ना माहेश्वरेण विरचिते सिद्धान्तशिखामणौ भक्तस्थले पञ्चाक्षरीजपप्रसङ्गो नाम अष्टमः परिच्छेदः समाप्तः।।

स्पष्टम्।।४९।।

अत्र यादिसृष्टिषडक्षर्या शरीरन्यासम्, नादिप्रणवान्तसंहारपञ्चा-क्षर्याऽङ्गन्यासम्, शिवाय नम ओमिति स्थितिपञ्चाक्षर्या करन्यासं कृत्वा गुरूपदिष्टमार्गेण प्रणवपञ्चाक्षरीं जपेत् । स्त्रीशूद्रादिजातीनां शिवाय नम इति जपविधिः।

इति पञ्चाक्षरीजपस्थलम्।

इति श्रीमत्पदवाक्यप्रमाणपारावारधुरीणश्रीमरितोण्टदार्येण विरचितायां तत्त्व-प्रदीपिकाख्यायां सिद्धान्तशिखामणिव्याख्यायां भक्तस्थले पञ्चाक्षरी-जपप्रसङ्गो नाम अष्टमः परिच्छेदः समाप्तः।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पचाक्षरी जपापासून शेवटी मुक्ती प्राप्त होते असे सांगून पंचाक्षरीजप-स्थलाचे वर्णन सपवितात—हा पचाक्षरीमंत्र जपावयाचा असल्यास न्यासपूर्वक जपावा. सृष्टिन्यास स्थितिन्यास आणि संहारन्यास अशा तीन प्रकारच्या पद्धतींपैकी आपल्या गुरूने उपदेश केल्याप्रमाणे जप करावा. फार काय सांगावे? जो शिवभक्त भक्तिपूर्वक शिवलिंगाची पूजा करीत प्रणवयुक्त शिवपंचाक्षरी मंत्राचा जप करतो तो पातकापासून मुक्त होऊन मोक्षरूपी लक्ष्मीची प्राप्ती करून घेतो.।।४९।।

सिद्धातशिखामणीतील भक्तस्थलातर्गत पचाक्षरीजपाचे
वर्णन असलेला आठवा परिच्छेद सपला.

आठवा परिच्छेद समाप्त।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

नवमः परिच्छेदः

अथ भक्तमार्गक्रियास्थलम्

अथ भक्तमार्गक्रियास्थलं निरूपयितुं पूर्वमुक्तमपि भक्तस्थलं विशेषतः स्मारयति श्रीरेणुकः—

भूतिरुद्राक्षसंयुक्तो लिङ्गधारी सदाशिवः।
पञ्चाक्षरजपोद्योगी शिवभक्त इति स्मृतः।।१।।

स्पष्टम्।।१।।

भक्तमार्गक्रियास्थलाचा उपदेश करण्यास उद्युक्त झालेले श्रीरेणुकाचार्य पूर्वी सागितलेल्या भक्तस्थलाचे विशेषत्वाने स्मरण करून देतात—कपाळावर विभूती, गळ्यात रूद्राक्षमाला व लिग धारण करणारा, सदा परिशुद्ध असून शिवपंचाक्षरी मत्राचा जप करणारा जो साधक असतो त्याला शिवभक्त असे म्हणतात.।।१।।

भक्तिभेदं निरूपयति—

श्रवणं कीर्तनं शम्भोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्।।२।।
एवं नवविधा भक्तिः प्रोक्ता देवेन शम्भुना।
दुर्लभा पापिनां लोके सुलभा पुण्यकर्मणाम्।।३।।

शम्भोः श्रवणं शिवकथाश्रवणम्, कीर्तनं स्तोत्रम्, स्मरणं ध्यानम्, पादसेवनं पादमर्दनम्, अर्चनं पूजनम्, वन्दनं नतिः, दास्यं भृत्यत्वम्, सख्यं मित्रत्वम्, आत्मनिवेदनं स्वात्मसमर्पणम्। एवं भक्तिर्नवविधेति क्रीडाशीलेन देवेन प्रोक्ता। लोके पापिनां दुर्लभा, पुण्यकर्मणां धर्मशालिनां सुलभेत्यर्थः।।२-३।।

आता भक्तीचे भेद सागतात—शिवकथेचे श्रवण करणे, शिवाचे गुणगान करणे, शिवाचे ध्यान करणे, शिवचरणाची सेवा करणे, शिवाची पूजा करणे, शिवास नमस्कार करणे, शिवाचे दास्यत्व पत्करणे, शिवाशी स्नेह करणे आणि शिवाला आपले सर्वस्व अर्पण करणे असे भक्तीचे नऊ प्रकार सदाशिवाने सांगितले आहेत. अशी

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ही नवविधा भक्ती पातकी लोकांस दुर्लभ असून पुण्यवान लोकाकडून सहज घडते.।।२-३।।

अथैवंविधभक्तिमानेव भक्त इत्याह—

अधमे चोत्तमे वापि यत्र कुत्रचिदूर्जिता।
वर्तते शाङ्करी भक्तिः स भक्त इति गीयते।।४।।

स्पष्टम् ।।४।।

अशा प्रकारे भक्ती करणाराच भक्त होय असे सांगतात— अधम असो वा उत्तम असो, ज्या पुरुषाच्या अंगी उत्कट शिवभक्ती आढळते त्याला शिवभक्त म्हणावे.।।४।।

अथ भक्तिमानेव शिवप्रिय इत्याह—

भक्तिः स्थिरीकृता यस्मिन् म्लेच्छे वा द्विजसत्तमे।
शम्भोः प्रियः स विप्रश्च न प्रियो भक्तिवर्जितः।।५।।

स्पष्टम्।।५।।

ज्याच्याठायी शिवभक्ती दृढ झाली आहे, तो ब्राह्मण असो वा शूद्र असो, तो शंकरास प्रिय होतो. जातीने ब्राह्मण असूनही जर शिवभक्तिहीन असेल तर तो शंकरास प्रिय होत नाही. एकूण भक्तियुक्त पुरुषच शिवाला प्रिय असतो.।।५।।

अनेन पूर्वोक्तोत्तमाधमावपि स्फुटीकृतौ। अथ सा भक्तिर्द्विविधेत्याह—

सा भक्तिर्द्विविधा ज्ञेया बाह्याभ्यन्तरभेदतः।
बाह्या स्थूलान्तरा सूक्ष्मा वीरमाहेश्वरादृता।।६।।

वीरमाहेश्वरप्रीतिविषयिणी भक्तिर्बाह्याभ्यन्तरलक्षणस्थूलसूक्ष्मभेदेन द्विविधेत्यर्थः।।६।।

उत्तम व अधम या विषयी विचार केल्यानंतर भक्तीचे दोन भेद स्पष्ट करतात, ते असे— शिवभक्ती ही बाह्य व आभ्यंतर अशी दोन प्रकारची असून बाह्य भक्तीला स्थूल भक्ती आणि आभ्यंतर भक्तीला सूक्ष्मभक्ती असे म्हटले जाते. आभ्यंतर भक्ती वीरशैव करतात तर बाह्य भक्ती वीरमाहेश्वराकडून आचरिली जाते.।।६।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अथ का नाम बाह्येत्यत्राह—

सिंहासने शुद्धदेशे सुरम्ये रत्नचित्रिते।
शिवलिङ्गस्य पूजा या सा बाह्या भक्तिरुच्यते।।७।।

सुरम्ये अत्यन्तमनोहरे, शुद्धदेशे षट्संमार्जनपरिशुद्धस्थाने, रत्नचित्रिते नवरत्नैर्विचित्रीकृते, सिंहासने सिंहविष्टरे, शिवलिङ्गस्य या पूजा, सा बाह्या भक्तिरित्युच्यत इत्यर्थः।।७।।

बाह्यभक्ती कशी? तर, अत्यंत रम्य, मनोहर व षट्संमार्जनाने शुद्ध केलेल्या भूमीवर रत्नखचित सिंहासनावर शिवलिंग ठेवून त्याची पूजा केली जाते, तिला बाह्यभक्ती असे म्हणतात.।।७।।

एवं शिवभक्तविधीयमानां बाह्यां भक्तिमुक्त्वाऽथ शिवयोगिविधीयमानामान्तरां भक्तिमुपपादयति—

लिङ्गे प्राणं समाधाय प्राणे लिङ्गं तु शाम्भवम्।
स्वस्थं मनस्तथा कृत्वा न किञ्चिच्चिन्तयेद् यदि।।८।।
साभ्यन्तरा भक्तिरिति प्रोच्यते शिवयोगिभिः।
सा यस्मिन् वर्तते तस्य जीवनं भ्रष्टबीजवत्।।९।।

शिवलिङ्गे प्राणं समाधाय संस्थाप्य, प्राणे जीवकलारूपे प्राणे शाम्भवं लिङ्गं तु शिवकलारूपं लिङ्गं समाधाय संस्थाप्य, मनः स्वस्थं कृत्वा, यदि न किञ्चिच्चिन्तयेत्, सा लिङ्गप्राणसमरसरूपा चिन्ता, आभ्यन्तरा भक्तिरिति शिवयोगिभिः प्रोच्यते। साऽभ्यन्तरा भक्तिर्यस्मिन् वर्तते, तस्य जीवनं भ्रष्टबीजवद् भर्जितबीजवत् पुनर्न जननकारणमित्यर्थः।।८-९।।

शिवभक्ताकडून केल्या जाणाऱ्या बाह्य भक्तीचे स्वरूप स्पष्ट केल्यानंतर शिवयोग्याकडून आचरण्यात येणाऱ्या आभ्यंतर भक्तीचे स्वरूप सांगतात— शिवलिंगामध्ये आपले प्राण व जीवकलारूप प्राणात शिवकलारूप लिंग यांचे सामरस्य करून स्वस्थ व निश्चित मनाने, अन्य कसलाही विचार न करता केवळ लिंग हेच आपले प्राण अशी समरसता साधली जाते, त्या भावस्थितीला शिवयोगी लोक आभ्यंतर भक्ती म्हणतात. ज्याला ही भक्ती प्राप्त होते, त्यांची सर्व कर्मे दग्ध बीजा प्रमाणे निष्फळ झाल्यामुळे पुन्हा त्याच्या जन्म-मरणास कारणीभूत होत नाहीत.।।८ - ९।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

एवं निर्बीजदीक्षाप्रसिद्धाऽऽभ्यन्तरभक्तिमानेव मुक्त इत्याह—

बहुनात्र किमुक्तेन गुह्याद् गुह्यतरा परा।
शिवभक्तिर्न सन्देहस्तया युक्तो विमुच्यते।।१०।।

स्पष्टम्।।१०।।

आभ्यंतर भक्ती करणारे मुक्त होतात, असे सांगतात— ह्या आभ्यंतर भक्तीसंबंधी अधिक काय सांगावे? ही अत्यंत गुह्यतम व श्रेष्ठ आहे. ही आभ्यंतर शिवभक्ती ज्याच्या अंगी स्थिर होईल तो मुक्त होईल यात काही संशय नाही.।।१०।।

नन्वेतादृशी भक्तिः कस्माद्भवतीत्यत्राह—

प्रसादादेव सा भक्तिः प्रसादो भक्तिसंभवः।
यथैवाङ्कुरतो बीजं बीजतो वा यथाङ्कुरः।।११।।

स्पष्टम्।।११।।

अशा प्रकारची भक्ती कशी उत्पन्न होते? तर, शिवकृपारूपी प्रसादामुळेच ती शिवभक्ती उत्पन्न होते आणि शिवकृपारूपी प्रसाद भक्ती केल्यामुळे प्राप्त होतो. जसे बीजापासून अंकुर व अंकुरापासून बीज उत्पन्न होते तसा प्रसाद व भक्ती याचा परस्पर सापेक्ष संबध आहे.।।११।।

अथैवंरूपा भक्तिरेकेनैव जन्मना दुर्लभेत्याह—

प्रसादपूर्विका येयं भक्तिर्मुक्तिविधायिनी।
नैव सा शक्यते प्राप्तुं नरैरेकेन जन्मना।।१२।।

स्पष्टम्।।१२।।

अशा भक्तीच्या दुर्लभतेविषयी सांगतात— परशिवाच्या कृपाप्रसादाने प्राप्त होणारी व मुक्तिदाती अशी ही भक्ती एकाच जन्मात प्राप्त करून घेणे मानवाला अशक्य आहे. परंतु पुण्यकर्मांचे संचित मोठे असेल तर कदाचित ते शक्य आहे.।।१२।।

तर्हि कतिजन्मभिर्लभ्यत त्यत्राह—

अनेकजन्मशुद्धानां श्रौतस्मार्तानुवर्तिनाम्।
विरक्तानां प्रबुद्धानां प्रसीदति महेश्वरः।।१३।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अनेकजन्मकृतशिवध्यानपूजादिपरिशुद्धचित्तानां श्रुतिस्मृत्युक्तनित्यनैमित्तिककर्मानुष्ठानानां काम्यकर्मनिस्पृहाणां सुज्ञानिनां शिवः प्रसन्नो भवति, तत्प्रसादात्तादृशी भक्तिर्लभ्यत इत्यर्थः। म्लेच्छादीनां श्रौतस्मार्तकर्मनिष्ठत्वाभावेऽपि पूर्वजन्मनि शिवभक्तेभ्यः कृतोपकारवशात् शिवभक्तिराविर्भवेदिति भावः।।१३।।

किती जन्मांत ही शुद्ध व आभ्यंतर भक्ती प्राप्त होऊ शकते? या विषयी सांगतात— पूर्वीच्या अनेक जन्मांत ज्याने शिवध्यान, शिवानुसंधान, शिवतत्त्वाचे विवेचन व अखडपणे शिवनामस्मरण केल्यामुळे ज्याचे मन परिशुद्ध झाले आहे, श्रुतिस्मृतींत सांगितलेली नित्य, नैमित्तिक व प्रायश्चित्तादी कर्मे ज्याने अनुसरली आहेत असा काम्यकर्मांत निःस्पृह असलेला शुद्धात्मा व आत्मानात्मविचारसंपन्न अशा ज्ञानी पुरुषावर परशिव प्रसन्न होतो आणि त्याच्या कृपा-प्रसादाने शिवभक्ती उत्पन्न होते. म्लेंच्छादी लोकांची श्रुतिस्मृतींत सांगितलेल्या कर्मावर निष्ठा नसते, परंतु जर त्यानी पूर्वजन्मात शिवभक्तांवर मोठा उपकार केला असेल तर त्या उपकाराच्या पुण्याईने त्यांच्याठायी शिवभक्ती उत्पन्न होईल.।।१३।।

नन्वनेकजन्मलभ्यशिवभक्त्या कतिजन्मभिर्मुक्तिः, सा कीदृशी स्यादित्यत्राह—

प्रसन्ने सति मुक्तोऽभून्मुक्तः शिवसमो भवेत्।
अल्पभक्त्यापि यो मर्त्यस्तस्य जन्मत्रयात्परम्।।१४।।

शिवे प्रसन्ने सति मुक्तो भवेत्, मुक्तः शिवसमो भवेद् यो मर्त्यस्तस्य अल्पभक्त्या जन्मत्रयात्परं मुक्तिः, पूर्णभक्तिमत एकेनैव जन्मना मुक्तिरिति भावः। अत्र शिवसमानत्वं शिवाभेद एव, "न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते" इति श्रुतेः शिवसमानत्वाभावात्, शिवान्निकृष्टस्य तत्समत्वासंभवात्। "गगनं गगनाकारम्" इत्याद्यनन्योपमैवाभेद इति भावः, "शिवस्वरूपो भवति शिवस्वरूपो भवति" इति वृद्धजाबालश्रुतेश्च। "एकेन जन्मना मुक्तिर्वीराणां तु महेश्वरि। इतरेषां तु शैवानां मुक्तिर्जन्मत्रयात्परम्।।" इति वीरागमवचनाद् वीरशैवानामेकेनैव जन्मना मुक्तिः, इतरेषां शैवानां जन्मत्रयात्परं मुक्तिरिति भावः।।१४।।

शिवभक्ती प्राप्त करून घेण्यासाठी अनेक जन्म घ्यावे लागतात. परंतु ती प्राप्त झाल्यावर मुक्तीकरिता किती जन्म घ्यावे

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

लागतील? याचे उत्तर देतात– शिव प्रसन्न झाल्यावर भक्त मुक्त होतो, म्हणजे शिवासमान होतो. जो पुरुष अल्प भक्तीने युक्त असेल त्याला तीन जन्मात मुक्ती मिळते, तर पूर्णभक्तियुक्त पुरुषाला एकाच जन्मात मुक्ती मिळते. मुक्ती म्हणजे भक्ताने शिवरूप होणे. शिवसम याचा अर्थ शिवाशी अभेद. 'शिवासमान कोणी नाही व शिवापेक्षा अधिक कोणी नाही'. हे श्रुतिवचन याला प्रमाण आहे. घटाकाश हे महाकाशाला समान नाही आणि त्यापेक्षा अधिकही नाही, तर ते महाकाशच होय. 'तो शिवस्वरूपच होतो' ह्या जाबाल श्रुतीचा अर्थ हाच आहे. वीरशैवांना व वीरमाहेश्वरांना एकाच जन्मात मुक्ती मिळते आणि अन्य शैवाना मात्र तीन जन्मानंतर मुक्ती मिळते, असे वीरागमात म्हटले आहे.।।१४।।

ननु का नामाल्पभक्तिः? मुक्तस्य पुनरुत्पत्तिरस्ति वा न वेत्यत्राह–

न योनियन्त्रपीडा वै भवेन्नैवात्र संशयः।
साङ्गा न्यूना च या सेवा सा भक्तिरिति कथ्यते ।।१५।।

"न स पुनरावर्तते न स पुनरावर्तते" इति श्रुतेर्योनियन्त्रपीडा पुनरुत्पत्तिर्नास्ति। उक्तनवविधाङ्गयुक्ता सेवा पूर्णभक्तिः, किञ्चिन्न्यूनाऽल्पभक्तिरित्यर्थः।।१५।।

अल्प भक्ती म्हणजे काय? मुक्त पुरुषाला पुनर्जन्म आहे काय? याची उत्तरे देतात– भक्तीचे दोन प्रकार आहेत. पैकी एका भक्तीला 'सांगा' व दुसरीला 'न्यूना' म्हणतात. वर सांगितलेली नऊ प्रकारची भक्ती ज्यावेळी मनात व देहात पूर्णपणाने सक्रिय राहात असेल तेव्हा ती सांगा म्हणजे पूर्णभक्ती होय. आणि तिच्यात न्यूनता असेल तर ती न्यूना म्हणजे अपूर्ण भक्ती होय. मुक्त पुरुषाला पुनर्जन्म नाही, असे श्रुतिवचन आहे. शिवभक्ताला पुन्हा जन्म घेण्याचे कारण उरत नाही, त्यामुळे जन्म घेण्याचे दुःखही भोगावे लागत नाही.।।१५।।

अथ–"यद्धि मनसा ध्यायति तद्वाचा वदति तत्कर्मणा करोति" इति श्रुतेः सा भक्तिस्त्रिविधेत्याह–

सा पुनर्भिद्यते त्रेधा मनोवाक्कायसाधनैः।
शिवरूपादिचिन्ता या सा सेवा मानसी स्मृता।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जपादि वाचिकी सेवा कर्मपूजा च कायिकी।।१६।।

सा साङ्गा भक्तिर्मनोवचनकायलक्षणकरणैस्त्रिधा भिन्ना भवति। तत्र शिवलिङ्गादिस्वरूपचिन्ता मानसी, शिवमन्त्रजपस्तुतिरूपा वाचिकी, कायेन विधीयमाना शिवलिङ्गपूजा कायिकी सेवेत्यर्थः।।१६।।

भक्तीचे तीन भेद सांगतात— मन, वाणी व देश या तीन साधनांनी केलेली मानसिक, वाचिक व कायिक अशी सांगा भक्ती तीन प्रकारची होते. शिवस्वरूपाचे चिंतन करणे ही मानसिक भक्ती, वाणीने शिवमंत्राचा जप, स्तुती व शिवनामाचा उच्चार करणे ही वाचिक भक्ती आणि शरीर झिजवून शिवलिंगपूजादी कर्तव्ये करणे ही कायिक भक्ती होय.।।१६।।

अथैवंविधरूपा सेवा बाह्यादिभेदेन त्रिविधेत्याह—

बाह्यमाभ्यन्तरं चैव बाह्याभ्यन्तरमेव वा।
मनोवाक्कायभेदैश्च त्रिधा तद्भजनं विदुः।।१७।।

दीक्षात्रययुक्तमनोवाक्कायभेदवत्पूर्वोक्तभजनं बाह्यमित्याभ्यन्तरमिति बाह्याभ्यन्तरमिति त्रिधा विदुः, अभिज्ञा जानन्तीत्यर्थः।।१७।।

पूर्वी सांगितलेल्या मन, वाणी आणि देह यांनी केलेल्या त्रिकरण भक्तीचे पुन्हा तीन प्रकार सांगतात— दीक्षात्रययुक्त साधकाने पूर्वी सांगितल्याप्रमाणे मन, वाणी आणि शरीर या साधनांद्वारे केलेल्या भक्तीचे पुन्हा तीन प्रकार होतात. ते असे, बाह्यभक्ती, आभ्यंतर भक्ती आणि बाह्याभ्यंतर भक्ती.।।१७।।

अथ किमेषां स्वरूपमित्यत्र मानसादिस्वरूपकथनपूर्वकमाह—

मनो महेशध्यानाढ्यं नान्यध्यानरतं मनः।
शिवनामरता वाणी वाङ्मता चैव नेतरा।।१८।।
लिङ्गैः शिवस्य चोद्दिष्टैस्त्रिपुण्ड्रादिभिरङ्कितः।
शिवोपचारनिरतः कायः कायो न चेतरः।।१९।।

उद्दिष्टैः शास्त्रोक्तैः, त्रिपुण्ड्रादिभिः भस्मत्रिपुण्ड्ररुद्राक्षाभरणरूपैः, शिवस्य लिङ्गैः चिह्नैः, अङ्कितः मुद्रितः सन् शिवोपचारनिरतः शिवलिङ्गपूजातत्पर एव कायः, अन्यो न काय इत्यर्थः। शिष्टं स्पष्टम्।।१८-१९।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पूर्वोक्त त्रिकरण भक्तिस्वरूपाचे स्पष्टीकरण करतात— शिवध्यानात रत झालेले मनच मन होय, अन्य ध्यानात रत होणारे मन हे मन नव्हे. शिवनामात तल्लीन होणारी वाणीच वाणी होय, अन्य विषयात रत होणारी वाणी ही वाणीच नव्हे. भस्म, रुद्राक्ष आदी चिन्हांनी अंकित झालेला आणि शिवपूजेत तत्पर असलेला देहच देह होय, अन्य देह देहच नव्हे. अशा प्रकारे शिवाचे अनन्य भावाने चिंतन करणे ही मानसिक भक्ती, शिवाची अनन्यभावाने स्तुती, भजन आदी करणे ही वाचिक भक्ती व शिवाची अनन्यभावाने पूजा अर्चा करणे ही कायिक भक्ती होय.।।१८—१९।।

अथ बाह्यादिकं लक्षयति—

अन्यात्मविदितं बाह्यं शम्भोरभ्यर्चनादिकम्।
तदेव तु स्वसंवेद्यमाभ्यन्तरमुदाहृतम्।।
मनो महेशप्रवणं बाह्याभ्यन्तरमुच्यते।।२०।।

शम्भोरभ्यर्चनादिकं शिवपूजादिकर्म अन्यात्मविदितं परदृष्टिगोचरीभूतं बाह्यम्, तदेव तु तदर्चनादिकं स्वसंवेद्यं परदृष्टिश्रुत्यगोचरत्वेन स्वमात्रगोचरमाभ्यन्तरम्, मनो महेशप्रवणं शिवलिङ्गासक्तं मनो बाह्याभ्यन्तरम्, काकाक्षिन्यायेनोभयत्र व्याप्तमिति शास्त्रज्ञैरुच्यत इत्यर्थः।।२०।।

आता बाह्यादी भक्तीचे स्वरूप सांगतात— आपण केलेली शिवपूजादी कर्मे दुसऱ्यांनी जाणली व नेत्रांनी पाहिली तर बाह्य शिवपूजा होय, तीच कर्मे दुसऱ्याच्या दृष्टीला न पडता स्वतःशिवाय कोणालाही कळली नाहीत तर ती आभ्यंतर शिवपूजा होय. जर आपले मन काकाक्षिगोलक न्यायाने काही वेळ आपल्या इष्टलिंगात आणि काही वेळ आपल्या हृदयकमलातील अतर्लिंगात आळीपाळीने रत होत असेल तर ती बाह्याभ्यंतर शिवपूजा होय.।।२०।।

अथैवंरूपमानसादिबाह्यादित्रिविधभजनमेव पञ्चधा भवतीत्याह—

पञ्चधा कथ्यते सद्भिस्तदेव भजनं पुनः।
तपः कर्म जपो ध्यानं ज्ञानं चेत्यनुपूर्वकम्।।२१।।

स्पष्टम्।।२१।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

आता शिवार्चनेचे पाच प्रकार सांगतात—विद्वानांनी शिवार्चनेचे पाच प्रकार मानलेले आहेत, ते असे-तप, कर्म, जप, ध्यान व ज्ञान यालाच शिवपंचयज्ञ असेही म्हणतात.।।२१।।

अथ किमेषां स्वरूपमित्यत्राह—

शिवार्थे देहसंशोषस्तपः कृच्छ्रादि नो मतम्।
शिवार्चा कर्म विज्ञेयं बाह्यं यागादि नोच्यते।।२२।।
जपः पञ्चाक्षराभ्यासः प्रणवाभ्यास एव वा।
रुद्राध्यायादिकाभ्यासो न वेदाध्ययनादिकम्।।२३।।
ध्यानं शिवस्य रूपादिचिन्ता नात्मादिचिन्तनम्।।
शिवागमार्थविज्ञानं ज्ञानं नान्यार्थवेदनम्।।
इति पञ्चप्रकारोऽयं शिवयज्ञः प्रकीर्तितः।।२४।।

शिवपूजार्थं सामग्रीसंपादने शरीरसंशोष एव तपः, कृच्छ्रादि कृच्छ्रचान्द्रायणादिना देहशोषो न तप इति संमतम्। शिवार्चा शिवलिङ्गपूजैव कर्मेति विज्ञेयम्, तत्फलस्य शाश्वतत्वात्। बाह्यं यागादि तद्भिन्नबहुवित्तव्ययायाससाध्यज्योतिष्टोमयागादि कर्मेति नोच्यते, तत्फलस्य नश्वरत्वात्। वेदाध्ययनादिकं न जपः, "त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन" इति भगवतैव नियमितत्वादिति, किन्तु पञ्चाक्षराभ्यासः प्रणवाभ्यास एव वा रुद्राध्यायादिकाभ्यासः। आदिशब्देन अथर्वशिरश्शिखादि, एतेषामावृत्तिलक्षणोऽभ्यासो जप इत्यर्थः। नात्मादिचिन्तनं ध्यानं परिमित-शरीरेन्द्रियाद्युपाधिसंवलिताहमात्मचिन्तनं न ध्यानमित्यर्थः, किन्तु शिवस्य रूपादिचिन्ता शिवलिङ्गचिन्ता चन्द्रशेखरत्वादिविशिष्टमूर्तिचिन्ता च ध्यान-मित्यर्थः। नान्यार्थवेदनं ज्ञानं सांख्याद्यन्यशास्त्रार्थज्ञानं न ज्ञानम्, किन्तु शिवागमार्थविज्ञानमित्यर्थः। एवंविधकायवाङ्मानसलक्षणपूजातपोजपध्यान-ज्ञानरूपपञ्चप्रकारोऽयं शिवयज्ञ इति प्रकीर्तितः।।२२-२४।।

आता त्याचे स्वरूप स्पष्ट करतात— शिवपूजेची सामग्री संपादन करण्यासाठी देह झिजविणे म्हणजे तप, कृच्छ्रचाद्रायणादी व्रते करून देह झिजविणे हे तप नव्हे. शिवपूजन करणे हेच कर्म होय, कारण त्याचे फल शाश्वत आहे. शिवपूजनाशिवाय जी यज्ञयागादी कर्मे आहेत त्यांच्याकरिता धनाचा व्यय होतो व पुष्कळ कष्ट पडतात, शिवाय त्यांची फले देखील नश्वर असतात. म्हणून त्या कर्मास कर्म म्हणू नये. शिवपंचाक्षरमंत्र, प्रणव आणि

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

रुद्राध्याय आदीचा अभ्यास हाच जप होय, वेदाध्ययन करणे हा जप नव्हे. शरीरस्थ आत्म्याच्या चिंतनास ध्यान म्हणू नये, कारण जीवात्मा शरीर, इंद्रिये, मन इत्यादी उपाधींनी आवृत असतो. शिवाच्या रूपाचे चिंतन, शिवलिंगाचे चिंतन, चंद्रशेखरादी पवित्र मूर्तींचे चिंतन यालाच ध्यान म्हणावे. शिवागमांपासून प्राप्त होणारे ज्ञान हेच ज्ञान होय, सांख्यादी अन्य शास्त्रांपासून प्राप्त होणाऱ्या ज्ञानास ज्ञान म्हणू नये. मन, वाणी व देह यांपासून घडणारा शिवयज्ञ असा पाच प्रकारचा असतो.।।२२-२३-२४।।

अथानेन पञ्चयज्ञेन परया भक्त्या यः शङ्करं पूजयति स भक्त इत्याह—

अनेन पञ्चयज्ञेन यः पूजयति शङ्करम्।
भक्त्या परमया युक्तः स वै भक्त इतीरितः।।२५।।

स्पष्टम्।।२५।।

अशा पाच प्रकारच्या शिवयज्ञाने जो भक्तिपूर्वक शंकराचे पूजन करतो त्याला भक्त म्हणावे.।।२५।।

अथैवंविधशिवभक्तपूजने सद्गतिरवमाने घोरनरक इत्याह—

पूजनाच्छिवभक्तस्य पुण्या गतिरवाप्यते।
अवमानान्महाघोरो नरको नात्र संशयः।।२६।।

स्पष्टम्।।२६।।

आता पंचशिवयज्ञाचे फल सांगतात— शिवभक्ताला शिवपूजन केल्याने सद्गती मिळते आणि जो शिवपूजनाचा अवमान करतो त्याला घोर नरक प्राप्त होतो, यात संशय नाही.।।२६।।

अथ शिवभक्तस्य विधेयाविधेयमाह—

शिवभक्तो महातेजाः शिवभक्तिपराङ्मुखान्।
न स्पृशेन्नैव वीक्षेत न तैः सह वसेत् क्वचित्।।२७।।

शिवभक्तो महातेजस्वी भवति। तस्मादशिवभक्तानां दर्शनस्पर्शनसहवासं सकृदपि न कुर्यात्, यदि कुर्यात्तेजोमान्द्यं भवेदिति भावः।।२७।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

आता शिवभक्ताचे आचरण कसे असावे या विषयी सांगतात— शिवभक्त महातेजस्वी असतो. शिवभक्ताने शिवभक्ती न करणाऱ्या भवींना शिवू नये, त्यांचे तोंड पाहू नये आणि त्यांच्या सहवासात देखील राहू नये.।।२७।।

अथ विधेयमाह—

यदा दीक्षाप्रवेशः स्याल्लिङ्गधारणपूर्वकः।
तदाप्रभृति भक्तोऽसौ पूजयेत् स्वागमस्थितान्।।२८।।

लिङ्गदीक्षानन्तरं भक्तः स्वागमस्थितान् वीरशैवागमस्थितान् प्रतिदिनं पूजयेदित्यर्थः।।२८।।

गुरूकडून दीक्षापूर्वक लिंगधारणा करवून घेणाऱ्या भक्ताने दीक्षा झालेल्या दिवसापासून शिवागमाप्रमाणे वर्तन करणाऱ्या शिवभक्तांचा आदरसत्कार करीत राहावे.।।२८।।

स्वमार्गाचारनिरताः सजातीया द्विजास्तु ये।
तेषां गृहेषु भुञ्जीत नेतरेषां कदाचन।।२९।।

"शिवोक्तां जातिमर्यादां योऽतीत्य भुवि वर्तते। स चण्डाल इति ज्ञेयः" इत्यादिवचनप्रामाण्यात् शिवदीक्षाग्निदग्धमलत्रयपूर्वकप्राप्तमन्त्रपिण्डत्वाद् द्विजन्मनां वीरशैवमतोचिताचारनिष्ठानां स्वजातिसंभवानां भक्तमाहेश्वराणा-मालयेषु तेषां पङ्क्तौ च भुञ्जीयात्, नान्यत्रेति तात्पर्यम्।।२९।।

'शिवाने सांगितलेल्या जातिमर्यादेचे जो उल्लंघन करतो तो जगात चांडाल म्हणून ओळखला जातो,' असे वचन प्रमाण आहे. ज्यांचे आणव, मायिक व कार्मिक हे त्रिमल दीक्षारूपी अग्नीने जळून गेले आहेत आणि ज्यांच्या मांसपिंडाचा मंत्रपिंड झाला आहे, असे जे वीरशैवाचारनिष्ठ द्विज आहेत ते भक्त व माहेश्वर होत. त्यांच्याच बरोबर आणि केवळ त्यांच्याच घरी भोजन घ्यावे, इतरांच्या घरी घेऊ नये.।।२९।।

स्वमार्गाचारविमुखैर्भविभिः प्राकृतात्मभिः।
प्रेषितं सकलं द्रव्यमात्मलीनमपि त्यजेत्।।३०।।

आत्मलीनमपि स्वाधीनमपि त्यजेदित्यर्थः।।३०।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

वीरशैवाचाराच्या विरोधी आचरण करणाऱ्या भवींनी दिलेले धन आपल्या आधीन होण्यास योग्य असले तरी त्याधनाचा त्याग करावा.।।३०।।

नार्चयेदन्यदेवांस्तु न स्मरेन्न च कीर्तयेत्।
न तन्निवेद्यमश्नीयाच्छिवभक्तो दृढव्रतः।।३१।।

दृढव्रतो दृढतरशिवव्रती शिवभक्तः, अन्यदेवान् विष्ण्वाद्यन्यदेवान् नार्चयेद् हस्ताभ्यां न पूजयेत्, न च कीर्तयेद् न स्तुतिं कुर्यात्, न स्मरेद् मनसापि न ध्यायेत्, तदर्पितान्नादिद्रव्यं नाश्नीयान्न भुञ्जीयादित्यर्थः।।३१।।

दृढनिश्चयी शिवभक्ताने विष्णू आदी देवाची पूजा करू नये, स्तुती करू नये आणि ध्यान करू नये. अशा देवांना अर्पण केलेले अन्नादी पदार्थ सेवन करू नयेत.।।३१।।

यद्गृहेष्वन्यदेवोऽस्ति तद्गृहाणि परित्यजेत्।
नान्यदेवार्चकान् मर्त्यान् पूजाकाले निरीक्षयेत्।।३२।।

पूजाकाले शिवलिङ्गपूजाकाल इत्यर्थः। शिष्टं स्पष्टम्।।३२।।

ज्या घरात शिवाखेरीज इतर देव असतील त्या घराचा त्याग करावा. आपल्या शिव-पूजनाच्यावेळी अन्य देवांचे पूजन करणाऱ्या लोकांचे तोंड देखील पाहू नये.।।३२।।

सदा शिवैकनिष्ठानां वीरशैवाध्ववर्तिनाम्।
नहि स्थावरलिङ्गानां निर्माल्याद्युपयुज्यते।।३३।।

सदा निरन्तरम्, शिवलिङ्गैकनिष्ठानां वीरशैवमार्गवर्तनवतां देवर्षिमानव-प्रतिष्ठितादिस्थावरलिङ्गनिर्माल्यप्रसादद्रव्यमयोग्यम्, हि प्रसिद्धम् ।।३३।।

शिवलिंगनिष्ठ वीरशैवमार्गी भक्तासाठी देवर्षी, मानवादींनी प्रतिष्ठापित केलेल्या स्थावर लिंगाचे निर्माल्य, प्रसाद अयोग्य मानला गेला आहे, म्हणून त्याचा स्वीकार करू नये.।।३३।।

ननु वीरशैवानां स्थावरलिङ्गप्रसादमयोग्यं चेत्तल्लिङ्गस्यापाये प्राप्ते सत्यौदासीन्यं कर्तव्यं किमित्यत्राह–

यत्र स्थावरलिङ्गानामपायः परिवर्तते।
अथवा शिवभक्तानां शिवलाञ्छनधारिणाम्।।३४।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तत्र प्राणान् विहायापि परिहारं समाचरेत्।
शिवार्थं मुक्तजीवश्चेच्छिवसायुज्यमाप्नुयात्।।३५।।

यत्र स्थाने स्थावरलिङ्गानां प्रत्यूहः प्रवर्तते, अथवा गजाजिन-गङ्गाकपालककालदग्धकामकालपुरभस्मनिभकन्थाकमण्डलुभिक्षापात्रदण्डभस्म-घुटिकारूपशिवलाञ्छनधारिणां जङ्गमदेवानामुक्तनवविधभक्तिमतां शिव-भक्तानामपायो वा यत्र प्रवर्तते, तत्र पार्वत्याचारेण प्राणान् विहायापि निवारणं कुर्यात्।।३४-३५।।

वीरशैवांना स्थावरलिंगाचा प्रसाद जर अनुचित असेल तर स्थावर लिंगावर संकट आल्यास वीरशैवांनी उदासीन राहावे काय? याचे उत्तर असे की, ज्या ठिकाणी स्थावर लिंगाचा नाश होत असेल आणि जेथे गजचर्म, गंगाकपाल, भस्म, कंथा, कमडलू, भिक्षापात्र, दंड आदी शिवलांच्छने धारण करणाऱ्या जंगमदेवाना व नवविधा भक्ती करणाऱ्या शिवभक्तांना उपद्रव होत असेल त्या ठिकाणी स्वतःच्या प्राणाची पर्वा न करता शिवलिंगाचा नाश होऊ देऊ नये आणि शिवभक्तांची पीडा दूर करावी. या कार्यात त्याचा प्राण गेला तरी तो शिवसायुज्य पावतो. शिवकार्यासाठी खर्च केलेल्या प्राणाचे सार्थकच होते.।।३४-३५।।

ननु प्राणत्यागे दुर्मरणं किं न स्यादित्यत्राह—

शिवार्थं मुक्तजीवश्चेच्छिवसायुज्यमाप्नुयात्।

अथ वीरभद्राचारबसवेश्वराचारं सूचयन् भक्ताचारभेदं प्रतिपादयति—

शिवनिन्दाकरं दृष्ट्वा घातयेदथवा शपेत्।
स्थानं वा तत्परित्यज्य गच्छेद् यद्यक्षमो भवेत्।।३६।।

हन्तुं शप्तुं यद्यसमर्थः, कर्णौ पिधाय तत् स्थानं परित्यज्य गच्छेदित्यर्थः।।३६।।

प्राणत्याग केल्यास त्यास वाईट मरण म्हणावे काय? तर, ज्याने शिवासाठी प्राणत्याग केला, त्याला शिवसायुज्य प्राप्त होते. शिवनिंदा करणाराचे हनन करावे अथवा त्यास शाप द्यावा. हे करण्याची शक्ती नसेल तर ते स्थान सोडून दुसरीकडे जावे, या दोन प्रकारच्या आचारांना शास्त्रात गणाचार म्हटले आहे. टीकाकार मरितोंटदार्यांनी या आचारांना वीरभ्रदाचार आणि

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

बसवेश्वराचार असे म्हटले असून दोन उदाहरणे देऊन त्याचे स्पष्टीकरण केले आहे. शिवाचा, शिवस्थानांचा, शिवभक्तांचा अवमान करणाऱ्या शिवद्वेष्ट्यांना प्राणदंड द्यावा. यासाठी दक्षयज्ञात शिवाचा अवमान झाल्यावेळी वीरभद्राने दक्षयज्ञाचा विध्वंस करून बजावलेल्या कर्तव्याचे उदाहरण देऊन त्याला वीरभद्राचार असे म्हटले आहे. तर कल्याणक्रांतीच्या वेळी बिज्जलाच्या सैनिकांनी चालविलेल्या शिवशरणांच्या छळाचे दृश्य पाहाणे व त्याचे निवारण करणे अशक्य झाले, म्हणून बसवेश्वरांनी तेथून कूडलसंगमाकडे प्रयाण केले. याचे उदाहरण देऊन तशा आचरणाला बसवेश्वराचार म्हणावे असे स्पष्ट केले आहे. मूळ श्लोकाचा आशय स्पष्ट करण्याच्या हेतूने टीकाकाराने ही उदाहरणे दिली आहेत.।।३६।।

यत्र चाचारनिन्दाऽस्ति कदाचित्तत्र न व्रजेत्।
यद्गृहे शिवनिन्दाऽस्ति तद्गृहाणि परित्यजेत्।।३७।।

आचारनिन्दा शिवाचारनिन्देत्यर्थः। शिष्टं स्पष्टम्।।३७।।

जेथे शिवाचाराची निंदा होत असेल तेथे जाऊ नये. ज्या घरात शिवनिंदा होत असेल त्या घराचा त्याग करावा.।।३७।।

ननु शिवनिन्दाकरस्य प्रायश्चित्तमस्ति वा न वेत्यत्राह—

यः सर्वभूताधिपतिं विश्वेशानं विनिन्दति।
न तस्य निष्कृतिः शक्या कर्तुं वर्षशतैरपि।।३८।।

"ईश्वरः सर्वभूतानाम्" इति श्रुतेः सकलप्राण्यधिपतिं सर्वेश्वरं यो निन्दति, तस्य वर्षशतैरपि निष्कृतिः कर्तुं शक्या न भवतीत्यर्थः।।३८।।

शिवनिंदकास काही प्रायश्चित्त आहे की नाही? याचे उत्तर असे की, शंकर हा प्राणिमात्राचा अधिपती असून त्रैलोक्याचाही ईश्वर आहे. त्याची जो मनुष्य निंदा करतो त्या मनुष्याचे पाप शंभर वर्षात देखील नष्ट होणार नाही.।।३८।।

नन्वेवं शिवभक्तस्यान्यदेवतास्मरणं चायोग्यं चेत् सन्ध्यावन्दनादिपूर्वकर्मणः का गतिः? तस्य सूर्याद्युपासनारूपत्वादित्यत्राह—

शिवपूजापरो भूत्वा पूर्वकर्म विसर्जयेत्।
अथवा पूर्वकर्म स्यात् सा पूजा निष्फला भवेत्।।३९।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

शिवपूजापरः शिवलिङ्गदीक्षायुक्तः सन्, शिवपूजापर इत्यर्थः। शिष्टं स्पष्टम्।।३९।।

शिवभक्ताने अन्य देवताचे स्मरण करणे अनुचित आहे, तर पूर्वीपासून चालत आलेल्या संध्यावंदनादी कर्मांचे काय? याचे उत्तर असे. शिवदीक्षायुक्त शिवपूजातत्पर अशा शिवभक्ताने पूर्वकर्मांचा त्याग करावा. त्याने पूर्वकर्म सोडले नाही तर त्याने केलेली शिवपूजा निष्फळ होते.।।३९।।

अथ नैतावन्मात्रम्, पातित्यं च स्यादित्याह—

उत्तमां गतिमाश्रित्य नीचां वृत्तिं समाश्रितः।
आरूढपतितो ज्ञेयः सर्वकर्मबहिष्कृतः।।४०।।

स्पष्टम्।।४०।।

उत्तम गती प्राप्त झाल्यावर ती सोडून मुद्दाम नीचवृत्तीची आवड जो धरतो तो आरूढपतित होय. त्याला कोणतेही कर्म करण्याचा अधिकार नाही. तो सर्वकर्मबहिष्कृत समजावा.।।४०।।

अथ तस्य प्रणवपञ्चाक्षरीजपशीलत्वाद् नरस्तुतिश्च गर्हितेत्याह—

पञ्चाक्षरोपदेशी च नरस्तुतिकरो यदि।
सोऽलिङ्गी स दुराचारी कुकविः स तु विश्रुतः।।४१।।

पञ्चाक्षरोपदेशी प्रणवपञ्चाक्षरोपदेशी शिवभक्तो यदि नरस्तुतिकरः स्यात्, स अलिङ्गी शिवलिङ्गरहितः, दुराचारी कुकविः कुत्सितकविः, विश्रुतो विगतशास्त्र इत्यर्थः।।४१।।

शिवपंचाक्षरी मंत्राचा जप करणाऱ्याने मनुष्याची स्तुती करू नये असे सांगतात— शिवपंचाक्षरी मंत्रोपदेश घेतलेल्या शिवभक्ताने नरस्तुती करणे चुकीचे होय. तो नर नरस्तुती करीत असेल अथवा नरस्तुतिपर काव्य करीत असेल तर तो अलिंगी, दुराचारी आणि कुकवी समजावा.।।४१।।

चर्मपात्रे जलं तैलं न ग्राह्यं भक्तितत्परैः।
गृह्यते यदि भक्तेन रौरवं नरकं व्रजेत्।।४२।।

भक्तितत्परैः शिवभक्तितत्परैरित्यर्थः। शिष्टं स्पष्टम्।।४२।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

शिवभक्ताने कातड्याच्या पात्रात तेल व पाणी कधीं घेऊ नये– जर त्याने घेतले तर तो रौरव नरकात जातो.।।४२।।

ननु लिङ्गिभिः पूर्वकर्म त्यजनीयमित्युक्तत्वात् तस्य जाताशौचादि कर्माचरणीयं वा न वेत्यत्राह–

न तस्य सूतकं किञ्चित्प्राणलिङ्गाङ्गसङ्गिनः।
जन्मनोत्थं मृतोत्थं च विद्यते परमार्थतः।।४३।।

प्राणलिङ्गाङ्गसङ्गिनः शिवभक्तस्य जन्मनोत्थं मरणेनोत्थं किञ्चिदपि कुलोच्छिष्टसूतकं च परमार्थतो न विद्यत इत्यर्थः।।४३।।

शिवभक्ताने पूर्वकर्मांचा त्याग करावा असे म्हटले आहे. मग जननादी अशौच कर्माचे आचरण करणे इष्ट आहे की अनिष्ट? याचे उत्तर असे– प्राण व लिंग यांचे सामरस्य प्राप्त करून घेतलेल्या शिवभक्ताला परमार्थतः जन्मासंबंधी व मरणासंबंधी अणुमात्र सूतक नाही. म्हणून इष्टलिंगपूजेच्या वेळी जननमरणादी सूतके पाळू नयेत.।।४३।।

तर्हि स्त्रीणां रजःसूतकमस्ति किमित्यत्राह–

लिङ्गार्चनरतायाश्च ऋतौ नार्या न सूतकम्।
तथा प्रसूतिकायाश्च सूतकं नैव विद्यते।।४४।।

शिवलिङ्गपूजानिष्ठायाः स्त्रियः, ऋतौ सूतकं मासिकरजोदर्शनकृत-सूतकम्, तथा प्रसूतिकायाः शिशुप्रसूतिप्रयुक्तायाश्च सूतकं च न विद्यत इत्यर्थः।।४४।।

मग स्त्रियांना रजःसूतक आहे की नाही? तर, ऋतुकाळात निष्ठापूर्वक लिंगार्चन करणाऱ्या वीरशैव स्त्रियांना ऋतुकाळसूतक व प्रसूतिसूतक नाही.।।४४।।

तर्हि गृहसूतकस्य का गतिरित्यत्राह–

गृहे यस्मिन् प्रसूता स्त्री सूतकं नात्र विद्यते।
शिवपादाम्बुसंस्पर्शात् सर्वपापं प्रणश्यति।।४५।।

तद्गृहे तया शिवपूजाकरणसमये शिवपादाम्बुपतनात् सर्वपापं सकल-सूतकोत्थपापं नश्यतीति गृहसूतकं च नास्तीत्यर्थः। "लिङ्गार्चनरता नारी

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सूतकी तु रजस्वला। रविरग्निर्यथा वायुस्तद्वत् कोटिशुचिर्भवेत्।।" इति शिवागमवचनात् शिवभक्तानां न किमपि सूतकमस्तीति भावः।।४५।।

मग गृहसूतकाची गती काय? याविषयी सांगतात— । शिवभक्ताच्या घरी शिवभक्त स्त्री प्रसूत झाली तर तेथे सूतकाचा दोष नाही. कारण गुरूपादोदक किंवा जंगमपादोदक यांच्या स्पर्शाने किंवा अभिसिचनाने सर्व पापे नष्ट होतात. 'लिंगार्चनरत स्त्री सूतकी किंवा रजस्वला असली तरी सूर्य, अग्नी व वायू जसे पवित्रच असतात, त्या प्रमाणे ती सदैव परिशुद्ध असते' असे शिवागमात म्हटले आहे. शिवभक्तांना कोणतेही सूतक नसते. इष्टलिंग-पूजेसाठी जनन, मरण आणि रजःसूतक ही पाळू नयेत. आणि पादोदक-प्रसाद-ग्रहणात उच्छिष्ट सूतक पाळू नये, असे वीरशैव सिद्धांतात म्हटले आहे. वीरशैवांनी या सिद्धांताच्या आदेशानुसार वर्तन करावे.।।४५।।

ननु पुरा विधीयमानशिवक्षेत्रतीर्थयात्रादिकं च परित्यजनीयं किमित्यत्राह—

शिवस्थानानि तीर्थानि विशिष्टानि शिवार्चकः।
शिवयात्रोत्सवं नित्यं सेवेत परया मुदा।।४६।।

शिवार्चक इष्टलिङ्गपूजकः शिवभक्तो विशिष्टानि श्रेष्ठानि शिवस्थानानि श्रीपर्वतादिस्थानानि, तीर्थानि त्रिमकुटादितीर्थानि, शिवयात्रोत्सवं च नित्यं सेवेतेत्यर्थः।।४६।।

या पूर्वी करीत असलेल्या तीर्थक्षेत्रादिकाची यात्रा करणे वीरशैव दीक्षेनतर सोडावे काय? याचे उत्तर, शिवपूजन करणाऱ्या भक्ताने प्रसिद्ध अशी शिवस्थाने पाहावी, तीर्थे करावी व शिवयात्रेचा महोत्सव आवडीने करावा.।।४६।।

शिवक्षेत्रोत्सवमहायात्रादर्शनकाङ्क्षिणाम्।
मार्गेऽन्नपानदानं च कुर्यान्माहेश्वरो जनः।।४७।।

शिवक्षेत्रोत्सवोद्भूतयात्रादर्शनकाङ्क्षिणां सर्वेषां च माहेश्वरो जनः शिवभक्तजनो मार्गेऽन्नोदकदानं च कुर्यादित्यर्थः।।४७।।

शिवभक्तिसपन्न वीरमाहेश्वराने शिवक्षेत्रोत्सव व महायात्रा करण्यास जाणाऱ्या सर्व लोकांना मार्गात अन्नोदकाचे दान करावे.।।४७।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ननु वस्त्रादिदानं विहाय अन्नतोयदानमेव किमित्यत्राह—

नान्नतोयसमं दानं न चाहिंसापरं तपः।
तस्मान्माहेश्वरो नित्यमन्नतोयप्रदो भवेत्।।४८।।

स्पष्टम्।।४८।।

वस्त्रादिकाचे दान करण्याऐवजी अन्नोदकाचे दान का करावे? तर, अन्नोदकाच्या दानासारखे दुसरे कोणतेही दान श्रेष्ठ नाही, आणि अहिंसेसारखे दुसरे श्रेष्ठ तप नाही. म्हणून शिवभक्ताने अन्नोदकाचे दान करावे.।।४८।।

ननु तर्हि कन्यादानं च कस्मायपि दातुं योग्यं किमित्यत्राह—

स्वमार्गाचारवर्तिभ्यः स्वजातिभ्यः सदाव्रती।
दद्यात् तेभ्यः समादद्यात् कन्यां कुलसमुद्भवाम्।।४९।।

सदाव्रती नित्यशिवाचारव्रती शिवभक्तः स्वमार्गाचारवर्तिभ्यः वीरशैवाचारमार्गवर्तिभ्यः स्वजातीयशिवभक्तेभ्यः कुलसमुद्भवां स्वकीयकुलसमुत्पन्नां कन्यां दद्यात्, तेभ्यः समादद्यात्, आनयेदित्यर्थः।।४९।।

असे असेल तर कन्यादान कोणासही करता येईल काय? तर नित्य शिवाचार-संपन्न वीरशैवाने आपल्यासारख्या आचारसपन्न अशा स्वजातीय कन्येशीच विवाह करावा आणि अशाच आचारसपन्न कुलातील पुरुषाला कन्या द्यावी. म्हणजेच कन्यादान करताना अथवा स्वीकारताना उपरोक्त गोष्टींचा अवश्य विचार करावा.।।४९।।

एवं बहुविधशिवाचारसम्पन्नो वीरव्रती शिवभक्तः श्रीगुरुं लिङ्गं च पूजयेदित्युभयस्थलं सूचयन् भक्तस्थलं समापयति—

एवमाचारसंयुक्तो वीरशैवो महाव्रती।
पूजयेत् परया भक्त्या गुरुं लिङ्गं च सन्ततम्।।५०।।

स्पष्टम्।।५०।।

इतिभक्तमार्गक्रियास्थलम्

या प्रमाणे अनेक आचारसंपन्न वीरव्रतांचे पालन करणाऱ्या वीरशैवाने इष्टलिंगा बरोबर गुरूचेही सदैव उत्कट भक्तीने अर्चन करावे, असे सांगून हे भक्तमार्गक्रियास्थलाचे वर्णन संपवितात.।।५०।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अथोभयस्थलम्

"यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ" इति श्वेताश्वतरश्रुत्यनुसारेण शिवगुर्वोरभेदं सूत्रद्वयेन कथयति—

गुरोरभ्यर्चनेनापि साक्षादभ्यर्चितः शिवः।
तयोर्नास्ति भिदा किञ्चिदेकत्वात् तत्त्वरूपतः।।५१।।

गुरोः पूजनेन शिवः साक्षात् प्रत्यक्षेण पूजितः, तयोः शिवगुर्वोः, तत्त्वरूपतः परमार्थतः, एकत्वात् एकरूपत्वात्, किञ्चिदपि भिदा भेदो नास्तीत्यर्थः।५१।।

'देवाप्रमाणेच श्रीगुरूवरही परमभक्ती ठेवावी' असे श्वेताश्वतर श्रुतीत म्हटले आहे. शिव व गुरू यांच्यातील अभेद पुढे स्पष्ट करतात—श्रीगुरूची पूजा केली असंता साक्षात् परशिवाचीही पूजा घडते. अर्थात् गुरुपूजनात शिवपूजन अंतर्भूत असते. शिव व गुरू यांच्यात परमार्थतः अभेद असून किंचित देखील भेद नसतो.।।५१।।

तस्मात्—.

यथा देवे जगन्नाथे सर्वानुग्रहकारके।
तथा गुरुवरे कुर्यादुपचारान् दिने दिने ।।५२।।

उपचारान् भक्त्याद्युपचारानित्यर्थः। शिष्टं स्पष्टम्।।५२।।

ज्या प्रमाणे सर्व प्राणिमात्रांवर अनुग्रह करणाऱ्या त्रैलोक्याधिपती परशिवाची आपण अर्चना करतो त्या प्रमाणे प्रतिदिवशी श्रीगुरूची अर्चना करावी.।।५२।।

ननु शिवगुर्वोरभेदे शिववद् गुरुरप्यप्रत्यक्षः स्यादित्यत्राह—

अप्रत्यक्षो महादेवः सर्वेषामात्ममायया।
प्रत्यक्षो गुरुरूपेण वर्तते भक्तिसिद्धये।।५३।।

महादेवः परमेश्वरः सर्वेषामात्ममायया शक्त्या अप्रत्यक्षोऽपि भक्तिसिद्धये ललाटनेत्रचन्द्रकलाभुजद्वयतिरोधानं कृत्वा गुरुरूपेण प्रत्यक्षः सन् वर्तत इत्यर्थः।।५३।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जर शिव व गुरू यांच्यात अभेद आहे तर शिवाप्रमाणेच गुरू सुद्धा अव्यक्त आहे काय? याचे उत्तर असे की, परशिव आपल्या मायेने अव्यक्तरूप असला तरी आपल्या भालनेत्र, चन्द्रकला, गंगाधर, चतुर्भुज अशा रूपाचे तिरोधान (अंतर्धान) करून भक्तीसाठी श्रीगुरूच्या रूपाने व्यक्त होतो.।।५३।।

ननु शिववद् गुरोरिष्टार्थप्रदत्वादर्शनात् किमर्थं पूजनीय इत्यत्राह—

शिवज्ञानं महाघोरसंसारार्णवतारकम् ।
धियते येन स गुरुः कस्य वन्द्यो न जायते।।५४।।

येन गुरुणा महाभयङ्करसंसारसमुद्रतारकं शिवज्ञानं दीयते उपदिश्यते, स गुरुः कस्य केन वन्द्यो न भवति, जननमरणपरिपीडितैः सर्वैरपि वन्द्य इत्यर्थः।।५४।।

गुरूने शिवाप्रमाणे इष्टार्थ दिल्याचे दिसत नसल्यामुळे त्याचे पूजन का करावे? तर गुरूने इष्टार्थ दिल्याचे प्रत्यक्ष दिसत नसले तरी अत्यंत भयंकर अशा संसार सागरातून ज्या ज्ञानामुळे तरून जाता येते ते ज्ञान देणारा गुरूच असल्यामुळे तो जन्ममृत्यूने पीडलेल्या भवपाशबद्ध लोकांना वंदनीय वाटतो.।।५४।।

ननु तादृशशिवज्ञानं कीदृशमिति तत्तन्माहात्म्यपूर्वकं प्रकाशयति—

यत्कटाक्षकलामात्रात् परमानन्दलक्षणम् ।
लभ्यते शिवरूपत्वं स गुरुः केन नार्चितः।।५५।।

यत्कटाक्षकलामात्रादिति। अयं भावः— अत्र बन्धमोक्षदशयोरप्यहमिति धर्मिणः प्रसिद्धत्वेनान्धजात्यन्धबधिरमूकादि (दि) रपि स्वात्मनि संशय-विपर्ययाभावात् "सर्वं ज्ञानं धर्मिण्यभ्रान्तं प्रकारे तु विपर्ययः" इति सर्वसम्मतत्वेनाण्डरसन्यायेन स्वात्मतादात्म्यापन्नस्य पुरुषस्य विभागपरामर्श-महिम्ना वह्नेर्विस्फुलिङ्गा इव विच्छिन्नत्वात्, अथैवं स्वातन्त्र्यापर-पर्यायमायाशक्तिपरिकल्पितव्यामोहवशादविज्ञातपरमानन्दलक्षणस्वात्मशिवत्वं दशमदृष्टान्तेन लभ्यते प्रकाश्यते, स गुरुः केन नार्च्यते, सर्वेणापि मुमुक्षुणाऽर्चनीय एवेत्यर्थः।।५५।।

आता शिवज्ञान देणाऱ्या गुरूचे माहात्म्य वर्णन करून त्याच्याकडून प्राप्त होणाऱ्या ज्ञानाचे स्वरूप सांगतात—'अहम्'

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

म्हणजे मी. बंध-मोक्ष या अवस्थांत देखील अहं चा वापर होतो. या 'अहम्' लाच 'धर्मी' म्हणतात. जन्मांध, बधिर व मुके लोक देखील 'मी' चा वापर करतात. आपल्या आत्म्याबद्दल संशय व विपर्यस्त भाव नसतो. अग्नीपासून जसे स्फुल्लिंग वेगळे होतात तसे परशिवाचे अंशच आत्म्याच्या रूपाने विभक्त होतात. आत्मा म्हणजे शिवतत्त्वच. परंतु मायाशक्तीच्या प्रभावाने आत्म्याला विस्मृती झालेली असते. शिव व जीव यांच्या एकत्वाचे ज्ञान म्हणजेच आत्मज्ञान. श्रीगुरूच्या केवळ कृपाकटाक्षाने शिवभक्ताना शिवतत्त्वाचे ज्ञान सहज होते. अशा गुरूचे पूजन कोण बरे करणार नाही? अर्थात् सर्वजण करतात.।।५५।।

एवंरूपश्रीगुरोर्हितमेवाचरणीयम्, तदाज्ञोल्लङ्घनं न कर्तव्यमित्युक्त्वोभयस्थलं समापयति सूत्रद्वयेन—

हितमेव चरेन्नित्यं शरीरेण धनेन च।
आचार्यस्योपशान्तस्य शिवज्ञानमहानिधेः।।५६।।

उपशान्तस्य रागद्वेषरहितस्येत्यर्थः। शिष्टं स्पष्टम्।।५६।।

आता अशा गुरूचे हितचिंतन करीत त्याच्या आज्ञेचे पालन करण्याविषयी दोन श्लोकांत सांगतात—रागद्वेषरहित व शिवज्ञानाचा सागरच असलेल्या गुरूच्या मनाला संतोष होईल असेच आपले आचरण ठेवावे. त्याच्या सेवेकरिता तनाने व मनाने झिजून त्याला सर्वप्रकारे सुख द्यावे.।।५६।।

गुरोराज्ञां न लङ्घेत सिद्धिकामी महामतिः।
तदाज्ञालङ्घनेनापि शिवाज्ञाच्छेदको भवेत्।।५७।।

महामतिः विवेकी सन् सिद्धिकामी मोक्षार्थी गुरोराज्ञां न लङ्घेत, यदि लङ्घेत शिवाज्ञाभङ्गकृद् भवेदित्यर्थः।।५७।।

इत्युभयस्थलम्

मोक्षाची इच्छा बाळगणाऱ्या विवेकी पुरुषाने गुरूच्या आज्ञेचे कधीही उल्लंघन करू नये. गुर्वाज्ञेचे उल्लंघन केल्यास प्रत्यक्ष शंकराची आज्ञा उल्लंघन केल्याचे पाप लागेल. यासाठी गुरू म्हणजे प्रत्यक्ष शिवच समजून त्याच्या आज्ञेचे कधीही उल्लघन न करता वागावे.।।५७।।

13

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अथ त्रिविधसम्पत्तिस्थलम्

यथा गुरौ यथा लिङ्गे भक्तिमान् परिवर्तते।
जङ्गमे च तथा नित्यं भक्तिं कुर्याद् विचक्षणः।।५८।।

विचक्षणः प्रवीणशिवभक्त इत्यर्थः। शिष्टं स्पष्टम्।।५८।।

पूर्वी सांगितल्यानुसार शिव आणि गुरू यांच्यात अभेद मानून त्यांची भक्ती केल्याप्रमाणे विवेकी पुरुषाने जंगमाचीही त्याच प्रकारे नित्य पूजा करावी.।।५८।।

ननु भक्तिसिद्ध्यर्थं शिव एव गुरुरूपेणावतीर्ण इत्युक्तत्वेन शिववद् गुरौ भक्तिः कर्तुमुचिता, जङ्गमे च तथा भक्तिः किमर्थं विधेयेत्यत्राह—

एक एव शिवः साक्षात् सर्वानुग्रहकारकः।
गुरुजङ्गमलिङ्गात्मा वर्तते भुक्तिमुक्तिदः।।५९।।

साक्षात् "अतोऽस्मिन् लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः" इति भगवदुक्तेर्लोकवेदप्रसिद्धः सन् सकलभक्तानुग्रहकरः प्रभुः स्वतन्त्रः परमेश्वर एक एव गुरुजङ्गमलिङ्गात्मा गुरुलिङ्गजङ्गमात्मकः सन् भुक्तिमुक्तिदो भोगमोक्षपदः सन् वर्तत इति शिववज्जङ्गमेऽपि भक्तिः कर्तव्येत्यर्थः।।५९।।

भक्तीसाठी शिवाने गुरुरूप धारण केल्यामुळे शिवाप्रमाणे गुरूची भक्ती करणे योग्यच आहे. परंतु त्याप्रकारे जगमाची भक्ती का बरे करावी? याचे उत्तर असे—सर्व प्राण्यावर अनुग्रह करणारा परशिव एकच आहे. तथापि, तो गुरू, लिंग व जंगम यांच्या रूपांत शिव कलारूपाने समान राहून शिवभक्ताना भुक्ती व मुक्ती देतो. म्हणून गुरू व लिंग यांच्या प्रमाणेच समदृष्टीने जंगमाचीही भक्ती करावी.।।५९।।

अथ लिङ्गापेक्षया जङ्गमस्याधिक्यं वक्तुं लिङ्गस्वरूपं प्रथममुपपादयति—

लिङ्गं च द्विविधं प्रोक्तं जङ्गमाजङ्गमात्मना।
अजङ्गमे यथा भक्तिर्जङ्गमे च तथा स्मृता।।६०।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जङ्गमाजङ्गमात्मना चरस्थिरभेदेन लिङ्गं शिवलिङ्गं द्विविधमिति प्रोक्तम्। अजङ्गमे स्थिरलिङ्गे यथा भक्तिर्विधीयते, तथा जङ्गमेऽपि चरलिङ्गेऽपि भक्तिः कर्तव्येत्यर्थः।।६०।।

आता लिंगापेक्षा जंगमाचे माहात्म्य अधिक आहे, हे सांगण्या करिता प्रथम लिंगाचे स्वरूप स्पष्ट करतात—लिंगाचे जंगम (चरलिंग) आणि अजंगम (स्थावर लिंग) असे दोन भेद आहेत. अजंगम लिंगाविषयी जशी भक्ती करावी तशीच जंगम लिंगाविषयीही करावी.।।६०।।

ननु किमनयोः स्वरूपमित्यत्राह—

अजङ्गमं तु यल्लिङ्गं मृच्छिलादिविनिर्मितम्।
तद्वरं जङ्गमं लिङ्गं शिवयोगीति विश्रुतम्।।६१।।

मृच्छिलादिविनिर्मितं यल्लिङ्गमस्ति, तदजङ्गमं स्थिरलिङ्गमित्यर्थः।।६१।।

या दोघांची स्वरूपे कशी आहेत? ती अशी —मातीचे अथवा दगडाचे जे लिंग ते स्थावर लिंग होय. स्थावर लिंगापेक्षा जंगमलिंग श्रेष्ठ असून ते शिवयोगी या नावाने प्रसिद्ध आहे.।।६१।।

तत्कथमित्यत्राह—

अचरे मन्त्रसंस्काराल्लिङ्गे वसति शङ्करः।
सदाकालं वसत्येव चरलिङ्गे महेश्वरः।।६२।।

स्पष्टम्।।६२।।

हे कसे? तर मंत्रसंस्काराने स्थावर लिंगात शंकराचा वास असतो आणि चरलिंगात (जंगमात) महादेव निरंतर वास करून राहतो. या साठी स्थावर लिंगापेक्षा जंगमलिंग श्रेष्ठ होय.।।६२।।

तस्माच्छिवयोगिनं प्रति कृतदानपूजाफलं सूत्रद्वयेन विशेषयति—

शिवयोगिनि यद्दत्तं तदक्षयफलं भवेत्।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन तस्मै देयं महात्मने।।६३।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

यत्फलं लभते जन्तुः पूजया शिवयोगिनः।
तदक्षयमिति प्रोक्तं सकलागमपारगैः।।६४।।

अस्मिन्नर्थे आगमः प्रमाणमिति सूचितम् । अत्र—"दर्शनादर्चनात् तस्य त्रिसप्तकुलसंयुताः। जना मुक्तिपदं यान्ति किं पुनस्तत्परायणाः।।" इति योगजागमवचनमनुसन्धेयम्।।६३-६४।।

म्हणून शिवयोग्याना दिलेल्या दानादीचे फल विशेषरूपाने प्राप्त होते, असे सांगतात—शिवयोग्याला (जंगमाला) केलेल्या दानाचे फल अक्षय असते. म्हणून प्रयत्नपूर्वक त्या सामर्थ्यवान महात्म्यांना दान द्यावे. शिवयोग्याचे पूजन केल्यावर जे फल मिळते ते शाश्वत असते, असे शैवागमांत पारंगत असलेले लोक सांगतात.।।६३-६४।।

एवं तत्पूजाफलमुक्त्वा तदवमानफलं च प्रकाशयति—

नावमन्येत कुत्रापि शिवयोगिनमागतम्।
अवमानाद्भवेत्तस्य दुर्गतिश्च न संशयः।।६५।।

कुत्रापि अन्तर्बहिः क्वापि समागतमित्यर्थः।।६५।।

जंगमांच्या पूजेचे फल सांगितल्यानंतर त्यांचा अवमान केल्यास काय होते ते सांगतात—शिवयोग्याची कोठेही भेट झाली तर त्याचे नमस्कारपूर्वक स्वागत करावे. त्याचा अपमान करू नये. त्याचा अपमान करणाऱ्यास दुर्गती प्राप्त होते, यात संशय नाही.।।६५।।

तस्माच्छिवयोगी पूजनीय इति वदन् त्रिविधसम्पत्तिस्थलं समापयति—

शिवयोगी शिवः साक्षादिति कैङ्कर्यभक्तितः।
पूजयेदादरेणैव यथा लिङ्गं यथा गुरुः।।६६।।

कैङ्कर्यभक्तिर्भृत्याचाररूपा भक्तिरित्यर्थः। शिष्टं स्पष्टम्।।६६।।

इति त्रिविधसम्पत्तिस्थलम्

म्हणून शिवयोगी पूजनीय आहेत, असे सांगून हे त्रिविध संपत्तिस्थल वर्णन संपवितात—शिवयोगी हा साक्षात् शिवस्वरूप आहे असे मानून गुरू व लिंग यांच्याप्रमाणेच आदरपूर्वक व सेवकभावाने त्याचे पूजन करावे.।।६६।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अथ चतुर्विधसारायस्थलम्

पादोदकं यथा भक्त्या स्वीकरोति महेशितुः।
तथा शिवात्मनोर्नित्यं गुरुजङ्गमयोरपि।।६७।।

अत्र महेशितुः शिवलिङ्गस्येत्यर्थः। शिष्टं स्पष्टम्।।६७।।

आता चतुर्विधसारायस्थलाचे निरूपण करतात—ज्याप्रमाणे साधक इष्टलिंगाचे पादोदक घेतो, त्याप्रमाणे प्रत्यक्ष सदाशिवाचेच रूप असलेल्या जगमाचे व गुरूचेही पादोदक भक्तिभावाने सेवन करावे.।।६७।।

अथ पादोदकधारणस्वरूपकथनपूर्वकं तत्फलमाह—

सर्वमङ्गलमाङ्गल्यं सर्वपावनपावनम्।
सर्वसिद्धिकरं पुंसां शम्भोः पादाम्बुधारणम्।।६८।।

शिवलिङ्गचरणतीर्थधारणं समस्तमङ्गलानां मङ्गलं सत् सकलपावनानां पावनं सत् पुरुषाणां सर्वसिद्धिकरं भवतीत्यर्थः।।६८।।

आता पादोदकधारणाचे स्वरूप स्पष्ट करून त्याचे फलही सांगतात—जगात जेवढ्या कल्याणकारक वस्तू आहेत त्यापेक्षाही इष्टलिंगाचे पादोदक अधिक कल्याणकारक आहे. ते जगातील सर्व पवित्र वस्तूपेक्षा अधिक पवित्र आहे; आणि सर्व सिद्धी प्राप्त करून देणारे आहे. या साठी इष्टलिंगाचे पादोदक नित्य शिरोधार्य होय.।।६८।।

अथ निर्माल्यपत्रपुष्पधारणफलं निरूपयति—

शिरसा धारयेद्यस्तु पत्रं पुष्पं शिवार्पितम्।
प्रतिक्षणं भवेत् तस्य पौण्डरीकक्रियाफलम्।।६९।।

स्पष्टम्।।६९।।

आता शिवनिर्माल्यधारणाचे फल सांगतात—शंकरास वाहिलेले पान किंवा फूल जो शिवभक्त भक्तिपूर्वक आपल्या मस्तकावर धारण करील त्याला प्रतिक्षणी पौंडरीक यज्ञ केल्याचे फल मिळेल. शिवास अर्पण केलेल्या पान, फूल इत्यादींना शिवनिर्माल्य असे म्हणतात. ते शरीर आणि मनाच्या निर्मलतेस कारणीभूत होत असल्यामुळे त्यास निर्माल्य म्हटले जाते.।।६९।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ननु शिवनिर्माल्यमग्राह्यमिति पुराणादौ श्रूयते? कथं ग्राह्यमित्यत्राह—

भुञ्जीयाद् रुद्रभुक्तान्नं रुद्रपीतं जलं पिबेत्।
रुद्राघ्रातं सदा जिघ्रेदिति जाबालिकी श्रुतिः।।७०।।

रुद्रभुक्तान्नं रुद्रसमर्पितप्रसादान्नं भुञ्जीयाद् भक्षयेत्, रुद्रपीतं रुद्रप्रसादोदकं पिबेत्, रुद्राघ्रातं रुद्रसमर्पितकुसुमं जिघ्रेत्, इति जाबालिकी श्रुतिराहेत्यर्थः। "रुद्रेणात्तमश्नन्ति रुद्रेण पीतं पिबन्ति रुद्रेणाघ्रातं जिघ्रन्ति" इति जाबालश्रुतिः। तस्मात् पुराणादिषु श्रूयमाणतन्निषेधस्तु चण्डाधिकारविशिष्ट-स्थावरलिङ्गपरो न तु बाणादिलिङ्गपरः, "बाणलिङ्गे स्वयंभूते चन्द्रकान्ते हृदि स्थिते। शालग्रामशिलोद्भूते शम्भोर्नैवेद्यभक्षणम्।।" इति वचनात्। अन्यथा श्रुतिविरुद्धपुराणवचनमप्रमाणमेव भवेदिति न सार्वत्रिक इति संक्षेपः, एवं श्रुतिसिद्धत्वात्।।७०।।

काही पुराणांत निर्माल्यग्रहणाचा निषेध सांगितला आहे, तर ते निर्माल्य का ग्रहण करावे? याचे स्पष्टीकरण असे—शिवभक्ताने शिवाला दाखविलेला नैवेद्यच भक्षण करावा, शिवाला अर्पण केलेले जल प्राशन करावे आणि शिवार्पण केलेले फूल हुंगावे अशी जाबाल श्रुती आहे. निर्माल्य सहा प्रकारचे आहे. देवस्व, देवताद्रव्य, नैवेद्य, निवेदित, चंडद्रव्य आणि बहिःक्षिप्त. यापैकी देवाच्या उद्देशाने दिलेल्या ग्राम, भूमी, दास-दासींना देवस्व म्हणतात. सोने, चांदी, रत्नादींना देवद्रव्य म्हणतात. देवासाठी तयार केलेल्या पत्र, पुष्प, जल, फळ, अन्न इत्यादींना नैवेद्य म्हणतात. आणि त्याच वस्तू देवाला अर्पण केल्यावर त्याना निवेदित म्हणतात. चंडेश नावाच्या गणाला अर्पण केलेल्या द्रव्य अन्नादींना चंडद्रव्य म्हणतात आणि भूतपिशाच्चादिकांसाठी बाहेर फेकलेल्या अन्नादी द्रव्याला बहिःक्षिप्त म्हणतात. यांपैकी देवस्व, देवताद्रव्य, आणि नैवेद्य देवासाठीच दिलेले असल्यामुळे त्याचा स्वीकार करण्याचा कोणास अधिकार नाही. चंडद्रव्य आणि बहिःक्षिप्त यांचाही कोणी स्वीकार करू नये. आता उरलेले निवेदितनिर्माल्य शिवभक्त नसलेल्यांना मात्र निषिद्ध होय. शिवभक्तांना ते स्वीकरणीय असून त्यापासून कसलाही दोष लागत नाही, उलट ते पुण्यकारक आहे. पुराणापेक्षा श्रुतिवचन श्रेष्ठ असल्यामुळे शिवभक्ताने शिवनिर्माल्य अवश्य ग्रहण करावे. पुराणात वर्णिलेल्या निर्माल्यनिषेधासंबंधी टीकाकार

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

वीरशैवानदचंद्रिका या ग्रंथात दिलेल्या माहितीचे तात्पर्य असे आहे.।।७०।।

अर्पयित्वा निजे लिङ्गे पत्रं पुष्पं फलं जलम्।
अन्नाद्यं सर्वभोज्यं च स्वीकुर्याद् भक्तिमान्नरः।।७१।।

स्पष्टम्।।७१।।

पान, फूल, फळ, जल आणि अन्नादी सर्व भोज्य पदार्थ प्रथम इष्टलिंगाला अर्पण करून मगच शिवभक्ताने ग्रहण करावेत.।।७१।।

अथ गुरुप्रसादविमुखानां मुक्तिर्नास्तीति सर्वसम्मतत्वेनापरिमिततेजसः शिवस्य "ईशानः सर्वविद्यानाम्" इति श्रुतेः सकलविद्याधीश्वरत्वात्, तत्रैव "मे अस्तु सदाशिवोम्" इति तारकब्रह्मरूपप्रणवाभेदेन श्रूयमाणत्वाच्च सकललोकगुरुत्वात् तत्प्रसादोऽवश्यं ग्राह्य इत्याह—

गुरुत्वात् सर्वभूतानां शम्भोरमिततेजसः।
तस्मै निवेदितं सर्वं स्वीकार्यं तत्परायणैः।।७२।।

स्पष्टम्।।७२।।

गुरुप्रसादाला विमुख होणाऱ्याला मुक्ती मिळत नाही, हे सर्वसंमत आहे. म्हणून सर्व विद्येचा अधिपती, तारकब्रह्मरूप, प्रणवाशी अभिन्न असलेला शिव हा सर्व लोकांचा गुरू असल्यामुळे त्याचा प्रसाद सर्वांनी घेणे आवश्यक असल्याचे सांगतात—शंकराचे सामर्थ्य अगाध असून तो सर्व जगाचा गुरू आहे. म्हणून शिवभक्ताने त्यालाच सर्व पदार्थ अर्पण करून नंतर त्यांचा स्वीकार करावा.।।७२।।

तर्ह्यस्य शिवलिङ्गप्रसादस्य कोऽधिकारीत्यत्राह—

ये लिङ्गधारिणो लोके ये शिवैकपरायणाः।
तेषां तु शिवनिर्माल्यमुचितं नान्यजन्तुषु।।७३।।

स्पष्टम्।।७३।।

त्या शिवलिंगप्रसादाचा अधिकारी कोण आहे? तर जगातील लिंगधारी व अनन्य शिवभक्तिपरायण शिवभक्तांनीच शिवप्रसाद

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

घेणे उचित आहे. अन्य प्राणी तो प्रसाद घेण्यास अधिकारी नाहीत.।।७३।।

तर्हि शिवप्रसादान्नभोजनस्यं किं फलमित्यत्राह—

अन्नजाते तु भक्तेन भुज्यमाने शिवार्पिते।
सिक्थे सिक्थेऽश्वमेधस्य यत्फलं तदवाप्यते।।७४।।

परिपक्वतण्डुलव्यक्तिः सिक्थशब्देनोच्यते। शिष्टं स्पष्टम् ।।७४।।

शिवभक्ताने शिवाला अर्पण केलेल्या अन्नाचे (प्रसादाचे) भक्षण केल्यास त्यातील प्रत्येक शितागणिक एकेक अश्वमेध केल्याचे पुण्य लाभते.।।७४।।

अथास्यानधिकारिणः सूचयति—

निर्माल्यं निर्मलं शुद्धं शिवेन स्वीकृतं यतः।
निर्मलैस्तत्परैर्धार्यं नान्यैः प्राकृतजन्तुभिः।।७५।।

शिवलिङ्गदीक्षारहिताः प्राकृताः, तेऽनधिकारिणः, तैर्न धार्यमित्यर्थः। शिवदीक्षया निर्मलैः, तत्परैः शिवलिङ्गनिष्ठैर्धार्यमित्यर्थः।।७५।।

शिवप्रसादाला अनधिकारी असलेल्या लोकाविषयी सांगतात— शिवार्पित अन्नरूपी निर्माल्य पवित्र व शुद्ध असते, कारण प्रत्यक्ष शिवानेच त्याचा स्वीकार केलेला असतो. शिवदीक्षेने निर्मल झालेल्या शिवभक्तांनीच शिवनिर्माल्य स्वीकारावे, शिवदीक्षाविहीनांनी ते स्वीकारू नये. अर्थात् शिवप्रसादाचा अधिकार शिवसंस्कारयुक्त भक्तांनाच असून तो शिवसंस्कारहीन लोकाना नाही.।।७५।।

तदेव स्फुटयति—

शिवभक्तिविहीनानां जन्तूनां पापकर्मणाम्।
विशुद्धे शिवनिर्माल्ये नाधिकारोऽस्ति कुत्रचित् ।।७६।।

अयं भावः— व्यापकीभूतशिवस्याष्टतनुपरिकल्पितत्वेन साधारणीभूतदेवतान्तरपूजायां शिवसम्बन्धिपुष्पोदकीभूतचन्द्रगङ्गाभ्यां परिपुष्टस्य धान्यस्याग्निरूपरुद्रजिह्वया परिपच्यमानत्वाद् एतदुभयत्र सर्वप्राणिनामप्यधिकारोऽस्ति, तथाप्यसाधारणशिवलिङ्गपूजायां शिवलिङ्गप्रसादस्वीकारे च शिवदीक्षासम्पन्न एवाधिकारीति सर्वशास्त्रप्रसिद्धम्।।७६।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

याचेच अधिक स्पष्टीकरण करतात—पंच महाभूते, सूर्य, चंद्र व आत्मा अशी शिवाची आठ शरीरे आहेत. सर्वसाधारण देवाच्या पूजेत शिवाशी संबंधित चंद्र व गंगा यांमुळे वाढलेले धान्य अग्निरूप रुद्राच्या जिव्हेने शिजून परिपक्व होते. अशा अन्नावर सर्व प्राण्यांचा अधिकार आहे. तथापि असाधारण अशा शिवलिंगपूजेला व शिवप्रसादाला शिवदीक्षासंपन्न मनुष्यच अधिकारी असतो, असे सर्व शास्त्रांत प्रसिद्ध आहे. अर्थात् शिवभक्तिहीन पापकर्मी जीवांना शिवनिर्माल्य अथवा शिवप्रसादाचा अधिकार नाही.।।७६।।

अथ प्रसादमहत्त्वं संसूच्यैतत्स्थलं समापयति सूत्रद्वयेन—

शिवलिङ्गप्रसादस्य स्वीकाराद्यत्फलं भवेत्।
तथा प्रसादस्वीकाराद् गुरुजङ्गमयोरपि।।७७।।
तस्माद् गुरुं महादेवं शिवयोगिनमेव च।
पूजयेत् तत्प्रसादान्नं भुञ्जीयात् प्रतिवासरम्।।७८।।

पूजयेत् तनुमनोधनैः पूजयेदित्यर्थः। तत्प्रसादान्नमेव प्रतिवासरं भुञ्जीयात्।।७७-७८।।

इति चतुर्विधसारायस्थलम्

शिवलिंगाचा प्रसाद सेवन केल्यामुळे जे फल मिळते तेच गुरू व जंगम यांचा प्रसाद सेवन केल्याने मिळते. म्हणून गुरू, महादेव (लिंग) व शिवयोगी (जंगम) हे तिघे समान मानून त्यांची भक्तिपूर्वक पूजा करावी आणि त्यांचे प्रसादान्न प्रतिदिवशी भक्षण करावे.. असे प्रसादाचे महत्त्व सांगून चतुर्विधसारायस्थलवर्णन संपवितात.।।७७-७८।।

सोपाधिनिरुपाधिसहजदानस्थलानि

अथ—"देहदानात् सत्यसिद्धिरर्थदानाच्च निर्वृतिः। प्राणदानात् ज्ञानसिद्धिरेवं सर्वं स्थिरं भवेत्।।" इति योगजागमवचनानुसारेण गुरुलिङ्गजङ्गमोद्देशेन यथाशक्ति दानं कुर्यादित्याह—

शिवलिङ्गे शिवाचार्ये शिवयोगिनि भक्तिमान्।
दानं कुर्याद् यथाशक्ति तत्प्रसादयुतः सदा।।७९।।

तद्विषय इति शेषः। शिष्टं स्पष्टम्।।७९।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

देहदानाने सत्यसिद्धी, द्रव्यदानाने मनःशांती व प्राणदानाने ज्ञानसिद्धी प्राप्त होते, या योगजागमातील वचनाप्रमाणे गुरुलिंगजंगमांना यथाशक्ती दान करावे असे सांगतात—शिवभक्ताने शिवलिंग, शिवाचार्य (गुरू) व शिवयोगी (जंगम) यांची भक्ती करून त्यांचा प्रसाद घ्यावा. नंतर आपल्या शक्तीप्रमाणे त्यांना निरंतर दान करावे.।।७९।।

अथ तद्दानस्वरूपं विशदयति—

दानं च त्रिविधं प्रोक्तं सोपाधिनिरुपाधिकम्।
सहजं चेति सर्वेषां सर्वतन्त्रविशारदैः।।८०।।

दानं च प्राणदेहार्थरूपदानत्रयं सोपाधिकं निरुपाधिकं सहजं चेति त्रिरूपवदिति समस्तागमप्रवीणैः सर्वेषां शिवभक्तानां प्रोक्तमित्यर्थः।।८०।।

अगोदर सांगितलेल्या प्राण, देह आणि अर्थदानांचे प्रत्येकी तीन प्रकार शिवागम-पारंगतांनी सांगितले आहेत, ते असे—सोपाधिक दान, निरुपाधिक दान, आणि सहजदान.।।८०।।

तत्र सोपाधिदानस्थलं निरूपयति—

फलाभिसन्धिसंयुक्तं दानं यद्विहितं भवेत्।
तत् सोपाधिकमाख्यातं मुमुक्षुभिरनादृतम्।।८१।।

तुच्छफलाभिलाषसंयुक्तमत एव मुमुक्षुभिरुपेक्षितं यद्दानं विहितं स्यात्, तत् सोपाधिकमित्युक्तमित्यर्थः।।८१।।

त्यांपैकी सोपाधिक दानाचे निरूपण करतात—फलाच्या अपेक्षेने दिलेले दान सोपाधिक दान होय. ते मुमुक्षू जनांना अपेक्षित नसते.।।८१।।

अथ निरुपाधिदानस्थलं लक्षयति—

फलाभिसन्धिनिर्मुक्तमीश्वरार्पितकाङ्क्षितम्।
निरुपाधिकमाख्यातं दानं दानविशारदैः।।८२।।

तुच्छफलेच्छारहितमीश्वरार्पणाभिवाञ्छया विहितं यद्दानं तद् दानतत्त्वस्वरूपज्ञैर्निरुपाधिकदानमित्याख्यातमित्यर्थः।।८२।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

निरुपाधिक दानस्थल असे—कोणत्याही फळाची इच्छा न बाळगता ईश्वरार्पण बुद्धीने केलेल्या दानाला दानविशारदांनी 'निरुपाधिक दान' असे म्हटले आहे.।।८२।।

सहजदानस्थलं निरूपयति—

अदातृदातृदेयानां शिवभावं विचिन्तयन् ।
आत्मनोऽकर्तृभावं च यद्दत्तं सहजं भवेत्।।८३।।

परिगृहीतृप्रदातृदेयानां शिवत्वं चिन्तयन्, आत्मनः स्वस्याकर्तृत्वं भावयन् यद्दानं दत्तम्, तत्सहजदानं स्यादित्यर्थः। "भोक्ता भोज्यं प्रेरितारं च मत्वा सर्वं प्रोक्तं त्रिविधं ब्रह्ममेकम्" इति श्वेताश्वतरश्रुत्योपक्रम-गतपिण्डस्थलरहस्यमत्रोपसंहाररूपसहजदानस्थलेऽपि बोध्यम्।।८३।।

सहजदानस्थलाचे निरूपण असे—'भोक्ता, भोज्य व प्रेरयिता हे ब्रह्मच आहे' असे श्वेताश्वतर श्रुतीत म्हटले आहे. म्हणून दान देणारा, दान घेणारा आणि देण्यात येणारे दान हे सर्व शिवरूपी आहे. असे शिवभावाचे चिंतन करीत अकर्तृत्व भावनेने केलेले दान हे 'सहजदान' होय.।।८३।।

एषु किं श्रेष्ठमित्यत्राह—

सहजं दानमुत्कृष्टं सर्वदानोत्तमोत्तमम्।
शिवज्ञानप्रदं पुंसां जन्मरोगनिवर्तकम्।।८४।।

सहजं दानं सर्वदानोत्तमानामुत्तममिति, उत्कृष्टं श्रेष्ठमित्यर्थः। कथ-मित्यत्र पुंसां जननमरणलक्षणमहारोगनिवारकीभूतशिवतादात्म्यज्ञानप्रद-मित्युत्तरम्।।८४।।

ह्या तिन्हींपैकी कोणते दान श्रेष्ठ आहे? या विषयी सांगतात—सर्वप्रकारच्या दानांत सहजदान हे अत्युत्तम होय. ते भवरोगाचा नाश करून शिवजीवैक्याचे ज्ञान देणारे आहे.।।८४।।

ननु गुरुलिङ्गजङ्गमोद्देशेनैवंभावनया दत्तमेव सहजं वेत्यत्राह—

शिवाय शिवभक्ताय दीयते यदि किञ्चन।
भक्त्या तदपि विख्यातं सहजं दानमुत्तमम्।।८५।।

शिवाय इष्टालिङ्गातिरिक्तस्थावरलिङ्गरूपिणे शिवाय दत्तं क्षेत्रादिदानम्, विरक्तमूर्तिव्यतिरिक्तशिवभक्तेभ्यश्च दत्तमपि सहजं दानमित्यर्थः।।८५।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

गुरू, लिंग व जंगम याना उपरोक्त भावनेने दिलेल्या दानासच 'सहजदान' म्हणावे काय? याचे उत्तर असे की, इष्टलिंगाप्रमाणेच स्थावरलिगास दिलेले दान आणि जंगममूर्ती प्रमाणेच शिवभक्ताना दिलेले दान हे देखील सहजदानच समजावे. एकूण उपरिनिर्दिष्ट शिवभावनेने कोणालाही दिलेले दान हे सहजदानच होय.।।८५।।

अथ तद्दानफलमाह—

दानात् स्वर्णसहस्रस्य सत्पात्रे यत्फलं भवेत्।
एकपुष्पप्रदानेन शिवे तत्फलमिष्यते।।८६।।

स्पष्टम्।।८६।।

आता त्या दानाचे फल सांगतात—सत्पात्र व्यक्तीला एक हजार मोहरा दान केल्यावर जे फल लाभते तेच फल सदाशिवाला भक्तिपूर्वक एक सुगंधी फूल वाहिले तरी प्राप्त होते.।।८६।।

तत्कथमित्यत्र—"ईशानः सर्वविद्यानाम्" इति श्रुतेः सकलविद्यानिधित्वाज्जगद्गुरुत्वेन सत्पात्रतमत्वादित्यभिप्रायेणाह—

शिव एव परं पात्रं सर्वविद्यानिधिर्गुरुः।
तस्मै दत्तं तु यत्किञ्चित्तदनन्तफलं भवेत्।।८७।।

अयमप्येकोऽर्थः— शिव एव परं पात्रं तथा सर्वविद्यानिधिर्गुरुश्च परं पात्रम्। तस्मै शिवाय गुरवे च दत्तमनन्तफलमिति।।९।।

सर्व विद्यांचा अधिपती व सर्व जगताचा गुरू शिव असल्यामुळे तोच सत्पात्रांमध्ये सर्वश्रेष्ठ आहे, असे कशावरून म्हणावे? या विषयी सांगतात—ईश्वरच सर्व विद्यांचा निधी व सर्व जगाचा गुरू आहे असे श्रुतींनी सांगितले आहे. यावरून तोच दानासाठी परमपात्र आहे. त्याला दिलेले थोडे दान देखील अनंत फलदायक होते.।।८७।।

एवं शिवयोगिनोऽपि दत्तमपीत्याह—

शिवयोगी शिवः साक्षाच्छिवज्ञानमहोदधिः।
यत्किञ्चिद्दीयते तस्मै तद्दानं पारमार्थिकम्।।८८।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पारमार्थिकम् अपरिमितफलदसहजदानमित्यर्थः।।८८।।

शिवयोग्याला दिलेल्या दानाचे फल सांगतात—शिवयोगी साक्षात् शिव असून शिवज्ञानाचा महासागर आहे. त्याला दिलेले सहजदान अपरिमित फलदायी होते.।।८८।।

अथ शिवयोगीश्वरमहत्त्वमेव विशेषयति—

शिवयोगी महत्पात्रं सर्वेषां दानकर्मणि।
तस्मान्नास्ति परं किञ्चित्पात्रं शास्त्रविचारतः।।८९।।

दानकर्मणि दानकर्मविषये सर्वेषां सत्पात्राणां शिवयोगी महापात्रम्, तस्मात्परं श्रेष्ठं पात्रं शास्त्रविचारतः किञ्चिदपि नास्तीत्यर्थः।।८९।।

शिवयोग्याचेच महत्त्व विशेषरूपाने वर्णन करतात—जंगमापेक्षा उत्तम सत्पात्र दुसरा नाही, असे शास्त्रवचन असल्यामुळे दान देण्यासाठी सर्वोत्तम सत्पात्र शिवयोगीच होय.।।८९।।

अथ तद्दानफलमाह—

भिक्षामात्रप्रदानेन शान्ताय शिवयोगिने।
यत्फलं लभ्यते नैतद् यज्ञकोटिशतैरपि ।।९०।।

भिक्षामात्रं कवलमात्रमित्यर्थः। शिष्टं स्पष्टम्।।९०।।

आता त्यांना दिलेल्या दानाचे फल सांगतात—अत्यंत शांत शिवयोग्यास मुठभर अन्नदान केले तर जे पुण्य लाभते ते कोटी यज्ञ केले तरी मिळत नाही, एवढी योग्यता जंगमास दिलेल्या दानाची आहे.।।९०।।

तत्कथमित्यत्राह—

शिवयोगिनि सन्तृप्ते तृप्तो भवति शङ्करः।
तत्तृप्त्या तन्मयं विश्वं तृप्तिमेति चराचरम्।।९१।।

"ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति" इति श्रुतेः शिवयोगिनः साक्षाच्छिवरूपत्वात् तत्तृप्त्या शिवस्तृप्तो भवति, तत्तृप्त्या "सर्वो वै रुद्रः" इति श्रुतेस्तन्मयं विश्वं तृप्तिमेतीत्यर्थः।।९१।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ती कशी?—शिवयोगी साक्षात् शिवस्वरूप असतो. तो तृप्त झाला म्हणजे प्रत्यक्ष शिवच तृप्त होतो. शिव तृप्त झाला म्हणजे त्याचे स्वरूप असलेले हे चराचर विश्वच तृप्त होते.।।९१।।

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन शिवयोगिन एव तृप्तिं कुर्यादित्याह—

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन येन केनापि कर्मणा।
तृप्तिं कुर्यात् सदाकालमन्नाद्यैः शिवयोगिनः।।९२।।

सर्वप्रयत्नेन यया कयाचित्क्रियया सदाकालमन्नपानादिना शिवयोगिनस्तृप्तिं कुर्यादित्यर्थः।।९२।।

म्हणून शिवयोग्यालाच तृप्त करावे हे सांगतात—शिवयोगी साक्षात् शिवस्वरूपी असल्याने त्याला अन्न, वस्त्र, धन इत्यादी देऊन सर्व प्रयत्नपूर्वक कोणत्याही रीतीने तृप्त करावे.।।९२।।

अथैवंरूपसत्पात्रेषु सहजदानसम्पन्नः साक्षाच्छिव एवेत्याह—

निरुपाधिकचिद्रूपपरानन्दात्मवस्तुनि।
समाप्तं सकलं यस्य स दानी शङ्करः स्वयम् ।।९३।।

सम्पूर्णसच्चिदानन्दलक्षणगुरुलिङ्गजङ्गमात्मनि परमशिवे यस्य शिवभक्तस्य शरीरार्थप्राणरूपं सकलं वस्तु समाप्तं समर्पितं भवेत्, स सहजदानी स्वयमेव शिव इत्यर्थः।।९३।।

अशा सत्पात्र शिवयोग्यास सहजदान करणारा मनुष्य शिवस्वरूप होतो, असे सांगतात—सच्चिदानंदस्वरूपी गुरू, लिंग आणि जंगम हे परशिवाच्या सत्, चित्, आणि आनंदाचे स्वरूपच होत. म्हणून गुरूला शरीर, जंगमाला धन आणि लिंगाला प्राण हे जो समर्पण करतो तो सहजदानी शिवभक्त साक्षात् शिवस्वरूपच होय.।।९३।।

अथैवमुक्ताखिलाचारसम्पन्नः सहजदानी शिवभक्त एव माहेश्वरतामुपैतीति वृत्तेनाह—

उक्ताखिलाचारपरायणोऽसौ सदा वितन्वन् सहजं तु दानम्।
ब्रह्मादिसम्पत्सु विरक्तचित्तो भक्तो हि माहेश्वरतामुपैति।।९४।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इति श्रीमत्षट्स्थलब्रह्मिणा शिवयोगिनाम्ना रेणुकाचार्येण विरचिते सिद्धान्तशिखामणौ माहेश्वरस्य नवविधस्थलप्रसङ्गो नाम नवमः परिच्छेदः समाप्तः।।

अक्षरार्थस्य स्पष्टत्वाद् भावार्थो लिख्यते— देहद्रव्यक्षेत्राणि गुरुलिङ्ग-जङ्गमेषु समर्प्य श्रीगुरुकरकमले समुत्पत्य जङ्गमदेवतीर्थप्रसादेनैव शरीरं धृत्वा महालिङ्गैक्यापेक्षी शिवभक्तो माहेश्वरीयसदाचारवान् सन् माहेश्वर इति प्रसिद्धो भवेत्।।९४।।

इति दानत्रयस्थलम्

इति श्रीमत्पदवाक्यप्रमाणपारावारधुरीणश्रीमरितोण्टदार्येण विरचितायां तत्त्वप्रदीपिकाख्यायां सिद्धान्तशिखामणिव्याख्यायां नवमः परिच्छेदः समाप्तः।।

या भक्तस्थलात सांगितलेल्या सर्व आचारांनी संपन्न असा जो भक्त असतो आणि जो नेहमी सहजदाने करणारा, ब्रह्मादिकांच्याही ऐश्वर्याची इच्छा न करणारा असा विरक्तचित्त होतो, तेव्हा त्यालाच माहेश्वर असे नाव प्राप्त होते. याचा भावार्थ असा—देह, द्रव्य, प्राण इत्यादी गुरू-लिंग-जंगम यांना अर्पण केल्यावर भक्त वेगळा उरत नाही. म्हणून तो श्रीगुरूच्या करकमलातून जणू पुन्हा उत्पन्न होतो, जंगम-देव-तीर्थ यांच्या प्रसादाने स्वतःच्या देहाचे संगोपन करतो व महालिंगाशी ऐक्य होण्याची इच्छा बाळगतो. हा भक्तच जेव्हा माहेश्वरांच्या आचारांनी संपन्न होतो. तेव्हा तो 'माहेश्वर' या नावाने प्रसिद्धीला येतो।।९४।।

सिद्धांतशिखामणीतील भक्तस्थलांतर्गत भक्तमार्गक्रियादी वर्णन असलेला नववा परिच्छेद संपला.

नववा परिच्छेद समाप्त।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

दशमः परिच्छेदः

अथ माहेश्वरस्थलम्

अथ भक्तस्थलनिरूपणानन्तरमगस्त्यः श्रीरेणुकं परिपृच्छति—

अगस्त्य उवाच

भक्तस्थलं समाख्यातं भवता गणनायक।
केन वा धर्मभेदेन भक्तो माहेश्वरो भवेत्।।१।।

भक्तः शिवभक्तः केन धर्मभेदेन आचारभेदेनेत्यर्थः, माहेश्वरः स्यादिति प्रश्नार्थः।।१।।

अगस्त्य म्हणतात, हे प्रमथनायका रेणुका, आतापर्यंत आपण भक्तस्थलाचे उत्तम निरूपण केलेत. आता भक्तच कोणत्या आचारभेदाने माहेश्वर होतो, हे कृपा करून मला सांगावे.।।१।।

रेणुक उवाच

केवले सहजे दाने निष्णातः शिवतत्परः।
ब्रह्मादिस्थानविमुखो भक्तो माहेश्वरः स्मृतः।।२।।

केवले सहजे दाने निष्णातः कुशलः सन् ब्रह्मादिपदनिस्पृहः शिवभक्तः शिवतत्परः शिवैकनिष्ठः सन् माहेश्वरः स्मृत इत्यर्थः।।२।।

रेणुकाचार्य सांगतात, केवळ सहजदानातच कुशल, शिवभक्तीत तत्पर आणि ब्रह्मादी पदांविषयी निःस्पृह असलेला शिवभक्तच माहेश्वर होतो.।।२।।

तदेव स्फुटयति—

भक्तेर्यदा समुत्कर्षो भवेद् वैराग्यगौरवात्।
तदा माहेश्वरः प्रोक्तो भक्तः स्थिरविवेकवान्।।३।।

भक्तेः शिवभक्तेः समुत्कर्षः समुचितोत्कर्षो वैराग्यगौरवाद् वैराग्यमहत्त्वाद् यदा काले भवेत्, तदा तस्मिन् काले स्थिरविवेकवान् स्थिरीभूतनित्यानित्यवस्तुविवेकवान् शिवभक्तो माहेश्वर इति प्रोक्त इत्यर्थः।।३।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

त्याचेच अधिक स्पष्टीकरण करतात—शिवभक्ताच्याठायी वैराग्याच्या सामर्थ्याने जेव्हा शिवभक्तीचा परमोत्कर्ष होतो तेव्हा त्या स्थिर अशा नित्यानित्य, आत्मानात्म विवेक असलेल्या शिवभक्ताला माहेश्वर म्हणावे.।।३।।

नन्वस्यापि स्थलभेदाः सन्ति किमित्यत्र तद्भेदमुपदिशति—

माहेश्वरस्थलं वक्ष्ये यथोक्तं शम्भुना पुरा।
माहेश्वरप्रशंसादौ लिङ्गनिष्ठा ततः परम्।।४।।

पूर्वाश्रयनिरासश्च तथाद्वैतनिराकृतिः।
आह्वानवर्जनं पश्चादष्टमूर्तिनिराकृतिः।।५।।

सर्वगत्वनिरासश्च शिवत्वं शिवभक्तयोः।
एवं नवविधं प्रोक्तं माहेश्वरमहास्थलम्।।६।।

पुरा पूर्वकाले शिवेन यथोक्तं तथा माहेश्वरस्थलभेदं वक्ष्ये, शृण्विति शेषः। आदौ माहेश्वरप्रशंसास्थलम्, ततः परं तदनन्तरं लिङ्गनिष्ठास्थलम्, तदनन्तरं पूर्वाश्रयनिरसनस्थलम्, तथा तदनन्तरम् अद्वैतनिरसनस्थलम्, पश्चादाह्वाननिरसनस्थलम्, अनन्तरमष्टमूर्तिनिरसनस्थलम्, अनन्तरं सर्वगत्व-निरासस्थलम्, अनन्तरं शिवजगन्मयस्थलम्, अथ भक्तदेहिकलिङ्गस्थलम्। एवं माहेश्वरमहास्थलं नवविधं नवप्रकारवदिति प्रोक्तं कथितमित्यर्थः। अत्र पुरा शम्भुना यथोक्तं तथा वक्ष्य इत्यनेनोक्तं वक्ष्यमाणं च सर्वं न स्वकपोलकल्पितमिति सूचितम्। अत्राष्टमूर्तित्वनिरसनानन्तरमाह्वाननिरसनं वक्तुमुचितमिति केषाञ्चिदाशयः परास्तः, शिवोक्तक्रमविरोधादिति, तथापि शिवस्य व्यापकत्वादाह्वानं न सम्भवतीति नोक्तम्, किन्तु स्वेष्टलिङ्गे प्रतिपत्तिविरोधात् पुनराह्वानं न सम्भवतीति कथितत्वान्न शङ्कावकाशः ।।४-५-६।।

माहेश्वर स्थलाचे देखील भेद आहेत काय? याचे उत्तर असे की, पूर्वी शंकरानी सांगितलेले माहेश्वरस्थलाचे नऊ भेद आहेत. १-माहेश्वरप्रशंसास्थल, २-लिंगनिष्ठास्थल, ३-पूर्वाश्रयनिरसनस्थल, ४-अद्वैतनिरसनस्थल, ५-आव्हाननिरसनस्थल. ६-अष्टमूर्तिनिरसन-स्थल, ७-सर्वगत्वनिरसनस्थल, ८-शिवजगन्मयस्थल, आणि ९-भक्तदेहिकलिंगस्थल.।।४-५-६।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अथोद्देशक्रमेण तदवान्तरस्थलानां लक्षणं वक्ष्ये, श्रूयतामित्याह—

आदितः क्रमशो वक्ष्ये स्थलभेदस्य लक्षणम्।
समाहितेन मनसा श्रूयतां भवता मुने।।७।।

स्पष्टम्।।७।।

आता अवांतर स्थलांची लक्षणे सांगतात—हे अगस्त्या, मी आता वर सांगितलेल्या अवांतर नऊ स्थलांचे क्रमाने लक्षण सांगतो, ते तू नीट लक्ष देऊन ऐक.।।७।।

अत्र—"विश्वाधिको रुद्रो महर्षिः। हिरण्यगर्भं जनयामास पूर्वं स नो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु" इति श्वेताश्वतरादिश्रुत्यनुसारेण सप्तभिः सूत्रैर्महेश्वरप्रशंसापूर्वकं माहेश्वरस्वरूपं प्रपञ्चेन प्रकाशयति—

विश्वस्मादधिको रुद्रो विश्वानुग्रहकारकः।
इति यस्य स्थिरा बुद्धिः स वै माहेश्वरः स्मृतः।।८।।

समस्तदेवदानवादिविश्वानुग्राहकः रुद्रः "एक एव रुद्रो न द्वितीयोऽवतस्थे" इति श्रुतिप्रसिद्धरुद्रः, विश्वस्मात् "विश्वं नारायणं हरिम्" इति श्रुतिप्रसिद्धविश्वरूपनारायणाद् अधिक इति यस्य बुद्धिर्दृढा, स वै माहेश्वर इति स्मृत इत्यर्थः।।८।।

'त्रैलोक्यापेक्षा श्रेष्ठ असलेल्या ज्या रुद्राने सर्वप्रथम हिरण्यगर्भाची उत्पत्ती केली त्याने आम्हांला मंगल बुद्धी द्यावी', अशा श्वेताश्वतर श्रुतीतील वचनानुसार महेश्वराची प्रशंसा करून माहेश्वराचे स्वरूपवर्णन पुढे सात श्लोकांत विस्ताराने करतात—समस्त देवदानवादी विश्वावर अनुग्रह करणारा रुद्र हा एकमेव आहे, असे श्रुतिवचन आहे. नारायण हा विश्वमय आहे, अशी प्रसिद्ध श्रुती आहे. परंतु विश्वरूप नारायणापेक्षा रुद्र श्रेष्ठ असून ब्रह्मा, विष्णू आदी देवापेक्षाही तो महान होय, अशा ज्याचा दृढ निश्चय असतो त्याला माहेश्वर म्हणावे. म्हणजेच महेश्वरावर अत्यंत दृढ निष्ठा ठेवणारा भक्तच माहेश्वर म्हणून ओळखला जातो.।।८।।

अथ "न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते" इति श्रुत्यर्थमनुसरन् माहेश्वरस्वरूपमाह—

ब्रह्माद्यैर्मलिनप्रायैर्निर्मले परमेश्वरे ।
साम्योक्तिं यो न सहते स वै माहेश्वराभिधः।।९।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"ब्रह्मविष्णुरुद्रेन्द्रास्ते संप्रसूयन्ते" इति श्रुतेर्ब्रह्मादीनां जननमरण-परिपीडितत्वेन समलत्वात्, "न कारणम्" इति श्रुतेरेतत्कारणीभूत-शिवस्याजातत्वेन, निर्मलत्वात्, "कारणं तु ध्येयः सर्वैश्वर्यसंपन्नः सर्वेश्वरश्च शम्भुराकाशमध्ये" इत्यग्रे श्रूयमाणत्वात् तैः सह साम्योक्तिं यो न सहते, स माहेश्वराख्य इत्यर्थः।।९।।

शिवापेक्षा कोणी अधिक आणि त्याच्या बरोबरीचा कोणी नाही. या वेदवाक्यानुसार माहेश्वराचे स्वरूप सांगतात—ब्रह्मा, विष्णू, रुद्र, इंद्र आदी देवांचा जन्म झाला आहे, असे श्रुतिवचन आहे. हे सुरगण जन्ममरणपीडित व त्रिमलयुक्त आहेत, परंतु परशिव मात्र कशांचेही कार्य व कारण नसल्यामुळे तो अजन्मा व अनादी आहे. ब्रह्मादी देव पातकी असून त्यांची परशिवाशी कोणी बरोबरी करू लागला तर ज्याला सहन होत नाही तो माहेश्वर होय.।।९।।

अथ—"ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानां ब्रह्माधिपति-र्ब्रह्मणोऽधिपतिर्ब्रह्मा शिवो मे अस्तु सदाशिवोम्" इति ईशानमन्त्रार्थम्, "ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति। भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया।। तमेवं शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।।" इति भगवद्गीतार्थं चानुस्मरन् माहेश्वरस्वरूपं प्रकाशयति—

ईश्वरः सर्वभूतानां ब्रह्मादीनां महानिति।
बुद्धियोगात् तदासक्तो भक्तो माहेश्वरः स्मृतः।।१०।।

ब्रह्मादीनां चतुर्मुखप्रभृतीनां सर्वभूतानां समस्तपशुप्राणिनाम् ईश्वरः प्रेरकीभूतपरमेश्वर एक एव महान् श्रेष्ठ इति बुद्धियोगात् तदासक्तः महेश्वरासक्तो भक्तः शिवभक्तो माहेश्वर इति स्मृत इत्यर्थः।।१०।।

सर्व विद्यांचा ईश्वर, चराचराचा नियामक, ब्रह्मादी देवतांचा अधिपती, प्रणवस्वरूप सदाशिव माझे मंगल करो, अशी वेदांत प्रार्थना आहे. गीतेतही 'सर्व प्राणिमात्रांच्या हृदयात वास करणारा ईश्वर यंत्राप्रमाणे सर्व भूतांना आपल्या मायेने भ्रमण करायला लावतो' असे म्हटले आहे. हा अर्थ आठवून माहेश्वराचे स्वरूप स्पष्ट करतात—सृष्टिकर्ता ब्रह्मदेव आणि त्याने निर्माण केलेल्या सर्व प्राणिमात्रांना प्रेरक असल्यामुळे त्या सर्वांपेक्षा श्रेष्ठ परशिवच आहे, अशा दृढ बुद्धीने जो परशिवाच्या ठायी आसक्त असतो त्याला माहेश्वर म्हणावे.।।१०।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अथ शिव एक एव मुक्तिद इति यो जानाति स माहेश्वर इति सूत्रद्वयेन कथयति—

ब्रह्मादिदेवताजालं मोहितं मायया सदा।
अशक्तं मुक्तिदाने तु क्षयातिशयसंयुतम्।।११।।
अनादिमुक्तो भगवानेक एव महेश्वरः।
मुक्तिदश्चेति यो वेद स वै माहेश्वरः स्मृतः।।१२।।

क्षयातिशयसंयुतं जननमरणातिशयेन संयुक्तं ब्रह्मविष्ण्वादिदेवतानीकं निरन्तं मायया परमेश्वरस्वातन्त्र्यापरपर्यायमायाशक्त्या मोहितम् अन्धीकृतं सद् मुक्तिदाने तु परापरमुक्तिप्रदाने अशक्तम् असमर्थम्। अनादिमुक्तो नित्यमुक्तो भगवान् षड्गुणैश्वर्यसंपन्नो महेश्वरः "तत्परं ब्रह्म स एकः स एको रुद्रः स ईशानः स भगवान् स महेश्वरः स महादेवः" इत्यथर्वशिरःप्रसिद्धपरमेश्वर एक एव मुक्तिदश्चेति परापरमुक्तिप्रद इति यो वेद जानाति, स वै माहेश्वर इति स्मृत इत्यर्थः।।११-१२।।

शिव हाच मुक्तिदाता आहे, अशी जाणीव असलेल्या शिवभक्ताला माहेश्वर म्हणतात. हा आशय दोन श्लोकात स्पष्ट करतात—ब्रह्मा विष्णू आदी देव जन्ममरणाच्या आधीन असून परशिवाच्या स्वातंत्र्यरूप अशा मायाशक्तीने मोहांध झालेले असल्यामुळे ते मुक्ती द्यायला असमर्थ आहेत. अनादी, नित्यमुक्त व षड्गुणैश्वर्यसंपन्न असा एक महेश्वरच मुक्ती देण्यास समर्थ आहे, हे जो जाणतो तो माहेश्वर होय.।।११-१२।।

अथ ब्रह्मादिमाहैश्वर्यं तृणवद् ज्ञात्वा शिवानन्दतत्परो वीरमाहेश्वर इत्याह सूत्रद्वयेन—

क्षयातिशयसंयुक्ता ब्रह्मविष्ण्वादिसंपदः।
तृणवन्मन्यते युक्त्या वीरमाहेश्वरः सदा ।।१३।।
शब्दस्पर्शादिसम्पन्ने सुखलेशे तु निःस्पृहः।
शिवानन्दे समुत्कण्ठो वीरमाहेश्वरो भवेत्।।१४।।

विनाशातिशयेन संयुक्ता ब्रह्मविष्ण्वादिसम्पदो वीरमाहेश्वरः शिवभक्तो युक्त्या अनित्यमिति बुद्ध्या तृणवत् सदा मनुते जानाति। तस्मात् शब्दस्पर्शादिसम्पन्ने सोपाधिके सुखलेशे तुच्छसुखे निःस्पृहः सन् शिवानन्दे नित्यसुखे समुत्कण्ठः प्रीतिमान् वीरमाहेश्वरो भवेत् स्यादित्यर्थः।।१३-१४।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

आता वीरमाहेश्वराचे लक्षण दोन श्लोकातून सागतात—ब्रह्मा, विष्णू आदींची ऐश्वर्ये क्षय व वृद्धी पावणारी असल्यामुळे ती अनित्य आहेत. हे अनुभवाने जाणून त्याना जो तृणवत् मानतो आणि शब्द-स्पर्शादी विषयापासून उत्पन्न होणाऱ्या तुच्छ सुखाविषयी निःस्पृह होऊन नित्य अशा शिवानंदप्राप्तीची आकाक्षा बाळगतो तोच वीरमाहेश्वर होय.।।१३-१४।।

अथ तदाचारभेदस्थितिं च षड्भिः सूत्रैः प्रतिपादयति—

परस्त्रीसङ्गनिर्मुक्तः परद्रव्यपराङ्मुखः।
शिवार्थकार्यसम्पन्नः शिवागमपरायणः।।१५।।
शिवस्तुतिरसास्वादमोदमानमनाः शुचिः।
शिवोत्कर्षप्रमाणानां सम्पादनसमुद्यतः।।१६।।
निर्ममो निरहङ्कारो निरस्तक्लेशपञ्जरः।
अस्पृष्टमदसम्बन्धो मात्सर्यविशवर्जितः।।१७।।
निरस्तमदनोन्मेषो निर्धूतक्रोधविप्लवः।
सदा सन्तुष्टहृदयः सर्वप्राणिहिते रतः।।१८।।
निवारणसमुद्योगी शिवकार्यविरोधिनाम्।
सहचारी सदाकालं शिवोत्कर्षाभिधायिभिः।।१९।।
शिवापकर्षसंप्राप्तौ प्राणत्यागेऽप्यशङ्कितः।
शिवैकनिष्ठः सर्वात्मा वीरमाहेश्वरो भवेत्।।२०।।

निरस्तक्लेशपञ्जरो निवारिताविद्यादिक्लेशसमूहवान्, निर्धूतक्रोधविप्लवः निवारितक्रोधबाधावान्, शिवैकनिष्ठः शिवलिङ्गैकनिष्ठः, सर्वात्मा पूर्णाहंभाववान्, निरहङ्कारः परिच्छिन्नशरीराद्यहंभावशून्यः। शिष्टं स्पष्टम्। एवमादिविशेषणविशिष्टः श्रीवीरशैवो माहेश्वरः स्यादित्यर्थः। अत्र निरस्तक्लेशपञ्चक इति पाठान्तरम्।।१५-२०।।

इति माहेश्वरप्रशंसास्थलम्

माहेश्वराचे आचारभेद सहा श्लोकात स्पष्ट करतात—परस्त्रीकडे पापदृष्टीने न पाहणारा, परद्रव्याकडे ढुंकूनही न पाहणारा, सदैव शिवकार्यात तत्पर असणारा, शिवागमाच्या अभ्यासात गढून गेलेला, शिवस्तुतीतील आनंद उपभोगणारा, शुद्ध आचरण असणारा, शिवश्रेष्ठत्व सिद्ध करणाऱ्या ग्रंथाचा संग्रह करणारा, ममत्वशून्य, निरहंकारी, पंचक्लेशांपासून मुक्त असणारा,

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

मदरहित, मत्सररहित, कामवासनेपासून मुक्त, क्रोधरहित, सदा संतुष्ट राहणारा, सर्व प्राणिमात्राच्या कल्याणात गुतलेला, शिवकार्याला विरोध करणारांचे निवारण करणारा, शिवभक्तांच्या सहवासात रमणारा, शिवाच्या कोणत्याही अपकर्षाच्या निवारणासाठी आपल्या प्राणाचीही पर्वा न करणारा, शिवावर दृढनिष्ठा असणारा, प्राणिमात्रांत आत्मस्वरूप पाहणारा असा तो वीरमाहेश्वर होय.।।१५ ते २०।।

अथ लिङ्गनिष्ठास्थलम्

अथ अनेन माहेश्वरेण विधीयमानां लिङ्गनिष्ठां नवभिः सूत्रैः प्रतिपादयति—

अस्य माहेश्वरस्योक्तं लिङ्गनिष्ठामहास्थलम्।
प्राणात्ययेऽपि सम्पन्ने यदत्याज्यं विधीयते।।२१।।

यद् यल्लिङ्गनिष्ठास्थलं प्राणात्यये सम्पन्नेऽपि प्राणसङ्कटे प्राप्ते सत्यपि अत्याज्यं त्यक्तुमयोग्यं विधीयते, तल्लिङ्गनिष्ठामहास्थलम् अस्य माहेश्वरस्य शिवलिङ्गैकतत्परस्य माहेश्वरस्य उक्तं कथितमित्यर्थः।।२१।।

आता माहेश्वराची लिंगनिष्ठा नऊ श्लोकांत स्पष्ट करतात—माहेश्वराची लिंगावर अत्यंत निष्ठा असते. प्राणावर संकट आले तरी लिंगत्याग करणे त्याला अनुचित वाटते. यालाच लिंगनिष्ठा महास्थल म्हणतात. लिंगाविषयी अनन्य निष्ठा बाळगणाऱ्या माहेश्वरास उद्देशून या स्थलाचे निरूपण केलेले आहे.।।२१।।

कीदृशोऽयं प्राणसङ्कट इत्यत्र— "भवेत्प्राणपरित्यागश्छेदनं शिरसोऽपि वा। न त्वनभ्यर्च्य भुञ्जीयाद्भगवन्तं त्रियम्बकम्।।" इति शिवधर्मवचनानुसारेण कथयति—

अपगच्छतु सर्वस्वं शिरश्छेदनमस्तु वा।
माहेश्वरो न मुञ्चेत लिङ्गपूजामहाव्रतम्।।२२।।

स्पष्टम्।।२२।।

आता शिवधर्मग्रंथांतील वचनानुसार माहेश्वराच्या लिंगनिष्ठेविषयी सांगतात—संपत्तीचा सर्वनाश होवो अथवा शिरच्छेद होण्याचा प्रसंग येवो, परंतु माहेश्वराने आपले लिंगपूजेचे महाव्रत

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सोडू नये. अशा प्रकारे कोणत्याही संकटात लिंगनिष्ठा दृढ ठेवणाराच माहेश्वर होय.।।२२।।

अथ ये शिवपूजाव्यतिरेकेण न भुञ्जन्ति, तेषां हस्ते करतलामलकवन्मोक्षलक्ष्मीरुल्लसतीत्याह—

लिङ्गपूजामकृत्वा तु ये न भुञ्जन्ति मानवाः।
तेषां महात्मनां हस्ते मोक्षलक्ष्मीरुपस्थिता।।२३।।

मोक्षलक्ष्मीरुपस्थिता वर्तत इत्यर्थः। इदं लिङ्गनिष्ठायाः फलमित्युक्तं भवति।।२३।।

शिवपूजा केल्यावरच अन्नग्रहण करणाराना प्राप्त होणाऱ्या फलाचे निरूपण करतात—लिंगपूजा केल्याशिवाय जे अन्नग्रहण करीत नाहीत त्यांच्या हातात, तळहातावरील आवळ्यासारखी स्पष्ट, मोक्षरूप लक्ष्मी वास करते. म्हणजेच मोक्षप्राप्ती लिंगनिष्ठांना सहज सुलभ होते.।।२३।।

अथेममर्थमेव सूत्रद्वयेन विशेषयति—

किमन्यैर्धर्मकलिलैः कीकषार्थप्रदायिभिः।
साक्षान्मोक्षप्रदः शम्भोर्धर्मो लिङ्गार्चनात्मकः।।२४।।

शम्भोः शिवस्य लिङ्गार्चनात्मको धर्मः साक्षान्मोक्षप्रदः। तस्माद् अन्यैः शिवलिङ्गपूजातिरिक्तैः कीकषार्थप्रदायिभिः कुत्सितार्थदायिभिः धर्मकलिलैः क्षुद्रधर्मैः किम्? किं प्रयोजनमित्यर्थः।।२४।।

हाच अर्थ दोन श्लोकांत अधिक विशद करतात—लिंगार्चनात्मक धर्म हा सुखकर व साक्षात् मोक्षदायक असताना इतर क्षुद्रफल देणाऱ्या धर्मांचे काय प्रयोजन?।।२४।।

अथ लिङ्गार्पितान्नपानप्राशनमहत्त्वमाह—

अर्पितेनान्नपानेन लिङ्गे नियमपूजिते।
ये देहवृत्तिं कुर्वन्ति महामाहेश्वरा हि ते।।२५।।

हि प्रसिद्धम्। शिष्टं स्पष्टम्।।२५।।

आता महामाहेश्वराचे लक्षण सांगतात—प्रतिदिन इष्टलिंगपूजोत्तर लिंगार्पण केलेल्या अन्नोदकाने जे आपल्या देहाचे

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भरणपोषण करतात ते महामाहेश्वर या नावाने ओळखले जातात.।।२५।।

अथ– "यद्धि मनसा ध्यायति तद्वाचा वदति तत्कर्मणा करोति" इति श्रुत्यनुसारेण त्रिकरणपूर्वकं शिवलिङ्गनिष्ठाः शिवा एवेत्याह–

चिन्मये शाङ्करे लिङ्गे स्थिरं येषां मनः सदा।
विमुक्तेतरसर्वार्थं ते शिवा नात्र संशयः।।२६।।

येषां मनो विमुक्तेतरसर्वार्थं त्यक्तस्वर्गादितुच्छफलाभिलाषं सत् चिद्रूपे शिवलिङ्गे सदा स्थिरं ते शिवा भूरुद्राः, अत्र अस्मिन्नर्थे न संशय इत्यर्थः।।२६।।

त्रिकरणपूर्वक लिंगनिष्ठा ठेवणारे माहेश्वर हे साक्षात् शिवस्वरूपच असतात, असे सांगतात–ज्याचे मन स्वर्गादी तुच्छ फलापासून मुक्त असून चिन्मय अशा शिवलिंगात सदैव स्थिर असते असे माहेश्वर भूमीवरील रुद्रच होत, यात संशय नाही.।।२६।।

नन्वस्मिन् चिद्रूपलिङ्गे मनोमात्रविश्रान्तिरुक्तेत्याशङ्क्य सूत्रान्तरेण करणत्रयविश्रान्तिं च दर्शयति–

लिङ्गे यस्य मनो लीनं लिङ्गस्तुतिपरा च वाक्।
लिङ्गार्चनपरौ हस्तौ स रुद्रो नात्र संशयः।।२७।।

इति स्पष्टम्।।२७।।

ज्याचे मन लिंगध्यानात लीन झाले आहे, ज्याची वाणी लिंगस्तुतीत रमलेली आहे आणि ज्याचे हात लिंगपूजेत मग्न आहेत, असा त्रिकरणरूप लिंगनिष्ठावंत असणारा माहेश्वर हा साक्षात् रुद्र होय, यात संशय नाही.।।२७।।

एवं लिङ्गनिष्ठस्याग्निहोत्रादिकर्मणा प्रयोजनं नास्तीत्याह–

लिङ्गनिष्ठस्य किं तस्य कर्मणा स्वर्गहेतुना।
नित्यानन्दशिवप्राप्तिर्यस्य शास्त्रेषु निश्चिता।।२८।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

यस्य लिङ्गनिष्ठस्य नित्यानन्दशिवपदप्राप्तिः शास्त्रेषु वेदागमपुराणेषु निश्चितेति तस्य स्वर्गहितुना अग्निहोत्रादिकर्मणा किम्? किं प्रयोजनम्? न किञ्चित्प्रयोजनमित्यर्थः।।२८।।

लिंगनिष्ठा असणाऱ्या माहेश्वराला अन्य अग्निहोत्रादी कर्मे करण्याची आवश्यकता नसल्याचे सांगतात–लिंगनिष्ठ माहेश्वराला नित्यानंदरूपी शिवाची प्राप्ती निश्चितच आहे. वेद, आगम व पुराणे यांतही असेच म्हटलेले आहे. मग केवळ स्वर्गप्राप्ती हाच ज्याचा हेतू आहे अशी अग्निहोत्रादी कर्मे वीरमाहेश्वराने करण्याचे कारणच काय? अर्थात् त्यांना अन्य कर्मांचे प्रयोजन नाही.।।२८।।

अथास्य महत्त्वं प्रतिपादयति–

लिङ्गनिष्ठापरं शान्तं भूतिरुद्राक्षसंयुतम्।
प्रशंसन्ति सदाकालं ब्रह्माद्या देवता मुदा।।२९।।

स्पष्टम्।।२९।।

इति लिङ्गनिष्ठास्थलम्

आता लिंगनिष्ठ माहेश्वराचे महत्त्व सांगतात–विभूति-रुद्राक्ष धारण करणाऱ्या, शांत अशा लिंगनिष्ठ माहेश्वराची प्रशंसा ब्रह्मादी देवताही सदैव आनंदाने करतात.।।२९।।

अथ पूर्वाश्रयनिरसनस्थलम्

अथ– "गुरुसंस्कृतभावः सन् गुरुनिर्मितदेहवान्। विस्मृत्य पूर्वदुर्भावं तदधीनः समाचरेत्।।" इति योगजागमवचनानुसारेण तस्य लिङ्गनिष्ठस्य प्रातिकूल्येन प्राप्तपूर्वाश्रयनिरसनस्थलं सप्तभिः सूत्रैः प्रतिपादयति–

लिङ्गैकनिष्ठहृदयः सदा माहेश्वरो जनः।
पूर्वाश्रयगतान् धर्मांस्त्यज्येत् स्वाचाररोधकान्।।३०।।

निरन्तरं शिवलिङ्गैकनिष्ठचित्तो वीरमाहेश्वरः स्वाचाररोधकान् स्वसमयाचारविरोधिनः पूर्वाश्रयनिष्ठान् धर्मान् प्राकृताचारान् त्यजेदित्यर्थः।।३०।।

गुरूपदेशापूर्वी भक्ताचा देह केवळ मांसपिंड असतो. गुरूच्या सस्कारानंतर त्याचा मंत्रपिंड झाल्यावर पूर्वीचे कुसंस्कार विसरून त्याने गुर्वाज्ञेच्या आधीन राहून सदाचरण करावे, असे योगज

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

आगमात म्हटले आहे. त्या वचनानुसार आता लिंगनिष्ठ झालेल्या माहेश्वराने माहेश्वरस्थलाच्या विरोधी आचरण करू नये, या विषयी सात श्लोकांत सांगतात—शिवलिंगाविषयी सदैव असाधारण निष्ठा बाळगणाऱ्या वीरमाहेश्वराने आपल्या आचार-विचाराला प्रतिकूल असलेल्या पूर्वीच्या प्राकृत आचारांचा त्याग करावा.।।३०।।

तर्ह्ययं कीदृश इत्यत्राह—

स्वजातिकुलजान् धर्मान् लिङ्गनिष्ठाविरोधिनः।
त्यजन् माहेश्वरो ज्ञेयः पूर्वाश्रयनिरासकः।।३१।।

लिङ्गनिष्ठाविरोधिनो लिङ्गनिष्ठाप्रतिकूलान् स्वजातिकुलजान् ब्राह्मणत्वादिजातिकुलालादिकुलप्राप्तान् धर्मान् जातप्रेताशौचादीन् त्यजन् वीरमाहेश्वरः पूर्वाश्रयनिरासक इति ज्ञातुं योग्य इत्यर्थः।।३१।।

तो कसा? तर लिंगनिष्ठेला विरोधी असलेल्या, आपल्या पूर्वीच्या ब्राह्मणादी जाती व कुंभारादी कुले यांपासून प्राप्त झालेल्या जन्म-प्रेत-अशौच इत्यादी सूतकांचा त्याग करणाऱ्या वीरमाहेश्वराला 'पूर्वाश्रय-निरासक' म्हणतात. एकूण लिंगनिष्ठ असणाऱ्या माहेश्वराला कोणत्याही सूतकाचे अशौच नसते.।।३१।।

ननु पूर्वाश्रयप्राप्तनित्यनैमित्तिककर्मपरित्यागे प्रत्यवायश्रवणात् कथं तद्धर्मास्त्यजनीया इत्यत्राह—

शिवसंस्कारयोगेन विशुद्धानां महात्मनाम्।
किं पूर्वकालिकैर्धर्मैः प्राकृतानां हि ते मताः।।३२।।

पूर्वोक्तदानक्षपणलक्षणदीक्षारूपशिवसंस्कारसम्बन्धेन लिङ्गनिष्ठया च विधूतवृत्तवर्तिष्यमाणसकलंकल्मषत्वेन निर्मलानां शिवशरणानां पूर्वाश्रयप्राप्तनित्यनैमित्तिकादिकर्मभिः किं किं प्रयोजनम्? न किञ्चित् प्रयोजनमित्यर्थः। ननु प्रत्यवायनिवृत्तिरेव प्रयोजनमिति चेन्न, "नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते। स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्।।" इति भगवतैव भाषितत्वात्। अस्यायमर्थः— "अत्याश्रमिभ्यः परमं पवित्रम्" इति श्रुतिसिद्धान्तितवर्णाश्रमे इह अभिक्रम आत्माभिमुखीकरणप्रवीणगुरुकारुण्यप्राप्तभूतिधारणाद्याचारक्रमः, तस्य नाशो

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

नास्ति विस्मृतिशून्यत्वेन तदेकनिष्ठया सदा विधीयमानत्वेन विच्छेदो नास्तीत्यर्थः। नन्वेवं चेद्, नित्यनैमित्तिककर्मलोपात् प्रत्यवायः स्यादित्यत्राह— प्रत्यवायो न विद्यत इति। कुत इत्यत्राह— अस्य धर्मस्य शिवानुसन्धानाङ्गभूतभूतिधारणादिधर्मस्य स्वल्पमपि लेशमात्रमपि महतो भयाद् महापातकादिभयात् त्रायत इति यथा पूर्वाश्रमधर्मपरित्यागे संन्यासिनां प्रत्यवायो नास्ति, तथा शिवाश्रयनिष्ठानां पूर्वाश्रयधर्मपरित्यागे प्रत्यवायो नास्तीति भावः। ते पूर्वाश्रयधर्माः प्राकृतानां हि मायासम्बन्धिनामेव मताः प्रोक्ता इति हि प्रसिद्धम्।।३२।।

पूर्वावस्थेतील नित्य-नैमित्तिक कर्मांचा त्याग केल्यास विघ्ने येतात असे म्हणतात.मग त्याचा त्याग कसा करावा? याचे उत्तर असे—पूर्वोक्त सहजादी दाने, शिवदीक्षासंस्कार व लिंगनिष्ठा यामुळे ज्याचे किल्मिष, मनोमालिन्य व पापे नाहीशी होऊन निर्मल झालेल्या अशा शिवशरणास, वीरशैवास वा वीरमाहेश्वरास संध्यावंदन आणि श्राद्धादी नित्यनैमित्तिक कर्मांची आवश्यकताच काय? अर्थात् नाहीच. विघ्नांचा नाश हे नित्य नैमित्तिक कर्मांचे प्रयोजन आहे. या कर्मांचा लोप झाल्यास मनुष्यावर संकटे येतील त्याचे काय? याचे उत्तर असे की—विभूति-रुद्राक्षधारण इत्यादी विशिष्ट धर्म शिवाच्या अनुसंधानाला अंगभूत आहेत. त्याचा थोडा अंश देखील महापातकापासून शिवभक्ताचे रक्षण करू शकतो. ज्या प्रमाणे संन्यासी लोकांनी पूर्वाश्रमातील सर्व धर्मादिकांचा त्याग केल्यास दोष लागत नाही, त्या प्रमाणे दीक्षादी शिवसंस्कारामुळे त्रिमलांपासून मुक्त झालेल्या शुद्ध अशा वीरशैवास व वीरमाहेश्वरास पूर्वावस्थेतील पूर्वोक्त नित्यनैमित्तिक कर्मे सोडल्यास कसलाही दोष लागत नाही. शिवाय अशा कर्मापासून प्राप्त होणाऱ्या फलांची त्यांना आवश्यकता नसते. ते धर्म व त्यांची फले प्राकृत लोकांकरिता असतात.।।३२।।

तस्मात्—

शिवसंस्कारयोगेन शिवधर्मानुषङ्गिणाम्।
प्राकृतानां न धर्मेषु प्रवृत्तिरुपपद्यते।।३३।।

नोपपद्यते, न जायत इत्यर्थः।।३३।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

शिवदीक्षासस्कार झाल्यामुळे व शिवधर्माच्या संबधामुळे शिवयोगी माहेश्वराच्या मनात प्राकृत लोकांच्या धर्माविषयी प्रवृत्ती उत्पन्न होत नाही.।।३३।।

ननु मर्त्येषु द्वैविध्यं कथमित्यत्राह—

विशुद्धाः प्राकृताश्चेति द्विविधा मानुषाः स्मृताः।
शिवसंस्कारिणः शुद्धाः प्राकृता इतरे मताः।।३४।।

स्पष्टम्।।३४।।

मानवा-मानवामध्ये असा भेद कसा होऊ शकतो? उत्तर असे की मानव विशुद्ध आणि प्राकृत असे दोन प्रकारचे आहेत. जे शिवसंस्कारयुक्त असतात ते विशुद्ध मानव होत. आणि ज्याना शिवसस्काराचा स्पर्शही होत नाही, ते प्राकृत मानव होत।।३४।।

ननु वर्णाश्रमधर्मेषु द्वैविध्यं न दृश्यत इत्यत्राह—

वर्णाश्रमादिधर्माणां व्यवस्था हि द्विधा मता।
एका शिवेन निर्दिष्टा ब्रह्मणा कथिताऽपरा।।३५।।

स्पष्टम्।।३५।।

वर्णाश्रमादी धर्माची व्यवस्था दोन प्रकारची आहे. एक व्यवस्था शिवाने सांगितलेली असून दुसरी ब्रह्मदेवाने सांगितलेली आहे.।।३५।।

तर्हि को धर्मः कस्येत्यत्राह—

शिवोक्तधर्मनिष्ठा तु शिवाश्रमनिषेविणाम्।
शिवसंस्कारहीनानां धर्मः पैतामहः स्मृतः।।३६।।

स्पष्टम्।।३६।।

इति पूर्वाश्रयनिरसनस्थलम्

कोणता धर्म कोणाचा आहे? याचे उत्तर असे—शिवोक्त आश्रमधर्मानुसार भस्मादी लिंगयुक्त स्वधर्माचे सम्यक् आचरण शिवभक्त व माहेश्वर याना उचित असून शिवसस्कारविहीन लोकांना ब्रह्मदेवाने सांगितलेल्या धर्मावर विश्वास ठेवणे उचित आहे.।।३६।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अथ सर्वाद्वैतनिरसनस्थलम्

अथ माहेश्वरो यथा लिङ्गनिष्ठाविरोधित्वात् पूर्वाश्रयनिरासकः, तथा लिङ्गनिष्ठाविरोधित्वात् सर्वाद्वैतनिरासकोऽपि भवेदिति तेन विधीयमान-सर्वाद्वैतनिरसनस्थलं प्रतिपादयति—

पूज्यपूजकयोर्लिङ्गजीवयोर्भेदवर्जने।
पूजाकर्माद्यसम्पत्तेर्लिङ्गनिष्ठाविरोधतः।।३७।।
सर्वाद्वैतविचारस्य ज्ञानाभावे व्यवस्थितेः।
भवेन्माहेश्वरः कर्मी सर्वाद्वैतनिरासकः।।३८।।

पूज्यपूजकयोः शिवलिङ्गभक्तयोः, भेदाभावे सति लिङ्गनिष्ठाविरोधात् पूजाकर्मादिसम्पत्त्यभावात् सर्वाद्वैतविचारस्य व्यवस्थितेः वर्तनस्य ज्ञानाभावेऽनुपपन्नत्वे सति कर्मी माहेश्वरः शिवलिङ्गपूजादिकर्मनिष्ठवीर-माहेश्वरः सर्वाद्वैतनिरासकः स्यात्, "यावदायुस्त्रयो वन्द्या वेदान्तो गुरुरीश्वरः" इति वेदान्तवचनात्, "क्रियाद्वैतं न कर्तव्यम्" इति सिद्धान्तवचनाच्च लिङ्गनिष्ठो माहेश्वरः सर्वाद्वैतं न कुर्यादिति भावः।।३७-३८।।

लिंगनिष्ठेला प्रतिकूल असलेल्या पूर्वाश्रयाचा माहेश्वर जसा निरास करतो, तसाच लिंगनिष्ठेला प्रतिकूल असलेल्या सर्वाद्वैताचाही निरास करतो. त्याच्याकडून केल्या जाणाऱ्या सर्वाद्वैताचे निरसन सांगतात—पूज्य व पूजक, शिव व जीव याच्यामध्ये भेद नसेल तर लिंगनिष्ठेला बाध येतो. शिवाय लिंगपूजेस अडसर उत्पन्न होतो. पूज्य व पूजक, प्रेर्य व प्रेरक, उपास्य व उपासक हा संबंध अद्वैतामुळे नव्हें तर द्वैतामुळे शोभून दिसतो. म्हणून शिवलिंगनिष्ठ असा माहेश्वर अद्वैताचा निरासक होतो. 'आपले आयुष्य असेपर्यंत वेद, गुरू आणि ईश्वर हे वंद्य असतात', असे वेदान्त म्हणतो. 'क्रियेमध्ये अद्वैत करणे योग्य नाही', असेही सिद्धान्तवचन आहे. म्हणून लिंगनिष्ठ माहेश्वराने सर्वाद्वैताचा भाव धरू नये.।।३७-३८।।

अथ भेदेन क्रियमाणपूजाप्रकारः कथमित्यत्राह—

प्रेरकं शङ्करं बुद्ध्वा प्रेर्यमात्मानमेव च।
भेदात् तं पूजयेन्नित्यं न चाद्वैतपरो भवेत्।।३९।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जीवानां धर्माधर्मगोचरीभूतबुद्धिवृत्तिप्रेरकः परमेश्वरः, तत्प्रेर्या जीवा इति बुद्ध्वा एवंविधभेदात् तं परमेश्वरं नित्यं पूजयेत्, अद्वैतपरो न भवेत्, पूजाविरोधादिति।।३९।।

द्वैतभावाने केल्या जाणाऱ्या पूजेचा प्रकार कसा असतो? तर-शंकर हा बुद्धीचा प्रेरक असून जीव हा त्याच्याकडून प्रेरणा घेणारा म्हणजे प्रेर्य होय. प्रेरक आणि प्रेर्य या भेदाची जाणीव ठेवून माहेश्वराने नित्य शिवलिंगपूजा करावी. अद्वैतामुळे पूजेला बाध येतो म्हणून अद्वैतनिष्ठ होऊ नये.।।३९।।

अथ प्रकारान्तरेण भेदमुपपादयति—

पतिः साक्षान्महादेवः पशुरेष तदाश्रयः।
अनयोः स्वामिभृत्यत्वमभेदे कथमिष्यते।।४०।।

महादेवः परमेश्वरः "पतिं विश्वस्य" इति स्मृतेः पतिः जगत्पतिः, तदाश्रय एष जीवः पशुः, अनयोः शिवजीवरूपपतिपश्वोः, अभेदे भेदाभावे स्वामिभृत्यत्वं कथमिष्यते इच्छाविषयीक्रियते? न कथञ्चिदपीति स्वामिभृत्यत्वलक्षणभेदेनैव पूजनीय इत्यर्थः।।४०।।

दुसऱ्या प्रकाराने हा भेद सांगतात—परमेश्वर हा त्रैलोक्याचा पती म्हणजे स्वामी आहे आणि जीव हा त्याचा आश्रित म्हणजे पशू आहे. ईश्वर व जीव या दोघात स्वामी-सेवक संबंध असतो. त्यांच्यात जर अद्वैत मानले तर 'मूले कुठाराघातः' या म्हणीप्रमाणे क्रियाकर्माला तिलांजली द्यावी लागेल. म्हणून स्वामी व भृत्य या भेदभावानेच ईश्वरार्चन करावे.।।४०।।

नन्वयं भेदभावः कियत्पर्यन्तमनुवर्तत इत्यत्राह—

साक्षात्कृतं परं तत्त्वं यदा भवति बोधतः।
तदाद्वैतसमापत्तिर्ज्ञानहीनस्य न क्वचित्।।४१।।

बोधतः श्रुतिगुरुस्वानुभवबोधतः परं तत्त्वं परशिवपरब्रह्माख्यमहालिङ्गतत्त्वं यदा साक्षात्कृतं भवति, दशमदृष्टान्तेन स्वात्माभेदेन प्रत्यक्षीकृतं भवति, तदा अद्वैतसमापत्तिर् अद्वैतस्फूर्तिः, ज्ञानहीनस्य श्रुतिगुरुस्वानुभावरहितस्य केवलकर्मयुतस्य क्वचित् कदाचित् किञ्चिदपि न नास्तीत्यर्थः।।४१।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

हा भेदभाव कोठपर्यंत असावा? याचे उत्तर देतात—श्रुती, गुरूपदेश व स्वानुभव यामुळे जेव्हा परशिवब्रह्माचा साक्षात्कार होतो तेव्हा अद्वैतसिद्धी लाभते. श्रुती, गुरूपदेश व स्वानुभव नसलेल्या अज्ञ जीवाला अद्वैतसिद्धी कधीही होत नाही. त्याला सामरस्य प्राप्त होईपर्यंत कर्मकांडाची आवश्यकता असते.।।४१।।

ननु कर्मिणः कस्मान्नाद्वैतसिद्धिरित्यत्राह—

भेदस्य कर्महेतुत्वाद् व्यवहारः प्रवर्तते।
लिङ्गपूजादिकर्मस्थो न चाद्वैतं समाचरेत्।।४२।।

भेदस्य व्यवहारो जीवेश्वरभेदव्यवहारः, कर्महेतुत्वात् शिवपूजादि-क्रियाहेतुत्वेन प्रवर्तते, अतः शिवलिङ्गपूजाजपादिकर्मनिष्ठः, अद्वैतं न समाचरेत्। तस्माल्लिङ्गपूजादिकर्मनिष्ठस्य अद्वैतबोधाविर्भावो नास्तीत्यर्थः ।।४२।।

कर्मकांड आचरणाऱ्याला अद्वैतसिद्धी का होत नाही? तर—ईश्वर व जीवभेदाचा व्यवहार शिवपूजादी कर्मांना कारण आहे. अर्थात् या भेंदामुळेच पूजादी व्यवहार घडतो. म्हणून शिवपूजातत्पर माहेश्वराने अद्वैत मानू नये.।।४२।।

अथोक्तार्थमुपसंहरति—

पूजादिव्यवहारः स्याद्भेदाश्रयतया सदा।
लिङ्गपूजापरस्तस्मान्नाद्वैते निरतो भवेत्।।४३।।

लिङ्गपूजानिष्ठो वीरमाहेश्वरः, अद्वैते निरत आसक्तो न भवेत्, न स्यादित्यर्थः।।४३।।

इत्यद्वैतनिरसनस्थलम्

आता या अद्वैतस्थलाचा उपसंहार असा—निरंतर भेदाचा आश्रय केल्यामुळेच शिवलिंगपूजादी व्यवहार होतील, म्हणून शिवलिंगनिष्ठ माहेश्वराने अद्वैतासक्त होऊ नये. अर्थात् मी आणि शिव एकच आहोत असा निरर्थक गर्व करून लिंगपूजेचा त्याग कधीही करू नये.।।४३।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अथाह्वाननिरसनस्थलम्

अथ शिवलिङ्गपूजार्थमद्वैतं निरस्य द्वैताङ्गीकारवान् माहेश्वरः शैव इव पूजार्थं शिवलिङ्गे शिवं नावाहयेदित्याह्वाननिरसनस्थलं कथयति—

लिङ्गार्चनपरः शुद्धः सर्वाद्वैतनिरासकः।
स्वेष्टलिङ्गे शिवाकारे न तमावाहयेच्छिवम्।।४४।।

लिङ्गार्चनपरः शिवलिङ्गपूजातत्परः सन् सर्वाद्वैतनिरासकः शुद्धः नित्यशुद्धवीरमाहेश्वरः शिवाकारे शिवस्वरूपवति स्वेष्टलिङ्गे तं प्रसिद्धं शिवं नावाहयेदित्यर्थः।।४४।।

लिंगपूजेसाठी अद्वैताचे निरसन करून द्वैताचा अंगीकार केलेल्या माहेश्वराने, अन्य शैवाप्रमाणे, शिवलिंगात पूजेसाठी शिवाला आवाहन करू नये. यासाठी आव्हान-निरसन-स्थलाचे निरूपण करतात—लिंगपूजापरायण, शुद्ध आणि सर्वाद्वैतनिरासक अशा माहेश्वराने आपल्या शिवस्वरूपी इष्टलिंगात पूजाप्रसंगी शिवाला आवाहन करू नये.।।४४।।

अथ कस्मादित्यत्र कारणमाह—

यदा शिवकलायुक्तं लिङ्गं दद्यान्महागुरुः।
तदारभ्य शिवस्तत्र तिष्ठत्याह्वानमत्र किम्।।४५।।

अत्र शिवलिङ्गे आह्वानं किं प्रयोजनकम्? न किञ्चित् प्रयोजनमित्यर्थः। शिष्टं स्पष्टम्।।४५।।

शिवलिंगात शिवाचे आवाहन का करू नये? तर—वीरशैव-तत्त्वज्ञ अशा आचार्यांने शिवभक्ताला शिवकलायुक्त लिंग दिल्यापासून शिव त्या लिंगात अखंड वास करतो. म्हणून शिवलिंगात शिवाला पुन्हा आवाहन करण्याचे कारण नाही.।।४५।।

पुनश्च कारणान्तरमाह—

ससंस्कारेषु लिङ्गेषु सदा सन्निहितः शिवः।
तत्राह्वानं न कर्तव्यं प्रतिपत्तिविरोधकम्।।४६।।

पुनराह्वानं पूर्वाह्वानविरोधि, तद्विसर्जनानन्तरभावित्वादिति भावः।।४६।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

दुसरे कारण सांगतात—गुरुसंस्कारित लिंगात शिव नित्य असतोच. शिवलिंगात पुन्हा आवाहन केल्यास गुरूने पूर्वी केलेल्या आवाहनास विरोधी होईल म्हणून भक्ताने पुन्हा आवाहन करू नये.।।४६।।

अथाह्वानासम्भवादेव विसर्जनं च नास्तीत्याह—

नाह्वानं न विसर्गं च स्वेष्टलिङ्गे तु कारयेत्।
लिङ्गनिष्ठापरो नित्यमिति शास्त्रस्य निश्चयः।।४७।।

स्पष्टम्।।४७।।

इत्याह्वाननिरसनस्थलम्

आवाहन नसल्यामुळे विसर्जनाचीही गरज नाही, असे सागतात—लिगनिष्ठ माहेश्वराने नित्य पूजेत आपल्या इष्टलिगात शिवाचे आवाहन आणि विसर्जन करू नये, असा शास्त्राचा निर्णय आहे.।।४७।।

अथ अष्टमूर्तिनिरसनस्थलम्

अथ शिवलिङ्गमेव शिव इत्यभिप्रायेणाह्वानं निराकृत्य पृथिव्याद्यष्टमूर्तित्वं च न सम्भवति, भेदादिति तेन माहेश्वरेण विधीयमानाष्टमूर्तिनिरसनस्थलं प्रदर्शयति—

यथात्मशिवयोरैक्यं न मतं कर्मसङ्गिनः।
तथा शिवात् पृथिव्यादेरद्वैतमपि नेष्यते।।४८।।

कर्मसङ्गिनः शिवपूजादिकर्मनिष्ठस्य माहेश्वरस्य आत्मशिवयोर्जीवलिङ्गयोर् ऐक्यमेकत्वं यथा न मतं न संमतम्, पूज्यपूजकविवेकासंभवात्, तथा शिवाद्भूम्यादेरद्वैतमभेदोऽपि नेष्यते, भूम्याद्यष्टमूर्तिष्वात्मनोऽपि प्रविष्टत्वादिति भावः।।४८।।

शिवलिंग म्हणजे शिवच या अभिप्रायाने इष्टलिंगात शिवाचे आवाहन-निरसन करून शिव हा पृथ्वी आदी अष्टमूर्तिस्वरूपी आहे, असे म्हणणे योग्य नाही. त्या दोहोंत भेद आहे हे सागण्यासाठी अष्टमूर्तिनिरसनस्थलाचे निरूपण करतात—शिवपूजादी कर्मनिष्ठ माहेश्वराला जसे शिवजीवाचे एकत्व संमत नाही तसेच पूज्य-पूजक भावास विरोधी शिव आणि पृथ्वियादी अष्टमूर्तीमधील अभेदही त्याला संमत नाही.।।४८।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अथ शिवस्य पृथिव्यादेरभेदोऽपि न संभवतीत्यत्राह—

पृथिव्याद्यष्टमूर्तित्वमीश्वरस्य प्रकीर्तितम्।
तदधिष्ठातृभावेन न साक्षादेकभावतः।।४९।।

"यस्य पृथ्वी शरीरम्" इत्यारभ्य "यस्मात्मा शरीरम्" इत्यन्त-बृहदारण्यश्रुतिप्रोक्ताष्टमूर्तित्वं तदधिष्ठातृभावेन पृथिव्याद्यष्टमूर्तित्वं तदधिष्ठातृभावेन पृथिव्याद्यष्टमूर्त्यधिष्ठातृत्वेन प्रकीर्तितम्, "विश्वं महेश्वर भवानधितिष्ठतीति विश्वात्मतामुपचरन्ति यदागमास्ते" इत्यभियुक्तोक्तेः। यथा स्तनस्तन्ययोर्भेदेऽपि स्तनं पिबन्तीति व्यवहारः, तथा अभेदव्यवहार औपचारिकः, साक्षादेकभावतो न, "द्वयमुष्णं द्वयं शीतमनुष्णाशीतलं द्वयम्। द्वयमस्पर्शमित्यष्टौ पान्तु वो हरमूर्तयः।।" इति तासां परस्परभिन्नत्वात्, शरीरशरीरिभावस्य भेदघटितत्वाच्चेति।।४९।।

शिवाचा अष्टमूर्तींशी अभेद नाही. कारण, 'पृथ्वी, आप, तेज, वायू, आकाश, सूर्य, चंद्र व आत्मा ही सर्व शंकराची शरीरे आहेत', असे बृहदारण्य श्रुतीत म्हटले असले तरी त्या अष्टमूर्ती शिवाचे आधिपत्य स्पष्ट करण्यासाठी सांगितल्या आहेत. विश्व हें महेश्वरापासून उत्पन्न होते, म्हणून आगम महेश्वराला 'विश्वात्मा' असे म्हणतात. तरीपण शिव आणि अष्टमूर्ती याच्यात भेदही आहेच. जसे स्तन आणि स्तन्य (दूध) याच्यात भेद असला तरी व्यवहारात शिशू स्तनपान करीत आहे असे म्हटले जाते; परंतु वस्तुतः त्याचा अर्थ स्तन्य (दूध) पान करीत आहे असाच असतो. तशा रीतीने पृथिव्यादी अष्टमूर्ती आणि शिव याच्यात अभेद मानला जात असला तरी वास्तविक त्यांच्यात स्तन आणि स्तन्य यांच्याप्रमाणे भेद आहे. शिवाच्या अष्टमूर्तींपैकी अग्नी आणि सूर्य ह्या दोन उष्ण, आप आणि चंद्र ह्या दोन शीत, पृथ्वी व वायू ह्या दोन समशीतोष्ण आणि आकाश व आत्मा ह्या दोन स्पर्शरहित, अशा सर्व मूर्ती परस्परापासून भिन्न आहेत. तशाच रीतीने परमात्मा शिव हा त्या सर्व अष्टमूर्तींपासून भिन्न आहे. त्याचा संबंध शरीर व शरीरी (आत्मा) याच्या सारखा आहे.।।४९।।

अथ कार्यकारणभावाच्च तयोरैक्यं न संभवतीत्याह—

पृथ्व्यादिकमिदं सर्वं कार्यं कर्ता महेश्वरः।
नैतत्साक्षान्महेशोऽयं कुलालो मृत्तिका यथा।।५०।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"ब्रह्मविष्णुरुद्रेन्द्रास्ते संप्रसूयन्ते सर्वाणि चेन्द्रियाणि सह भूतैर्न कारणम्। कारणं तु ध्येयः शम्भुराकाशमध्ये" इति श्रुतेः पृथिव्यादेः कार्यकोटिप्रविष्टत्वाच्छिवस्य कारणरूपत्वात् । एवं च मृच्छब्दोपलक्षित-घटादेः कुलालस्य च यथैक्यं न संभवति, तथा कार्यरूपभूम्यादेः कारणात्मनः शिवस्य चाभेदो न संभवतीत्यर्थः।।५०।।

कार्यकारण भावामुळे त्याच्यात अभेद नाही, हे सांगतात— ब्रह्मा, विष्णू, रुद्र, इंद्र हे जन्माला येतात, म्हणून ते पंचमहाभूते व इंद्रिये यांचे कारण नसून केवळ शिवच सर्व विश्वाचे कारण आहे,' असे श्रुतिवचन आहे. पृथ्वी आदी सर्व भूते हे कार्य असून शिव हा त्यांचे कारण आहे. म्हणून पृथ्वी आदी अष्टमूर्ती आणि शिव यांच्यात अभेद संभवत नाही. मृत्तिकेचा घट (कार्य) व कुंभार (कारण) हे जसे एक नसून भिन्न आहेत, त्या प्रमाणे कार्यरूपात्मक पृथ्वी आदी अष्टमूर्ती व कारणरूप शिव हे भिन्न आहेत, त्यांच्यात अभेद संभवत नाही.।।५०।।

ननु घटकुलालयोरिवेश्वरस्य भूम्यादेरात्यन्तिकभेदः किमित्यत्राह—

पृथिव्याद्यात्मपर्यन्तप्रपञ्चो ह्यष्टधा स्थितः।
तनुरीशस्य चात्मायं सर्वतत्त्वनियामकः।।५१।।

पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशचन्द्रसूर्याग्निहोत्रिरूपेणात्मपर्यन्तमष्टधा स्थितः प्रपञ्चः सर्वोऽपीशस्य शरीरम्। अयमीशः सर्वतत्त्वनियामकः सर्वतत्त्वात्मक-शरीरप्रेरकीभूत आत्मा शरीरीत्यर्थः। एवं च घटकुलालयोर्देहदेहिभाव-शून्यत्वात् ततो विशेष इत्यर्थः।।५१।।

घट आणि कुंभार यांच्यात जसा आत्यंतिक भेद आहे, तसा पृथिव्यादी आणि ईश्वर यांच्यात आहे काय?-पृथ्वी, आप, तेज, वायू, आकाश, चंद्र, सूर्य, अग्नी आणि आत्मा असा अष्टधा प्रपंच हे ईश्वराचे शरीर असले तरी त्याचा प्रेरक, साक्षी परमात्मा आहे. घट व कुंभार यांच्यात देहभाव व देहीभाव नसतो. परंतु अष्टतनू व ईश्वर यांच्यात देह-देहीभाव असल्यामुळे हा संबध विशेष असून तो घट व कुंभार यांच्यातील संबंधापेक्षा वेगळा आहे.।।५१।।

तर्ह्यभेदः किमित्यत्राह—

शरीरभूतादेतस्मात् प्रपञ्चात् परमेष्ठिनः।
आत्मभूतस्य देवस्य नाभेदो न पृथक्स्थितिः।।५२।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

परमेष्ठिनः शिवस्य शरीरभूताद् एतस्माद् इदमित्यङ्गुलिनिर्देश्यत्वेन प्रतीयमानात् प्रपञ्चाद् अभेदो न, भेद एवेत्यर्थः। तथाप्यात्मभूतस्य विश्वशरीरिणो देवस्य न पृथक्स्थितिः, घटपटयोरिव परस्परबाह्यत्वे स्थितिर्नास्ति, शिवस्य व्यापकत्वादिति भावः।।५२।।

तर मग अष्टमूर्ती आणि शिव याच्यात अभेद आहे का? याचे उत्तर असे की, परमेश्वराचे शरीर असलेला व आपल्या प्रचीतीला येणारा हा जो प्रपच आहे, तो परमेश्वरापासून अभिन्न, आहे व भिन्नही आहे. विश्व हे ईश्वराचे शरीर असल्यामुळे व तो सर्व प्राणिमात्रांचा आत्मा असल्यामुळे त्याच्यात अभेद आहे, असे म्हणावे लागते. घट आणि पट याच्यात जसा भेद आहे, तसा ईश्वर व प्रपच याच्यात अत्यत भेद नाही. विश्व हे परमेश्वराचे शरीरच असल्यामुळे तो सर्व वस्तूमध्ये असूनही शरीरातील आत्म्याप्रमाणे तो वेगळा आहे.।।५२।।

तर्हि भेदः कथमित्यत्राह—

अचेतनत्वात् पृथ्व्यादेरज्ञत्वादात्मनस्तथा।
सर्वज्ञस्य महेशस्य नैकरूपत्वमिष्यते।।५३।।

भूम्यादेर्जडत्वाद् आत्मनः अग्निहोत्रिणो यजमानस्याज्ञत्वात्, किञ्चिज्ज्ञत्वादित्यर्थः, महेशस्य चराचरलक्षणविश्वशरीरस्य शिवस्य सर्वज्ञत्वादित्यर्थः, एकरूपत्वं रूपशरीरशरीरिणोरैक्यं नेष्यते नेच्छाविषयीक्रियते । तस्माद्भेद एवेत्यर्थः।।५३।।

असे आहे तर मग भेद कसा? याचे उत्तर असे, की पृथ्वी आदी महाभूते जड, अचेतन आहेत आणि शरीरांतर्गत आत्मा (जीवात्मा) हा किंचित् ज्ञानी आहे. परंतु चराचर विश्व हे ज्याचे शरीर आहे तो शिव मात्र सर्वज्ञ, सर्वव्यापक व सर्वान्तर्यामी आहे. म्हणून शरीर (विश्व) व शरीरी (शिव) याच्यात पूर्ण अभेद मानता येत नाही. त्यामुळे प्रपच आणि परमात्मा याच्यात भेद आहे.।।५३।।

नन्वेवं भेदज्ञानवान् कोऽसावित्यत्राह—

इति यश्चिन्तयेन्नित्यं पृथ्व्यादेरष्टमूर्तितः।
विलक्षणं महादेवं सोऽष्टमूर्तिनिरासकः।।५४।।

स्पष्टम्।।५४।।

इत्यष्टमूर्तिनिरसनस्थलम्

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

असा भेदज्ञानाने युक्त कोण आहे? तर पृथ्वी आदी अष्टमूर्तीहून श्रीशंकर विलक्षण (वेगळा) आहे, असे तत्त्वचिंतन करणाऱ्या माहेश्वराला अष्टमूर्तिनिरासक असे म्हणतात.।।५४।।

अथ सर्वगतनिरसनस्थलम्

अथ माहेश्वरस्य लिङ्गनिष्ठाविरोधिसर्वगतनिरसनस्थलं प्रकाशयति—

सर्वगत्वे महेशस्य सर्वत्राराधनं भवेत् ।
न लिङ्गमात्रे तन्निष्ठो न शिवं सर्वगं स्मरेत्।।५५।।

महेश्वरस्य सर्वगत्वे सर्वत्राराधनं स्यात्, लिङ्गमात्रे न स्यात्, तस्माल्लिङ्गनिष्ठः शिवं सर्वगतं न स्मरेदित्यर्थः।।५५।।

शिव हा सर्वव्यापी व सर्वगत आहे असे मानल्यावर लिगनिष्ठेला अत्यंत बाध येतो. यासाठी सर्वगतनिरसनस्थलाचे विवेचन करतात—शिव हा सर्वव्यापी आहे, म्हणून कशाचेही पूजन केले तरी ते त्यालाच पोहोचते; मग लिगपूजाच करण्याचे कारण काय? असा प्रश्न उपस्थित होईल. या साठी लिंगनिष्ठ मनुष्य शिव सर्वव्यापी नसून तो लिंगातच आहे असे मानतो.।।५५।।

ननु शिवस्य सर्वगत्वाभावे परिच्छिन्नत्वेन लोके भक्तबाहुल्यात् तत्तच्छरीरसङ्गतेष्टलिङ्गानां च बाहुल्यादेकत्र विश्रमिताशेषशरीरभार-स्यान्यत्रावस्थानासम्भवात् कथं तत्र तत्र स्थितिः सम्भवतीत्यत्राह—

सर्वगोऽपि स्थितः शम्भुः स्वाधारे हि विशेषतः।
तस्मादन्यत्र विमुखः स्वेष्टलिङ्गे यजेच्छिवम्।।५६।।

शम्भुः सर्वगोऽपि व्यापकोऽपि स्वाधारे स्वाश्रयीभूतलिङ्गे विशेषतः अतिशयेन स्थितो भवति । तस्मादन्यत्र विमुखः सन् स्वेष्टलिङ्गे शिवं पूजयेदित्यर्थः।।५६।।

परशिव सर्वगत नाही असे म्हटले तर तो परिच्छिन्न (मर्यादित) आहे असे होईल. शिवभक्तही विपुल असून त्यांची इष्टलिंगेही विपुल आहेत. मग त्यांपैकी एकाच इष्टलिंगात तो वास करून असताना अन्य इष्टलिंगांत त्याचा वास कसा संभवेल? याचे उत्तर असे की, शिव सर्वव्यापी असला तरी तो

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

स्वाधारभूत इष्टलिंगात विशेषत्वाने असतो. म्हणून अन्य स्थानाकडे लक्ष न देता माहेश्वराने स्वतःच्या इष्टलिंगातच त्याची पूजा करावी.।।५६।।

ननु सर्वगतः शिवस्तत्र तत्र लिङ्गे कथं विशेषेण तिष्ठतीत्यत्राह—

शिवः सर्वगतश्चापि स्वाधारे व्यज्यते भृशम्।
शमीगर्भे यथा वह्निर्विशेषेण विभाव्यते।।५७।।

वृक्षस्थितो वह्निः शमीवृक्षे यथा विशेषेण भासते, तथा शिवः सर्वगतोऽपि स्वाधारे लिङ्गे भृशम् अतिशयेन व्यज्यते प्रकाशत इत्यर्थः।।५७।।

सर्वव्यापी शिव प्रत्येकाच्या इष्टलिगात विशेषत्वाने कसा राहातो? तर, सर्व वृक्षांत अग्नी असला तरी शमीवृक्षात तो जसा विशेषत्वाने भासतो, त्या प्रमाणे शिव सर्वव्यापी असला तरी त्याचे विशेष आश्रयस्थान असलेल्या इष्टलिंगात तो विशेषत्वाने राहातो.।।५७।।

ननु लिङ्गे किमर्थं विशेषेण तिष्ठतीत्यत्राह—

सर्वगत्वं महेशस्य सर्वशास्त्रविनिश्चितम्।
तथाप्याश्रयलिङ्गेन पूजार्थमधिका स्थितिः।।५८।।

अत्रादि(पि)शब्देन गुरुचरमूर्ती लक्ष्येते। शिष्टं स्पष्टम्।।५८।।

तो इष्टलिगात विशेषत्वाने कशासाठी राहातो? याचे उत्तर असे की, महेश्वर सर्वव्यापी आहे, हे सर्व शास्त्रानी मान्य केले आहे. तथापि तो आपले आश्रयस्थान असलेल्या इष्टलिगात शिवभक्तांची पूजा स्वीकारण्यासाठी विशेषत्वाने राहातो.।।५८।।

अस्मिन्नर्थे—"या ते रुद्र" इति श्रुत्यर्थमेव श्लोकमुखेनोपन्यस्यति—

नित्यं भासि तदीयस्त्वं या ते रुद्र शिवा तनूः।
अघोराऽपापकाशीति श्रुतिराह सनातनी।।५९।।

भो रुद्र ते तव या तनूः शिवलिङ्गमूर्तिः, शिवा मङ्गला, अघोरा अभयङ्करा, अपापकाशी दोषरहिता। त्वं तदीयो लिङ्गसम्बन्धी सन् नित्यं भासीति सनातनी नित्या श्रुतिराह कथयतीत्यर्थः।।५९।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

हाच अर्थ 'या ते रुद्रेति' या श्रुतीतील श्लोकानुसार स्पष्ट करतात—'हे रुद्रा तुझे शिवलिंगरूप शरीर पवित्र, मंगल, शात, अभयकर, दोषरहित आहे. तू लिंगाशी सबद्ध असून त्यात तू सर्वदा प्रकाशमान आहेस', असे श्रुतिवचन आहे.।।५९।।

तस्मादिष्टलिङ्गमेवं पूजयेदित्याह—

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन सर्वस्थानपराङ्मुखः।
स्वेष्टलिङ्गे महादेवं पूजयेत् पूजकोत्तमः।।६०।।

तस्मात् श्रुतिप्रसिद्धत्वात् पूजकोत्तमो महेश्वरः सर्वप्रयत्नेन सर्वस्थान-विमुखः सन् स्वेष्टलिङ्गे स्वसम्बन्धवतीष्टलिङ्गे महादेव पूजये-दित्यर्थः।।६०।।

म्हणून इष्टलिंगाचीच पूजा करावी असे सागतात—इष्टलिगात शिवाचा विशेष निवास असतो हे श्रुतिसमत असल्यामुळे श्रेष्ठ पूजक माहेश्वराने अन्य स्थानांकडे मुळीच लक्ष न देता आपल्या इष्टलिगातच शिवाची पूजा करावी.।।६०।।

एवं बुद्ध्वा स्वेष्टलिङ्गे यजन्नेव सर्वगत्वनिरासक इत्याह—

शिवस्य सर्वगत्वेऽपि सर्वत्र रतिवर्जितः।
स्वेष्टलिङ्गे यजन् देवं सर्वगत्वनिरासकः।।६१।।

स्पष्टम्।।६१।।

इति सर्वगत्वनिरसनस्थलम्

परशिव सर्वत्र व्यापक आहे. तथापि त्याच्या अन्य स्थानातील रूपावर भक्ती न ठेवता इष्टलिगातच जो शिवाची पूजा करतो त्याला सर्वगत्वनिरासक असे म्हणतात.।।६१।।

अथ शिवजगन्मयस्थलम्

अथ महेश्वरस्य पूजार्थं सर्वगत्वे निराकृतेऽपि प्रमाणबलात् सर्वगत्वं यथाङ्गीक्रियते, तथा प्रमाणबलात् सर्वमयत्वं चाङ्गीकरणीयमिति शिवजगन्मयस्थलं निरूपयति—

पूजाविधौ नियम्यत्वाल्लिङ्गमात्रे स्थितं शिवम्।
पूजयन्नपि देवस्य सर्वगत्वं विभावयेत्।।६२।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

शिवस्य सर्वनियामकत्वेऽपि पूजाकाले भक्तनियाम्यत्वाद् भक्ताधीनत्वाल्लिङ्गमात्रे स्थितं शिवं भक्तः पूजयन्नपि देवस्य लिङ्गस्थितस्य प्रकाशात्मनः शिवस्य सर्वगत्वं विभावयेत्, अन्यथा कुम्भकारवत् परिच्छिन्नत्वप्रसङ्गादिति।।६२।।

महेश्वराच्या पूजेसाठी त्याच्या सर्वगत्वाचे निराकरण केले असले तरी शिव सर्वव्यापी आहे, याला शास्त्र-प्रमाण आहे. तसेच शिव जगन्मय आहे यालाही शास्त्र-प्रमाण आहे यासाठी शिवजगन्मयस्थलाचे निरूपण करतात—शिव सर्वनियामक असला तरी पूजेच्या वेळी तो शिवभक्ताच्या अधीन असतो. म्हणून इष्टलिंगात राहणारा शिव प्रकाशस्वरूपी व सर्वव्यापी आहे, अशी वीरशैवाने भावना करावी अन्यथा घटनिर्माता कुंभार जसा घटापासून वेगळा असतो, तसा शिव जगतापासून वेगळा आहे असे म्हणण्याचा प्रसंग येईल.।।६२।।

एवं सर्वगत्वे सिद्धे शिवस्य "आत्मन आकाशः संभूतः, आकाशाद्वायुः, वायोरग्निः, अग्नेरापः, अद्भ्यः पृथिवी" इति श्रुतेरभिन्ननिमित्तोपादानकारणत्वश्रवणाद् बहुदृष्टान्तपूर्वकं शिवजगन्मयत्वं प्रतिपादयति—

यस्मादेतत् समुत्पन्नं महादेवाच्चराचरम्।
तस्मादेतन्न भिद्येत यथा कुम्भादिकं मृदः।।६३।।

यस्मान्महादेवादिति सम्बन्धः। शिष्टं स्पष्टम्।।६३।।

शिवाचे सर्वव्यापकत्व सिद्ध करणारे श्रुतिवचन आहे. 'आत्म्यापासून आकाश, आकाशापासून वायू, वायूपासून तेज, तेजापासून जल आणि जलापासून पृथ्वीची उत्पत्ती झाली आहे', या परंपराबद्ध कार्य-कारणास शिवच अभिन्न निमित्तोपादन कारण आहे. म्हणून शिव जगन्मय आहे, हे प्रतिपादन सुसंगत आहे. शिवापासून उत्पन्न झालेले हे चराचर जग शिवापासून वेगळे नाही. कुंभाराने तयार केलेली मातीची घागर जशी मातीपासून निराळी नाही, तद्वत् विश्व व विश्वनाथ यांच्यात भेद नसून अभेद आहे. कारणापासून कार्य वेगळे नाही.।।६३।।

शिवतत्त्वात् समुत्पन्नं जगदस्मान्न भिद्यते।
फेनोर्मिबुद्बुदाकारं यथा सिन्धोर्न भिद्यते।।६४।।

स्पष्टम्।।६४।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

समुद्राच्या पाण्यातील फेस, लाटा, बुडबुडे हे ज्याप्रमाणे समुद्रापासून भिन्न नाहीत, त्याप्रमाणे शिवतत्त्वापासून उत्पन्न झालेले जग शिवापासून भिन्न नाही.।।६४।।

यथा तन्तुभिरुत्पन्नः पटस्तन्तुमयः स्मृतः।
तथा शिवात् समुत्पन्नं शिव एव चराचरम्।।६५।।

स्पष्टम्।।६५।।

तंतूपासून उत्पन्न झालेले वस्त्र जसे तंतुमय असते, तसे शिवापासून उत्पन्न झालेले चराचर जग शिवरूपच असते.।।६५।।

ननु मृदादीनां विकारित्वात् शिवस्य निर्विकारित्वाद् उक्तदृष्टान्तो विषम इत्याह—

आत्मशक्तिविकासेन शिवो विश्वात्मना स्थितः।
कुटीभावाद् यथा भाति पटः स्वस्य प्रसारणात्।।६६।।

पटः स्वतादात्म्यापन्नप्रसरणशक्त्या कुटीभावात् प्रस्थानकुटीभावाद् यथा भाति, तथा शिवोऽपि स्वात्मशक्तिविकासेन विश्वात्मना स्थितः सन् भातीत्यर्थः।।६६।।

माती वगैरे दृष्टांत विकारी आहेत व शिव निर्विकारी आहे, म्हणून दिलेले दृष्टांत विषम आहेत असे म्हटल्यास त्याचे उत्तर असे—गुंडाळलेले वस्त्र जसे विशिष्टप्रकारे ताणल्यानंतर तंबूचे रूप धारण करते, तसे शिव आपल्या आत्मशक्तीच्या विकासाने प्रसरण पावून विश्वरूप होतो.।।६६।।

ननु प्रसारणशक्तिद्वारा यथा पटस्यापि विकारभाक्त्वम्, तथा शिवस्यापि स्वसमवेतशक्तिद्वारा विकारिता स्यादित्यत्र दृष्टान्तान्तर-मुपन्यसन्नुक्तार्थमुपसंहरति—

तस्माच्छिवमयं सर्वं जगदेतच्चराचरम्।
तदभिन्नतया भाति सर्पत्वमिव रज्जुतः।।६७।।

रज्जुः स्वनिष्ठदीर्घवृत्तगोधूमवर्णताशक्तिवशाद् विकाररहित्येन यथा सर्पत्वेन भाति, तथा शिवोऽपि विकाररहित्येन स्वसमवेतमायाशक्त्या विश्वाभिन्नतया भाति, तस्मात् सर्वमेतच्चराचरं विश्वं शिवमयं न तद्व्यतिरिक्तमित्यर्थः।।६७।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्रसरणशक्तीमुळे वस्त्र हे विकारी होते, त्या प्रमाणे शिवसुद्धा स्वशक्तीमुळे विकारीच होईल (तो निर्विकारी राहाणार नाही), या विषयी दुसरा दृष्टांत सांगून पूर्वप्रतिपादित विषयाचा उपसंहार करतात— ज्याप्रमाणे दोरी (रज्जू) स्वतःच्या ठिकाणी असलेल्या दीर्घत्व (लांबी), कुंडलाकृती व कृष्णवर्ण या शक्तीमुळे विकाररहित होऊन सर्परूपाने भासते; त्याप्रमाणे शिव निर्विकार होऊन स्वतःच्या मायाशक्तीने विश्वाशी अभिन्न दिसतो. म्हणून सर्व चराचर विश्व शिवमय असून त्याच्याशिवाय अन्य काही नाही.।।६७।।

अथ दार्ढ्यार्थमुदाहृतदृष्टान्तपूर्वकं बहुदृष्टान्तमाह—

रज्जौ सर्पत्ववद्भाति शुक्तौ च रजतत्ववत्।
चोरत्ववदपि स्थाणौ मरीच्यां च जलत्ववत्।।६८।।
गन्धर्वपुरवद्व्योम्नि सच्चिदानन्दलक्षणे।
निरस्तभेदसद्भावे शिवे विश्वं विराजते।।६९।।

रज्ज्वां गोधूमवर्णताशक्त्या सर्पत्ववत्, शुक्तौ धावल्यशक्त्या रजतत्ववत्, स्थाणौ दीर्घताशक्त्या पुरुषत्ववत्, मरीच्यां स्वच्छतोद्रेकशक्त्या जलत्ववत्, कालशक्त्या व्योम्नि गन्धर्वनगरवत्, निरस्तसमस्तप्रापञ्चिकभेदवति निर्विकारे सच्चिदानन्दस्वरूपे परशिवब्रह्मणि, तत्समवेतविमर्शशक्तिप्रतिस्फुरणायमानमायाशक्त्या विश्वं तदभिन्नतया भातीत्यर्थः ।।६८-६९।।

अर्थाच्या दृढीकरणासाठी अनेक दृष्टांत देतात—दोरी लांबीमुळे व रंगामुळे सापासारखी दिसते, शुभ्र वर्णामुळे शिंप रुप्यासारखी दिसते, झाडाचा बुंधा आकारमानामुळे माणसासारखा भासतो, उन्हामुळे मृगजळात पाण्याचा भास होतो, कारणपरत्वे आकाशात गंधर्वनगरीचा भास होतो, त्याप्रमाणे सर्व प्रापंचिक भेदापासून मुक्त, निर्विकार, सच्चिदानंदस्वरूप असे परशिवब्रह्मच त्याच्याठायी असलेल्या विमर्शशक्तीच्या प्रतिस्फुरणामुळे विश्वरूप भासते. ।।६८-६९।।

नन्वेभिर्दृष्टान्तैर्विश्वं प्रातीतिकं स्यादित्यत्र दृष्टान्तान्तरमाह—

पत्रशाखादिरूपेण यथा तिष्ठति पादपः।
तथा भूम्यादिरूपेण शिव एको विराजते।।७०।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

वृक्षो यथा कालशक्त्या विकारराहित्येन स्वान्तर्लीनस्वविजातीयपत्र-पुष्पादिभेदविशिष्टत्वेन भाति, तथा शिव एव स्वसमवेतशक्तितादात्म्य-क्रोडीकृतभूम्यादिरूपेण प्रतिस्फुरणगत्या भातीत्यर्थः। तत्र धृत्या धरणिः, करुणया जलम्, उज्ज्वलतया तेजः, परमानन्दस्पन्दनेन वायुः, चिद्व्याप्त्या व्योम, चितिसङ्कोचचित्तविशिष्टो जीव इति विवेकः। ननु वृक्षस्य सावयवत्वात्, तदाभाससंयुक्तशिवस्य निरवयवत्वात्, तत्समवेतशक्तेरपि तदभिन्नत्वेन तथात्वात् कथं सावयवप्रपञ्चरूपेण भासनं सम्भवतीति नाशङ्कनीयम्, शक्तेः शिवाभिन्नत्वे सति दुर्घटकारित्वेन अहिकुण्डलन्यायेन स्वस्वातन्त्र्यपरिकल्पितभेदोपस्थितिपरमाणुकार्यभूतद्व्यणुकादाविव तत्कार्यरूप-मायाशक्तेः सांशत्वे सम्भवतीत्युक्तत्वात्, "विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत्" इति भगवदुक्तेश्च। प्रातीतिकप्रपञ्चरूपेणापि स्वशक्ति-न्यूनीभावेन शिव एव भासते, शुक्तिरजतयोः परस्परसत्त्वाद् मेलकांशो नास्तीति वदता निषेधप्रतियोगित्वेन समानयोगेन च सोऽप्यङ्गीकरणीय एव, उत्तरक्षणबाध्यमानत्वात् शक्तिर्न्यूनीभावनिबन्धनेति सर्वं विश्वं शिवमयमेवेति संक्षेपः। वस्तुतस्तु बाध एव नास्ति, घटपटयोरिव शुक्तिरजतयोरपि वस्तुत्वात् । नापि शुक्तिज्ञानेन रजतज्ञानस्य बाधः, घटपटज्ञानयोरिव भिन्नकालभिन्नविषयत्वात् । नन्वेकस्मिन्नेव धर्मिणि इदं रजतं नेदं रजतमिति विरुद्धावभासद्वयस्य प्रामाण्यासम्भवात्, अथोत्तर-कालिकरजताभावज्ञानेन पूर्वोत्पन्नरजतज्ञानस्य बाधोऽङ्गीक्रियत इति चेन्न, ज्ञानानां त्रिक्षणावस्थायित्वनियमेन रजताभावज्ञानस्थितिकाले रजतज्ञान-स्याभावात् । किञ्च, बाध्यबाधकभावस्य दण्डभाण्डन्यायेन परस्परान्वय-सापेक्षत्वेन ज्ञानानां गुणत्वेन परस्परसम्बन्धाभावात् । तस्माद् घटपटज्ञान-योरिवोन्मेषनिमेषयोरङ्गीकरणीयत्वेन बाधस्य वाभावादिति दिक्।।७०।।

इति शिवजगन्मयस्थलम्

वरील दृष्टांतामुळे विश्व प्रातिभासिक (मिथ्या) आहे असा आक्षेप घेतल्यास त्याच्या उत्तरादाखल अन्य दृष्टात देतात— ज्याप्रमाणे वृक्ष विकाररहित असला तरी कालाच्या प्रभावाने स्वतःत बीजरूपाने अवस्थित असलेल्या फांद्या, पाने, फुले इत्यादी रूपाने उभा असतो, त्याप्रमाणे शिव त्याच्या ठायी असलेल्या स्वसमवेत शक्तीच्या योगाने पृथ्वी आदी रूपांत प्रस्फुरित होतो. शिवाच्या धारणशक्तीपासून धरणी, कारुण्यापासून जल, उज्ज्वलतेपासून तेज, परमानंदस्पंदापासून वायू, चिद्व्याप्तीपासून आकाश, परमात्म्याच्या चैतन्यशक्तीच्या संकोचापासून झालेला चित्‌विशिष्ट असा जीव, अशा रीतीने विश्वातील सर्व तत्त्वे

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

शिवाच्या शक्तीच्या विकासाने झालेली विविध रूपे आहेत. वृक्ष सावयव असल्यामुळे त्याचा विकास शाखा, पाने, फुले इत्यादी रूपाने झालेला दिसतो, हे योग्य आहे; परंतु शिव आणि त्याची समवेतशक्ती निरवयव असल्यामुळे त्याच्यापासून सावयव सृष्टी कशी निर्माण होऊ शकेल? या शंकेचे उत्तर असे की, परमात्म्याच्या ठिकाणी असलेली समवेतशक्ती स्वतत्र व अघटित-घटना-सामर्थ्यशालिनी असल्याने ती निरवयव असूनही सृष्टीच्या रूपाने प्रकटते. सर्प जसा कधी सरळ असतो आणि तोच कधी वेटोळ्याच्या रूपातही दिसतो, सर्प आणि त्याचे वेटोळे अथवा सरळपणा हे जसे वेगळे नसून एकाचीच ती भिन्न रूपे दिसतात, तशा तऱ्हेने शिवाच्या ठिकाणी असणारी अघटित-घटना-सामर्थ्यशालिनी शक्ती मुळात निरवयव असली तरी तीच सृष्टीतील विविध वस्तुरूपाने प्रकट होते, या विषयी कसलाही संशय घेण्याचे कारण नाही. 'व्यापक असलेल्या माझा एक अंशच असे हे विश्व आहे', असे भगवद्गीतेत भगवंताने म्हटले आहे. अशा रीतीने प्रपंच हा शिवाचाच अंश असल्यामुळे तो शिवमय आहे. आणि म्हणून तो मिथ्या नाही, हेही आपोआप सिद्ध होते.।।७०।।

अथ भक्तदेहिकलिङ्गस्थलम्

अथैवं शिवस्य जगन्मयत्वेऽपि—"वेदवेदान्तवाक्यार्थसन्धानातीतवर्तनः। भक्तभावपरानन्दो भक्तभावैकगोचरः।।" इति योगजागमवचनानुसारेण भक्तहृदये प्रकाशत इति भक्तदेहिकलिङ्गस्थलं सप्तभिः सूत्रैः प्रतिपादयति—

समस्तजगदात्माऽपि शङ्करः परमेश्वरः।
भक्तानां हृदयाम्भोजे विशेषेण विराजते।।७१।।

शङ्करः सुखङ्करः परमेश्वरः परशिवः समस्तजगदात्माऽपि भावाभाव-रूपप्रपञ्चमयोऽपि भक्तानां स्वभक्तानां हृदयाम्भोजे हृदयकमले विशेषेण विराजते आधिक्येन प्रकाशत इत्यर्थः।।७१।।

शिव हा जगन्मय असला, वेदवेदांत-वाक्यार्थाच्या अतीत असला तरी 'भक्ताच्या भावनेने आनंदित होऊन तो भक्ताच्या भावनेला गोचर होतो.' योगज आगमाच्या या वचनानुसार शिव भक्ताच्या हृदयात प्रकाशमान होतो, असे पुढील सात श्लोकांत

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

स्पष्ट करतात—सर्व प्राणिमात्रांना सुख देणारा, सर्व चराचर जगताचा अंतरात्मा आणि प्रपंचमय असणारा शंकर शिवभक्तांच्या हृदयकमलात विशेषत्वाने विराजमान असतो.।।७१।।

तत्कथमित्यत्राह—

कैलासे मन्दरे चैव हिमाद्रौ कनकाचले।
हृदयेषु च भक्तानां विशेषेण व्यवस्थितः।।७२।।

एषु स्थानेषु यथा शिवो विशेषेण भासते, तथा स्वभक्तानां हृदये भासत इत्यर्थः।।७२।।

तो कसा, तर—कैलास, मंदाराचल, हिमालय आणि मेरू पर्वत ही शंकराची निवासस्थाने असली तरी शिवभक्तांच्या हृदयात तो विशेष आवडीने वास करतो.।।७२।।

नन्वपरिच्छिन्नः परमेश्वरः कथं परिच्छिन्नः सन् भक्तहृदयेषु राजत इत्यत्राह—

सर्वात्माऽपि परिच्छिन्नो यथा देहेषु वर्तते।
तथा स्वकीयभक्तेषु शङ्करो भासते सदा।।७३।।

सर्वात्माऽपि परमेश्वरो देवतिर्यङ्मनुष्यलक्षणसकलदेहेषु भिन्नान्तःकरण-विशिष्टेषु प्रतिबिम्बगत्या यथा भासते, तथा स्वकीयभक्तेषु सदा प्रकाशत इत्यर्थः।।७३।।

शिव अपरिच्छिन्न असताना तो परिच्छिन्न होऊन भक्तांच्या हृदयांत कसा राहातो? तर, सर्वात्मा परमेश्वर अपरिच्छिन्न असला तरी तो देव, तिर्यक, मनुष्यादींच्या भिन्न-भिन्न अंतःकरणात प्रतिबिंब-रूपाने जसा असतो, तसाच तो स्वभक्ताच्या हृदयातही सर्वदा प्रकाशतो.।।७३।।

अस्मिन्नर्थे प्रमाणगर्भितवचनमाह—

नित्यं भाति त्वदीयेषु या ते रुद्र शिवा तनूः।
अघोराऽपापकाशीति श्रुतिरिह सनातनी।।७४।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भो रुद्र ते तव या तनूः शिवलिङ्गमूर्तिः, अघोरा सौम्या, अपापकाशी दोषरहिता, सा लिङ्गमूर्तिः, त्वदीयेषु त्वत्सम्बन्धिषु भक्तेषु, नित्यं भातीति सनातनी नित्या श्रुतिराहेत्यर्थः।।७४।।

या अर्थाला प्रमाणभूत असे वचन सांगतात—हे रुद्रा तुझे शिवलिंगरूप कल्याणकारक, शांत आणि पातकांचा नाश करणारे असून ते भक्ताच्या हृदयात सर्वदा प्रकाशते, असे श्रुतिवचन आहे.।।७४।।

ननु शिवभक्तव्यतिरिक्तेषु न भासते किमित्यत्राह—

विशुद्धेषु विरक्तेषु विवेकिषु महात्मसु।
शिवस्तिष्ठति सर्वात्मा शिवलाञ्छनधारिषु।।७५।।

विशुद्धेषु विरक्तेषु षट्स्थलज्ञानिषु चरमूर्तिष्वित्यर्थः, विवेकिषु महात्मसु शुकादियोगिष्वित्यर्थः, शिवलाञ्छनधारिषु भूतिरुद्राक्षमात्रधारिषु चेत्यर्थः, सर्वात्मा शिवः, नित्यं तिष्ठति प्रकाशत इत्यर्थः।।७५।।

शिवभक्त नसलेल्या लोकाच्या हृदयात तो प्रकाशत नाही काय? याचे उत्तर असे—विशुद्ध, विरक्त, षट्स्थलज्ञानी अशा चरमूर्तींच्या हृदयांत, विवेकी अशा शुकदेवादी योग्याच्या हृदयांत आणि विभूति-रुद्राक्षादी शिवलांच्छने धारण करणाऱ्या शिवभक्ताच्या हृदयांत सर्वात्मा शिव नित्य वास करून असतो. म्हणजेच भक्तिविरहित लोकांना त्याचे अस्तित्व जाणवत नाही.।।७५।।

नन्वेवं चेत् साधारणत्वात् शिवभक्तेषु को विशेष इत्यत्राह—

नित्यं सन्तोषयुक्तानां ज्ञाननिर्धूतकर्मणाम्।
माहेश्वराणामन्तःस्थो विभाति परमेश्वरः।।७६।।

शिवज्ञानेन निर्धूतकल्मषवत्त्वात् शिवसुखानुभाविनां परमेश्वराणां निर्मलदर्पणे मुखादेः स्फुटतया भासनमिवातिस्फुटतया तेषामन्तस्थः सन् भातीत्यर्थः।।७६।।

जर सर्वांच्या हृदयांत शिव प्रकाशित होतो तर शिवभक्ताच्या हृदयात त्यांचे राहाणे हे विशेष कसे? तर, शिवज्ञानाने ज्यांची पापे नाश पावली आहेत, जे शिवसुखाचा नित्य अनुभव घेतात,

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

स्वच्छ दर्पणा सारखे ज्यांचे हृदय निर्मल आहे अशा शिवभक्ताच्या अतःकरणांत शिव अत्यत स्पष्टपणे प्रकाशमान असतो.।।७६।।

अथ वक्ष्यमाणप्रसादिस्थलं सूचयति—

अन्यत्र शम्भो रतिमात्रशून्यो निजेष्टलिङ्गे नियतान्तरात्मा।
शिवात्मकं विश्वमिदं विबुध्यन्माहेश्वरोऽसौ भवति प्रसादी।।७७।।

इति श्रीमत्षट्स्थलब्रह्मिणा शिवयोगिनाम्ना रेणुकाचार्येण विरचिते सिद्धान्तशिखामणौ माहेश्वरस्य नवविधस्थलप्रसङ्गो नाम दशमः परिच्छेदः समाप्तः।।

शम्भोः शिवाद् अन्यत्र देवतान्तरे रतिमात्रशून्यः प्रीतिलेशेनापि रहितः सन् निजेष्टलिङ्गे नियतान्तरात्मा नियमितान्तःकरणवानसौ माहेश्वर इदं विश्वम् इदमित्यङ्गुलिनिर्देश्यत्वेन भासमानं विश्वं शिवात्मकमुक्तदृष्टान्तैः शिवमयमिति विबुध्यन् सन् प्रसादी भवतीत्यर्थः। "शिव एको ध्येयः शिवङ्करः सर्वमन्यत् परित्यज्य" इत्यत्र श्रुतिः।।७७।।

इति श्रीमत्पदवाक्यप्रमाणपारावारधुरीणमरितोण्टदार्येण विरचितायां तत्त्व—प्रदीपिकाख्यायां सिद्धान्तशिखामणिव्याख्यायां माहेश्वरस्य नवविध-स्थलप्रसङ्गो नाम दशमः परिच्छेदः समाप्तः।।

एकंदरीत शिवाशिवाय अन्य देवाची भक्ती न करणारा, स्वतःच्या इष्टलिंगाची एकाग्रतेने पूजा करणारा, चराचर विश्वाला शिवरूप मानणारा माहेश्वरच 'प्रसादी' होतो. ।।७७।।

अशा रीतीने सिद्धांतशिखामणीतील माहेश्वरस्थलाचे
नवविध अवांतर स्थलांचे वर्णन असलेला
दशम परच्छिेद संपला.

दहावा परिच्छेद समाप्त।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

एकादशः परिच्छेदः

अथ प्रसादिस्थलम्

अगस्त्य उवाच

उक्तो माहेश्वरः साक्षाल्लिङ्गनिष्ठादिधर्मवान्।
कथमेष प्रसादीति कथ्यते गणनायक।।१।।

स्पष्टम्।।१।।

अगस्त्य म्हणतात, हे गणनायका रेणुका, इष्टलिंगावर दृढ निष्ठा ठेवून शिवधर्म व शिवाचार पालन करणाऱ्यास माहेश्वर म्हणतात ते समजले. हा माहेश्वर प्रसादी कसा होतो ते सांगा.।।१।।

रेणुक उवाच

लिङ्गनिष्ठादिभावेन ध्वस्तपापनिबन्धनः।
मनःप्रसादयोगेन प्रसादीत्येष कथ्यते।।२।।

उक्तलिङ्गनिष्ठादिस्थलपरिज्ञानतदाचरणतो ध्वस्तपापसमूह एष माहेश्वरो मनोनैर्मल्यसम्बन्धेन प्रसादीत्युच्यत इत्यर्थः।।२।।

रेणुकाचार्य म्हणाले-पूर्वोक्त लिंगनिष्ठादी स्थलांच्या ज्ञानाने व त्याच्या आचरणाने ज्याच्या पातकांचा नाश झाला आणि शिवज्ञानाने ज्याच्या मनाला प्रसन्नता लाभली आहे, अशा माहेश्वराला प्रसादी म्हणतात.।।२।।

अथैतत्स्थलं कीदृशं कीदृग्विधमित्यत्राह—

प्रसादिस्थलमित्येतदस्य माहात्म्यबोधकम्।
अन्तरस्थलभेदेन सप्तधा परिकीर्तितम्।।३।।

एतत्प्रसादिस्थलमस्य भक्तमाहेश्वरस्थलोक्तसदाचारसमूहस्य महत्त्वबोधकमवान्तरस्थलभेदेन सप्तविधमिति परिकीर्तितमित्यर्थः।।३।।

या स्थलाचे स्वरूप आणि अवांतर प्रकार सांगतात—या प्रसादी स्थलात भक्त व माहेश्वर स्थलातील सदाचाराचे महत्त्व आधिक्याने सागितले असून या स्थलाचे सात अवांतर भेद आहेत.।।३।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अथ तत्कथमित्यत्रोद्दिशति—

प्रसादिस्थलमादौ तु गुरुमाहात्म्यकं ततः।
ततो लिङ्गप्रशंसा च ततो जङ्गमगौरवम्।।४।।
ततो भक्तस्य माहात्म्यं ततः शरणकीर्तनम्।
शिवप्रसादमाहात्म्यमिति सप्तप्रकारकम्।।५।।

शरणकीर्तनं तन्महत्त्वकीर्तनमित्यर्थः। एवं सप्तप्रकारकमित्युत्तरम्।।४-५।।

१) प्रसादीस्थल २) गुरुमाहात्म्यस्थल ३) लिगप्रशंसास्थल ४)जगमगौरवस्थल ५) भक्तमाहात्म्यस्थल ६) शरणकीर्तनस्थल आणि ७) शिवप्रसादमाहात्म्यस्थल, असे प्रसादीस्थलाचे सात भेद आहेत.।।४-५।।

अथोद्दिष्टानां स्थलानां क्रमाल्लक्षणमुच्यत इत्यत्राह—

क्रमाल्लक्षणमेतेषां कथयामि महामुने।।

स्पष्टम्।।

अथ—"चित्तस्य हि प्रसादेन हन्ति कर्म शुभाशुभम्। प्रसन्नात्माऽऽत्मनि स्थित्वा सुखमक्षयमश्नुते।।" इति मैत्रेयश्रुत्यनुसारेण शिवप्रसादजायमानमनःप्रसन्नतां द्वादशसूत्रैः प्रतिपादयति—

नैर्मल्यं मनसो लिङ्गं प्रसाद इति कथ्यते।
शिवस्य लिङ्गरूपस्य प्रसादादेव सिद्ध्यति।।६।।

मनसश्चित्तस्य नैर्मल्यं लिङ्गं निर्मलत्वचिह्नं प्रसाद इति कथ्यत इत्यर्थः। एष मनोनिर्मलत्वरूपप्रसादो लिङ्गरूपस्य शिवस्य प्रसादात् सिद्ध्यतीत्यर्थः।।६।।

वरील स्थलांचे स्वरूप क्रमशः सांगतात—'चित्ताच्या प्रसन्नतेने शुभाशुभ कर्माची निवृत्ती होते. अशा प्रसन्न-चित्त असणाऱ्या व्यक्तीला आपल्या अतरंगातच अक्षय सुखाची प्राप्ती होते,' असे मैत्रेयी श्रुतीचे वचन आहे. या वचनानुसार शिवप्रसादाने प्राप्त होणाऱ्या मनाच्या प्रसन्नतेचे पुढील बारा श्लोकात वर्णन करतात—हे अगस्त्या, आता मी तुला पूर्वोक्त सात स्थलाचे स्वरूप क्रमशः सांगतो. मनाच्या निर्मलपणाला (प्रसन्नतेला) प्रसाद असे

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

म्हणतात. हा निर्मलत्वरूप प्रसाद लिंगरूप शिवाच्या प्रसादाने सिद्ध होतो.।।६।।

ननु कोऽयं चित्तनैर्मल्यलक्षणप्रसादकारणीभूतशिवप्रसाद इत्यत्राह--

शिवप्रसादं यद्द्रव्यं शिवाय विनिवेदितम्।
निर्माल्यं तत्तु शैवानां मनोनैर्मल्यकारणम्।।७।।

शिवाय विनिवेदितं समर्पितं यद् द्रव्यं तत् शिवप्रसादः, तन्निर्माल्यं तु विशेषशैवानां वीरशैवानां मनोनैर्मल्यकारणं भवतीत्यर्थः।।७।।

मनाच्या निर्मलत्वाला कारणीभूत होणारा शिवप्रसाद कोणता? शिवाला अर्पण केलेले जे पदार्थ असतात त्यास शिवप्रसाद म्हणावे. तो प्रसाद किंवा निर्माल्य वीरशैवांना मन निर्मल होण्यास कारण आहे.।।७।।

अथैवंरूपशिवप्रसादस्वीकारवान् प्रसादीत्याह--

मनःप्रसादसिद्ध्यर्थं निर्मलज्ञानकारणम्।
शिवप्रसादं स्वीकुर्वन् प्रसादीत्येष कथ्यते।।८।।

ज्ञानकारणं शिवज्ञानकारणं शिवप्रसादं निर्माल्यं शिवलिङ्गप्रसादरूप-शिवनिर्माल्यं मनःप्रसादसिद्ध्यर्थं चित्तनैर्मल्यसिद्ध्यर्थं स्वीकुर्वन् एष वीरमाहेश्वरः प्रसादीति कथ्यत इत्यर्थः।।८।।

असा शिवप्रसाद स्वीकारणारा 'प्रसादी' होतो--शिवलिंगाचा प्रसाद असे शिवनिर्माल्य हेच शिवज्ञानाला कारण असून तें मनाच्या प्रसन्नतेसाठी स्वीकारणारा माहेश्वरच प्रसादी होतो.।।८।।

तस्मात्--"आहारशुद्ध्या तत्त्वशुद्धिः" इति छान्दोग्यश्रुतेः शुद्धशिव-निर्माल्यभक्षणेन सकलतत्त्वशुद्धिद्वारा मनोनैर्मल्यं लभते भक्त इत्याह--

अन्नशुद्ध्या हि सर्वेषां तत्त्वशुद्धिरुदाहृता।
विशुद्धमन्नजातं हि यच्छिवाय समर्पितम्।।९।।
तदेवं सर्वकालं तु भुञ्जानो लिङ्गतत्परः।
मनःप्रसादमतुलं लभते ज्ञानकारणम्।।१०।।

अन्नशुद्ध्या सर्वेषां प्राणिनां तत्त्वशुद्धिर् देहाक्षभुवनप्रपञ्चशुद्धिरिति शास्त्रज्ञैरुदाहृता । यच्छिवाय समर्पितमन्नजातं शुद्धं तदन्नजातमेव

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

लिङ्गतत्परः सन् सदाकालं भुञ्जानः प्रसादी अतुलं शिवज्ञानकारणं मनःप्रसादं मनोनैर्मल्यं लभत इत्यर्थः।।९-१०।।

'आहारशुद्धीमुळे तत्त्वशुद्धी होते', असे छांदोग्यश्रुतीत म्हटले आहे. शुद्ध शिवनिर्माल्याचे भक्षण केल्याने सकलतत्त्वशुद्धी होऊन चित्त निर्मल होते, हे स्पष्ट करतात—शुद्ध अन्नाच्या भक्षणाने सर्व प्राण्यांची तत्त्वशुद्धी होते. अर्थात् शरीर व इंद्रिये इत्यादी परिशुद्ध होतात. शिवार्पण केलेले अन्न हे शुद्धान्न होय. लिगपूजापरायण माहेश्वर प्रतिदिनी शिवार्पित अन्नच (शिवप्रसाद) सेवन करतो. त्यामुळे शिवज्ञानाला कारण ठरणारी मनाची प्रसन्नता त्याला प्राप्त होते.।।९-१०।।

तस्मादात्मभोगार्थं नियमितं सद् यद्यद् द्रव्यं प्राप्तं भवति, तत्सर्वं "यद्यदात्महितं वस्तु'''शिवार्पितम्" इति शिवरहस्यवचनानुसारेण शिवाय समर्प्य भुञ्जीयादित्याह—

आत्मभोगाय नियतं यद्यद् द्रव्यं समाहितम्।
तत्तत् समर्प्य देवाय भुञ्जीतात्मविशुद्धये।।११।।

आत्मभोगाय नियमितं सत् समाहितं सम्पादितं तत्तत् शिवलिङ्गदेवाय समर्प्यात्मविशुद्धये चित्तशुद्ध्यर्थं भुञ्जीयादित्यर्थः।।११।।

स्वतःला हितकारक असलेल्या वस्तू शिवाला अर्पण कराव्या, असे शिवरहस्यात म्हटले आहे. म्हणून स्वतःच्या उपयोगासाठी जे जे पदार्थ संपादन केले असतील ते सर्व प्रथम शिवाला अर्पण करून नंतर स्वतः स्वीकारावे. यामुळे चित्तशुद्धी होते.।।११।।

अथास्य महत्त्वं प्रतिपादयति—

नित्यसिद्धेन देवेन भिषजा जन्मरोगिणाम्।
यद्यत् प्रसादितं भुक्त्वा तत्तज्जन्मरसायनम्।।१२।।

जन्मरोगिणां भवरोगिणां भिषजा वैद्येन नित्यसिद्धेन शिवलिङ्गे निरन्तरसिद्धेन देवेन परमेश्वरेण यद् द्रव्यं भुक्त्वा प्रसादितं प्रसादीकृतम्, तत्तद् जन्मरसायनं संसारव्याधिरसायनमित्यर्थः।।१२।।

आता प्रसादाचे महत्त्व सांगतात—शिव हा नित्यसिद्ध (जन्म-मृत्युरहित) असून जन्ममरणरूपी रोगाचे निवारण करणारा वैद्य आहे. त्याने प्रसाद म्हणून दिलेल्या अन्नाचे शिवभक्ताने भक्षण

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

करणे म्हणजे जन्ममरणरूप रोग दूर होण्यासाठी रसायन सेवन करण्यासारखेच आहे.।।१२।।

अथ ऐहिकारोग्यादिकारण चेत्याह—

आरोग्यकारणं पुंसामन्तःकरणशुद्धिदम्।
तापत्रयमहारोगसमुद्धरणभेषजम् ।।१३।।
विद्यावैशद्यकरणं विनिपातविघातनम्।
द्वारं ज्ञानावतारस्य मोहोच्छेदस्य कारणम्।।१४।।
वैराग्यसम्पदो मूलं महानन्दप्रवर्धनम्।
दुर्लभं पापचित्तानां सुलभं शुद्धकर्मणाम्।।१५।।
आदृतं ब्रह्मविष्ण्वाद्यैर्वसिष्ठाद्यैश्च तापसैः।
शिवस्वीकृतमन्नाद्यं स्वीकार्यं सिद्धिकाङ्क्षिभिः।।१६।।

अत्र पुनस्तदित्यनुवर्तते। तत्प्रसादद्रव्यं पुंसामारोग्यकारणं सद् अन्तःकरणशुद्धिदम् आध्यात्मिकादितापत्रयलक्षणमहारोगोन्मूलनौषधम् विद्याविशेषसिद्धिकारणम्, विनिपातः कृत्रिमदोषस्तस्य घातकम्, शिवज्ञा...वतारस्य द्वारम्, अज्ञानोच्छेदकारणम्, वैराग्यसम्पदो मूलकारणम्, नित्यानन्दप्रकाशकम्, पापिष्ठानां दुर्लभं पुण्यात्मनां सुलभं ब्रह्मादिदेवैर्वसिष्ठादिमुनिभिः प्रीतिविषयीकृतम्। एवंरूपं शिवस्वीकृतमन्नाद्यं शिवलिङ्गस्वीकृतान्नादिप्रसादद्रव्यं सिद्धिकाङ्क्षिभिर् इह परत्र भोगमोक्षलक्षणसिद्धिकाङ्क्षिभिः प्रसादिभिः स्वीकार्यमित्यर्थः।।१३-१६।।

प्रसादाचे ऐहिक फलही असल्याचे सागतात—शिवप्रसादाचे सेवन केल्याने शिवभक्ताचे आरोग्य वाढते, अतःकरण शुद्ध होते, औषधामुळे रोग नाहीसा व्हावा तसे आध्यात्मिक, आधिभौतिक व आधिदैविक असे तीन प्रकारचे ताप नाहीसे होतात, विद्येची शुद्धी होऊन वृद्धी होते, संकटांचा परिहार होतो, ज्ञानमार्ग मोकळा होऊन अज्ञानाचा उच्छेद होतो, शिवप्रसादान्नामुळे वैराग्यरूप संपत्ती वाढते आणि ब्रह्मानंदाची प्राप्ती होते. पातकी मनुष्याना शिवप्रसाद दुर्लभ असून पुण्यात्म्यांना तो सहज मिळतो. ब्रह्मादी देवांनी व वसिष्ठादी ऋषिमुनींनी स्वीकारलेले शिवप्रसादान्न मुमुक्षू मनुष्याने अवश्य सेवन करावे.।।१३-१४-१५-१६।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अथैतत्प्रसादस्वीकारेण सर्वपापक्षयश्च भवतीत्याह—

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यच्छिवाय निवेदितम्।
तत्तत्स्वीकारयोगेन सर्वपापक्षयो भवेत्।।१७।।

यद् यद् द्रव्यमित्यर्थः। शिष्टं स्पष्टम्।।१७।।

शिवप्रसादाने सर्व पातकांचा नाश होतो. पान, फूल, फळ, पाणी वगैरे काहीही शिवाला अर्पण करून त्या शिवप्रसादाचा स्वीकार केल्याने सर्व पातकांचा नाश होतो.।।१७।।

अथ शिवलिङ्गप्रसादवदेव श्रीगुरुशिवयोगिनोरपि प्रसादः स्वीकार्य इत्युक्त्वा प्रसादिस्थलं समापयति—

यथा शिवप्रसादान्नं स्वीकार्यं लिङ्गतत्परैः।
तथा गुरोः प्रसादान्नं तथैव शिवयोगिनाम्।।१८।।

लिङ्गनिष्ठैः प्रसादिभिर्यथा प्रसादान्नं स्वीकार्यम्, तथा श्रीगुरुशिवयोगिनां चान्नप्रसादोऽपि स्वीकार्य इत्यर्थः।।१८।।

इति प्रसादिस्थलम्

शिवलिगाच्या प्रसादाप्रमाणेच गुरू व जगम याचाही प्रसाद स्वीकरणीय आहे, हे सागून प्रसादीस्थलाची समाप्ती करतात— लिंगनिष्ठ प्रसादीने जसे शिवप्रसादान्नाचे भक्षण करावे तसेच गुरुप्रसादान्न व शिवयोगी (जगम) प्रसादान्न यांचेही भक्षण करावे.।।१८।।

अथ गुरुमाहात्म्यस्थलम्

अथ प्रसादनिष्ठेन ज्ञातव्यं गुरुमाहात्म्यस्थलं निरूपयति—

गुरुरेवात्र सर्वेषां कारणं सिद्धिकर्मणाम्।
गुरुरूपो महादेवो यतः साक्षादुपस्थितः।।१९।।

अत्र लोके भोगमोक्षलक्षणसकलसिद्धिकर्मणां गुरुरेव कारणम्, "न गुरोरधिकं न गुरोरधिकम्" इति शिवरहस्यवचनात्। यतः परमेश्वर एव साक्षाद् गुरुरूपः सन् उपस्थितस्तिष्ठतीत्यर्थः।।१९।।

प्रसादनिष्ठाने जाणण्यास योग्य अशा गुरुमाहात्म्यस्थलाचे निरूपण करतात—'इहलोकात भोगमोक्षादी सर्व सिद्धी प्राप्त करून

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

देणारा गुरूच होय. गुरूपेक्षा अधिक कोणी नाही', असे शिवरहस्यात म्हटले आहे. कारण प्रत्यक्ष परमेश्वरच गुरूचे रूप घेऊन आला आहे.।।१९।।

ननु निष्कलः शिवः किमर्थं सकलगुरुरूपेण प्रकाशत इत्यत्राह—

निष्कलो हि महादेवो नित्यज्ञानमहोदधिः।
सकलो गुरुरूपेण सर्वानुग्राहको भवेत्।।२०।।

नित्यज्ञानार्णवपरमेश्वरो निष्कलोऽपि निरवयवोऽपि गुरुरूपेण सकलः सन् करचरणादिविशिष्टः सन् सर्वानुग्राहको भवेत्, लोकानुग्रहार्थं भातीत्यर्थः।।२०।।

निष्कल असा शिव शरीरधारी गुरू कसा झाला? तर परमेश्वर हा नित्य ज्ञानाचा सागर, निष्कल, निरवयव असला तरी सर्वांवर अनुग्रह करण्यासाठी तो गुरुरूपाने अवतरला आहे, असे समजावे.।।२०।।

तस्माद् गुरुशिवयोर्भेदो नास्तीत्याह—

यः शिवः स गुरुर्ज्ञेयो यो गुरुः स शिवः स्मृतः।
न तयोरन्तरं कुर्याद् ज्ञानावाप्तौ महामतिः।।२१।।

गुरोर्मोक्षकारणीभूतज्ञानप्रदत्वेन शिवाभिन्नत्वात्, अन्यथा ज्ञानानुदय-प्रसङ्गात्। तदर्थं सूक्ष्मदृक् तयोरन्तरं भेदं न कुर्यादित्यर्थः।।२१।।

त्यामुळे गुरू व शिव यांच्यात भेद नसतो. जो गुरू आहे तोच शिव आहे आणि जो शिव आहे तोच गुरू आहे, असे मानावे बुद्धिमान व ज्ञानी शिवभक्तांनी गुरू व शिव यांच्यात कधीही भेद करू नये.।।२१।।

"यथाहं सर्वलोकानां गुरुरम्बिकया सह" इत्यागमोक्तेः शिवसदृशं श्रीगुरुं प्राकृतैः सदृशमनुक्त्वा पूजयेदित्याह—

हस्तपादादिसाम्येन नेतरैः सदृशं वदेत्।
आचार्यं ज्ञानदं शुद्धं शिवरूपतया स्थितम्।।२२।।

शुद्धं निर्मलान्तःकरणं शिवज्ञानप्रकाशकम् उमामहेश्वररूपेण स्थितं श्रीगुरुं हस्तपादादिसाम्येन प्राकृतैः सदृशं सन्तं न वदेत्।।२२।।

'मी पार्वतीसह सर्व लोकांचा गुरू आहे', असे आगम-वचन आहे. गुरूला हातपाय इत्यादी अवयवसाम्यामुळे सामान्य

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

मनुष्यासारखे समजू नये, तर शिवज्ञान देणारा गुरू प्रत्यक्ष शिवच आहे, असे समजून त्याची पूजा करावी.।।२२।।

तेन किं भवतीत्यत्राह—

आचार्यस्यावमानेन श्रेयःप्राप्तिर्विहन्यते।
तस्मान्निःश्रेयसप्राप्त्यै पूजयेत् तं समाहितः।।२३।।

आचार्यस्यावमानेन प्राकृतजनसमोक्त्या भोगमोक्षलक्षणश्रेयःप्राप्तिर्विहन्यते। तस्माद् निःश्रेयसप्राप्त्यै भोगमोक्षावाप्त्यै समाहित एकाग्रचित्तः सन् तं श्रीगुरुं पूजयेदित्यर्थः।।२३।।

गुरूला मनुष्य समजल्याने काय होते? असा प्रश्न करू नये. आचार्य हे सामान्य मनुष्यासारखे आहेत, असे मानल्यामुळे त्याचा अवमान होतो आणि श्रेयसाची प्राप्ती होत नाही. म्हणून श्रेयस् म्हणजे मोक्षप्राप्तीसाठी एकाग्रचित्ताने गुरूची पूजा करावी.।।२३।।

अथ—"यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ" इति श्वेताश्वतरश्रुत्यर्थं प्रकटयन् गुरुमहत्त्वस्थलं समापयति—

गुरुभक्तिविहीनस्य शिवभक्तिर्न जायते।
ततः शिवे यथा भक्तिस्तथा भक्तिर्गुरावपि।।२४।।

स्पष्टम्।।२४।।

इति गुरुमहत्त्वस्थलम्

ज्याची ईश्वरावर उत्कट भक्ती आहे. त्याने तशीच गुरूवरही उत्कट भक्ती ठेवावी. ज्याने गुरुभक्ती केली नाही त्याच्याकडून शिवभक्ती घडत नाही. म्हणून शिवाप्रमाणेच गुरूचीही भक्ती करावी.।।२४।।

अथ लिङ्गमाहात्म्यस्थलम्

अथ गुरुकृपाप्रकाश्यलिङ्गमहत्त्वस्थलं निरूपयति—

गुरुमाहात्म्ययोगेन निजज्ञानातिरेकतः।
लिङ्गस्यापि च माहात्म्यं सर्वोत्कृष्टं विभाव्यते ।।२५।।

गुरुमाहात्म्यज्ञानयोगेन निजज्ञानाधिक्याद् लिङ्गस्य शिवलिङ्गस्य माहात्म्यमपि सर्वोत्कृष्टं सद् विभाव्यते विज्ञायत इत्यर्थः।।२५।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

गुरुकृपेने प्रकाशित होणाऱ्या लिंगमाहात्म्य-स्थलाचे निरूपण करतात—गुरुमाहात्म्याच्या ज्ञानाने आपले शिवज्ञान दृढतर होते. त्यामुळे इष्टलिंगाचे माहात्म्य उत्तम रीतीने कळून येते.।।२५।।

ननु लिङ्गज्ञानव्यतिरेकेण तन्माहात्म्यज्ञानासम्भवाद् लिङ्गस्वरूपं केन ज्ञापितमित्यत्राह—

शिवस्य बोधलिङ्गं यद् गुरुबोधितचेतसा।
तदेव लिङ्गं विज्ञेयं शाङ्करं सर्वकारणम्।।२६।।

शिवस्य यद्बोधलिङ्गं चिन्मयलिङ्गमस्ति, तच्छाङ्करं लिङ्गं सर्वकारणं विष्ण्वादिसर्वविश्वकारणं सद् गुरुबोधितचेतसैव विज्ञेयं ज्ञातुं योग्यम्, गुरुणैव ज्ञापितमित्यर्थः।।२६।।

लिंगज्ञानाशिवाय लिंगाच्या माहात्म्याचे ज्ञान होणे शक्य नाही. म्हणून लिंगज्ञान कोण करून देतो? या विषयी सांगतात की, शिवाचे बोधलिंग हेच चिन्मयलिंग असून ते शांकरलिंग विष्णू आदी सर्व देवाचे व विश्वाचे मूळ कारण होय. त्या लिंगाचे ज्ञान केवळ गुरूकडूनच प्राप्त केले जाऊ शकते. म्हणून अगतिक होऊन श्रीगुरूला शरण जावे व शिवलिंगाचे ज्ञान संपादन करावे.।।२६।।

अथ तत्कीदृशमित्यत्राह—

परं पवित्रममलं लिङ्गं ब्रह्म सनातनम्।
शिवाभिधानं चिन्मात्रं सदानन्दं निरङ्कुशम्।।२७।।
कारणं सर्वलोकानां वेदानामपि कारणम्।
पूरणं सर्वतत्त्वस्य तारणं जन्मवारिधेः।।२८।।
ज्योतिर्मयमनिर्देश्यं योगिनामात्मनि स्थितम्।
कथं विज्ञायते लोके महागुरुदयां विना।।२९।।

अत्र सर्वतत्त्वस्य पूरणमित्यनेन "शिखण्डच्चण्डरसन्यायेन" स्वात्मैकरसेन परिपूर्णविश्वमयत्वमुक्तम्। योगिनां शिवयोगिभिर् अनिर्देश्यं सद् आत्मनि निजस्वरूपे स्थितम्। ज्योतिर्मयं "स्थाणुवज्ज्वलति लिङ्गमदृश्यम्" इति याज्ञवल्क्यश्रुतेः स्वातिरिक्तमानान्तरागम्यत्वेन स्वयमेव भासमानं परशिवाख्यपरब्रह्ममहालिङ्गम्। "तज्ज्ञानं सद्गुरोर्ज्ञेयं नान्यथा शास्त्र-कोटिभिः" इति शिवरहस्यवचनमप्यस्तीति लोके महागुरुदयां विना कथं

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

केन प्रकारेण विज्ञायते? केनापि प्रकारेण ज्ञातुमशक्यमित्यर्थः। शिष्टं स्पष्टम् ।।२७-२९।।

ते शिवलिंग कसे आहे? शिवलिंग हे श्रेष्ठ दैवत असून ते परमपवित्र आहे. त्रिमलापासून मुक्त असून ब्रह्मस्वरूप आहे. ते सनातन, चैतन्यस्वरूप असून त्यालाच शिव म्हणतात. ते चिन्मात्र, आनंदस्वरूप, निरंकुश असून त्रैलोक्याचे व वेदांचे मूळ कारण आहे. ते सर्व तत्त्वांचे पूरक, संसारसागरातून तारणारे, तेजःपुंज, प्रमाणातीत असून योग्यांच्या हृदयात वास करणारे आहे. असे हे परब्रह्मलिग सद्गुरुकृपेशिवाय कोण जाणू शकेल? ।।२७-२९।।

नन्वस्मदादीनां गुरुदयाव्यतिरेकेण विज्ञातुमशक्यत्वेऽपि ब्रह्मादीनां सर्वज्ञत्वेन तदपेक्षा नास्तीति कथमुक्तार्थसिद्धिरित्यत्र— "वराहो विष्णुर्निममज्ज भूमौ ब्रह्मोत्पपात दिवमाशु गृध्र" इति लिङ्गसूत्रा(क्ता)भिप्रायेणोक्तार्थं स्थापयति—

ब्रह्मणा विष्णुना पूर्वं यल्लिङ्गं ज्योतिरात्मकम्।
अपरिच्छेद्यमभवत् केन वा परिचोद्यते।।३०।।

ज्योतिरात्मकं ज्योतिर्मयं यल्लिङ्गं ब्रह्मणा विष्णुना च पूर्वमपरिच्छेद्यं ज्ञातुमयोग्यमभवत्, तन्महाशिवलिङ्गं केन वा परिचोद्यते? केन विज्ञायत इत्यर्थः।।३०।।

गुरुकृपेवाचून सामान्य मनुष्याला लिंगज्ञान होणार नाही. परंतु ब्रह्मादी श्रेष्ठ देव सर्वज्ञ असतात. त्यांना गुरूची काय आवश्यकता? या प्रश्नाचे उत्तर असे—वराहरूपी विष्णू भूमीत शिरला आणि गृध्ररूपी ब्रह्मा आकाशात उडाला तरीही त्यांना भूमी व आकाशव्यापी ज्योतिर्लिंगाचे दर्शन घडले नाही, असा लिंगसूत्राचा अभिप्राय आहे. अशा ज्योतिर्मय लिंगाचे ज्ञान पूर्वी ब्रह्मा, विष्णू आदी देवांनाही झाले नाही मग ते सामान्य जनास कसे होईल? अर्थात् होणार नाही.।।३०।।

ननु ब्रह्माद्यगम्यं लिङ्गं कीदृशमित्यत्राह—

बहुनात्र किमुक्तेन लिङ्गं ब्रह्म सनातनम्।
योगिनो यत्र लीयन्ते मुक्तपाशनिबन्धनाः।।३१।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अत्र बहुभाषणेन किम्? विश्वलयगमनकारणं नित्यं ब्रह्मैव लिङ्गं यत्र परब्रह्मात्मनि शिवलिङ्गे सनकादियोगिनो मुक्तपाशनिबन्धना विसृष्टाविद्यादिपञ्चक्लेशपाशबन्धनाः सन्तो लीयन्ते तादात्म्यं भजन्त इत्यर्थः ।।३१।।

ब्रह्मादी देवांना देखील अगम्य असलेले लिंग कसे आहे? तर, अधिक काय सांगावे? विश्वाच्या उत्पत्ति-स्थिति-लयाला कारण असे अनादी, सनातन लिंग परब्रह्मस्वरूप असून सनक, सनंदन वगैरे योगीश्वर अविद्या वगैरे पंचक्लेशांपासून मुक्त होऊन त्या लिंगातच लीन होतात. अशा रीतीने जगाच्या उत्पत्ती आदीस आणि योगिजनांच्या मुक्तीस कारण असे हे लिंग आहे.।।३१।।

ननु ब्रह्मैव लिङ्गं चेत् किमस्य पीठमित्यत्राह—

पीठिका परमा शक्तिर्लिङ्गं साक्षात् परः शिवः।
शिवशक्तिसमायोगं विश्वं लिङ्गं तदुच्यते।।३२।।

"क्रियाशक्त्यात्मकं पीठं ज्ञानशक्त्यात्मनः प्रभोः" इति शिवागमवचनात् परमा शक्तिः सर्वोत्कृष्टा क्रियाशक्तिः पीठम्, साक्षात्परः शिवश्चिद्रूपपरमेश्वर एव लिङ्गम् । शिवशक्तिसमायोगं शिवशक्तिसम्बन्धवत्तल्लिङ्गं विश्वम्, "न वज्रचक्राङ्कसरोरुहाङ्कं लिङ्गाङ्कितं पश्य जगद्भगाङ्कम्", "ज्ञानकर्मेन्द्रियैर्विश्वं चित्क्रियालिङ्गरूपकम्" इति पुराणोक्तेः सर्वजगद्रूपमित्युच्यत इत्यर्थः।।३२।।

परब्रह्मच लिंग आहे तर त्याची पीठिका (शाळुंका) कोण? तर, सर्वोत्कृष्ट क्रियाशक्ती ही पीठिका असून साक्षात् चिद्रूप शिव हे लिंग होय. शिवशक्तीचा संयोग हेच विश्व आहे. 'ज्ञानकर्मेंद्रियात्मक विश्व हे चित्क्रियामय लिंगरूप आहे', अशी पुराणांची साक्ष आहे. म्हणजेच शिवलिंग हे परब्रह्म, शक्ती ही शाळुंका आणि विश्व हे शिवशक्तिसंयोगरूप होय.।।३२।।

अथैवरूपं लिङ्गं ब्रह्मादयः सम्पूज्य महदैश्वर्यं प्राप्तवन्त इत्याह—

ब्रह्मादयः सुराः सर्वे मुनयः शौनकादयः।
शिवलिङ्गार्चनादेव स्वं स्वं पदमवाप्नुयुः।।३३।।

अत्र—"तव श्रियै मरुतोऽमर्जयन्त रुद्र यत्ते जनिमं चारुचित्रम्। पदं यद्विष्णोरुपमं निधायि।।" इति ऋग्वेदश्रुतिः। अयमर्थः—भो रुद्र मरुतो

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ब्रह्मादयो देवाः, श्रियै विष्णोः पदं स्थानं वैकुण्ठादिकम् उपमं दृष्टान्तं निधायि मनसि निधाय चारु मनोहरं चित्रं विचित्रं जनिमम् आविर्भावस्थानं लिङ्गम् अमर्जयन्त अर्चितवन्त इत्यर्थः। वैकुण्ठादिस्थानं महदैश्वर्यं च विष्णुः शिवलिङ्गपूजामहिम्ना लब्धवानिति दृष्टान्तीकृत्य ब्रह्मादयो देवाः सर्वेऽपि शिवलिङ्गं श्रियै पूजितवन्त इति यावत्।।३३।।

अशा या लिंगाचे पूजन करूनच ब्रह्मादी देवांनी मोठे ऐश्वर्य प्राप्त करून घेतले, असे सांगतात--विष्णूने शिवलिगपूजा केल्यामुळेच त्याला वैकुंठपदाची प्राप्ती झाली, हे पाहून ब्रह्मादी देव आणि शौनकादी ऋषींनीही शिवलिंगपूजन केल्यामुळे त्यांनाही आपापला अधिकार प्राप्त झाला.।।३३।।

ननु शिवस्यापि विश्वाधिकत्वादिमहदैश्वर्यं कस्यचिदुपासनया समागतं किमित्यत्राह—

विश्वाधिपत्वमीशस्य लिङ्गमूर्तेः स्वभावजम्।
अनन्यदेवसादृश्यं श्रुतिराह सनातनी।।३४।।

"विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिः। हिरण्यगर्भं जनयामास पूर्वम्", "न तत्समश्चाप्यधिकश्च दृश्यते" इति श्वेताश्वतरश्रुतेर्लिङ्गमूर्तेरीशस्य परमेश्वरस्य अनन्यदेवसादृश्यं विश्वाधिपत्वं चराचरप्रपञ्चनियामकत्वं स्वभावजं स्वतः सिद्धमिति सनातनी श्रुतिराहेत्यर्थः।।३४।।

इति लिङ्गमहत्त्वस्थलम्

शिव हा विश्वाचा अधिपती आहे, तर त्याला कोणाच्या उपासनेमुळे हा अधिकार लाभला? याचे उत्तर असे की, लिंगस्वरूपी शंकराचे विश्वाचे स्वामित्व स्वाभाविक आहे. शिवाची दुसऱ्या देवाशी तुलना करता येत नाही. कारण 'त्याचे चराचर प्रपंचाचे नियामकत्व स्वतःसिद्ध आहे', असे श्रुतीत म्हटले आहे.।।३४।।

अथ जङ्गममाहात्म्यस्थलम्

अथ गुरुलिङ्गमहत्त्वात् संवेद्यं जङ्गमस्थलं प्रकाशयति—

गुरुशिष्यसमारूढलिङ्गमाहात्म्यसम्पदः।
सर्वं चिद्रूपविज्ञानाज्जङ्गमाधिक्यमुच्यते।।३५।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"आचार्यः पूर्वरूपमन्तेवास्युत्तररूपं विद्या सन्धिः" इति श्रुतेर्गुरुशिष्य-मध्यगतशिवलिङ्गमहत्त्वसंपदः सर्वं 'विश्वप्रपञ्चं चिद्रूपविज्ञानात् चित्क्रिया-रूपत्वेन विज्ञानाद् जङ्गमाधिक्यमुच्यते, गुरुशिष्ययोरिष्टप्राणभावेषु तादात्म्यभावनया समारूढलिङ्गमहत्त्वसम्पत्त्या सर्वं विश्वं शिवशक्त्यात्मकमिति विज्ञानमेव जङ्गमाधिक्यमित्यर्थः।।३५।।

गुरू आणि लिग याची महती सांगितल्यानंतर आता जगमाचे माहात्म्य विशद करतात. इष्टलिंग, प्राणलिंग व भावलिंग याच्या विषयीची तादात्म्य भावना गुरूपदेशाने शिष्याच्या मनात वृद्धिगत होऊन लिंगमाहात्म्य दृढ होते; परंतु या लिंग माहात्म्याच्या संपत्तीपेक्षा समस्त विश्व शिवशक्तिमय आहे असे जाणणाऱ्या जगमाची योग्यता अधिक आहे.।।३५।।

अथ के ते जङ्गमा इत्यत्राह—

जानन्त्यतिशयाद् ये तु शिवं विश्वप्रकाशकम्।
स्वस्वरूपतया ते तु जङ्गमा इति कीर्तिताः।।३६।।

"तस्य भासा सर्वमिदं विभाति" इति श्रुतेर्ये विश्वप्रकाशकं स्वकीयचित्क्रियाशक्तिभ्यां प्रपञ्चप्रकाशं शिवमतिशयेन सर्वासर्वशब्दार्थयो-र्मायाकार्यकोटिप्रविष्टत्वेनाऽसनातनत्वाद् एतज्जीवनभूतज्ञत्वकर्तृत्वयोः सनातनत्वात्, अन्यथा स्वविषयकज्ञानशून्यत्वेन स्फटिकादिप्रकाशवज्जडत्व-प्रसङ्गात्, तयोर्जीवेश्वरसाधारणीभूतास्मद्रूपात्मतत्त्वनिजस्वभावत्वात् स्वयं तदनतिरिक्त इति दृढतरनिश्चयेन स्वस्वरूपतया जानन्ति, ते जङ्गमा इत्यर्थः।।३६।।

तो जंगम कसा आहे? तर 'त्याच्या प्रकाशाने हे सर्व प्रकाशते,' या श्रुतिवचनानुसार विश्व प्रकाशित करणारा शिव आणि आपले आत्मस्वरूप अभिन्न आहे. कारण परमात्मा आणि जीवात्मा यांच्यात आत्मतत्त्व साधारण आहे. शिवाला जाणण्याचे हे ज्ञान जीवात असते.' प्रकाशित करण्याप्रमाणेच जाणण्याचे ज्ञानही त्याच्या ठिकाणी नसते तर त्याचे प्रकाशणे स्फटिकवत् जड झाले असते. म्हणून शिवस्वरूप आणि आत्मरूप समान आहे, असे यथार्थ रीतीने जाणणाऱ्याला जंगम म्हणतात.।।३६।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अथ शिवयोगित्वेन प्रसिद्धजङ्गममहत्त्वं पञ्चभिः सूत्रैः प्रतिपादयति—

ये पश्यन्ति जगज्जालं चिद्रूपं शिवयोगतः।
निर्धूतमलसंस्पर्शास्ते स्मृताः शिवयोगिनः।।३७।।

ये जङ्गमा देवा विश्वं शिवयोगतो विश्वस्य शिवसम्बन्धाभावे चिद्बाह्यत्वेन सङ्कल्पतापत्तेः शिवसम्बन्धोऽङ्गीकरणीय एव । स च संयोगरूपो न भवति, तस्य क्रियापूर्वत्वेन भिन्नदेशस्थितयोरेवोपपद्यत इति ब्रह्मबाह्यदेशाभावेन तादात्म्यरूप एवेत्युपपादितत्वाच् चिद्रूपं चित्क्रिया-स्वरूपमिति पश्यन्ति जानन्ति, ते निर्धूतमलसंस्पर्शा निर्गताणवादि-मलसम्बन्धिनः शिवयोगिन इति स्मृता इत्यर्थः।।३७।।

शिवयोगी म्हणून प्रसिद्ध असलेल्या जगमाचे महत्त्व पाच श्लोकात सागतात—जग हे शिवाशी सबधित नाही असे मानले तर ते जड मानावे लागते. जड हे स्वतंत्र नसून परावलबी असते. म्हणून त्याला आश्रयदाता मानावा लागतो. मग जग आश्रयदात्याशी (शिवाशी) कोणत्या संबधाने राहाते? तर संयोग संबधाने, असे म्हटल्यास यावर आक्षेप घेतला जाईल की, क्रियेपासून संयोगाचा आरंभ होतो आणि क्रिया द्रव्यनिष्ठ असते. द्रव्य म्हणजे पदार्थ. एका परशिवाव्यतिरिक्त कोणताही पदार्थ नसतो. सर्व जग शिवमय आहे असा शास्त्रसिद्धात असल्यामुळे परशिवाशिवाय कोणत्याही पदार्थाचे अस्तित्व मानता येत नाही. म्हणून तादात्म्यसबंधाने जग परशिवाशी संबधित असते, आणि विश्व हे चित्क्रियात्मक लिगरूप आहे, असे जे जाणतात तेच आणवादी मलांपासून मुक्त झालेले शिवयोगी जंगम होत.।।३७।।

घोरसंसारतिमिरपरिध्वंसनकारणम्।
येषामस्ति शिवज्ञानं ते मताः शिवयोगिनः।।३८।।

भयङ्करसंसारान्धकारनिवारकं शिवाधिक्यज्ञानं येषामस्ति, ते शिवयोगिन इति मताः स्मृता इत्यर्थः।।३८।।

ससाररूपी घोर अधःकाराचा नाश करणारे शिवज्ञान ज्याच्याजवळ आहे, त्यांना शिवयोगी म्हणतात.।।३८।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अथ ते कीदृशाः कथं तिष्ठन्तीत्यत्राह—

जितकामा जितक्रोधा मोहग्रन्थिविभेदिनः।
समलोष्टाश्मकनकाः साधवः शिवयोगिनः।।३९।।
समाः शत्रौ च मित्रे च साक्षात्कृतशिवात्मकाः।
निस्पृहा निरहङ्कारा वर्तन्ते शिवयोगिनः।।४०।।

स्पष्टम्।।३९-४०।।

ज्यांनी काम जिंकला, क्रोध जिंकला, मोहरूपी ग्रंथीचा भेद केला, माती व सोने यांकडे जे समदृष्टीने पाहातात अशा सज्जनांनाच शिवयोगी म्हणावे. शत्रू व मित्र त्यांना समान वाटतात, त्यांना शिवस्वरूपाचा साक्षात्कार झालेला असतो, ते निःस्पृह व अहंकारशून्य वृत्तीने सर्वांशी वर्तन करतात. ।।३९-४०।।

एवमुक्तलक्षणज्ञानसम्पन्नाः साक्षाच्छिवा एवेत्याह—

दुर्लभं हि शिवज्ञानं दुर्लभं शिवचिन्तनम्।
येषामेतद् द्वयं चास्ति ते हि साक्षाच्छिवात्मकाः।।४१।।

शिवज्ञानं शिवाधिक्यज्ञानं शिवचिन्तनम् उक्तयुक्तिभिः स्वयमेव शिव इति मननं च दुर्लभम्। एतद् द्वयं येषामस्ति, ते साक्षाच्छिवरूपा इत्यर्थः।।४१।।

अशा लक्षणांनी युक्तं शिवयोग्यांना साक्षात् शिवच म्हणावे. शिवज्ञान अत्यंत दुर्लभ असून सदोदित शिवचिंतन करणे हेही कठीण आहे. या दोन्ही गोष्टी ज्यांना साधल्या आहेत असे शिवयोगी प्रत्यक्ष शिवच होत.।।४१।।

अथ पुनस्तेषां महत्त्वं श्लोकद्वयेनाह—

पादाग्ररेणवो यत्र पतन्ति शिवयोगिनाम्।
तदेव सदनं पुण्यं पावनं गृहमेधिनाम्।।४२।।
सर्वसिद्धिकरं पुंसां दर्शनं शिवयोगिनाम्।
स्पर्शनं पापशमनं पूजनं मुक्तिसाधनम्।।४३।।

शिवयोगिनां जङ्गमदेवानामित्यर्थः। गृहमेधिनां गृहस्थानामित्यर्थः। पुण्यं पुण्यक्षेत्रमित्यर्थः। पावनं पवित्रम्। शिष्टं स्पष्टम्।।४२-४३।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

शिवयोग्याचे महत्त्व पुन्हा दोन श्लोकांत विशद करतात— शिवयोग्याच्या पायाची धूळ जेथे पडते ते गृहस्थाचे घर स्वतः पवित्र आणि दुसऱ्याला पवित्र करणारे होय. शिवयोग्याच्या दर्शनाने सर्व सिद्धी प्राप्त होतात. त्याच्या स्पर्शाने पातकाचा नाश होतो आणि त्याचे पूजन केल्यामुळे मोक्ष प्राप्त होतो. ।।४२-४३।।

अथैवं तादृशशिवयोगिनां सम्पर्कात् सर्वेप्सितार्थसिद्धिरित्याह—

महतां शिवतात्पर्यवेदिनामनुमोदिनाम्।
किं वा फलं न सिद्ध्येत सम्पर्काच्छिवयोगिनाम्।।४४।।

शिवरहस्याभिप्रायवेदिनां शिवसुखानुमोदिनां महतां सत्पुरुषाणां शिवयोगिनां जङ्गमदेवानां सम्पर्कात् किं वा फलं न सिद्ध्येत? सर्वं सिद्ध्येदित्यर्थः।।४४।।

इति जङ्गममहत्त्वस्थलम्

अशा शिवयोग्याच्या संपर्काने सर्व अभिष्टार्थसिद्धी प्राप्त होते, असे सांगतात—अशा श्रेष्ठ, शिवरहस्य जाणणाऱ्या, शिवाच्या सुखात सुख मानणाऱ्या सत्पुरुष अशा शिवयोगी जंगमाच्या सान्निध्यात भक्तिभावनेने राहिल्यास कोणते फळ मिळणार नाही? अर्थात् सर्व प्रकारची फलप्राप्ती होईल.।।४४।।

अथ भक्तमाहात्म्यस्थलम्

अथ गुरुलिङ्गजङ्गममहत्त्वलम्पटस्य भक्तस्य महत्त्वं द्वादशसूत्रैः प्रतिपादयति—

गुरोर्लिङ्गस्य माहात्म्यकथनाच्छिवयोगिनाम्।
सिद्धं भक्तस्य माहात्म्यं तथाप्येष प्रशस्यते।।४५।।

गुरुलिङ्गजङ्गमेष्वेवंविधमाहात्म्यज्ञानपूर्वकं भक्तेः क्रियमाणत्वेन भक्तमाहात्म्यं सिद्धमिति। तथैवायं शास्त्रे प्रशस्यते उत्कर्षेण भण्यत इत्यर्थः।।४५।।

गुरू, लिंग व जंगम यांच्या ठिकाणी आसक्ती बाळगणाऱ्या शिवभक्ताचे महत्त्व बारा श्लोकांत सांगतात—गुरू, लिंग व जंगम यांचे माहात्म्य जाणून भक्ताकडून भक्ती केली जाते. त्यामुळे

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भक्ताचेही माहात्म्य सिद्ध होते. शिवभक्ताची प्रशंसा शास्त्राने सुद्धा केली आहे.।।४५।।

अथ के भक्ता इत्यत्र—"यद्धि मनसा ध्यायति तद्वाचा वदति तत्कर्मणा करोति" इति श्रुत्यर्थानुसारेण भक्तस्वरूपमाह—

ये भजन्ति महादेवं परमात्मानमव्ययम्।
कर्मणा मनसा वाचा ते भक्ता इति कीर्तिताः।।४६।।

हस्ताभ्यामर्चनारूपकायिकक्रियया शिवमूर्तिध्यानरूपमानसक्रियया स्तुतिरूपवाचिकक्रियया च ये परमात्मानं लिङ्गरूपिणं महादेवं भजन्ति, ते भक्ता इत्यर्थः।।४६।।

भक्त कोणाला म्हणावे? असे विचारल्यास, 'जो मनाने जे चिंतन करतो तेच वाचेने बोलतो आणि बोलल्याप्रमाणे वर्तन करतो,' या श्रुतिवचनाला अनुसरून जो वागतो, तोच भक्त होय. अशा भक्ताचे स्वरूप सांगतात—जे हातांनी पूजन करून कायिक क्रियेने, शिवलिंगाचे ध्यान करून मानसक्रियेने आणि शिवस्तुती करून वाचिक क्रियेने, असे कायावाचामनसा त्रिकरणरूपाने लिंगरूपी शिवाचे भजन करतात, त्यांना शिवभक्त म्हणतात.।।४६।।

शिवभक्तेर्जातिभेदोऽस्ति किमित्यत्राह—

दुर्लभा हि शिवे भक्तिः संसारभयतारिणी।
सा यत्र वर्तते साक्षात् स भक्तः परिगीयते।।४७।।

स्पष्टम्।।४७।।

शिवभक्तांमध्ये जातिभेद असतो का? संसाराचा नाश करणारी शिवभक्ती खरोखर दुर्लभ आहे. ती ज्याच्या मनात असते, मग तो कोणीही असो, शिवभक्तच होय. म्हणजे शिवभक्तामध्ये जातिभेद मानू नये.।।४७।।

तस्माज्जननमरणपरिपीडितानां जनानां शिवभक्तिव्यतिरेकेण केनापि सत्कर्मणा प्रयोजनं नास्तीत्याह—

किं वेदैः किं ततः शास्त्रैः किं यज्ञैः किं तपोव्रतैः।
नास्ति चेच्छाङ्करी भक्तिर्देहिनां जन्मरोगिणाम् ।।४८।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

शास्त्रैः वेदार्थानुगैः, शिवागमसूत्रपुराणादिभिरित्यर्थः। शिष्टं स्पष्टम् ।।४८।।

जन्ममृत्यूनी पीडित अशा लोकाना शिवभक्ती शिवाय अन्य सत्कर्माचे प्रयोजन नाही. वेदाध्ययन करून उपयोग काय? शास्त्र शिकून अथवा यज्ञ करून काय करावयाचे? तपश्चर्या व व्रते करून तरी काय करावयाचे आहे? जन्ममरणरूपी रोगाने ग्रस्त झालेल्या मनुष्याला शिवभक्ती घडत नसेल तर वरील गोष्टींचा काही उपयोग नाही.।।४८।।

अथ शिवभक्तिव्यतिरेकेण विधीयमानं सत्कर्म विफलं विपरीतफलं चेति दृष्टान्तपूर्वकमाह—

शिवभक्तिविहीनस्य सुकृतं चापि निष्फलम्।
विपरीतफलं च स्याद् दक्षस्यापि महाध्वरे।।४९।।

स्यात्, अभवदित्यर्थः।।४९।।

शिवभक्तीशिवाय केलेल्या सत्कर्माचे फल निरर्थक अथवा विपरीत फलदायी होते हे दृष्टात देऊन सागतात—शिवभक्ती न करणाऱ्या मनुष्याने काही सत्कर्म केले तरी त्याचा उपयोग नाही. यज्ञ केला तरी दक्षप्रजापतीला शिवभक्ती न केल्यामुळे विपरीत परिणाम भोगावा लागला.।।४९।।

अथ शिवभक्त्या दुष्कर्मापि सत्कर्म भवेदिति दृष्टान्तपूर्वकमाह—

अत्यन्तपापकर्माऽपि शिवभक्त्या विशुद्ध्यति।
चण्डो यथा पुरा भक्त्या पितृहाऽपि शिवोऽभवत्।।५०।।

शिवः शिवगणाधीश इत्यर्थः । शिष्टं स्पष्टम्।।५०।।

दुष्कर्मी मनुष्य देखील शिवभक्तीमुळे सत्कर्मी होतो. हे दृष्टान्त देऊन सागतात—मनुष्य अत्यत पातकी असला तरी शिवभक्ती करताच तो पातकातून मुक्त होतो. पूर्वी चड नामक पातक्याने पितृहत्या केली तरी शिवभक्ती केल्याने तो शिवसायुज्य पावला, शिवस्वरूप झाला.।।५०।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

नन्वेवं चेत्, शिवभक्तानां पुण्यपापसंबन्धोऽस्ति वा न वेत्यत्राह–

सुकृतं दुष्कृतं चापि शिवभक्तस्य नास्ति हि ।
शिवभक्तिविहीनानां कर्मपाशनिबन्धनम् ।।५१ ।।

स्पष्टम् ।।५१ ।।

असे जर आहे तर शिवभक्तांचा पाप-पुण्याशी संबंध असतो की नाही? शिवभक्ती करणाऱ्याला पुण्य नाही, पाप नाही. शिवभक्ती न करणाऱ्याला मात्र कर्मपाशाचे बंधन असते व त्याच्या कर्मानुसार त्याला सुखदुःखे भोगावी लागतात. ।।५१ ।।

तत्कथमित्यत्र दृष्टान्तपूर्वकं सूत्रद्वयेनाह–

शिवाश्रितानां जन्तूनां कर्मणा नास्ति सङ्गमः ।
वाजिनां दिननाथस्य कथं तिमिरजं भयम् ।।५२ ।।

दिननाथस्य रवेर्वाजिनामश्वानां यथान्धकारप्रयुक्तभीर्नास्ति, तथा शिवभक्तानां कर्मणा पुण्यपापमयेन कर्मणा सङ्गमः सम्बन्धो नास्तीत्यर्थः ।।५२ ।।

हे कसे ते दृष्टान्ताने पटवून देतात–सूर्यरथाला जुपलेल्या घोड्यांना जसे अंधःकाराचे भय नसते, तसे शिवभक्ताला पुण्य-पाप-कर्माचा संबंध नसतो. ।।५२ ।।

निरोद्धुं न क्षमं कर्म शिवभक्तान् विशृङ्खलान् ।
कथं मत्तगजान् रुन्ध्येच्छृङ्खला बिसतन्तुजा ।।५३ ।।

शिवदीक्षयाऽऽणवादिमलत्रयस्य निवृत्तत्वेन विशृङ्खलान् शिवभक्तान् कर्म निरोद्धुं न क्षमं न समर्थम् । तत्र दृष्टान्तः–मृणालतन्तुनिर्मिता शृङ्खला यथा मत्तगजं न रुन्धेत् तथेत्यर्थः ।।५३ ।।

एखाद्या उन्मत्त हत्तीला जसे कमलाच्या तंतूपासून केलेल्या साखळीने बांधता येत नाही, तसेच शिवदीक्षेमुळे जो आणवादी त्रिमलांपासून मुक्त झाला, अशा शिवभक्ताला बांधण्याची शक्ती कर्मामध्ये नसते. ।।५३ ।।

तस्माच्छिवभक्त एव पूज्य इत्याह–

ब्राह्मणः क्षत्रियो वाऽपि वैश्यो वा शूद्र एव वा ।
अन्त्यजो वा शिवे भक्तः शिववन्मान्य एव सः ।।५४ ।।

स्पष्टम् ।।५४ ।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

म्हणून शिवभक्तच पूजनीय आहे हे सागतात—ब्राह्मण असो, क्षत्रिय असो, वैश्य असो, शूद्र असो अथवा अत्यज असो, जो कोणी शिवाची भक्ती करतो, तो शिवासारखाच मान्य आहे.।।५४।।

ननु शूद्रादीनां ब्राह्मणाद्यपेक्षया निकृष्टत्वात् कथं तेषां तत्समानत्वमित्यत्राह—

शिवभक्तिसमावेशे क्व जातिपरिकल्पना ।
इन्धनेष्वग्निदग्धेषु को वा भेदः प्रकीर्त्यते।।५५।।

स्पष्टम्।।५५।।

शूद्र लोक ब्राह्मणापेक्षा निकृष्ट असताना ते समान कसे होतात? ज्यांच्या ठिकाणी परिपूर्ण भक्ती आहे त्याच्या जातीचा विचार करण्याचे कारण नाही. लाकडे एकदा अग्नीत जळून विस्तव झाल्यावर लाकडांचे वेगळेपण कसे सांगता येईल? अर्थात् सागताच येत नाही.।।५५।।

तस्माच्छिवभक्ता एव गणेश्वरा इत्युक्त्वा भक्तमाहात्म्यं समापयति—

शुद्धा नियमसंयुक्ताः शिवार्पितफलागमाः ।
अर्चयन्ति शिवं लोके विज्ञेयास्ते गणेश्वराः।।५६।।

ये शुद्धा दीक्षया परिपूता नियमसम्पन्नाः शिवव्रतिनः शिवार्पितफलागमाः तदर्पितपुण्यपापफलागमाः सन्तो लोके शिवलिङ्गमर्चयन्ति, ते "नाशिवस्य शिवोपास्तिः", "नारुद्रो रुद्रमर्चयेत्" इत्यादिवचनैर्गणेश्वरा इति रुद्रा इति विज्ञेया इत्यर्थः।।५६।।

इति भक्तमाहात्म्यस्थलम्

शिवभक्त हेच गणेश्वर असतात हे सागून या स्थलाचा समारोप करतात—जे शिवदीक्षेमुळे पवित्र व शिवव्रतामुळे सपन्न होऊन पापपुण्याची व कर्मफलाची आशा न बाळगता शिवार्पण बुद्धीने शिवपूजन करतात तेच गणेश्वर आहेत असे समजावे.।।५६।।

—

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अथ शरणमहत्त्वस्थलम्

अथ गुरुलिङ्गादिमहत्त्वं ज्ञात्वा शिव एक एव रक्षक इति प्रपद्यमानस्य शरणस्य महत्त्वं प्रतिपादयति—

गुरुलिङ्गादिमाहात्म्यबोधान्वेषणसङ्गतः।
सर्वात्मना शिवापत्तिः शरणस्थानमुच्यते।।५७।।

गुरुलिङ्गशिवयोगिशिवभक्तमहत्त्वज्ञानान्वेषणसम्बन्धात् सर्वात्मना नानाप्रकारेणापि शिवापत्तिः शिव एक एव रक्षक इति प्रपन्नता शरणस्थानमित्युच्यत इत्यर्थः।।५७।।

गुरू, लिंगादींचे महत्त्व जाणल्यानंतर शिव हाच एकमेव रक्षणकर्ता आहे, याचे प्रतिपादन करून शरणाचे महत्त्व सांगतात— गुरू, लिंग, शिवयोगी, शिवभक्त यांच्या माहात्म्यज्ञानानंतर सर्वप्रकाराने शिवच रक्षक आहे असे जाणून त्याला अनन्य भावाने शरण जाणारास शरण म्हणतात.।।५७।।

अथ तदेव विशदयति—

ब्रह्मादिविबुधान् सर्वान् मत्वा प्राकृतवैभवान्।
प्रपद्यते शिवं यत्तु शरणं तदुदाहृतम्।।५८।।

"शिव एको ध्येयः शिवङ्करः सर्वमन्यत् परित्यज्य" इति श्रुतेः प्राकृतवैभवान् प्रकृतिजन्यसम्पत्तिमतो ब्रह्मविष्ण्वादिदेवान् मुक्त्वा त्यक्त्वा शिवं यत् प्रपद्यते प्रपन्नत्वेनाश्रयतें, तत् शरणं शरणस्थलमित्युदाहृतं कथितमित्यर्थः।।५८।।

आता त्याचेच स्पष्टीकरण करतात—'शिव एकच ध्यान करण्यास योग्य आहे' असे श्रुतिवचन आहे. ब्रह्मा, विष्णू आदी देवांचे ऐश्वर्य नाशिवंत असून त्या देवाविषयी उदासीन राहून अनन्य भावाने शिवाचाच आश्रय करणे यास शरणस्थल म्हणावे.।।५८।।

अथ शरणागतस्य स्वरूपं विशदयति—

शरण्यः सर्वभूतानां शङ्करः शशिशेखरः ।
सर्वात्मना प्रपन्नस्तं शरणागत उच्यते ।।५९।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

शशिशेखरः शङ्करः परमेश्वरः सर्वभूतानां सकलप्राणिनां शरण्यो रक्षणे समर्थ इति तं सर्वात्मना सर्वप्रकारेण प्रपन्नो रक्षिष्यतीति प्रपन्नः शरणागतः इत्युच्यत इत्यर्थः ।।५९।।

आता शिवाला शरण गेलेल्या शरणाचे स्वरूप स्पष्ट करतात—चंद्र मस्तकावर धारण करणारा शंकर हा सर्व प्राणिमात्रांचे रक्षण करण्यास समर्थ आहे. त्या शंकराला जो अनन्य भावाने शरण जातो त्यास शरणागत म्हटले जाते.।।५९।।

अथ शरणार्थिस्वरूपं कथयति—

विमुक्तभोगलालस्यो देवतान्तरनिस्पृहः।
शिवमभ्यर्थयन् मोक्षं शरणार्थीति गीयते।।६०।।

विमुक्तभोगलम्पटत्ववान् ब्रह्मविष्ण्वादिपदव्यां विरक्तः सन् शिवं प्रति मोक्षमभ्यर्थयन् शरणार्थीति गीयते कथ्यत इत्यर्थः।।६०।।

आता शरणार्थीचे स्वरूप सांगतात—भोग-लालसेपासून मुक्त होऊन ब्रह्मा, विष्णू आदी पदव्याविषयी निःस्पृह राहून जो मोक्षप्राप्तीसाठी शिवाची भक्ती करतो व शिवालाच मोक्ष मानतो त्याला शरणार्थी असे म्हणतात.।।६०।।

एवं शिवं प्रपन्नानां किमपि सत्कर्म मास्त्वित्याह—

ये प्रपन्ना महादेवं मनोवाक्कायकर्मभिः।
तेषां तु कर्मजातेन किं वा देवादितर्पणैः।।६१।।

ये महादेवं शिवं मनोवाक्कायकर्मभिः ध्यानस्तुतिपूजाकर्मभी रक्षेति (रक्षिष्यतीति)प्रपन्नानां तेषां कर्मजातेन यज्ञादिकर्मसमूहेन देवप्रभृतितर्पणेन च किं वा? किमपि प्रयोजनं नास्तीत्यर्थः।।६१।।

असे शिवाला शरण गेलेल्यांना निराळे सत्कर्म करण्याची गरज नाही, असे सांगतात—जे शिवभक्त मनाने, वाणीने, देहाने व कर्मांनी महादेवाला शरण गेलेले असतात त्यांना यज्ञयागादी कर्मसमूहाचे आणि अन्य देवादिकांना तर्पण करण्याचे प्रयोजनच काय? अर्थात् नाही.।।६१।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कुत इत्यत्र तदर्थं सूत्रद्वयेन प्रतिपादयति—

सर्वेषामपि यज्ञानां क्षयः स्वर्गः फलायते।
अक्षयं फलमाप्नोति प्रपन्नः परमेश्वरम् ।।६२।।

अक्षयं फलं मोक्षमित्यर्थः। शिष्टं स्पष्टम्।।६२।।

याचे कारण काय? तर, सर्व यज्ञांचे फळ स्वर्गप्राप्ती हेच आहे. परंतु स्वर्ग देखील नाशिवंतच आहे. शंकराला शरण जाणाऱ्याला मात्र असे फळ मिळते की, जे नाश पावतच नाही. या साठी शिवाला शरण जाणाऱ्यास अन्य सत्कर्माची गरज नसते.।।६२।।

पापिनां कथमित्यत्राह—

प्रपन्नपारिजातस्य भवस्य परमात्मनः।
प्रपत्त्या किं न जायेत पापिनामपि देहिनाम्।।६३।।

शरणागतकल्पद्रुमस्य परमात्मनः शिवस्य प्रपत्त्या रक्षकत्वेन प्रपत्त्या पापिनां प्राणिनामपि किं न जायेत, सर्वं भवेदित्यर्थः।।६३।।

तर मग पापी लोकांची गती काय? उत्तर असे की, शंकर हा परमात्मा असून शरण आलेल्या भक्ताचे कल्पवृक्षाप्रमाणे सर्व मनोरथ पूर्ण करणारा आहे. त्याला शरण जाणारा मनुष्य जरी महापातकी असला तरी तो शिवभक्ती करू लागल्यावर त्याला काय प्राप्त होणार नाही? अर्थात् त्याचे पाप नष्ट होऊन सर्व मनोरथ पूर्ण होतील.।।६३।।

तस्मात् शिवप्रपन्ना एव श्रेष्ठा इत्याह—

प्रपन्नानां महादेवं परिपक्वान्तरात्मनाम् ।
जन्मैव जन्म नान्येषां वृथा जननसङ्गिनाम्।।६४।।

महादेवं प्रपद्य परिपक्वान्तःकरणानां पुंसां जन्मैव जन्मफलम्, वृथा जननभाजामप्रपन्नानां जन्म न जन्मैव न, वृथेत्यर्थः।।६४।।

म्हणून शिवाला शरण गेलेलेच श्रेष्ठ होत असे सांगतात— ज्यांचे मन शिवभक्तीने परिपक्व व सुप्रसन्न झाले आहे, त्यांच्या जन्मालाच जन्म म्हणावे, इतर लोक केवळ जन्माला येतात आणि मरतात. त्यांच्या जन्माचा काही एक उपयोग नाही.।।६४।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अथ तदेव विशदयति—

दुर्लभं मानुषं प्राप्य जननं ज्ञानसाधनम् ।
ये न जानन्ति देवेशं तेषामात्मा निरर्थकः ।।६५।।

दुर्लभं मानुषं जननं जन्म प्राप्य ज्ञानसाधनमात्मज्ञानप्रदं देवेशं परशिवं ये न जानन्ति, तेषामात्मा जीवो निरर्थकः, अप्रयोजक इत्यर्थः ।।६५।।

दुर्लभ असा मानव जन्म मिळूनही आत्मज्ञान प्राप्त करून देणाऱ्या शिवाला जे जाणत नाहीत त्याचा जन्म व्यर्थ आहे.।।६५।।

अथ "कुलं पवित्रं जननी कृतार्था" इति सूतसंहितानुसारेण शरणमहत्त्वं प्रकाश्य तत्स्थलं समापयति—

तत्कुलं हि सदा शुद्धं सफलं तस्य जीवितम् ।
यस्य चित्तं शिवे साक्षाद् विलीनमबहिर्मुखम् ।।६६।।

यस्य चित्तं सदा साक्षाच्छिवलिङ्गे, अबहिर्मुखं बहिर्मुखं यथा न भवति तथा विलीनं विशेषेण लयं गतम्, तत्कुलं शुद्धं तस्य जीवितं जीवनं सफलमित्यर्थः ।।६६।।

इति शरणमहत्त्वस्थलम्

'शिवाला शरण गेलेल्याचे कुल पवित्र आणि माता धन्य होय', अशा सूतसंहितेच्या वचनानुसार शरणाचे महत्त्व सांगून त्या स्थलाचे वर्णन संपवितात—ज्याचे मन अंतर्बाह्य साक्षात् शिवलिंगातच लीन झालेले आहे, त्याचा वंश धन्य व शुद्ध असून त्याच्या जन्माचे सार्थक झाले असे समजावे.।।६६।।

अथ प्रसादमहत्त्वस्थलम्

अथ पूर्वोक्तगुरुलिङ्गादिमहत्त्वानुभवस्थितेः शिवप्रसादलभ्यत्वात् तत्प्रसाद-महत्त्वं कथयति—

गुरुलिङ्गादिमाहात्म्यविशेषानुभवस्थितिः ।
यस्माच्छिवप्रसादात् स्यात्तदस्य महिमोच्यते ।।६७।।

गुरुलिङ्गजङ्गमशिवभक्तशिवशरणमहत्त्वविशेषानुभवस्थितिर्यस्मात् कारणात् शिवप्रसादात् स्यात्, तस्मात् कारणाद् अस्य शिवप्रसादस्य महिमा महत्त्वम् उच्यते कथ्यत इत्यर्थः ।।६७।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पूर्वोक्त गुरुलिंगादिकाच्या माहात्म्याच्या अनुभूतीनंतर शिवप्रसादाचा लाभ होतो. म्हणून आता त्या प्रसादाचे महत्त्व सांगतात—गुरू, लिंग, जंगम, शिवभक्त, शिवशरण यांच्या माहात्म्याच्या विशेष अनुभवाची स्थिती शिवप्रसादाने प्राप्त होते. म्हणून त्या प्रसादाचे महत्त्व सांगतो.।।६७।।

ननु शिवप्रसादः कथं गुरुलिङ्गादिमहत्त्वविशेषानुभवस्थितिहेतुरित्यत्राह—

सदा लिङ्गैकनिष्ठानां गुरुपूजानुषङ्गिणाम्।
प्रपन्नानां विशुद्धानां प्रसीदति महेश्वरः।।६८।।

स्पष्टम्।।६८।।

ते कसे, या विषयी सांगतात—जे शिवलिंगावर निष्ठा ठेवतात, गुरुपूजेत तत्पर असतात, जे शरण येतात आणि ज्यांचे आचरण शुद्ध असते अशा शिवभक्तांवर महेश्वर प्रसन्न होतो.।।६८।।

स च शिवप्रसादः कीदृशस्तेन किं भवतीत्यत्राह—

प्रसादोऽपि महेशस्य दुर्लभः परिकीर्त्यते।
घोरसंसारसन्तापनिवृत्तिर्येन जायते।।६९।।

इतरेषामलिङ्गिनां दुर्लभः। तेन शिवप्रसादेन भयङ्करसांसारिकतापत्रयनिवृत्तिर्जायत इत्यर्थः।।६९।।

शिवप्रसाद कसा असतो व त्या पासून कोणता लाभ होतो? शिवभक्ताशिवाय दुसऱ्याला शिवप्रसाद अत्यंत दुर्लभ असतो, असे सांगितले जाते. त्यामुळे भयंकर अशा संसारतापाची निवृत्ती होते.।।६९।।

ननु— "तमेवं वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषन्ति यज्ञेन दानेन तपसाऽनाशकेन" इति श्रुतेर्यज्ञादीनां शिवज्ञानसाधनत्वश्रवणात् तेनैव सांसारिकदुःखनिवृत्तेः किं महेश्वरप्रसादेनेत्यत्राह—

यज्ञास्तपांसि मन्त्राणां जपश्चिन्ता प्रबोधनम् ।
प्रसादार्थं महेशस्य कीर्तितानि न संशयः।।७०।।

अत्र चिन्ता ध्यानम्, प्रबोधनं शिवाधिक्यज्ञानम्। शिष्टं स्पष्टम्।।७०।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

यज्ञादिक शिवज्ञानाचे साधन असून त्याच्यामुळे संसारदुःखाचा नाश होतो. असे असताना शिवप्रसादाचे प्रयोजनच काय? याचे उत्तर असे की, शिवप्रसाद मिळविण्यासाठी यज्ञ करावे लागतात, तप करावे लागते यात संदेह नाही. म्हणजेच यज्ञ, जपतपादी सर्व शिवप्रसादासाठीच करावे लागतात.।।७०।।

ननु मोक्षस्य भक्तिमूलकत्वात् किं प्रसादेनेत्यत्राह—

प्रसादमूला सर्वेषां भक्तिरव्यभिचारिणी ।
शिवप्रसादहीनस्य भक्तिश्चापि न सिद्धयति।।७१।।

सर्वेषां समस्तजनानाम् अव्यभिचारिणी अनन्यगामिनी भक्तिः प्रसादमूला, शिवप्रसादशून्यस्य भक्तिरेव न सिद्धयतीत्यर्थः ।।७१।।

मोक्षाचे मूळ कारण जर भक्ती आहे तर प्रसादाची आवश्यकता काय? शिवाची अव्यभिचारी भक्ती घडण्याचे मूळ कारण शिवप्रसादच होय. शिवप्रसाद नसलेल्या मनुष्याकडून अशी भक्ती घडणार नाही. म्हणून शिवप्रसादाशिवाय मोक्ष मिळणार नाही.।।७१।।

तस्मात्—

गर्भस्थो जायमानो वा जातो वा ब्राह्मणोऽथवा ।
अन्त्यजो वापि मुच्येत प्रसादे सति शाङ्करे।।७२।।

स्पष्टम्।।७२।।

शिवाचा प्रसाद झाल्यावर गर्भात राहाणारा असो, जन्माला येणारा असो, जन्मलेला असो, ब्राह्मण असो किंवा अंत्यज असो तो तात्काळ मुक्त होतो.।।७२।।

अथ ब्रह्मादयोऽपि शिवप्रसादेनैव नित्यसिद्धा इत्याह—

ब्रह्माद्या विबुधाः सर्वे स्वस्वस्थाननिवासिनः ।
नित्यसिद्धा भवन्त्येव प्रसादात् पारमेश्वरात्।।७३।।

स्पष्टम्।।७३।।

ब्रह्मादिदेव शिवप्रसादानेच नित्यसिद्ध होतात हे सांगतात— आपापल्या अधिकारावर राहाणारे ब्रह्मदेवादी देव शिवप्रसादानेच नित्यसिद्ध होतात, अर्थात् त्यांना सर्व सिद्धी अनुकूल होतात.।।७३।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ननु सर्वशिवात्मकज्ञानेनैव सांसारिकदुःखनिवृत्तेः किं प्रसादेनेत्यत्र— "भोक्ता भोग्यं प्रेरयिता भोगोपकरणानि च। सर्वं शिवमयं भाति प्रसादात् पारमेश्वरात्।।" इति सूतसंहितावचनानुसारेणाह—

प्रसादे शाम्भवे सिद्धे परमानन्दकारणे।
सर्वं शिवमयं विश्वं दृश्यते नात्र संशयः।।७४।।

स्पष्टम्।।७४।।

सर्व जग शिवात्मक आहे या ज्ञानाने सांसारिक दुःखाचा नाश होतो तर प्रसादाची आवश्यकता काय?'भोक्ता, भोग्य, प्रेरयिता व भोगाची साधने हे सर्व परमेश्वराच्या प्रसादाने शिवमय वाटतात', असे सूतसंहितेत म्हटले आहे. म्हणूनच परमानंद देणारा शिवप्रसाद सिद्ध झाल्यावर सर्व त्रैलोक्य शिवस्वरूप दिसू लागते, यात संशय नाही.।।७४।।

अथ शिवप्रसादमहत्त्वं पुनः सूत्रद्वयेन कथयति—

संसारचक्रनिर्वाहनिमित्तं कर्म केवलम् ।
प्रसादेन विना शम्भोर्न कस्यापि निवर्तते।।७५।।

संसारचक्रनिर्वाहकारणं कर्मैव, तद् यज्ञादिना न नश्यति, तस्यापि कर्मरूपत्वेन पुनः परिपोषकत्वात् । तस्मात् कस्यापि शिवप्रसादेन विना कर्म न नश्यतीति भावः।।७५।।

शिवप्रसादाचे महत्त्व पुन्हा दोन श्लोकांत सांगतात—संसार चक्राच्या फेऱ्यात पडायला कर्म कारणीभूत आहे. ते प्राणिमात्रांचे कर्म शिवप्रसादाशिवाय दुसऱ्या कोणत्याही साधनाने दूर होत नाही. शिवप्रसादाने मात्र दूर होते.।।७५।।

बहुनात्र किमुक्तेन नास्ति नास्ति जगत्त्रये।
समानमधिकं चापि प्रसादस्य महेशितुः।।७६।।

स्पष्टम्।।७६।।

फार काय सांगावे? शिवप्रसादासारखे अथवा त्यापेक्षा अधिक असे या त्रैलोक्यात काहीही नाही. सर्व जगात शिवप्रसाद श्रेष्ठ आहे.।।७६।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

एवंरूपप्रसादसिद्धः प्रसाद्येव प्राणलिङ्गीत्याह—

शिवप्रसादे सति योगभाजि सर्वं शिवैकात्मतया विभाति।
स्वकर्ममुक्तः शिवभावितात्मा स प्राणलिङ्गीति निगद्यतेऽसौ।।७७।।

इति श्रीमत्षट्स्थलब्रह्मिणा शिवयोगिनाम्ना रेणुकाचार्येण प्रणीते सिद्धान्तशिखामणौ प्रसादिनः सप्तविधस्थलप्रसङ्गो नामैकादशः परिच्छेदः समाप्तः।।

योगभाजि स्वरूपहानिवृद्धिव्यतिरेकेण सजातीयसमरसशिवयोगवति शिवप्रसादे सति सिद्धे सति सर्वं विश्वं कृत्स्नं जगत् शिवैकात्मतया शिवाभेदेन विभाति । तस्मात् शिवभावितात्मा शिवाभेदेन भावितस्वरूपवान् सोऽसौ प्रसादी स्वकर्ममुक्तः कर्मणोऽपि शिवमयत्वेन स्वस्वरूपतयाऽप्रतिबन्धकत्वात् स्वकर्मपाशविनिर्मुक्तः सन् प्राणलिङ्गीति निगद्यते कथ्यत इत्यर्थः।।७७।।

इति श्रीमत्पदवाक्यप्रमाणपारावारधुरीणश्रीमरितोण्टदार्येण विरचितायां तत्त्वप्रदीपिकाख्यायां सिद्धान्तशिखामणिव्याख्यायां प्रसादिनः सप्तविधप्रसङ्गो नामैकादशः परिच्छेदः समाप्तः।।

शिवप्रसाद झाल्यावर शिवयोगसमाधीत तल्लीन होणाऱ्या शिवयोग्याला सर्व त्रैलोक्य शिवस्वरूप दिसू लागते. शिवाचे अभेदभावनेने चिंतन करणाऱ्या व आपल्या कर्मापासून मुक्त होऊन शिवभावनेने युक्त अशा प्रसादीलाच प्राणलिंगी असे म्हणतात.।।७७।।

या प्रमाणे सिद्धांतशिखामणी ग्रंथातील प्रसादी स्थलाच्या सात अवांतर प्रकारांचे वर्णन असलेला हा अकरावा परिच्छेद संपला.

अकरावा परिच्छेद समाप्त।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

द्वादशः परिच्छेदः

अथ प्राणलिङ्गिस्थलम्

अगस्त्य उवाच

भक्तो माहेश्वरश्चेति प्रसादीति निबोधितः।
एक एव कथं चैष प्राणलिङ्गीति कथ्यते।।१।।

एक एव भक्तो माहेश्वरः प्रसादीति निबोधितः। एष च कथं केन प्रकारेण प्राणलिङ्गीति कथ्यत इति प्रश्नार्थः।।१।।

अगस्त्य म्हणतात, भक्तच माहेश्वर होतो, प्रसादी होतो हे सांगितलेले मला समजले. आता तोच भक्त प्राणलिंगी कसा होतो हे सांगावे.।।१।।

श्रीरेणुक उवाच

भक्तो माहेश्वरश्चैष प्रसादीति च कीर्तितः।
कर्मप्राधान्ययोगेन ज्ञानयोगोऽस्य कथ्यते।।२।।

एष अयं शिवलिङ्गदीक्षासम्पन्नः कर्मप्राधान्ययोगेन एवंरूपकर्मकाण्डोक्त-क्रियाप्रधानयोगेन भक्त इति, माहेश्वर इति, प्रसादीति कीर्तितः। अस्य एवंविधरूपत्रयसम्पन्नस्य ज्ञानयोगो ज्ञानकाण्डोक्तज्ञानयोगः कथ्यते। अनेन ज्ञानयोगेन प्रसाद्येव प्राणलिङ्गीत्युच्यत इत्यर्थः।।२।।

श्री रेणुकाचार्य म्हणतात, भक्तच आपल्या शुद्ध-क्रिया-आचरणाने माहेश्वर व प्रसादी होतो हे मी सांगितले. आता प्राणलिंगीला ज्ञानयोग कसा प्राप्त होतो हे सागतो.।।२।।

अथ कोऽयं प्राणलिङ्गीत्यत्र— "सर्वतत्त्वमयः प्राणः सर्वज्ञानमयः शिवः। अनयोर्योगमेवैतत् प्राणलिङ्गमिहोच्यते।।" इति वीरागमोक्तरूप-प्राणलिङ्गवान् प्राणलिङ्गीत्याह—

लिङ्गं चिदात्मकं ब्रह्म तच्छक्तिः प्राणरूपिणी।
तद्रूपलिङ्गविज्ञानी प्राणलिङ्गीति कथ्यते।।३।।

चिद्रूपं ब्रह्मैव शिवलिङ्गम्, तच्छक्तिः शिवलिङ्गपीठशक्तिः प्राणरूपिणी प्रणवात्मकप्राणस्वरूपवती, प्रणवस्य वेद्यसंस्कारलक्षणबिन्दुघटितत्वात्,

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

चित्क्रियासामरस्यलक्षणोन्मेषशक्तिघटितत्वाच्च सर्वतत्त्वमयत्वमुक्तम्। तद्रूपलिङ्गविज्ञानी तत्प्रकारकलिङ्गज्ञानवान् प्राणलिङ्गीति कथ्यत इत्यर्थः।।३।।

प्राणलिगी कोणाला म्हणावे असे विचारल्यास, 'सर्व तत्त्वात्मक असा प्राण व सर्वज्ञानमय असा शिव यांचे एकत्व म्हणजेच प्राणलिंग', असे वीरागमात सांगितलेल्या प्राणलिंगाचे ज्ञान ज्याला झाले आहे, अशा प्राणलिंगीचे स्वरूप सांगतात—चिद्रूप ब्रह्म हेच शिवलिंग आणि त्याची शक्ती प्राण-स्वरूप आहे, प्राणरूप शक्तीने युक्त लिंगाचे ज्याला यथार्थ ज्ञान झाले आहे, त्याला प्राणलिंगी म्हणतात.।।३।।

अथास्यापि स्थलभेदाः सन्ति किमित्यत्राह—

प्राणलिङ्गिस्थलं चैतत् पञ्चस्थलसमन्वितम्।
प्राणलिङ्गिस्थलं चादौ प्राणलिङ्गार्चनं ततः।।४।।
शिवयोगसमाधिश्च ततो लिङ्गनिजस्थलम्।
अङ्गलिङ्गिस्थलं चाथ क्रमादेषां भिदोच्यते।।५।।

स्पष्टम्।।४-५।।

प्राणलिंगी स्थलाचे पाच पोटभेद आहेत ते असे—१) प्राणलिंगीस्थल, २) प्राणलिंगार्चन स्थल, ३) शिवयोगसमाधिस्थल, ४) लिंगनिजस्थल आणि ५) अंगलिंगिस्थल. आता त्या प्रत्येकातील निराळेपणा क्रमाने सांगतो.।।४-५।।

"अथ प्राणेष्वन्तर्मनसो लिङ्गमाहुः", "ऊर्ध्वं प्राणमुन्नयत्यपानं प्रत्यस्यति। मध्ये वामनमासीनं विश्वेदेवा उपासते।।" इत्यथर्वशिरःकठवल्लीश्रुत्यनुसारेण प्राणलिङ्गिस्थलं पञ्चभिः सूत्रैः प्रतिपादयति—

प्राणापानसमाघातात् कन्दमध्याद्यदुत्थितम्।
प्राणलिङ्गं तदाख्यातं प्राणापाननिरोधिभिः।।६।।

प्राणापानसमाघाताद् देशिकोपदेशेन प्राणापानवायुसंघट्टने सति कन्दमध्याद् नाभिकन्दमध्याद् यज्ज्योतिरुत्थितम् उद्भूतं भवति, तत् तज्ज्योतिः प्राणलिङ्गमिति प्राणापानवायुनिरोधवद्भिः शिवयोगिभिराख्यातं कथितमित्यर्थः।।६।।

अथर्वशिरोपनिषद आणि कठोपनिषदाच्या वचनानुसार प्राणलिंगी स्थलाचे पाच श्लोकात वर्णन करतात—श्रीगुरूंच्या उपदेशाने

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

योगमार्गानुसार मूलाधाराचा निरोध करून प्राणवायूशी अपान वायूला संघटित केल्यामुळे नाभिकंदमध्यात (बेंबीत) जी ज्योती उत्पन्न होते, तीच प्राणलिंग होय, असे प्राणवायू आणि अपानवायूचा निरोध करणाऱ्या शिवयोग्यांनी म्हटले आहे.।।६।।

नन्विदं केन विज्ञातमित्यत्राह—

प्राणो यत्र लयं याति भास्करे तुहिनं यथा।
तत्प्राणलिङ्गमुद्दिष्टं तद्धारी स्यात् तदाकृतिः।।७।।

प्राणः प्राणवायुः, यत्र यस्मिन् परब्रह्ममयशिवलिङ्गे लयं भास्करे तुहिनमिव याति, तस्मात् प्राणलिङ्गमित्युद्दिष्टमुपदिष्टम्, तद्धारी तत्परामर्शी तदाकृतिः तत्स्वरूपः स्यादित्यर्थः। देशकालाद्यचुम्बितत्वेन सामान्याकारेण भासमानचिदहन्तैव प्राणलिङ्गमिति भावः।।७।।

सूर्यकिरणात जसे धुके विरघळून जाते, त्यांप्रमाणे ज्या परशिवलिंगात प्राणवायू विलीन होतो त्यास प्राणलिंग म्हणतात. अर्थात् देशकालभेदविरहित केव्हाही प्रतीत होणारी चिद्अहंता म्हणजे मी चिद्रूप आहे, असा साधकाला होणारा बोधच प्राणलिंग होय. प्राणलिंगाचे अनुसंधान करणाऱ्याला प्राणलिंगी म्हणतात. अर्थात् चिदहंभावना युक्त साधकासच प्राणलिंगी म्हणावे.।।७।।

अथ तल्लिङ्गं केषां स्फुरतीत्यत्राह—

ज्ञानिनां योगयुक्तानामन्तः स्फुरति दीपवत्।
चिदाकारं परब्रह्मलिङ्गमज्ञैर्न भाव्यते।।८।।

चिदाकारं स्फुरणरूपं परब्रह्मलिङ्गं परब्रह्ममयप्राणलिङ्गं योगयुक्तानां शिवयोगयुक्तानां ज्ञानिनां शिवज्ञानिनाम् अन्तः हृदयकमले दीपवत् स्फुरति प्रकाशते, अज्ञैः गुरूपदेशरहितैः प्राकृतैर्न भाव्यते न हृदयङ्गमीक्रियते। हृदये वै ब्रह्म सोमसूर्याग्निमण्डले निवातदीपोपमस्थायि, "हृद्यन्तर्ज्योतिः पुरुषः" इत्याद्युपनिषत्प्रसिद्धम्।।८।।

ते प्राणलिंग कोणाच्या हृदयात स्फुरित होते? तर, ते प्राणलिंग शिवयोगसाधना करणाऱ्या ज्ञानी लोकांच्या मनामध्ये दीपाप्रमाणे प्रकाशमान होते. गुरूपदेश नसलेल्या अज्ञ, प्राकृत लोकांना ते चित्स्वरूप, ब्रह्मरूपी प्राणलिंग जाणवत नाही.।।८।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अथैतादृशप्राणलिङ्गं विहाय बाह्यलिङ्गनिष्ठा मूढा इत्याह—

अन्तःस्थितं परं लिङ्गं ज्योतीरूपं शिवात्मकम्।
विहाय बाह्यलिङ्गस्था विमूढा इति कीर्तिताः।।९।।

अत्र बाह्यलिङ्गमिष्टलिङ्गातिरिक्तप्राकृतलिङ्गपरम्, इष्टलिङ्गस्य चिदानन्दघनत्वेनान्तरत्वादिति भावः।।९।।

अशा प्राणलिंगाची उपासना सोडून केवल बाह्य लिंगाची पूजा करणारे मूढ होत, असे सांगतात—अंतःकरणात ज्योतिरूपाने स्फुरित होणारे शिवस्वरूप असे प्राणलिंग सोडून जे लोक बाह्य (स्थावर) लिंगावर विश्वास ठेवून त्याची उपासना करतात ते अडाणी होत. येथे बाह्यलिंग म्हणजे इष्टलिंग नसून (कारण इष्टलिंग म्हणजे आत्म्याचेच प्रतीक असते) त्या व्यतिरिक्त स्थावरलिंग असा अर्थ समजावा.।।९।।

तस्माद् बाह्यलिङ्गविमुखः सन् चिल्लिङ्गपरामर्श्येव प्राणलिङ्गीत्याह—

संविल्लिङ्गपरामर्शी बाह्यवस्तुपराङ्मुखः।
यः सदा वर्तते योगी प्राणलिङ्गी स उच्यते।।१०।।

बाह्यवस्तुशब्देन बाह्यलिङ्गं तत्पूजासाधनीभूतद्रव्यं च कथ्यते। तत्र विमुखः सन् सदा निरन्तरं संविल्लिङ्गपरामर्शी अभ्यन्तरे चिद्रूपप्राणलिङ्गविचारवान् यः शिवयोगी वर्तते, स शिवयोगी प्राणलिङ्गीति कथ्यत इत्यर्थः।।१०।।

म्हणून बाह्यलिंगाकडे दुर्लक्ष करून चिद्रूपलिंगाचे चिंतन करणारा प्राणलिंगी होय असे म्हटले आहे. बाह्य लिंगाच्या पूजा सामग्रीकडे पाठ फिरवून जो शिवयोगी अंतःस्थित चिद्रूप प्राणलिंगाचे सदैव चिंतन करतो त्याला प्राणलिंगी म्हणावे.।।१०।।

ननु बाह्यलिङ्गादौ वैमुख्यं किंनिबन्धनमित्यत्राह—

मायाविकल्पजं विश्वं हेयं संचिन्त्य नित्यशः।
चिदानन्दमये लिङ्गे विलीनः प्राणलिङ्गवान्।।११।।

विश्वं मायाविकल्पजं मायिकगुणभेदसंजातमिति हेयं त्यजनीयमिति सञ्चिन्त्य सम्यग् विभाव्य नित्यशः सदा चिदानन्दमये सच्चिदानन्दरूपे

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

लिङ्गे प्राणलिङ्गे विलीनो मनोलयवान् प्राणलिङ्गी प्राणलिङ्गवानिति कथ्यत इत्यर्थः।।११।।

खरेच, बाह्यलिंगाशी का विन्मुख व्हावे?—कारण, हे विश्व मायेच्या विकल्पापासून झाले आहे आणि बाह्यलिंगही मायेच्या विकल्पातर्गत असल्यामुळे त्याचा त्याग करणे उचित होय. हे ध्यानात घेऊन जो बाह्य लिंगास सोडून सदैव चिदानंदमय अशा प्राणलिंगात आपल्या मनाचा लय साधतो, त्यास प्राणलिगी असे म्हणावे.।।११।।

ननु चिल्लिङ्गस्य नादबिन्दुकलातीतत्वात् प्राणस्य नादबिन्दुकला-रूपत्वात् कथं तस्य पीठरूपत्वं संभवतीति शङ्कां शमयन् प्राणलिङ्गिस्थलं समापयति—

सत्ता प्राणमयी शक्तिः सद्रूपं प्राणलिङ्गकम्।
तत्सामरस्यविज्ञानात् प्राणलिङ्गीति कथ्यते।।१२।।

सतो भावः सत्तेति, अस्मीत्युत्तमपुरुषान्तर्गतस्फूर्तिरिव चिल्लिङ्गस्य प्राणमयी जीवनभूता शक्तिः, तादृशस्फुरणाभावे जडत्वप्रसङ्गात्, सद्रूपं तादृशस्फुरणवदुत्तमपुरुषमयं प्राणलिङ्गमित्यर्थः। तत्सामरस्यविज्ञानात् तयोः शिवशक्त्योरन्योन्यसामरस्यविज्ञानात् प्राणलिङ्गीति कथ्यत इत्यर्थः।।१२।।

इति प्राणलिङ्गिस्थलम्

चिल्लिग नादबिदूकलातीत आहे तर प्राणाचे स्वरूप नादबिंदुकलारूप आहे. त्याचे पीठरूपत्व कसे संभवते या शंकेचे निरसन असे—'मी कूटस्थ चेतन आहे, निष्क्रिय धाम आहे, अप्रतर्क्य आहे, अविकल आहे, निर्मल आहे, निरवयव आहे' इत्यादी आत्मबोधोपनिषदाच्या वचनानुसार प्रत्येकाच्या अंतःकरणात मी आहे (अहमंस्मि) अशी स्पंदित होणारी स्फूर्तीच प्राणशक्ती होय. प्राणशक्तिविशिष्ट जो अहंबोध आहे, त्यालाच प्राणलिग म्हणतात. अर्थात् 'चिद्रूपोहम्' (मी चैतन्य स्वरूप आहे) असा जो बोध आहे, तोच प्राणलिंग होय. आणि याचे ज्ञान म्हणजेच अहम् रूपी शिव आणि सत्तारूपी शक्ती, या दोहोंच्या सामरस्याचे ज्ञान ज्याला झाले आहे त्याला प्राणलिगी म्हणतात.।।१२।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अथ प्राणलिङ्गार्चनस्थलम्

अथ प्राणलिङ्गिना विधीयमानसकलयोगशास्त्रप्रसिद्धप्राणलिङ्गार्चनप्रकारं सप्तभिः सूत्रैः प्रतिपादयति—

अन्तर्गतं चिदाकारं लिङ्गं शिवमयं परम्।
पूज्यते भावपुष्पैर्यत् प्राणलिङ्गार्चनं हि तत्।।१३।।

हृत्कमलगतं चिदाकारं घटस्य कम्बुग्रीवादिमत्त्वमिव चित्स्फुरणमाकारं स्वरूपं यस्य तादृशं परं सर्वोत्कृष्टं यत् शिवमयं लिङ्गं शिवस्वरूप-विश्वप्राणलिङ्गं भावपुष्पैर् अन्तःकरणवृत्तिविशेषैः पूज्यते, तत् प्राणलिङ्गा-र्चनमिति हि प्रसिद्धमित्यर्थः।।१३।।

आता प्राणलिंगीच्याकडून केल्या जाणाऱ्या, सकल योगशास्त्रात प्रसिद्ध असणाऱ्या प्राणलिंगार्चन प्रकाराचे सात सूत्राद्वारे कथन केले जाते—हृदयकमलात असणारे प्राणलिंग चित्स्वरूप, शिवमय आणि श्रेष्ठ आहे. त्याची भक्तिभावरूपी पुष्पांनी पूजा करणे याला प्राणलिंगार्चन असे म्हणतात.।।१३।।

अथ कुत्र पूजनीयमित्यत्र प्राणलिङ्गाश्रयभूतोर्ध्वहृत्कमलं वर्णयित्वा भावपुष्पैः पूजनीयमित्याह—

अन्तःपवनसंस्पृष्टे सुसूक्ष्माम्बरशोभिते।
मूर्धन्यचन्द्रविगलत्सुधासेकातिशीतले।।१४।।
बद्धेन्द्रियनवद्वारे बोधदीपे हृदालये ।
पद्मपीठे समासीनं चिल्लिङ्गं शिवविग्रहम्।
भावयित्वा सदाकालं पूजयेद् भाववस्तुभिः।।१५।।

अन्तःपवनसंस्पृष्टे प्राणवायुव्याप्ते सुसूक्ष्माम्बरशोभिते अतिसूक्ष्मा-काशविलसिते ब्रह्मरन्ध्रगतपूर्णचन्द्रमण्डलस्रवत्सुधासेकेनातिशीतले प्रतिबद्ध-श्रोत्रादिपञ्चेद्रियनवद्वारे शिवज्ञानप्रदीपे ऊर्ध्वहृदयसदने पद्मपीठे द्वादशदल-कमलकर्णिकायां समासीनं विद्यमानं शिवविग्रहं मङ्गलमूर्तिं चिल्लिङ्गं प्राणलिङ्गं भावयित्वा गुरूपदिष्टप्रकारेण ध्यात्वा भाववस्तुभिर्मानसिक-पदार्थैः सदा पूजयेदित्यर्थः।।१४-१५।।

आता पूजा कोठे करावी? असे म्हणाल तर प्राणलिंगाचा आधार अशा हृदयकमलाचे वर्णन करून तेथे स्थित प्राणलिंगाची भावपुष्पांनी पूजा करावी असे सांगतात—शरीरातर्गत पंचप्राणरूपी वायूने व्याप्त सूक्ष्म आकाशाने सुशोभित झालेल्या ब्रह्मरंध्रस्थित

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

चद्रमडलातून पाझरणाऱ्या अमृतबिंदूंनी शीतल झालेल्या हृदयमदिराला दोन डोळे, दोन कान, दोन नाकपुड्या, मुख आणि मलमूत्राचे दोन मार्ग अशी नऊ इंद्रियरूपी दारे आहेत. ती बंद केल्यावर हृदयमदिराच्या गाभाऱ्यात शिवज्ञानरूपी जो दीप प्रकाशतो, त्याच्या प्रकाशात द्वादशदलहृदयकमलकर्णिकित मंगलमय, चिद्रूप असे प्राणलिंग विराजमान असल्याचे दिसते, अशी भावना धरून श्रीगुरूंनी सांगितल्याप्रमाणे सद्भावरूपी वस्तूंनी त्या प्राणलिंगाची नेहमी पूजा करावी.।।१४-१५।।

अथ तानि वस्तूनि कानीत्यत्राह—

क्षमाऽभिषेकसलिलं विवेको वस्त्रमुच्यते।
सत्यमाभरणं प्रोक्तं वैराग्यं पुष्पमालिका।।१६।।
गन्धः समाधिसम्पत्तिरक्षता निरहङ्कृतिः।
श्रद्धा धूपो महाज्ञानं जगद्भासि प्रदीपिका।।१७।।
भ्रान्तिमूलप्रपञ्चस्य निवेद्यं तन्निवेदनम्।
मौनं घण्टापरिस्पन्दस्ताम्बूलं विषयार्पणम्।।१८।।
विषयभ्रान्तिराहित्यं तत्प्रदक्षिणकल्पना।
बुद्धेस्तदात्मिका शक्तिर्नमस्कारक्रिया मता।।१९।।
एवंविधैर्भावशुद्धैरुपचारैरदूषितैः।
प्रत्युन्मुखमना भूत्वा पूजयेल्लिङ्गमान्तरम्।।२०।।

क्षमैवाभिषेकोदकम्, नित्यानित्यवस्तुविवेक एव वसनम्, सत्यमनमृतवचनमाभरणम्, वैराग्यम् इहामुत्रफलभोगविराग एव कुसुममालिका, चित्तैकाग्रतैव गन्धः, निरहङ्कार एवाक्षताः, विश्वास एव धूपः, विश्वप्रकाशकं महाज्ञानं दीपः। अत्र भ्रान्तिशब्देनाज्ञानं लक्ष्यते, नाहमीश्वर इत्यज्ञानस्य मूलप्रपञ्चस्य शरीराद्यहङ्कारवर्गस्य यन्निवेदनं तन्नैवेद्यम्, मौनं घण्टानादः, तस्य अनाहतनादानुसन्धानहेतुत्वात् । विषयाणां मातृमानमेयात्मकानां फेनादेस्तरङ्गद्वारा समुद्रैकलोलीभाव इव मेयं माने मानं मातरि तं परमप्रमातरि ज्योतिर्लिङ्गे लयचिन्तनमेव पूगपर्णचूर्णात्मकताम्बूलसमर्पणमित्यर्थः। विषयाणां शब्दादीनां शिवापेक्षया भेदभ्रान्तिराहित्यं प्रदक्षिणम्, बुद्धेस्तदात्मिका लिङ्गरूपता शक्तिः सामर्थ्यं बुद्धिवृत्तेर्लिङ्गे लय इत्यर्थः, स च नमस्कारः। एवंविधैर्भावशुद्धै-

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

रनिन्दितैरुपचारैरबहिर्मुखमनाः सन् आन्तरं चिल्लिङ्गं प्राणलिङ्गं पूजयेदित्यर्थः ।।१६-२०।।

इति प्राणलिङ्गार्चनस्थलम्

प्राणलिंगाच्या पूजनासाठी भावरूप वस्तू कोणत्या? त्या अशा हे ज्योतिर्मय प्राणलिंग भावनागम्य असल्यामुळे त्याचा अर्चना सुद्धा भावनामय वस्तूंनीच केली जाते, ती अशी—प्राणलिंगाच्या अभिषेकासाठी क्षमा (सहनशीलता) हेच जल, नित्य आणि अनित्य वस्तूचा विवेक हेच त्याला नेसविण्याचे वस्त्र, सर्वदा सत्य बोलणे हेच त्याचे अलंकार व आभूषणे, वैराग्य हीच त्याला घालण्याची पुष्पमाला, चित्त शांत झाल्यावर समाधी लागणे हेच गंधसमर्पण होय. निरहंकार भावना हीच अक्षता, दृढ श्रद्धा हाच धूप आणि आत्मज्ञान होणे हाच दीप होय. भ्रांतीची निवृत्ती होणे हेच नैवेद्य दाखविणे होय. लौकिक व्यवहारात मौनवृत्ती धारण करणे हाच घटानाद होय. विषयाचे समर्पण करणे हाच तांबूल होय. विश्व आणि शिव, तसेच मी आणि शिव भिन्न आहोत अशा प्रकारच्या भेदबुद्धीची निवृत्ती होणे हीच प्रदक्षिणा होय. आणि त्या अभेदबुद्धीचा शेवटी त्या ज्योतिर्लिंगात लय होणे हीच नमस्कारक्रिया होय. अशा प्रकारच्या उपचारांनी व पवित्र अशा भावपुष्पांनी अंतर्मुखी होऊन अतःस्थित प्राणलिंगाची पूजा करावी. हीच प्राणलिंगार्चना होय.।।१६-१७-१८-१९-२०।।

अथ शिवयोगसमाधिस्थलम्

अथ "योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः" इति योगसूत्रानुसारेण प्राणलिङ्गार्चनलभ्यशिवयोगसमाधिस्थलं निरूपयति—

अन्तःक्रियारतस्यास्य प्राणलिङ्गार्चनक्रमैः।
शिवात्मध्यानसम्पत्तिः समाधिरिति कथ्यते।।२१।।

प्राणलिङ्गार्चनक्रमैः पूर्वोक्तप्राणलिङ्गार्चनप्रकारैः, अन्तरङ्गक्रियातत्परस्यास्य प्राणलिङ्गिनः शिवात्मध्यानसम्पत्तिः लिङ्गाङ्गरूपशिवजीवसमानसामरस्यानुसन्धानसम्पत्तिरेव समाधिरित्यर्थः।।२१।।

'चित्तवृत्तीचा निरोध म्हणजे योग' या योगसूत्रानुसार केलेल्या प्राणलिंगपूजेने प्राप्त होणाऱ्या समाधिस्थलाचे वर्णन करतात—प्राणलिंगाच्या पूर्वोक्त पूजा प्रकारांनी अंतरंगक्रिया करण्यात तत्पर

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

असणाऱ्या या प्राणलिंगी पुरुषाच्या लिंगांगरूप शिवजीव सामरस्यानुसंधान-संपत्तीला शिवयोगसमाधी असे म्हणतात.।।२१।।

तत्कथमित्यत्र—"योऽसावसौ पुरुषः सोऽहम्" इति श्रुत्यनुसारेणाजपा-गायत्रीरूपशिवयोगेन समाधिं कथयति—

सर्वतत्त्वोपरिगतं सच्चिदानन्दभासुरम् ।
स्वप्रकाशमनिर्देश्यमवाङ्मानसगोचरम्।।२२।।
उमाख्यया महाशक्त्या दीपितं चित्स्वरूपया ।
हंसरूपं परात्मानं सोऽहंभावेन भावयेत्।
तदेकतानतासिद्धिः समाधिः परमो मतः।।२३।।

सर्वतत्त्वोपरिगतं भूम्यादिशिवान्तषट्त्रिंशत्तत्त्वोत्तीर्णत्वेन विद्यमानं सच्चिदानन्दरूपेण प्रकाशमानम्, "यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह" इति श्रुतेर्वाङ्मनोमार्गातीतम् अत एवेदमेतादृगिति लक्षितुमशक्यं प्रत्यक्षादिमानान्तरागम्यं शुक्लपटन्यायेन स्वसमवेतस्फुरणरूपोमाख्यमहा-शक्तिप्रदीपितं हंसरूपं परमात्मानं सोऽहंभावेन स एवाहमिति भावेन भावयेत्। तदेकतानतासिद्धिः तयोर्जीवेश्वरयोरैकत्वसिद्धिः, परमः समाधिः उत्कृष्टसमाधिरिति मतं संमतमित्यर्थः। तच्छब्दवाच्यस्य षडध्वोत्तीर्णत्वेन प्रसिद्धस्य परमात्मनः, "अहंशब्दस्य रूढत्वाल्लोके जीवात्मवस्तुनि" इति सूतसंहितोक्तेः, अकारादिहकारान्तवर्णाध्वपाशबद्धस्य जीवात्मनश्च "अहमस्मि प्रथमजा" इति, "अहमादिर्हि देवानाम्", "अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते" इत्यादिप्रमाणबलात् "अकारः शिव आख्यातो हकारः शक्तिरुच्यते" इति वक्ष्यमाणप्रकारेण षडध्वकारणीभूतानाहतनादलक्षणपरावाक्शक्तिमया-स्मद्रूपसमाविष्टात्मकत्वानतिरिक्तत्वेन तादात्म्यचिन्तनं समाधिरिति भावः ।।२२-२३।।

'जो हा पुरुष आहे तो मी आहे' असे श्रुतिवचन आहे. अजपा गायत्रीरूप शिवयोगाने समाधीचे वर्णन करतात—सर्व तत्त्वाच्या (पृथ्वी पासून शिवापर्यंत असणाऱ्या ३६ तत्त्वाच्या) पलीकडे असणारा, सत्, चित् आणि आनंद ह्यामुळे प्रकाशमान दिसणारा, आपल्याच प्रकाशाने प्रकाशित होणारा, ज्याचे वर्णन वाचेने करता येत नाही अथवा मनाने ज्याचे आकलन करता येत नाही, उमा नावाच्या चित्स्वरूप महाशक्तीमुळे जो प्रकाशित दिसतो, तो हंसस्वरूप असून परमेश्वर आहे. असा 'तोच मी' अशा भावनेने त्यास जाणावे. जीवाने शिवाशी साधलेली एकतानता-सिद्धी तीच

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

परमसमाधी होय, असे मानले जाते. अर्थात् अकारादी हकारान्त असलेल्या वर्णाध्वरूप पाशानी बद्ध असलेला जीव अहम् अहम् असे म्हणत असतो; परंतु त्या जीवाने तत् शब्द वाच्य असणाऱ्या षडध्वातीत अशा परमेश्वराचे सोऽहं-भावाने तादात्म्यचिंतन करणे ह्यालाच शिवयोग समाधी असे म्हणतात.।।२२-२३।।

अथ— "प्राणरूप इह जीव उच्यते लिङ्गरूप इति शङ्करः स्मृतः। यस्तदैक्यमिति वेदितानयोः प्राणलिङ्गविदसौ शिवयोगी।।" इति शङ्करसंहितावचनानुसारेण समाधिस्थस्य लक्षणमाह—

परब्रह्म महालिङ्गं प्राणो जीवः प्रकीर्तितः।
तदेकभावमननात् समाधिस्थः प्रकीर्तितः।।२४।।

महालिङ्गमेव परब्रह्म परब्रह्माख्यपरशिवतत्त्वमिति प्रोक्तम्, "प्राणारूढो भवेज्जीवः" इत्यागमोक्तेः प्राणः प्राण एव जीव इति प्रोक्तः। तदेकभावमननाद् लिङ्गप्राणमधिकृत्य विद्यमानयोर्लिङ्गाङ्गिनोः शिवजीवयोः समानसमरसैक्यचिन्तावान् समाधिस्थः शिवयोगसमाधिनिष्ठ इति प्रकीर्तित इत्यर्थः।।२४।।

शंकरसंहितेच्या वचनानुसार येथे 'प्राणरूप जीव आहे आणि लिंगरूप शिव आहे. या दोहोंचे ऐक्य जाणणारा तोच प्राणलिंगाचा ज्ञाता शिवयोगी होय', असे समाधिस्थलाचे लक्षण सांगतात— महालिंगच परब्रह्मस्वरूप आहे आणि प्राणालाच जीव म्हणतात. महालिंग आणि प्राण अथवा लिंगांगरूप शिवजीवांच्या सामरस्य ऐक्याचे चिंतन करणाऱ्या पुरुषास समाधिनिष्ठ शिवयोगी असे म्हणतात.।।२४।।

अथ "गुदमवष्टभ्याधाराद्वायुमुत्थाप्य स्वाधिष्ठानं त्रिः प्रदक्षिणीकृत्य मणिपूरकं गत्वा अनाहतमतिक्रम्य विशुद्धौ प्राणलिङ्गं निरुध्य आज्ञामनुयाद् ब्रह्मरन्ध्रं ध्यायन् त्रिमात्रोऽहमिति सर्वदा ध्यायेत्" इति हंसोपनिषद्वचनानुसारेण सकलसमाधिं प्रकाशयति—

अन्तः षट्चक्ररूढानि पङ्कजानि विभावयेत्।
ब्रह्मादिस्थानभूतानि भ्रूमध्यान्तानि मूलतः।।२५।।
भ्रूमध्यादूर्ध्वभागे तु सहस्रदलमम्बुजम्।
भावयेत्तत्र विमलं चन्द्रबिम्बं तदन्तरे।।२६।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सूक्ष्मरन्ध्रं विजानीयात् तत्कैलासपदं विदुः।
तत्रस्थं भावयेच्छम्भुं सर्वकारणकारणम्।।२७।।

अन्तः जीवेश्वराश्रयीभूतसूक्ष्मशरीरमध्ये, षट्चक्ररूढानि षट्चक्रोत्पन्नानि पङ्कजानि षट्कमलानि मूलत आधारमारभ्य भ्रूमध्यान्तानि आज्ञाचक्रान्तानि ब्रह्मादिस्थानभूतानि भावयेद् गुरूपदिष्टप्रकारेण चिन्तयेत्। भ्रूमध्यादूर्ध्वभागे तु ब्रह्मरन्ध्र इत्यर्थः, सहस्रदलमम्बुजं सहस्रशक्तिदलालङ्कृतकमलं भावयेत्। तत्र तत्कमलमध्ये विमलं निर्मलं चन्द्रबिम्बं सोममण्डलं भावयेत्। एतदन्तरे तच्चन्द्रमण्डलमध्ये सूक्ष्मरन्ध्रं वालाग्रसमानातिसूक्ष्मरन्ध्रं विजानीयात् उपदेशाज्जानीयात्। तत् तत्सूक्ष्मरन्ध्रं कैलासपदं कैलासस्थानं सद् विदुः शास्त्रज्ञा जानीयुः। तत्रस्थं शम्भुं शिवं सर्वकारणकारणं ब्रह्मादिकारणेशानामपि कारणीभूतं सन्तं भावयेत् स्वात्माभेदेन ध्यायेदित्यर्थः ।।२५-२७।।

'गुदस्थानच्या आधारचक्रापासून अपानवायूला उठवून स्वाधिष्ठानचक्रास तीन वेळा प्रदक्षिणा घालून मणिपूर चक्रातून पुढे अनाहतचक्रास ओलांडून विशुद्धचक्रात प्राणलिंगास निरोध करून आज्ञाचक्राला अनुसरून जात असता ब्रह्मरंध्राचे ध्यान करीत त्रिमात्रा (ॐ) मी आहे असे चिंतन करावे', असे हंसोपनिषदाचे वचन आहे. त्यानुसार सकल (सगुण) समाधीचे वर्णन करतात—जीव आणि शिवाला आश्रय अशा सूक्ष्म शरीरामध्ये आधारस्थानापासून भ्रूमध्यापर्यंत सहा स्थानी सहा चक्रे असतात. गुदस्थानात आधारचक्र, लिंगस्थानी स्वाधिष्ठान चक्र, नाभिस्थानी मणिपूरचक्र, हृदयस्थानात अनाहतचक्र, कंठस्थानामध्ये विशुद्धिचक्र आणि भ्रूमध्यस्थानी आज्ञाचक्र अशी सहा स्थानात सहा चक्रे असतात. त्याठिकाणी क्रमाने चार, सहा, दहा, बारा, सोळा आणि दोन अशा पाकळ्याची कमले असतात. भ्रूमध्यावर असलेल्या ब्रह्मरंध्रामध्ये सहस्रदल कमल असते, असे गुरूने केलेल्या उपदेशानुसार भावना धरून त्या सहस्रदल कमलाच्या मध्यावर निर्मल चंद्रमंडल असल्याचे समजावे. त्या चंद्रमंडळाच्या मध्यावर केशाग्रप्रमाण रंध्र असल्याचे समजावे. त्यालाच शास्त्रज्ञ कैलासस्थान म्हणून ओळखतात. सकल देवांना कारण असा शिव त्या स्थानी विराजमान असतो. आणि तो मीच आहे, अशा प्रकारे शिवाशी आपला अभेदभाव असल्याचे चिंतन करावे, हीच सकल समाधी होय.।।२७।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अथाधारस्वाधिष्ठानगतपृथ्वीजलसंघट्टनेन मणिपूरकाख्यनाभिकन्दमुत्पत्य तदुद्भूतानाहताख्यहृदयद्वादशदलकमले तपिन्यादिद्वादशकलायुक्तसूर्यमण्डल भाति। तदुपरि षोडशदलयुक्तविशुद्धिकमले अमृतादिषोडशकलायुक्तचन्द्र-मण्डलं विभाति। तदुपरि द्विदलयुक्ताज्ञाचक्रे ज्वलिन्यादिदशकलात्मकवह्नि-मण्डलं प्रकाशते। तदुपरि सहस्रदलालङ्कृतब्रह्मचक्रे तदष्टात्रिंशत्कलोपेत-कुण्डलीमण्डलोपरि लिङ्गाङ्गसामरस्यलक्षणशिवयोगसमाधिसम्पन्नस्य प्राण-लिङ्गिनः शिवानन्दव्यतिरेकेण मायिकसुखानुभवो नास्तीति सूत्रद्वयेनाह—

बहिर्वासनया विश्वं विकल्पार्थं प्रकाशते।
अन्तर्वासितचित्तानामात्मानन्दः प्रकाशते।।२८।।

इदमिति बहिर्मुखेन संस्कारेण सर्वं जगत् संकल्पविकल्पार्थं प्रकाशते। अहमित्यन्तर्मुखे परिमिलितचित्तानाम् आत्मानन्दः शिवानन्द एव प्रकाशत इत्यर्थः।।२८।।

आधार स्वाधिष्ठान चक्रापर्यंत असलेले पृथ्वीमंडल व जलमंडलाचे ध्यान करून प्राणवायूसघटना केली असता नाभिस्थानी असलेल्या मणिपूरक चक्रातील कमलदल विकसित होते. त्याच्या वरच्या बाजूस अनाहत चक्रातील बारा दळाच्या कमलात तापिन्यादी बारा कलांनी सूर्यमंडल प्रकाशते. त्याच्याहून वर कंठस्थानात विशुद्धिचक्रात षोडशदलकमलात अमृतादिषोडश-कलासंयुक्त चंद्रमंडल प्रकाशते. त्याच्या वरील बाजूस भ्रूमध्यात दोन दलाच्या आज्ञाचक्रात 'ज्वलिनि' इत्यादी दहा कलायुक्त अग्नि-मंडल प्रकाशते. त्यावर ऊर्ध्वभागी ब्रह्मचक्रात प्रकाशणाऱ्या सहस्रदलकमलात अडतीस कलांनी युक्त सूक्ष्मकुंडली या महाशक्ति-पीठावर लिंगांग सामरस्यलक्षण शिवयोगसमाधी प्राप्त करून घेतलेल्या प्राणलिंगी पुरुषास केवल शिवानंदाशिवाय अन्य मायिक सुखाचा अनुभव नसतो, हे दोन श्लोकांत सांगतात—बाह्य वासना संस्काराने पाहू लागले असता हे सर्व जग संकल्प विकल्पांनी भरलेले दिसून येते. अंतर्मुख दृष्टीने पाहाणाऱ्या शिवयोग्यांना आत्मानंद अनुभवास येतो.।।२८।।

ननु बहिर्वासना कथं गच्छतीति तत्राह—

आत्मारणिसमुत्थेन प्रमोदमथनात् सुधीः।
ज्ञानाग्निना दहेत् सर्वं पाशजालं जगन्मयम्।।२९।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सुधीः प्राणलिङ्गी प्रमोदमथनात् शिवसुखस्य विचाराद् आत्मारणिसमुत्थेन ज्ञानाग्निना शिवाभेदज्ञानाग्निना सर्वं जगन्मयं मलमायादिपाशसमूहं दहेद् भस्मीकुर्यादित्यर्थः।।२९।।

बाह्य वासना कशाने कमी होते? ज्ञानी मनुष्याने (प्राणलिंगीने) आत्मारूप अरणीवर शिवानंदविचाररूपी घर्षणाने उत्पन्न झालेल्या शिवाद्वैत-ज्ञानरूप अग्नीने जगातील सर्व मलमायादी पाश जाळून टाकावे. म्हणजेच ज्ञानी मनुष्याने आत्मस्वरूपाचे यथार्थ ज्ञान करून घेऊन त्रैलोक्याचा पसारा खोटा (मायिक) आहे असे ओळखावे.।।२९।।

अथ शिवध्यानमहत्त्वं सूत्रद्वयेन कथयन् शिवयोगसमाधिस्थलं समापयति—

संसारविषवृक्षस्य पञ्चक्लेशपलाशिनः।
छेदने कर्ममूलस्य परशुः शिवभावना।।३०।।

धर्माधर्मलक्षणकर्ममूलस्य अविद्यादिपञ्चक्लेशलक्षणपर्णवतो जननमरणलक्षणसंसारविषवृक्षस्य छेदने शिवध्यानमेव परशुरित्यर्थः।।३०।।

शिवध्यानाचे महत्त्व दोन श्लोकात सागून शिवयोग समाधिस्थलाचे वर्णन पूर्ण करतात—मनुष्याचे धर्माधर्म अर्थात् पुण्यपापाची कर्मे हीच ज्याची मुळे आहेत अशा जननमरणरूपी संसाराच्या विषवृक्षाला अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष आणि अभिनिवेश ही पचक्लेशात्मक पाने आहेत. या संसारवृक्षाचा मुळापासून नाश करण्यासाठी शिवध्यानाची कुऱ्हाडच योग्य आहे. अर्थात् शिवध्यानानेच ससारक्लेशांचा नाश होतो.।।३०।।

अज्ञानराक्षसोन्मेषकारिणः संहृतात्मनः।
शिवध्यानं तु संसारतमसश्चण्डभास्करः।।३१।।

अज्ञानलक्षणराक्षसनयनोन्मीलनकारिणो निबिडतरसंसारान्धकारस्य शिवध्यानं चण्डभास्करः प्रचण्डमार्तण्ड इत्यर्थः।।३१।।

इति शिवयोगसमाधिस्थलम्

संसाराच्या अंधारात अज्ञानरूप राक्षसांचा धुमाकूळ होऊन आत्मस्वरूप ज्ञानाचा लोप होतो. त्या संसाराच्या अंधारास नष्ट करण्यासाठी शिवध्यान सूर्यासारखे तेजस्वी आहे. अर्थात अज्ञानावरणाने मनुष्यात राक्षसीवृत्ती जागृत होतात. त्यांचा नाश होण्यासाठी शिवध्यानाची गरज असते.।।३१।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अथ लिङ्गनिजस्थलम्

अथैवंविधशिवयोगसम्पन्नस्य प्रत्यक्षीभूतलिङ्गनिजस्थलं निरूपयति—

स्वान्तस्थशिवलिङ्गस्य प्रत्यक्षानुभवस्थितिः।
यस्यैव परलिङ्गस्य निजमित्युच्यते बुधैः।।३२।।

स्वात्मनि तादात्म्येन स्थितस्यं शिवलिङ्गस्य यया प्रत्यक्षानुभवस्थितिर्देशकालाकारकृतसंकोचाभावेन सामान्यतोऽहमिति प्रत्यक्षानुभवस्थितिरस्ति, सैव परलिङ्गस्य महालिङ्गस्य निजमिति निजस्वरूपमिति बुधैरात्मतत्त्वज्ञानिभिर् उच्यते कथ्यत इत्यर्थः।।३२।।

अशा प्रकारच्या शिवयोगसंपन्न प्राणलिंगी शिवयोग्याच्या प्रत्यक्षभूत लिंगनिजस्थलाचे स्वरूप सांगतात—आपल्या अंतरंगात तादात्म्याने असलेल्या परशिवलिंगाची देशकालआकारादीविरहित महालिंग मीच आहे, अशी प्रत्यक्ष अनुभूती ज्याला आलेली असते अशा प्राणलिंगीला विद्वान लोक लिंगनिजस्थली असे म्हणतात. अर्थात् महालिंगच आपले निजस्वरूप होय असे समजणेच लिंगनिजस्थल होय.।।३२।।

अथ तत्स्वरूपं सूत्रद्वयेन प्रकटयति—

ब्रह्मविष्ण्वादयो देवाः सर्वे वेदादयस्तथा।
लीयन्ते यत्र गम्यन्ते तल्लिङ्गं ब्रह्म केवलम्।।३३।।

ब्रह्मविष्णुप्रभृतिदेवा वेदागमपुराणादिशब्दसमूहाश्च यत्र लयं गच्छन्ति पुनः प्रकाशयन्ति, तद् लिङ्गं लिङ्गशब्दाभिधेयं केवलं ब्रह्म ब्रह्मैवेत्यर्थः।।३३।।

त्याचे स्वरूप दोन श्लोकांत सांगतात—ब्रह्मा, विष्णू आदी देवदेवता आणि वेदपुराणादी सकलविद्या ज्यात लय पावतात व पुन्हा ज्याच्यातून उत्पन्न होतात त्या परशिवब्रह्माला लिंग असे म्हणतात.।।३३।।

ननु, लिङ्गशब्दाभिधेयं विश्वोत्पत्तिलयस्थानं ब्रह्मैव चेत्, तच्छिवस्वरूपं वा तद्व्यतिरिक्तं वेत्यत्राह—

चिदानन्दमयः साक्षाच्छिव एव निरञ्जनः।
लिङ्गमित्युच्यते नान्यद् यतः स्याद्विश्वसम्भवः।।३४।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

यतो ब्रह्मस्वरूपलिङ्गाद् विश्वसंभवो विश्वोत्पत्तिः स्यात्, तल्लिङ्गं ब्रह्मस्वरूपलिङ्गं चिदानन्दमयः सच्चिदानन्दस्वरूपः, निरञ्जनः दोषरहितः, साक्षात् प्रत्यक्षीभूतः शिव एवेत्युच्यते नान्यत्, अन्यद्वस्तु नोच्यत इत्यर्थः।।३४।।

विश्वोत्पत्ती व लयाला कारणीभूत असणारे, लिंग शब्दाने वाच्य परब्रह्म शिवस्वरूपच आहे की त्यापेक्षा वेगळे आहे? तर, ज्या परब्रह्मस्वरूप लिंगापासून विश्वाची उत्पत्ती होते ते सच्चिदानंदस्वरूप व त्रिमलदोषरहित (निरंजन) असून साक्षात् शिवच आहे. त्या लिंगाशिवाय अन्य काही नाही.।।३४।।

अथ निष्कर्षमाह—

बहुनात्र किमुक्तेन लिङ्गमित्युच्यते बुधैः।
शिवाभिधं परं ब्रह्म चिद्रूपं जगदास्पदम्।।३५।।

अत्र अस्मिन् विषये बहुभाषणेन किम्? जगदाधारभूतस्फुरणस्वभावं परब्रह्मैव शिवाभिधं परशिवाभिधानं लिङ्गं निजलिङ्गमिति बुधैः शास्त्रज्ञैरुच्यत इत्यर्थः।।३५।।

यावरून निर्णय असा की, अधिक काय सांगावे? जगाला आधारभूत व स्फुरणस्वरूप असणारे परब्रह्मच परशिव असून त्यालाच ज्ञानी लोक निजलिंग असे म्हणतात.।।३५।।

मायिकवेदान्तमतसिद्धं लिङ्गं निजलिङ्गं न भवतीति सूत्रद्वयेन प्रतिपादयति—

वेदान्तवाक्यजां विद्यां लिङ्गमाहुस्तथाऽपरे।
तदसज्ज्ञेयरूपत्वाल्लिङ्गस्य ब्रह्मरूपिणः।।३६।।

वेदान्तवाक्यजां "प्रज्ञानं ब्रह्म, अहं ब्रह्मास्मि, तत्त्वमसि, अयमात्मा ब्रह्म" इत्यादिवेदान्तवाक्यप्रकाशितां विद्यां तथा तत्प्रकाशकं निजलिङ्गं सद् अपरे वेदान्तज्ञानिन आहुः, तत् तद्वेदान्तवाक्यप्रकाशितज्ञानलिङ्गं ब्रह्मरूपिणः परब्रह्मस्वरूपिणो लिङ्गस्य ज्ञेयरूपत्वाद् निजलिङ्गरूपचिदहं-प्रकाशवेद्यत्वात्, असद् अप्रशस्तमित्यर्थः, प्रमाणानां प्रमातृभित्तिलग्नत्वेनैव प्रमेयप्रकाशकत्वनियमात्, अन्यथा बौद्धमतप्रवेशापत्तेः, ब्रह्मलिङ्गस्य प्रमेय-पदप्रविष्टत्वेन प्रमात्रन्तरसापेक्षत्वादिति।।३६।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

मायिक वेदांताच्या मताने सिद्ध असे जे लिंग आहे ते निजलिंग होऊ शकत नाही, या विषयीचे प्रतिपादन पुढील दोन श्लोकांत करतात—अन्य काही लोक वेदांतवाक्यापासून उत्पन्न झालेल्या, अहंब्रह्मास्मि, प्रज्ञानं ब्रह्म, तत्त्वमसि, अयमात्मा ब्रह्म इत्यादी वाक्यांतून व्यक्त झालेल्या विद्येलाच लिंग म्हणतात. परंतु ते योग्य नाही; कारण परब्रह्मस्वरूपी लिंगाला जाणण्यासाठी विद्या हे साधन असल्यामुळे त्या विद्येला लिंग म्हणणे योग्य नाही. तर निजलिंग हे स्वयंसिद्ध असून त्याला प्रमाणाची गरज नाही. त्याचे स्वरूप अनुभवसिद्ध असते.।।३६।।

अथ मतान्तरं निराकरोति—

अव्यक्तं लिङ्गमित्याहुर्जगतां मूलकारणम्।
लिङ्गी महेश्वरश्चेति मतमेतदसङ्गतम्।।३७।।

जगतां मूलकारणमव्यक्तं मायातत्त्वं लिङ्गमित्याहुः, महेश्वरो लिङ्गी चेति लिङ्गवानित्याहुः। एतन्मतम् "मायां तु प्रकृतिं विन्द्यान्मायिनं तु महेश्वरम्" इति श्वेताश्वतराणां मतम्, असङ्गतं प्राणलिङ्गिनामसम्मतम्, प्रकृतेर्जडत्वेन हेयकोटिप्रविष्टत्वादिति।।३७।।

काही लोक प्रपंचाच्या लयगमनास कारणीभूत असणाऱ्या प्रकृतीलाच लिंग आणि महेश्वराला लिंगी असे श्वेताश्वतर उपनिषदातील वचनाचा आधार घेऊन मानतात, हे योग्य नाही. कारण प्रकृती जड व मायारूप असल्यामुळे हेय असून ती निजलिंग होऊ शकत नाही.।।३७।।

अथ— "न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः। तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति।।" इति कठवल्लीश्रुत्यनुसारेण प्राणलिङ्गिनां सम्मतं निजलिङ्गस्वरूपं सूत्रद्वयेन प्रतिपादयति—

न सूर्यो भाति तत्रेन्दुर्न विद्युन्न च पावकः।
न तारका महालिङ्गे द्योतमाने परात्मनि।।३८।।

परात्मनि परमात्मनि महालिङ्गे द्योतमाने सति तत्र तस्मिन् महाप्रकाशे न सूर्यः सूर्यो न भाति, नेन्दुः चन्द्रो न भाति, पावको न भाति, विद्युच्च न भाति, नक्षत्राणि च न भान्ति।।३८।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

आता कठोपनिषदातील प्रमाणानुसार निजलिंगस्वरूपाचे वर्णन करतात—साक्षात् परब्रह्म स्वरूप असे ज्योतिर्मय महालिंग स्वयंप्रकाशाने तळपत असताना त्या प्रकाशापुढे सूर्याचा प्रकाश असो, चंद्राचा प्रकाश असो, विजेचा, अग्नीचा अथवा नक्षत्राचा प्रकाश असो ते सर्व फिके पडतात. कारण ते सर्व त्यां महालिंगाला प्रकाशित करीत नसून त्या महालिंगाच्याच प्रकाशाने ते प्रकाशित होऊन जगाला प्रकाश देतात.।।३८।।

तर्हि तेषां भासनं कथमित्यत्राह—

ज्योतिर्मयं परं लिङ्गं श्रुतिराह शिवात्मकम्।
तस्य भासा सर्वमिदं प्रतिभाति न संशयः।।३९।।

शिवात्मकं परं लिङ्गं महालिङ्गमेव ज्योतिर्मयमन्यानपेक्षप्रकाशरूपम्। तस्मात् तस्य भासा ज्योतिर्लिङ्गप्रकाशेनैव इदं सर्वं सूर्यचन्द्रादिकं सर्वं प्रतिभाति। अत्र सन्देहो नास्तीति कठवल्लीश्रुतिराहेत्यर्थः। अयं भावः— वह्न्यर्कसोमानां मातृमानमेयात्मकत्रिपुटीमयप्रपञ्चरूपत्वाद् एतेषां प्रकाशो महालिङ्गप्रकाशाधीन इति सिद्धत्वेन पुनस्तन्महालिङ्गं वेदान्तजन्यज्ञान-प्रकाश्यमित्यङ्गीकृतं चेत्, पराधीनप्रकाशत्वेनात्यन्तजडत्वप्रसङ्गात्। अप्रमेयं स्वप्रकाशं वस्तु निजलिङ्गशब्दार्थः। अस्मन्मते निगमागमादिप्रमाणानां स्वशक्तिमयत्वेन स्वसंवेद्यत्वान्न दोष इति।।३९।।

म्हणून निगमागम आणि शास्त्रेही सांगतात की, शिवस्वरूप लिंग हे सर्वश्रेष्ठ व ज्योतिर्मय आहे. ते स्वयंप्रकाशी असून त्याच्या तेजानेच सूर्यचंद्रादी सर्व विश्व प्रकाशमान झाले आहे. महालिंगाचे हे ज्ञान वेदशास्त्रादिकाद्वारे होत असल्यामुळे महालिंग हे निगमागमादिकाद्वारे प्रकाशित होते असे म्हणावे लागेल. परंतु वीरशैव तत्त्वज्ञानानुसार निगमागमही त्या महालिंगाचे शक्तिस्वरूप असल्यामुळे त्यापासून होणारे ज्ञान हे महालिंग-स्वरूपाचेच होय. कारण वीरशैव तत्त्वज्ञानानुसार शिव हा शक्तियुक्त मानला गेल्यामुळे निगमागम हे महालिंगाचे शक्तिस्वरूपच होत.।।३९।।

अथ सूत्रद्वयेन लिङ्गमहत्त्वमुक्त्वा निजलिङ्गस्थलं समापयति—

लिङ्गान्नास्ति परं तत्त्वं यदस्माज्जायते जगत्।
यदेतद्रूपतां धत्ते यदत्र लयमश्नुते।।४०।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

यत्र लिङ्गे यतो यस्मात् कारणाद् यज्जगज्जायते उत्पद्यते, यज्जगद् एतद्रूपतां स्थितिरूपतां धत्ते दधाति, यज्जगद् लयं संहारम् अश्नुते अनुभवति, तस्मात् कारणाद् अस्माल्लिङ्गाद् अन्यानपेक्षभासमानस्वप्रकाशमयनिजलिङ्गात् परं तत्त्वं नास्ति।।४०।।

आता दोन श्लोकात लिंगाचे महत्त्व सांगून लिंगनिजस्थलाचे वर्णन संपवितात—ज्या लिंगापासूनच सर्व जग उत्पन्न झाले आहे, ज्यापासून जगाचे रक्षण होते आणि ज्याच्यात शेवटी सर्व जग लय पावते, अशा स्वयंप्रकाशमान निजलिंगापेक्षा श्रेष्ठ तत्त्व दुसरे कोणतेही नाही.।।४०।।

तस्माल्लिङ्गं परं ब्रह्म सच्चिदानन्दलक्षणम्।
निजरूपमिति ध्यानात् तदवस्था प्रजायते।।४१।।

तस्मात् सच्चिदानन्दस्वरूपं परब्रह्मैव निजरूपं लिङ्गमिति ध्यानात् चिन्तनात् तदवस्था लिङ्गमेव निजमित्यवस्था प्रजायते प्रकाशत इत्यर्थः।।४१।।

इति लिङ्गनिजस्थलम्

यास्तव लिंग हे परब्रह्म आहे. ते सत्, चित् आणि आनद स्वरूपाचे आहे. हे लिंग माझेच (निज) रूप आहे, असे ध्यान केले म्हणजे लिंगमय अवस्था प्राप्त होते. म्हणजेच ध्यान करणारा मनुष्य लिंगनिजावस्थेला प्राप्त होतो.।।४१।।

अथाङ्गलिङ्गस्थलम्

अथ लिङ्गनिजाङ्गिनमङ्गलिङ्गिनं सूत्रद्वयेन निरूपयति—

ज्ञानमङ्गमिति प्राहुर्ज्ञेयं लिङ्गं सनातनम्।
विद्यते तद्द्वयं यस्य सोऽङ्गलिङ्गीति कीर्तितः।।४२।।

ज्ञानं शिवज्ञानवान् जीवः, अङ्गम् अङ्गमिति प्राहुरित्यर्थः। ज्ञेयं तेन शिवज्ञानवतानेन साक्षात्करणीयं वस्तु सनातनं नित्यं लिङ्गमिति प्राहुः, "द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया" इति श्रुतेः। एतद्द्वयम् अङ्गलिङ्गद्वयं यस्य प्राणलिङ्गिनो वर्तते, सोऽङ्गलिङ्गी कीर्तित इत्यर्थः।।४२।।

लिंगनिजस्थलावस्थेला प्राप्त झालेल्या प्राणलिंगीने अंगलिंगी व्हावे असे दोन श्लोकात सांगतात—शिवज्ञानसंपन्न जीवाला अंग म्हणतात. जाणून घ्यावयाच्या वस्तूला लिंग म्हणतात. शिवज्ञानमय

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अंग म्हणजे जीव आणि लिंग या दोहोचे ज्ञान ज्या प्राणलिंगाला असते त्याला अंगलिंगी असे म्हणतात.।।४२।।

अथैवं चेद् भेदवादिमतप्रवेशो जात इत्यत्राह—

अङ्गे लिङ्गं समारूढं लिङ्गे चाङ्गमुपस्थितम्।
एतदस्ति द्वयं यस्य स भवेदङ्गलिङ्गवान्।।४३।।

अङ्गे जीवात्मनि लिङ्गं शिवलिङ्गं समारूढं सामरस्येनास्ति, लिङ्गे शिवलिङ्गे अङ्गं जीव उपस्थितं सामरस्येनास्ति। एतद्द्वयं यस्यास्ति बीजाङ्कुरन्यायेनैवंविधज्ञानद्वयं यस्य प्राणलिङ्गिनोऽस्ति, सोऽङ्गलिङ्ग-वानित्यर्थः।।४३।।

अंगलिंगस्थलाचा असा अर्थ केल्यास द्वैतवाद निर्माण होतो, याविषयी सांगतात—अंगात (जीवात) लिंग सामरस्याने असते व लिंगामध्ये अंग (जीव) सुद्धा समरस भावाने असतो. अशा प्रकारे बीजांकुर न्यायाने जीव व शिव या दोहोंचे सामरस्यपूर्ण एकत्र अस्तित्वाचे ज्ञान ज्या प्राणलिंगीला झाले आहे त्यासच अंगलिंगी म्हणावे.।।४३।।

नन्वत्र ज्ञानमात्रमेव विवक्षितं किमित्यत्राह—

ज्ञात्वा यः सततं लिङ्गं स्वान्तःस्थं ज्योतिरात्मकम्।
पूजयेद् भावयेन्नित्यं तं विन्द्यादङ्गलिङ्गिनम्।।४४।।

यः प्राणलिङ्गी स्वान्तःस्थं स्वहृदयकमलस्थं ज्योतिरात्मकं ज्योतिर्मयं सततं नित्यं लिङ्गं निजलिङ्गं ज्ञात्वा सामरस्यरूपं श्रुतिगुरु-स्वानुभवैर्विदित्वा पूजयेद् ध्यायेत् तं प्राणलिङ्गिनं विन्द्याद् जानीयादित्यर्थः।।४४।।

येथे फक्त अभेद ज्ञानच सांगितले आहे का? याचे उत्तर असे की—जो प्राणलिंगी आपल्या हृदयात असणाऱ्या ज्योतिर्मय लिंगाला श्रीगुरूंचा उपदेश व स्वानुभवाच्या द्वारे जाणून घेऊन त्याचे सतत ध्यान करतो त्यासच अंगलिंगी असे म्हणावे.।।४४।।

अथ निजलिङ्गपर्यायनामान्युक्त्वा तत्र दृढचित्तवान् जीवन्मुक्त इति सूत्रत्रयेण कथयति—

ज्ञायते लिङ्गमेवैकं सर्वैः शास्त्रैः सनातनैः।
ब्रह्मेति विश्वधामेति विमुक्तेः पदमित्यपि।।४५।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

मुक्तिरूपमिदं लिङ्गमिति यस्य मनःस्थितिः।
स मुक्तो देहयोगेऽपि स ज्ञानी स महागुरुः।।४६।।

एकं निजलिङ्गमेव परब्रह्मेति, जगदाधारमिति, परमुक्तिस्थानमिति, "वाचा विरूपनित्यया" इति श्रुतेर् आरम्भविवक्षाध्यवसायोक्तिरूपेण शिवशक्तिमयत्वात् सनातनैः नित्यैः सर्वैः शास्त्रैः निगमागमादिप्रमाणै-र्ज्ञायते, इदं निजलिङ्गं मुक्तिरूपं परमुक्तिस्वरूपमिति यस्य प्राणलिङ्गिनो मनःस्थितिः, स देहयोगेऽपि मुक्तः पुनर्जन्मान्तराभावाज्जीवन्मुक्तः, स ज्ञानी स एव शिवज्ञानवान्, स महागुरुः श्रीगुरुरित्यर्थः।।४५-४६।।

निजलिंगाची पर्याय नावे सांगून तेथे जो दृढचित्त असतो त्यास जीवन्मुक्त म्हणावे, असे तीन श्लोकात सांगतात—अनादी कालापासून चालत आलेली निगमागमादीकरून सर्व शास्त्रे असे म्हणतात की, लिंग हेच काय ते एक परब्रह्म आहे. तेच सर्व त्रैलोक्याचा आधार आहे व मोक्षाचे स्थानही आहे. हे लिंग मोक्षप्राप्ती करून देणारे आहे. एवढेच नव्हे तर तेच प्रत्यक्ष मोक्ष आहे. अशी ज्याच्या मनाची धारणा झाली आहे तो मनुष्य देहधारी (जिवंत) असला तरी मुक्तच आहे समजावे. तो महाज्ञानी आणि श्रेष्ठ गुरू आहे असे मानावे.।।४५-४६।।

अथैवं लिङ्गनिजज्ञानशून्यानां मुक्तिर्नास्तीत्याह—

अनादिनिधनं लिङ्गं कारणं जगतामिति।
ये न जानन्ति ते मूढा मोक्षमार्गबहिष्कृताः।।४७।।

अनादिनिधनम् उत्पत्तिविनाशरहितमित्यर्थः। शिष्टं स्पष्टम्।।४७।।

असे ज्ञान नसणाऱ्यास मुक्ती मिळत नाही असे सांगतात—म्हणून लिंगनिजज्ञान नसणाऱ्याना मुक्ती मिळत नाही. लिंगास जन्म नाही आणि मरणही नाही. लिंग हे सर्व विश्वाला कारणभूत आहे. जे लोक अशा लिंगास जाणत नाहीत, ते मूर्ख आहेत. त्याना मोक्ष मिळणार नाही.।।४७।।

अथ प्राणलिङ्गार्चनादिधर्मवान् प्राणलिङ्ग्येव ज्ञानपरिपाकवशात् शरण इत्यभिधानवानित्युक्त्वा प्राणलिङ्गिस्थलं समापयति—

यः प्राणलिङ्गार्चनभावपूर्वैर्धर्मैरुपेतः शिवभावितात्मा।
स एव तुर्यः परिकीर्तितोऽसौ संविद्विपाकाच्छरणाभिधानः।।४८।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इति श्रीमत्षट्स्थलब्रह्मिणा शिवयोगिनाम्ना रेणुकाचार्येण विरचिते सिद्धान्तशिखामणौ प्राणलिङ्गिनः पञ्चस्थलप्रसङ्गो नाम द्वादशः परिच्छेदः समाप्तः।।

यः प्राणलिङ्गी प्राणलिङ्गपूजाचारप्रमुखैः धर्मैः शिवाचारैः समेतः सन् लिङ्गरूपेण भाविताङ्गस्वरूपवान्, तुर्यः भक्तापेक्षया चतुर्थः, स एवासौ प्राणलिङ्गी ज्ञानपरिपाकवशात् शरण इत्यभिधानवानित्यर्थः।।४८।।

इति श्रीमत्पदवाक्यप्रमाणपारावारधुरीणश्रीमरितोण्टदार्येण विरचितायां तत्त्वप्रदीपिकाख्यायां सिद्धान्तशिखामणिव्याख्यायां द्वादशः परिच्छेदः।।

आता ज्ञान परिपूर्ण असलेला प्रणलिंगीच शरण होतो असे सागून प्राणलिंगी स्थलाचे वर्णन संपवितात–पूर्वोक्त प्रकारे जो भक्त प्राणलिंगाचे पूजन भक्तिरूपपुष्पांनी करतो, योग्य धर्माचरणाने नेहमी मनात शिवाचेच स्मरण करतो, त्याचे ज्ञान पूर्णावस्थेला पोचले असल्यामुळे या चौथ्या क्रमाच्या प्राणलिंगी स्थलातील साधकच पुढील शरण या स्थलाचा अधिकारी होतो.।।४८।।

ह्याप्रमाणे सिद्धान्तशिखामणि ग्रंथातील प्राणलिंगी स्थालांतर्गत पाच अवांतर स्थलांचे वर्णन असलेला बारावा परिच्छेद संपला.

बारावा परिच्छेद समाप्त।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

त्रयोदशः परिच्छेदः

अथ शरणस्थलम्

अथागस्त्यप्रश्नः। अगस्त्य उवाचेति—

माहेश्वरः प्रसादीति प्राणलिङ्गीति बोधितः।
कथमेष समादिष्टः पुनः शरणसंज्ञकः।।१।।

माहेश्वरः प्रसादीति बोधितः। प्राणलिङ्ग्येव पुनः कथं केन प्रकारेण शरणाभिधानवानित्यर्थः।।१।।

अगस्त्य म्हणाले, अहो रेणुकाचार्या, आपण भक्त, माहेश्वर, प्रसादी आणि प्राणलिंगी याचे निरूपण केलेत. आता प्राणलिंगी कशा प्रकारे शरण होतो ते सांगावे. तेव्हा रेणुकाचार्य सांगतात.।।१।।

अस्य प्रश्नस्योत्तरं निरूपयति रेणुक उवाचेति—

अङ्गलिङ्गी ज्ञानरूपः सती ज्ञेयः शिवः पतिः।
यत्सौख्यं तत्समावेशे तद्वान् शरणनामवान्।।२।।

ज्ञानरूपः शिवज्ञानमेव स्वरूपं यस्य स तादृशः, शिवज्ञानवानित्यर्थः। अङ्गलिङ्गी अङ्गलिङ्गसामरस्यवान् प्राणलिङ्गी सतीति ज्ञेयः। शिवः शिवलिङ्गमेव पतिः पतिरिति ज्ञेयः। तत्समावेशे तयोरङ्गलिङ्गरूपयोः स्त्रीपुरुषयोः समानसमरसरूपयोगे यत्सौख्यं "यथा स्त्रिया संपरिष्वक्तो न बाह्यं किञ्चन वेद नान्तरम्" इति बृहदारण्यकश्रुतिप्रसिद्धं यत्सौख्यमस्ति, तद्वान् तादृशसौख्यवान् शरणनामवानित्यर्थः।।२।।

लिंगांग सामरस्याच्या स्थितीचा अनुभव घेणारा अगलिंगी अर्थात् प्राणलिंगी शिवज्ञानसंपन्न असतो, तो सती समजावा व शिव हा पती समजावा. स्त्रीपुरुष (पतिपत्नी) दोघेही सम विचाराचे असल्यास त्यांना एकमेकापासून जे सुख लाभते तसे सुख शरणास मिळते. तशा रीतीच्या बाह्यांतरंग स्थितीचा विसर पाडणाऱ्या अलौकिक शिवसामरस्य सुखाचा अनुभव घेणारास शरण असे म्हणावे.।।२।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अथ अस्यापि स्थलभेदोऽस्ति किमित्यत्राह—

स्थलमेतत्समाख्यातं चतुर्धा धर्मभेदतः।
आदौ शरणमाख्यातं ततस्तामसवर्जनम्।।३।।
ततो निर्देशमुद्दिष्टं शीलसम्पादनं ततः।
क्रमाल्लक्षणमेतेषां कथयामि निशाम्यताम्।।४।।

एतत्स्थलं शरणस्थलं धर्मभेदत आचारभेदात् चतुर्धा चतुर्विधमिति समाख्यातम्। आदौ शरणस्थलम्, तदनन्तरं तामसनिरसनस्थलम्, ततो निर्देशस्थलम्, अथ शीलसम्पादनस्थलम् उद्दिष्टमुपदिष्टम्। एषां चतुर्णां लक्षणं क्रमाद् वदिष्यामि, श्रूयतामित्यर्थः।।३-४।।

या शरणस्थलाचेही पोटभेद आहेत काय? तर, या शरणस्थलाचे आचारभेदाने चार पोटभेद आहेत. १) शरणस्थल, २) तामसवर्जनस्थल, ३) निर्देशस्थल आणि ४) शीलसंपादनस्थल. या चार पोटभेदापैकी प्रत्येकाचे क्रमाक्रमाने लक्षण सांगतो, ते तू नीट लक्ष देऊन ऐक।।३-४।।

"सती चाहं पतिर्लिङ्गं हृदि युक्तः स्वयं प्रभुः। प्रापञ्चिकसुखं नास्ति शरणस्थलमुत्तमम्।।" इति शङ्करसंहितावचनानुसारेण शरणस्थलं निरूपयति—

सतीव रमणे यस्तु शिवे शक्तिं विभावयन्।
तदन्यविमुखः सोऽयं ज्ञातः शरणनामवान्।।५।।

रमणे प्राणकान्तविषये सतीव पतिव्रता स्त्रीव यस्तु शिवे शिवलिङ्ग-विषये शक्तिं स्वात्मानं स्त्रियं भावयन् तदन्यविमुखः शिवलिङ्गादन्यत्र देवतान्तरे तिर्यङ्मुखः सन् अस्ति, सोऽयं शरणवान् शरणस्थलवानिति ज्ञातो ज्ञातुं योग्य इत्यर्थः।।५।।

शंकरसंहितावचनानुसार सतीपतिन्यायाने शरणस्तलाचे वर्णन करतात—प्राणप्रिय पतीविषयी जशी पतिव्रता स्त्री-सती एकनिष्ठ असते, पतीशिवाय अन्य पुरुषाचा विचारही करीत नाही, तशा प्रकारे शिव आपला पती असून आपण सती आहोत, शक्ती आहोत अशी भावना असणारा जो अंगरूप जीव शिवलिंगाशिवाय अन्य देवाकडे लक्ष न देता एकनिष्ठेने शिवाची उपासना करतो, त्यालाच शरण असे म्हणतात.।।५।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अथ बहुदृष्टान्तपूर्वकं शिवलिङ्गासक्त एव शरण इत्युपपादयति—

परिज्ञाते शिवे साक्षात् को वान्यमभिकाङ्क्षति।
निधाने महति प्राप्ते कः काचं याचतेऽन्यतः।।६।।

शिवे परमशिवे साक्षात् प्रसिद्धश्रुत्यादिप्रमाणैः परिज्ञाते ब्रह्मादिभ्यो महानिति ज्ञाते सति को वान्यं काङ्क्षति न काङ्क्षतीत्यर्थः। यथा महति निधाने प्राप्ते सति, अन्यतः अन्यस्मात् काचं काचमणिं को याचते? न कोऽपि याचत इत्यर्थः, तथा शिवादन्यत्र देवतान्तरे विमुखः शरण इत्यर्थः।।६।।

आता अनेक दृष्टांत देऊन शिवलिंगासक्त असणारालाच शरण म्हणावे असे सांगतात—जसे द्रव्याचा मोठा साठा सापडल्यावर काचमण्यांची याचना कोणीही करणार नाही, तसे परशिव हा प्रत्यक्ष वेदागम प्रमाणांनी परिबोधित झाल्यावर तो सदाशिव ब्रह्मा विष्णू आदी सर्व देवांपेक्षा अतिश्रेष्ठ होय असे निश्चयाने जाणलेला शरण अन्य देवाची अपेक्षा करणार नाही. त्याची अविचल निष्ठा शिवामध्येच असते.।।६।।

शिवानन्दं समासाद्य को वान्यमुपतिष्ठते।
गङ्गामृतं परित्यज्य कः काङ्क्षेन्मृगतृष्णिकाम्।।७।।

शिवानन्दं शिवलिङ्गसुखं समासाद्य प्राप्य को देवतान्तरम् उमतिष्ठते आश्रयति, नाश्रयतीत्यर्थः। गङ्गोदकं परित्यज्य को मृगतृष्णिकां मरीचिका-जलं काङ्क्षेद् इच्छेत्, तथा शिवादन्यत्र विमुखः शरण इत्यर्थः।।७।।

शिवस्वरूपाचे यथार्थ ज्ञान होऊन त्यापासून उत्पन्न होणारा आनंद प्राप्त झाल्यावर दुसऱ्या देवास शरण कोण जाईल? अमृतासमान गंगाजल मिळाल्यावर ते टाकून मृगजळामागे पाण्याच्या आशेने कोण धावेल? अर्थात् कोणीही धावणार नाही. तसे शिवानंद प्राप्तीनंतर शरण अन्य देवाला शरण जाणार नाही.।।७।।

संसारतिमिरच्छेदे विना शङ्करभास्करम् ।
प्रभवन्ति कथं देवाः खद्योता इव देहिनाम्।।८।।

खद्योता अल्पप्रकाशिनः प्राणिविशेषाः यथान्धकारनिवारणे समर्था न भवन्ति, भास्करः समर्थो भवति, तथा संसारतिमिरच्छेदे शङ्करभास्करं

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

विना ब्रह्मादयो देवाः समर्था न भवन्तीति शिवादन्यत्र विमुखः शरण इत्यर्थः।।८।।

अंधाराचा नाश करण्यास जसा काजव्याचा प्रकाश उपयोगाचा नाही, त्याला सूर्यप्रकाशाचीच गरज असते; तशाप्रकारे संसाररूप अंधार नाहीसा करण्यास शंकररूप सूर्यावाचून इतर देवरूपी काजव्याच्या प्रकाशाचा उपयोग होणार नाही, असे जाणून शिवाशिवाय अन्य देवांपासून विमुख असणाराच शरण होय.।।८।।

संसारार्तः शिवं यायाद् ब्रह्माद्यैः किं फलं सुरैः।
चकोरस्तृषितः पश्येच्चन्द्रं किं तारका अपि।।९।।

तृषितः पिपासार्दितचकोरः, चन्द्रं यथा पश्येत्, तारका न पश्येत्, तथा संसारेण श्रमितो ब्रह्माद्यैः किं फलमिति . शिवमेवाश्रयेत्। तादृशचकोरवदन्यत्र विमुखः शिवशरण इत्यर्थः।।९।।

तहान लागल्यावर चकोर पक्षी चंद्राकडेच पाहातो, तारकाकडे पाहात नाही, तसे संसारदुःखाने पीडलेल्या मनुष्याने शंकरासच शरण जावे लागते, ब्रह्मादी इतर देवांना शरण जाऊन उपयोग होणार नाही. म्हणून शरण हा अन्य कोणा देवाऐवजी केवळ शिवालाच शरण जातो.।।९।।

शिव एव समस्तानां शरण्यः शरणार्थिनाम्।
संसारोरगदष्टानां सर्वज्ञः सर्वदोषहा।।१०।।
शिवज्ञाने समुत्पन्ने परानन्दः प्रकाशते।
तदासक्तमना योगी नान्यत्र रमते सुधीः।।११।।

संसारसर्पदष्टानां समस्तानां शरणार्थिनां सर्वज्ञः सर्वदोषघ्नः शिव एव रक्षक इति शिवमाहात्म्यज्ञाने समुत्पन्ने सति परमानन्दाविर्भावो जायते। तदासक्तचित्तः शिवयोगी अन्यत्र देवतान्तरे न रमत इत्यर्थः।।१०-११।।

संसाररूपी साप चावलेल्या सर्वांना—शरणार्थींना त्या दुःखापासून मुक्त करणारा, सर्व दोषांचा नाश करणारा, सर्वज्ञ, रक्षक शिव एकच आहे. शिवज्ञानाने उत्पन्न झालेल्या श्रेष्ठ आनंदाचा अनुभव घेतल्यावर त्या आनंदात निमग्न झालेला शिवयोगी दुसऱ्या कोणत्याही आनंदात रमणार नाही.।।१०-११।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अथोक्तार्थमुपसंहरन् शरणस्थलं समापयति—

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन शङ्करं शरणं गतः।
तदनन्तसुखं प्राप्य मोदते नान्यचिन्तया।।१२।।

तस्मात् कारणात् सर्वप्रयत्नेन मनोवाक्कायकर्मणा शिवं शरणं गतो रक्षणविचक्षण इति ज्ञात्वा प्रपन्नः, तदनन्तसुखं प्राप्य तस्माच्छिवाद् अनन्तसुखं लब्ध्वा मोदते, अन्यचिन्तया देवतान्तरचिन्तया न मोदत इत्यर्थः।।१२।।

इति शरणस्थलम्

आता प्रतिपादित अर्थाचा उपसहार करून शरणस्थलाचे वर्णन सपवितात—म्हणून सर्व प्रयत्नांनी, मनोवाक्कायरूपी त्रिकरणांनी शिवास शरण गेलेला भक्त अत्यंत सुखाचा उपभोग घेत आनदात राहातो. त्याला दुंसरी कोणतीही चिंता राहात नाही. एकंदरीत अनन्यभावाने शिवालाच शरण जाणारा तो शरण होय।।१२।।

अथ तामसनिरसनस्थलम्

अथ शरणेन विधीयमानतामसनिराकरणस्थलं निरूपयति—

शिवासक्तपरानन्दमोदिना गुरुणा यतः।
निरस्यन्ते तमोभावाः स तामसनिरासकः।।१३।।

शिवासक्तः सन् परानन्दानुमोदिना गुरुणा श्रेष्ठेन शरणेन तमोभावास्तमोविकारा यतः कारणाद् निरस्यन्ते निवार्यन्ते, ततः तस्मात् स तामसनिरासको भवेदित्यर्थः।।१३।।

लिंगांगसामरस्यसुखानुभवी झालेल्या शरणाकडून केल्या जाणाऱ्या तामसनिरसनाचे निरूपण करतात—शिवभक्तीत निमग्न असल्यामुळे जो नेहमी अत्यानंदात असतो, असा श्रेष्ठ शरण आपल्या मनातून तमोगुणाचे परिणाम असलेले निद्रा, आलस्य, कलह, मोह आदी विकारांचे निवारण करतो, त्याला तामस निरासक शरण असे म्हणतात.।।१३।।

ननु तमोभावाः किमर्थं निराकरणीया इत्यत्राह—

यस्य ज्ञानं तमोमिश्रं न तस्य गतिरिष्यते।
सत्त्वं हि ज्ञानयोगस्य नैर्मल्यं विदुरुत्तमाः।।१४।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

नैर्मल्यं निर्मलसाधनं सदित्यर्थः। शिष्टं स्पष्टम्। तस्मात् तमोविकारा निराकरणीया इति भावः।।१४।।

आता तमोभावाचे निराकरण का झाले पाहिजे? याचे उत्तर असे—ज्याचे ज्ञान तमोगुणाने युक्त आहे, त्याला सद्गती लाभत नाही. ज्ञानी लोक ज्ञानयोगाला निर्दोष असा सत्त्वगुण उपयोगी पडतो असे म्हणतात.।।१४।।

अथ— "सत्त्वात् सुखं च ज्ञानं च वैराग्यं सौख्यमेव च। दुःखप्रवृत्तिरागौ च लौहित्यं रजसो भवेत्।। मोहो भ्रान्तिस्तथालस्यं कार्ष्ण्यं च तमसो भवेत्।।" इति सूतसंहितावचनानुसारेण गुणत्रययुक्तान् प्रकाशयति—

शमो दमो विवेकश्च वैराग्यं पूर्णभावना।
क्षान्तिः कारुण्यसम्पत्तिः श्रद्धा सत्यसमुद्भवा।।१५।।
शिवभक्तिः परो धर्मः शिवज्ञानस्य बान्धवाः।
एतैर्युक्तो महायोगी सात्त्विकः परिकीर्तितः।।१६।।

शमः क्षान्तिः, दमो बाह्येन्द्रियनिग्रहः, विवेको नित्यानित्यवस्तुविचारः, वैराग्यं विषयविरक्तिः, पूर्णभावना अखण्डध्यानम्, क्षान्तिः क्षमा, कारुण्यसम्पत्तिः भूतदया, सत्यसमुद्भवा यथार्थवस्तुसंभवा श्रद्धा विश्वासः, शिवभक्तिः, परो धर्म उत्कृष्टशिवाचारः, शिवज्ञानस्य बान्धवा एते शिवज्ञानस्य सम्बन्धिनः। एतैर्दशगुणैर्युक्तो महायोगी सात्त्विक इति सत्त्वगुणयुक्त इति प्रकीर्तितः।।१५-१६।।

'सुख, ज्ञान, वैराग्य हे सत्त्वगुणाचे परिणाम; दुःखप्रवृत्ती, विषयासक्ती हे रजोगुणाचे परिणाम आणि भ्रांती, आळस, कुटिलता हे तमोगुणाचे परिणाम होत' असे सूतसंहितेत वर्णिल्यानुसार येथे गुणत्रयाचे स्वरूप-वर्णन करतात—शम म्हणजे शांती, ती अतरिंद्रियाच्या निग्रहाने मिळते. बाह्य इंद्रियाच्या निग्रहाला दम म्हणतात. नित्यानित्य वस्तुविचार म्हणजे विवेक. विषयाची विरक्ती म्हणजे वैराग्य. पूर्ण भावना म्हणजे अखंड ज्ञान. क्षाती ही क्षमा. कारुण्य म्हणजे भूतदया आणि सत्य वस्तूवरील विश्वास म्हणजे श्रद्धा. शिवभक्ती व श्रेष्ठ शिवाचार हे गुण शिवज्ञानाचे सहोद्रर बांधवच आहेत. हे दहागुण ज्या योग्याच्या अंगी आहेत तो सात्विक होय.।।१५-१६।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

नन्वेतैर्गुणैर्युक्तस्य महायोगिनः कदाचिद् वा कामक्रोधादयः सम्भवन्ति किमित्यत्राह—

कामक्रोधमहामोहमदमात्सर्यवारणाः।
शिवज्ञानमृगेन्द्रस्य कथं तिष्ठन्ति सन्निधौ।।१७।।

शिवज्ञानस्य मत्तमनोगजनिग्रहकरत्वेन सिंहरूपत्वात् तस्य सन्निधौ कामक्रोधादिगजस्थितेरवकाशो नास्तीत्यर्थः।।१७।।

ह्या सत्त्वगुणानी युक्त अशा महायोग्याच्या ठिकाणी कधीतरी कामक्रोधादी विकार निर्माण होतात का? तर—काम, क्रोध, महामोह (अज्ञान) मद, मात्सर्य हे सर्व प्रचंड विकाररूप हत्ती शिवज्ञानरूप सिंहाजवळ कसे टिकतील? ते राहाणार नाहीत. म्हणजेच शिवज्ञानसंपन्न सात्त्विक शिवयोग्याला कामक्रोधादी षड्रिपूंचा विकार होत नाही.।।१७।।

अथ रजोगुणयुक्तं प्रदर्शयति—

यत्र कुत्रापि वा द्वेष्टि प्रपञ्चे शिवरूपिणि।
शिवद्वेषी स विज्ञेयो रजसाविष्टमानसः।।१८।।

यो रजसाविष्टमानसो रजोगुणकार्यभूतकामक्रोधाद्यावृतचित्तः सन् शिवरूपिणि प्रपञ्चे यत्र क्वापि द्वेष्टि, स शिवद्वेषी राजस इति शेषः, विज्ञेयो ज्ञातुं योग्य इत्यर्थः।।१८।।

आता रजोगुणयुक्त पुरुषाचे स्वरूप सांगतात—रजोगुणाचे कार्य असणाऱ्या कामक्रोधादी विकारांनी ज्याचे चित्त आवृत झालेले आहे, असा मनुष्य शिवस्वरूप प्रपंचाचा जेथे तेथे द्वेष करतो. अशा शिवद्रोह्यास रजोगुणी म्हणतात.।।१८।।

अथ तमोगुणयुक्तं लक्षयति—

यो द्वेष्टि सकलान् लोकान् यो वाऽहङ्कुरुते सदा।
योऽसत्यभावनायुक्तः स तामस इति स्मृतः।।१९।।

स्पष्टम्।।१९।।

आता तमोगुणी पुरुषाचे लक्षण सांगतात—जो मनुष्य सर्व प्राणिमात्रांचा द्वेष करतो, नेहमी अहंभावनेने फुगलेला असतो

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

आणि नेहमी खोट्या कल्पनांनी भारलेला असतो त्याला तामसी असे म्हणावे.।।१९।।

अथायं तमोगुणः शिवशरणानां नास्तीति श्लोकद्वयेनोक्त्वा तामस-निरसनस्थलं समापयति—

तमोमूला हि संजाता रागद्वेषादिपादपाः।
शिवज्ञानकुठारेण छेद्यन्ते हि निरन्तरम्।।२०।।

तमोगुणरूपमूलवन्तः सन्तः संजाता रागद्वेषादिपादपाः कामक्रोधादि-राजसवृक्षाः शिवज्ञानकुठारेण सात्त्विकशिवज्ञानरूपपरशुना सदा छेद्यन्ते हि प्रसिद्धम्।।२०।।

असा तमोगुण शरणस्थल साधकाच्या ठिकाणी नसतो असे दोन श्लोकात सागून तामसनिरसनस्थलाचा समारोप करतात—तमोगुणच ज्यांची मुळे आहेत असे रागद्वेषादी वृक्ष शिवज्ञानरूपी कुऱ्हाडीने तोडले जातात.।।२०।।

ननु तमोमूलकत्वेन संजातरागद्वेषादिपादपानां शिवज्ञानकुठारेण छेदन-मस्तु, एतत्कारणीभूततमोगुणनिवृत्तिः केन भवेत्, तद्विना तदङ्कुरनिवृत्तिर्न सम्भवतीत्यत्राह—

शिवज्ञाने समुत्पन्ने सहस्रादित्यसन्निभे ।
कुतस्तमोविकाराः स्युर्महतां शिवयोगिनाम्।।२१।।

सहस्रादित्यसंकाशे शिवज्ञाने समुत्पन्ने सति महतां महापुरुषाणां शिवयोगिनां शिवशरणानां तमोविकाराः तमोङ्कुराः कुतः स्युः कस्मात् कारणाद् भवेयुः? कारणीभूतस्य तमसो मूलनाशादिति भावः।।२१।।

इति तामसनिरसनस्थलम्

तमोगुणाच्या मुळापासून उत्पन्न झालेल्या रागद्वेषादी वृक्षांना शिवज्ञानाच्या कुऱ्हाडीने तोडावे हे खरे पण त्यांना कारणीभूत अशा तमोगुणाचा नाश कसा होईल? कारण त्याविना ते समूळ नष्ट होणार नाहीत शिवज्ञान हजारो सूर्यांसारखे तेजस्वी आहे. ते शिवज्ञान प्राप्त झालेल्या शिवयोग्यांना अज्ञानांधःकार विकाराचा उपद्रव कसा होईल? मुळीच होणार नाही. अर्थात् शिवज्ञानसपन्न शिवयोग्याच्या तमोगुणाचा संपूर्ण नाश झाला असल्यामुळे त्याला विकारांचा उपद्रव होत नाही.।।२१।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अथ निर्देशस्थलम्

अथ तामसनिराकरणेन भासमाननिर्देशस्थलं निरूपयति—

निराकृत्य तमोभागं संसारस्य प्रवर्तकम्।
निर्दिश्यते तु यज्ज्ञानं स निर्देश इति स्मृतः।।२२।।

संसारप्रवृत्तेर्मूलकारणं तमोभागं निराकृत्य यद् ज्ञानं निर्दिश्यते उपदिश्यते, स तद् ज्ञानं निर्देश इति निर्देशस्थलमिति स्मृतः स्मृतमित्यर्थः।।२२।।

तामस-निराकरण झाल्याने भासमान होणाऱ्या निर्देशस्थलाचे निरूपण करतात—ससाराच्या प्रवृत्तीस मूलकारण असा तमोगुण घालवून जे उत्तम रीतीचे ज्ञान गुरू आपल्या शिष्यास शिकवितो त्यास निर्देश असे म्हणतात.।।२२।।

अथ तज्ज्ञानं केनोपदिश्यत इत्यत्र गुरुरेवेति तंन्महत्त्वं बहुधा प्रकाशयति—

गुरुरेव परं तत्त्वं प्रकाशयति देहिनाम् ।
को वा सूर्यं विना लोके तमसो विनिवर्तकः।।२३।।

लोके सूर्यं विना तमोनिराकरणद्वारा पदार्थप्रकाशको नास्ति, तथा गुरुं विना तमोनिराकरणद्वारा परतत्त्वप्रकाशको नास्तीत्यर्थः।।२३।।

आता त्या शिवज्ञानाचा उपदेश करणाऱ्या गुरूचे महत्त्व सांगतात—या जगात व्यापलेल्या अंधाराचा नाश सूर्याशिवाय कोणीही करू शकत नाही, त्याप्रमाणे गुरूच आपल्या शिष्यास तमोगुणाचा नाश करून परतत्त्वाचा प्रकाश दाखवितो, त्याच्याशिवाय अन्य कोणीही नाही.।।२३।।

पुनर्दृष्टान्तमाह—

अन्तरेण गुरुं सिद्धं कथं संसारनिष्कृतिः।
निदानज्ञं विना वैद्यं किं वा रोगो निवर्तते।।२४।।

सिद्धं गुरुमन्तरेण ज्ञानसिद्धगुरुं विनेत्यर्थः, संसारनिष्कृतिः भवरोग-निवृत्तिः कथं स्यात् कथं भवेत्? तत्र दृष्टान्तः—निदानम् एतद्धेतुकस्यास्य रोगस्येदमौषधमिति रोगज्ञानपूर्वकचिकित्साभिज्ञं वैद्यं विना रोगो निवर्तते

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

किं वा? न निवर्तत इत्यर्थः। यथा निदानज्ञानसहितेन वैद्येन विना रोगो न निवर्तते, तथा ज्ञानसिद्धगुरुव्यतिरेकेण संसारनिवृत्तिर्न सम्भवतीति तात्पर्यम्।।२४।।

आणखी एक दृष्टात देतात—ज्ञानसिद्ध अशा गुरूवाचून भवाची निवृत्ती कशी होईल? रोगाचे मूल कारण व त्यावरील उपचार जाणणाऱ्या वैद्याशिवाय रोग्याचा रोग कसा बरा होईल? म्हणजेच ज्ञानसिद्ध अशा गुरूच्या मार्गदर्शनाशिवाय संसाराची निवृत्ती होत नाही.।।२४।।

नन्वयं गुरुः कथं ज्ञायत इत्यत्राह—

अज्ञानमलिनं चित्तदर्पणं यो विशोधयेत्।
प्रज्ञाविभूतियोगेन तमाहुर्गुरुसत्तमम्।।२५।।

अज्ञानमलिनं चित्तदर्पणं यः प्रज्ञाविभूतियोगेन "प्रज्ञानं ब्रह्म" इति श्रुतिप्रसिद्धशिवज्ञानविभूतिसम्बन्धेन शोधयेद् निर्मलं कुर्यात्, तं गुरुसत्तमं गुरुश्रेष्ठं सन्तम् आहुरित्यर्थः।।२५।।

असा गुरू कसा ओळखावा?— अज्ञानरूपी मलाने मलिन झालेले चित्तरूपी दर्पण जो ज्ञानरूपी विभूतीच्या साहाय्याने निर्मल करतो त्याला गुरुश्रेष्ठ म्हणावे.।।२५।।

अथ तादृशगुरुकटाक्षात् सकलसिद्धिर्भवतीत्याह—

अपरोक्षिततत्त्वस्य जीवन्मुक्तस्वभाविनः।
गुरोः कटाक्षे संसिद्धे को वा लोकेषु दुर्लभः।।२६।।

अपरोक्षिततत्त्वस्य स्वस्वरूपेण साक्षात्कृतशिवतत्त्ववतो जीवन्मुक्तस्वभाविनः— "विकल्परहितं ज्ञानं निषेधरहिता क्रिया। अलोकरञ्जकं रूपं जीवन्मुक्तस्य लक्षणम्।।" इति वासिष्ठवचनाद् जीवन्मुक्तस्वरूपवतो गुरोः सद्गुरोः कटाक्षे कृपारसपूरितापाङ्गे संसिद्धे सति लोकेषु को वा दुर्लभः, न कोऽप्यलभ्य इत्यर्थः। भोगमोक्षलक्षणसकलसिद्धिर्भवतीति भावः।।२६।।

अशा गुरूच्या कृपाकटाक्षाने सर्व सिद्धी प्राप्त होतात, असे सांगतात—ज्याला शिवज्ञानाचा साक्षात्कार झालेला आहे व जो स्वतः जीवन्मुक्त स्थितीत आहे, अशा गुरूचा कृपाकटाक्ष

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

लाभल्यावर या जगात कोणती गोष्ट दुर्लभ आहे? कोणतीही नाही. अर्थात् भोगमोक्षादी सर्व सिद्धी प्राप्त होतात.।।२६।।

नन्वेतादृशगुरवः सन्ति किमित्यत्र— "गुरवो बहवः सन्ति शिष्यवित्तापहारकाः। शिष्यहृत्तापहारस्तु गुरुरेकोऽपि दुर्लभः।।" इति शिवरहस्यवचनानुसारेणाह—

कैवल्यकल्पतरवो गुरवः करुणालयाः।
दुर्लभा हि जगत्यस्मिन् शिवाद्वैतपरायणाः।।२७।।

स्पष्टम्।।२७।।

अशा प्रकारचे गुरू असतात काय? तर, 'शिष्याच्या द्रव्याचे अपहरण करणारे गुरू अधिक असले तरी शिष्याच्या हृदयाचा ताप हरण करणारे क्वचित् असतात', असे शिवरहस्यातील वचनानुसार ज्ञानी गुरूचे दुर्लभत्व सांगतात—मोक्षप्राप्ती करून देणारे कल्पतरू असे गुरू जे शिवाद्वैत शास्त्रात प्रवीण व कृपाळू असतात, ते या जगात दुर्मिळ आहेत.।।२७।।

तस्माच्छिवलिङ्गतत्परः श्रीगुरुः प्राकृतगुरुभ्यः श्रेष्ठ इति वदन् निर्देशस्थलं समापयति—

क्षीराब्धिरिव सिन्धूनां सुमेरुरिव भूभृताम्।
ग्रहाणामिव तिग्मांशुर्मणीनामिव कौस्तुभः।।२८।।
द्रुमाणामिव भद्रश्रीर्देवानामिव शङ्करः।
गुरुः शिवः परः श्लाघ्यो गुरूणां प्राकृतात्मनाम्।।२९।।

भद्रश्रीर्मलयज इत्यर्थः। शिष्टं स्पष्टम्।।२८-२९।।

इति निर्देशस्थलम्

म्हणून शिवलिंगतत्पर असे श्रीगुरू सामान्य लौकिक गुरूंपेक्षा श्रेष्ठ होत, असे सांगून निर्देशस्थलाचा समारोप करतात—समुद्रांत जसा क्षीरसमुद्र श्रेष्ठ, पर्वतांमध्ये जसा मेरूपर्वत श्रेष्ठ, नवग्रहांत जसा सूर्य श्रेष्ठ, रत्नांत जसे कौस्तुभरत्न श्रेष्ठ आहे, झाडांत जसे चंदनाचे झाड श्रेष्ठ, सर्व देवांमध्ये जसा शंकर श्रेष्ठ आहे, त्याप्रमाणे जगातील इतर लौकिक गुरूपेक्षा शिवाद्वैततत्पर असा परमगुरू श्रेष्ठ आहे.।।२८-२९।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अथ शीलसम्पादनस्थलम्

अथ श्रीगुरुनिर्देश्यज्ञानयोगात् शिवतत्त्वस्य जिज्ञासा शीलमित्युक्त्वा शीलवतः स्वरूपं सप्तभिः सूत्रैः प्रतिपादयति—

जिज्ञासा शिवतत्त्वस्य शीलमित्युच्यते बुधैः।
निर्देश्ययोगादार्याणां तद्वान् शीलीति कथ्यते।।३०।।

आचार्याणां पूर्वोक्तलक्षणवदाचार्यैर्निर्देश्ययोगाद् उपदेश्यज्ञानयोगात् शिवतत्त्वस्य जिज्ञासा ज्ञातुमिच्छा शीलमिति बुधैः ज्ञानिभिरुच्यते, तद्वान् तादृशजिज्ञासालक्षणशीलवान् शीलीति कथ्यत इत्यर्थः।।३०।।

श्रीगुरूने शिवज्ञानाचा निर्देश केल्यावर शरणाच्या ठिकाणी ते ज्ञान प्राप्त करण्याची जिज्ञासा उत्पन्न होते, तिला शील म्हणावे. आता त्या जिज्ञासू शरणाचे वर्णन सात श्लोकात करतात— शिवतत्त्व समजावून घेण्याच्या जिज्ञासेला ज्ञाते शील असे म्हणतात. गुरूकडून ते शिवतत्त्व समजावून घेण्याची जिज्ञासा असलेल्या भक्ताला शीली असे म्हणतात.।।३०।।

अथ निष्कर्षमाह—

प्रपन्नार्तिहरे देवे परमात्मनि शङ्करे ।
भावस्य स्थिरतायोगः शीलमित्युच्यते बुधैः।।३१।।

पालयस्वेति शरणागतानां क्लेशहरे परब्रह्मस्वरूपशिवे चित्तस्थिरीकरणं शीलमिति बुधैः शिवशास्त्रज्ञैः कथ्यत इत्यर्थः।।३१।।

याचा निष्कर्ष असा की, शरण आलेल्या भक्ताचा ताप नाहीसा करणाऱ्या परब्रह्मरूप शिवाच्या ठिकाणी चित्त स्थिर ठेवण्यास ज्ञानी लोक शील असे म्हणतात.।।३१।।

अथ प्रकारान्तरेण तल्लक्षणमाह—

शीलं शिवैकविज्ञानं शिवध्यानैकतानता।
शिवप्राप्तिसमुत्कण्ठा तद्योगी शीलवान् स्मृतः।।३२।।

शिवे विज्ञानं शिव एव विशेषज्ञानं शिवध्यानैकतानता शिवध्यान एव अनन्यवृत्तित्वं शीलमित्युच्यते। तद्योगी शीलविशिष्टः शिवज्ञानसमुत्कण्ठातः शिवाभिगमनलालस्यात् शीलवानिति स्मृत इत्यर्थः।।३२।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

आता दुसऱ्या रीतीने त्याचे लक्षण सांगतात—शिवाचे ज्ञान हेच उत्तम ज्ञान आहे असे मानणे, शिवध्यानाशिवाय अन्य कोणाचेही ध्यान नसणे, शिवप्राप्ती आपणांस कधी होईल अशी उत्कंठा असणे यालाच शील म्हणतात. आणि असे ज्याचे शील आहे त्यास शीलवान अथवा शीलवंत असे म्हटले जाते.।।३२।।

इममर्थमेव स्फुटीकृत्याह—

शिवादन्यत्र विज्ञाने वैमुख्यं यस्य सुस्थिरम्।
तदासक्तमनोवृत्तिस्तमाहुः शीलभाजनम्।।३३।।

शिवात् शिवलिङ्गाद् अन्यत्र विज्ञाने देवतान्तरविशेषज्ञाने वैमुख्यं विमुखत्वं यस्य शरणस्य सुस्थिरं दृढम्, यस्य मनोवृत्तिः मनोव्यापारः, तदासक्ता शिवलिङ्ग एव लम्पटा, तं शीलभाजनं शीलभजकं सन्तम् आहुः।।३३।।

तोच अर्थ अधिक स्पष्ट करतात—शिवज्ञानाखेरीज इतर ज्ञान करून घेण्याची ज्याला कधीही इच्छा होत नाही, शिवज्ञानातच ज्याचे मन सदैव गुतून राहाते त्या मनुष्यास शीलवत असे म्हणतात.।।३३।।

अत्र दृष्टान्तमाह—

पतिव्रताया यच्छीलं पतिरागात् प्रशस्यते।
तथा शिवानुरागेण सुशीलोऽभक्त उच्यते।।३४।।

पतिव्रताया यच्छीलं पातिव्रत्यं पतिरागात् पुरुषप्रीतिवशात् प्रशस्यते, तथा शिवानुरागेण शिवोपरि प्रीत्या अभक्तः अवियुक्तः शरणः सुशीलः शोभनशीलवानित्यर्थः। शरणलिङ्गयोः सतीपतिभावस्योक्तत्वात् पतिव्रता-दृष्टान्तः कथितः।।३४।।

या विषयी दृष्टांत देतात—पतिव्रतेचे शील जसे तिच्या पतीवरील भक्तीमुळे, प्रेमामुळे दिसून येते, त्याप्रमाणेच शिवावरील दृढभक्तीमुळे भक्ताची सुशीलता स्पष्ट होते. येथे शरण आणि त्याचे उपास्य लिंग याच्यातील संबंध स्पष्ट करण्यासाठी हा दृष्टांत दिला आहे.।।३४।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अथेममर्थमेव विशदयति—

पतिं विना यथा स्त्रीणां सेवान्यस्य तु गर्हणा ।
शिवं विना तथान्येषां सेवा निन्द्या कृतात्मनाम्।।३५।।

स्त्रीणां पतिं विना प्राणकान्तं विना अन्यस्य परपुरुषस्य सेवा यथा गर्हणा निन्दिता, तथा कृतात्मनां कृतकृत्यानां शिवशरणानां शिवं विना शिवलिङ्गं विना अन्येषां विष्ण्वादिदेवानां सेवा निन्द्या भवतीत्यर्थः ।।३५।।

त्याचेच स्पष्टीकरण असे—स्त्रियानी आपल्या पतिशिवाय अन्य पुरूषाची सेवा करणे जसे निषिद्ध आहे, तसेच कृतकृत्य अशा शरणाला शिवलिंगाशिवाय इतर देवाची पूजा करणे निषिद्ध आहे.।।३५।।

अथोक्तार्थं संगृह्याह—

बहुनात्र किमुक्तेन शिवज्ञानैकनिष्ठता ।
शीलमित्युच्यते सद्भिः शीलवांस्तत्परो मतः।।३६।।

अत्र शीलविषये बहुभाषणेन किम्? शिवज्ञानैकनिष्ठता श्रीगुरुनिर्दिष्ट-शिवज्ञान एकस्मिन्नेव निष्ठा शीलमिति सत्पुरुषैरुच्यते। तत्परस्तच्छीला-सक्तः शीलवानिति मतः सम्मत इत्यर्थः।।३६।।

सांगितलेल्या अर्थाचे तात्पर्य असे—शीलाविषयी अधिक काय सांगावे? श्रीगुरूने निर्देश केल्याप्रमाणे केवळ शिवावरच दृढ निष्ठा ठेवणे या गुणास शील म्हणावे आणि शील अंगी असणाऱ्यास शीलवान म्हणावे, असे सज्जनाचे म्हणणे आहे.।।३६।।

अथैवंविधशीलवान् शरण एव शिवलिङ्गैक्य इति शरणस्थलं समापयति—

शिवात्मबोधैकरतः स्थिराशयः शिवं प्रपन्नो जगतामधीशम्।
शिवैकनिष्ठाहितशीलभूषणः शिवैक्यवानेष हि कथ्यते बुधैः।।३७।।

इति श्रीमत्षट्स्थलब्रह्मिणा शिवयोगिनाम्ना रेणुकाचार्येण विरचिते
सिद्धान्तशिखामणौ शरणस्य चतुःस्थलप्रसङ्गो नाम
त्रयोदशः परिच्छेदः समाप्तः।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

शिवात्मबोधैकरतो लिङ्गाङ्गज्ञानैकनिष्ठः सन् जगतामधीशं शिवं प्रपन्नो रक्षेति शरणं गतः स्थिराशयः शिवशरणयोर्दृढीभूतसतीपतिभावयुक्तचित्तः शिवैकनिष्ठाहितशीलभूषणः शिवलिङ्गैकनिष्ठाकृतिशीलालङ्कारवानेष शरणः शिवैक्यवानिति बुधैः शिवशास्त्रप्रवीणैः कथ्यते हि प्रसिद्धमित्यर्थः।।३७।।

इति श्रीमत्पदवाक्यप्रमाणपारावारधुरीणश्रीमरितोण्टदार्येण विरचितायां
तत्त्वप्रदीपिकाख्यायां सिद्धान्तशिखामणिव्याख्यायां
त्रयोदशः परिच्छेदः।।

असा शीलसंपन्न शरणच ऐक्यस्थलाचा अधिकारी होय, असे सांगून शरणस्थलाचा समारोप करतात—लिंगांग ज्ञानातच एकनिष्ठा असलेला, जगाचा अधीश्वर असणाऱ्या शिवालाच शरण गेलेला, स्थिर मनाचा, अर्थात् स्वतः आणि शिवामध्ये सतीपतिभाव दृढतेने मानणारा, शिवाच्या ठिकाणी एकनिष्ठारूप शीलाचे अलंकार धारण करणारा शरणच पुढे ऐक्यस्थली पोचतो, असे शिवशास्त्रज्ञानी लोक म्हणतात.।।३७।।

येथे सिद्धांतशिखामणी ग्रंथातील शरणस्थलाच्या
चार पोटभेदाचे वर्णन असलेला
हा तेरावा परिच्छेद संपला.
तेरावा परिच्छेद समाप्त।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

चतुर्दशः परिच्छेदः

अथ ऐक्यस्थलम्

अथागस्त्यप्रश्नः, अगस्त्य उवाचेति—

तामसत्यागसम्बन्धान्निर्देशाच्छीलतस्तथा।
शरणाख्यस्य भूयोऽस्य कथमैक्यनिरूपणम्।।१।।

तमोभागनिराकरणाद् ज्ञाननिर्देशात् तथा शीलसम्पादनात् शरणाख्यस्यास्य एतावन्मात्रेण कथमैक्यनिरूपणम्, लिङ्गाङ्गयोर्भेदघटितत्वादिति।।१।।

अगस्त्य म्हणतात—हे आचार्यवर आपण शरणाचे तामसगुण निरासक ज्ञानाचा निर्देश आणि शीलसंपादन वगैरे स्थलाचे वर्णन सागितले. एवढ्यानेच त्याला ऐक्याची प्राप्ती कशी होते ते समजावून सांगावे.।।१।।

अस्योत्तरं ददाति श्रीरेणुक उवाचेति—

प्राणलिङ्गादियोगेन सुखातिशयमेयिवान्।
शरणाख्यः शिवेनैक्यभावनादैक्यवान् भवेत्।।२।।

प्राणलिङ्गादियोगेन बाह्यलिङ्गपूजावैमुख्येनान्तर्लिङ्गपूजाध्यानयोगेन सुखातिशयं शिवसुखातिशयम् एयिवान् लब्धवान् शरणाख्यः शिवेन शिवलिङ्गेन ऐक्यभावनाद् एकत्वचिन्तनाद् ऐक्यवान् शिवलिङ्गैक्यवान् भवेत् स्यादित्यर्थः। अयं भावः— लिङ्गात्मनोर्भेदो न सम्भवति, चिदेकरूपत्वात्। ननु चिद्रूपत्वेऽपि व्यक्तिभेदोऽस्तीति चेत्, उच्यते— स जीवः परिच्छिन्नचित्प्रकाशरूपो वा? अपरिच्छिन्नचित्प्रकाशरूपो वा? नाद्यः, परिमितघटादिप्रकाशवत् स्वविषयस्वमात्रनिष्ठत्वेन परविषयपरस्वरूपेष्वन्धबधिरप्रायत्वेन चैत्रो मैत्राद् भिन्नः, मैत्रश्चैत्राद् भिन्नः, चैत्रमहं जानामि, मैत्रमहं जानामीति बाह्याभ्यन्तरानुसन्धानं न सम्भवतीति, चैत्रोऽहमिति प्रकाशस्य तन्मात्रनिष्ठत्वात्, मैत्रस्वरूपतद्विषययोरन्धबधिरप्रायत्वात्, एवं मैत्रोऽहमिति प्रकाशः स्यादिति। अथापरिच्छिन्नप्रकाशत्वे तादृशप्रकाशद्वयाङ्गीकारो न सम्भवति, सेव्यसेवकभावाद्यसम्भवात्, प्रकाशैक्ये कल्पितभेदमादाय तत्सम्भवात् प्रकाशैक्यमङ्गीकरणीयम्, सर्वासर्वशब्दयोर्मायाकार्यकोटिप्रविष्टत्वेनान्तरालि-

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कत्वात्, ज्ञत्वकर्तृत्वयोरेव स्वाभाविकत्वादिति तदेकत्वचिन्तनादैक्यवान् स्यादिति।।२।।

याचे उत्तर श्री रेणुकाचार्य सागतात--शरण स्थावरादी बाह्यलिगाकडे विंमुख होऊन, इष्ट-प्राण-भावलिगाची पूजा, ध्यान, योग केल्यामुळे शिवानंद-रस-परिपूर्ण होऊन शिवलिगाशी एकत्व पावल्याचे अखडपणे चितन केल्यामुळे ऐक्यस्थितीला पोचतो. तात्पर्य, अंग आणि लिग दोन्हीही चैतन्यस्वरूप असल्यामुळे त्याच्यात सेव्यसेवक भाव वास्तविकपणे नसतो. जीवाच्या बद्धावस्थेत असलेला मायाकल्पित भेद, स्वरूपज्ञानामुळे नाहीसा होऊन स्वाभाविक असे सर्वज्ञत्व, सर्वकर्तृत्वादी जीवाच्या ठिकाणी सिद्ध होतात. म्हणून अग आणि लिग या दोहोमध्ये निर्विशेप समानत्व निर्माण होऊन ते अभेद स्थितीला प्राप्त होतात. अशा रीतीने अगच लिगाच्या चितनामुळे भ्रमरकीट न्यायाने लिगस्वरूपच होतो असा सिद्धात आहे.।।२।।

अथास्यापि स्थलभेदाः सन्ति किमित्यत्राह—

ऐक्यस्थलमिदं प्रोक्तं चतुर्धा मुनिपुङ्गव।
ऐक्यमाचारसम्पत्तिरेकभाजनमेव च।
सहभोजनमित्येषां क्रमाल्लक्षणमुच्यते।।३।।

स्पष्टम्।।३।।

ऐक्य स्थलाचेही अवांतर भेद आहेत का? तर—हे ऋषिश्रेष्ठा, ऐक्यस्थलाचे चार पोटभेद आहेत, ते असे— १. ऐक्यस्थल, २. आचार संपत्तिस्थल, ३. एकभाजनस्थल आणि ४. सहभोजनस्थल. या चोहोंची क्रमाक्रमाने लक्षणे सागतो.।।३।।

"एकमेव तद्भवत्यविकल्पो नाविकल्पोऽपि नात्र काचन भिदास्ति नैवात्र काचन भिदास्त्यत्र भिदामिव मन्यमानः शतधा सहस्रधा भिन्नो मृत्योर्मृत्युमाप्नोति । तदेतदद्वयं स्वप्रकाशम्" इत्युत्तरतापनीयश्रुत्यनुसारेण लिङ्गैक्यस्य लक्षणं पञ्चभिः सूत्रैः प्रतिपादयति—

विषयानन्दकणिकानिस्पृहो निर्मलाशयः।
शिवानन्दमहासिन्धुमज्जनादैक्यमुच्यते।।४।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

विषयानन्दकणिकानिस्पृहः शब्दादिविषयानन्दशीकरेषु विरक्तः सन् निर्मलाशयो निर्मलचित्तवानेव शिवानन्दमहासिन्धुमज्जनात् शिवानन्दमहासमुद्रे तादात्म्यानुप्रवेशनाद् ऐक्यं लिङ्गैक्यस्थलमित्युच्यत इत्यर्थः।।४।।

'तो परब्रह्म परशिव एकमेव आहे. त्याच्या ठिकाणी विकल्प, अविकल्प असा भेद नाही. त्याच्या ठिकाणी द्वैतभाव मानणारा शतधा, सहस्रधा, छिन्न विछिन्न होऊन मृत्यू पावतो. म्हणून तो परशिव अद्वय, स्वयंप्रकाश आहे', अशा प्रकारे उत्तरतापनीय श्रुतीला अनुसरून लिंगैक्याची लक्षणे पाच श्लोकात सांगतात—जो शरण विषय सुखाला तुच्छ मानतो, ज्याचे मन निस्पृह आणि निष्पाप असते, जो शिवानंदाच्या महासमुद्रात नेहमी बुडालेला असतो, त्याच्या त्या स्थितीला ऐक्यस्थल असे म्हणतात.।।४।।

नन्विदमैक्यं कीदृशस्य सम्भवतीत्यत्राह—

निर्धूतमलसम्बन्धो निष्कलङ्कमनोगतः।
शिवोऽहमिति भावेन निरूढो हि शिवैक्यताम्।।५।।

निवारिताणवादिमलसम्पर्कवान् कलङ्करहितमनोव्यापारवान् शिवोऽहमिति परामर्शनेन शिवलिङ्गैक्यतां निरूढो हि भज(व)तीति प्रसिद्धम्।।५।।

हे ऐक्यस्थल कोणाला प्राप्त होते? तर—ज्याचे आणवमल, मायामल आणि कार्मिकमल नाहीसे होऊन जो परिशुद्ध झालेला असतो, ज्याचे मन निष्पाप असते, जो शिवोऽहं भावनेने शिवलिंगाशी ऐक्य पावल्याचे निरंतर चिंतन करतो, अशा शरणास ऐक्य स्थितीची प्राप्ती होते.।।५।।

अथ किं पश्यन्नास्ती(स्त इ)त्यत्राह—

शिवेनैक्यं समापन्नश्चिदानन्दस्वरूपिणा।
न पश्यति जगज्जालं मायाकल्पितवैभवम्।।६।।

मायाशक्तिपरिकल्पितं विश्वमपश्यन्नास्त इत्यर्थः।।६।।

ऐक्यानुसंधान करणाऱ्या शरणाची दृष्टी कशी असते? तर, सच्चिदानंदस्वरूपी शिवाशी ऐक्य पावलेल्या शरणाच्या दृष्टीला मायेने निर्माण झालेला जगाचा पसारा, त्याचे वैभव दिसत नसून त्याला सर्व जग शिवमयच दिसते.।।६।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तत्कुतो न पश्यतीत्यत्राह—

ब्रह्माण्डबुद्बुदोद्भेदविजृम्भी तत्त्ववीचिमान्।
मायासिन्धुर्लयं याति शिवैक्यवडवानले।।७।।

ब्रह्माण्डबुद्बुदोद्भेदविजृम्भी ब्रह्माण्डरूपबुद्बुदाविर्भावेन वर्धिष्णुः, तत्त्ववीचिमान् षट्त्रिंशत्तत्त्वलक्षणवीचिमान् मायासिन्धुः शिवैक्यवडवानले शिवलिङ्गैक्यरूपवडवाग्नौ लयं याति। अतः कारणात् प्रपञ्चदर्शनं नास्ति, उपादानकारणनाशात् कार्यनाशस्यावश्यमङ्गीकरणीयत्वात्।।७।।

त्याला प्रपंच आहे तसा का दिसत नाही? तर, अनेक ब्रह्मांडरूपी बुडबुडे आणि छत्तीस तत्त्वाचे तरंग असणारा मायारूपी समुद्र त्या शिवैक्यरूपी वडवाग्नीत जळून नष्ट होतो. म्हणून शिवैक्य अवस्थेत मायानिर्मित सर्व प्रपंच नाहीसा होतो. उपादानकारणाच्या नाशामुळे कार्याचाही नाश होतो, या नियमानुसार शिवैक्यज्ञानामुळे प्रपंचाला मूलकारण असणाऱ्या अज्ञानाचा नाश झाल्याने त्याचे कार्यरूप प्रपंचही नाहीसा होतो.।।७।।

अथ तदेव विशदयति—

मायाशक्तितिरोधानाच्छिवे भेदविकल्पना।
आत्मनस्तद्विनाशे तु नाद्वैतात्किञ्चिदिष्यते।।८।।

शिवे मायाशक्तेस्तिरोधानात् प्रसरणाद् आत्मनो जीवस्य भेदविकल्पना स्यात्। तद्विनाशे मायाप्रसरणस्य नाशे, अद्वैतात् किञ्चिद् ईषद्भेदोऽपि नेष्यते नेच्छाविषयीक्रियते।।८।।

आता त्याचेच स्पष्टीकरण करतात—मायाशक्तीच्या प्रसरणाने जीव आणि शिव यांच्यात भेद दिसतो. त्या मायाशक्तीच्या तिरोधानाने (संकोचाने) त्या दोहोंतील भेद नाहीसा होऊन शिव आणि जीवात अभेद निर्माण होतो. त्याच्या मध्ये किंचितही भेद उरत नाही.।।८।।

ननु शिवजीवयोः पतिपशुलक्षणभेदश्रवणात् कथं किञ्चिद्भेदोऽपि नेष्यत इत्युक्तमित्यत्र— "अहमेको न मे कश्चिन्नाहमन्यस्य कस्यचित्। न तं पश्यामि यस्याहं न तं पश्यामि यो मम।।" इति देवीकालोत्तरवचनानुसारेण शिवलिङ्गैक्यस्य प्रसिद्धशिवाद्वैतं पञ्चभिः सूत्रैः प्रतिपादयति—

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पशुत्वं च पतित्वं च मायामोहविकल्पितम्।
तस्मिन् प्रलयमापन्ने कः पशुः को नु वा पतिः।।९।।

स्पष्टम्।।९।।

शिव हा पती आणि जीव म्हणजे पशू समजून त्याच्यात लक्षणभेद असल्याचे ऐकू येते. परतु त्याच्यात किंचितही भेद नाही, असे देविकालोत्तरातील 'अहमेको न मे कश्चिन' इ. वचनानुसार शिवलिंगैक्याचे प्रसिद्ध शिवाद्वैत पुढील पाच श्लोकात प्रतिपादिले आहे—पशुपणा किंवा पतिपणा हा भेद मायेच्या भ्रांतीतून कल्पिला गेला आहे. ती मायाभ्रांती नाहीशी झाली म्हणजे पशू तरी कोण आणि पती तरी कोण? म्हणजेच ऐक्यस्थली जीव व शिव एकरूपच असतात.।।९।।

अथास्य संसारस्य भेदवल्मीकनिष्ठसर्परूपत्वात् किमस्यौषधमित्यत्राह—

घोरसंसारसर्पस्य भेदवल्मीकशायिनः।
बाधकं परमाद्वैतभावना परमौषधम्।।१०।।

भेदवल्मीकशायिनो जडाजडभेदः, जीवाजीवभेदः, जीवजडभेदः, जीवेश्वरभेदः, जडेश्वरभेद इत्येवंरूपपञ्चविधभेदविशिष्टवल्मीकस्थितस्य घोरसंसारसर्पस्य जननमरणादिभयङ्करस्य संसारसर्पस्य बाधकमौषधं परमाद्वैतभावना जडचेतनैक्यभावनेत्यर्थः।।१०।।

ससार हा भेदरूप वारुळामध्ये असलेल्या सापासारखा आहे. त्यावर औषध कोणते?—जड आणि जडातील भेद, जीव आणि जीवातील भेद, जीव आणि जडातील भेद, जीव आणि ईश्वरातील भेद व जड आणि ईश्वरातील भेद अशा पञ्चविध भेदरूपी वारुळात जन्ममरणात्मक संसाररूपी भयंकर साप आहे. त्यावर खात्रीचे औषध म्हणजे परमाद्वैत-भावना अर्थात् जडचेतनातील ऐक्यभाव हे होय.।।१०।।

नन्वस्य संसारस्य भेदबुद्धिसमुत्पन्नमहासागरत्वादिमं केनोपायेन को वा तरतीत्यत्राह—

भेदबुद्धिसमुत्पन्नमहासंसारसागरम्।
अद्वैतबुद्धिपोतेन समुत्तरति देशिकः।।११।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

देशिकः शिवलिङ्गैक्य इत्यर्थः। शिष्टं स्पष्टम्।।११।।

भेदबुद्धीतून निर्माण झालेल्या ससाररूपी महासागरातून तरून जाण्याचा उपाय कोणता? तर—भेदबुद्धीतून उत्पन्न झालेला संसाररूपी महासागर ऐक्यस्थिती प्राप्त झालेला देशिक अद्वैतबुद्धिरूपी नावेतून तरून जातो.।।११।।

नन्वियं संसृतिः कामरक्षःक्रियाकरी कालरात्रिर्भवति(न्ती) केन नश्यतीत्यत्राह—

अज्ञानतिमिरोद्रिक्ता कामरक्षःक्रियाकरी।
संसारकालरात्रिस्तु नश्येदद्वैतभानुना।।१२।।
तस्मादद्वैतभावस्य सदृशो नास्ति योगिनाम्।
उपायो घोरसंसारमहातापनिवृत्तये।।१३।।

अज्ञानतिमिरोद्रिक्ता अज्ञानलक्षणगाढान्धकारेणोत्पन्ना सती कामरक्षःक्रियाकरी कामलक्षणराक्षसकृत्यं कुर्वती संसारकालरात्रिः, अद्वैतभानुना शिवाद्वैतसूर्येण नश्यतीत्यर्थः।।१२।।

स्पष्टम्।।१३।।

ही संसाररूपी काळोखी रात्र कशाने नाहीशी होते? तर, अज्ञानांधःकाराने व्यापलेली आणि मदनरूप राक्षसाची शक्ती वाढविणारी संसाररूपी काळीकुट्ट रात्र अद्वैतज्ञानरूपी सूर्याच्या प्रकाशामुळे नाहीशी होते. यावरून स्पष्ट होते की, शिवयोग्याना घोर संसारातील महासंकटे दूर करण्यास अद्वैतभावनेसारखा दुसरा उपाय नाही.।।१२-१३।।

अथ शिवाद्वैतातिशयमुक्त्वा सूत्रद्वयेनैक्यस्थलं समापयति—

अद्वैतभावनाजातं क्षणमात्रेऽपि यत्सुखम्।
तत्सुखं कोटिवर्षेण प्राप्यते नैव भोगिभिः।।१४।।
चित्तवृत्तिसमालीनजगतः शिवयोगिनः।
शिवानन्दपरिस्फूर्तिर्मुक्तिरित्यभिधीयते।।१५।।

भोगिभी राजभोगिभिरित्यर्थः। शिष्टं स्पष्टम्।।१४-१५।।

इत्यैक्यस्थलम्

आता अद्वैताचे महत्त्व सागून ऐक्यस्थलाचे निरूपण संपवितात— एका क्षणाच्या अद्वैत भावनेपासून उत्पन्न झालेले जे

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सुख असते ते विषयभोग्याला एक कोटी वर्षांतही लाभत नाही. ज्याच्या मनोवृत्तीत सर्व जगच सामावलेले आहे त्या शिवयोग्याला शिवानंदाचे जे परिस्फुरण होते, त्यालाच मुक्ती म्हणतात. ।।१४-१५।।

अथ आचारसम्पत्तिस्थलम्

अथ—"यथा रविः सर्वरसान् प्रभुङ्क्ते हुताशनश्चापि हि सर्वभक्षकः। तथैव योगी विषयान् प्रभुङ्क्ते न लिप्यते कर्मशुभाशुभैश्च।।" इति शिवरहस्यवचनानुसारेण लिङ्गैक्यस्य सदाचारसम्पत्तिं द्वादशसूत्रैः प्रतिपादयति—

शिवैकभावनापन्नशिवत्वो देहवानपि।
देशिको हि न लिप्येत स्वाचारैः सूतकादिभिः।।१६।।

शिवैकभावनया लब्धशिवत्ववान् देशिकः शिवलिङ्गैक्यो देहवानपि जीवन्मुक्तः सन् सूतकादिभिः सूतकप्रभृतिभिः स्वाचारैः स्वेच्छाचारैः, न लिप्येतेत्यर्थः।।१६।।

'सूर्य जसा सर्व रसांचे शोषण करतो, अग्नी जसा सर्वभक्षक आहे, तसा शिवयोगीही जीवनात सर्व विषयाचा उपभोग घेत असला तरी तो शुभ अथवा अशुभ कर्मात लिप्त होत नाही' या शिवरहस्यवचनानुसार ऐक्यस्थलसाधकाच्या 'सदाचारसंपत्तिस्थलाचे वर्णन बारा श्लोकांतून करतात—शिवसामरस्यभावनेने शिवैक्य म्हणजे शिवत्व प्राप्त झालेला देशिक देह धारण केलेला असला तरी तो जीवन्मुक्त असल्याने स्वतःच्या आचाराने जननमरणादी पंचसूतकांपासून अलिप्त असतो. त्याच्या आचारांना कोणत्याही प्रकारचे सूतक बाधक होत नाही.।।१६।।

कस्मादित्यत्राह—

शिवाद्वैतपरिज्ञाने स्थिते सति मनस्विनाम्।
कर्मणा किं नु भाव्यं स्यादकृतेन कृतेन वा।।१७।।

मनस्विनां लिङ्गैक्यनिष्ठचित्तवृत्तीनां शिवाद्वैतज्ञाने स्थिरे सति, अकृतेन कर्मणा दुष्कर्मणा कृतेन वा सत्कर्मणा वा किं नु भाव्यं स्यात्, न किञ्चिदपि स्यादित्यर्थः।।१७।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

लिंगैक्य भावनेत मनोव्यापार लय पावलेल्या ज्ञान्याना शिवाद्वैतज्ञान दृढ झाल्यावर त्याच्याकडून आचरल्या जाणाऱ्या दुष्कर्म अथवा सत्कर्मापासून कोणतेच फल निष्पन्न होत नाही म्हणजेच त्यांचे मन कोणत्याही कर्मात लिप्त झालेले नसते.।।१७।।

तत्कुत इत्यत्राह—

शम्भोरेकत्वभावेन सर्वत्र समदर्शनः।
कुर्वन्नपि महाकर्म न तत्फलमवाप्नुयात्।।१८।।

सर्वत्र समदर्शनो लोष्टाश्मकाञ्चनादिषु सर्वत्र समदर्शनः शिव-लिङ्गैक्यः शम्भोरेकत्वभावेन ऐक्यभावेन महाकर्म पुण्यपापरूप महाकर्म कुर्वन्नपि तत्फलं नाप्नुयात् । सर्वस्यापि शिवमयत्वेन दर्शनात् तल्लेपो नास्तीति भावः।।१८।।

ते कसे? तर—शिवाशी ऐक्य साधले असल्यामुळे सर्वत्र शिवच परिपूर्णपणे व्यापलेला आहे असे जाणून सर्वांशी समत्व बुद्धीने वागणाऱ्या योग्याला, त्याने कोणतेही मोठे पुण्य अथवा पापकर्म केले तरी त्याचे फळ भोगावे लागत नाही.।।१८।।

सुकृती दुष्कृती वापि ब्राह्मणो वान्त्यजोऽपि वा।
शिवैकभावयुक्तानां सदृशो भवति ध्रुवम्।।१९।।

शिवैकभावयुक्तानां सर्वत्र शिवाभेदज्ञानयुक्तानां शिवलिङ्गैक्यानां सुकृती पुण्यात्मा वा दुष्कृती पापात्मा वा ब्राह्मणो अन्त्यजो वा श्वपचो वा सदृशः समानो भवति ध्रुवं निश्चयः।।१९।।

शिवाशी ऐक्य पावलेल्या शिवाद्वैतज्ञानयुक्त शिवयोग्याला कोणी पुण्यवान असो की पापी असो, ब्राह्मण असो किंवा अंत्यज असो, सारेजण सारखेच असतात, यात कसलाही संशय नाही.।।१९।।

ननु शिवज्ञानिनामपि वर्णाश्रमप्राप्तधर्माः कथं त्यजनीया इत्यत्राह—

वर्णाश्रमसदाचारैर्ज्ञानिनां किं प्रयोजनम्।
लौकिकस्तु सदाचारः फलाभावेऽपि भाव्यते।।२०।।

वर्णाश्रमप्राप्तैर्ब्राह्मणादिवर्णब्रह्मचर्याद्याश्रमप्राप्तैः सदाचारैः, ज्ञानिनां शिवज्ञानिनां किं प्रयोजनं न किञ्चित् प्रयोजनमित्यर्थः। कुत इत्यत्राह—

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

लौकिकस्तु सदाचारो वर्णाश्रमगतनित्यनैमित्तिकसदाचारः फलाभावेऽपि भाव्यते विधीयत इत्यर्थः।।२०।।

शिवज्ञानी असला तरी वर्णाश्रम धर्माचा त्याग त्याला कसा करता येईल? याचे उत्तर असे की—शिवाद्वैतज्ञान प्राप्त झालेल्या शिवयोग्याना ब्राह्मणादी वर्ण आणि ब्रह्मचर्यादी आश्रमाचे सदाचार पाळण्याचे काय प्रयोजन? काही नाही. कारण लौकिक व्यवहारात ज्या प्रमाणे नित्य नैमित्तिक कर्माचे फळ मिळत नसूनही लोक ती कर्मे आचरतात, तद्वत् वर्णाश्रमाच्या सदाचार-आचरणाने शिवयोग्याना काही फळाची अपेक्षा नसते, तरीही त्याचे आचरण ते करीत असतात. परतु त्यानी ते केलेच पाहिजे असे बधनकारक नाही.।।२०।।

ननु ज्ञानिनामपि शरीरसम्बन्धस्य विद्यमानत्वात् कथं ते परित्यजनीयाः, अकरणे प्रत्यवायश्रवणादित्यत्राह—

निर्दग्धकर्मबीजस्य निर्मलज्ञानवह्निना।
देहिवद्भासमानस्य देहयात्रा तु लौकिकी।।२१।।

निर्मलशिवसंविद्वह्निना पुनरुत्पत्तिशङ्काशून्यत्वेन नितरामतिशयेन दग्ध-पुण्यपापलक्षणकर्मबीजवतः शिवज्ञानिनः प्रत्यवायसम्बन्धो नास्त्येव। दग्ध-पटन्यायेन शरीरीव भासमानस्य तस्य देहयात्रा तु करचरण-संचालनादिव्यवहृतिस्तु लौकिकी विदेहकैवल्यपर्यन्तमनुवर्तत इत्यस्थिरे-त्यर्थः।।२१।।

नित्यनैमित्तिक कर्म केल्याने फलप्राप्ती होत नसली तरी ते न केल्याने मात्र पाप लागते असा नियम असल्याने लौकिक जन ती कर्मे करतात. तसे देहधारी अशा शिवाद्वैत-ज्ञान्यांनीही ती नित्यनैमित्तिक कर्मे न केल्याने त्याना पाप लागत नाही का? याचे उत्तर असे की, दग्धपट न्यायाने विशुद्ध ज्ञानरूपी अग्नीने ज्याचे कर्मरूप बीज जळून गेलेले आहे, असा मनुष्य जरी देहधारी दिसत असला तरी त्याचे लौकिक आचरण लोकाना दिसण्यापुरते असते. वास्तविक त्याचा कर्माचरणाशी काही सबध उरलेला नसतो. म्हणून त्याने नित्यनैमित्तिक कर्मे केली नाहीत तरी त्याला पाप लागत नाही.।।२१।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अथ— "तस्य तावदेव चिरं यावन्न विमोक्ष्येऽथ संपत्स्ये", "तस्य पुत्रा दायमुपयन्ति सुहृदः साधुकृत्यां द्विषन्तः पापकृत्याम्", "यथा पुष्करपलाश आपो न श्लिष्यन्त एवमेवंविदि पापं कर्म न श्लिष्यते", "स उत्तमः पुरुषः स तत्र पर्येति" इति छान्दोग्यश्रुत्यनुसारेणाह—

शिवज्ञानसमापन्नस्थिरवैराग्यलक्षणः ।
स्वकर्मणा न लिप्येत पद्मपत्रमिवाम्भसा ।।२२।।

शिवज्ञानलब्धदृढवैराग्यचिह्नः शिवलिङ्गैक्यः स्वकर्मणा स्वेच्छाकर्मणा अम्भसा जलेन पद्मपत्रमिव न लिप्येत इत्यर्थः ।।२२।।

ज्ञानी जगामध्ये पद्मपत्राप्रमाणे निर्लिप्त राहून वागत असतो असे छादोग्य श्रुतीच्या आधाराने सांगतात—पाण्यात असणारे कमळाचे पान जसे पाण्याने भिजत नाही, त्याप्रमाणे शिवाच्या अद्वैतज्ञानाने उत्पन्न झालेले दृढ वैराग्य ज्याच्या मनात पूर्णपणे बिंबले आहे, त्याने कोणतेही कर्म केले तरी तो त्याच्या फलापासून अलिप्त असतो.।।२२।।

"यथा वायुः सुशीघ्रोऽपि मुक्त्वाकाशं न गच्छति" इति निःश्वास-कारिकानुसारेण शिवलिङ्गनिष्ठस्य सर्वापि क्रिया शिवलिङ्गपूजारूपेति पञ्चभिः सूत्रैः प्रतिपादयति—

गच्छंस्तिष्ठन् स्वपन् वापि जाग्रन् वापि महामतिः ।
शिवज्ञानसमायोगाच्छिवपूजापरः सदा ।।२३।।

महामतिः शिवलिङ्गैक्यः, गच्छन् गमनसमये तिष्ठन्, स्थितिसमये स्वपन्, निद्रासमये जाग्रन्, विषयदर्शनसमये सदा निरन्तरं शिवज्ञानसमा-योगात् शिवानुसन्धानसम्बन्धात् शिवपूजापरः लिङ्गनिष्ठ इत्यर्थः ।।२३।।

'अति वेगवान वायूही आकाशाला सोडून जात नाही' या निःश्वासकारिकातील उक्तीप्रमाणे शिवलिंगनिष्ठ अशा पुरुषाच्या सर्व क्रिया शिवपूजारूपच असतात, असे पाच श्लोकांत सांगतात—शिवसामरस्य पावलेला शिवयोगी वाटेने जात असो, एके ठिकाणी बसलेला असो, झोपलेला असो अथवा जागा असो, त्याला शिवज्ञान प्राप्त झाले असल्यामुळे तो नेहमी शिवपूजाच करीत असतो.।।२३।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ननु विषयदर्शनसमये कथं शिवानुसन्धानमित्यत्राह—

यद्यत्पश्यति सामोदं वस्तु लोकेषु देशिकः।
शिवदर्शनसम्पत्तिस्तत्र तत्र महात्मनः।।२४।।

देशिकः शिवलिङ्गैक्यः, लोकेषु यद्यद्वस्तु घटपटादिकं सामोदं प्रीतियुक्तं सत् पश्यति, तत्र तत्र तस्मिंस्तस्मिन् वस्तुनि महात्मनः शिवलिङ्गैक्यस्य शिवदर्शनसम्पत्तिः शिवालोकनसम्पत्तिर्भवेत् शिवातिरेकेण पदार्थान्तराभावात् चिन्मयत्वबुद्धिर्भवेदित्यर्थः।।२४।।

जगातील विषयांचे दर्शन घडताना तो शिवाचे अनुसधान कसे करतो? तर—शिवैक्य स्थितीतील देशिक व्यवहारात घटपटादी ज्या ज्या वस्तू आनंदयुक्त अंतःकरणाने पाहात असतो, त्या सर्व वस्तूंमध्ये त्याला शिवाच्याच दर्शनसंपत्तीचा लाभ होत असतो. अर्थात् त्याची बुद्धी चिन्मय झालेली असल्यामुळे त्याच्या दृष्टीला शिवाशिवाय अन्य कोणतीही वस्तू जगात दिसत नाही.।।२४।।

अथ— "आत्मा त्वं गिरिजा मतिः परिचराः प्राणाः शरीरं गृहं पूजा ते विषयोपभोगरचना निद्रा समाधिस्थितिः। संचारः पदयोः प्रदक्षिणविधिः स्तोत्राणि सर्वा गिरो यद्यत्कर्म करोमि तत्तदखिलं शम्भो तवाराधनम्।।" इत्यभियुक्तवचनानुसारेण त्रिकरणशुद्धशिवलिङ्गपूजोपचारं त्रिभिः सूत्रैः प्रतिपादयन् आचारसम्पत्तिस्थलं समापयति—

यद्यच्चिन्तयते योगी मनसा शुद्धभावनः।
तत्तच्छिवमयत्वेन शिवध्यानमुदाहृतम्।।२५।।

शुद्धभावनो निर्मलभावनावानित्यर्थः। शिष्टं स्पष्टम्।।२५।।

'माझे शरीर हे आपले मंदिर आहे, त्यातील आत्मा आपण आहात, माझी बुद्धी ही पार्वती, पंचप्राण हे सहचर, विषयोपभोग हे आपल्या पूजा साहित्याची रचना होय. माझी निद्रा ही समाधी-अवस्था, पायाने चालत राहातो ही प्रदक्षिणा, मी जे जे बोलतो ते ते सर्व स्तोत्ररूप, एकंदरीत मी जे जे कर्म करतो ते ते सर्व हे, शंभो आपल्या आराधनेसाठीच आहे असे समजावे'. या शिवमानसस्तोत्रातील वर्णनानुसार त्रिकरणशुद्ध शिवलिंगपूजेचा उपचार तीन श्लोकांत वर्णन करून आचारसंपत्तिस्थलाचे वर्णन

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सपवितात—शिवयोगी शुद्ध मनाने जे जे चिंतितो ते ते सर्व शिवमय असल्याने ते त्याचे शिवध्यानच होय.।।२५।।

यत्किञ्चिद्भाषितं लोके स्वेच्छया शिवयोगिना।
शिवस्तोत्रमिदं सर्वं यस्मात् सर्वात्मकः शिवः।।२६।।

स्पष्टम्।।२६।।

तो शिवयोगी स्वेच्छेने लोकामध्ये जे काही बोलतो ते सर्व शिवस्तोत्रासारखेच. कारण शिव हा सर्वात्मक व सर्वव्यापी आहे.।।२६।।

या या चेष्टा समुत्पन्ना जायते शिवयोगिनाम्।
सा सा पूजा महेशस्य सर्वदा तद्गतात्मनाम्।।२७।।

शिवयोगिनां शिवलिङ्गैक्यानां या या चेष्टा कायक्रिया जायते, तद्गतात्मनां शिवलिङ्गे तादात्म्येन प्रविष्टस्वरूपवतां तेषां सा सा क्रिया सर्वदा महेशस्य शिवलिङ्गस्य पूजेत्यर्थः।।२७।।

इत्याचारसम्पत्तिस्थलम्

शिवयोग्याचे मन सदैव शिवस्वरूपात निमग्न असल्याने त्याच्या हातून कळत नकळत ज्या काही क्रिया घडतात त्या सर्व शिवपूजा स्वरूपच असतात.।।२७।।

अथैकभाजनस्थलम्

अथ— "परेऽव्यये सर्व एकीभवन्ति" इति मुण्डकोपनिषद्वचनानुसारेण सर्वाचारसम्पत्तिमतः शिवलिङ्गैक्यस्य एकभाजनस्थलं पञ्चभिः सूत्रैः प्रतिपादयति—

विश्वं शिवमयं चेति सदा भावयतो धिया।
शिवैकभाजनात्मत्वादेकभाजनमुच्यते।।२८।।

लिङ्गैक्यस्य शिवैक्यभाजनात्मत्वात् शिवैकाश्रयत्वाद् एकभाजनस्थलमित्युच्यत इत्यर्थः।।२८।।

'सर्व वस्तुजात परात्पर अव्ययामध्ये (परशिवामध्ये) लय पावतात, सामावून जातात' या अर्थाच्या मुंडकोपनिषद वचनाधारे सर्वाचार संपत्तियुक्त शिवलिंगैक्य शिवयोग्याच्या एकभाजन स्थलाचे (आश्रयस्थानाचे) पाच श्लोकांत वर्णन करतात—हे विश्व

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

शिवमय आहे असे सदैव एकाग्रबुद्धीने अनुभवल्या जाणाऱ्या जगातील सर्व वस्तूंना शिवच एकमेव आश्रयस्थान असल्याचे अनुभवास येण्याच्या अवस्थेला एकभाजनस्थल असे म्हणतात.।।२८।।

ननु किमनेन भवतीत्यत्राह—

स्वस्य सर्वस्य लोकस्य शिवस्याद्वैतदर्शनात्।
एकभाजनयोगेन प्रसादैक्यमतिर्भवेत्।।२९।।

स्वस्य स्वात्मनः सर्वस्य लोकस्य समस्तजनस्य अद्वैतदर्शनाद् अहमिति चिदैक्यदर्शनाद् एकभाजनयोगेन एककूटत्वेन प्रसादैक्यमतिः शिवप्रसाद एव स्वप्रसादः, स्वप्रसाद एव शिवप्रसादः, स एव स्वातिरिक्त इव भासमानस्य शिवभक्तस्य प्रसाद इति प्रसादैक्यमतिर्भवेदिति चरमूर्तिपादोदकप्रसादावपि शिवस्य स्वस्य च योग्याविति भावः।।२९।।

अशी भावना केल्याने काय होते? तर—आपण स्वतः, सर्व लोक, जग आणि शिव या सर्वांत असणाऱ्या अद्वैताच्या अनुभूतीमुळे एकभाजनस्थलावस्थेत प्रसादाविषयी ऐक्यबुद्धी निर्माण होते. त्यामुळे आपला प्रसाद तो शिवप्रसाद, शिवप्रसाद तो आपला प्रसाद, त्याखेरीज आपणाहून निराळ्या भासणाऱ्या शिवभक्ताचा प्रसादही शिवप्रसादच अशी दृढभावना होते. म्हणूनच चरमूर्तीचे पादोदक लिंगाला व आपल्याला घेण्याची पद्धत वीरशैवाचारात प्रसिद्ध आहे. म्हणजेच ज्यांच्या ठिकाणी गुरू, लिंग, जगम याच्या प्रसादामध्ये ऐक्यबुद्धी जाणवत नाही, त्याना शिवाद्वैतज्ञान होत नाही.।।२९।।

ननु शिवस्य विश्वस्यैकरूपत्वे तयोः स्थितिः कथमित्यत्राह—

शिवे विश्वमिदं सर्वं शिवः सर्वत्र भासते।
आधाराधेयभावेन शिवस्य जगतः स्थितिः।।३०।।

शिवे विश्वं विश्वस्मिन् शिव इति बीजाङ्कुरन्यायेनाधाराधेयभावेन सम्बन्धेन सामरस्येन शिवस्य जगतः स्थितिरित्यर्थः।।३०।।

शिव आणि विश्वामध्ये एकत्व असल्यास त्या दोघांतील एकत्वाचा संबंध कसा आहे? तर—शिवामध्ये हे सर्व विश्व स्थित आहे आणि सर्व चराचरात शिव व्यापून राहिलेला आहे असे

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अनुभवास येते, म्हणून शिव आणि विश्व याच्यात बीजांकुर न्यायाने परस्पर आधार-आधेय भावाचा संबंध आहे. अशा प्रकारे प्रपंच आणि परमात्मा सामरस्यरूपाने असतात.।।३०।।

एवं चिदेकभाजनतां प्राप्तस्य मायिकभेदेन प्रयोजनं नास्तीत्याह—

चिदेकभाजनं यस्य चित्तवृत्तेः शिवात्मकम्।
नान्यत् तस्य किमेतेन मायामूलेन वस्तुना।।३१।।

यस्य लिङ्गैक्यस्य चित्तवृत्तेर्मनोव्यापारस्य चिद् मनोव्यापाररूपा ज्ञप्तिरेव शिवात्मकमेकभाजनं शिवस्वरूपैकभाजनम्, तस्य मायामूलेन मायामूलकेन एतेन भेदेन किम्? किं प्रयोजनम्? न किञ्चित्प्रयोजनमित्यर्थः।।३१।।

अशी चिदेकभाजनस्थिती प्राप्त झालेल्याना मायिक भेदभावनेचे प्रयोजन नसते, हे सांगतात—ज्याला आपल्या मनोवृत्तिरूपी ज्ञानाने हे सर्व जग शिवात्मरूप दिसते, दुसरे काहीही दिसत नाही, त्याला एकभाजनस्थिती प्राप्त झालेली असते. अशाना मायाकल्पित भेदाचे काही प्रयोजन नसते.।।३१।।

नन्विदं विश्वं कथं शिवात्मकमित्यत्राह—

चित्प्रकाशयते विश्वं तद्विना नास्ति वस्तु हि।
चिदेकनिष्ठचित्तानां किं मायापरिकल्पितैः।।३२।।

विश्वं घटाद्युपलक्षितनिखिलप्रपञ्चं चित्प्रकाशयते। तद्विना चित्प्रकाशं विना वस्तु घटादिवस्तु नास्ति। विषयसत्त्वोपगमे संविदेव भगवती शरणमिति प्राभाकरा अपि मन्यन्ते। अतो यद्यदधीनतया भासते, तत्तदात्मकं जलतरङ्गादिवदिति चिदेकनिष्ठचित्तानां मायापरिकल्पितैः प्रापञ्चिकवेद्यपदार्थैः किं प्रयोजनमित्यर्थः।।३२।।

हा प्रपंच शिवरूप कसा आहे हे सांगतात—या घटपटादी प्रपंचाला परमात्म्याचे चैतन्यच प्रकाशित करते. त्या चैतन्याशिवाय जगातील कोणत्याच वस्तूची प्रतीती होत नाही. पाण्यात असलेले बुडबुडे, तरंग हे जसे पाण्यापेक्षा वेगळे नाहीत, तशा रीतीने हे विश्व शिवापासूनच उत्पन्न झालेले असल्यामुळे ते त्याच्यापेक्षा वेगळे नसून शिवस्वरूपच आहे, अशी चिदेक निष्ठा असणाऱ्या

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

शिवयोग्यांना मायाकल्पित वस्तूंचे काय प्रयोजन? काहीच नाही.।।३२।।

अथैकभाजनस्थलं समापयति—

वृत्तिशून्ये स्वहृदये शिवलीने निराकुले।
यः सदा वर्तते योगी स मुक्तो नात्र संशयः।।३३।।

यः शिवयोगी वृत्तिशून्ये व्यापारशून्ये निराकुले क्षोभरहिते शिवलीने शिवलिङ्गैक्यभूते स्वहृदये सदा वर्तते, स मुक्तः जीवन्मुक्त इत्यर्थः। अत्र सन्देहो नास्तीत्यर्थः।।३३।।

इत्येकभाजनस्थलम्

आता एकभाजनस्थलाचा समारोप करतात—ज्या शिवयोग्याचे हृदय विविध विचारतरंगांनी रहित, विकारविरहित, सर्व मनोवृत्तीपासून मुक्त झालेले आहे व जो सदैव आत्मलीन वृत्तीत राहातो तो खरा जीवनमुक्त होय, यात संशय नाही.।।३३।।

अथ सहभोजनस्थलम्

अथ—"अग्राह्यमग्राह्येण वायुं वायव्येन सोमं सौम्येन ग्रसति स्वेन तेजसा तस्मादुपसंहर्त्रे महाग्रासाय वै नमो नमः" इत्यथर्वश्रुत्यनुसारेणैक-भाजनस्थलनिष्ठस्य सहभोजनस्थलं दशभिः सूत्रैः प्रतिपादयति—

गुरोः शिवस्य शिष्यस्य स्वस्वरूपतया स्मृतिः।
सहभोजनमाख्यातं सर्वग्रासात्मभावतः।।३४।।

श्रीगुरोः शिवलिङ्गस्य शिष्यस्य च स्वस्वरूपतया स्वात्माभेदेन अस्मत्प्रत्ययानतिरिक्तत्वेन स्मृतिः सर्वग्रासात्मभावतो घटो मया ज्ञातः, पटो मया ज्ञातः, चैत्रो मया ज्ञातः, मैत्रो मया ज्ञात इति विश्वभेदग्रसनमेव स्वरूपत्वात् सहभोजननम् अनुभूतपदार्थस्य पुनः स्वात्मविश्रान्तत्वेन परामर्शनलक्षणं सहभोजनमित्यर्थः।।३४।।

'अग्राह्यरूप तेजाने अग्राह्य वस्तूस, वायव्यरूप तेजाने वायूस व सोम-संबधीरूप तेजाने चंद्रास आणि या सर्वांचा उपसंहार कर्त्या महाग्रासरूप दिव्यतेजोमय परब्रह्मास नमस्कार असो. या अथर्वश्रुतीच्या उक्तीला अनुसरून एकभाजन निष्ठावंत अशा शिवयोग्याच्या सहभोजन स्थलाचे स्वरूप दहा श्लोकातून

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

वर्णितात—श्रीगुरू, शिवलिग आणि शिष्य यांचे स्वरूप माझ्या स्वरूपापासून भिन्न नाही अशी जी जाणीव होते, तिला सर्वग्रासात्मक भाव असे म्हणतात. या भावनेने प्रपचातील सर्व भिन्नभिन्न घटपटादी वस्तूच्या भेदभावनेचे ग्रसन करून ती सर्व रूपे स्वात्मस्वरूप आहेत, असे चिंतन करण्याला सह्भोजन म्हणतात.।।३४।।

अथ निष्कर्षमाह—

शिवं विश्वं गुरुं साक्षाद् योजयेन्नित्यमात्मनि।
एकत्वेन चिदाकारे तदिदं सह्भोजनम्।।३५।।

साक्षाच्चिदाकार आत्मनि शिवं गुरुं विश्वं च एकत्वेन एकरूपत्वेन नित्यं संयोजयेत्। संयोजनं नाम अस्मद्रूपानतिरिक्तत्वेन परामर्शनं यदस्ति तदिदं सह्भोजनम्। अत्र गुरुशिवयोरस्मद्रूपानतिरिक्तत्वात् स्वात्मैक्येन संयोजनं सम्भवति, इदंरूपतया भासमानस्य जडस्य कथमात्मैक्यसंयोजनं सम्भवतीति नाशङ्कनीयम्, तस्याप्युक्तरीत्यात्मविश्रान्तत्वात्। अन्यथा स्मृतिर्न स्यात्, संसारस्यापि सविषयत्वेनैवात्मसमवेतत्वात्।।३५।।

आता निष्कर्ष असा की, साक्षात् चिदाकार अशा स्वात्मस्वरूपात शिव, गुरू आणि जगतासह सर्व मिळून एकरूपत्वाने जाणण्याला सह्भोजन म्हणतात. शिव आणि गुरू हे स्वात्मस्वरूपापेक्षा वेगळे नसल्यामुळे आत्म्याशी त्याच्या अभेदाचे चिंतन होऊ शकते, परंतु विश्व हे जड असल्यामुळे त्याच्याशी अभेद कसा होऊ शकेल अशी शका घेऊ नये. कारण जडविश्वाला सुद्धा आत्माच अधिष्ठान असल्यामुळे ते सुद्धा आत्मसमवेत आहे. त्यामुळे त्याच्या आत्म्याशी अभेदचिंतनात कसलीही अडचण नाही.।।३५।।

अथ पुनरपि निष्कर्षमाह—

अयं शिवो गुरुश्चैष जगदेतच्चराचरम्।
अहं चेति मतिर्यस्य नास्त्यसौ विश्वभोजकः।।३६।।

अयं शिवः, एष गुरुः स्वामी, एतत्स्थावरजङ्गमात्मकं विश्वम्, अहं च इति यस्य बुद्धिर्भेदबुद्धिर्नास्ति, सोऽसौ शिवलिङ्गैक्यो विश्वभोजको जगद्भेदभक्षक इत्यर्थः।।३६।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

म्हणून पुन्हा निष्कर्ष असा की-हा शिव आहे, हा गुरू आहे, हे जग आहे आणि मी त्यापेक्षा निराळा आहे अशी भेदबुद्धी ज्याच्याठिकाणी मुळीच उरली नाही, त्याला विश्वभोजक अर्थात् जगाच्या भेदांचे भक्षण करणारा असे म्हणावे.।।३६।।

अथेतोऽपि निष्कर्षमाह—

अहं भृत्यः शिवः स्वामी शिष्योऽहं गुरुरेव वै।
इति यस्य मतिर्नास्ति स चाद्वैतपदे स्थितः।।३७।।

शिवः स्वामी अहं भृत्य एष गुरुरहं शिष्य इति यस्य मतिर्भेदबुद्धिर्नास्ति, स च शिवलिङ्गैक्यः, अद्वैतपदे विश्वभेदग्रासात्मकशिवाद्वैतस्थाने, स्थितः तिष्ठतीत्यर्थः।।३७।।

शिव स्वामी आहे, मी सेवक आहे, तो गुरू आहे व मी शिष्य आहे, अशा तऱ्हेची भेदबुद्धी ज्याची मुळीच नसते त्यालाच शिवलिंगैक्य अद्वैतपदावर, विश्वभेदग्रासात्मक शिवाद्वैत पदावर स्थिर झाला आहे असे म्हणावे.।।३७।।

अथैवंविधसहभोजनसम्पन्न एव विश्वहोमीति कथ्यत इत्याह—

पराहन्तामये स्वात्मपावके विश्वभास्वति।
इदन्ताहव्यहोमेन विश्वहोमीति कथ्यते।।३८।।

विश्वप्रकाशके उत्कृष्टमूलाहङ्कारमये स्वात्माग्नौ इदन्तारूपहवनद्रव्यहोमेन विश्वहोमीति कथ्यत इत्यर्थः।।३८।।

अशी सहभोजनस्थिती प्राप्त केलेल्याला विश्वहोमीही म्हणावे, असे सांगतात—विश्वाला प्रकाशित करणाऱ्या उत्कृष्ट मूल अहंकाररूप स्वात्म-अग्नीत इदंतारूप (भेदबुद्धी) हव्य-द्रव्याची जो आहुती देतो त्याला विश्वहोमी असे म्हणावे. तात्पर्य प्रपचांतील सर्व भेद नाहीसे करून जो त्याच्यात आत्मरूप पाहातो त्यांस विश्वहोमी म्हणतात.।।३८।।

ननु कासौ पराहन्तेत्यत्राह—

अहं शिवो गुरुश्चाहमहं विश्वं चराचरम्।
यया विज्ञायते सम्यक् पूर्णाहन्तेति सा स्मृता।।३९।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

शिवोऽहं गुरुरहं च चराचरं विश्वमहमिति यया चित्या सम्यग् विज्ञायते, अत्र– "प्रत्यवमर्शात्मासौ चितिः स्वरसवाहिनी परा वाग् या। आद्यन्तप्रत्याहृतवर्णगणा सत्यहन्ता सा।।" इति पञ्चाशिकाशास्त्रस्थित्या देशकालाद्याकारकृतसंकोचराहित्येन तद्वाचकसकलमातृकार्णक्रोडीकारलक्षण-प्रत्याहृताकारहकारसंमेलनात्मकतदन्तर्गतवेद्यसंस्कारलक्षणबिन्दुस्पन्दस्फुरितपर-शक्तिशिवात्मकत्वेन स्थूलप्रपञ्चोत्पत्तेः प्राक् तत्कारणत्वेनाण्डरसन्यायेन सामान्यतोऽहमिति पश्चाद् अन्यव्यामिश्रमस्वतन्त्रं भेदाशक्यावभासनं प्रतिबिम्बमिति तल्लक्षणयोगसाम्येन प्रतिबिम्बगत्या विश्वमयत्वेन स्वात-न्त्र्येण भासमाना पूर्णाहन्तेति स्मृतेत्यर्थः।।३९।।

अशी पराअहंता म्हणजे काय? तर–जिच्यामुळे मीच शंकर, मीच गुरू, मीच स्थावरजंगम विश्व आहे, अशी सर्वव्यापी अहंता जाणवते ती पूर्णाहंता होय. ही अहंता अ पासून ह पर्यंत सकलमातृकाक्षरांचा समूह असून बिंदुसमवेत आहे. बिंदु हा स्पद-स्फुरित पराशक्तीचे स्वरूप होय. नाद हा परमात्मा म्हणून प्रपच हा बिंदुनादात्म म्हणजे शिवशक्त्यात्मक आहे. बिंदूचा आधार नाद आणि प्रपंचाचा आधार बिंदू होय, या कामिकागमाच्या वचनानुसार पराहंतारूपी शक्ती शिवाशी अभिन्न असून शिवामध्ये मयूरांडरसन्यायाने असलेल्या अव्यक्त प्रपंचाच्या उत्पत्तीला उपादान कारण असून तिला मूलाहंता असे म्हणतात. अशी मूलाहंता असणारा सहभोजनस्थली शिवयोगी या जगाच्या उत्पत्ति-स्थितिलयाला आपण मूलस्थान असल्याचे जाणतात.।।३९।।

अथोक्तलक्षणविश्वहोम्येव ज्ञानयज्ञदीक्षित इत्याह–

आधारवह्नौ चिद्रूपे भेदजातं जगद्धविः।
जुहोति ज्ञानयज्वा यः स ज्ञेयो विश्वहव्यभुक्।।४०।।

चिद्रूपे ज्ञानस्वरूपे आधारवह्नौ आज्ञाचक्रगतवह्नौ भेदजातं मायाकल्पितं जगद्धविः विश्वहविः यो जुहोति, स विश्वहव्यभुग् विश्वहविर्भोक्ता ज्ञानयज्वा ज्ञानयज्ञदीक्षित इति ज्ञेयो ज्ञातुं योग्य इत्यर्थः।।४०।।

त्या विश्वहोमालाच ज्ञानयज्ञदीक्षित असेही म्हणतात, हे सांगतात–आज्ञाचक्रात असलेल्या ज्ञानस्वरूप अशा अग्नीत मायाकल्पित अशा जगातील भेदरूप हविद्रव्याचे जो हवन करतो तोच विश्वहविभोक्ता आणि ज्ञानयज्ञ-दीक्षित म्हणविण्यास योग्य होतो.।।४०।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ननु प्रत्यक्षवह्नौ तद्व्यतिरिक्तकाष्ठादौ निक्षिप्ते सति तन्नाशो दृश्यते, ज्ञानाग्नौ निक्षिप्तजगतो नाशः कथमित्यत्राह—

चिदाकारे पराकाशे परमानन्दभास्वति।
विलीनचित्तवृत्तीनां का वा विश्वक्रमस्थितिः।।४१।।

चिदाकारे पराकाशे ऊर्ध्वहृत्कमलकर्णिकाविवरे परमानन्दभास्वति नित्यानन्दमयमहालिङ्गाख्यभानौ विलीनचित्तवृत्तीनां लयीभूतमनोव्यापारवतां लिङ्गैक्यानां विश्वक्रमस्थितिः विश्वव्यापारवर्तनम्, कापि नास्तीत्यर्थः ।।४१।।

प्रत्यक्ष अग्नीत त्या व्यतिरिक्त टाकलेल्या लाकडासारख्या वस्तूंचा जळून नाश झालेला दिसतो, परतु ज्ञानाग्नीत टाकलेल्या जगाचा नाश कसा होतो? याचे उत्तर असे—चैतन्यस्वरूप ऊर्ध्वहृत्कमलकर्णिकेत नित्यानंदमय अशा महालिंगरूप सूर्याचा उदय झाल्यावर त्यात ज्यांच्या चित्तवृत्ती विलीन झाल्या आहेत, अशा लिंगैक्य स्थितीतील शिवयोग्यांना बाह्य जगाच्या कोणत्याही व्यवहाराची जाणीव कशी असणार? अर्थात् असत नाहीं.।।४१।।

अथ तस्य सहभोजनसम्पन्नस्य लिङ्गैक्यस्य मुक्तिस्वरूपं सूत्रद्वयेन कथयति—

निरस्तविश्वसम्बाधे निष्कलङ्के चिदम्बरे।
भावयेल्लीनमात्मानं सामरस्यस्वभावतः।।४२।।
सैषा विद्या परा ज्ञेया सत्तानन्दप्रकाशिनी।
मुक्तिरित्युच्यते सद्भिर्जगन्मोहनिवर्तिनी।।४३।।

निवारितजननमरणादिक्लेशे दोषरहिते चिदाकाशस्वरूपे महालिङ्गे, अङ्गशब्दवाच्यमात्मानं स्वरूपहानिवृद्धिव्यतिरेकेण सजातीयसमानसमरस-भावेन लीनं स्थिरसिद्धिमन्तं भावयेत्। सैषा सच्चिदानन्दस्वरूपप्रकाशिनी परा विद्येति ज्ञातुं योग्या जगन्मोहनिवर्तिनी विश्वभेदभ्रान्तिनिवर्तिनी परा मुक्तिरिति सत्पुरुषैरुच्यत इत्यर्थः।।४२-४३।।

अशा सहभोजनसपन्न लिंगैक्य शिवयोग्याच्या मुक्तीचे स्वरूप दोन श्लोकांत सांगतात—जननमरणादी क्लेशविरहित, निष्कलंक, चिदाकाशस्वरूप महालिंगात अंग शब्दाने वाच्य होणारा स्वतःचा आत्मा, स्वतःच्या स्वरूपात कसल्याही हानिवृद्धीची जाणीव नसताना सामरस्य भावनेने लीन झाला आहे, अशी भावना

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

करावी. अशा तऱ्हेच्या अंगलिंगातील सामरस्य भावनेला सच्चिदानंदस्वरूप अशी पराविद्या म्हणून ओळखतात. विश्वभेदाची निवृत्ती करणाऱ्या ह्या पराविद्येला सत्पुरुष परामुक्ती असे म्हणतात.।।४२-४३।।

अथायं शिवलिङ्गैक्य एव मोक्षलक्ष्मीनिवासस्थानभूत इत्युक्त्वा सहभोजनस्थलं समापयति—

भक्तादिधामार्पितधर्मयोगात् प्राप्तैकभावः परमाद्भुतेन।
शिवेन चिद्व्योममयेन साक्षान्मोक्षश्रियो भाजनतामुपैति।।४४।।

इति श्रीमत्षट्स्थलब्रह्मिणा शिवयोगिनाम्ना रेणुकाचार्येण विरचिते सिद्धान्तशिखामणौ शिवलिङ्गैक्यस्य चतुर्विधस्थलप्रसङ्गो नाम चतुर्दशः परिच्छेदः समाप्तः।।

चिद्व्योममयेन ऊर्ध्वहृत्कमलमध्यस्थचिदाकाशस्वरूपेण परमाद्भुतेन परमाश्चर्यरूपेण शिवेन शिवलिङ्गेन स्वरूपहानिवृद्धिव्यतिरेकेण समान-समरसत्वेन लब्धैकत्ववान् शिवलिङ्गैक्यो भक्तादिधामार्पितधर्मयोगाद् भक्तादिस्थलगतसदाचारसम्बन्धात् प्रत्यक्षमोक्षलक्ष्म्या भाजनताम् आश्रयत्वम् उपैति प्राप्नोतीत्यर्थः।।४४।।

इति श्रीमत्पदवाक्यप्रमाणपारावारधुरीणश्रीमरितोण्टदार्येण विरचितायां तत्त्वप्रदीपिकाख्यायां सिद्धान्तशिखामणिव्याख्यायां चतुर्दशः परिच्छेदः समाप्तः।।

अशी ऐक्यस्थिती प्राप्त झालेला शिवयोगीच मोक्षरूपी लक्ष्मीचे निवास-स्थान होतो, असे सांगून सहभोजनस्थलाचा समारोप करतात—येथपर्यन्त सांगितलेली भक्तादी सहा स्थले व त्याच्या ४४ अवांतर स्थलातील वर्णिलेल्या सदाचाराचे क्रमाक्रमाने पालन करून ऐक्यभाव पावलेला भक्त परमाद्भुत शक्तियुक्त, चिदंबरस्वरूप शिवाच्या कृपेने मोक्षाचा धनी होतो. म्हणजेच षट्स्थलाच्या धर्माचरणाने शिवैक्य पावलेला मनुष्य शिवकृपेने मोक्ष पावतो.।।४४।।

शिवलिंगाशी ऐक्य पावलेल्या भक्ताच्या चार पोटभेदाचे वर्णन असलेला सिद्धांतशिखामणीतील हा चवदावा परिच्छेद संपला.

चवदावा परिच्छेद समाप्त।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पञ्चदशः परिच्छेदः

अथ लिङ्गस्थलानि, दीक्षागुरुस्थलम्

अथ भक्तादिशिवलिङ्गैक्यान्तषट्स्थलोक्तपिण्डादिसहभोजनान्तचतुश्चत्वारिंशदवान्तरस्थलनिरूपितसदाचारसम्पन्नस्य लिङ्गैक्यस्य वर्णाश्रमादिसंकल्पविकल्पशून्यत्वेन प्राकृताचारनिवृत्त्या सहभोजनसम्पन्नत्वाल्लिङ्गरूपत्वेन तदाचरणीयलिङ्गाचारस्थलानि निरूपयति श्रीरेणुकः—

षट्स्थलोक्तसदाचारसम्पन्नस्य यथाक्रमम्।
लिङ्गस्थलानि कथ्यन्ते जीवन्मुक्तिपराणि च।।१।।

अङ्गषट्स्थलोक्तसदाचारसम्पन्नस्य शिवलिङ्गैक्यस्य क्रमेण जीवन्मुक्तिपराणि लिङ्गषट्स्थलानि कथ्यन्त इत्यर्थः।।१।।

भक्तस्थलापासून ऐक्यस्थलापर्यन्त सहा स्थले आणि तदातर्गत पिंडस्थला पासून सहभोजन स्थलापर्यन्त अवातर (पोटभेद) स्थले चव्वेचाळीस आहेत. त्यांना अनुसरून जो ऐक्य पावलेला शिवयोगी आहे, त्याला वर्णाश्रमधर्माचा सकल्प विकल्प उरलेला नसतो. प्राकृत आचारापासून तो निवृत्त झालेला असून सहभोजन संपन्न लिंगरूपत्वाने वर्तत असता त्याने आचरावे असे लिंगाचार कोणते ते श्री रेणुकाचार्य सागतात—षट्स्थलात जे जे सदाचार पाळावे म्हणून सांगितले आहेत ते ते योग्य रीतीने पाळणाऱ्यास जीवनमुक्ती मिळवून देणारी लिंगस्थले (लिंगषट्स्थले) या परिच्छेदात आता सागतो.।।१।।

अथागस्त्यप्रश्नः। अगस्त्य उवाचेति—.

भक्ताद्यैक्यावसानानि षडुक्तानि स्थलानि च।
लिङ्गस्थलानि कानीह कथ्यन्ते कति वा पुनः।।२।।

स्पष्टम्।।२।।

अगस्त्य विचारतात—आतापर्यन्त भक्तस्थलापासून ऐक्यस्थलापर्यंतची सहा स्थले विवरण करून सांगितली, आता लिंगस्थले कोणती व किती आहेत ते सांगावे.।।२।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

श्रीरेणुक उवाच

गुर्वादिज्ञानशून्यान्ता भक्तादिस्थलसंश्रिताः।
स्थलभेदाः प्रकीर्त्यन्ते पञ्चाशत् सप्त चाधुना।।३।।

भक्ताद्यैक्यान्ताङ्गषट्स्थलसंश्रिता दीक्षागुर्वादिवृत्तिज्ञानशून्यान्ताः सप्तोत्तरपञ्चाशल्लिङ्गस्थलभेदा अधुना कथ्यन्त इत्यर्थः।।३।।

श्री रेणुक म्हणतात—भक्तादी स्थलाना अनुसरून असणारे गुरुस्थल प्रथम आणि ज्ञानशून्यस्थल शेवटचे, असे एकूण सत्तावन भेद आता सागत आहे.।।३।।

अथ भक्तस्थलगतलिङ्गस्थलभेदान् सूत्रत्रयेण कथयति—

आदौ नव स्थलानीह भक्तस्थलसमाश्रयात्।
कथ्यन्ते गुणसारेण नामान्येषां पृथक् शृणु।।४।।

इह लिङ्गषट्स्थले भक्तस्थलसमाश्रयाद् आदौ नवस्थलानि गुणसारेण श्रेष्ठत्वेन। एषां नवस्थलानां नामानि पृथक् पृथक् कथ्यन्ते। शृण्वित्यर्थः।।४।।

आता भक्तस्थलांतर्गत लिंगस्थलभेदाचे तीन श्लोकात वर्णन करतात—ह्या लिंगषट्स्थलामध्ये भक्तस्थलास अनुसरून आधी नऊ स्थले मानली आहेत. त्याच्या गुणानुसार त्यांची वेगवेगळी नावे आहेत, ती मी येथे सांगतो, श्रवण कर.।।४।।

अथ तान्युद्दिशति—

दीक्षागुरुस्थलं पूर्वं ततः शिक्षागुरुस्थलम्।
प्रज्ञागुरुस्थलं चाथ क्रियालिङ्गस्थलं ततः।।५।।
भावलिङ्गस्थलं चाथ ज्ञानलिङ्गस्थलं ततः।
स्वयं परं चरं चेति तेषां लक्षणमुच्यते।।६।।

स्पष्टम्।।५-६।।

ती नऊ स्थले अशी-१, दीक्षागुरुस्थल, २ शिक्षागुरुस्थल, ३. प्रज्ञागुरुस्थल, ४. क्रियालिंगस्थल, ५. भावलिगस्थल, ६. ज्ञानलिंगस्थल, ७. स्वयस्थल, ८. परस्थल आणि, ९. चरस्थल आता त्यांपैकी प्रत्येकाचे लक्षण सांगतो.।।५-६।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अथ—"दीयते च यथा ज्ञानं क्षीयते च मलत्रयम्। सा दीक्षा संज्ञिता तस्यां गुरुर्दीक्षागुरुर्मतः।।" इति वातुलोत्तरवचनानुसारेण शिवलिङ्गैक्य एवं दीक्षागुरुरिति कथयति—

दीयते परमं ज्ञानं क्षीयते पाशबन्धनम्।
यया दीक्षेति सा तस्यां गुरुर्दीक्षागुरुः स्मृतः।।७।।

यया परमज्ञानम् उत्कृष्टशिवज्ञानं "दा दाने" इति धातुगत्या दीयते, पाशबन्धनं मलमायादिपाशबन्धनं "क्षि क्षये" इति धातुगत्या क्षीयते, सा दीक्षेति मता संमता, तस्यां चित्क्रियालक्षणदीक्षायां गुरुः "गॄ निगरणे" इति धातुगत्या उपदेशकृच्छिवलिङ्गैक्यो दीक्षागुरुरिति स्मृत इत्यर्थः।।७।।

'जिच्यामुळे ज्ञान दिले जाते आणि मलत्रयाचा क्षय होतो ती दीक्षा.' या अर्थाच्या वातुलोत्तर आगमाच्या वचनानुसार दीक्षा देणाऱ्या शिवलिंगैक्यसंपन्न गुरूला दीक्षागुरू म्हणावे असे सांगतात—जिच्यामुळे परमोत्कृष्ट शिवज्ञान दिले जाते आणि त्रिमलादी पाशाचे भवबंधन तुटून जाते तिला दीक्षा असे म्हणावे. त्या चित्क्रियात्मक दीक्षेविषयी, शिवलिंग आणि शिवज्ञानाविषयी शिष्यास उपदेश देणारा, लिगांग सामरस्य साधलेला व ती साधना शिष्यास देणारा, त्याला दीक्षागुरू असे म्हणतात.।।७।।

अथ गुरुस्वरूपं विशदयति—

गुणातीतं गुकारं च रूपातीतं रुकारकम्।
गुणातीतमरूपं च यो दद्यात् स गुरुः स्मृतः।।८।।

गुकारं प्राकृतगुणातीतम्, रुकारम् अशुद्धमायारूपातीतम्, गुणातीतमरूपं च मण्डलत्रयात्मकगुणत्रयं ज्योतिर्मयबैन्दवकलाशून्यच्चिन्मयवस्तु यो ददाति उपदिशति, स गुरुः स्मृतः, गुरुरिति स्मृत इत्यर्थः।।८।।

आता गुरूचे स्वरूप विशद करतात--गुरू शब्दातील 'गु' ह्या अक्षराने तो प्राकृत गुणातीत आहे असे समजावयाचे आणि 'रू' ह्या अक्षरावरून तो अशुद्ध मायारूपातीत आहे असे समजावे. ती गुणातीत व रूपातीत अशी चिन्मय वस्तू जो आपल्या उपदेशाने समजावून देतो, त्याला गुरू म्हणतात.।।८।।

अथैतत्प्रसङ्गादाचार्यस्वरूपं च विशदयति—

आचिनोति च शास्त्रार्थानाचारे स्थापयत्यलम्।
स्वयमाचरते यस्मादाचार्यस्तेन चोच्यते।।९।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

शास्त्रार्थान् वीरशैवशास्त्ररहस्यार्थान् प्रकटीकृत्य कथयति, आचारे वीरशैवाचारे शिष्यान् अलम् आधिक्येन स्थापयति नियमयति, स्वयं च वीरशैवाचारान् आचरते, तेन हि तेन कारणेन—"आचार्यो वक्ता कुशलोऽस्य लब्धः" इति कठवल्लीश्रुत्यनुसारेणाचार्य इत्युच्यत इत्यर्थः।।९।।

ह्या प्रसंगातच आचार्यलक्षण सांगतात—गुरू हा वीरशैव-शास्त्रातील रहस्यार्थाचा संग्रह करतो, आपल्या शिष्याना त्याचा उपदेश करून त्याच्याकडून तसे आचरण करवितो व स्वतःही तसे आचरण करतो. म्हणून अशा गुरूला आचार्य असे म्हणतात.।।९।।

अथ देशिकशब्दनिर्वचनं च कृत्वा शिवलिङ्गैक्य एव जगद्गुरुरिति सूत्रद्वयेनोक्तदीक्षागुरुस्थलं समापयति—

षडध्वातीतयोगेन यतते यस्तु देशिकः।
मायाब्धितारणोपायहेतुर्विश्वगुरुः शिवः।।१०।।

"ज्ञानान्मुक्तिं दिशति यः स देशिक इति स्मृतः" इति कामिकवाक्यप्रसिद्धो यो देशिकः षडध्वातीतयोगेन "अध्वनामध्वपते श्रेष्ठस्याध्वनः पारमय" इति श्रुतिप्रसिद्धवर्णपदादिषडध्वातीतयोगेन यतते उद्योगवानास्ते, स शिवः शिवलिङ्गैक्यो मायाब्धितारणोपायहेतुभूत-जगद्गुरुरित्यर्थः।।१०।।

आता देशिक शब्दाचा अर्थ स्पष्ट करून शिवलिंगैक्य अवस्थेला पोचलेल्या शिवयोग्याला जगद्गुरू म्हणावे असे दोन श्लोकांत सांगून दीक्षागुरुस्थलाचा समारोप करतात—शिष्यास ज्ञानाद्वारे मोक्ष मिळवून देणारा तो देशिक असे कामिकागमाचे वचन प्रसिद्ध आहे. असा देशिक (गुरू) १. वर्णाध्व २. पदाध्व. ३.मंत्राध्व ४. भुवनाध्व ५. तत्त्वाध्व आणि ६. कलाध्व या वीरशैवशास्त्रसंमत सहा मार्गांच्या अतीत असणाऱ्या शिवयोगाने महामायासागर ओलांडण्याचा मार्ग दाखविणारा असल्यामुळे त्यास विश्वगुरू अथवा जगद्गुरू म्हणतात.।।१०।।

अथ कथमयं जगद्गुरुरित्याह—

अखण्डं येन चैतन्यं व्यज्यते सर्ववस्तुषु।
आत्मयोगप्रभावेण स गुरुर्विश्वभासकः।।११।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सर्ववस्तुषु नीलपीतादिसकलवस्तुषु, आत्मयोगप्रभावेण स्वानुभवबलाद् अखण्डं सच्चिदानन्दात्मकं चैतन्यं येन व्यज्यते, नीलपीतादिप्रतिनियत-पदार्थावभासनकालेऽप्यहमित्यखण्डचैतन्यमनुवर्तत एव, अन्यथा तद्वेद्यदर्शनं न स्यादिति स्फुटीक्रियते, स गुरुर्विश्वभासको विश्वप्रकाशक इत्यर्थः ।।११।।

इति दीक्षागुरुस्थलम्

त्याला जगद्गुरू का म्हणावे? तर—जगातील सर्व वस्तूंच्या ठिकाणी आपल्या आत्मानुभवाच्या सामर्थ्याने अखड, सच्चिदानदस्वरूप चैतन्य असल्याचे ज्याला व ज्याच्यामुळे प्रकाशमान होते अशा गुरूला विश्वप्रकाशक असे म्हणावे. म्हणजेच घटपटादी जड पदार्थांचा अनुभव घेतानाही अहम् असे अखंड चैतन्यच त्याच्या अनुभवास येते व त्याच्या उपदेशामुळे इतरांनाही तसाच अनुभव येतो. म्हणून त्याला विश्वप्रकाशक जगद्गुरू म्हणतात.।।११।।

अथ शिक्षागुरुस्थलम्

अथ—"बोध्यबोधकभावेन ज्ञानद्वारेण शास्यते। शिष्यो हि येन गुरुणा स शिक्षागुरुरुच्यते।।" इति वातुलोत्तरवचनानुसारेण शिक्षागुरुस्थल निरूपयति—

दीक्षागुरुरसौ शिक्षाहेतुः शिष्यस्य बोधकः।
प्रश्नोत्तरप्रवक्ता च शिक्षागुरुरितीर्यते।।१२।।

असौ दीक्षागुरुः शिष्यस्य बोधकः सन् प्रश्नोत्तरप्रवक्ता शिष्यकृत-प्रश्नस्योत्तरं दत्वा शिक्षाहेतुश्च शिक्षाकरणः सन् शिक्षागुरुरिति कथ्यत इत्यर्थः।।१२।।

'बोधक असलेला गुरू बोध्य असणाऱ्या शिष्यास आपल्या उपदेशरूपी ज्ञानाद्वारे अनुशासन लावतो त्याला शिक्षागुरू असे म्हणावे', अशा वातुलोत्तर आगमाच्या वचनाधारे शिक्षागुरुस्थलाचे निरूपण करतात—पूर्वोक्त दीक्षागुरू जेव्हा शिष्यास बोध व्हावयासाठी त्याने विचारलेल्या प्रश्नांची समाधानकारक उत्तरे देऊन संशयनिवारण करतो व त्याला सुशिक्षित व अनुशासित करतो, तेव्हा त्या गुरूस शिक्षागुरू असे म्हणतात.।।१२।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अथामुमेवार्थं स्फुटयति—

बोधकोऽयं समाख्यातो बोध्यमेतदिति स्फुटम्।
शिष्ये नियुज्यते येन स शिक्षागुरुरुच्यते।।१३।।

अयं शिवसिद्धान्तबोधकः परतत्त्वप्रकाशक इत्यर्थः, "न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके यः शब्दानुगमादृते" इति वैयाकरणोक्तेः स्फुटं देशिकोपदेशस्फुटीभूतम् एतत् शिवयोगज्ञानं बोध्यम् इति येन गुरुणा शिष्यः समाख्यातो बोधकः सन् नियुज्यते नियम्यते, स शिक्षागुरुरित्युच्यत इत्यर्थः।।१३।।

आता त्याचेच स्पष्टीकरण करतात—गुरू आपल्या शिष्यास शिकवावयाचे शिवज्ञान चांगल्या रीतीने समजेल असे सांगतो, म्हणून त्याला बोधक असे म्हणतात. त्या ज्ञानाचे योग्य नियोजन, नियमन शिष्याच्या ठिकाणी करतो म्हणून त्यास शिक्षागुरू असे म्हणतात.।।१३।।

अथ— "आचार्यः पूर्वरूपं अन्तेवास्युत्तररूपं विद्या सन्धिः", "आचार्योऽन्तेवासिनमनुशास्ति" इति श्रुत्यनुसारेण द्वैविध्येन तत्स्वरूपं वर्णयति—

संसारतिमिरोन्माथिशरच्चन्द्रमरीचयः।
वाचो यस्य प्रवर्तन्ते तमाचार्यं प्रचक्षते।।१४।।

यस्य वाच उपदेशवाक्यानि संसारतिमिरविनाशने शरच्चन्द्रमरीचय इव प्रवर्तन्ते, तम् आचार्यं सन्तं प्रचक्षते कथयन्ति।।१४।।

विद्येच्या संदर्भात आचार्य हा पूर्वरूप व शिष्य हा उत्तररूप असतो. त्यांच्यातील संबंध विद्यामूलक असतो. आचार्य शिष्याला शासन व विद्यादानही करतो. अशा श्रुतिवचनाच्या आधाराने आचार्यांचे स्वरूप दोन प्रकारांनी वर्णन करतात—ज्याच्या उपदेशाची वाक्ये संसाररूपी अंधाराचे निवारण करण्यासाठी शरदऋतूतील चंद्रकिरणासारखी असतात, त्यांना आचार्य असे म्हणावे.।।१४।।

ददाति यः पतिज्ञानं जगन्मायानिवर्तकम्।
अद्वैतवासनोपायं तमाचार्यवरं विदुः।।१५।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

यो जगन्मायानिवर्तकं प्रापञ्चिकभेदभ्रान्तिनिवर्तकं पतिज्ञानम्, "पतिं विश्वस्यात्मेश्वरं शाश्वतं शिवमच्युतम्" इति नारायणोपनिषत्प्रसिद्ध-स्वात्माभिन्नशिवज्ञानं ददाति प्रकाशयति, तम् आचार्यवरम् आचार्यश्रेष्ठं सन्तं विदुः, जानन्तीत्यर्थः।।१५।।

प्रापंचिक भेदभ्रांतीचे निवारण करणाऱ्या स्वात्माभिन्न अशा शिवज्ञानाचा उपदेश करणाऱ्याला आचार्यश्रेष्ठ म्हणतात.।।१५।।

अथ शिवाद्वैतज्ञानसम्पन्नः सन् शिष्यसन्देहवारक एव गुरुः श्रेष्ठ इति सूत्रद्वयेनाह—

पूर्वपक्षं समादाय जगद्भेदविकल्पनम्।
अद्वैतकृतसिद्धान्तो गुरुरेष गुणाधिकः।।१६।।

जगद्भेदविकल्पनं प्रापञ्चिकभेदद्वैविध्यविशिष्टं पूर्वपक्षं समादाय अङ्गीकृत्य अद्वैतकृतसिद्धान्तवानेष गुरुः शिक्षागुरुरेव गुणाधिकः श्रेष्ठ इत्यर्थः।।१६।।

स्वतः शिवज्ञानसपन्न असून शिष्याचा संदेह निवारण करणाऱ्यालाच श्रेष्ठ गुरू म्हणतात, असे दोन श्लोकातून सांगतात—जगातील निरनिराळे भेदवादी विकल्प, संदिग्ध विचार यांचा पूर्वपक्ष समजून, जाणून घेऊन जो शिवाद्वैत-सिद्धान्त हाच खरा आहे असे सिद्ध करतो तो शिक्षागुरूच सर्वश्रेष्ठ होय.।।१६।।

सन्देहवनसन्दोहसमुच्छेदकुठारिका।
यत्सूक्तिधारा विमला स गुरूणां शिखामणिः।।१७।।

विमला निर्मला यत्सूक्तिधारा यस्य गुरोरुपदेशवाक्यधारा सन्देहवनसन्दोहसमुच्छेदकुठारिका संशयारण्यसमुच्छेदपरशुः, स गुरूणां शिखामणिः श्रेष्ठ इत्यर्थः।।१७।।

ज्याच्या वाचेची (विचारांची) निर्मल धारा संशयरूपी निबिड अरण्याचे निर्मूलन करणारी कुऱ्हाड होते तो गुरूंचा शिखामणी शोभतो.।।१७।।

अथेममर्थमेव विशेषयति सूत्रद्वयेन—

यत्सूक्तिदर्पणाभोगे निर्मले दृश्यते सदा।
मोक्षश्रीर्बिम्बरूपेण स गुरुर्भवतारकः।।१८।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

निर्मले यस्योपदेशोक्तिदर्पणमण्डले मोक्षलक्ष्मीर्बिम्बरूपेण प्रतिबिम्बरूपेणेत्यर्थः, दृश्यते प्रकाशते, स गुरुर्भवतारकः संसारार्णवतारक इत्यर्थः।।१८।।

हाच अर्थ दोन श्लोकांत विशद करतात—ज्याच्या वाणीच्या निर्मल आरशात मोक्षरूप लक्ष्मी प्रतिबिंब रूपाने सदैव दिसते असा गुरू संसाररूपी समुद्रातून तारणारा असतो.।।१८।।

अथ प्रकारान्तरेणाह—

शिष्याणां हृदयालेख्यं प्रद्योतयति यः स्वयम्।
ज्ञानदीपिकयाऽनेन गुरुणा कः समो भवेत्।।१९।।

यः श्रीगुरुः शिष्याणां हृदयालेख्यं हृत्कमलस्थनिजरूपचित्रं ज्ञानदीपिकया ज्ञानदीपेन प्रद्योतयति प्रकाशयति, अनेन गुरुणा शिक्षागुरुणा कः समो भवेत्, न कोऽपि सम इत्यर्थः।।१९।।

तेच निराळ्या प्रकाराने सांगतात—जो गुरू आपल्या ज्ञानज्योतीने शिष्याच्या हृदयात असणाऱ्या त्याच्या निजस्वरूपाचे चित्र प्रकाशित करतो, अशा गुरूची बरोबरी कोणाकडून होऊ शकत नाही.।।१९।।

अथैतादृशगुरुरस्ति वेत्यत्रास्ति दुर्लभ इत्युक्त्वा शिक्षागुरुस्थलं समापयति—

परमाद्वैतविज्ञानपरमौषधिदानतः।
संसाररोगनिर्माथी देशिकः केन लभ्यते।।२०।।

शिवकारुण्यरहितेन केनापि न लभ्यत इत्यर्थः।।२०।।

इति शिक्षागुरुस्थलम्

असे गुरू आहेत का? असा प्रश्न निर्माण झाल्यास, ते दुर्लभ असतात असे सांगून शिक्षागुरुस्थलाचे वर्णन संपवितात—परमाद्वैत शिवज्ञानरूपी उत्तम औषध देऊन संसाररूप रोगाचे निवारण करणारा देशिक (गुरू) कोणाला मिळणार? शिवकारुण्यरहित असणाऱ्यांना असा गुरू सहजतेने मिळणे कठीणच.।।२०।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अथ ज्ञानगुरुस्थलम्

अथ—"शिवरूपानुसन्धायि ज्ञानं येनोपदिश्यते। मुमुक्षोर्मोक्षसिद्ध्यर्थं स ज्ञानगुरुरुच्यते।।" इति वातुलोत्तरवचनानुसारेण ज्ञानगुरुस्थलं निरूपयति—

उपदेष्टोपदेशानां संशयच्छेदकारकः।
सम्यग्ज्ञानप्रदः साक्षादेष ज्ञानगुरुः स्मृतः।।२१।।

उपदेशानां रहस्यार्थानाम् उपदेष्टा उपदेशकृत्, संशयच्छेदकारकः शिष्यसन्देहवारक एष शिक्षागुरुरेव सम्यक् साक्षाद् ज्ञानप्रदः प्रत्यक्षीभूतशिवो ज्ञानप्रदः सन् ज्ञानगुरुरिति स्मृत इत्यर्थः।।२१।।

'मुमुक्षूंना मोक्षप्राप्तीकरिता अनुसंधानात्मक ज्ञानाचा जो उपदेश करतो तो ज्ञानगुरू होय,' ह्या वातुलोत्तर आगमाच्या वचनानुसार ज्ञानगुरुस्थलाचे वर्णन करतात—शिवज्ञानाच्या रहस्यार्थाचा उपदेश करणारा, शिष्यजनांचे संशय दूर करणारा आणि प्रत्यक्षभूत परशिवाचे ज्ञान करून देणारा जो शिक्षागुरू आहे, त्यालाच ज्ञानगुरू म्हणावे.।।२१।।

ननु शिवज्ञानं कीदृशं तत्कथं प्रत्यक्षीकरोतीत्यत्राह—

निरस्तविश्वसंभेदं निर्विकारं चिदम्बरम्।
साक्षात्करोति यो युक्त्या स ज्ञानगुरुरुच्यते।।२२।।

निरस्तविश्वसंभेदं न किञ्चिदवेदिषमिति शून्यप्रतीतिबलान्निराकृतविश्वभेदं विकाररहितं चिदाकाशं चिद्व्योम युक्त्या स्फुटतरभासमाननीलसुखादिप्रमात्रन्वेषणद्वारा पारमार्थिकप्रमातृलाभ इहोपदिश्यत इति शिवाद्वैतशास्त्रोक्तस्वानुभवयुक्त्या यः प्रत्यक्षीकरोति, स ज्ञानगुरुरित्यर्थः।।२२।।

शिवज्ञानाचे स्वरूप काय? त्याची प्राप्ती कशी होते? जो गुरू शिवाद्वैतशास्त्रोक्त प्रकारे युक्ती, प्रमाण आणि स्वानुभवाने जगद्‌भेद-भ्रांतिनिवारक, निर्विकार अशा ज्ञानाकाशाचा साक्षात्कार करून देतो तोच ज्ञानगुरू होय.।।२२।।

अथ शिवज्ञानं प्रस्तौति सूत्रद्वयेन—

कलङ्कवानसौ चन्द्रः क्षयवृद्धिपरिप्लुतः।
निष्कलङ्कस्थितो ज्ञानचन्द्रमा निर्विकारवान्।।२३।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

क्षयवृद्धिपरिप्लुतः क्षयवृद्धिपीड्यमानः, असौ चन्द्रः कलङ्कवान् । निर्विकारवान् विकाररहितो ज्ञानचन्द्रमाः चिच्चद्रः, निष्कलङ्कस्थितः कलङ्करहितः सन् तिष्ठतीत्यर्थः।।२३।।

आता दोन श्लोकात शिवज्ञानाची स्तुती करतात—आकाशातील चंद्र कलंकित आहे शिवाय शुक्लपक्षात त्याची वृद्धी व कृष्णपक्षात त्याचा क्षय होत जातो, मात्र गुरूच्या उपदेशाने शिष्याच्या चिदाकाशात उगवलेला ज्ञानचंद्र हा निष्कलंक असून त्यास क्षयवृद्धी मुळीच होत नाही।।२३।।

पार्श्वस्थतिमिरं हन्ति प्रदीपो मणिनिर्मितः।
सर्वगामि तमो हन्ति बोधदीपो निरङ्कुशः।।२४।।

मणिनिर्मितो रत्ननिर्मितो दीपः पार्श्वस्थान्धकारं निवारयति, निरङ्कुशोऽनर्गलो बोधदीपश्चित्प्रदीपः सर्वगामि तमः सर्वत्र विद्यमानं तमो निवारयतीत्यर्थः।।२४।।

रत्नाचा दीप असला तरी त्याच्या प्रकाशाने केवळ आजूबाजूचा अंधार नाहीसा होतो. परंतु गुरूने प्रज्वलित केलेला ज्ञानदीप हा सर्व जगातील अज्ञानाचा अंधार नाहीसा करतो, त्याच्या प्रकाशाला कोठेच प्रतिबंध नाही।।२४।।

अथ शिवज्ञानोपदेशतत्परं श्रीगुरुं सूत्रद्वयेन प्रस्तौति—

सर्वार्थसाधकज्ञानविशेषादेशतत्परः।
ज्ञानाचार्यः समस्तानामनुग्रहकरः शिवः।।२५।।

भोगमोक्षलक्षणसर्वप्रयोजनसाधकशिवज्ञानविशेषोपदेशासक्तो ज्ञानगुरुरेव समस्तानां मुमुक्षूणाम् अनुग्रहकरः, साक्षाच्छिव इत्यर्थः।।२५।।

अशा शिवज्ञानाचा उपदेश करण्यात तत्पर असणाऱ्या श्रीगुरूची स्तुती दोन श्लोकात करतात—भोगमोक्षात्मक सर्वार्थसाधक शिवज्ञानाचा विशेष रीतीने उपदेश करण्यात तत्पर असलेला ज्ञानगुरू सर्व मुमुक्षूवर अनुग्रह करणारा प्रत्यक्ष शिवच होय।।२५।।

कटाक्षचन्द्रमा यस्य ज्ञानसागरवर्धनः।
संसारतिमिरच्छेदी स गुरुर्ज्ञानपारगः।।२६।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

यस्याचार्यस्य कटाक्षचन्द्रमाः शिवज्ञानोदधिवर्धनः संसारतिमिरच्छेदी, स गुरुः श्रीगुरुः, ज्ञानपारगः परापरज्ञानपारङ्गत इत्यर्थः।।२६।।

ज्याचा कृपाकटाक्षरूपी चंद्र शिष्याच्या ज्ञानरूप सागरास भरती आणतो आणि संसाररूपी अंधाराचा नाश करतो, तो गुरू परापरज्ञान पारंगत होय.।।२६।।

अथ तमेव गुरुं भानुत्वेन वर्णयन् ततोऽप्याधिक्यं प्रतिपादयति—

बहिस्तिमिरविच्छेत्ता भानुरेष प्रकीर्तितः।
बहिरन्तस्तमश्छेदी विभुर्देशिकभास्करः।।२७।।

एष भानुः, बहिस्तिमिरविच्छेत्ता बाह्यान्धकारनिवारकः, विभुः चिद्व्यापको देशिकभास्करो ज्ञानाचार्यसूर्यो बहिरन्तस्तमश्छेदी, नायं शिव इति विषयगतमज्ञानम्, नाहं शिव इत्यन्तर्गताज्ञानं च भिनत्तीति प्रकीर्तितः।।२७।।

गुरूचे सूर्यरूपात वर्णन करून गुरू सूर्यापेक्षाही श्रेष्ठ होय असे सागतात-आकाशातील सूर्य सृष्टीतील बाहेरचा अंधार नाहीसा करतो. परंतु व्यापक गुरुरूपी सूर्य 'संसार शिवरूप नाही' अशा बाह्य विषयगत अज्ञानाधःकारा बरोबरच 'मी शिव नाही' या मनातील अंधःकाराचाही नाश करतो म्हणून गुरू हा सूर्यापेक्षाही श्रेष्ठ होय.।।२७।।

अथ शिववेदकं शिवज्ञानं सूचयित्वा ज्ञानगुरुस्थलं सूत्रद्वयेन समापयति—

कटाक्षलेशमात्रेण विना ध्यानादिकल्पनम्।
शिवत्वं भावयेद्यत्र स वेदः शाम्भवो मतः।।२८।।

ध्यानधारणादिसङ्कल्पं विना श्रीगुरोः कृपापाङ्गदर्शनमात्रेण शिवत्वं भावयेत् स्फुटं भवेत्, स वेदः शाम्भव इति मतः सम्मत इत्यर्थः।।२८।।

शिवज्ञान हे शिवाचे ज्ञान करून देणारे आहे, असे दोन श्लोकांत सांगून ज्ञानगुरुस्थलाचा समारोप करतात—ध्यान धारणादी संकल्पावाचूनही केवळ ज्ञानगुरूच्या कृपाकटाक्षानेच शिवतत्त्वाचे ज्ञान होते, त्यालाच 'शाभववेद' असे म्हणतात.।।२८।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

शिववेदकरे ज्ञाने दत्ते येन सुनिर्मले।
जीवन्मुक्तो भवेच्छिष्यः स गुरुर्ज्ञानसागरः।।२९।।

येन श्रीगुरुणा शिववेदकरे स्वात्मशिवतास्फुटीकरणप्रवीणे निर्मले शिवज्ञाने दत्ते सति शिष्यो जीवन्नपि मुक्तः स्यात्, स गुरुः शिवज्ञानसागर इत्यर्थः।।२९।।

इति ज्ञानगुरुस्थलम्

शिवाचे ज्ञान होईल असा निर्मल उपदेश ज्याच्याकडून शिष्याला दिला जातो आणि ज्या ज्ञानप्राप्तीमुळे शिष्य जीवन्मुक्त होतो, असे ज्ञान देणारा गुरू ज्ञानाचा सागरच होय.।।२९।।

अथ क्रियालिङ्गस्थलम्

अथ—"इष्टमूर्जं तपसानुयच्छति" इत्याथर्वणी श्रुतिः, एतद्विवरण-रूपेण—"सकलं दृक्कलाग्राह्यमिष्टलिङ्गस्थलं महत्। इष्टावाप्तिकरं साक्षाद-निष्टपरिहारकम्।। इष्टमूर्जं स्वभक्तानामनुयच्छति सर्वदा। इष्टलिङ्गमिति प्राह तस्मादाथर्वणी श्रुति।।" इति वातुलतन्त्रवचनेन ज्ञानगुरूपदिष्टक्रिया यत्र लयं गच्छति, तत्क्रियालिङ्गस्थलमिति सप्तभिः सूत्रैः प्रतिपादयति—

गुरोर्विज्ञानयोगेन क्रिया यत्र विलीयते।
तत्क्रियालिङ्गमाख्यातं सर्वैरागमपारगैः।।३०।।

गुरोः ज्ञानगुरोः, विज्ञानयोगेन विशेषज्ञानयोगेन क्रिया यत्र यस्मिन्नधिकरणे विलीयते तत्क्रियालिङ्गं क्रियार्थकमिष्टलिङ्गमित्यागमपारगैः शिवसिद्धान्तपारङ्गतैः सर्वैर्वीरशैवाचार्यैराख्यातं प्रोक्तमित्यर्थः।।३०।।

इच्छित वस्तू देणारे आणि अनिष्ट निवारण करणारे ते इष्टलिंग होय. ते सदैव आपल्या भक्ताची इच्छा पूर्ण करते, म्हणून अथर्वण श्रुतीने त्या लिंगास इष्टलिंग असे संबोधिले आहे. वातुलागमाच्या उक्तीप्रमाणे जेथे श्रीज्ञानगुरूनी उपदेशिलेली क्रिया लय पावते त्या क्रियेस 'क्रियालिंगस्थल' असे नाव प्राप्त होते. त्या क्रियालिंगस्थलाचे निरूपण सात श्लोकाद्वारे करतात—गुरूने दिलेल्या विशेष ज्ञानामुळे जेथे क्रिया लय पावते ते क्रियालिंग होय, असे सर्व शिवसिद्धातपारंगत वीरशैव आचार्य म्हणतात. तेच इष्टलिंग होय.।।३०।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ननु किं तत्स्वरूपमित्यत्राह—

परानन्दचिदाकारं परब्रह्मैव केवलम्।
लिङ्गं सद्रूपतापन्नं लक्ष्यते विश्वसिद्धये।।३१।।

नित्यानन्दस्वरूपं सद् अन्तर्मुखज्ञानस्वरूपं सद् अस्तितारूपं गतं केवलं परब्रह्मैव विश्वसिद्धये समस्तसत्क्रियासिद्ध्यर्थं लिङ्गम् इष्टलिङ्गमिति लक्ष्यत इत्यर्थः।।३१।।

त्याचे स्वरूप काय? तर—अतर्मुख ज्ञानस्वरूप असणारे ते परब्रह्मच भक्ताकडून होणाऱ्या क्रिया सफल करण्यासाठी अस्तित्वरूप धारण करून क्रियालिगरूपाने अर्थात् इष्टलिगरूपाने प्रतीत होते.।।३१।।

अथ सा सिद्धिः कथं भवतीत्यत्राह—

लिङ्गमेव परं ज्योतिर्भवति ब्रह्म केवलम्।
तस्मात् तत्पूजनादेव सर्वकर्मफलोदयः।।३२।।

परंज्योतिस्वरूपं केवलं परब्रह्मैव क्रियार्थलिङ्गम्। तस्मात् तत्पूजनादेव सर्वकर्मफलोदयः सकलसत्कर्मफलाविर्भावो भवति जायत इत्यर्थः।।३२।।

क्रियालिंगाच्या पूजनाने सकलकर्मफलसिद्धी कशी होते? तर—इष्टलिंग हे परमज्योतिस्वरूप असणारे परब्रह्मच क्रियालिंग असल्यामुळे त्याचे पूजन केल्याने सकलसत्कर्माचे फल प्राप्त होते.।।३२।।

तस्माल्लिङ्गमेव श्रेष्ठमित्याह—

परित्यज्य क्रियाः सर्वा लिङ्गपूजैकतत्पराः।
वर्तन्ते योगिनः सर्वे तस्माल्लिङ्गं विशिष्यते।।३३।।

सर्वे योगिनः सनकादिसमस्तयोगिनः सर्वाः क्रियाः समस्ता योगादि-क्रियाः परित्यज्य इष्टलिङ्गपूजैकतत्पराः सन्तो वर्तन्ते, तस्माल्लिङ्गं क्रियालिङ्गं विशिष्यत इत्यर्थः।।३३।।

म्हणून क्रियालिंगच सर्वश्रेष्ठ होय, असे सांगतात—योगसाधना करणारे सनकसानंदादी सर्व योगी लिंगपूजनाखेरीज इतर सर्व योगक्रिया करावयाचे सोडून देऊन इष्टलिंगपूजनच एकनिष्ठेने

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

करतात. यावरूनच इष्टलिंग हे सर्वश्रेष्ठ होय असे स्पष्ट होते.।।३३।।

ननु सनकादीनां यज्ञादिक्रियापरित्यागः किंनिबन्धन इत्यत्राह—

यज्ञादयः क्रियाः सर्वा लिङ्गपूजांशसंमिताः।
इति यत्पूज्यते सिद्धैस्तत्क्रियालिङ्गमुच्यते।।३४।।

यज्ञादयः क्रियाः सर्वा लिङ्गपूजालेशभाजिन इति मत्वा सनकादिभिः सिद्धैर्यल्लिङ्गं पूज्यते, तस्मात्क्रियालिङ्गं सकलक्रियार्थलिङ्गमित्युच्यत इत्यर्थः ।।३४।।

सनकादी योग्यानी यज्ञयागादी क्रियाचा त्याग का केला? याचे कारण सांगतात—यज्ञयागासारख्या क्रिया ह्या लिंगपूजनाचा अंश असल्यासारख्या आहेत. म्हणजेच त्या पूर्ण फलप्राप्ती देणाऱ्या नाहीत, असे जाणून सनकादी ऋषी ज्याची पूजा करतात ते इष्टलिंग अर्थात् क्रियालिंग सर्व क्रियांचे फल देणारे असे आहे. म्हणून सनकादिक योग्यांनी यज्ञयागादी क्रियांचा त्याग केला.।।३४।।

तस्माल्लिङ्गपूजासम्पन्नस्य कापि क्रिया मास्त्वित्याह—

किं यज्ञैरग्निहोत्राद्यैः किं तपोभिश्च दुश्चरैः।
लिङ्गार्चनरतिर्यस्य स सिद्धः सर्वकर्मसु।।३५।।

सर्वकर्मसु सकलकर्मविषये सिद्धः सिद्धिमानित्यर्थः। शिष्टं स्पष्टम् ।।३५।।

म्हणून लिंगपूजा करणाऱ्यास अन्य कोणत्याही यज्ञयागादी क्रिया करण्याची आवश्यकता नाही, असे सागतात—ज्याला लिंगपूजन करण्याची आवड आहे, त्याला सहजच सर्व कर्मे केल्याचे इष्टफल मिळते म्हणून यज्ञ करणे, अग्निहोत्र घेणे आणि आचरणास कठीण अशी तपाचरणे इत्यादींची गरज नाही.।।३५।।

अथ किमुत ब्रह्मादयोऽपीष्टलिङ्गपूजामहिम्नैव जगन्निर्माणादिक्रियासिद्धिमन्तः सन्तः स्वस्वस्थानेषु लसन्तीत्युक्त्वा क्रियालिङ्गस्थलं समापयति—

ब्रह्मविष्ण्वादयः सर्वे विबुधा लिङ्गमाश्रिताः।
सिद्धाः स्वस्वपदे भान्ति जगत्तन्त्राधिकारिणः।।३६।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सिद्धाः प्रसिद्धाश्चेत्यर्थः। जगत्तन्त्राधिकारिणः जगन्निर्माणादिक्रियाधिकारिण इत्यर्थः। शिष्टं स्पष्टम्।।३६।।

इति क्रियालिङ्गस्थलम्

अधिक सांगण्याचे काय प्रयोजन? ब्रह्मादी देवही लिंगपूजा केल्यानेच आपापल्या पदावर आरूढ आहेत, असे सांगून क्रियालिंगस्थलाचा समारोप करतात—ब्रह्मदेव, विष्णू वगैरे देव इष्टलिंगाचाच आश्रय करून, इष्टलिंगाचे पूजन करतात त्यामुळेच ते आपापल्या पदावर यशस्वीपणे आरूढ होऊन जगाचा कारभार योग्य रीतीने चालवीत आहेत.।।३६।।

अथ भावलिङ्गस्थलम्

अथ—"भावग्राह्यमनीडच्याख्यं भावाभावकरं परम्। कलासर्गकरं देवं ये विदुस्ते जहुस्तनुम्।।" इति श्वेताश्वतरश्रुत्यनुसारेण, "निष्कलं भावलिङ्गं स्याद् भावग्राह्यं परात्परम्" इति वातुलतन्त्रवचनानुसारेण च क्रियेव भावोऽपि यत्र लयं गच्छति, तद्भावलयकारणीभूतप्राणलिङ्गमिति भावलिङ्गस्थलं निरूपयति—

क्रिया यथा लयं प्राप्ता तथा भावोऽपि लीयते।
यत्र तद्देशिकैरुक्तं भावलिङ्गमिति स्फुटम्।।३७।।

यथा क्रियालयस्थानं क्रियालिङ्गं तथा भावलयस्थानं भावलिङ्गं भावलयकारणीभूतं प्राणलिङ्गमिति देशिकैः स्फुटमुक्तमित्यर्थः।।३७।।

'शुद्ध भक्तिभावनेने शिवाला प्राप्त करून घेता येते. तो स्वयंभू, स्वाश्रित असला तरी तो भाव आणि अभाव निर्माण करणारा आहे, श्रेष्ठ आहे, कल्प आणि स्वर्ग यांचा विधाता आहे, असे जाणणारे शिवभक्त देहाभिलाषा सोडून त्याचा यज्ञ करतात,' असे श्वेताश्वतर श्रुती सांगते. 'भावलिंग कलांनी विरहित निर्विशेष आहे. सर्व परवस्तूंपेक्षा पर आहे, सर्वातीत आहे. सर्वोत्कृष्ट असून ते सद्भावाने प्राप्य आहे,' असे वातुलागमाचे वचन आहे. जेथे क्रियेसह भावही लय पावतो अशा भावलयास कारणीभूत असणाऱ्या भावलिंगस्थलाचे वर्णन करतात—क्रिया ज्यामध्ये लय पावते त्याला जसे क्रियालिंग म्हणतात तसे जेथे भाव लय पावतो त्याला भावलिंग म्हणावे, असे देशिक सांगतात.।।३७।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अथानयोः किं वैशिष्ट्यमित्यत्र भावलिङ्गं सूत्रद्वयेन विशेषयति—

भावेन गृह्यते देवो भगवान् परमः शिवः।
किं तेन क्रियते तस्य नित्यपूर्णो हि स स्मृतः।।३८।।

भगवान् षड्गुणैश्वर्यसंपन्नः परमेश्वरो भावेन गृह्यते निर्मलान्तः-करणवृत्त्या प्रकाश्यत इति तेन बाह्यक्रियालयेन किं किं प्रयोजनम्, न किञ्चित्प्रयोजनमित्यर्थः। कुत इत्यत्राह— सः परमेश्वरो हि यस्मात् कारणान्नित्यपूर्णो नित्यतृप्त इति स्मृतः, तस्मात् कारणात् क्रियापूजनेन प्रयोजनं नास्तीत्यर्थः।।३८।।

क्रियालिग व भावलिंग यात श्रेष्ठ कोणते? असे विचारल्यास भावलिंगाचे वैशिष्ट्च दोन श्लोकात सागतात—षडगुणैश्वर्यसपन्न असणारा परमेश्वर निर्मल अतःकरणवृत्तीच्या भावनेलाच गोचर होतो. तो परमेश्वर नित्यपूर्ण, नित्य तृप्तच असल्यामुळे त्याला बाह्य क्रियाकलापाची काही आवश्यकता नसते.।।३८।।

अखण्डपरमानन्दबोधरूपः परः शिवः।
भक्तानामुपचारेण भावयोगात् प्रसीदति।।३९।।

अपरिच्छिन्नपरमानन्दचिद्रूपः परमेश्वरः शिवभक्तानां भक्तिपूर्वकमानसो-पचारेण भावयोगाद् मनस्सन्निवेशात् प्रसीदति प्रसन्नो भवतीति भावलिङ्गं प्रशस्तमिति भावः।।३९।।

श्रेष्ठ असा शिव अखंड परमानंदस्वरूप व बोधरूप आहे, शिवभक्तांच्या भक्ति-उपचारांतील भावयोगाने तो त्यांच्यावर प्रसन्न होतो. म्हणून भावलिंग हे क्रियालिंगापेक्षा श्रेष्ठ होय.।।३९।।

तस्माद् भावलिङ्गमेव प्रशस्तमिति कण्ठोक्त्यैवाह—

मृच्छिलाविहिताल्लिङ्गाद् भावलिङ्गं विशिष्यते।
निरस्तसर्वदोषत्वाद् ज्ञानमार्गप्रवेशनात्।।४०।।

मृच्छिलादिनिर्मिताल्लिङ्गाद्भावलिङ्गं भावलयकारणीभूतप्राणलिङ्गं विशिष्यते विशिष्टं भवति । कुत इत्यत्राह—निरस्तसर्वदोषत्वात् छेदन-भेदनादिदोषरहितत्वाद् ज्ञानमार्गप्रवेशनादिति।।४०।।

भावलिंगाचे श्रेष्ठत्व स्पष्ट शब्दांत सांगतात-माती किंवा दगड या पासून तयार केतेल्या (जड, स्थावर) लिंगापेक्षा भावलिंग हे

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

श्रेष्ठ आहे. कारण भावलिंगास कोणत्याही तऱ्हेचा दोष नसून उलट त्यापासून ज्ञानमार्गावर प्रवेश मिळतो.।।४०।।

अथ भावलिङ्गिनं कथयति—

विहाय बाह्यलिङ्गानि चिल्लिङ्गं मनसि स्मरन्।
पूजयेद् भावपुष्पैर्यो भावलिङ्गीति कथ्यते।।४१।।

यो मृच्छिलादिनिर्मितबाह्यलिङ्गानि परित्यज्य "तत्प्राणेष्वन्तर्मनसो लिङ्गमाहुः" इत्याथर्वणश्रुतिप्रसिद्धचिन्मयप्राणलिङ्गं मनसि हृत्कमले स्मरन् सन् भावपुष्पैः भावकल्पिताहिंसाद्यष्टपुष्पैः पूजयेत्, स भावलिङ्गीति भावगोचरीभूतप्राणलिङ्गवानिति कथ्यत इत्यर्थः।।४१।।

आता भावलिंगीचे वर्णन करतात—माती किंवा शिलेपासून तयार केलेल्या (स्थावर) बाह्य लिंगाचे पूजन न करिता हृदयकमलामध्ये चित्स्वरूप प्राणलिंगाचे स्मरण करीत अहिंसा अस्तेयादी उत्कृष्ट अष्टभावपुष्पांनी जो पूजा करतो त्याला भावलिगी असे म्हणतात.।।४१।।

अथ तत्प्राणलिङ्गपूजक एव शिवयोगीति कथयति—

मूलाधारेऽथवा चित्ते भ्रूमध्ये वा सुनिर्मलम्।
दीपाकारं यजन् लिङ्गं भावद्रव्यैः स योगवान्।।४२।।

मूलाधारे मूलकमले अथवा चित्ते मध्यहृदये भ्रूमध्ये ऊर्ध्वहृदये वा दीपाकारम्, "हृदयकमलमध्ये दीपवद्वेदसारं प्रणवमयमतर्क्यं योगिभिर्ध्यानगम्यम्" इति योगशास्त्रप्रसिद्धदीपोपमम् अत्यन्तनिर्मलं लिङ्गं प्राणलिङ्गं भावद्रव्यैः पूर्वोक्तभावपुष्पैर्यः पूजयेत्, स योगवान् शिवयोगवानित्यर्थः।।४२।।

अशा प्राणलिंगी पूजकालाच शिवयोगी म्हणतात, असे सांगतात—मूलाधारचक्रात, हृदयामध्ये अथवा दोन्ही भुवयांच्यामध्ये निर्मल अशा ज्योतीच्या आकाराचे शिवलिंग कल्पून त्याची पूजा भावरूप द्रव्यांनी जो करतो त्यास शिवयोगी असे म्हणावे.।।४२।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अथ भावपूजामेव विशेषयित्वा शिवयोगी क्रियालिङ्गनिष्ठो नेति कथयति—

स्वानुभूतिप्रमाणेन ज्योतिर्लिङ्गेन संयुतः।
शिलामृद्दारुसंभूतं न लिङ्गं पूजयत्यसौ।।४३।।

असौ शिवयोगी स्वानुभूतिप्रमाणेन अहमस्मीत्यकर्मकस्वानुभवप्रमाणेन ज्योतिर्लिङ्गेन चिन्मयप्राणलिङ्गेन संयुक्तः सन् पाषाणमृत्काष्ठनिर्मितं लिङ्गं न पूजयेद् नार्चयतीत्यर्थः।।४३।।

भावपूजेमध्येच विशेष आसक्ती असणाऱ्या शिवयोग्याला क्रियालिंगात निष्ठा नसते, असे सांगतात—तो शिवयोगी मी अकर्ता आहे अशा आपल्या अनुभवाच्याच प्रमाणाने चित्स्वरूप ज्योतिर्लिंगाने सयुक्त असल्यामुळे दगड, माती, लाकूड आदी जड द्रव्यांनी केलेल्या लिंगाची पूजा कधीही करीत नाही.।।४३।।

अथ भावसिद्धज्योतिर्लिङ्गपूजां विशिष्टीकृत्य भावलिङ्गस्थलं समापयति—

क्रियारूपा तु या पूजा सा ज्ञेया स्वल्पसंविदाम्।
आन्तरा भावपूजा तु शिवस्य ज्ञानिनां मता।।४४।।

शिवस्य शिवलिङ्गस्य क्रियारूपा तु या पूजा कर्मकाण्डप्रसिद्धक्रियास्वरूपिणी या पूजास्ति, सा स्वल्पसंविदाम् अज्ञानिनामेव मता संमता सती ज्ञेया। आन्तरा भावपूजा तु ज्ञानकाण्डप्रसिद्धान्तःपूजा ज्ञानिनां परिपूर्णशिवज्ञानिनां मता सम्मता।।४४।।

इति भावलिङ्गस्थलम्

आता भावाने सिद्ध असलेल्या ज्योतिर्लिंगाची पूजाच श्रेष्ठ आहे, असे सांगून भावलिंगस्थलाचे निरूपण संपवितात—कर्मकांडात सांगितलेली क्रियारूप असणारी पूजा ही अज्ञजनांसाठी, सामान्य लोकांसाठी सांगितलेली आहे. ज्ञानकांडात सांगितलेली शिवाची पूजा ही भावपूजा होय व ती परिपूर्ण ज्ञानी लोकाकरिता सांगितलेली आहे. म्हणून क्रियालिंगापेक्षा भावलिंगाची पूजा श्रेष्ठ आहे.।।४४।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अथ ज्ञानलिङ्गस्थलम्

अथ—"अचिन्त्यं चाप्रमेयं च व्यक्ताव्यक्तं परं च यत् । सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरं ज्ञानं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु।।" इति श्रुत्यनुसारेण, "परात्परं तु यत्प्रोक्तं तृप्तिलिङ्गं तदुच्यते। भावनातीतमव्यक्तं परं ब्रह्म शिवाभिधम्।।" इति प्रवृत्तवातुलोत्तरवचनानुसारेण च भावलिङ्ग-प्रकाशकज्ञानलयस्थानं तृप्तिलिङ्गापरपर्यायं ज्ञानलिङ्गस्थलं निरूपयति—

तद्भावज्ञापकज्ञानं लयं यत्र समश्नुते।
तज्ज्ञानलिङ्गमाख्यातं शिवतत्त्वार्थकोविदैः।।४५।।

तद्भावज्ञापकज्ञानं तद्भावलिङ्गप्रकाशकज्ञानं यत्र लयं गच्छति, तद् ज्ञानलिङ्गं ज्ञानाश्रयीभूततृप्तिलिङ्गमिति शिवतत्त्वरहस्यार्थवेदिभिर्वीरशैवै-राख्यातमित्यर्थः।।४५।।

'जे अचिंत्य, अप्रमेय, व्यक्ताव्यक्तपर व सूक्ष्माहून सूक्ष्म आहे, अशा ज्ञानरूपाचे शुभचिंतन (संकल्प) माझे मन करीत राहो'. या श्रुतीच्या वचनानुसार वातुलागमात या लिगाचे स्वरूप असे सांगितले आहे. 'जे ज्ञानलिंग परात्पर आहे. त्याच भावनातीत अव्यक्त तृप्तिलिगाला परब्रह्म शिव असे म्हणतात' भावलिंगाला प्रकाशक असे ज्ञान जेथे लय पावते त्याला ज्ञानलिंग अथवा तृप्तिलिंग असे म्हणतात. अशा ज्ञानलिंगस्थलाचे कथन करतात— भावलिंग प्रकाशक असे ज्ञान ज्याठिकाणी लय पावते ते ज्ञानलिंगस्थल होय. त्यालाच शिवरहस्य जाणणारे वीरशैवाचार्य तृप्तिलिंग असे म्हणतात.।।४५।।

अथ तदेव विशदयति—

त्रिमूर्तिभेदनिर्मुक्तं त्रिगुणातीतवैभवम्।
ब्रह्म यद्बोध्यते तत्तु ज्ञानलिङ्गमुदाहृतम्।।४६।।

ब्रह्मविष्णुरुद्रलक्षणमूर्तित्रयभेदरहितं सत्त्वरजस्तमोरूपगुणत्रयोत्तीर्णतुर्य-तुर्यातीतसम्पत्तिमद् ब्रह्म बोध्यते श्रुतिगुरुत्वानुभवैः प्रकाश्यते, तज्ज्ञानलिङ्गं ज्ञानस्याश्रयीभूततृप्तिलिङ्गमित्युच्यत इत्यर्थः।।४६।।

आता त्याचेच स्पष्टीकरण करतात—ब्रह्मा, विष्णू आणि रुद्र अशा त्रिमूर्तींच्या भेदाने विरहित, सत्त्व, रज, तम या त्रिगुणाच्या अतीत आणि तुर्यातीत संपत्तिरूप ब्रह्म, जे श्रुती, गुरूपदेश आणि स्वानुभव यांच्या माध्यमातून जाणले जाते आणि ज्ञानाचे

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

आश्रयीभूत असणारे जे ज्ञानलिंग, त्यालाच तृप्तिलिंग असे म्हटले जाते.।।४६।।

अथ तद् ज्ञानलिङ्गं सूत्रद्वयेन विशेषयति—

स्थूले क्रियासमापत्तिः सूक्ष्मे भावस्य सम्भवः।
स्थूलसूक्ष्मपदातीते ज्ञानमेव परात्मनि।।४७।।

स्थूले स्थूलरूपेष्टलिङ्गे क्रियारूपपूजासम्पत्तिः, सूक्ष्मे प्राणलिङ्गे भावोद्भवः, निर्मलत्वमित्यर्थः। स्थूलसूक्ष्मपदातीते परात्मनि तृप्तिलिङ्गरूप-परमात्मनि ज्ञानमेव।।४७।।

त्या ज्ञानलिंगाची वैशिष्ट्ये दोन श्लोकात सांगतात—स्थूलरूप इष्टलिंगाची पूजा गंधपुष्पादी सामग्रीने होत असते. सूक्ष्म लिंगाची पूजा मनाच्या निर्मलपणाने व्हावी लागते. स्थूल व सूक्ष्म या दोन्ही लिंगांच्या पलीकडे असणाऱ्या तृप्तिलिंगस्वरूप परमात्म्याची पूजा ज्ञानानेच व्हावी लागते. इष्टलिंगाची अर्चा क्रियेने, प्राणलिंगाची अर्चा सद्भावाने आणि तृप्तिलिंगरूप परमेश्वराची पूजा फक्त ज्ञानाने होत असते.।।४७।।

ननु उपासनार्थं स्थूलसूक्ष्मरूपाणि शिवस्यावश्यमपेक्षणीयानीत्यत्राह—

कल्पितानि हि रूपाणि स्थूलानि परमात्मनः।
सूक्ष्माण्यपि च तैः किं वा परबोधं समाचरेत्।।४८।।

परमात्मनः स्थूलसूक्ष्मरूपाणां मायाकल्पितत्वेन केवलमुमुक्षूणां तैः प्रयोजनाभावात् परबोधं परब्रह्ममयतृप्तिलिङ्गमेव समाचरेद् उत्कृष्टत्वेन जानीयादित्यर्थः।।४८।।

उपासनेसाठी परमात्म्याचे स्थूल अथवा सूक्ष्म यापैकी कोणते तरी रूप असावे लागते ना? असे विचारल्यास त्याचे उत्तर असे की—परमेश्वराची स्थूल व सूक्ष्मरूपे मायाकल्पित आहेत. ती रूपे केवळ मोक्षाची अपेक्षा बाळगणाऱ्यासाठी उपयोगाची नाहीत. म्हणून मुमुक्षूने स्थूलसूक्ष्मातीत अशा ज्ञानलिंगाचीच उपासना करावी. अर्थात् ज्ञानलिंगरूप तृप्तिलिंगच श्रेष्ठ होय.।।४८।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अथ उत्कृष्टपरबोधाभिज्ञ एव ज्ञानलिङ्गीति कथयति—

परात्परं तु यद् ब्रह्म परमानन्दलक्षणम् ।
शिवाख्यं ज्ञायते येन ज्ञानलिङ्गीति कथ्यते।।४९।।

परात्परं विश्वापेक्षया परमुत्कृष्टशक्तितत्त्वं तदाश्रयत्वात् ततोऽप्युत्कृष्टं परमानन्दलक्षणं शिवाख्यं यत्परब्रह्म, तद् येन ज्ञायते, स ज्ञानलिङ्गीति भण्यत इत्यर्थः।।४९।।

आता उत्कृष्ट परब्रह्मज्ञान असणाराच ज्ञानलिंगी होय असे सांगतात—उत्कृष्ट ज्ञानाची जाणीव ठेवणाराच ज्ञानलिंगी म्हणविण्यास योग्य होतो. परब्रह्मस्वरूप श्रेष्ठापेक्षाही श्रेष्ठ आहे. परमानद हे त्याचे लक्षण आहे. त्याचे नाव शिव असे असून त्याला जो जाणतो त्यास ज्ञानलिंगी असे म्हणावे.।।४९।।

अथ ज्ञानलिङ्ग्येव परमुक्त इत्युक्त्वा ज्ञानलिङ्गस्थलं समापयति—

बाह्यक्रियां परित्यज्य चिन्तामपि च मानसीम्।
अखण्डज्ञानरूपत्वं यो भजेन्मुक्त एव सः।।५०।।

यो बाह्यक्रियाम् इष्टलिङ्गसम्बन्धिनीं बाह्यक्रियापूजाम्, मानसीं चिन्तामपि च प्राणलिङ्गसम्बन्धिनीमान्तरध्यानपूजां च परित्यज्य अखण्डज्ञानरूपत्वं परिपूर्णतृप्तिलिङ्गं भजेत्, स मुक्त एवेत्यर्थः।।५०।।

इति ज्ञानलिङ्गस्थलम्

तो ज्ञानलिंगीच मुक्त होय, असे सांगून ह्या ज्ञानलिंगस्थलाचा समारोप करतात—इष्टलिंगसंबधीची बाह्यक्रियारूप पूजा व प्राणलिंगसंबंधीची आंतरध्यानरूप मानसिक पूजा यांचा त्याग करून जो अखंड ज्ञानरूप असा तृप्तिलिंगस्वरूप होतो तोच खरा मुक्त होय.।।५०।।

अथ स्वयस्थलम्

अथ—"परं ज्योतिरुपसम्पद्य स्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यते। स उत्तमः पुरुषस्तत्र पर्येति" इति छान्दोग्यश्रुतेः, "प्राणलिङ्गपरिज्ञानानन्दः स शिवलाञ्छनः। बाह्यकर्मपरित्यागी स स्वयं लिङ्गमुच्यते।।" इति वातुलोत्तरवचनाच्च ज्ञानलिङ्ग्येव स्वयस्थलसम्पन्न इति निरूपयति—

तद्भावज्ञापकज्ञानं यत्र ज्ञाने लयं व्रजेत्।
तद्वानेष समाख्यातः स्वाभिधानो मनीषिभिः।।५१।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तद्भावज्ञापकज्ञानलयस्थानवानेष ज्ञानलिङ्गी स्वाभिधानः स्वयंलिङ्गाभिधान इति मनीषिभिः शिवज्ञानिभिः समाख्यात इत्यर्थः।।५१।।

'जो परमप्रकाश संपादन करून आपल्या संवित्स्वरूपाने सदैव प्रकाशमान असतो तो उत्तम पुरुष होय. तो 'परमात्म्यात एकरूप होतो,' अशी छांदोग्य श्रुती आहे. प्राणलिंगाच्या ज्ञानात रममाण झालेला, भस्मरुद्राक्षादी शिवलांच्छने धारण करणारा आणि बाह्य कर्मांचा त्याग करणारा पुरुष स्वयलिंग होय.? या वातुलोत्तरातील वचनानुसार ज्ञानलिंगीच स्वयस्थल संपादन करतो असे सांगतात— भाव लिंगाला प्रकाशित करणारे ज्ञान ज्या ठिकाणी लय पावते असे जे ज्ञानलिंगीस्थल, ते प्राप्त झालेल्या ज्ञानलिंगीलाच शिवज्ञानी लोक स्वयस्थलसंपन्न असे म्हणतात.।।५१।।

अथ तदाचारं प्रकाशयति सूत्रचतुष्टयेन—

स्वच्छन्दाचारसन्तुष्टो ज्योतिर्लिङ्गपरायणः।
आत्मस्थसकलाकारः स्वाभिधो मुनिसत्तमः।।५२।।

ज्योतिर्लिङ्गपरायणो बाह्यलिङ्गवैमुख्येन चिल्लिङ्गनिष्ठः स्वैराचारसन्तुष्टः शिवात्मनि विद्यमानसकलाकारवान् मुनिश्रेष्ठ एव स्वयलिङ्गाभिधानवानित्यर्थः।।५२।।

स्वयस्थलसंपन्नाचे आचार चार श्लोकांत सांगतात—जो आत्मप्रेरित आचारात संतुष्ट असतो, बाह्यलिंगाकडे विमुख होऊन जो ज्योतिर्लिंगात तल्लीन होतो, आपल्या आत्म्याच्या ठिकाणी सर्व सृष्टीला पाहातो तो 'स्वय' नाम धारण करणारा मुनिश्रेष्ठ होय.।।५२।।

निर्ममो निरहङ्कारो निरस्तक्लेशपञ्चकः।
भिक्षाशी समबुद्धिश्च मुक्तप्रायो मुनिर्भवेत्।।५३।।

विषयेषु ममताशून्यः, शरीरादिष्वहमित्यभिमानशून्यः, अविद्यादिपञ्चक्लेशरहितः, भिक्षान्नभोक्ता, लोष्टाश्मकाञ्चनेषु समबुद्धिमान् मुनिः स्वयलिङ्गाभिधानवान् यतिः, मुक्तप्रायः परमुक्तसदृशः स्यात्, चरमदेहत्वादिति।।५३।।

असा स्वयस्थली योगी गृहक्षेत्रादी विषयांच्या ममत्वापासून, शरीरादिविषयक अहंकारापासून मुक्त असतो. अविद्यादी पाच क्लेशांपासून दूर आणि केवळ भिक्षान्नावर निर्वाह करणारा,

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पक्षपातविरहित समबुद्धीचा आणि मुक्तावस्थेप्रत पोचलेला मुनी असतो.।।५३।।

यदृच्छालाभसन्तुष्टो भस्मनिष्ठो जितेन्द्रियः।
समवृत्तिर्भवेद् योगी भिक्षुके वा नृपेऽथवा।।५४।।

स्पष्टम्।।५४।।

तो सहजासहजी जे मिळेल त्यावर सतुष्ट असतो. भस्मधारण आणि भस्मोद्धूलन याच्यात श्रद्धा ठेवतो. त्याने आपली इंद्रिये स्वाधीन ठेवलेली असतात. असा हा स्वयस्थलयोगी राजा असो की रंक, सर्वांशी समत्ववृत्तीने वागतो.।।५४।।

पश्यन् सर्वाणि भूतानि संसारस्थानि सर्वशः।
स्मयमानः परानन्दे लीनात्मा वर्तते सुधीः।।५५।।

सुधीः शोभनबुद्धिमान् स्वयलिङ्गयतिः सर्वशः सर्वत्र संसारस्थानि संसारचक्रस्थितानि सर्वाणि भूतानि पश्यन् स्मयमानः सन् विस्मयवान् सन् परानन्दे परमानन्दमयमहालिङ्गे लीनात्मा लयं गतः सन् वर्तत इत्यर्थः।।५५।।

जगातील सर्व प्राणिमात्र संसारसुखात रमलेले पाहून त्याच्या मनास विस्मय वाटतो. तरीही तो स्वतः ज्ञानी असल्याने परमानदात लीन होऊन वर्तत असतो.।।५५।।

अथ तस्य यतीश्वरस्य नित्यकर्मोक्त्वा स्वयस्थलं समापयति—

ध्यानं शैवं तथा ज्ञानं भिक्षा चैकान्तशीलता।
यतेश्चत्वारि कर्माणि न पञ्चममिहेष्यते।।५६।।

शिवज्ञानं शिवाधिक्यज्ञानम्, शिवध्यानम्, भिक्षाहारः, एकान्तशीलत्वम्— यतेः स्वयलिङ्गशिवयोगिन एतानि चत्वारि कर्माणि । पञ्चमकर्म नेच्छाविषयीक्रियते।।५६।।

इति स्वयस्थलम्

अशा स्वयस्थलीची दिनचर्या कशी असते ते सांगून त्या स्थलाचा समारोप करतात—नेहमी शिवचिंतन करणे, शिवरहस्याचे ज्ञान असणे, भिक्षेवर उदरनिर्वाह आणि एकांतस्थली वास करणे या चार गोष्टी त्याला हव्या असतात. या खेरीज पाचवी वस्तू अथवा कर्माची त्याला गरज नसते.।।५६।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अथ चरस्थलम्

अथ—"आत्मरतिरात्मक्रीड आत्ममिथुन आत्मानन्दः स स्वराड् भवति। तस्य सर्वेषु लोकेषु कामचारो भवति" इति छान्दोग्यश्रुतेः, "अहं-ममत्वशून्यात्मा निजबोधैकरूपदृक्। स्वयमेव स्वयं भूत्वा चरतीति चरः स्मृतः।।" इति वातुलोत्तरवचनाच्च स स्वयलिङ्गसम्पन्न एव स्वयं भूत्वा संचरतीति चरलिङ्गस्थलरूप इति कथयति—

स्वरूपज्ञानसम्पन्नो ध्वस्ताहंममताकृतिः।
स्वयमेव स्वयं भूत्वा चरतीति चराभिधः।।५७।।

स्वयलिङ्गीति शेषः। निरस्ताहङ्कारममकारवान् स्वस्वरूपज्ञानसम्पन्नः स्वयलिङ्गी स्वयमेव स्वयं भूत्वा चरतीति चरलिङ्गाभिधानवा-नित्यर्थः।।५७।।

'जो आपल्या आत्म्यावर प्रेम करतो, जो आपल्या आत्म्याशी खेळतो, जो आपल्या आत्म्याशीच संयुक्त असतो, जो आत्मानंदात रमतो तो राजाप्रमाणे सर्व लोकात हवा तसा संचार करू शकतो.' या छांदोग्य श्रुतिवचनानुसार आणि 'मी व माझे हा भाव त्याच्यात उरत नाही. तो आपल्या ज्ञानरूपातच विलीन झालेला असतो. तो स्वतःच स्वतः होऊन अशा निजात्मदृष्टीने सर्वत्र संचार करीत असतो' अशा वातुलोत्तरवचनानुसार स्वयलिंगसपन्नच चरलिंगस्थली होतो असे सांगतात—अहंता आणि ममता यांच्यापासून विमुक्त आत्म्याच्या स्वरूपज्ञानाने संपन्न, स्वयलिंगी, इतराची अपेक्षा न बाळगता स्वतःच स्वतः होऊन फिरतो. म्हणून त्याला 'चर' हे नाव शोभते.।।५७।।

अथ तस्य चरलिङ्गस्याचारं पञ्चभिः सूत्रैः प्रतिपादयति—

कामक्रोधादिनिर्मुक्तः शान्तिदान्तिसमन्वितः।
समबुद्ध्या चरेद् योगी सर्वत्र शिवबुद्धिमान्।।५८।।

स्पष्टम्।।५८।।

आता त्या चरलिंगाचे आचार पाच श्लोकांतून सांगतात—कामक्रोधादी षड्विकारांपासून मुक्त, शांती-दांती इत्यादी दहा गुणांनीयुक्त आणि तिन्ही लोक शिवमय आहेत अशा शिवस्वरूपात जगाला पाहात तो योगी सर्वत्र समबुद्धीने संचार करीत असतो.।।५८।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इदं मुख्यमिदं हीनमिति चिन्तामकल्पयन्।
सर्वत्र संचरेद् योगी सर्वं ब्रह्मेति भावयन्।।५९।।

योगी शिवयोगीत्यर्थः। शिष्टं स्पष्टम्।।५९।।

हे श्रेष्ठ, ते कनिष्ठ असे विचार मनात न आणता सर्व जग ब्रह्ममयच आहे, अशा वृत्तीने तो सर्वत्र संचार करीत असतो.।।५९।।

न सम्मानेषु सम्प्रीतिं नावमानेषु च व्यथाम्।
कुर्वाणः संचरेद् योगी कूटस्थे स्वात्मनि स्थितः।।६०।।

कूटस्थे स्वात्मनि तुर्यसाक्षिकप्रत्यगात्मलक्षणनिजरूपे विद्यमानः शिवयोगी सम्मानेषु सम्प्रीतिमवमानेषु दुःखं च न कुर्वाणः, अकुर्वाणः सन् संचरेत्।।६०।।

ज्याला आपला सन्मान झाल्याने आनंद होत नाही अथवा अपमान झाल्याचे दुःख वाटत नाही तो योगी कूटस्थ आत्म्यात स्थिर होऊन सर्वत्र संचार करतो. (कूटस्थ हा जीवाच्या कृती आणि अकृतीला साक्षीभूत असतो, सहभागी नसतो.)।।६०।।

अप्राकृतैर्गुणैः स्वीयैः सर्वं विस्मापयन् जनम्।
अद्वैतपरमानन्दमुदितो देहिवच्चरेत्।।६१।।

शिवाद्वैतोद्भूतपरमानन्दसन्तोषितः शिवयोगी अप्राकृतैर्लोकोत्तरैः स्वकीयैर्गुणैः सर्वजनं विस्मययुक्तं सन्तं कुर्वन् सन् शरीरीव चरेत्, वरतीत्यर्थः।।६१।।

शिवाद्वैत परमानंदाने आनंदित झालेला शिवयोगी आपल्या अलौकिक गुणांनी जगाला चकित करीत असतानाच पाहाणाराला मात्र सामान्य जनाप्रमाणे दिसतो.।।६१।।

न प्रपञ्चे निजे देहे न धर्मे न च दुष्कृते।
गतवैषम्यधीर्धीरो यतिश्चरति देहिवत्।।६२।।

गतवैषम्यधीः विधिनिषेधादिषु विगतविषमबुद्धिः, धीरः स्थिरचित्तः, यतिः शिवयोगी, निजे देहे सति देहिवत् प्राकृतवत् प्रपञ्चे न चरति, धर्मे पुण्यकृत्ये पापकृत्येऽपि न चरतीत्यर्थः।।६२।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

विधिनिषेधामध्ये भेदबुद्धी नसलेला, स्थिरचित्त असा तो योगी देहधारी दिसत असला तरी सामान्य लोकांप्रमाणे तो कोणत्याही पुण्यपाप कर्मांने लिप्त नसतो. अर्थात् त्याच्या हातून कोणतेही विहित अथवा निषिद्ध कर्म घडले तरी त्याला त्यापासून पुण्य अथवा पाप लागत नाही.।।६२।।

अथ चरलिङ्गस्थलं समापयति—

प्राकृतैश्वर्यसम्पत्तिपराङ्मुखमनःस्थितिः।
चिदानन्दनिजात्मस्थो मोदते मुनिपुङ्गवः।।६३।।

प्रकृतितत्त्वसमुद्भूतब्रह्मविष्णवाद्यैश्वर्यसम्पत्तिविमुखीभूतचित्तवृत्तिर्यतिश्रेष्ठ-श्चिदानन्दस्वरूपनिष्ठः सन् मोदते सुखमनुभवन्नास्त इत्यर्थः ।।६३।।

इति चरस्थलम्

आता चरलिंगस्थलाचा समारोप करतात—प्रकृतितत्त्वापासून उत्पन्न झालेल्या ब्रह्मलोक-विष्णुलोकांतील ऐश्वर्यापासून विमुख झालेला हा मुनिश्रेष्ठ चिदानंदस्वरूपी निजात्म्यात स्थिर होऊन तेथेच रमलेला असतो.।।६३।।

अथ परस्थलम्

अथ—"तद्ब्रह्माहमिति ज्ञात्वा ब्रह्म सम्पद्यते परम्" इत्यमृतबिन्दुश्रुतेः, "स्वयं स्वयत्वमासाद्य चरतो न परः स्मृतः। असौ ततोऽतीतवर्णाश्रमत्वेन परः स्मृतः।।" इति वातुलोत्तरवचनाच्च स्वरूपसिद्धत्वेन चरतस्तस्य शिवयोगीश्वरस्य परं नास्तीति ज्ञानस्य परलिङ्गस्थलं सप्तभिः सूत्रैः प्रतिपादयति—

स्वयमेव स्वयं भूत्वा चरतः स्वस्वरूपतः।
परं नास्तीति बोधस्य परत्वमभिधीयते।।६४।।

स्वयमेव स्वयं भूत्वा चरतस्तस्य शिवयोगिनः स्वस्वरूपतः परं नास्तीति ज्ञानस्य परलिङ्गत्वमभिधीयत इत्यर्थः।।६४।।

'ते ब्रह्म मीच आहे असे जो जाणतो त्याला ब्रह्माची प्राप्ती होते. श्रेष्ठ, निर्विकल्प, अनंत, हेतुदृष्टांतरहित, अनादी, अप्रमेय अशा ब्रह्माला जो जाणतो तो बंधमुक्त होतो' असे अमृतबिंदूपनिषदाचे वचन आहे. 'आपण आपले स्वरूप जाणून तो फिरतो म्हणून त्याला 'पर' म्हणत नाहीत तर तो वर्णाश्रमातीत

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इदं मुख्यमिदं हीनमिति चिन्तामकल्पयन्।
सर्वत्र संचरेद् योगी सर्वं ब्रह्मेति भावयन्।।५९।।

योगी शिवयोगीत्यर्थः। शिष्टं स्पष्टम्।।५९।।

हे श्रेष्ठ, ते कनिष्ठ असे विचार मनात न आणता सर्व जग ब्रह्ममयच आहे, अशा वृत्तीने तो सर्वत्र संचार करीत असतो.।।५९।।

न सम्मानेषु सम्प्रीतिं नावमानेषु च व्यथाम्।
कुर्वाणः संचरेद् योगी कूटस्थे स्वात्मनि स्थितः।।६०।।

कूटस्थे स्वात्मनि तुर्यसाक्षिकप्रत्यगात्मलक्षणनिजरूपे विद्यमानः शिवयोगी सम्मानेषु सम्प्रीतिमवमानेषु दुःखं च न कुर्वाणः, अकुर्वाणः सन् संचरेत्।।६०।।

ज्याला आपला सन्मान झाल्याने आनंद होत नाही अथवा अपमान झाल्याचे दुःख वाटत नाही तो योगी कूटस्थ आत्म्यात स्थिर होऊन सर्वत्र संचार करतो. (कूटस्थ हा जीवाच्या कृती आणि अकृतीला साक्षीभूत असतो, सहभागी नसतो.)।।६०।।

अप्राकृतैर्गुणैः स्वीयैः सर्वं विस्मापयन् जनम्।
अद्वैतपरमानन्दमुदितो देहिवच्चरेत्।।६१।।

शिवाद्वैतोद्भूतपरमानन्दसन्तोषितः शिवयोगी अप्राकृतैर्लोकोत्तरैः स्वकीयैर्गुणैः सर्वजनं विस्मययुक्तं सन्तं कुर्वन् सन् शरीरीव चरेत्, वरतीत्यर्थः।।६१।।

शिवाद्वैत परमानंदाने आनंदित झालेला शिवयोगी आपल्या अलौकिक गुणांनी जगाला चकित करीत असतानाच पाहाणाराला मात्र सामान्य जनाप्रमाणे दिसतो.।।६१।।

न प्रपञ्चे निजे देहे न धर्मे न च दुष्कृते।
गतवैषम्यधीर्धीरो यतिश्चरति देहिवत्।।६२।।

गतवैषम्यधीः विधिनिषेधादिषु विगतविषमबुद्धिः, धीरः स्थिरचित्तः, यतिः शिवयोगी, निजे देहे सति देहिवत् प्राकृतवत् प्रपञ्चे न चरति, धर्मे पुण्यकृत्ये पापकृत्येऽपि न चरतीत्यर्थः।।६२।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

विधिनिषेधामध्ये भेदबुद्धी नसलेला, स्थिरचित्त असा तो योगी देहधारी दिसत असला तरी सामान्य लोकांप्रमाणे तो कोणत्याही पुण्यपाप कर्मांने लिप्त नसतो. अर्थात् त्याच्या हातून कोणतेही विहित अथवा निषिद्ध कर्म घडले तरी त्याला त्यापासून पुण्य अथवा पाप लागत नाही.।।६२।।

अथ चरलिङ्गस्थलं समापयति—

प्राकृतैश्वर्यसम्पत्तिपराङ्मुखमनःस्थितिः।
चिदानन्दनिजात्मस्थो मोदते मुनिपुङ्गवः।।६३।।

प्रकृतितत्त्वसमुद्भूतब्रह्मविष्ण्वाद्यैश्वर्यसम्पत्तिविमुखीभूतचित्तवृत्तिर्यतिश्रेष्ठश्चिदानन्दस्वरूपनिष्ठः सन् मोदते सुखमनुभवन्नास्त इत्यर्थः ।।६३।।

इति चरस्थलम्

आता चरलिंगस्थलाचा समारोप करतात—प्रकृतितत्त्वापासून उत्पन्न झालेल्या ब्रह्मलोक-विष्णुलोकांतील ऐश्वर्यापासून विमुख झालेला हा मुनिश्रेष्ठ चिदानंदस्वरूपी निजात्म्यात स्थिर होऊन तेथेच रमलेला असतो.।।६३।।

अथ परस्थलम्

अथ—"तद्ब्रह्माहमिति ज्ञात्वा ब्रह्म सम्पद्यते परम्" इत्यमृतबिन्दुश्रुतेः, "स्वयं स्वयत्वमासाद्य चरतो न परः स्मृतः। असौ ततोऽतीतवर्णाश्रमत्वेन परः स्मृतः।।" इति वातुलोत्तरवचनाच्च स्वरूपसिद्धत्वेन चरतस्तस्य शिवयोगीश्वरस्य परं नास्तीति ज्ञानस्य परलिङ्गस्थलं सप्तभिः सूत्रैः प्रतिपादयति—

स्वयमेव स्वयं भूत्वा चरतः स्वस्वरूपतः।
परं नास्तीति बोधस्य परत्वमभिधीयते।।६४।।

स्वयमेव स्वयं भूत्वा चरतस्तस्य शिवयोगिनः स्वस्वरूपतः परं नास्तीति ज्ञानस्य परलिङ्गत्वमभिधीयत इत्यर्थः।।६४।।

'ते ब्रह्म मीच आहे असे जो जाणतो त्याला ब्रह्माची प्राप्ती होते. श्रेष्ठ, निर्विकल्प, अनंत, हेतुदृष्टांतरहित, अनादी, अप्रमेय अशा ब्रह्माला जो जाणतो तो बंधमुक्त होतो' असे अमृतबिंदूपनिषदाचे वचन आहे. 'आपण आपले स्वरूप जाणून तो फिरतो म्हणून त्याला 'पर' म्हणत नाहीत तर तो वर्णाश्रमातीत

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

होऊन वावरतो म्हणून त्याला 'पर' म्हणतात' असे वातुलोत्तर आगमाचे वचन आहे. या दोन मंत्रांत सांगितल्या प्रमाणे आत्मरूप सिद्धस्थितीत फिरणाऱ्या चरमूर्तीपेक्षा श्रेष्ठ कोणीही नाही, असे ज्ञान ज्यात होते त्या परलिंगस्थलाचे वर्णन सात श्लोकात करतात—आपल्या स्वरूपाचे यथार्थ ज्ञान झाल्यामुळे स्वतःच स्वयंसिद्ध होऊन शिवयोगी संचार करीत असतो. आपल्या स्वरूपापेक्षा पर (दुसरे) काही नाही, हे तो जाणतो म्हणून त्यास परस्थल असे म्हणतात. तात्पर्य असे की पर म्हणजे विश्वोत्तीर्ण परशिव. त्या परशिवास स्वात्मरूपाने जो जाणतो, त्याला आपल्याहून भिन्न दुसऱ्या व्यक्तीचा अथवा पदार्थाचा बोध होत नाही. तर सर्वत्र आपल्याच स्वरूपाचा बोध होतो. म्हणून तो परस्थली जीवन्मुक्तामध्ये श्रेष्ठ मानला जातो.।।६४।।

अथ तस्य वर्तनाप्रकारमाह—

स्वतन्त्रः सर्वकृत्येषु स्व परत्वेन भावितः।
तृणीकुर्वन् जगज्जालं वर्तते शिवयोगिराट्।।६५।।

स्व परत्वेन विश्वाधिकत्वेन भावितः परामृष्टः शिवयोगिराट् शिवयोगीश्वरः सर्वकृत्येषु स्वतन्त्रः सन् जगज्जालं जगत्समूहं तृणीकुर्वन् सन् वर्तत इत्यर्थः।।६५।।

आपण स्वतः विश्वाधिक असा शिवस्वरूप शिवयोगीश्वर असून सर्व कार्यात स्वतंत्र आहोत, ह्या जाणीवेने जगातील सर्व ऐश्वर्याला तृणवत् मानून निःस्पृहपणे वागतो.।।६५।।

अथ स कथं मोदत इत्यत्राह—

वर्णाश्रमसमाचारमार्गनिष्ठापराङ्मुखः।
सर्वोत्कृष्टं स्वमात्मानं पश्यन् योगी तु मोदते।।६६।।

योगी शिवयोगीत्यर्थः। शिष्टं स्पष्टम्।।६६।।

तो तशा अवस्थेत आनंद कसा पावतो? तर—वर्णाश्रम धर्माच्या आचारांशी पराङ्मुख होऊन तो परशिवयोगी आपल्या सर्वोत्कृष्ट अशा आत्मस्वरूपाकडे पाहात राहून आनंदित होतो. आत्मा हा आनंदरूप असल्यामुळे त्याला सुखप्राप्तीसाठी बाह्य साधनांची आवश्यकता नसते हा मथितार्थ.।।६६।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अथ किमिदं सर्वोत्कृष्टत्वमित्यत्राह—

विश्वातीतं परंब्रह्म शिवाख्यं चित्स्वरूपकम्।
तदेवाहमिति ज्ञानी सर्वोत्कृष्टः स उच्यते।।६७।।

स्पष्टम्।।६७।।

तो शिवयोगी सर्वोत्कृष्ट कसा? तर—परशिव ब्रह्मच विश्वातीत आणि चित्स्वरूप असून ते परब्रह्म मीच आहे असे तो ज्ञानयोगी समजत असल्यामुळे तो सर्वोत्कृष्ट होय. शिवनावाचे परब्रह्म चैतन्यस्वरूप, सर्व विश्वापेक्षा श्रेष्ठ आहे आणि ते चित्स्वरूप मीच आहे असे समजून तो सर्वोत्कृष्ट परशिवयोगी जगात वागत असतो.।।६७।।

ननु ब्रह्मस्वरूपत्वे ब्रह्मवन्मुक्त एव स्यादित्यत्राह—

अचलं ध्रुवमात्मानमनुपश्यन्निरन्तरम्।
निरस्तविश्वविभ्रान्तिर्जीवन्मुक्तो भवेन्मुनिः।।६८।।

अचलमचञ्चलं ध्रुवं नित्यमात्मानं स्वस्वरूपं निरन्तरमखण्डितत्वेन अनुपश्यन् अनन्यत्वेन पश्यन् मुनिः शिवयोगी निरस्तविश्वविभ्रान्तिः निराकृतप्रापञ्चिकभ्रान्तिवान् सन् जीवन्मुक्त आहारव्यवहारादिना जीवन्नपि पुनर्जन्मान्तराभावान्मुक्त इत्यर्थः।।६८।।

हा शिवयोगी परब्रह्मच होय असे म्हटल्यास तो परब्रह्माप्रमाणेच मुक्त असेल ना? तर, होय अविचल आणि शाश्वत अशा आत्म्याला तो सदैव पाहात असतो. विश्वाची भ्रांत कल्पना त्याच्या मनातून नष्ट पावलेली असल्यामुळे तो शिवयोगी जीवनमुक्त होऊन वागत असतो. आहारव्यवहारामुळे तो जिवंत दिसत असला तरी त्याला पुनर्जन्म नसतो.।।६८।।

ननु वर्णाश्रमगतसमाचारपरित्यागेन कर्मदेवताः कुपिता भवन्तीति कथं जीवन्मुक्त इत्यत्राह—

ब्रह्माद्याः किं नु कुर्वन्ति देवताः कर्ममार्गगाः।
कर्मातीतपदस्थस्य स्वयं ब्रह्मस्वरूपिणः।।६९।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

स्वयं स्वयमेव ब्रह्मस्वरूपिणः ब्रह्मस्वरूपवान् सन् कर्मातीतपदस्थस्य पुण्यपापादिकर्मकाण्डोत्तीर्णस्थानगतस्य शिवयोगिनः कर्ममार्गगा ब्रह्मविष्ण्वाद्या देवताः किं नु कुर्वन्ति, न किमपि कर्तुं कुशला इत्यर्थः।।६९।।

वर्णाश्रमांचे आचार सोडल्याने कर्मदेवता त्याच्यावर कुपित होणार नाहीत का? स्वतः परब्रह्मस्वरूपी असलेल्या, पुण्यपापादी कर्मकाडांनी प्राप्य अशा स्थानांच्या अतीत असलेल्या त्या शिवयोग्याला, त्याने कर्मकांडांचे पालन केले नाही तरी, कर्ममार्गी ब्रह्मादी देवता त्याचे काहीही अहित करू शकत नाहीत.।।६९।।

पुनरयं शिवयोग्येवाज्ञानं विमोचयतीत्याह—

स्वेच्छया संचरेद् योगी विमुञ्चन् देहमानिताम्।
दर्शनैः स्पर्शनैः सर्वानज्ञानपि विमोचयेत्।।७०।।

देहमानितां देहाभिमानं विमुञ्चन् शिवयोगी स्वेच्छया संचरन्नपि स्वैराचारसम्पन्नोऽपि दर्शनस्पर्शनाभ्यां सर्वानज्ञान् प्राकृतजनान् विमोचयेद् मुक्तान् कुर्यादित्यर्थः।।७०।।

असा शिवयोगी लोकांचे अज्ञान दूर करून त्यांचा उद्धार करतो असे सांगतात—स्वतःच्या देहाचा अभिमान न बाळगता परशिवयोगी स्वच्छंदपणे जगात संचार करीत असतो. आपल्या दर्शनाने व स्पर्शाने सर्व अज्ञजनांचे अज्ञान दूर करून त्यांना मुक्त स्थिती प्राप्त करून देतो.।।७०।।

अथ— "निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति दिव्यम्" इति श्रुतेः परलिङ्ग-रूपशिवयोगीश्वर एव शिवभावसम्पन्नत्वाज्जीवन्मुक्त इत्युक्त्वा परस्थलं समापयति—

नित्ये निर्मलभावने निरुपमे निर्धूतविश्वभ्रमे
सत्तानन्दचिदात्मके परशिवे साम्यं गतः संयमी।
प्रध्वस्ताश्रमवर्णधर्मनिगलः स्वच्छन्दसंचारवान्
देहीवाद्भुतवैभवो विजयते जीवन्विमुक्तः सुधीः।।७१।।

इति श्रीमत्षट्स्थलब्रह्मिणा शिवयोगिनाम्ना रेणुकाचार्येण विरचिते सिद्धान्तशिखामणौ लिङ्गस्थले भक्तस्थलगतनवविधलिङ्गप्रसङ्गो नाम पञ्चदशः परिच्छेदः समाप्तः।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

नित्ये निर्मलस्वरूपे, उपमातीते निरस्तसमस्तदोषे सच्चिदानन्दात्मके परशिवे ज्ञातृत्वकर्तृत्वयोगात् साम्यं गतः प्रध्वस्तचतुर्वर्णचतुराश्रमधर्मशृङ्खलः स्वच्छन्दाचारवान् स्वेच्छाचारवान् जीवन्मुक्तः सुधीः परलिङ्गरूपशिवयोगी, देहीव, देहवानपि, अद्भुतवैभवः सन् आश्चर्यभूतमहत्त्वसम्पत्तिमान् सन्, विजयते सर्वोत्कर्षेण वर्तत इत्यर्थः।।७१।।

इति श्रीमत्पदवाक्यप्रमाणपारावारधुरीणश्रीमरितोण्टदार्येण विरचितायां तत्त्वप्रदीपिकाख्यायां सिद्धान्तशिखामणिव्याख्यायां पञ्चदशः परिच्छेदः।।

परलिंगस्वरूप असा शिवयोगी शिवभावाची प्राप्ती करून घेतल्यामुळे तो जीवन्मुक्त असतो, हे सांगून परस्थलाचा समारोप करतात—नित्य, निर्मल, निरूपम, विश्वभ्रमरहित, सच्चिदानंदरूप अशा परशिवाशी आपल्या ज्ञातृत्व, कर्तृत्वादीमुळे समान झालेला असा शिवयोगी वर्णाश्रमधर्माच्या शृंखला तोडून स्वच्छंदपणे मानवरूपात संचार करतो. असा ज्ञानी जीवन्मुक्त देहधारी असूनही अलौकिक वैभवाने सर्वत्र विजयी होतो.।।७१।।

अशारीतीने सिद्धांत-शिखामणीतील भक्तस्थलांतर्गत नवविध लिंगस्थलांचे वर्णन असणारा पंधरावा परिच्छेद संपला.

पंधरावा परिच्छेद समाप्त।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

षोडशः परिच्छेदः

अथ क्रियागमस्थलम्

अथागस्त्यप्रश्नः। अगस्त्य उवाचेति—

स्थलानां नवकं प्रोक्तं भक्तस्थलसमाश्रयम्।
माहेश्वरस्थले सिद्धं स्थलभेदं वदस्व मे।।१।।

स्पष्टम्।।१।।

अगस्त्य प्रश्न करतात—आपण भक्तस्थलातील नऊ स्थले विशद केलीत, आता माहेश्वरात जे स्थलभेद आहेत ते मला सागा.।।१।।

श्रीरेणुकः प्रत्युत्तरं वक्ति, रेणुक उवाचेति—

माहेश्वरस्थले सन्ति स्थलानि नव तापस।
क्रियागमस्थलं पूर्वं ततो भावागमस्थलम्।।२।।
ज्ञानागमस्थलं चाथ सकायस्थलमीरितम्।
ततोऽकायस्थलं प्रोक्तं परकायस्थलं ततः।।३।।
धर्माचारस्थलं चाथ भावाचारस्थलं ततः।
ज्ञानाचारस्थलं चेति क्रमादेषां भिदोच्यते।।४।।

स्पष्टम्।।२-४।।

यावर श्रीरेणुक सागतात—माहेश्वरस्थलात नऊ पोटभेद आहेत. ते असे-१) क्रियागमस्थल, २) भावागमस्थल, ३) ज्ञानागमस्थल, ४) सकायस्थल, ५) अकायस्थल, ६) परकायस्थल, ७) धर्माचार-स्थल, ८) भावाचार स्थल, आणि ९) ज्ञानाचार स्थल अशा नऊ स्थलातील प्रत्येकाचे भेद आता क्रमाने सागतो. ।।२-३-४।।

अथ—"यान्यनवद्यानि कर्माणि तानि सेवितव्यानि नो इतराणि" इति श्रुतेः, "अल्पक्रिया बहुफलं वीरशैव महेश्वरि" इति वातुलतन्त्रवचनाच्च

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पूर्वोक्तपरस्थलसम्पन्नः शिवयोगीश्वर एव शिवः, तस्य पूजैव क्रिया, तत्परागम एव क्रियागम इति क्रियागमस्थलं निरूपयति—

शिवो हि परमः साक्षात् पूजा तस्य क्रियोच्यते।
तत्परा आगमा यस्मात् तदुक्तोऽयं क्रियागमः।।५।।

परमः पूर्वोक्तपरलिङ्गशिवयोगीश्वर एव साक्षाच्छिवो हि प्रत्यक्षीभूतः शिवः, तस्य पूजा क्रियोच्यते, क्रियेत्युच्यत इत्यर्थः। आगमा यस्मात् कारणात् तत्पराः क्रियाप्रधानाः, तत् तस्मात् कारणाद् अयं क्रियागम इत्युच्यत इत्यर्थः।।५।।

'जी कर्मे निर्दोष व अनिंद्य आहेत तीच करावीत, इतर करू नयेत', असे श्रुती सांगते. 'हे महेश्वरी, पार्वती, वीरशवाची क्रिया अल्प असली तरी ती बहुफल देणारी असते', असे वातुल तंत्राचे वचन आहे. पूर्वोक्त परस्थलसंपन्न शिवयोगीश्वरच शिवरूप असतो. त्याची पूजाच क्रिया होय आणि क्रिया-प्रतिपादन करणारा आगमच क्रियागम होय. अशा क्रियागमस्थलाचे वर्णन करतात— पूर्वोक्त परलिंगशिवयोगी हाच साक्षात् शिव आहे. तो करतो ती पूजा हीच क्रिया होय. अशी क्रिया लोकानुसरणासाठी शास्त्रानुसार, उपयुक्त उपदेशासारखी असल्यामुळे त्या क्रियेलाच क्रियागम असे म्हणतात.।।५।।

अथ तत्पूजाक्रियामेव पञ्चभिः सूत्रैर्विशेषयति—

प्रकाशते यथा नाग्निररण्यां मथनं विना।
क्रियां विना तथान्तस्थो न प्रकाशो भवेच्छिवः।।६।।

अरण्यां दारुपात्रे वह्निर्मन्थनं विना यथा न प्रकाशते, तथा पूजा-क्रियां विना अन्तस्थो लिङ्गमध्यस्थः शिवः प्रकाशो न भवेदित्यर्थः।।६।।

आता त्या पूजारूप क्रियेचे वर्णन पाच श्लोकात करतात— अरणीत अग्नी असतो खरा परंतु तो मथन केल्याशिवाय जसा प्रकट होत नाही, तसाच प्रत्येक प्राणिमात्राच्या हृदयात असलेल्या शिवाचा साक्षात्कार सुद्धा क्रिये (पूजे) वाचून होत नाही.।।६।।

अथ सा पूजा कथं कर्तव्येत्यत्राह—

न यथा विधिलोपः स्याद्यथा देवः प्रसीदति।
यथागमः प्रमाणं स्यात्तथा कर्म समाचरेत्।।७।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

विधिलोप इतिकर्तव्यतालक्षणनियमलोप इत्यर्थः। विधेर्लोपे शिवो न प्रसीदति, तथागमस्याप्रामाण्यं प्राप्नुयात्। तस्माद् यथा विधेर्लोपो न भवति, तथा पूजा कर्तव्येत्यर्थः।।७।।

ती पूजा कशी करावी? तर विधिविधानांचा लोप होऊ न देता, आगमशास्त्रात सांगितल्याप्रमाणे, म्हणजे आगमांच्या विरुद्ध नसणारी आणि शिवाचा अनुग्रह होईल अशी कर्मेच आचरावीत. तात्पर्य, जीवन्मुक्त अशा परलिंगशिवयोग्याचे आचरण पाहून लोक स्वतःचे आचरण करीत असतात. म्हणून लोकांसाठी तरी त्या शिवयोग्याने शास्त्रोक्तप्रकारे आचरण करावे.।।७।।

ननु शिवपूजा किमर्थं कर्तव्येत्यत्राह—

विधिः शिवनियोगोऽयं तस्माद् विहितकर्मणि।
शिवाराधनबुद्ध्यैव निरतः स्याद् विचक्षणः।।८।।

विहितकर्मणि शास्त्रोक्तकर्मण्ययं विधिः शिवपूजा कर्तव्येति विधिः शिवनियोगः शिवस्याज्ञारूपः, तस्माद् विचक्षणः प्रवीणः शिवाराधनबुद्धौ निरत आसक्तः स्यात्, अन्यथा शिवाज्ञालङ्घने नरकं व्रजेदित्यर्थः।।८।।

तरीपण शिवपूजा का करावी? याचे उत्तर असे की, शिवपूजा ही विहितकर्मांपैकी आहे आणि ती करण्याविषयी शिवाची आज्ञा आहे. शिवाज्ञेचे उल्लंघन केल्यास नरकप्राप्ती होते, असे शास्त्रवचन आहे. म्हणून शिवाज्ञारूपी शिवपूजेचे उल्लघन करू नये तर शहाण्या माणसाने शिवाराधनेच्या बुद्धीनेच विहित कर्मे करावीत.।।८।।

अथ शिवपूजाप्रकारः कथं ज्ञातव्य इत्यत्राह—

गुरोरादेशमासाद्य पूजयेत् परमेश्वरम्।
पूजिते परमेशाने पूजिताः सर्वदेवताः।।९।।

गुरूपदिष्टप्रकारेण शिवलिङ्गं पूजयेत् । तस्मिन् पूजिते सर्वे देवाः पूजिताः स्युः, शिवलिङ्गस्य सर्वदेवमयत्वेन सर्वदेवाः प्रसन्नाः स्युरित्यर्थः।।९।।

शिवपूजा कशी करावी? तर, गुरूने उपदेश केल्याप्रमाणे शिवाची पूजा करावी. एका शिवाची पूजा केल्यानेच सर्व देवांची पूजा केल्यासारखे होते.।।९।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ननु शिवपूजनस्य किं फलमित्यत्राह—

सदा शिवार्चनोपायसामग्रीव्यग्रमानसः।
शिवयोगरतो योगी मुच्यते नात्र संशयः।।१०।।

सर्वदा शिवलिङ्गपूजासाधनसामग्रीसम्पादनरूपशिवयोगनिष्ठः शिवयोगी मलमायादिपाशमुक्तो भवति। अस्मिन्नर्थे संशयो नास्तीत्यर्थः।।१०।।

शिवपूजेचे फळ काय? तर—जो योगी नेहमी शिवपूजनास लागणारी सामग्री मिळविण्यात मग्न असतो आणि शिवयोगसमाधीत लीन असतो, तो मायामलपाशातून मुक्त होतो यात शंका नाही.।।१०।।

ननु—"ज्ञानादेव तु कैवल्यम्" इत्यादिवचनैर्ज्ञानस्यैव मोक्षसाधनत्वं प्रतीयते, न कर्मण इत्याशङ्क्य "न क्रियारहितं ज्ञानं न ज्ञानरहिता क्रिया। अपश्यन्नन्धको दग्धोऽगच्छन् पङ्गुश्च दह्यते।।" इति शिवरहस्य-वचनानुसारेण समाधत्ते—

अन्धपङ्गुवदन्योन्यसापेक्षे ज्ञानकर्मणी।
फलोत्पत्तौ विरक्तस्य तस्मात् तद्द्वयमाचरेत्।।११।।

ज्ञानकर्मणी ज्ञानक्रिये अन्धपङ्गुवदन्योन्यसापेक्षे इति तद्द्वयं ज्ञानक्रियाद्वयम्। तस्मात् फलोत्पत्तौ परापरमुक्तिरूपफलोत्पत्तौ विरक्त आचरेदित्यर्थः।।११।।

'ज्ञानानेच मोक्षप्राप्ती होते' इत्यादी वचनावरून ज्ञान हेच मोक्षाचे साधन आहे, कर्म नव्हे काय? अशी शंका उत्पन्न झाल्यास शिवरहस्यातील वचनानुसार क्रियारहित ज्ञान आणि ज्ञानविरहित क्रिया निरर्थक होय. आंधळा अग्नीला पाहू शकत नाही आणि पांगळा अग्नी दिसत असूनही दूर जाऊ शकत नाही म्हणून दोघेही अग्नीने भाजले जातात, परंतु दोघांनी एकमेकाचे साहाय्य घेतले तर मात्र अग्नीपासून दूर जाऊन वाचू शकतात तसे ज्ञान आणि क्रिया यांच्या संयोगाने जीवास मुक्ती मिळू शकेल, असे पटवून देतात—आंधळा आणि पांगळा हे जसे परस्परावर अवलंबून असतात, त्याप्रमाणे ज्ञान आणि कर्म हे परस्परसापेक्ष आहेत. म्हणून ज्ञानी शिवयोग्याने त्यापैकी कशापासूनही फलाची आसक्ती न ठेवता दोहोंचे आचरण करावे.

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ज्ञान आणि कर्म यांच्या संयुक्त आचरणानेच त्याला मुक्ती मिळते.।।११।।

ननु सिद्धज्ञानिनां कर्मणा प्रयोजनं नास्तीत्यत्राह—

ज्ञाने सिद्धेऽपि विदुषां कर्मापि विनियुज्यते।
फलाभिसन्धिरहितं तस्मात् कर्म न सन्त्यजेत्।।१२।।

"न कर्मणा" इति श्रुतेः काम्यकर्मपरत्वाद् विदुषां ज्ञाने सिद्धेऽपि वेदान्तेऽग्निहोत्रवत् फलापेक्षारहितं कर्म विधीयत एव, तत्तदाश्रमविहितकर्मपरित्यागे पातित्यात्, "ज्ञानं प्रधानं न तु कर्महीनं कर्म प्रधानं न तु चिद्विहीनम्। तस्माद् द्वयोरेव भवेत् प्रसिद्धिर्नह्येकपक्षो विहगः प्रयाति।।" इत्यभियुक्तोक्तेश्च निष्कामकर्मानुष्ठानं न सन्त्यजेदित्यर्थः।।१२।।

ज्ञानसिद्धाला कर्माचे प्रयोजन नसते ना? उत्तर असे की, ज्ञानसिद्धी झाली तरी विद्वानाने कर्म केलेच पाहिजे. वेदांतशास्त्रात अग्निहोत्रादी कर्मे फलाची अपेक्षा न बाळगता करावीत असे विधान आहे. त्या त्या आश्रमविहित कर्मांच्या त्यागाने मनुष्य पतित होतो. ज्ञान प्रधान असले तरी ते कर्मविरहित नसावे आणि कर्माचे प्राधान्य असले तरी ते कर्म ज्ञानशून्य नसावे. पक्ष्याला उडण्यासाठी जशी दोन पंखांची गरज असते, एकाच पखाने तो उडू शकत नाही, तशा प्रकारे मुक्ती मिळविण्यासाठी ज्ञान आणि कर्म या दोहोंची आवश्यकता आहे. म्हणून ज्ञान्याने निष्कामपणाने कर्म करावे.।।१२।।

अथाचारस्याधिक्यं प्रतिपादयति—

आचार एव सर्वेषामलङ्काराय कल्प्यते।
आचारहीनः पुरुषो लोके भवति निन्दितः।।१३।।

स्पष्टम्।।१३।।

आता आचाराची श्रेष्ठता सांगतात—चांगला आचार हाच सर्व लोकांना भूषणावह आहे. जो मनुष्य आचारभ्रष्ट, दुराचारी असतो तो लोकांच्या दृष्टीने निंद्य ठरतो.।।१३।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तस्मात् सत्कर्माचरणवान् भवेदित्युक्त्वा क्रियागमस्थलं समापयति—

ज्ञानेनाचारयुक्तेन प्रसीदति महेश्वरः।
तस्मादाचारवान् ज्ञानी भवेदादेहपातनम्।।१४।।

स्पष्टम्।।१४।।

इति क्रियागमस्थलम्

म्हणून मनुष्याने नेहमी सत्कर्मांचे आचरण करावे, असे सांगून क्रियागमस्थलाचा समारोप करतात—सदाचारयुक्त अशा ज्ञानी मनुष्यावरच महेश्वर प्रसन्न होतो. म्हणून ज्ञानी मनुष्याने मरेपर्यंत सदाचारसपन्न राहावे.।।१४।।

अथ भावागमस्थलम्

अथ—"यं यथोपासते तदेव भवति यद्भावं तद्भवति यथाकारि तथाचारि तथा भवति" इति बृहदारण्यकश्रुतेः, "शिवभावानुसन्धानाच्छिवो भावे प्रकाशते" इति योगजागमस्थितेश्च निष्कामकर्मानुष्ठानवतो विरक्तस्य भावचिह्नमेव भावागमस्थलमिति निरूपयति—

भावचिह्नानि विदुषो यानि सन्ति विरागिणः।
तानि भावागमत्वेन वर्तन्ते सर्वदेहिनाम्।।१५।।

विरागिणः असत्क्रियाफलविरक्तस्य, विदुषो ज्ञानिनः शिवयोगिनः, यानि भावचिह्नानि सन्ति, तानि सर्वदेहिनां प्राकृतानां भावागमत्वेन वर्तन्त इत्यर्थः।।१५।।

'साधक ज्याची जशी उपासना करतो तसा तो होतो. त्याचा जसा भाव असतो, तो जसे करतो, तसाच त्याचा भाव आणि आचार होतो'. 'शिवभावाचे अनुसंधान केल्यास त्या भावात शिव प्रकाशतो'. बृहदारण्य तथा योगजागमाच्या या वचनांनुसार निष्काम भावाने कर्माचे अनुष्ठान करणाऱ्या निःस्पृह (विरक्त) शिवयोग्याचे भावचिन्ह हेच भावागमस्थल होय असे सांगतात— वैराग्यसंपन्न शिवयोग्याची जी भावचिन्हे (लक्षणे) असतात तीच सामान्य माणसांना अनुकरणीय अशा भावरूप शास्त्रासारखी असतात. तात्पर्य, शिवयोग्याची भावचिन्हेच लोकाना मार्गदर्शक शास्त्राप्रमाणे असल्यामुळे हे भावागमस्थल होय.।।१५।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अथ पूर्वोक्तज्ञानाचारापेक्षया भाव एव विशिष्ट इति सूत्रद्वयेन कथयति—

शिवोऽहमिति भावोऽपि शिवतापत्तिकारणम्।
न ज्ञानमात्रं नाचारो भावयुक्तः शिवो भवेत्।।१६।।

शिवोऽहमिति भावः शिवत्वप्राप्तिकारणम्, ज्ञानमात्रं न, शिवतापत्तिकारणं न भवतीत्यर्थः। आचारः केवलसत्क्रियाचारोऽपि न, शिवत्वप्राप्तिकारणं न, किन्तु भावयुक्तः शिवोऽहमिति भावेन संयुक्त एव शिवः शिवस्वरूपो भवेदित्यर्थः।।१६।।

पूर्वोक्त ज्ञानाचारापेक्षाही भावच श्रेष्ठ असल्याचे दोन श्लोकांत प्रतिपादन करतात—पूर्वी सांगितलेल्या ज्ञानयुक्त सदाचारापेक्षाही 'मी शिव आहे' अशी दृढ भावना होणे हेच शिवतत्त्वप्राप्तीला महत्त्वाचे कारण आहे. केवळ ज्ञान अथवा आचार या कारणाने शिवत्व येत नाही तर शिवत्वाच्या भावनेने युक्त होण्याने मनुष्य स्वतः शिव होतो.।।१६।।

ननु ज्ञानभावयोः को भेद इत्यत्राह—

ज्ञानं वस्तुपरिच्छेदो ध्यानं तद्भावकारणम्।
तस्माद् ज्ञाते महादेवे ध्यानयुक्तो भवेत् सुधीः।।१७।।

वस्तुपरिच्छेद इदमेतादृशमिति वस्तुस्वरूपनिर्णायकं ज्ञानम्, तद्भावकारणं निर्णीतस्य वस्तुनो भावस्य धर्मलाभस्य कारणं ध्यानं तदेवाहमिति मननम्। तस्मात् शिवे ज्ञाते सति सुधीः सुज्ञानी ध्यानयुक्तो भावेन संयुक्तो भवेत् स्यादित्यर्थः।।१७।।

ज्ञान आणि भावनेत काय भेद आहे? तर—वस्तूचे यथार्थ स्वरूप समजून घेण्याला ज्ञान कारण असते. आणि त्या जाणलेल्या वस्तूचे स्वरूप प्राप्त करून घेण्याला कारण त्या वस्तूचे ध्यान असते. शिवज्ञानामुळे शिवाच्या स्वरूपाचे ज्ञान होते आणि शिवध्यानामुळे शिवत्व प्राप्त होते. म्हणून शिवज्ञानसंपन्न असलेल्या शिवयोग्याने शिवोऽहं अशा भावनेने निरंतर ध्यान करीत राहावे. त्यामुळे तो शिवस्वरूप होतो.।।१७।।

अथ कथं भावयेदित्यत्राह—

अन्तर्बहिश्च सर्वत्र परिपूर्णं महेश्वरम्।
भावयेत् परमानन्दलब्धये पण्डितोत्तमः।।१८।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अन्तर्बहिश्च शरीरान्तर्बहिश्चेत्यर्थः। शिष्टं स्पष्टम्।।१८।।

ही भावना कशी करावी? तर—शिवशास्त्रकुशल शिवयोग्यांनी परमानंदप्राप्तीसाठी परशिव आपल्या शरीराच्या आत आणि बाहेर सर्वत्र परिपूर्ण व्यापून राहिला आहे, असे सदा ध्यान करावे.।।१८।।

अथ सा क्रियापूजा भावरहिता चेद् वृथेति सदृष्टान्तं सूत्रद्वयेनाह—

अर्थहीना यथा वाणी पतिहीना यथा सती।
श्रुतिहीना यथा बुद्धिर्भावहीना तथा क्रिया।।१९।।

श्रुतिहीना वेदश्रुतिसम्मतिरहिता बुद्धिर्ज्ञानमित्यर्थः।।१९।।

पूर्वोक्त भावनारहित अशी पूजा व्यर्थ होय, असे दृष्टांतपूर्वक दोन श्लोकांत सांगतात—अर्थ नसलेले बोलणे जसे योग्य नव्हे, पतिविना स्त्री जशी शोभत नाही किंवा वेदांचे ज्ञान नसणारी बुद्धी जशी अयोग्य, त्याप्रमाणे भावहीन क्रिया व्यर्थ होय.।।१९।।

चक्षुर्हीनो यथा रूपं न किञ्चिद्वीक्षितुं क्षमः।
भावहीनस्तथा योगी न शिवं द्रष्टुमीश्वरः।।२०।।

ईश्वरः समर्थ इत्यर्थः। शिष्टं स्पष्टम्।।२०।।

नेत्रहीन अंधाला जसे थोडेही रूप दिसू शकत नाही तसे भाव नसणारा योगी शंकराचे यथार्थ दर्शन घेऊ शकत नाही.।।२०।।

भावशुद्धेन मनसा पूजयेत् परमेष्ठिनम्।
भावहीनां न गृह्णाति पूजां सुमहतीमपि।।२१।।

भावशुद्धेन ध्यानशुद्धेनेत्यर्थः। सः स परमेश्वर इत्यर्थः। शिष्टं स्पष्टम्।।२१।।

भावशुद्धतेने स्वच्छ झालेल्या मनाने परमेश्वराची पूजा करावी. भाव नसताना केलेली पूजा कितीही वैभवाची असली तरी ती शंकराला प्रिय होत नाही, अर्थात् अशा पूजेचा शंकराकडून स्वीकार होत नाही.।।२१।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अथ—"भ्रमद्भ्रमरचिन्तायां कीटोऽपि भ्रमरायते। शिवचिन्तासमाक्रान्तः शिवरूपी भवेद् ध्रुवम्।।" इति वीरागमवचनानुसारेण भावमहत्त्वं प्रकाशयति—

नैरन्तर्येण सम्पन्ने भावे ध्यातुं शिवं प्रति।
तद्भावो जायते यद्वत् क्रिमेः कीटस्य चिन्तनात्।।२२।।

क्रिमेः कीटस्य भ्रमरस्य चिन्तनाद् यद्वद् यथा तद्भावो भ्रमरकीटभावो जायते, तथा भावे चित्ते चित्तविशिष्टे शिवं ध्यातुं नैरन्तर्येण सम्पन्ने सति तद्भावः शिवस्वरूप एव जायते, शिवं प्रतीयत इत्यर्थः।।२२।।

'कीटक जसा सदैव भ्रमराच्या चिंतनाने भ्रमररूप होऊन जातो, तसा शिवाचे चितन करणारा प्राणी निश्चयाने शिवस्वरूप होतो' या वीरागमाच्या वचनानुसार भावाचे महत्त्व विशद केले जाते—कीटक जसा भ्रमराच्या चिंतनाने भ्रमर होऊन जातो, तसाच शिवभक्त शिवाच्या सदैव ध्यानाने शिवरूप होऊन जातो.।।२२।।

अथ निष्कलशिवचिन्तने यद्यसमर्थः, तद्विभूतिं वा चिन्तयेदित्युक्त्वा भावागमस्थलं समापयति—

निष्कलङ्कं निराकारं परब्रह्म शिवाभिधम्।
निर्ध्यातुमसमर्थोऽपि तद्विभूतिं विभावयेत्।।२३।।

तद्विभूतिं सर्वज्ञत्वादिमहदैश्वर्यमित्यर्थः। शिष्टं स्पष्टम्।।२३।।

इति भावागमस्थलम्

निष्कल परशिवाचे ध्यान करण्यास भक्त असमर्थ असल्यास त्याने शिवाच्या सगुण रूपाचे ध्यान करावे, असे सांगून भावागमस्थलाचे वर्णन संपवितात-निष्कलंक, निराकार परब्रह्माचे नाव शिव आहे. त्याचे ध्यान करण्यास असमर्थ असणाऱ्या भक्ताने त्याच्या सर्वज्ञत्वादिऐश्वर्ययुक्त सगुण रूपाचे ध्यान करावे.।।२३।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अथ ज्ञानागमस्थलम्

अथ—"ज्ञानी विज्ञानतत्परः" इत्यमृतबिन्दुश्रुतेः, "ज्ञानमेतच्छैवसंस्थम्" इति पतिपरातन्त्रवचनाच्च तद्भावागमसम्पन्नस्य परयोगिनो ज्ञानचिह्नमेव ज्ञानागमस्थलमिति प्रतिपादयति—

परस्य ज्ञानचिह्नानि यानि सन्ति शरीरिणाम्।
तानि ज्ञानागमत्वेन प्रवर्तन्ते विमुक्तये।।२४।।

परस्य भावागमसम्पन्नस्य परमशिवयोगिनो ज्ञानचिह्नान्येव प्राकृतानां पशुजनानां विमुक्तये सद्गतये ज्ञानागमत्वेन प्रवर्तन्त इत्यर्थः।।२४।।

'ज्ञानी विज्ञानात तल्लीन असतो' अशी अमृतबिंदुश्रुती आहे आणि 'शिवानुभूतीत स्थिर असणारेच खरे ज्ञान होय' असे पतिपरातत्रवचन आहे. या दोन्ही मंत्रांच्या अनुषगाने भावागमसपन्न परयोग्याचे ज्ञानचिन्हच ज्ञानागमस्थल होय असे सागतात— भावागमसंपन्न परशिवयोग्याच्या ठिकाणी जी ज्ञानचिन्हे दिसतात ती सामान्य लोकाना सद्गती प्राप्त करून देणारे शास्त्रागमच होत म्हणून त्यास ज्ञानागमस्थल असे म्हणतात.।।२४।।

अथ—"यथेह कर्मचितो लोकः क्षीयते, एवमेवामुत्र पुण्यचितो लोकः क्षीयते", "ज्ञात्वा देवं मृत्युपाशान् छिनत्ति" इति श्रुत्यनुसारेण पूर्वोक्तकेवलभावकर्मभ्यां फलं नास्तीत्युक्त्वा ज्ञानमेव पञ्चभिः सूत्रै- र्विशेषयति—

भावेन किं फलं पुंसां कर्मणा वा किमिष्यते।
भावकर्मसमायुक्तं ज्ञानमेव विमुक्तिदम्।।२५।।

अहं ब्रह्मास्मीत्यपरोक्षज्ञानं ज्ञानमित्यर्थः। शिष्टं स्पष्टम्।।२५।।

'कर्माने मिळविलेले लौकिक वैभव जसे क्षीण होते, तसेच पुण्य करून संपादिलेले स्वर्गीय वैभवही क्षीण होते. परंतु परशिवाचे ज्ञान झाल्यानेच मृत्युपाश छेदले जातात'. या श्रुतिवचनानुसार केवळ कर्म अथवा भावनेने परशिवाची प्राप्ती होणार नाही तर त्याला ज्ञानाची जोडही पाहिजे, याचे विवेचन पाच श्लोकांत करतात—केवळ भावाने मनुष्यास काय फळ मिळणार? अथवा नुसत्या कर्माने तरी काय साधणार? भाव

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

आणि कर्माबरोबरच अहंब्रह्मास्मि असे अपरोक्षज्ञान प्राप्त झाले असेल तरच मोक्षप्राप्ती होऊ शकते.।।२५।।

केवलं कर्ममात्रेण जन्मकोटिशतैरपि।
नात्मना जायते मुक्तिर्ज्ञानं मुक्तेर्हि कारणम्।।२६।।

हि "न कर्मणा" इति, "तरति शोकमात्मवित्" इत्यादिबहुश्रुत्यादि-प्रसिद्धोऽयमर्थः। शिष्टं स्पष्टम्।।२६।।

केवळ यज्ञयागादी कर्माच्या योगाने कोटच्यावधी जन्म घेऊन ही मनुष्यास मोक्षप्राप्ती होत नाही. ज्ञान हेच मोक्षप्राप्ती होण्यास मूळ कारण आहे. ज्ञानामुळेच मोक्षप्राप्ती होते.।।२६।।

अथ कर्मणा मुक्तिर्नास्तीत्येतदेव न, किन्तु कर्म ज्ञानहीनं चेत् पुनः संसारकारणमित्याह—

ज्ञानहीनं सदा कर्म पुंसां संसारकारणम्।
तदेव ज्ञानयोगेन संसारविनिवर्तकम्।।२७।।

स्पष्टम्।।२७।।

कर्माने मुक्ती मिळत नाही, एवढेच नव्हे तर ज्ञानहीन कर्म पुन्हा संसाराला कारण होते, असे सांगतात—ज्ञानविरहित कर्मे करीत राहिल्याने मनुष्याचा संसारताप वाढतो उलट तीच कर्मे ज्ञान असून केली तर ती संसारदुःखातून सोडविण्यास कारण होतात.।।२७।।

अथ ज्ञानहीनं कर्म कथं पुनः संसारकारणमित्यत्राह—

फलं क्रियावतां पुंसां स्वर्गाद्यं नश्वरं यतः।
तस्मात् स्थायिफलप्राप्त्यै ज्ञानमेव समभ्यसेत्।।२८।।

"ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति" इत्यादिवचनबलात् केवलक्रियानिष्ठानां पुंसां स्वर्गाद्यं फलं नश्वरं नाशशीलम्, तस्मात् स्थायिमोक्षफलप्राप्त्यै ज्ञानमेव सम्यगभ्यसे-दित्यर्थः।।२८।।

ज्ञानरहित कर्म संसाराला कसे कारण होते, ते सांगतात-यज्ञयागादी कर्मे केल्याने माणसाला स्वर्गीय सुख मिळत असले तरी ते नाशिवंत असते. कारण पुण्यकर्माने स्वर्गप्राप्ती

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

झाली तरी ते पुण्य क्षीण झाल्यावर पुन्हा जन्म घ्यावा लागतो. म्हणून चिरकाल टिकणारे मोक्षसुख मिळवायचे असेल तर मनुष्याने ज्ञानाचाच अभ्यास करावा.।।२८।।

ननु तज्ज्ञानं कथमभ्यसनीयमित्यत्राह—

शास्त्राभ्यासादियत्नेन सद्गुरोरुपदेशतः।
ज्ञानमेव समभ्यस्येत् किमन्येन प्रयोजनम्।।२९।।

शास्त्राभ्यासादियत्नेन निगमागमशिरःसिद्धवीरशैवशास्त्राभ्यासादिप्रयत्नेन सद्गुरोरुपदेशतोऽनुग्रहाद् ज्ञानमेव शिवज्ञानमेव समभ्यस्येत् सम्यगभ्यासं कुर्यात्। अन्येन पाशवहविर्भक्षणोपयुक्तपूर्वमीमांसादिशास्त्रेण किं प्रयोजनम्? न किञ्चित् प्रयोजनमित्यर्थः।।२९।।

त्या ज्ञानाचा अभ्यास कसा करावा? तर—निगमागमाच्या शेवटच्या भागात असणाऱ्या वीरशैवशास्त्राच्या अध्ययनाने आणि सद्गुरूच्या उपदेशाने शिवज्ञानाचाच अभ्यास करावा, पशुमांसभक्षणादीचा उपदेश करणाऱ्या पूर्वमीमांसादी शास्त्राच्या अध्ययनाचे काही प्रयोजन नाही.।।२९।।

अथ तज्ज्ञानमहत्त्वं सूत्रद्वयेन प्रकाशयति—

ज्ञानं परशिवाद्वैतपरिपाकविनिश्चयः।
येन संसारसम्बन्धविनिवृत्तिर्भवेत् सताम्।।३०।।

परब्रह्मलिङ्गादन्यन्नास्तीति परिपक्वनिश्चय एव ज्ञानम्, येन ज्ञानेन सतां संसारबाधानिवृत्तिर्भवेदिति।।३०।।

आता त्या ज्ञानाचे महत्त्व दोन श्लोकांत सांगतात—परशिव ब्रह्मापेक्षा अन्य असे काही नाही, असा दृढ निश्चय होणे हेच ज्ञान. अशा ज्ञानामुळेच संसारदुःखाची निवृत्ती होते.।।३०।।

अथ तदेव विशदयति—

शिवात्मकमिदं सर्वं शिवादन्यन्न विद्यते।
शिवोऽहमिति या बुद्धिस्तदेव ज्ञानमुत्तमम्।।३१।।

स्पष्टम्।।३१।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

आता त्याचेच स्पष्टीकरण करतात–हे सर्व जग शिवस्वरूप असून शिवाशिवाय या जगात दुसरे काही नाही आणि मी देखील शिवस्वरूपच आहे, अशी जाणीव होणे यालाच श्रेष्ठ ज्ञान म्हणतात.।।३१।।

अथ तज्ज्ञानमहत्त्वं सूत्रद्वयेन प्रकाशयति–

अन्धो यथा पुरस्थानि वस्तूनि च न पश्यति।
ज्ञानहीनस्तथा देही नात्मस्थं वीक्षते शिवम्।।३२।।

स्पष्टम्।।३२।।

आता त्या ज्ञानाचे महत्त्व दोन श्लोकात विशद करतात– आंधळ्यापुढे कोणत्याही वस्तू आणून ठेवल्या तरी त्याला त्या दिसत नाहीत. तसेच ज्ञान नसणाऱ्या व्यक्तीला आपल्या हृदयातच असलेल्या शिवाचे रूप (आत्मरूप) दिसत नाही.।।३२।।

ननु शिवदर्शनेन किमित्यत्राह–

शिवस्य दर्शनात् पुंसां जन्मरोगनिवर्तनम्।
शिवदर्शनमप्याहुः सुलभं ज्ञानचक्षुषाम्।।३३।।

अत्र स्यादिति शेषः। जन्मरोगनिवर्तनं स्यादिति सम्बन्धः। शिष्टं स्पष्टम्।।३३।।

शिवदर्शनाचे फल सांगतात–शिवाच्या दर्शनाने माणसाच्या जन्ममरणरोगाचे निवारण होते. ज्ञानाचे नेत्र लाभलेल्या मनुष्यास ते शिवदर्शन सुलभ होते.।।३३।।

तस्माद् ज्ञानेन विना अज्ञाननिवृत्तिर्नास्तीत्युक्त्वा ज्ञानागमस्थलं समापयति–

दीपं विना यथा गेहे नान्धकारो निवर्तते।
ज्ञानं विना तथा चित्ते मोहोऽपि न निवर्तते।।३४।।

ज्ञानं विना शिवज्ञानं विनेत्यर्थः। मोहोऽज्ञानम् । शिष्टं स्पष्टम् ।।३४।।

इति ज्ञानागमस्थलम्

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

म्हणून ज्ञानाशिवाय अज्ञानाचा नाश होत नाही, असे सांगून ज्ञानागम स्थलाचे निरूपण संपवितात—दिवा लावल्याशिवाय जसा घरातील अंधार नाहीसा होत नाही, तशा रीतीने ज्ञानाशिवाय (शिवज्ञान झाल्याशिवाय) मनुष्याच्या मनातील मोह, अज्ञान नाहीसे होत नाहीत.।।३४।।

अथ सकायस्थलम्

अथ—"शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्" इति वचनानुसारेण तच्छिव-ज्ञानसम्पन्नस्य योगिनः शरीरस्य क्रियाभावज्ञानकारणत्वेनात्मत्वनिरूपणादयं लोकः सकाय इति षड्भिः सूत्रैः सकायस्थलं प्रतिपादयति—

परस्य या तनुर्ज्ञेयाऽदेहकर्माभिमानिनः।
तया सकायो लोकोऽयं तदात्मत्वनिरूपणात्।।३५।।

अदेहकर्माभिमानिनः स्थूलोऽहमहं करोमीति लौकिकवद्देहकर्माभिमान-शून्यस्य परस्य पूर्वोक्तज्ञानसम्पन्नस्य योगिनः परैर्ज्ञेया या तनुरस्ति, तया तन्वा तदात्मत्वनिरूपणात् तच्छरीरस्य आत्मत्वनिरूपणाद् अयं लोकः सकाय इति कायेन सहित इत्यर्थः।।३५।।

'शरीर हेच धर्माचे पहिले साधन असून शरीराशिवाय धर्माचरण अशक्य होय', या वचनानुसार त्या शिवज्ञानसंपन्न शिवयोग्याचे शरीरच क्रियाभाव व ज्ञान यांना आणि आत्म्याच्या निरूपणाला कारणीभूत असते. त्याचे आचरण पाहून लोक त्याचे अनुकरण करीत असतात. म्हणून त्या शिवयोग्याच्या सकाय स्थलाचे सहा श्लोकांत वर्णन करतात—सामान्य लोकांप्रमाणे मी स्थूल आहे आणि मीच करतो, असा देहाचा आणि देहजन्य कर्मांचा अभिमान न धरणाऱ्या पूर्वोक्त ज्ञानसंपन्न शिवयोग्याचा देह, ज्याच्याद्वारे आत्मस्वरूपाचे निरूपण होते, त्या देहालाच लोक आत्मस्वरूप मानतात. त्याचा देह लोकांकरताच असतो. म्हणून त्या आत्मस्वरूपी शिवयोग्याला सकाय असे म्हणतात. अर्थात् तो शरीरधारी शिवच असतो.।।३५।।

ननु देहाभिमानशून्यस्य परयोगिनः कायापेक्षा किमर्थमित्यत्राह—

कायं विना समस्तानां न क्रिया न च भावना।
न ज्ञानं यत्ततो योगी कायवानेव संचरेत्।।३६।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

यद्यस्मात् कारणात् समस्तानां च कायं विना क्रियाध्यानशून्यत्वात् शिवज्ञानसम्पन्नः शिवयोगी कायवानेव संचरेदिति।।३६।।

देहाभिमान नसणाऱ्या त्या शिवयोग्याला देहाची अपेक्षा का असते? तर शरीराशिवाय क्रिया, भावना व ज्ञान या तिन्ही गोष्टी निसर्गतः कोणालाही अशक्य असल्यामुळे योग्याने 'सकाय' होऊन म्हणजे शरीरधारी होऊनच संचार करावा.।।३६।।

नन्वस्य योगिनः शिवज्ञानसम्पन्नत्वाद् किमिति कायापेक्षेत्यत्राह—

शिवैकज्ञानयुक्तस्य योगिनोऽपि महात्मनः।
काययोगेन सिद्ध्यन्ति भोगमोक्षादयः सदा।।३७।।

मोक्षस्य ज्ञानमूलत्वात्, ज्ञानस्य कायमूलत्वादिति भावः ।।३७।।

शिवज्ञानसंपन्न असणाऱ्या शिवयोग्याला शरीराची काय गरज? तर—शिवज्ञानयुक्त शिवयोगी महात्म्यालासुद्धा भोगमोक्षादी गोष्टी शरीरामुळेच साध्य होतात. शरीराशिवाय कोणताही अनुभव घेणे शक्य नाही. म्हणून तो ज्ञानी होऊनही शरीरधारी असतो.।।३७।।

अत्र दृष्टान्तमाह—

काष्ठं विना यथा वह्निर्जायते न प्रकाशवान्।
मूर्तिं विना तथा योगी नात्मतत्त्वप्रकाशवान्।।३८।।

स्पष्टम्।।३८।।

त्याविषयी दृष्टांत देतात—लाकडा शिवाय अग्नी प्रकाशित (प्रकट) होऊ शकत नाही. तशाच रीतीने शरीराशिवाय शिवयोग्याचे आत्मतत्त्व प्रकट होऊ शकणार नाही.।।३८।।

पुनश्च दृष्टान्तान्तरमाह—

मूर्त्यात्मनैव देवस्य यथा पूज्यत्वकल्पना।
तथा देहात्मनैवास्य पूज्यत्वं परयोगिनः।।३९।।

स्पष्टम्।।३९।।

पुन्हा दृष्टांत देऊन सांगतात—देवाची पूजा करण्यासाठी मूर्तीची गरज असते. त्या मूर्तीमुळे जशी पूज्य बुद्धी उत्पन्न होते,

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

त्याप्रमाणे शरीरामुळे शिवयोग्याच्या आत्मरूपाबद्दल पूज्यभाव उत्पन्न होतो. शरीराशिवाय शिवयोग्याची पूजा कशी होऊ शकेल? अर्थात् होऊ शकणार नाही.।।३९।।

किमुत शिवोऽपि मूर्त्यात्मनैव सृष्ट्यादीन् करोतीत्याह—

निष्कलो हि महादेवः परिपूर्णः सदाशिवः।
जगत्सृष्ट्यादिसंसिद्ध्यै मूर्तिमानेव भासते।।४०।।

स्पष्टम्।।४०।।

निराकार, निष्कल, परिपूर्ण असा सदाशिव सृष्टीच्या उत्पत्ती, स्थिती आणि संहारासाठी मूर्तिमत झालेला दिसतो.।।४०।।

अथ ब्रह्मादिदिव्यज्ञानिनोऽपि कायवन्त एवेत्याह—

ब्रह्माद्या देवताः सर्वा मुनयोऽपि मुमुक्षवः।
कायवन्तो हि कुर्वन्ति तपः सर्वार्थसाधकम्।।४१।।

स्पष्टम्।।४१।।

ब्रह्मादिदेवही शरीरधारी आहेत असे सांगतात—ब्रह्मादिदेवता आणि मोक्षादी इच्छा करणारे सर्व मुनीही शरीर धारण करून सर्व मनोरथ पूर्ण करणारे तपाचरण करतात.।।४१।।

अथ—"वैराग्येण वपुस्त्यागो नैव कार्यो मनीषिभिः" इति देवीकालोत्तरवचनानुसारेण शरीरस्य सकलसिद्धिमूलत्वान्न तत्परित्यागो युक्त इत्युक्त्वा सकायस्थलं समापयति—

तपो हि मूलं सर्वासां सिद्धीनां यज्जगत्त्रये।
तपस्तत्कायमूलं हि तस्मात् कायं न सन्त्यजेत्।।४२।।

सर्वासां सिद्धीनां तपः कारणम्, तपसः शरीरं कारणम्, तस्मात् कायं वैराग्येण न परित्यजेदिति।।४२।।

इति सकायस्थलम्

'ज्ञानी लोकांनी वैराग्याने शरीराचा त्याग करू नये' असे देविकालोत्तराचे वचन आहे. सर्व सिद्धींना मूल कारण असलेल्या शरीराचा त्याग करू नये, असे सांगून सकाय स्थलाचे निरूपण संपवितात—तिन्ही लोकांत सर्व सिद्धी प्राप्त होण्यास तपश्चर्याच

24.

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कारण असते त्या तपश्चर्येला शरीरच साधन असते. म्हणून शरीराचा जाणूनबुजून त्याग करू नये.।।४२।।

अथ अकायस्थलम्

अथ—"अच्छायमशरीरम्" इति श्रुतेः परयोगिनश्चौपचारिकदेहित्वादकाय इति पञ्चभिः सूत्रैः प्रतिपादयति—

औपचारिकदेहित्वाज्जगदात्मत्वभावनात्।
मायासम्बंन्धराहित्यादकायो हि परः स्मृतः।।४३।।

पर उक्तलक्षणसकायः परयोगी, औपचारिकदेहित्वाद् देहाभिमान-शून्यत्वाद् जगदात्मत्वभावनात् "स्वशक्तिप्रचयो विश्वम्" इति शिवसूत्र-स्थितेः सर्वं विश्वं शिवस्वभावभूतचित्क्रियाशक्तिमयम्, तद्विषयत्वात्, अन्यथा तद्बाह्यत्वेनाप्रमेयकार्यं स्यादिति चिन्तनाद् मायासम्बन्धराहित्यात्, अत एवान्योन्यभावलक्षणभेदबुद्धिराहित्याद् अकाय इति स्मृतः, हि प्रसिद्ध इत्यर्थः।।४३।।

'शिवयोगी अशरीरी आणि छायारहित असतो', या श्रुतीच्या वचनानुसार हे शिवयोगी औपचारिक देहधारी असतात, असे पाच श्लोकांत प्रतिपादन करतात—या पूर्वी वर्णिलेला तो सकाय योगी देहाभिमानरहित झाला असल्यामुळे त्याचे देहधारण औपचारिकच असते. म्हणून तो जगदात्मभावयुक्त असतो. हे सर्व जग शिवाशी अभिन्न अशा चित्क्रियाशक्तीचे प्रकट रूप आहे, असे जाणून प्रपंचात भेदबुद्धिविरहित होऊन मायासंबंधरहित होतो. त्यामुळे सामान्यजनाप्रमाणे तो देहधारी दिसत असला तरी विचारदृष्टचा पाहिल्यास त्याला देहाचा संबंध उरलेला नसतो. म्हणूनच त्याला अकाय म्हणून ओळखतात.।।४३।।

नन्वस्य देहाभिमानशून्यत्वेनाकायत्वेऽपि देहसम्बन्धस्य विद्यमानत्वात् तत्कृतविकारोऽस्ति किमित्यत्राह—

परस्य देहयोगेऽपि न देहाश्रयविक्रिया।
शिवस्येव यतस्तस्मादकायोऽयं प्रकीर्तितः।।४४।।

शिवस्य देहयोगेऽपि यथा 'शरीरप्रयुक्तकामादिविकारो नास्ति, तथा परयोगिनः शिवतुल्यत्वाद् देहप्रयुक्तविकारो नास्तीत्यर्थः।।४४।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

देहाभिमान नसल्यामुळे त्याला अकाय असे म्हटले तरी देहधारी असल्यामुळे देहसंबंधित विकार त्याला होतात की नाही? याचे उत्तर असे की—विकाररहित सत्त्वगुणप्रधान अशा मायेमुळे शिव देहधारी असला तरी तो जसा शरीरापासून उत्पन्न होणाऱ्या कामक्रोधादी विकारांनी रहित असतो तसा हा परयोगीही शिवसमान झाला असल्यामुळे देहाच्या विकारांपासून तो अलिप्त असतो.।।४४।।

नन्वकायसकायत्वेन भासनं किंप्रयुक्तमित्यत्राह—

परलिङ्गे विलीनस्य परमानन्दचिन्मये।
कुतो देहेन सम्बन्धो देहिवद्भासनं भ्रमः।।४५।।

द्रष्टृणां भ्रम इत्यर्थः। शिष्टं स्पष्टम्।।४५।।

असे असेल तर तो अकाय योगी सकाय होऊन का दिसतो? उत्तर असे की, परमानंद चिद्रूप अशा परलिंगात त्या परयोग्याचे मन विलीन झाले असल्यामुळे त्याला देहसंबध कसा उरणार? उरत नाही. म्हणून तो वास्तविक अकायच होय. तरीही लौकिक जनांना भ्रमामुळे तो देहधारी भासतो. यामुळे तो शिवयोगी अकाय असूनही सकाय दिसतो.।।४५।।

अथ देहसम्बन्धे सत्यपि तेन बाधकं नास्तीत्याह—

देहाभिमानहीनस्य शिवभावे स्थितात्मनः।
जगदेतच्छरीरं स्याद् देहेनैकेन का व्यथा।।४६।।

देहाभिमानशून्यत्वेन शिवभावे स्थितस्वरूपवत एतत्परयोगिनः शिववद् विश्वं शरीरं स्यादित्येकेन शरीरेण का व्यथा न काऽपीत्यर्थः।।४६।।

देहसंबध असला तरी तो परयोग्याला बाधक होत नाही— देहाभिमान मुळीच नसल्यामुळे शिवयोग्याचे मन नेहमी शिवस्वरूपात रमलेले असते. हे सर्व जग जसे शिवाचे आहे, तसे शिवयोग्यालाही सर्व जगच आपले शरीर वाटत असल्यामुळे त्याच्या दृश्य अशा एका शरीराची त्याला कसलीच बाधा होत नाही.।।४६।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अथ शिववत् स्वातन्त्र्याभावात् कस्मान्नास्तीत्यत्राह—

शिवज्ञानैकनिष्ठस्य नाहङ्कारभवभ्रमः।
न चेन्द्रियभवं दुःखं त्यक्तदेहाभिमानिनः।।४७।।

शिवाऽहंभावनिष्ठस्य परिच्छिन्नशरीराहङ्कारशून्यत्वाद् नाहमीश्वर इति तत्कृतभ्रान्तिरिन्द्रियजन्यं दुःखं च नास्तीत्यर्थः।।४७।।

शिवाप्रमाणे हा स्वतत्र नसल्यामुळे त्याला देहापासून बाधा का होत नाही? तर-शरीराचा अभिमान सोडलेल्या आणि मी शिवच आहे अशी दृढ भावना झालेल्या त्या शिवयोग्याला परिच्छिन्न अशा शरीराविषयी अहंभाव उरला नसल्यामुळे त्या अहंकारापासून उत्पन्न झालेली, 'मी ईश्वर नाही' अशी भ्राती असो अथवा इंद्रियजन्य दुःख असो, त्याला मुळीच स्पर्श करीत नाही.।।४७।।

अथोक्तार्थमेव स्फुटीकृत्याकायस्थलं समापयति—

न मनुष्यो न देवोऽहं न यक्षो नैव राक्षसः।
शिवोऽहमिति यो बुद्ध्यात् तस्य किं देहकर्मणा।।४८।।

तस्य कायस्य शारीरककर्मणा किम्, किं प्रयोजनम्, न किमपीत्यर्थः। शिष्टं स्पष्टम्।।४८।।

इत्यकायस्थलम्

पूर्वी सागितलेलेच पुन्हा अधिक स्पष्ट करून हे अकायस्थल संपवितात—मी मनुष्य नव्हे, देव नव्हे, राक्षस नव्हे किंवा यक्षही नव्हे तर मी प्रत्यक्ष शिवच आहे, असे जो जाणतो त्या शिवयोग्याला शरीराची पीडा काय होणार? आणि कर्माची तरी बाधा कशी होणार? अर्थात् होणार नाही.।।४८।।

अथ परकायस्थलम्

"स एवैतत्परमं ब्रह्मधाम" इति मुण्डकश्रुतेः, अकायपरयोगी प्रकृतिमायातीत इति परब्रह्मशरीरत्वात् परकाय इति पञ्चभिः सूत्रैः प्रतिपादयति—

वशीकृतत्वात् प्रकृतेर्मायामार्गातिवर्तनात्।
परकायोऽयमाख्यातः सत्यज्ञानसुखात्मकः।।४९।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अयमकायः शिवयोगी प्रकृतेर्वशीकृतत्वाद् वशीकृतेर्मायामार्गोल्लङ्घनात् सत्यज्ञानसुखात्मकः सच्चिदानन्दस्वरूपवान् परकाय इत्याख्यात इत्यर्थः ।।४९।।

'तोच ते परब्रह्मधाम आहे' असे मुण्डक श्रुतीचे वचन आहे. अकाय परयोगी हा तत्त्वतः काया नसलेला, काया असूनही कायेचा अभिमान नसलेला, केवळ औपचारिक अर्थाने शरीरधारी असला तरी प्रकृती व मायेच्या अतीत असतो. म्हणून परब्रह्मच त्याचे शरीर झालेले असते. या साठी त्या शिवयोग्याला 'परकाय' असे म्हणतात त्याचे स्वरूपवर्णन पाच श्लोकात करतात—ज्याने प्रकृतीला वश केलेले आहे आणि जो मायामार्गाच्या पलीकडे गेलेला आहे, जो सत्यस्वरूप, ज्ञानस्वरूप आणि सुखस्वरूप म्हणजे सच्चिदानदरूप झालेला आहे, अशा शिवयोग्याला परकाय म्हणतात. पर म्हणजे ब्रह्म, काय म्हणजे शरीर. ज्याचे शरीरच ब्रह्मरूप झालेले असते असा तो परकाय होय.।।४९।।

नन्वेवं परकायत्वे कथितेऽपि स्थूलशरीरस्य विद्यमानत्वात् कथमधुनैव परकायत्वमित्यत्राह—

परब्रह्मवपुर्यस्य प्रबोधानन्दभासुरम्।
प्राकृतेन शरीरेण किमेतेनास्य जायते।।५०।।

चिदानन्दाभ्यां प्रकाशमानं परब्रह्म यस्य वपुः शरीरं जायते, अस्य परकायस्य प्राकृतेन शरीरेण किम्? अन्योन्यभेदाभावबुद्धिरूपमाया-मार्गोल्लङ्घनेन तत्कार्यरूपप्रकृतितत्त्वस्य वशीकरणात् सागरतरङ्गन्यायेन स्वाधीनीकरणात् प्रकृतिसम्भवेन शरीरेण किं बाधकम्? न किमपि बाधकमित्यर्थः।।५०।।

तो शिवयोगी अजून स्थूल देहधारी असल्यामुळे आताच त्याला परकाय कसे म्हणावे? उत्तर असे की—ज्याचे शरीर सच्चिदानंद परब्रह्मरूपच झालेले आहे, तो परकाय शिवयोगी भेदबुद्धिरूप मायामार्ग ओलांडून गेला असल्यामुळे त्या मायेचे कार्य अशा प्रकृतितत्त्वाच्या अधीन असलेल्या शरीराची त्याला काय बाधा होणार? सागराच्या लाटा ज्या प्रमाणे सागराच्या मर्यादेतच राहातात, तसे परब्रह्मरूप असलेल्या शिवयोग्याच्या अधीन असलेल्या प्राकृतिक शरीरापासून त्याला कसलीच बाधा होत नाही.।।५०।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ननु तथापि शरीरमेव प्रतिबन्धकमित्यत्राह—

सम्यग्ज्ञानाग्निसन्दग्धजन्मबीजकलेवरः।
शिवतत्त्वावलम्बी यः परकायः स उच्यते।।५१।।

सम्यग्ज्ञानाग्निना दृढतरशिवाद्वैतज्ञानाग्निना सन्दग्धं पुनरुत्पत्तिशङ्का यथा न भवति तथा सम्यग् दग्धं जन्मैव बीजं यस्य तादृशः कलेवरो भवान्तरकारणीभूतसूक्ष्मशरीरो यस्य स तथाविधः शिवतत्त्वावलम्बी परशिवस्वरूपवान् योऽस्ति, सः परकाय इत्युच्यत इत्यर्थः। जन्मरोगप्रवर्तकस्य सूक्ष्मशरीरस्य नष्टत्वात् स्थूलशरीरे सत्यपि बाधकं नास्तीति भावः।।५१।।

तरीही शरीर प्रतिबंधक होतेच ना? असे विचारल्यास, त्याचे उत्तर असे की, दृढतर शिवाद्वैतज्ञानरूपी अग्नीने पुनर्जन्मास कारणीभूत असणारे ज्याचे सूक्ष्मशरीररूपी बीज पूर्णपणे जळून गेलेले आहे, असा शिवयोगी परशिवस्वरूप झालेला असतो. म्हणून त्याला परकाययोगी असे म्हणतात. त्याचे सूक्ष्मशरीरच नष्ट झालेले असल्यामुळे तो वासनारहित झालेला असतो. त्यामुळे त्याच्या स्थूल शरीरापासून त्याला कसलीच बाधा होत नाही.।।५१।।

ननु शरीरस्य विद्यमानत्वेनेन्द्रियव्यापारानुवृत्तेर्बाधकमेवेत्यत्राह—

इन्द्रियाणि मनोवृत्तिवासनाः कर्मसंभवाः।
यत्र यान्ति लयं तेन सकायोऽयं परात्मना।।५२।।

कर्मसम्भवाः कर्मपाशसम्भूता मनोवृत्तिवासना इन्द्रियार्थवासना इन्द्रियाणि च दशेन्द्रियव्यापारा यत्र लयं यान्ति, तेन परात्मना परब्रह्मणा अयं एष परकायः सकायः कायेन सहितः सन् वर्तते। एतत्कायस्यापि ब्रह्ममयत्वादिति भावः।।५२।।

स्थूल शरीर असल्यामुळे इंद्रियांचा व्यापार चालूच असणार, त्यामुळे तन्निर्मित बाधा होईलच ना? तर—प्राक्तनकर्मापासून उत्पन्न झालेल्या मनोवृत्तिरूप वासना आणि दशेंद्रियांचा व्यापार हे परब्रह्मात लय पावले असल्यामुळे त्याचे शरीरच परब्रह्मरूप झालेले असते, त्यामुळे त्याला परकाय म्हणतात. म्हणून इंद्रियांच्या व्यापारापासून त्याला कोणतीही बाधा होत नाही.।।५२।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ननु शरीरस्य कथं ब्रह्ममयत्वमित्यत्राह—

परहन्तामनुप्राप्य पश्येद् विश्वं चिदात्मकम्।
सदेहोऽतिभ्रमस्तस्य निश्चिता हि शिवात्मता।।५३।।

पराहन्तां परब्रह्मपरशिवपरात्मपर्यायपरतत्त्वमेव स्वयमिति भावमनुप्राप्य विश्वं सकलजगज्जालं चिदात्मकं परब्रह्मस्वभावभूतचित्क्रियान्तर्गतत्वात्तन्मयमिति यः पश्यति, तस्य सदेहः देहेन सह वर्तमानत्वम्, अतिभ्रमः पश्यतां प्राकृतानां भ्रमः। निश्चिता हि शिवात्मता, किन्तु तस्य शरीरस्य शिवात्मता निश्चिता, शक्तिमयत्वादिति।।५३।।

शरीर परब्रह्मरूप कसे होते? तर—मी म्हणजेच परब्रह्म आहे, अशा पराहंतेने शिवयोगी सर्व विश्वच चिदानदरूपत्वाने पाहातो. त्यामुळे त्याचे शरीर निश्चित रूपाने शिवस्वरूप असते. तो सामान्य देहधारी आहे असे समजणे भ्रांतिमूलक होय. हा प्रपच शक्तिमय आहे. या शिवयोग्याचे शरीर प्रपचातर्गत असल्यामुळे तेही शक्तिमय होय. ती शक्ती अविनाभावसबधाने शिवस्वरूपच असते. त्यामुळे त्या योग्याचे शक्तिस्वरूपी शरीरही शिवरूपच होय.।।५३।।

तर्हि स परकायः शिववदकायः सन् परममुक्त एव स्यादित्यत्राह—

स्वस्वरूपं चिदाकारं ज्योतिः साक्षाद्विचिन्तयन्।
देहवानपि निर्देहो जीवन्मुक्तो हि साधकः।।५४।।

स्वस्वरूपं साक्षाच्चिदाकारं ज्योतिरिति चिन्तयन् साधको देहवानपि पुनर्देहान्तराभावान्निर्देहो जीवन्मुक्त इति हि प्रसिद्धमित्यर्थः।।५४।।

अशा रीतीने परकाययोगी शिवाप्रमाणे अकाय होऊन मुक्तच झालेला असतो, असे सांगतात—आत्मस्वरूप चैतन्याकार आहे, साक्षात् ज्योतिर्मय आहे, असे ध्यान करणारा साधक देहधारी असला तरी तो विदेही अर्थात् जीवन्मुक्त असतो.।।५४।।

तदेवोपपादयति—

देहस्तिष्ठतु वा यातु योगिनः स्वात्मबोधिनः।
जीवन्मुक्तिर्भवेत् सद्यश्चिदानन्दप्रकाशिनी।।५५।।

स्पष्टम्।।५५।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ज्याला स्वात्मबोध झालेला आहे, अशा शिवयोग्याचा देह असो किंवा नसो, त्याला चिदानंदस्वरूपाचा प्रत्यय आणून देणारी जीवन्मुक्ती तात्काळ प्राप्त होते.।।५५।।

अत्र दृष्टान्तमाह—

आत्मज्ञानावसानं हि संसारपरिपीडनम्।
सूर्योदयेऽपि किं लोकस्तिमिरेणोपरुद्ध्यते।।५६।।

उपरुध्यते व्याप्यत इत्यर्थः। शिष्टं स्पष्टम्।।५६।।

आता त्याविषयी दृष्टांत सांगतात—सूर्योदय होईपर्यन्त लोकांना अंधाराचा उपद्रव होतच असतो. सूर्योदयानंतर तो जसा नाहीसा होतो, तशा प्रकारे आत्मज्ञान लाभेपर्यन्त संसाराची पीडा सहन करावी लागते. परंतु आत्मज्ञान होताच संसारपीडा नाहीशी होते.।।५६।।

अथ परकायस्थलं समापयति—

देहाभिमाननिर्मुक्तः कलातीतपदाश्रयः।
कथं याति परिच्छेदं शरीरेषु महाबुधः।।५७।।

शरीरकलाभिमानशून्यः सन् शरीरस्य पाञ्चभौतिकत्वात् तत्कारणीभूत-निवृत्त्यादिकलातीतपरब्रह्मपदाश्रितो महाबुधः परमज्ञानी परकायः शरीरेषु परिच्छेदं परिमितत्वं कथं केन प्रकारेण याति? न केनापि यातीत्यर्थः।।५७।।

इति परकायस्थलम्

आता परकाय स्थलाचा समारोप करतात—त्या परकाय योग्याने निवृत्ती, प्रतिष्ठा, विद्या, शांती आणि शांत्यतीत अशा पंचकलांच्या अतीत असे परब्रह्मपद प्राप्त केलेले असल्यामुळे त्या पंचकलांपासून उत्पन्न झालेल्या पंचभूतांचे कार्य अशा शरीराचा अभिमान त्याने त्यागलेला असतो म्हणून असा देहाभिमानशून्य असलेला तो परमज्ञानी मी या एका शरीरातच आहे अशी परिमित भावना कशी करू शकेल? अर्थात् करणार नाही. त्यामुळे तो देहधारी आहे असे समजणे हा भ्रम होय.।।५७।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अथ धर्माचारस्थलम्

अथ— "यद्वेदविद्याधिगमः स्वधर्मस्यानुचरणं स्वाश्रमेष्वेवानुक्रमणं स्वधर्म एव संवर्धते स्तम्भशाखेवेतरण्यनेनोर्ध्वभाग् भवत्यन्यथा पतति" इति मैत्रेयश्रुतेस्तस्य परकायस्याचार एव सर्वजनानां धर्माचार इति धर्माचारस्थलं प्रतिपादयति—

तस्यैव परकायस्य समाचारो य इष्यते।
स धर्मः सर्वलोकानामुपकाराय कल्प्यते।।५८।।

तस्य परब्रह्मकायस्य शिवयोगिनो य आचार इच्छाविषयीक्रियते, स धर्मः सन् समस्तजनानाम् उपकाराय कल्प्यत इत्यर्थः।।५८।।

'धर्म हा आचरणात्मक असतो. शास्त्रात लिहिलेले जाणल्यानुसार आचरण करणे हाच धर्म होय. म्हणून प्रत्येकाने आपापल्या आश्रमधर्मानुसार आचरण ठेवले पाहिजे. झाडाच्या फांद्या ऊर्ध्वगामी होण्यासाठी जशी मुळेच कारणीभूत असतात, तशा रीतीने मनुष्याच्या ऊर्ध्वगामी प्रगतीसाठी धर्माचरणच कारण असते. त्यामुळे धर्माचरण सोडले तर त्याची अधोगती होते', या मैत्रेय श्रुतिवचनानुसार परकाय योग्याचा आचार असतो. म्हंणून त्याचा आचारच सामान्य जनांना धर्माचाराच्या उपदेशासारखा असतो असे सांगण्यासाठी धर्माचारस्थलाचे प्रतिपादन करतात— ज्याचे शरीर परब्रह्मरूप आहे, अशा परकाय शिवयोग्याला ज्या आचाराची इच्छा होते तोच आचार लोकांना अनुकरणीय होतो. त्याचा धर्माचार सर्व लोकांच्या उपकारासाठी, हितासाठी असतो.।।५८।।

अथ तद्धर्माचारं सूत्रत्रयेण कथयति—

अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यं दया क्षमा।
दानं पूजा जपो ध्यानमिति धर्मस्य संग्रहः।।५९।।

दानं सहजदानम्, पूजा शिवलिङ्गपूजा, ध्यानं शिवलिङ्गचिन्तनम्, जपः शैवपञ्चाक्षराभ्यास इत्यर्थः। शिष्टं स्पष्टम्।।५९।।

. आता त्याचा धर्माचार तीन श्लोकात सांगतात-त्रिकरणपूर्वक (काया, वाचा, आणि मनाने) कोणत्याही प्रकारची हिंसा न करणे, खरे बोलणे, चोरी न करणे, ब्रह्मचर्य पालन करणे, सर्व प्राणिमात्रांविषयी दया असणे, क्षमाशील वृत्ती, स्वतःच्या धनादी

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

वस्तूंचे गरजवंताला सहजदान करणे,फलाची आशा न करता इष्टलिंगाची एकाग्रचित्ताने पूजा करणे, शिवपंचाक्षरी मंत्राचा जप करणे, शिवाच्या स्वरूपाशी एकाग्रता साधून तन्मयतेने शिवलिंगाचे चिंतनरूप ध्यान करणे या धर्माचारामुळे धर्मसंग्रह होतो.।।५९।।

नन्विदं धर्माचरणं किमर्थं कर्तव्यमित्यत्राह—

शिवेन विहितो यस्मादागमैर्धर्मसंग्रहः।
तस्मात्तमाचरन् विद्वान् तत्प्रसादाय कल्प्यते।।६०।।

आगमैः शिवेन धर्मसमूहो विहित इति विधेय एव । तस्माद्धर्माचारवान् शिवप्रसादाय समर्थो भवति, अन्यथा शिवप्रसादशून्यः सन् नरकं व्रजेदित्यर्थः।।६०।।

असे धर्माचरण का करावे? तर—हे अहिंसादी धर्माचार आगमग्रंथातून शिवाने सांगितलेले आहेत, त्यांना अनुसरून विद्वानांनी धर्माचरण करावे. म्हणजे त्यांच्यावर शिवाची कृपा होते. असे न केल्यास त्यांना नरकप्राप्ती होते.।।६०।।

ननु स धर्मः कथं कर्तव्य इत्यत्राह—

अधर्मं न स्पृशेत् किञ्चिद् विहितं धर्ममाचरेत्।
तं च कामविनिर्मुक्तं तमपि ज्ञानपूर्वकम्।।६१।।

विहितमहिंसादिरूपमित्यर्थः। शिष्टं स्पष्टम्।।६१।।

ते धर्माचरण कसे करावे? तर—ह्या धर्माचरणाने वागावयाचे झाल्यास शास्त्रनिषिद्ध कर्म न करता या पूर्वी सांगितलेले अहिंसादी विहित धर्म आचरावेत. तेही निष्कामबुद्धीने आणि ज्ञानपूर्वक आचरावेत.।।६१।।

अथ तज्ज्ञानं कीदृशमित्यत्र—"मातृवत् परदारांश्च परद्रव्याणि लोष्टवत्। आत्मवत् सर्वभूतानि यः पश्यति स धर्मिराट्।।" इति श्रुत्यनुसारेण सूत्रद्वयेनाह—

आत्मवत् सर्वभूतानि संपश्येद् योगवित्तमः।
जगदेकात्मताभावान्निग्रहादिविरोधतः।।६२।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

योगवित्तमो योगीश्वरो जगदेकात्मताभावाज्जगतः प्रकाशैकरूपत्व-चिन्तनान्निग्रहादिविरोधतो निग्रहानुग्रहयोरवकाशाभावात् सर्वभूतानि आत्मवत् स्वात्मवत् संपश्येत्, अपक्षपातेन पश्येदित्यर्थः।।६२।।

असे ज्ञान कोणते? तर 'परस्त्री मातेसमान, परद्रव्य मातीच्या ढेकळासारखे आणि सर्व प्राणिमात्रांना आत्मीय दृष्टीने पाहाणाराच खरा धर्मनिष्ठ होय,' या श्रुतिवचनानुसार दोन श्लोकात त्या ज्ञानाचे स्वरूप वर्णन करतात—ह्या योगीश्वराने सर्व जग हे परब्रह्मस्वरूप आहे अशी भावना करून, कोणावर रोष अथवा कोणावर अनुग्रह न करता, पक्षपात न ठेवता सर्व प्राणिमात्रांकडे आत्मस्वरूप दृष्टीने पाहिले पाहिजे, यालाच ज्ञान म्हणावे.।।६२।।

एवं पश्यतो ममकारो नैवेत्याह—

एक एव शिवः साक्षाज्जगदेतदिति स्फुटम्।
पश्यतः किं न जायेत ममकारो हि विभ्रमः।।६३।।

शिव एक एवैतज्जगदिति स्फुटं साक्षात् पश्यतः किं न जायेत? सर्वं स्यादेव । तस्मिन् जगति ममकारः प्रतिनियतमस्तु ममेत्यभिमानो विभ्रमो नास्तीत्यर्थः।।६३।।

अशा ज्ञान्यांना ममकार नसतो—हे सर्व जग साक्षात् शिवच आहे, असे दृष्ढनिश्चयात्मक रीतीने जाणणाऱ्या शिवयोग्यालाही ममकार का असणार नाही? जगातील सर्व वस्तूंविषयी त्याच्याठिकाणी ममकार असला तरी त्याला सामान्य लोकांप्रमाणे त्यांच्याविषयी भ्रम असत नाही.।।६३।।

अथ तद्धर्माचारं विरक्तोऽपि न त्यजेदित्याह—

धर्म एव समस्तानां यतः संसिद्धिकारणम्।
निस्पृहोऽपि महायोगी धर्ममार्गं च न त्यजेत्।।६४।।

संसिद्धिकारणं भोगमोक्षकारणमित्यर्थः। शिष्टं स्पष्टम्।।६४।।

या धर्माचाराचा त्याग करू नये असे सांगतात—धर्माचार हाच सर्व लोकांना भोगमोक्षात्मक सर्वसिद्धी प्राप्त करून देणारा असतो—म्हणून निःस्पृह महायोगी जरी असला तरी त्याने धर्माचरण सोडू नये.।।६४।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ननु ज्ञानिना किं धर्माचरणेनेत्यत्राह—

ज्ञानामृतेन तृप्तोऽपि योगी धर्मं न संत्यजेत्।
आचारं महतां दृष्ट्वा प्रवर्तन्ते हि लौकिकाः।।६५।।

ज्ञानामृतेन शिवज्ञानामृतेन तृप्तोऽपि महायोगी लोकहितार्थं धर्माचारं न परित्यजेदित्यर्थः।।६५।।

ज्ञानी माणसाला धर्माचरणाची काय गरज? तर—शिवज्ञानाने तृप्त झालेल्या महायोग्यानेही धर्माचरण सोडू नये. कारण लोक हे अनुकरणप्रिय असतात. श्रेष्ठ लोकांच्या वर्तनाकडे पाहून सामान्यजन वागत असतात. त्याना सदाचाराचा आदर्श घालून देण्यासाठी ज्ञानी लोकांनीही सदाचाराने वागावे.।।६५।।

अथ कारणान्तरमप्याह—

सदाचारप्रियः शम्भुः सदाचारेण पूज्यते।
सदाचारं विना तस्य प्रसादो नैव जायते।।६६।।

ज्ञानिनोऽपि शिवप्रसादसिद्ध्यर्थमहिंसादिधर्माचरणमावश्यकमिति भावः ।।६६।।

इति धर्माचारस्थलम्

आचार पाळण्याविषयी आता दुसरे कारणही सांगतात—शिवाला सदाचार प्रिय आहे. म्हणून त्याची पूजा अहिंसादी सदाचाराने करावी. कारण सदाचाराशिवाय शिवाचा कृपाप्रसाद लाभणार नाही. त्यामुळे शिवाचा अनुग्रह मिळविण्यासाठी ज्ञान्यानीही सदाचाराने वागावे.।।६६।।

अथ भावाचारस्थलम्

अथ—"ज्योतीरूपं शिवं पूर्णं विश्वतेजोनिवर्तकम्। आशयं भासयन्तं च भावयंस्तन्मयो भवेत्।।" इति कामिकवचनानुसारेण धर्माचारसम्पन्नस्य शिवयोगिनो भाव एव सर्वेषां भावाचार इत्युपपादयति—

भाव एवास्य सर्वेषां भावाचारः प्रकीर्तितः।
भावो मानसचेष्टात्मा परिपूर्णः शिवाश्रयः।।६७।।

अस्य धर्माचारसम्पन्नस्य शिवयोगिनो भाव एव सर्वेषां प्राकृतानां भावाचार इति परिकीर्तितः। भावो नाम क इत्यत्राह— मानसेति।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

मनोव्यापाररूपः सन् परिपूर्णशिवाश्रयोऽन्तर्बहिश्च पूर्णशिव एव आश्रयो यस्य, तादृशस्तु विशेषणभाव इत्यर्थः।।६७।।

'शिव ज्योतिरूप, परिपूर्ण आणि विश्वतेजास निस्तेज करणारा व हृदयाचा भाव व्यक्त करणारा असतो, अशी शिवाची भावना करणारा पुरुष शिव-भावनेने तन्मय होऊन शिवरूप होतो.' अशा कामिक आगमाच्या वचनानुसार धर्माचारसपन्न शिवयोग्याचा भाव हाच सर्व प्राणिमात्राचा भावाचार होय असे प्रतिपादन येथे करतात—शिवयोग्याचा भाव हाच सर्व प्राणिमात्राचा भावाचार होय असे मानले जाते. कारण शिवयोग्याचा भावच इतराच्या मनामध्ये तत्सम भाव निर्माण करतो. अतर्बाह्यरूपाने शिवार्पित असा मनोव्यापार म्हणजे भाव होय.।।६७।।

अथ भावयुक्तकर्म सूत्रद्वयेन विशेषयति—

भावनाविहितं कर्म पावनादपि पावनम्।
तस्माद् भावनया युक्तं परधर्मं समाचरेत्।।६८।।

स्पष्टम्।।६८।।

आता भावयुक्त कर्माचे वैशिष्ट्य दोन श्लोकांतून सागतात—भावपूर्वक केलेल्या शिवपूजादी धर्मक्रिया अत्यंत पावन असतात. म्हणून कोणतेही धर्मकृत्य भावपूर्ण अंतःकरणाने करावे.।।६८।।

ननु भावेन किमित्यत्राह—

भावेन हि मनःशुद्धिर्भावशुद्धिश्च कर्मणा।
इति संचिन्त्य मनसा योगी भावं न संत्यजेत्।।६९।।

स्पष्टम्।।६९।।

भावनेचे प्रयोजन काय? तर —शिवपूजादी धर्मकृत्यानी भावनेची शुद्धी होते व भावशुद्धीने मनाची शुद्धी होते. असा विचार करून शिवयोग्याने कधी सद्भाव सोडू नये. भावपूर्वक केलेल्या कर्मानेच फलप्राप्ती होते. म्हणून भाव कधीही सोडू नये हे तात्पर्य.।।६९।।

ननु भावेन कर्मसिद्धिश्चेत् प्रतिबन्धकं स्यादित्यत्राह—

शिवभावनया सर्वं नित्यनैमित्तिकादिकम्।
कुर्वन्नपि महायोगी गुणदोषैर्न बाध्यते।।७०।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

शिव एव कर्तेति शिवभावनया कुर्वन् योगी गुणदोषैर्न लिप्यत इत्यर्थः। शिष्टं स्पष्टम्।।७०।।

शिवभावपूर्वक केलेले कर्म शिवयोग्याला प्रतिबधक होणार नाही का? तर— शिवयोग्याने नित्य आणि नैमित्तिक कर्मे, शिवच त्यांचा कर्ता आणि करविता आहे, अशा शिवभावनेने व निष्कामबुद्धीने केल्यामुळे त्या कर्मांच्या गुणदोषांची बाधा शिवयोग्याला होत नाही. अर्थात् शिवार्पित भावनेने केलेल्या कर्माच्या फलाची बाधा कर्त्याला होत नाही.।।७०।।

ननु परयोगीश्वरस्य नित्यनैमित्तिककर्मसङ्गाभावात् कथं तदाचरणमङ्गीकृतमित्यत्राह—

अन्तः प्रकाशमानस्य संवित्सूर्यस्य सन्ततम्।
भावेन यदुपस्थानं तत्सन्ध्यावन्दनं विदुः।।७१।।

अन्तः ऊर्ध्वं हृत्कमले निरन्तरं भासमानस्य चिदादित्यस्य भावेन यदुपस्थानमनुवर्तनम्, तत् सन्ध्यावन्दनमिति वीरशैवाचार्या जानन्तीत्यर्थः।।७१।।

परयोग्याचे संध्यावंदनरूपी नित्यकर्म कोणते? तर— अंतःकरणातील ऊर्ध्वमुखी हृदयकमलात सदोदित प्रकाशमान असणाऱ्या ज्ञानरूप सूर्याचे भक्तिभावाने जे आराधन, अनुचिंतन घडते त्यालाच वीरशैवाचार्य संध्यावंदन म्हणतात.।।७१।।

तर्हि होमोऽप्यावश्यक इति स कीदृश इत्यत्राह—

आत्मज्योतिषि सर्वेषां विषयाणां समर्पणम्।
अन्तर्मुखेन भावेन होमकर्मेति गीयते।।७२।।

आत्मज्योतिषि चिदग्नौ, अन्तर्मुखेन भावेन अबहिर्मुखेन भावेन सर्वेषां विषयाणां यत्समर्पणं सागरतरङ्गन्यायेन लयचिन्तनं तदेकलोलीभावचिन्तनं यदस्ति, तद् होमकर्मेति गीयते कथ्यत इत्यर्थः।।७२।।

त्या परयोगीश्वराचे नित्य होमकर्म कोणते? तर— अंतर्मुख वृत्तीने आत्मरूपी चिदग्नीत सर्वप्रकारच्या विषयांचे समर्पण करणे यालाच होमकर्म म्हणावे. तात्पर्य, सागरतरंगन्यायाने सर्व विषयांचे आत्म्याशीच लयचिंतन करणे हेच होमकर्म होय.।।७२।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

एवं नित्यनैमित्तिककर्माणि भावयन् सङ्गरहितः स्यादित्याह—

भावयेत् सर्वकर्माणि नित्यनैमित्तिकानि च।
शिवप्रीतिकराण्येव सङ्गराहित्यसिद्धये।।७३।।

संसारसम्बन्धनिवृत्त्यर्थं नित्यनैमित्तिकानि सर्वाणि कर्माणि शिवप्रीतिकराण्येवेति भावयेदित्यर्थः।।७३।।

अशा रीतीने नित्यनैमित्तिक कर्मे शिवभावनेने केल्यामुळे तो शिवयोगी संगरहित होतो, हे सांगतात— संसारसंबंधाच्या निवृत्तीसाठी नित्यनैमित्तिक सर्व कर्मे शिव संतुष्ट होवो या भावनेने करावीत. अशा भावनेने केलेल्या कर्मामुळे तो शिवयोगी संसारसंगनिवृत्त होतो.।।७३।।

ननु कर्मणः सङ्गहेतुत्वात् कथं सङ्गराहित्यं स्यादित्यत्राह—

शिवे निवेश्य सकलं कार्याकार्यं विवेकतः।
वर्तते यो महाभागः स सङ्गरहितो भवेत्।।७४।।

विवेकतः कर्ता कारयिता कर्म तत्फलं च शिव एवेति विवेकतः कार्याकार्यं कर्तुं योग्यमयोग्यं च शिवे निवेश्य समर्प्य यो महाभागो महापुरुषो वर्तते, स सङ्गरहितो भवसङ्गरहित इत्यर्थः।।७४।।

संसार संबंधाला कर्मच कारण असल्यामुळे कर्मे करणारा मनुष्य संगरहित कसा होतो? तर—कर्ता, करविता, कर्म आणि फल हे सर्व शिवरूप आहे, अशा सद्सद्विवेकाने, करण्यास योग्य अथवा अयोग्य अशा सर्व कर्मांचा भार शिवावर ठेवून जो महाशिवयोगी शिवार्पण भावनेने वागतो तोच संसारसंगरहित होतो.।।७४।।

ननु भवसङ्गराहित्यं शिवदर्शनेन विना न सम्भवतीत्यत्राह—

आत्मानमखिलं वस्तु शिवमानन्दचिन्मयम्।
एकभावेन सततं संपश्यन्नेव पश्यति।।७५।।

आत्मानं स्वात्मानम् अखिलं वस्तु सर्वं विश्वम् आनन्दचिन्मयं परशिवं च एकभावेन एकत्वेन सततं पश्यन्नेव चिद्रूपत्वाच्छिवजीवैक्यं शिवस्वभावभूतचित्क्रियाव्याप्तत्वात् तदबाह्यत्वेन सर्वं विश्वं शिवात्मकमिति पश्यन्नेव पश्यति शिवं पश्यतीत्यर्थः।।७५।।

इति भावाचारस्थलम्

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

शिवदर्शनाशिवाय संसारसंगनिवृत्ती होत नाही असे सागतात– जगातील सर्व वस्तू म्हणजे आपणच आहोत आणि सर्व विश्व म्हणजे सच्चिदानदरूप शिव होय, अशा रीतीने स्वात्मा, विश्व आणि शिव सर्व एकच आहेत या दृढ भावनेने जो पाहातो, तोच खऱ्या अर्थाने शिवाला ओळखतो. तात्पर्य असे की हे सर्व जग शिवाच्या चित्क्रियाशक्तीने व्याप्त असल्यामुळे शिवाशिवाय अन्य कोणती वस्तू नसून हे सर्व शिवमयच आहे अशा भावाचार-सपन्नतेने पाहावे.।।७५।।

अथ ज्ञानाचारस्थलम्

अथ–"सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म" इति श्रुतेस्तस्य भावाचारसम्पन्नस्य शिवयोगिनो ज्ञानाचार एव सर्वदेहिनां ज्ञानाचार इति ज्ञानाचारस्थलं निरूपयति–

अस्य ज्ञानसमाचारो योगिनः सर्वदेहिनाम्।
ज्ञानाचारो यदुक्तोऽयं ज्ञानाचारः स कथ्यते।।७६।।

भावाचारसम्पन्नस्यास्य योगिनो ज्ञानसमाचार एव सर्वदेहिनां ज्ञानाचार इति यद्यस्मात् कारणादुक्तः, तस्मात्कारणात् सोऽयं ज्ञानाचार इति कथ्यत इत्यर्थः।।७६।।

'ब्रह्म सत्य आहे, ज्ञानस्वरूप आहे आणि अनंत आहे,' अशा श्रुतिवचनानुसार भावाचारसंपन्न शिवयोग्याचे हे ज्ञान इतरांना अनुकरणीय असा ज्ञानाचार होतो, म्हणून येथे त्या ज्ञानाचार स्थलाचे निरूपण करतात-भावाचार सपन्न अशा त्या शिवयोग्याचा शिवज्ञानयुक्त आचारच सर्व शिवभक्तांसाठी ज्ञानाचार होतो, असे जे सांगितले आहे, त्यामुळेच याला ज्ञानाचारस्थल असे म्हणतात.।।७६।।

अथ तज्ज्ञानाचारमेव लक्षणपूर्वकं सूत्रत्रयेण कथयति–

शिवाद्वैतपरं ज्ञानं ज्ञानमित्युच्यते बुधैः।
सिद्धेन वाप्यसिद्धेन फलं ज्ञानान्तरेण किम्।।७७।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

शिवाद्वैतमेव परं प्रधानं यस्य तादृशं ज्ञानं बुधैर्ज्ञानमित्युच्यते, शास्त्रसिद्धेन वा तदसिद्धेन वा ज्ञानान्तरेण भिन्नज्ञानेन किं फलम्? न किमपीत्यर्थः।।७७।।

त्या ज्ञानाचारस्थलाची लक्षणे तीन श्लोकात सागतात— शिवाद्वैत-ज्ञानच खरे ज्ञान आहे, असे विद्वान सागतात. शास्त्राद्वारे सिद्ध अथवा असिद्ध अशा इतर ज्ञानाचे फल काय? कोणतेही फल नाही.।।७७।।

अथ तत्कथमित्यत्राह—

निर्मलं हि शिवज्ञानं निःश्रेयसकरं परम्।
रागद्वेषादिकलुषं भूयः संसृतिकारणम्।।७८।।

शिवज्ञानं शिवाद्वैतज्ञानं निर्मलम् आणवादिमलसङ्गरहितं सत् परं निःश्रेयसकारणं सर्वोत्कृष्टमोक्षप्रदमित्यर्थः। तद्व्यतिरिक्तभेदज्ञानं रागद्वेषादिकलुषं कामक्रोधादिमिश्रं सद् भूयः पुनः पुनः संसृतिकारणं यातायातकारणमिति हि प्रसिद्धमित्यर्थः।।७८।।

शिवज्ञानच खरे, हे कसे? तर— शिवाद्वैतज्ञान हे आणवादिमल-सगरहित, निर्मल, निर्दोष आणि श्रेष्ठ आहे आणि सर्वोत्कृष्ट अशी मोक्षप्राप्ती करून देणारे आहे. त्या व्यतिरिक्त असणारे भेदज्ञान रागद्वेषादिभावनानी कलुषित होऊन पुनःपुन्हा जन्ममरणात्मक ससाराला कारणीभूत होते. म्हणून शिवाद्वैत ज्ञानच श्रेष्ठ ज्ञान होय.।।७८।।

एवं ज्ञानस्वरूपमुक्त्वा तदाचारस्वरूपं कथयति—

परिपूर्णं महाज्ञानं परतत्त्वप्रकाशकम्।
अवलम्ब्य प्रवृत्तो यो ज्ञानाचारः स उच्यते।।७९।।

परतत्त्वप्रकाशकं परिपूर्णम् अपरिच्छिन्नं महाज्ञानं शिवाद्वैतज्ञानमवलम्ब्य धृत्वा य आचारः प्रवृत्तः, स ज्ञानाचार इत्युच्यत इत्यर्थः।।७९।।

ज्ञानाचे स्वरूप सांगितल्यावर आता ज्ञानाचाराचे स्वरूप सांगतात— शिवाद्वैत परिपूर्ण महाज्ञान असून त्यामुळे परतत्त्वाचे दर्शन होते. त्याच्यावर अवलंबून असणारा जो आचार तो 'ज्ञानाचार' होय.।।७९।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अथ तज्ज्ञानाचारिणं प्रकाशयति—

निर्विकल्पे परे धाम्नि निष्कले शिवनामनि।
ज्ञानेन योजयेत् सर्वं ज्ञानाचारी प्रकीर्तितः।।८०।।

निष्कले निरवयवे निर्विकल्पे भेदरहिते शिवनामनि शिव इत्यभिधानवति परे धाम्नि परब्रह्माधारे सर्वं जगज्जालं ज्ञानेन अभेदज्ञानेन यो योजयेत्, स ज्ञानाचारीति कीर्तित इत्यर्थः।।८०।।

आता ज्ञानाचारी कोणास म्हणावे ते सांगतात —निराकार, सर्वोत्कृष्ट, निर्विकल्प अशा परशिवाच्या ठिकाणी हे सर्व जग अभेदरूपाने आहे, अशा ज्ञानाने जो स्वतः वागतो आणि आपल्या आचरणरूपाने इतरांसाठी प्रत्यक्ष सिद्ध करून देतो, अशा शिवयोग्यास ज्ञानाचारी असे म्हणतात.।।८०।।

अथ तस्य ज्ञानाचारिणः कर्मकार्पण्यं नास्तीति सूत्रद्वयेन कथयति—

ज्ञानं मुक्तिप्रदं प्राप्य गुरुदृष्टिप्रसादतः।
कः कुर्यात् कर्मकार्पण्ये वाञ्छां संसारवर्धने।।८१।।

मुक्तिप्रदं परापरमोक्षप्रदं शिवज्ञानं गुरुकृपादृष्टिप्रसन्नतावशात् प्राप्य संसारवर्धने कर्मकार्पण्ये वाञ्छाम् इच्छां कः कुर्यात्? न कोऽपि कुर्यादित्यर्थः।।८१।।

ज्ञानाचारी शिवयोग्यास कर्माची आसक्ती नसते असे दोन श्लोकांत सांगतात —सद्‌गुरूच्या कृपादृष्टीच्या प्रसादामुळे मोक्षप्रद शिवज्ञान प्राप्त झाल्यावर संसाराची अभिलाषा वाढविणाऱ्या यज्ञयागादी कर्माची खटपट कोण करील ? कोणीही करणार नाही.।।८१।।

कुत इत्यत्राह—

कर्म ज्ञानाग्निना दग्धं न प्ररोहेत् कथञ्चन।
यदाहुः संसृतेर्मूलं प्रवाहानुगतं बुधाः।।८२।।

यत्कर्म बुधाः संसृतेर्मूलं मूलकारणं सत् प्रवाहानुगतं जलप्रवाहन्यायेनानादित्वेन श्रुतेरनुगतं सद् आहुः, तत्कर्मबन्धनं शिवज्ञानाग्निना दग्धं सत् कथञ्चन केनापि प्रकारेण न प्ररोहेद् नाङ्कुरेदित्यर्थः।।८२।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

का बरे करणार नाही? तर—कर्म हे ससाराचे मूळ आहे व ते जलप्रवाह-न्यायाने अनादी काळापासून चालत आले आहे. असे हे संसाराचे मूळ कारण असणारे कर्म शिवज्ञानरूप अग्नीने जळून गेल्यावर ते पुन्हा अकुरित होत नाही, असे शहाणे लोक सांगतात. म्हणून कर्माची अभिलाषा शिवज्ञान-सपन्न योग्याला नसते.।।८२।।

तर्हि कर्मबन्धनं कस्येत्यत्राह—

ज्ञानेन हीनः पुरुषः कर्मणा बद्ध्यते सदा।
ज्ञानिनः कर्मसङ्कल्पा भवन्ति किल निष्फलाः।।८३।।

"यथा पुष्करपलाश आपो न श्लिष्यन्ते, एवमेवंविदि पापकर्म न श्लिष्यते", "स उत्तमः पुरुषः" इति छान्दोग्यश्रुतेः, "अद्वैतभक्तियुक्तस्य योगिनः सकलाः क्रियाः। सन्ति दग्धपटन्यायात् क्रियामात्रा हि न क्रियाः।।" इति वीरागमोक्तेश्च ज्ञानिनः कर्मपाशो नास्तीत्यर्थः।।८३।।

तर मग कर्माचे बंधन कोणाला होते? तर—शिवज्ञानाच्या अभावी मनुष्य कर्माच्या बंधनात बांधला जातो. ज्ञानी लोकही कर्मे करतात परंतु ती फलाच्या आशेने करीत नाहीत, त्यामुळे ती त्यांना बंधनकारक होत नाहीत. 'कमलाची पाने पाण्यात असूनही जशी पाण्याने भिजत नाहीत, तद्वत् शिवयोग्याच्या सर्व क्रिया फलाशेने अलिप्त असतात', असे छांदोग्य श्रुतीत म्हटले आहे. 'अद्वैत भावनायुक्त योग्याच्या क्रिया नाममात्र दिसतात', अशी वीरागमाचीही उक्ती आहे. म्हणून ज्ञानी लोक कर्मपाशानी बांधले जात नाहीत.।।८३।।

अथ ज्ञानाचारस्थलं समापयति—

शुद्धाचारे शुद्धभावो विवेकी ज्योतिः पश्यन् सर्वतश्चैवमेकम्।
ज्ञानध्वस्तप्राकृतात्मप्रपञ्चो जीवन्मुक्तश्चेष्टते दिव्ययोगी।।८४।।

इति श्रीमत्षट्स्थलब्रह्मिणा शिवयोगिनाम्ना रेणुकाचार्येण विरचिते सिद्धान्तशिखामणौ माहेश्वरस्थलाश्रितनवलिङ्गप्रसङ्गो नाम षोडशः परिच्छेदः समाप्तः।।

शुद्धाचारे निर्मलज्ञानाचारे शुद्धभावो निर्मलभाववान् विवेकी, एवं प्रतियोगिरहितं शैवं तेजः सर्वतः पश्यन् ज्ञानध्वस्तप्राकृतात्मप्रपञ्चः

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

शिवाद्वैतज्ञाननाशितप्रकृतिजन्यदेहप्रपञ्चवान् दिव्ययोगी स्वयंप्रकाशरूपः शिवयोगी जीवन्मुक्तः सन् चेष्टते लौकिकवद् व्यवहरतीत्यर्थः।।८४।।

आता ज्ञानाचार स्थलाचा समारोप करतात—शुद्धाचाराने सपन्न, निर्मल भावाने परिपूर्ण, विवेकी आणि सर्वत्र परशिवाचे तेज पाहाणारा, प्राकृत देहाचा प्रपच ज्याने शिवज्ञानाने नाहीसा केला आहे, असा दिव्य योगी जीवन्मुक्त असूनही सामान्य लोकाप्रमाणे जगात व्यवहार करीत असतो.।।८४।।

इति श्रीमत्पदवाक्यप्रमाणपारावारधुरीणश्रीमरितोण्टदार्येण विरचितायां तत्त्व-प्रदीपिकाख्यायां सिद्धान्तशिखामणिव्याख्यायां माहेश्वरस्थलाश्रितनव-लिङ्गप्रसङ्गो नाम षोडशः परिच्छेदः समाप्तः।।

या प्रमाणे सिद्धांतशिखामणीतील माहेश्वरस्थलास अनुसरून असलेल्या नऊ लिगस्थलाचे वर्णन असलेला हा सोळावा परिच्छेद सपला.

सोळावा परिच्छेद समाप्त।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सप्तदशः परिच्छेदः

अथ प्रसादिस्थलम्

अथागस्त्यप्रश्नः। अगस्त्य उवाचेति—

स्थलानि तानि चोक्तानि यानि माहेश्वरस्थले।
वदस्व स्थलभेदं मे प्रसादिस्थलसंश्रितम्।।१।।

वदस्व उपदिशेत्यर्थः। शिष्टं स्पष्टम्।।१।।

अगस्तीऋषी प्रश्न करतात—हे आचार्य, आपण माहेश्वरस्थलाचे पोटभेद असणारी स्थले मला सांगितलीत. आता प्रसादिस्थल आणि त्याचे पोटभेद कोणते ते मला सांगावे.।।१।।

श्रीरेणुक उवाच

स्थलभेदा नव प्रोक्ताः प्रसादिस्थलसंश्रिताः।
कायानुग्रहणं पूर्वमिन्द्रियानुग्रहं ततः।।२।।
प्राणानुग्रहणं पश्चात् ततः कायार्पितं मतम्।
करणार्पितमाख्यातं ततो भावार्पितं मतम्।।३।।
शिष्यस्थलं ततः प्रोक्तं शुश्रूषास्थलमेव च।
ततः सेव्यस्थलं चैषां क्रमशः शृणु लक्षणम्।।४।।

श्री रेणुक उत्तर देतात—प्रसादी स्थलाच्या अंगभूत असणाऱ्या स्थलाचे नऊ भेद आहेत. ते असे- १) कायानुग्रहस्थल, २) इंद्रियानुग्रहस्थल, ३) प्राणानुग्रह स्थल, ४) कायार्पित स्थल, ५) करणार्पित स्थल, ६) भावार्पित स्थल, ७) शिष्यस्थल, ८) शुश्रूपास्थल आणि ९) सेव्यस्थल. आता यापैकी प्रत्येकाचे लक्षण सांगतो ते ऐक.।।२-३-४।।

अथ कायानुग्रहस्थलम्

अथ—"शुचिः समग्रीवशिरःशरीरः" इति कैवल्यश्रुतेः स ज्ञानाचारवान् शिवयोगी स्वरूपशरीरं दर्शयन्ननुगृह्णातीति कायानुग्राहक इति सूत्रत्रयेण निरूपयति—

अनुगृह्णाति यल्लोकान् स्वकायं दर्शयन्नसौ।
तस्मादेष समाख्यातः कायानुग्रहनामकः।।५।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

असौ ज्ञानाचारसम्पन्नः शिवयोगी यद्यस्मात् कारणात् स्वकायं दर्शयन् सन् लोकान् प्राकृतान् अनुगृह्णात्यनुग्रहं करोति, तस्मादेष कायानुग्रहनामकः कायानुग्रह इत्यभिधानवानिति समाख्यात इत्यर्थः।।५।।

'अंतर्बाह्य शुद्ध असलेला, मूलाधारापासून मूर्धन्यापर्यंत देह, कंठ, शिर समस्थितीत असलेला, आश्रमातीत असा हा साधक सर्व इंद्रियांचा निरोध करून स्थिरासनी असतो', या कैवल्योपनिषदाच्या वचनानुसार पूर्वोक्त ज्ञानाचार–संपन्न शिवयोग्याचे शरीर पर-ब्रह्मस्वरूप झाले असल्यामुळे तो त्याच्या दर्शनाद्वारे सामान्य जनांवर अनुग्रह करतो. म्हणून त्याला कायानुग्राहक असे म्हणतात. आता तीन श्लोकांत त्याचे स्वरूप वर्णन करतात– ज्ञानाचारसंपन्न शिवयोगी आपल्या शरीरदर्शनाद्वारा लोकांवर अनुग्रह करतो म्हणून त्याला कायानुग्राहक असे म्हणतात।।५।।

तत्कथमित्यत्र दृष्टान्तमाह–

यथा शिवोऽनुगृह्णाति मूर्तिमाविश्य देहिनः।
तथा योगी शरीरस्थः सर्वानुग्राहको भवेत्।।६।।

शिवो यथा चन्द्रशेखरादिमूर्तिमाविश्य देहिनः प्राणिनोऽनुग्रहं करोति, तथा योगी शरीरस्थः सन् शिवदीक्षासंस्कृतदिव्यशरीरस्थः सन् सर्वानुग्राहकः स्यादित्यर्थः।।६।।

तो कसा ते दृष्टांतपूर्वक सांगतात–निष्कल असा शिव ज्याप्रमाणे चंद्रशेखर, गंगाधरादी लीलारूपे धारण करून प्राणिमात्रांवर अनुग्रह करतो, तशा प्रकारे हा शिवयोगी शिवदीक्षेने सुसंस्कृत, दिव्यतेजोमय अशा आपल्या शरीराद्वारे सर्वांवर अनुग्रह करतो.।।६।।

अथ शिववदसङ्गश्चेत्याह–

शिवः शरीरयोगेऽपि यथा सङ्गविवर्जितः।
तथा योगी शरीरस्थो निःसङ्गो वर्तते सदा।।७।।

सुखदुःखादिसङ्गरहित इत्यर्थः। शिष्टं स्पष्टम्।।७।।

आता शिवासारखाच तो असंग असतो असे सांगतात–शिव ज्याप्रमाणे लीलारूप धारण केलेला असला तरी तो जसा असंग

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

असतो, तशा रीतीने हा शिवयोगीही शरीरधारी असूनसुद्धा सुखदुःखापासून निस्संग होऊन वर्तन करीत असतो.।।७।।

एवं शिवयोगिनः शिवसमानत्वमुक्त्वा तस्य मायाप्रपञ्चदर्शनं नास्तीति शिव एवेति पञ्चभिः सूत्रैर्दृष्टान्तपूर्वकमुपपादयति—

शिवभावनया युक्तः स्थिरया निर्विकल्पया।
शिवो भवति निर्धूतमायावेशपरिप्लवः।।८।।

अत्र शिवयोगीति शेषः। भेदरहितया दृढया शिवोऽहंभावनया युक्तो निवारितमायावेशोपप्लवः सन् शिव एव भवतीत्यर्थः।।८।।

शिवयोगी शिवासमान असतो असे सांगून त्याला माया प्रपंचाचा संसर्ग नसतो म्हणून तो शिवच होय, असे दृष्टातपूर्वक पाच श्लोकांत सांगतात—ह्या शिवयोग्याच्या ठिकाणी थोडीही भेदबुद्धी नसते म्हणून तो शिवोऽहं अशा दृढ भावनेने युक्त होऊन माया-प्रपंच-क्लेशविरहित झाल्यामुळे साक्षात् शिवस्वरूपच होतो.।।८।।

ननु कथं तस्य मायावेशोपप्लवो नास्तीत्यत्राह—

चित्तवृत्तिषु लीनासु शिवे चित्सुखसागरे।
अविद्याकल्पितं वस्तु नान्यत् पश्यति संयमी।।९।।

ज्ञानानन्दयोः समुद्रस्थानापन्ने परमशिवे चित्तवृत्तिषु मनोव्यापारेषु लयं गतेषु सत्सु शिवयोगी मायाकल्पितवस्त्वन्तरं न पश्यतीत्यर्थः।।९।।

त्याला मायाप्रपंचाचा उपद्रव का नसतो? तर—त्या संयमी शिवयोग्याचे सर्व मनोव्यापार ज्ञानानंदाचा सागर अशा शिवामध्ये विलीन झाले असल्यामुळे मायाजन्य अशी कोणतीही वस्तू त्याच्या दृष्टीला दिसत नाही. म्हणून त्याला मायाप्रपंचाचा उपद्रव होत नाही.।।९।।

अत्र दृष्टान्तमाह—

नेदं रजतमित्युक्ते यथा शुक्तिः प्रकाशते।
नेदं जगदिति ज्ञाते शिवतत्त्वं प्रकाशते।।१०।।

उक्ते ज्ञात इत्यर्थः। शिष्टं स्पष्टम्।।१०।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

आता त्याविषयी दृष्टात देतात—शिंपल्यावर होणारा चांदाचा भ्रांती त्या शिपल्याचे सत्यस्वरूप समजल्यावर जसे हा चांदी नसून शिप आहे असे ज्ञान होते, त्याप्रमाणे दिसणारा हा प्रपंच नव्हे तर प्रत्यक्ष शिवरूपच आहे असे ज्ञान झाल्यावर त्याला सर्वत्र शिवतत्त्वाचेच दर्शन घडते. म्हणून त्याला माया प्रपचाचा उपद्रव होत नाही.।।१०।।

अथ पुनर्दृष्टान्तमाह—

यथा स्वप्नकृतं वस्तु प्रबोधेनैव शाम्यति।
तथा शिवस्य विज्ञाने संसारं नैव पश्यति।।११।।

एष शिवयोगीत्यर्थः। शिष्टं स्पष्टम्।।११।।

आता दुसरा दृष्टात देतात—स्वप्नात दिसणारे पदार्थ जागे झाल्याबरोबर जसे नाहीसे होतात, त्याप्रमाणे शिवज्ञान झालेल्या शिवयोग्याच्या दृष्टी समोरून माया प्रपच नाहीसा होऊन तो त्याला दिसेनासा होतो.।।११।।

अथ पुनर्दृष्टान्तमाह—

अज्ञानमेव सर्वेषां संसारभ्रमकारणम्।
तन्निवृत्तौ कथं भूयः संसारभ्रमदर्शनम्।।१२।।

यथा शुक्त्यज्ञानं रजतभ्रान्तिकारणम्, तथा शिवविषयकमज्ञानं संसार-भ्रान्तिकारणम्। तन्निवृत्तौ शुक्त्यज्ञाननिवृत्तौ यथा रजतभ्रमो निवर्तते, तथा शिवविषयकाज्ञाननिवृत्तौ सांसारिकभेदभ्रान्तिदर्शनं नास्तीत्यर्थः। यथा शुक्तिरेव रजतम्, तथा शिव एव विश्वमिति भावः।।१२।।

शिवविषयक अज्ञानच ससारभ्रमाला कारण असल्याने ते अज्ञानच नाहीसे झाल्यावर संसारविषयक भ्रम कसा राहील? अर्थात् राहाणार नाही. जसे शिंपल्याचे अज्ञान रजतभ्रमाला कारण असते, तसे शिवविषयक अज्ञानच संसारभ्रातीला कारण असते. शिंपल्याचे अज्ञान दूर झाल्यावर रजतभ्रम नाहीसा होतो, तसे शिवविषयक अज्ञान दूर झाल्यावर सांसारिक भेदभ्रांती नाहीशी होते.।।१२।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तस्मादयं शिवयोगी जीवन्मुक्त इति वदन् कायानुग्रहस्थलं समापयति—

गलिताहङ्कृतिग्रन्थिः क्रीडाकल्पितविग्रहः।
जीवन्मुक्तश्चरेद् योगी देहिवन्निरुपाधिकः।।१३।।

निवृत्तपरिच्छिन्नशरीराद्यहङ्कारवान् क्रीडार्थं स्वेच्छापरिकल्पितकलेवरः, अत एव निरुपाधिकः, प्रतिबन्धरहित इत्यर्थः। जीवन्मुक्तः सन् देहिवत् देहवानिव लोकानुग्रहार्थं संचरेदित्यर्थः।।१३।।

इति कायानुग्रहस्थलम्

म्हणून हा शिवयोगी जीवन्मुक्त असतो असे सांगून कायानुग्रह स्थलाचे वर्णन संपवितात—तो शिवज्ञानी असा योगीश्वर, त्याच्या परिच्छिन्न अशा देहादिकाचा अभिमान हरवून गेला असल्यामुळे त्याला कसलाच प्रतिबंध उरलेला नसतो. म्हणून आपल्या इच्छेनुसार क्रीडा करण्यासाठी नाममात्र शरीरधारी होऊन जीवन्मुक्त अशा अवस्थेत लोकानुग्रहाकरिता संचार करीत असतो.।।१३।।

अथेन्द्रियानुग्रहस्थलम्

अथ—"त्रिरुन्नतं स्थाप्य समं शरीरं हृदीन्द्रियाणि मनसा संनिवेश्य" इति श्वेताश्वतरश्रुत्यनुसारेण तस्य कायानुग्रहसम्पन्नस्य शिवयोगिन इन्द्रियविवेचनमेव सर्वेषामिन्द्रियानुग्रहस्थलमिति निरूपयति—

दर्शनात् परकायस्य करणानां विवेकतः।
इन्द्रियानुग्रहः प्रोक्तः सर्वेषां तत्त्ववेदिभिः।।१४।।

परकायस्य सर्वोत्कृष्टकायानुग्रहसम्पन्नस्य शिवयोगिनो दर्शनात्, करणानामिन्द्रियाणां विवेकतः सर्वेषां प्राकृतानामिन्द्रियानुग्रह इति तत्त्ववेदिभिस्तत्त्वज्ञानिभिः प्रोक्तः कथित इत्यर्थः।।१४।।

'आपली छाती, शिर व शरीर सरळ ठेवून सर्व इंद्रियांचा हृदयात मनाने निरोध करून ॐकाररूपी नौकेने भयप्रद अशा जन्ममरणरूपी प्रवाहांना तो बुद्धिमान पुरुष ओलांडतो'. या श्वेताश्वतर उपनिषदात केलेल्या वर्णनानुसार इंद्रियनिग्रह केलेल्या त्या कायानुग्रही शिवयोग्याच्या दर्शनाने जीवांना आपल्या इंद्रियांच्या निग्रहाचा उपदेश अनुग्रहरूपाने प्राप्त होतो. म्हणून हे इंद्रियानुग्रह-स्थल होय—इंद्रियनिग्रहयुक्त परकाय शिवयोग्याच्या

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

दर्शनाने सामान्यजनांच्या ठिकाणी इंद्रियांच्या व्यवहारासबंधी विवेक उत्पन्न होतो तो त्या संयमशील इंद्रियांचा अनुग्रह असल्यामुळे. त्यालाच इंद्रियानुग्रह असे म्हणतात. इंद्रियनिग्रही शिवयोग्याच्या दर्शनाने सामान्यजनांनाही त्याच्या अनुकरणाने आपणही इंद्रियनिग्रही व्हावे अशी प्रवृत्ती आपोआप निर्माण होते. अर्थात् शिवयोग्याच्या संयमी इंद्रियांचा सामान्यजनांच्या इंद्रियावर झालेला हा अनुग्रहच होय. म्हणून याला इंद्रियानुग्रह असे म्हणतात.।।१४।।

अथ तत्कथमित्यत्र तदिन्द्रियव्यापारं पञ्चभिः सूत्रैः प्रतिपादयति—

इन्द्रियाणां समस्तानां स्वार्थेषु सति सङ्गमे।
रागो वा जायते द्वेषस्तौ योगी परिवर्जयेत्।।१५।।

लोके समस्तानां श्रोत्रादीन्द्रियाणां स्वस्वविषयेषु सम्बन्धे सति रागो वा द्वेषो वा जायते । योगी शिवयोगी तौ रागद्वेषौ परिवर्जयेत्, परित्यजेतेत्यर्थः।।१५।।

त्या इंद्रियनिग्रही परयोग्याचा इंद्रियव्यापार कसा असतो ते पाच श्लोकांत सांगतात—मानवाच्या इंद्रियांचा आपापल्या विषयाशी संबंध आल्यावर 'त्यापासून रागद्वेषादिभावना उत्पन्न होतात, म्हणून परयोग्याने रागद्वेषादिभावनांचा त्याग करावा.।।१५।।

एवं च योगीन्द्रियव्यापारस्य लोकोत्तरत्वादनुग्रहकरत्वमिति भावः—

इन्द्रियाणां बहिर्वृत्तिः प्रपञ्चस्य प्रकाशिनी।
अन्तः शिवे समावेशो निष्प्रपञ्चस्य कारणम्।।१६।।

स्पष्टम्।।१६।।

अशा योग्याचा इंद्रियव्यवहार लोकविलक्षण असल्यामुळे त्यामध्ये अनुग्रहशक्ती असते, असे सांगतात—इंद्रियांची बाह्यप्रवृत्ती संसाराच्या व्यवहाराला कारण होते. तीच अंतर्मुख होऊन शिवाशी एकरूप झाल्यावर मोक्षप्राप्तीला कारण होते.।।१६।।

एवं स्थिते—

क्षणमन्तः शिवं पश्यन् केवलेनैव चेतसा।
बाह्यार्थानामनुभवं क्षणं कुर्वन् दृगादिभिः।।१७।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सर्वेन्द्रियनिरूढोऽपि सर्वेन्द्रियविहीनवान्।
शिवाहितमना योगी शिवं पश्यति नापरम्।।१८।।

अन्तः अन्तर्मुखः सन्, केवलेन चेतसा बाह्येन्द्रियसङ्गरहितेन चित्तेन, क्षणं शिवं पश्यन्, दृगादिभिश्चक्षुरादिबाह्येन्द्रियैः, बाह्यार्थानां शब्दादिबाह्यविषयाणाम् अनुभवं क्षणं कुर्वन्, शिवाहितमना योगी शिवे निवेशितचित्तः परयोगी, सर्वेन्द्रियनिरूढोऽपि सर्वेन्द्रियासक्तोऽपि, सर्वेन्द्रियविहीनवान् सन् शिवं पश्यति अन्तर्बहिश्च शिवमेव पश्यति, अपरं तदन्यं न पश्यतीति तदिन्द्रियविवेचनमनुग्रहकरमिति भावः।।१७-१८।।

तो शिवयोगी क्षणभर अंतर्मुख होऊन एकाग्रचित्ताने आपल्या हृदयात शिवस्वरूप पाहातो आणि क्षणभर आपल्या बाह्यनेत्रादी इंद्रियांनी शब्दरूपादी विषयांचा अनुभव घेतो. शिवयोग्याला सामान्यजनाप्रमाणे सर्व इंद्रिये असली तरी ती असून नसल्यासारखी असतात. कारण त्याच्या सर्व इंद्रियांचे लक्ष शिवावर केंद्रित झाले असल्यामुळे त्याला शिवाशिवाय अन्य काही दिसत नाही.।।१७-१८।।

नन्वेवमन्तर्बहिश्च शिवं पश्यतः शिवयोगिनोऽपि प्राकृतजनवज्जरामरणादिदर्शनात् कथं लोकानुग्राहकत्वमित्यत्राह—

न जरा मरणं नास्ति न पिपासा न च क्षुधा।
शिवाहितेन्द्रियस्यास्य निर्मानस्य महात्मनः।।१९।।

शिवाहितेन्द्रियस्य शिवनिवेशितेन्द्रियव्यापारवतो निर्मानस्य देहाद्यभिमानशून्यस्य महात्मनो महापुरुषस्य अस्य शिवयोगिनो जरामरणं नास्ति, तयोः शरीरधर्मत्वात्, क्षुत्पिपासे च न स्तः, तयोः प्राणधर्मत्वादिति।।१९।।

अशा रीतीने अंतर्बाह्य इंद्रियांनी शिवाचेच स्वरूप पाहाणाऱ्या शिवयोग्यालाही प्राकृतजनाप्रमाणे जरामरणादी होत असल्याचे दिसत असल्यामुळे त्याच्याकडून लोकानुग्रह कसा होतो? याचे उत्तर असे की—शिवामध्ये इंद्रियव्यापार विलीन झालेल्या त्या शिवयोग्याला देहाभिमानच उरलेला नसल्यामुळे जरा आणि मरण नसते. कारण जरामरण हे देहाचे धर्म असतात. तसेच तहानभूकही नसते, कारण ते प्राणाचे धर्म असतात.।।१९।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"सर्वेषु गात्रेषु शिरः प्रधानं सर्वेन्द्रियाणां नयनं प्रधानम्", "इन्द्रियाणां मनो नाथो मनोनाथस्तु मारुतः" इति पुराणवचनानुसारेण सर्वेन्द्रिय-व्यापारकारणीभूतमनोमारुतनिग्रहं सूत्रत्रयेण प्रकाशयति—

मनो यत्र प्रवर्तेत तत्र सर्वेन्द्रियस्थितिः।
शिवे मनसि सल्लीने क्व चेन्द्रियविचारणा।।२०।।

यत्र मनस्थितिः सर्वेन्द्रियस्थितिः, मनसि शिवे सल्लीने सति इन्द्रियविचारणा इन्द्रियव्यापारः क्व? नास्तीत्यर्थः।।२०।।

'शरीराच्या सर्व अवयवांमध्ये मस्तक श्रेष्ठ, इंद्रियांमध्ये डोळे श्रेष्ठ. इंद्रियांना मन चालविते'. अशा पुराणवचनानुसार सर्व इंद्रियांच्या व्यवहाराला कारणीभूत असलेल्या मनाच्या निग्रहाचे वर्णन तीन श्लोकात करतात—मन ज्याठिकाणी असते तेथेच सर्व इंद्रियेही असतात. म्हणून शिवाच्या ठिकाणी मन तल्लीन झाल्यावर इंद्रियाचे बाह्यव्यापार कसे होतील? अर्थात् होत नाहीत.।।२०।।

यद्यत् पश्यन् दृशा योगी मनसा चिन्तयत्यपि।
तत्तत् सर्वं शिवाकारं संविद्रूपं प्रकाशते।।२१।।

योगी शिवयोगी दृशा यद्यत् पश्यति मनसा चिन्तयति, तत्तत् सर्वं चिद्रूपं शिवाकारं सत् प्रकाशते मनुत इत्यर्थः।।२१।।

शिवयोगी आपल्या दृष्टीने जे जे पाहातो, मनाने जे जे चिंतितो ते ते सर्व चिद्रूप अशा शिवस्वरूपानेच प्रकाशमान होते. म्हणजेच त्याला अतरगात आणि बहिरंगात सर्वत्र शिवाचाच साक्षात्कार होतो.।।२१।।

अनेनान्तर्बाह्येन्द्रियनिग्रहप्रकारो दर्शितः । अथ प्राणनिग्रहप्रकारं दर्शयति—

करणैः सहितं प्राणं मनस्याधाय संयमी ।
योजयेत् स शिवः साक्षाद् यत्र नास्ति जगद्भ्रमः।।२२।।

करणैर्नेत्रादिकरणैः सहितं प्राणं प्राणवायुं मनस्याधाय संस्थाप्य यः संयमी शिवयोगी यत्र ब्रह्मणि योजयेत्, नेत्रादिकरणानां मन एव प्राणरूपम्, मनो वायुरूपं वेगवत्त्वात् लोके क्वचिल्लक्ष्ये नेत्रमचञ्चलं चेत्, प्राणवायुनिरोधद्वारा मनोलयस्यानुभूयमानत्वाच्च त्रयाणामैक्यात्

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सामरस्येन संयोजयेत्, स साक्षाच्छिव एव । तस्य जगद्भ्रमो विश्वभेदभ्रान्तिर्नास्ति, चित्तवृत्तिर्ब्रह्मणि लीना चेद् बाह्येन्द्रियव्यापारो निवर्तते, तदभावाद् विभेदभ्रान्तिर्नास्तीत्यर्थः।।२२।।

आतापर्यंत त्या परशिवयोग्याची अतरिंद्रिये आणि बाह्येंद्रियाच्या निग्रहाचे प्रकार सांगितले, आता प्राणनिग्रहाचे स्वरूप सागतात— नेत्रादी इंद्रियांनी युक्त प्राणवायूला मनामध्ये साठवून जो शिवयोगी त्या मनाला परब्रह्मात स्थिर करतो तो साक्षात् शिवस्वरूपच होतो. अशा त्याला जगाचा भेदभ्रम नसतो. तात्पर्य मनच ब्रह्माच्या ठिकाणी लीन झाल्यावर अन्य इंद्रियांचा व्यापार होत नसल्यामुळे त्याला जगाची भेदभ्रांती नसते.।।२२।।

अथेन्द्रियानुग्रहस्थलं समापयति—

सर्वेन्द्रियप्रवृत्त्या च बहिरन्तः शिवं यजन्।
स्वच्छन्दचारी सर्वत्र सुखी भवति संयमी।।२३।।

संयमी शिवयोगी सर्वेन्द्रियप्रवृत्त्या च अन्तर्बाह्येन्द्रियप्रवर्तनेन शिवम् इष्टप्राणरूपशिवलिङ्गं यजन् पूजयन् सर्वत्र स्वेच्छाचारी भूत्वा सुखी भवति सुखमनुभवन्नास्त इत्यर्थः।।२३।।

इतीन्द्रियानुग्रहस्थलम्

आता इंद्रियानुग्रहस्थलाचे वर्णन संपवितात—संयमी असा शिवयोगी आपली अंतरिंद्रिये आणि बाह्येंद्रियांच्या वृत्तिद्वारा इष्टलिंग आणि प्राणलिंगाची पूजा करीत सर्वत्र स्वच्छंदाचारी होऊन शिवसुखाचा अनुभव घेत असतो. तात्पर्य सयमी शिवयोगी सदा सुखी असतो.।।२३।।

अथ प्राणानुग्रहस्थलम्

अथ—"प्राणान् प्रपीड्येह स मुक्तचेष्टः क्षीणे प्राणे नासिकयोच्छ्वसीत" इति श्वेताश्वतरश्रुत्यनुसारेणेन्द्रियानुग्रहसम्पन्नस्य शिवयोगिनस्तात्पर्यावलोकनमेव सर्वेषां प्राणानुग्रहस्थलं निरूपयति—

शिवस्य परकायस्य यत् तात्पर्यावलोकनम्।
तत्प्राणानुग्रहः प्रोक्तः सर्वेषां तत्त्वदर्शिभिः।।२४।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

परकायस्य इन्द्रियानुग्रहसम्पन्नस्य परब्रह्मकायस्य शिवस्य शिवयोगिनो यत्तात्पर्यावलोकनं प्राणवायुनिरोधेन यत्तात्पर्यावलोकनमस्ति, तत्सर्वेषां प्राणानुग्रह इति तत्त्वदर्शिभिस्तत्त्वज्ञानिभिः प्रोक्त इत्यर्थः।।२४।।

पूर्वोक्त कायानुग्रह व इंद्रियानुग्रह करणारा शिवयोगी आपल्या प्राणवायूच्या निरोधाने हृदयस्थ परंज्योतीचे दर्शन घेतो-आणि त्या अनुभवाचे, जगातील सर्व लोकांना परमात्मप्राप्ती व्हावी, शाश्वत सुख लाभावे या उद्देशाने जेव्हा त्याच्यापुढे वर्णन करून अनुग्रह करतो, त्यास प्राणानुग्रह असे म्हणतात—इंद्रियानुग्रहसंपन्न असलेला तो परयोगी प्राणवायूला कुंभकाने निरोध करून दृश्यमान् सर्व जग शिवस्वरूप असलेले पाहातो व त्याप्रमाणे अनुसरण करण्यासाठी सर्वांवर अनुग्रह करतो. तोच प्राणानुग्रह होय, असे सर्व तत्त्वचिंतक सांगतात.।।२४।।

अथ तत्तात्पर्यावलोकनं कीदृशमित्याह—

प्राणो यस्य लयं याति शिवे परमकारणे।
कुतस्तस्येन्द्रियस्फूर्तिः कुतः संसारदर्शनम्।।२५।।

यस्य शिवयोगिनः प्राणः प्राणवायुः परमकारणे शिवे ब्रह्मादि-कारणेशानामपि कारणीभूते परशिवे लयं याति, तस्य शिवयोगिन इन्द्रियस्फूर्तिरिन्द्रियव्यापारः कुतः? नास्तीत्यर्थः। एवं च निष्प्रपञ्च-शिवलिङ्गदर्शनं तत्तात्पर्यावलोकनमिति भावः।।२५।।

तो परयोगी सर्व जग शिवमय असलेले कसे पाहातो? तर प्रपंचाच्या उत्पत्यादींना कारण असलेल्या त्या परशिवामध्ये ह्या शिवयोग्याचा प्राण लय झाला असल्यामुळे त्याचा बाह्येंद्रियांचा व्यापार उरलेला नसतो. म्हणून त्याला नेहमी निष्प्रपंचरूप शिवलिंगाचेच सर्वत्र दर्शन होते.।।२५।।

अथ तत्कथमित्यत्राह—

करणेषु निवृत्तेषु स्वार्थसङ्गात् प्रयत्नतः।
तैः समं प्राणमारोप्य स्वान्ते शान्तमतिः स्वयम्।।२६।।

केवलकुम्भकेन शिवे प्राणवायौ लयं गते सति करणेषु चक्षुरादिकरणेषु स्वार्थसङ्गात् शब्दादिस्वविषयसम्बन्धात् प्रयत्नतः स्वयमेव निवृत्तेषु सत्सु

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

स्वान्ते मनसि तैरिन्द्रियैः समं प्राणमारोप्य संयोज्य शान्तमती रागद्वेषरहितः स्यात्।।२६।।

केवळ कुंभकानेच शिवामध्ये प्राणवायू विलीन केल्याने श्रोत्रादी सर्व इंद्रिये आपापल्या शब्दादी विषयांशी संबंध न उरल्यामुळे ते स्वतःशीच अंतर्मुख होतात. अशी अंतर्मुख इंद्रिये असलेला तो शिवयोगी आपली सर्व इंद्रिये प्राणामध्ये विलीन करून निश्चल व रागद्वेषादिविरहित होऊन स्वतःतच स्वतः शांत असतो.।।२६।।

एवं स्थिते–

शान्तत्वात् प्राणवृत्तीनां मनः शाम्यति वृत्तिभिः।
तच्छान्तौ योगिनां किञ्चिच्छिवादन्यन्न दृश्यते।।२७।।

प्राणवृत्तीनां रेचकपूरकरूपप्राणवृत्तीनां शान्तत्वात् केवलकुम्भकेन निवृत्तत्वात्, मनो वृत्तिभिः सङ्कल्पविकल्परूपवृत्तिभिः समं शाम्यति, तच्छान्तौ सत्यां योगिनां शिवादन्यन्न किञ्चिदपि दृश्यत इत्यर्थः।।२७।।

यापूर्वी सांगितलेल्या कुंभकाने प्राणवायूच्या रेचक पूरक वृत्ती शांत होतात. अशा रीतीने प्राणवायूच्या स्थिरतेमुळे मनाच्या संकल्पविकल्पात्मक वृत्तीही नाहीशा होतात. त्यामुळे असा प्रशांत-मनस्क झालेला शिवयोगी शिवाशिवाय अन्य कोणालाही पाहात नाही.।।२७।।

अथात्र शङ्कां सूत्रद्वयेनोद्भाव्य तृतीयेन निराकरोति–

प्राण एव मनुष्याणां देहधारणकारणम्।
तदाधारः शिवः प्रोक्तः सर्वकारणकारणम्।।२८।।

स्पष्टम्।।२८।।

येथे दोन श्लोकांत शंका उपस्थित करून त्यांचे उत्तर तिसऱ्या श्लोकात देतात–मनुष्याच्या देहधारणाला प्राणच मुख्य कारण असतो. त्या प्राणाला सर्वांस कारण असणारा शिवच आधार असतो असे सांगितले, परंतु शिवामध्ये प्राणलय झाल्यावर देहाचा व्यवहार कसा चालतो? असा प्रश्न उपस्थित होतो.।।२८।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अस्योत्तरम्—

निराधारः शिवः साक्षात् प्राणस्तेन प्रतिष्ठितः।
तदाधारा तनुर्ज्ञेया जीवो येनैव चेष्टते।।२९।।

तदाधारा प्राणाधारेत्यर्थः ।।२९।।

स्वतः निराधार असणारा शिव सर्व जगाचा आधार असल्यामुळे प्राणालाही त्याचाच आधार आहे. जीवनव्यवहाराला प्राणशक्तीचा आधार असतो. असा प्राणच परमात्म्यात विलीन झाल्यावर देह कसा राहाणार?।।२९।।

येनैव प्राणेनैव जीवश्चेष्टत इति सर्वसम्मतत्वेन शिवे प्राणस्य लीनत्वाद् देहः कथं तिष्ठतीति शङ्का? अस्योत्तरम्—

शिवे प्राणो विलीनोऽपि योगिनो योगमार्गतः।
स्वशक्तिवासनायोगाद् धारयत्येव विग्रहम्।।३०।।

योगिनः शिवयोगिनो योगमार्गतः केवलकुम्भकरूपयोगमार्गात् प्राणः शिवे विलीनोऽपि लयं गतोऽपि स्वशक्तिवासनायोगाद् निजशक्ति-संस्कारबलाद् विग्रहं शरीरं धारयत्येवेत्यर्थः।।३०।।

वर उपस्थित केलेल्या शंकेचे समाधान असे की, शिवयोग्याचे प्राण कुंभकरूप योगमार्गाने शिवलिंगात लय पावले तरी तो आपल्या योगशक्तिरूप वासनेच्या बळावर देह धारण करून असतो.।।३०।।

तर्हि स कथं तिष्ठतीत्यत्र सूत्रद्वयेन कथयति—

स चाभ्यासवशाद्भूयः सर्वतत्त्वातिवर्तिनि।
निष्कलङ्के निराकारे निरस्ताशेषविक्लवे।।३१।।

स च जीवात्माश्रयीभूतप्राणवायुर्भूयोऽभ्यासवशात् सर्वतत्त्वातिवर्तिनि भूम्यादिशिवान्ततत्त्वोपरिवर्तिनि निष्कलङ्के जरामरणादिदोषरहिते निराकारे, अत एव प्राकृतनीलपीताद्याकाररहिते निरस्ताशेषविक्लवे निवृत्तसमस्त-बाधे।।३१।।

तरीही तो कसा असतो? याचे उत्तर दोन श्लोकात सांगतात—जीवात्म्याला आश्रयभूत असणारा प्राणवायू त्या योग्याने पुनःपुन्हा केलेल्या योगाभ्यासामुळे, भूम्यादिशिवान्त सर्व तत्त्वाच्या

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अतीत, जरामरणादिदोषरहित, नीलपीतादि आकारविहीन कोणतीही बाधा नसलेला-।।३१।।

चिद्विलासपरिस्फूर्तिपरिपूर्णसुखाद्वये।
शिवे विलीनः सर्वात्मा योगी चलति न क्वचित्।।३२।।

चिद्विलासबाहुल्येन परिपूर्णसुखाद्वये परिपूर्णानन्दस्वरूपेण द्वितीयशून्ये परमशिवे विलीनसर्वात्मा लयीभूतसर्वव्यापारवान् योगी शिवयोगी क्वचित् कुत्रचित् कदापि न चलति, न स्पन्दत इत्यर्थः।।३२।।

चिच्छक्तिविलासस्फुरण, विशिष्ट, परमानंदपरिपूर्ण, अद्वितीय अशा परशिवामध्ये विलीन केलेला असतो. म्हणून तो योगी चलनवलन विरहित होऊन राहातो.।।३२।।

अथ किमिव न चलतीत्यत्राह—

प्रध्वस्तवासनासङ्गात् प्राणवृत्तिपरिक्षयात्।
शिवैकीभूतसर्वात्मा स्थाणुवद्भाति संयमी।।३३।।

संयमी शिवयोगीश्वरः प्रध्वस्तवासनासङ्गाद् विनष्टविषयवासनासम्पर्कात् प्राणवृत्तिक्षयात् प्राकृतवैकृतरूपप्राणव्यापारनाशात् शिवैकीभूतसर्वात्मा शिवलिङ्गैकरसीभूतसर्वेन्द्रियव्यापारवान् सन् स्थाणुवत् काष्ठवद् निश्चलत्वेन भातीत्यर्थः।।३३।।

इति प्राणानुग्रहस्थलम्

तो चलनवलन का करीत नाही, ते सांगतात—प्राण आणि मनोवृत्तींना शिवामध्ये विलीन केलेल्या शिवयोग्याच्या सर्व वासना नष्ट झालेल्या असतात, आणि स्वाभाविक श्वासोच्छ्वासरूपी प्राकृत आणि विकारवश होऊन अस्वाभाविकपणे होणाऱ्या विकृत श्वासोच्छ्वासांचा प्राणवायुव्यापार स्थगित झालेला असतो. म्हणून तो शिवलिंगात एकरूप होऊन स्थाणुवत् (स्तंभाप्रमाणे) अचल होतो.।।३३।।

अथ कायार्पितस्थलम्

अथ—"यदा शिवाय स्वात्मानं दत्तवान् देशिकात्मने । तदा शैवो भवेद् देवि न ततोऽस्ति पुनर्भवः।।" इति योगजागमवचनानुसारेण

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्राणानुग्रहसम्पन्नस्य योग्यं कायार्पितस्थलं निरूपयति—

शिवस्य पररूपस्य सर्वानुग्राहिणोऽर्चने।
त्यागो देहाभिमानस्य कायार्पितमुदाहृतम्।।३४।।

सर्वानुग्राहिणः सर्वानुग्राहकस्य पररूपस्य परब्रह्मकायस्य प्राणानुग्रहसम्पन्नस्य परयोगिनः शिवस्यार्चने शिवलिङ्गपूजाविषये देहाभिमानस्य त्यागः कायार्पितमित्युदाहृतमित्यर्थः।।३४।।

'गुरुरूप अशा शिवाला आपला आत्मा अर्पण केल्याने तो शिवस्वरूपच होतो, त्याला पुनर्जन्म नसतो' या योगज आगमाच्या वचनानुसार प्राणानुग्रहसंपन्न योग्याला योग्य अशा कायार्पित स्थलाचे वर्णन करतात—सर्वांवर अनुग्रह करणाऱ्या शिवयोग्याने परशिवाच्या पूजेच्या वेळी देहाभिमानाचा त्याग करून देहच शिवाला अर्पण करणे याला कायार्पित असे म्हणतात.।।३४।।

अथ किमनेन भवतीत्यत्राह—

यदा योगी निजं देहं शिवाय विनिवेदयेत्।
तदा भवति तद्रूपं शिवरूपं न संशयः।।३५।।

तद्रूपं योगिनः स्वरूपं शिवरूपं भवतीत्यर्थः। शिष्टं स्पष्टम्।।३५।।

अशा देहार्पणाने काय होते? तर—आपला देह शिवाला अर्पण केल्याने शिवयोगी शिवस्वरूपच होतो, यात कसलाही संशय नाही.।।३५।।

ननु देहमात्रं समर्पणीयं वा यद्यन्यत्किञ्चिदस्ति वेत्यत्राह—

इन्द्रियप्रीतिहेतूनि विषयासङ्गजानि च।
सुखानि सुखचिद्रूपे शिवयोगी निवेदयेत्।।३६।।

इन्द्रियप्रीतिकारणीभूतविषयसम्बन्धोत्पन्नसुखं चिदानन्दरूपे शिवे निवेदयेदित्यर्थः।।३६।।

केवळ देहच अर्पण करावा की आणखी काही अर्पण करावे? असे विचारल्यास उत्तर असे की, इंद्रियांना प्रिय होणाऱ्या विषयसंबंधाने उत्पन्न होणारी सर्व सुखे चिदानंदमय अशा शिवाला अर्पण करावीत.।।३६।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अथ तत्कथमित्यत्राह—

दर्शनात् स्पर्शनाद् भुक्तेः श्रवणाद् घ्राणनादपि।
विषयेभ्यो यदुत्पन्नं शिवे तत्सुखमर्पयेत्।।३७।।

विषयेभ्य एतद्व्यतिरिक्तवस्त्राभरणादिविषयेभ्य इत्यर्थः। शिष्टं स्पष्टम् ।।३७।।

ती कशी? तर—पाहाणे, स्पर्श करणे, उपभोग घेणे, श्रवण करणे, वास घेणे इत्यादी विषयोपभोगांमुळे उत्पन्न होणारी सर्व सुखे शिवयोग्याने शिवास अर्पण करावीत.।।३७।।

अथ देहद्वारेण यद्यत्सुखं प्राप्तं तत्सर्वं शिवलिङ्गाय समर्पणीयमिति वदन् कायार्पितस्थलं समापयति—

देहद्वारेण यद्यत् स्यात् सुखं प्रासङ्गमात्मनः।
तत्तन्निवेदयन् शम्भोर्योगी भवति निर्मलः।।३८।।

देहद्वारेण देहसम्बद्धदशेन्द्रियद्वारेण यद्यत्सुखं स्वस्य प्रासङ्गं प्रसक्तं स्यात्, तत्तत्सुखं शम्भोः शिवलिङ्गस्य निवेदयन् समर्पयन् सन् योगी शिवयोगी निर्मलो निर्लेपः सन् चरति सञ्चरतीत्यर्थः। कायिकसुख-समर्पणमेव कायार्पणमिति भावः।।३८।।

इति कायार्पितस्थलम्

देहापासून उत्पन्न होणारी सर्वसुखे शिवलिंगास अर्पण करावीत, असे सांगून कायार्पित स्थलाचा समारोप करतात—देहातर्गत दशेंद्रियांद्वारा उत्पन्न होणारी सर्व सुखे शिवलिगास अर्पण करून शिवयोगी निर्लिप्त होऊन राहातो. अशा रीतीने कायिक सुखाना शिवास अर्पण करणे हेच कायार्पण होय.।।३८।।

अथ करणार्पितस्थलम्

अथ—"यस्तु विज्ञानवान् भवति युक्तेन मनसा सदा। तस्येन्द्रियाणि वश्यानि सदश्वा इव सारथेः।।" इति कठवल्लीश्रुत्यनुसारेण कायार्पित-सम्पन्नस्य करणार्पितस्थलं निरूपयति—

आसङ्गनं समस्तानां करणानां परात्परे।
शिवे यत् तदिदं प्रोक्तं करणार्पितमागमे।।३९।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

परात्परे विश्वस्मादुत्कृष्टपरशक्त्यपेक्षयोत्कृष्टे शिवे शिवलिङ्गे समस्तानाम् अन्तर्बाह्यवर्तिनां करणानां यदासञ्जनं संयोजनकर्तृत्वमस्ति, तदिदं करणार्पितमित्यागमे वीरशैवसिद्धान्ते प्रोक्तं कथितमित्यर्थः।।३९।।

'चांगले अश्व जसे सारथ्याच्या अधीन असतात त्याप्रमाणे परमात्म्याच्या ठिकाणी लीन झालेल्या योग्याची इंद्रिये त्याच्या अधीन असतात' या कठोपनिषदाच्या वचनानुसार पूर्वोक्त कायार्पित शिवयोग्याच्या करणार्पित स्थलाचे आता निरूपण करतात— जगाच्या उत्पत्तीला कारणीभूत असलेल्या शक्तितत्त्वाहून श्रेष्ठ असलेल्या त्या परात्पर शिवलिंगाशी आपले अंतःकरण आणि बाह्य करणांचा संयोग करण्याला वीरशैव सिद्धांतात करणार्पित असे म्हणतात. तात्पर्य असे की अंतर्बाह्य इंद्रियांना परमेश्वराला अर्पण करणे हेच करणार्पण होय.।।३९।।

अथ करणार्पकं कथयति—

यद्यत्करणमालम्ब्य भुङ्क्ते विषयजं सुखम्।
तत्तच्छिवे समर्प्यैष करणार्पक उच्यते।।४०।।

यत्करणमालम्ब्य विषयजं सुखं यद् भुङ्क्ते तत्करणसम्बद्धं तद्विषयसुखं शिवलिङ्गे समर्प्य एष कायार्पितसम्पन्नः करणार्पक इत्युच्यत इत्यर्थः।।४०।।

आता करणार्पण कसे होते ते सांगतात—इंद्रियांच्या द्वारे जे जे विषयसुख उत्पन्न होते ते ते सर्व परमात्म्याला अर्पण करून त्या सुखाचा उपभोग घेणाऱ्याला करणार्पक म्हणतात.।।४०।।

अथ तत्प्रकारं पञ्चभिः सूत्रैः प्रतिपादयति—

अहङ्कारमदोद्रिक्तमन्तःकरणवारणम्।
बध्नीयाद् यः शिवालाने स धीरः सर्वसिद्धिमान्।।४१।।

अहङ्कारममकाररूपोर्ध्वाधोमदमत्तमनोबुद्धिचित्तलक्षणान्तःकरणगजं यः शिवालाने शिवलिङ्गरूपबन्धनस्तम्भे बध्नीयात्, सः सर्वसिद्धिमान् धीरः।।४१।।

आता करणार्पणाचे प्रकार पाच श्लोकांतून वर्णन करतात— अहंकाररूपी मदाने उन्मत्त झालेल्या अंतःकरणरूपी हत्तीला शिवरूपी खांबाला जो बांधून टाकतो तो सर्वसिद्धी प्राप्त केलेला असा धैर्यवान होय.।।४१।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

नन्विन्द्रियाणां बाहुल्यान्मनोमात्रबन्धनेन कथं धीरत्वमित्यत्राह—

इन्द्रियाणां समस्तानां मनः प्रथममुच्यते।
वशीकृते शिवे तस्मिन् किमन्यैस्तद्वशानुगैः।।४२।।

प्रथमं कारणमित्यर्थः, "इन्द्रियाणां मनो नाथः" इति श्रुतेः। शिष्टं स्पष्टम्।।४२।।

अनेक इंद्रिये असताना केवळ मनालाच बांधून टाकणारा धैर्यवान कसा? तर—सर्व इंद्रियांमध्ये मन हेच प्रमुख असते. असे मन वश करून ते शिवामध्ये लीन केल्यानंतर त्याचे अनुसरण करणाऱ्या अन्य इंद्रियांना अधीन ठेवण्याचा प्रयत्न कशाला? ती इंद्रिये आपोआप अधीन राहातात हे तात्पर्य.।।४२।।

नन्वेतावता किमित्यत्राह—

इन्द्रियाणां वशीकारो निवृत्तिरिति गीयते।
लक्षीकृते शिवे तेषां कुतः संसारगाहनम्।।४३।।

इन्द्रियवशीकरणमेव निवृत्तिरिति विद्वद्भिर्गीयते। तेषामिन्द्रियाणां शिवलिङ्गे लक्षीकृते सति संसारनिमज्जनं कुतः, नास्तीत्यर्थः।।४३।।

इंद्रियांच्या वशीकरणाने काय होते? इंद्रियांना वश करून त्यांना ताब्यात ठेवण्याला निवृत्ती असे म्हणतात. इंद्रियांना शिवामध्ये केंद्रित केल्यावर संसार-सागरात बुडण्याची भीती कशाला? तात्पर्य हे की, इंद्रियांना शिवार्पित केल्यावर मनुष्याला संसाराचे भय उरत नाही.।।४३।।

नन्विन्द्रियवशीकारमात्रेण कथं संसारनिवृत्तिरित्यत्राह—

संसारविषकान्तारसमुच्छेदकुठारिका।
उपशान्तिर्भवेत् पुंसामिन्द्रियाणां वशीकृतौ।।४४।।

उपशान्तिर्निरपेक्षेत्यर्थः। शिष्टं स्पष्टम्।।४४।।

इंद्रिये वशीभूत ठेवल्यानेच संसारापासून निवृत्ती कशी होते? तर—इंद्रियांना वश करून अधीन ठेवल्याने मनुष्याच्या मनाला शांती लाभते. संसाररूपी विषवृक्षाला तोडून टाकणारी कुऱ्हाड म्हणजे मनःशांती होय. अर्थात् विषयसुखनिरपेक्षता हीच संसारसुखाला मूळ कारण असते.।।४४।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ननु निरपेक्षामात्रेण कथं कर्मबन्धनिवृत्तिरित्यत्राह—

इन्द्रियैरेव जायन्ते पापानि सुकृतानि च।
तेषां समर्पणादीशे कुतः कर्मनिबन्धनम्।।४५।।

स्पष्टम्।।४५।।

निरपेक्ष भावनेनेच कर्मबंधनापासून मुक्ती कशी मिळते? असे म्हटल्यास इंद्रियापासूनच पुण्य आणि पापाची उत्पत्ती होते. ती इंद्रियेच जर शिवाला अर्पण केली तर त्याद्वारे केलेल्या कर्मांचे बंधन मनुष्याला कसे असणार?।।४५।।

ननु शिवार्पितपदार्थैरभिवृद्धिश्रवणात् शिवे पुण्यपापसमर्पणेन तदभिवृद्धिः कस्मान्न भवतीत्यत्राह—

प्रकाशमाने चिद्वह्नौ बहिरन्तर्जगन्मये।
समर्प्य विषयान् सर्वान् मुक्तवज्जायते जनः।।४६।।

वह्निप्रक्षिप्तपदार्थानां नाशदर्शनाद् बहिरन्तर्भासमाने विश्वरूपे चिदग्नि-रूपशिवलिङ्गे समर्पितानां पदार्थानामपि नाशोऽवश्यमङ्गीकरणीय इत्य-भिवृद्ध्यभावात् समस्तविषयान् तत्र समर्प्य जनो जननमरणपरिपीडितो देही मुक्तवज्जायत इत्यर्थः।।४६।।

शिवाला अर्पण केलेल्या पदार्थांची वाढ होते असे म्हणतात, तर मग त्याला अर्पण केलेल्या पापपुण्याची वाढ का होत नाही? उत्तर असे की, अग्नीत टाकलेले पदार्थ जसे भस्म होऊन जातात तसे जगाच्या आत व बाहेर चिदग्नीरूप प्रकाशमान असणाऱ्या शिवलिंगाला अर्पण केलेले पदार्थही नाश पावतात. त्यामुळे परमात्म्याला अर्पण केलेले विषय असोत की पुण्यपाप असो ते वाढत नाहीत, उलट ते नाश पावल्यामुळे अर्पण करणाराही जन्ममरणापासून मुक्त होतो.।।४६।।

ननु वह्निसमर्पणस्य होमरूपत्वात् किं तत्साधनमित्यत्राह—

चित्तद्रव्यं समादाय जगज्जातं महाहविः।
चिद्वह्नौ जुह्वतामन्तः कुतः संसारविप्लवः।।४७।।

जगतः पञ्चतन्मात्ररूपत्वेन शब्दादिविषयरूपं हविश्चित्तद्रव्यं संगृह्य अन्तः हृदयकमलस्थचिद्वह्नौ जुह्वतां शिवयोगिनां संसारबाधः कुतः? नास्तीत्यर्थः।।४७।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अग्नीला समर्पण करण्याला होम म्हणतात, तर येथे हवनसामग्री कोणती? उत्तर असे की, हे जग शब्दादी विषयरूप असते. प्रत्येक व्यक्तीच्या मनात त्याविषयी अभिलाषा उत्पन्न होत असते. मनात उत्पन्न झालेल्या विषयाभिलाषारूप हविपदार्थांना आपल्या हृदयकमलात प्रकाशमान असणाऱ्या चिदग्नीरूपी शिवलिंगात जो होमार्पित करतो त्याला संसाराचे बंधन कसे असणार? अर्थात् असणार नाही.।।४७।।

नन्वेवंरूपविश्वहवनेन मुक्तवज्जायमानो जनः कीदृग्रूप इत्यत्राह—

आत्मज्योतिषि चिद्रूपे प्राणवायुनिबोधिते।
जुह्वन् समस्तविषयान् तन्मयो भवति ध्रुवम्।।४८।।

प्राणवायुप्रकाशिते चिद्रूपे आत्मज्योतिषि शिवाग्नौ तत्तत्करणजन्यसुखादिविषयान् जुह्वन् अर्पयन् शिवयोगी तन्मयश्चिन्मयशिवस्वरूप एव भवति जायते ध्रुवं निश्चयः।।४८।।

असे विषयांचे हवन करणारे मुक्त झालेले लोक कसे असतात? तर—प्राणवायूने प्रज्वलित झालेल्या आत्मज्योतिरूप शिवाग्नीत त्या इंद्रियजन्य अशा सुखाचे समर्पण करणारा तो शिवयोगी निश्चितपणे चिन्मय शिवस्वरूपच होतो.।।४८।।

ननु करणानां प्राकृतत्वेन कथं तज्जन्यसुखादि शिवसमर्पणयोग्यमित्यत्राह—

इन्द्रियाणि समस्तानि शरीरं भोगसाधनम् ।
शिवपूजाङ्गभावेन भावयन् मुक्तिमाप्नुयात्।।४९।।

शरीरादीनां शिवपूजाङ्गत्वात् तज्जन्यसुखाद्यपि शिवसमर्पणयोग्यमेवेत्यर्थः। इदं करणार्पणं कायार्पणस्थले प्रसङ्गादुक्तमिति न पौनरुक्त्यम्।।४९।।

इति करणार्पितस्थलम्

प्राकृत अशी इंद्रियजन्य सुखे परमात्म्याला अर्पण करण्यास कशी योग्य होतात? असे म्हटल्यास— भोगसाधन असे शरीर आणि सर्व इंद्रिये शिवपूजेची अंगे असल्यामुळे ती शिवाला अर्पण करण्यास योग्य आहेत. करणे ही कायेची अंगे असल्यामुळे कायार्पण प्रसंगात करणार्पण सुद्धा सांगितलेले आहे.।।४९।।

अथ भावार्पितस्थलम्

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अथ भावार्पितस्थलम्

अथ—"तस्मात् प्रपञ्चसम्बन्धभावं हित्वा शिवात्मकम्। भावमाश्रित्य यत्नेन कुर्याद् व्यापृतिमीश्वरे।।" इति योगजागमवचनानुसारेण करणार्पित-सम्पन्नस्य शिवयोगिनो विधीयमानं भावार्पणं निरूपयति—

शिवे निश्चलभावेन भावानां यत्समर्पणम्।
भावार्पितमिदं प्रोक्तं शिवसद्भाववेदिभिः।।५०।।

शिवे शिवलिङ्गविषये निश्चलभावेन स्थिरभावेन भावानां यत्समर्पणम्, तदिदं भावार्पितमिति शिवसद्भाववेदिभिः प्रोक्तमित्यर्थः।।५०।।

'प्रपंचाचा संबंध सोडून प्रयत्नपूर्वक शिवभावाचा आश्रय घेऊन सोऽहं भावनेने व्यवहार करावा' अशा योगजागमाच्या वचनानुसार करणार्पक योग्याच्या भावार्पणस्थलाचे वर्णन करतात—शिवामध्ये निश्चल भावना ठेवून त्याला सर्व भावना अर्पण करण्याला भावार्पित म्हणावे असे शिवसद्भाव जाणणारे सांगतात.।।५०।।

अथ को नाम भाव इत्यत्राह—

चित्तस्थसकलार्थानां मननं यत्तु मानसे।
तदर्पणं शिवे साक्षान्मानसो भाव उच्यते।।५१।।

मानसो मनोविकारो भावो भाव इत्युच्यते, "विकारो मानसो भावः" इत्यमरः। मानसे मनोविकारे भावे चित्तस्थसकलार्थानां चित्तनिष्ठसकल-पदार्थानां यन्मननम् अनुभवरूपचिन्तनं यदस्ति, तत् साक्षात् प्रत्यक्षीभूते शिवे शिवलिङ्गे, अर्पणं अर्पितमित्युच्यत इत्यर्थः।।५१।।

भाव म्हणजे काय? तर—मनामध्ये सर्व पदार्थांचे अनुभवरूपाने जे चिंतन चालते त्याला भाव असे म्हणतात. मनामध्ये उत्पन्न होणारे सर्व भाव शिवास अर्पण करणे म्हणजे भावार्पण होय.।।५१।।

अथ तद्भावस्वरूपं पञ्चभिः सूत्रैर्विशेषयति—

भाव एव हि जन्तूनां कारणं बन्धमोक्षयोः।
भावशुद्धौ भवेन्मुक्तिर्विपरीते तु संसृतिः।।५२।।

स्पष्टम्।।५२।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

आता त्या भावाचे स्वरूप पाच श्लोकांत व्यक्त करतात– जीवाच्या भावनाच त्याच्या बंध आणि मोक्षाला कारण असतात. म्हणून शुद्ध भावनेपासून मुक्ती आणि अशुद्ध भावनेमुळे संसाराचा व्याप प्राप्त होतो.।।५२।।

अथ का नाम भावशुद्धिरित्यत्राह–

भावस्य शुद्धिराख्याता शिवोऽहमिति योजना।
विपरीतसमायोगे कुतो दुःखनिवर्तनम्।।५३।।

शिवोऽहमिति स्वस्वरूपानुभवयोग एव भावस्य शुद्धिरिति विद्वद्भिराख्याता। विपरीतसमायोगे सति नाहं शिव इति विपरीतयोगे सति दुःखनिवर्तनं सांसारिकदुःखनिवृत्तिः कुतः? नास्तीत्यर्थः।।५३।।

ती भावशुद्धी म्हणजे काय? तर-शिवोऽहं म्हणजे मी शिव आहे असे स्वस्वरूपाचे चिंतन करणे म्हणजे भावशुद्धी होय. अशा शुद्ध भावनेने मनुष्यास मुक्ती प्राप्त होते. या उलट मी शिव नाही अशा विपरीत भावनेने सांसारिक दुःखाची निवृत्ती कशी होणार? अर्थात् होणार नाही:।।५३।।

नन्विदमिति भासमानं विश्वं कथं भावनीयमित्यत्र–"भोक्ता भोज्यं प्रेरितारं च मत्वा सर्वं प्रोक्तं त्रिविधं ब्रह्म चैतत्" इति श्वेताश्वतरश्रुत्यनुसारेण कथयति–

भोक्ता भोग्यं भोजयिता सर्वमेतच्चराचरम्।
भावयन् शिवरूपेण शिवो भवति वस्तुतः।।५४।।

भोक्ता जीवो भोग्यं भोगयोग्यं वस्तु अव्यक्तं भोजयिता भोगदः शिवः। चराचरमेतत्सर्वं जगज्जालं स्वनिजस्वभावभूतचित्क्रियाशक्तिकार्यत्वात् शिवस्वरूपेण भावयन् शिवयोगी वस्तुतः परमार्थतः शिवो भवति, शिव एव भवतीत्यर्थः। अत्र वस्तुत इत्यनेनास्य मुख्यपक्षत्वं सूचितम्।।५४।।

दिसणाऱ्या प्रपंचाकडे कोणत्या भावनेने पाहावे? असा प्रश्न उपस्थित झाल्यास 'भोक्ता, भोग्य आणि प्रेरयिता अशा तीन स्वरूपात दिसणारा प्रपंच साक्षात् ब्रह्मस्वरूपच आहे,' अशा श्वेताश्वतर श्रुतीच्या वचनानुसार निरूपण करतात-भोक्ता (जीव), भोग्य, (वस्तु) व भोजयिता (ईश्वर) आणि चराचर विश्व हे सर्व

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

शिवस्वरूपच होय अशी भावना करणारा शिवयोगी वास्तविक तो स्वतः शिवस्वरूपच होतो.।।५४।।

अथ पक्षान्तरेण भावनां कथयति—

मिथ्येति भावयन् विश्वं विश्वातीतं शिवं स्मरन्।
सत्तानन्दचिदाकारं कथं बद्धुमिहार्हति।।५५।।

विश्वं स्वातिरिक्ताध्यासलक्षणाविद्याकार्यत्वाद् मिथ्येति भावयन् विश्वातीतं विश्वोत्तीर्णं शिवं सत्तानन्दचिदाकारं नित्यपरिपूर्णसच्चिदानन्द-स्वरूपं स्मरन् मलमायादिपाशैर्बद्धुं कथमिहार्हति? न केनापि प्रकारेणार्हतीत्यर्थः।।५५।।

आता भावनेचे दुसरे रूप सागतात—अविद्येचे कार्य असणारे नामरूपात्मक विश्व हे मिथ्या आहे, अशी भावना करून विश्वातीत असणाऱ्या सच्चिदानद-स्वरूप शिवाचे स्मरण करणाऱ्या शिवयोग्याला मलमायादिपाश कसे बांधू शकतील? अर्थात् बांधू शकणार नाहीत. येथे हे लक्षात घेतले पाहिजे की सर्व विश्व शिवस्वरूप आहे असे मानणे हा मुख्य पक्ष असून नामरूपात्मक दिसणारे विश्व हे मिथ्या आहे, त्याच्या अतीत असणारे शिवतत्त्व हेच सत्य आहे, हा दुसरा पक्ष गौण होय. पहिला पक्ष हा तत्त्वचिंतकाचा असून दुसरा गौण पक्ष सामान्यजनाचा आहे, वीरशैव सिद्धान्तात या दोन्ही पक्षाचा विचार माडला असला तरी शेवटी मुख्य पक्ष म्हणजे सर्व विश्व शिवस्वरूप आहे, हे प्रतिपादन करणे हाच वीरशैवांचा मुख्य सिद्धात होय.।।५५।।

अथ भावनान्तरमाह—

सर्वं कर्मार्चनं शम्भोर्वचनं तस्य कीर्तनम्।
इति भावयतो नित्यं कथं स्यात् कर्मबन्धनम्।।५६।।

क्रियमाणं सर्वं कर्म शम्भोः शिवलिङ्गस्यार्चनम्, कथ्यमानं सर्वं वचनं तस्य शिवलिङ्गस्य कीर्तनं स्तुतिः, इति नित्यं भावयतः कर्मकृतबन्धनं कथं स्यात्? न केनापि प्रकारेण भवेदित्यर्थः।।५६।।

भावाचे आणखी एक रूप सांगतात—मी करीत असलेल्या सर्व क्रिया म्हणजे शिवाची पूजा आणि माझे बोलणे म्हणजे शिवाची

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

स्तुती होय, अशी सदासर्वदा भावना असणाऱ्या शिवयोग्यास त्याची कर्मे बंधनकारक ।कशी होतील? अर्थात् तो करीत असलेला सर्व व्यवहार हा शिवपूजारूप होत असल्यामुळे त्याला कर्माचे बंधन होत नाही.।।५६।।

अथ जीवन्मुक्तिकरीं भावनां कथयन् भावार्पितस्थलं समापयति—

सर्वेन्द्रियगतं सौख्यं दुःखं वा कर्मसम्भवम्।
शिवार्थं भावयन् योगी जीवन्मुक्तो भविष्यति।।५७।।

श्रोत्रादिसर्वेन्द्रियगतं सौख्यं सुखं पापकर्मसम्भवं दुःखं वा शिवार्थं शिवलिङ्गार्पितपदार्थत्वेन भावयन् शिवयोगी जीवन्मुक्तः स्यादित्यर्थः ।।५७।।

इति भावार्पितस्थलम्

आता भावनाच जीवनमुक्तीला कारण होते असे सांगून भावार्पित स्थलाचा समारोप करतात—श्रोत्रादी सर्व इंद्रियाद्वारे निर्माण होणारे सुख असो किंवा पापकर्मामुळे निर्माण होणारे दुःख असो ते सर्व शिवलिंगार्पित होय, अशी भावना असणारा शिवयोगी जीवन्मुक्त होतो.।।५७।।

अथ शिष्यस्थलम्

"यथा सिद्धरसस्पर्शात् ताम्रं भवति काञ्चनम्। गुरूपदिष्टश्रवणाच्छिष्यस्तत्त्वमयस्तथा।।" इति योगजागमवचनानुसारेण तद्भावार्पितसम्पन्नेन परयोगिना शिक्षणीयशिष्यस्थलं कथयति—

शासनीयो भवेद्यस्तु परकायेन सर्वदा।
तत्प्रसादात्तु मोक्षार्थी स शिष्य इति कीर्तितः।।५८।।

परकायेन परब्रह्मकायेन भावार्पितसम्पन्नेन शिवयोगिना यः सर्वदा शासनीयः शिक्षणीयो भवेत्, तत्प्रसादात् तद्भावार्पितसम्पन्नस्य प्रसादात्, मोक्षार्थी परापरमोक्षापेक्षी सः शिष्य इति कीर्तितः कथित इत्यर्थः।।५८।।

'सिद्धरसाच्या स्पर्शाने जसे तांब्याचे सोने होते, त्याच प्रमाणे गुरूचा उपदेश ऐकल्याने शिष्य सच्चिदानंदतत्त्वस्वरूप होतो' या योगजागमाच्या वचनानुसार परयोग्याकडून उपदेश घेण्यायोग्य अशा शिष्यस्थलाचे निरूपण करतात—भावार्पित संपन्न अशा त्या परयोग्याकडून जो नेहमी शिक्षण प्राप्त करतो आणि त्या गुरूच्या

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अनुग्रहाने मोक्षप्राप्तीची अपेक्षा बाळगतो त्यालाच शिष्य असे म्हणावे.।।५८।।

अथ प्रकारान्तरेण तल्लक्षणमाह—

भावो यस्य स्थिरो नित्यं मनोवाक्कायकर्मभिः।
गुरौ निजे गुणोदारे स शिष्य इति गीयते।।५९।।

यस्य भावो गुणोदारे ज्ञानवैराग्यादिगुणोन्नते निजे गुरौ श्रीगुरौ मनोवाक्कायकर्मभिर्ध्यानस्तोत्रपूजारूपकर्मभिर्नित्यं स्थिरो दृढो भवेत्, स शिष्य इति गीयते कथ्यत इत्यर्थः।।५९।।

आता दुसऱ्या रीतीने शिष्याचे लक्षण सांगतात—ज्ञानवैराग्यादी गुणांनी सर्वोत्कृष्ट अशा आपल्या गुरूच्या ठिकाणी ज्याचे मन, गुरूचे ध्यान, स्तोत्र व पूजारूप कर्मांनी स्थिर झालेले असते त्यालाच शिष्य म्हणावे.।।५९।।

अथ मुख्यशिष्यलक्षणमाह—

शान्तो दान्तस्तपश्शीलः सत्यवाक् समदर्शनः।
गुरौ शिवे समानस्थः स शिष्याणामिहोत्तमः।।६०।।

यः शान्तः अन्तरिन्द्रियनिग्रहवान्, दान्तो बाह्येन्द्रियनिग्रहवान्, तपश्शीलो यमनियमाद्यष्टाङ्गलक्षणतपोयोगनिष्ठः सन्, सत्यवाग् यथार्थवादी सन्, समदर्शनो लोष्टसुवर्णादिषु समानबुद्धिमान् सन्, श्रीगुरौ शिवलिङ्गे च समदर्शनवान् सन् वर्तते, स इह लोके शिष्याणामुत्तमः श्रेष्ठ इत्यर्थः।।६०।।

आता उत्तम शिष्याचे लक्षण सांगतात —जो शांत (मनोनिग्रही), दांत (बाह्येंद्रियांचा निग्रही), तपःशील (यमनियमादि-अष्टांगलक्षणतपोयोगनिष्ठ), सत्यवचनी, सोने आणि माती या दोहोंविषयी समानदृष्टी असणारा, तसेच श्रीगुरू आणि शिव यांच्याविषयी अभेदभाव बाळगणाराच या प्रपंचात सर्वोत्तम शिष्य होय.।।६०।।

अथ शिष्याचारं सूत्रद्वयेन कथयति—

गुरुमेव शिवं पश्येच्छिवमेव गुरुं तथा।
नैतयोरन्तरं किञ्चिद्विजानीयाद्विचक्षणः।।६१।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

विचक्षणः शिष्य इत्यर्थः।।६१।।

आता शिष्याचा आचार दोन श्लोकांत सांगतात—गुरू म्हणजे शिव व शिव म्हणजे गुरू अशाप्रकारे त्या दोघांत थोडाही भेद जो मानीत नाही तोच बुद्धिमान शिष्य होय.।।६१।।

शिवाचारे शिवध्याने शिवज्ञाने च निर्मले।
गुरोरादेशमात्रेण परां निष्ठामवाप्नुयात्।।६२।।

निष्ठां विश्वासं प्राप्नुयादित्यर्थः। शिष्टं स्पष्टम्।।६२।।

शिवाचार, शिवध्यान आणि निर्मल असे शिवज्ञान या विषयी शिष्याने गुरूच्या आज्ञेप्रमाणे विश्वास ठेवावा.।।६२।।

अथ श्रीगुरुकृपाकटाक्षमहत्त्वं सूत्रद्वयेन कथयति—

ब्रह्माण्डबुद्बुदोद्भूतं मायासिन्धुं महत्तरम्।
गुरोः कवलयत्याशु कटाक्षवडवानलः।।६३।।

ब्रह्माण्डरूपबुद्बुदानाम् उद्भूतमुद्भवनं यस्मिन् स ब्रह्माण्डबुद्बुदोद्भूत इत्यर्थः। तादृशं महत्तरं मायासिन्धुं गुरोः कटाक्षवडवानलो झटिति कवलयति ग्रसतीत्यर्थः। नेत्रस्य तैजसत्वाद् वडवानलत्वेन वर्णनम् ।।६३।।

आता दोन श्लोकांतून गुरुकृपाकटाक्षाचे महत्त्व सांगतात—ब्रह्मांडरूप बुडबुड्याच्या उत्पत्तीला कारण असा मायारूप महासमुद्र गुरुकृपाकटाक्षरूप वडवाग्नीने क्षणात नाहीसा होतो.।।६३।।

गुरोः कटाक्षवेधेन शिवो भवति मानवः।
रसवेधाद् यथा लोहो हेमतां प्रतिपद्यते।।६४।।

मानवः शिष्यजन इत्यर्थः। सम्यगावेशो वेध इत्यर्थः। शिष्टं स्पष्टम्।।६४।।

परिस-स्पर्शाने लोखंडाला जसे सोन्याचे रूप प्राप्त होते तसे गुरुकृपाकटाक्षाच्या वेधाने मानव साक्षात् शिव होतो.।।६४।।

अथैवं गुरुमहत्त्वज्ञानी गुरोराज्ञां न लङ्घयेदित्याह—

न लङ्घयेद् गुरोराज्ञां ज्ञानमेव प्रकाशयन्।
शिवासक्तेन मनसा सर्वसिद्धिमवाप्नुयात्।।६५।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

शिवासक्तेन शिवध्याननिष्ठेन मनसा ज्ञानं शिवाद्वैतज्ञानमित्यर्थः। शिष्टं स्पष्टम्।।६५।।

गुरूचे महत्त्व जाणणाऱ्याने गुर्वाज्ञेचे उल्लंघन करू नये असे सांगतात—शिष्याने आपल्या गुरूची आज्ञा कधीही मोडू नये. अशा आज्ञाधारक शिष्याने शिवाच्या ठिकाणी दृढ भक्ती ठेवल्याने शिवज्ञान प्रकाशित होऊन त्याला सर्व सिद्धी प्राप्त होतात.।।६५।।

अथ गुरूपदेशरहस्यं सूचयति—

शिवादन्यज्जगन्मिथ्या शिवः संवित्स्वरूपकः।
शिवस्त्वमिति निर्दिष्टो गुरुणा मुक्त एव सः।।६६।।

जगत् शिवादन्यदिति मिथ्या, शिवस्वरूपमेवेत्यर्थः। तत्कथमित्यत्राह—शिवः संवित्स्वरूपक इति। विश्वस्य चिदन्तर्गतत्वात्तरङ्गादिवच्चिन्मयत्वम्, अन्यथा चिद्बाह्यत्वेनास्तीत्यत्र मानाभावादसदेव स्यादिति भावः। शिवस्त्वमिति चिद्रूपत्वादिति भावः, "ऐतदात्म्यमिदं सर्वं तत्सत्यं स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो" इति छान्दोग्यश्रुतेः। इति यः शिष्यः श्रीगुरुणोपदिष्टः, स मुक्त एव जीवन्मुक्त एवेत्यर्थः।।६६।।

आता गुरूपदेशाचे रहस्य विशद करतात—हे जग शिवापेक्षा भिन्न आहे असे समजणे खोटे आहे. अर्थात् जग शिवस्वरूपच आहे. शिव हा ज्ञानरूप असल्यामुळे सागरतरंगन्यायाने जगही ज्ञानांतर्गतच आहे. चिद्रूप असल्यामुळे तू सुद्धा शिवस्वरूपच आहेस. अशा रीतीने ज्या शिष्याला गुरूकडून उपदेश प्राप्त होतो तो जीवन्मुक्त होतो.।।६६।।

अथ शिष्यस्थलं समापयति—

गुरोर्लब्ध्वा महाज्ञानं संसारामयभेषजम्।
मोदते यः सुखी शान्तः स जीवन्मुक्त एव हि।।६७।।

यः शिष्यो गुरोः श्रीगुरोः संसारामयभेषजं भवरोगस्यौषधं महाज्ञानं लब्ध्वा सुखी शिवसुखी सन् मोदते सुखमनुभवन्नास्ते, स शान्तो रागद्वेषरहितो जीवन्मुक्त एवेति हि प्रसिद्ध इत्यर्थः।।६७।।

इति शिष्यस्थलम्

आता शिष्यस्थलाचा समारोप करतात—जो शिष्य श्रीगुरूकडून संसाररूपी महारोगाचे औषधच अशा महाज्ञानाची प्राप्ती करून

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

घेऊन शिवसुखाच्या आनंदात रममाण होतो, तो रागद्वेषादिरहित होऊन जीवन्मुक्त होतो.।।६७।।

अथ शुश्रूषुस्थलम्

अथ—"तस्मादुपश्रितात् सम्यक् सहजं प्राप्य सद्गुरोः। अनायासेन सततमात्माभ्यासरतो भवेत्।।" इति योगजागमवचनानुसारेण स शिष्य एव गुरुसेवातत्परः सन् रहस्यार्थजिज्ञासुः शुश्रूषुरिति सूत्रत्रयेण कथयति—

बोध्यमानः स गुरुणा परकायेन सर्वदा।
तच्छुश्रूषारतः शिष्यः शुश्रूषुरिति कीर्त्यते।।६८।।

परब्रह्मकायेन श्रीगुरुणा सदा बोध्यमानः स शिष्यः, तच्छुश्रूषा-रतस्तस्माच्छ्रोतुमिच्छायां लम्पटः सन् शुश्रूषुरिति कीर्त्यते कथ्यत इत्यर्थः।।६८।।

'सहज रीतीने सद्गुरूचा आश्रय घेतलेल्या शिष्याने आयासाविना सदोदित आत्माभ्यासात रत झाले पाहिजे', या योगजागमाच्या वचनानुसार गुरुसेवातत्पर होऊन रहस्य जाणून घेण्यासाठी जिज्ञासू व श्रवणाभिलाषी असणाऱ्या शिष्यासंबधी तीन श्लोकांत सांगतात—परब्रह्मशरीरी अशा सद्गुरूकडून नेहमी उपदेश घेणाऱ्या शिष्याला गुरूचा उपदेश ऐकण्यात आसक्ती असल्यामुळे त्याला शुश्रूषू असे म्हणतात.।।६८।।

अथ तत्प्रश्नप्रकारं प्रदर्शयति—

किं सत्यं किं नु वासत्यं क आत्मा कः परः शिवः।
इति श्रवणसंसक्तो गुरोः शिष्यो विशिष्यते।।६९।।

सत्यं नित्यं किम्, असत्यम् अनित्यं किम्, आत्मा जीवः कः, परः शिवः परमात्मा क इति गुरोः श्रीगुरोः सकाशात् श्रवणसंसक्त उत्तरवाक्यश्रवणतत्परः शिष्यः शुश्रूषुः शिष्यो विशिष्यते, केवलसेवा-सक्तशिष्यापेक्षया विशिष्यत इत्यर्थः।।६९।।

आता शिष्याने विचारावयाच्या प्रश्नाचे प्रकार सागतात—सत्य काय आणि असत्य काय? आत्मा कोण आणि परमात्मा कोण? अशा प्रश्नांची उत्तरे गुरूकडून समजून घेण्यास उत्सुक असणारा शिष्य केवळ सेवातत्पर अशा शिष्यापेक्षा श्रेष्ठ असतो.।।६९।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ननु कथं श्रेष्ठ इत्यत्राह—

श्रुत्वा श्रुत्वा गुरोर्वाक्यं शिवसाक्षात्क्रियावहम्।
उपशाम्यति यः स्वान्ते स मुक्तिपदमाप्नुयात् ।।७०।।

यः शुश्रूषुः शिष्यः शिवप्रत्यक्षीकरणक्रियावहं श्रुतिसम्मतोपदेशवाक्यं श्रीगुरोः श्रुत्वा श्रुत्वा, असकृदित्यर्थः, स्वान्ते चित्ते उपशाम्यति शान्तो भवति, स मुक्तिपदमाप्नुयाद् लभेतेत्यर्थः।।७०।।

तो कसा? तर—उत्कट श्रवणाभिलाषी असणारा तो शिष्य शिवाचा साक्षात्कार करून देणारी श्रुतिसमत अशी वाक्ये सद्गुरूच्या मुखातून पुनःपुन्हा ऐकून आपल्या अंतरंगात शाती प्राप्त करून घेऊन मुक्त होतो. म्हणून केवळ सेवातत्पर शिष्यापेक्षा तो श्रेष्ठ होय.।।७०।।

ननु सेवामात्रेण गुरोर्मुक्तः किं न स्याच्छिष्य इत्यत्राह—

न बुध्यति गुरोर्वाक्यं विना शिष्यस्य मानसम्।
तेजो विना सहस्रांशोः कथं स्फुरति पङ्कजम्।।७१।।

गुरूपदेशवाक्यं विना शिष्यस्य मानसं हृत्कमलं न बुध्यति न विकसति। तत्र दृष्टान्तः— सहस्रांशोः सूर्यस्य तेजो विना पङ्कजं कथं स्फुरति विकसति, न कथञ्चिदपि विकसलि, तथेत्यर्थः।।७१।।

केवळ सेवा करणारा शिष्य मुक्त का होत नाही? तर सूर्याच्या किरणस्पर्शाशिवाय ज्याप्रमाणे कमल विकसित होत नाही तशा प्रकारे गुरूचा उपदेशरूपी वाक्ये ऐकल्याशिवाय शिष्याचे हृत्कमल प्रफुल्लित होत नाही. म्हणून गुरूचा उपदेश ऐकल्याशिवाय शिष्याला ज्ञानप्राप्ती होत नाही आणि तो मुक्तही होत नाही.।।७१।।

पुनश्च दृष्टान्तान्तरमाह—

सूर्यस्योदयमात्रेण सूर्यकान्तः प्रकाशते।
गुरोरालोकमात्रेण शिष्यो बोधेन भासते।।७२।।

गुरूपदेशवाक्यान्नालोकमात्रेणेत्यर्थः। शिष्टं स्पष्टम्।।७२।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

आणखी एक दृष्टांत देतात—सूर्यकांत मण्यातील प्रकाश जसा सूर्योदयामुळे प्रकट होतो, तशा प्रकारे गुरूच्या उपदेशवाक्याच्या श्रवणाने शिष्य ज्ञानी झालेला दिसतो.।।७२।।

अथ—"तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्" इति मुण्डकश्रुतिवाक्यानुसारेण तच्छ्रवणार्थं गुरूपसर्पणप्रकारमाह—

अद्वैतपरमानन्दप्रबोधैकप्रकाशकम्।
उपायं शृणुयाच्छिष्यः सद्गुरुं प्राप्य साञ्जलिः।।७३।।

उपायनपाणिः सद्गुरुमधिगम्य साञ्जलिः मुकुलितकरयुगलः सन् अप्रतियोगिपरमानन्दप्रबोधस्य मुख्यतया प्रकाशकम् उपायम् उपदेशरहस्यरूपोपायं शिष्यः शृणुयात् प्रश्नपूर्वकं शृणुयादित्यर्थः।।७३।।

'परतत्त्वाच्या ज्ञानासाठी सर्वशास्त्रपारंगत आणि ब्रह्मनिष्ठ असलेल्या गुरूला हातात समिधा घेऊन शिष्याने शरण जावे' अशा मुण्डक श्रुतीच्या वाक्यानुसार शास्त्राचे श्रवण करण्यासाठी गुरूला शरण जाण्याची पद्धत सांगतात—समिधायुक्त हात जोडून शिष्याने सद्गुरूसमीप जावे आणि अद्वैताच्या परमानंदाचा बोध कसा होईल असा प्रश्न करून त्याचा उपाय ऐकावा.।।७३।।

अथ प्रश्नप्रकारमुपपादयति—

किं तत्त्वं परमं ज्ञेयं केन सर्वे प्रतिष्ठिताः।
कस्य साक्षात्क्रिया मुक्तिः कथयेति समासतः।।७४।।

भो श्रीगुरो ज्ञेयं परमं तत्त्वं किम्, केन वस्तुना सर्वे चराचराः प्रतिष्ठिताः, कस्य साक्षात्कारेण मुक्तिर्मोक्षो भवेत्, एतत्सर्वं समासतः संग्रहेण कथय उपदिशेत्यर्थः।।७४।।

शिष्याने गुरूला प्रश्न कसा विचारावा या विषयी सांगतात—हे गुरुवर्या, समजून घेण्यास योग्य असे श्रेष्ठ तत्त्व कोणते? हे चराचर जग कशावर स्थिरावले आहे? कोणाच्या साक्षात्काराने मनुष्यास मोक्षप्राप्ती होते? ते कृपाकरून साररूपाने मला सांगावे.।।७४।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अथ—"तस्मै स विद्वानुपसन्नाय सम्यक् प्रशान्तचित्ताय शमान्विताय। येनाक्षरं पुरुषं वेद सत्यं प्रोवाच तां तत्त्वतो ब्रह्मविद्याम्।।" इति मुण्डकश्रुत्यनुसारेण तत्प्रश्नोत्तरं पञ्चभिः सूत्रैः कथयति—

इति प्रश्ने कृते पूर्वं शिष्येण नियतात्मना।
ब्रूयात् तत्त्वं गुरुस्तस्मै येन स्यात् संसृतेर्लयः।।७५।।

नियतात्मना एकाग्रचित्तेनेत्यर्थः।. शिष्टं स्पष्टम्।।७५।।

'आपल्या जवळ आलेल्या, प्रशांत मनाच्या, क्षमादिगुणांनी युक्त अशा शिष्याला ज्ञानी गुरूने अक्षर परब्रह्माचे ज्ञान होईल अशातऱ्हेने उपदेश करावा,' अशा मुण्डकश्रुतीच्या वचनानुसार शिष्याने या पूर्वी विचारलेल्या प्रश्नांची उत्तरे पाच श्लोकातून सागतात—सयमशील अशा शिष्याने अगोदर प्रश्न केल्यावर सद्गुरूने शिष्याला ज्या योगे ससाराचा लय होतो असा तत्त्वोपदेश करावा.।।७५।।

अथ कृतप्रश्नस्य क्रमेणोत्तरं वक्ति—

शिव एव परं तत्त्वं चिदानन्दसदाकृतिः।
स यथार्थस्तदन्यस्य जगतो नास्ति नित्यता।।७६।।

सच्चिदानन्दस्वरूपः शिव एव परं तत्त्वं ज्ञातुं योग्यं परतत्त्वम्। स यथार्थः, नित्य इत्यर्थः। तदन्यस्य चिद्विजातीयत्वेन भासमानस्य जगतो विष्ण्वादिविश्वस्य नित्यत्वं शिववत् सनातनत्वं नास्तीत्यर्थः।।७६।।

शिष्याने या पूर्वी विचारलेल्या प्रश्नाची उत्तरे क्रमशः देतात-सच्चिदानंद स्वरूप असलेले शिवतत्त्व हेच जाणून घेण्यास योग्य असे परमतत्त्व होय. तेच नित्य आहे. त्या पेक्षा निराळ्या अशा विष्णवादी तत्त्वांना नित्यत्व नसते. अर्थात् शिवतत्त्वाप्रमाणे ती सनातन तत्त्वे नव्हेत.।।७६।।

अथ केन सर्वे प्रतिष्ठिता इत्यस्योत्तरमाह—

अयथार्थप्रपञ्चोऽयं प्रतितिष्ठति शङ्करे।
सदात्मनि यथा शुक्तौ रजतत्वं व्यवस्थितम्।।७७।।

अयथार्थः, अनित्य इत्यर्थः। तत्र दृष्टान्तः— सदात्मनि ज्ञानकर्मलक्षणोभयेन्द्रियज्ञानगोचरीभूतत्वाद् व्यावहारिकसद्रूपे शुक्तौ शुक्तिकाशकले

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

रजतत्वं ज्ञानेन्द्रियमात्रगोचरत्वेनोत्तरक्षणबाध्यमानप्रातीतिकरजतत्वं व्यवस्थितं यथा तिष्ठति, तथा सनातने शङ्करेऽनित्यप्रपञ्चस्तिष्ठतीत्यर्थः।।७७।।

हे चराचर जग कशावर स्थिरावले आहे? या प्रश्नाचे उत्तर असे—शिंपल्यात होणाऱ्या चांदीच्या नामरूपात्मक प्रतीतीला जसा शिंपला अधिष्ठान असतो, तशा रीतीने प्रपंचाच्या नामरूप व्यवहाराला परशिवच अधिष्ठान असतो. अर्थात् हे चराचर परशिवतत्त्वावर स्थिरावले आहे. मात्र वीरशैवसिद्धांतानुसार परशिवच जगद्रूपाने प्रतीत होत असतो.।।७७।।

अथ कस्य साक्षात्कारेण मुक्तिरित्यस्योत्तरमाह—

शिवोऽहमिति भावेन शिवे साक्षात्कृते स्थिरम्।
मुक्तो भवति संसारान्मोहग्रन्थेर्विभेदतः।।७८।।

शिवोऽहमिति भावेन दृढभावेन शिवे प्रत्यक्षीकृते सति विभेदतो विशेषभेदतः संसारात् संसाररूपाद् मोहग्रन्थेरज्ञानग्रन्थेर्मुक्तो भवतीत्यर्थः।।७८।।

कोणाच्यां साक्षात्काराने मुक्ती प्राप्त होते? या प्रश्नाचे उत्तर असे—मी शिव आहे (शिवोऽहं) अशा दृढ भावनेने शिवाचा साक्षात्कार झाल्यावर संसाररूपी अज्ञानाची गाठ सुटते. अर्थात् शिवतत्त्व साक्षात्काराने जीवात्म्याला मुक्ती प्राप्त होते.।।७८।।

अथैवमुक्तार्थे शिष्यं नियोजयति—

शिवं भावय चात्मानं शिवादन्यं न चिन्तय।
एवं स्थिरे शिवाद्वैते जीवन्मुक्तो भविष्यसि।।७९।।

भो शिष्य, त्वम् आत्मानं त्वां शिवं सन्तं भावय, शिवशिवभक्तयोरात्मत्वाविशेषादिति भावः। इदमिति भासमानं विश्वमपि शिवादन्यं न चिन्तय, शिवस्वभावभूतचित्क्रियान्तर्गतत्वाज्जलतरङ्गन्यायेन शिवस्वरूपमेवेति चिन्तयेत्यर्थः। एवं शिवाद्वैते स्थिरे सति जीवन्मुक्तो जीवन्नपि मुक्तो भविष्यसीत्यर्थः।।७९।।

यापुढे आतापर्यन्त केलेल्या उपदेशानुसार शिष्याने आचरण करण्याविषयी सांगतात—शिव आणि शिवभक्ताचा आत्मा एकच असल्यामुळे हे शिष्या तू स्वतः शिवस्वरूपच आहेस असा भाव मनात धर. हा दिसणारा प्रपंच जलतरंगन्यायाने शिवस्वरूपापेक्षा

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भिन्न नाही असा विचार कर. अशा रीतीने तुझ्याठिकाणी शिवाद्वैतज्ञान स्थिर झाले म्हणजे तू जीवन्मुक्त होशील.।।७९।।

अथ शुश्रूषुस्थलं समापयति—

एवं प्रचोदितः शिष्यो गुरुणा गुणशालिना ।
शिवमेव जगत् पश्यन् जीवन्मुक्तोऽभिजायते।।८०।।

एवमनेन प्रकारेण ज्ञानवैराग्यादिगुणसम्पन्नेन श्रीगुरुणा प्रकर्षेण बोधितः शिष्यो जगज्जालं शिवमेव पश्यन् शिवातिरिक्ताविद्यामयमित्यपश्यन् शिवस्वभावभूतचित्क्रियाशक्तिमयत्वाच्छिवात्मकमेव पश्यन् सन् जीवन्मुक्तोऽभिजायत इत्यर्थः।।८०।।

इति शुश्रूषुस्थलम्

आता शुश्रूषुस्थलाचे वर्णन संपवितात—अशाप्रकारे ज्ञानवैराग्यादि गुणांनी युक्त अशा श्रीगुरूकडून प्राप्त झालेल्या उपदेशाने प्रबोधित झालेला शिष्य हे जगज्जाल शिवस्वरूपच आहे असे प्रत्ययास येऊन जीवन्मुक्त होतो.।।८०।।

अथ सेव्यस्थलम्

अथ—"भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः। क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे।।" इति मुण्डकोपनिषद्वचनानुसारेण, "दृष्टिः स्थिरा यस्य विनैव दृश्यं वायुः स्थिरो यस्य विना प्रयत्नम्। चित्तं स्थिरं यस्य विनावलम्बं स एव योगी स गुरुः स सेव्यः।।" इति योगजागमवचनानुसारेण च गुरूपदेशसिद्धशुश्रूषुरेव सेव्य इति तदीयस्थलं निरूपयति—

गुरुवाक्यामृतास्वादात् प्राप्तबोधमहाफलः।
शुश्रूषुरेव सर्वेषां सेव्यत्वात् सेव्य उच्यते।।८१।।

गुरूपदेशवाक्यरूपामृतरसास्वादनेन सम्प्राप्तशिवाद्वैतज्ञानमहाफलवान् शुश्रूषुरेव सर्वैः सेव्यत्वात् सेव्य इत्युच्यत इत्यर्थः।।८१।।

'परमात्म्याचा साक्षात्कार झाल्याने हृदयग्रथीचा भेद होतो, संशय सर्व नष्ट होतात, कर्मांचा क्षय होतो,' असे मुंडकोपनिषदाचे वचन आहे—तसेच 'दृश्य नसतानाही ज्याची दृष्टी स्थिर झालेली असते, प्रयत्न न करता ज्याचा प्राणवायू स्थिर झालेला असतो, आलंबन नसताना ज्याचे चित्त निश्चल झालेले असते असा तोच

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

योगी, तोच गुरू आणि तोच सेव्य होय,' असे योगजागमाचे वचन आहे. अशा रीतीने श्रुती आणि आगमात वर्णन केलेल्या योग्याच्या लक्षणानुसार गुरूच्या उपदेशाने सिद्धी प्राप्त करून घेतलेला पूर्वोक्त शुश्रूषू त्या लक्षणांनी युक्त असल्यामुळे सर्व लोकांकडून सेवा घेण्यास—योग्य होतो, असे प्रतिपादन करण्यासाठी सेव्यस्थलाचे निरूपण करतात—गुरूच्या वाक्यरूपी अमृताचा आस्वाद घेतलेला, शिवाद्वैतज्ञानाचे महाफल प्राप्त करून घेतलेला, गुरुसेवासक्त असलेला हा महापुरुषच सर्वांकडून सेवा घेण्यास योग्य झाल्याकारणाने त्याला सेव्य असे म्हणतात.।।८१।।

अथ स सेव्य एव गुरुवत् पूजनीय इति सूत्रत्रयेणाह—

गुरूपदिष्टे विज्ञाने चेतसि स्थिरतां गते।
साक्षात्कृतशिवः शिष्यो गुरुवत् पूज्यते सदा।।८२।।

विज्ञाने शिवाद्वैतलक्षणविशेषज्ञान इत्यर्थः। शिष्टं स्पष्टम्।।८२।।

हा सेव्यच गुरूसारखा पूजनीयही आहे, हे तीन श्लोकांत स्पष्ट करतात —गुरूकडून उपदिष्ट शिवाद्वैतलक्षणविशेषज्ञान मनामध्ये सुस्थिर होऊन ज्याला शिवाचा साक्षात्कार झालेला आहे असा शिष्यच गुरूप्रमाणे सदैव पूज्य होतो.।।८२।।

ननु स सेव्यः पूजनीयोऽस्तु, गुरुवत् कस्मात् पूजनीय इत्यत्राह—

ज्ञानादाधिक्यसम्पत्तिर्गुरोर्यस्मादुपस्थिता।
तस्माज्ज्ञानागमाच्छिष्यो गुरुवत् पूज्यतां व्रजेत्।।८३।।

श्रीगुरोर्यस्माद् ज्ञानाद् अधिकसम्पत्तिरुपस्थिता समागता, तस्माद् ज्ञानागमात् शिष्यः श्रीगुरुरिव पूज्यतां व्रजेद् गच्छेदित्यर्थः।।८३।।

सेव्य असा शिष्य पूजनीय असेल, तरीपण तो गुरूप्रमाणे पूजनीय होय असे का म्हणावे? तर—ज्या ज्ञानामुळे गुरूला श्रेष्ठत्व प्राप्त झालेले आहे, तसेच ज्ञान शिष्यालाही प्राप्त झाले असल्यामुळे तोही गुरूसारखा पूजनीय होतो.।।८३।।

अथ हेत्वन्तरमाह—

शिवोऽहमिति भावस्य नैरन्तर्याद् विशेषतः।
शिवभावे समुत्पन्ने शिववत् पूज्य एव सः।।८४।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

शिवोऽहमिति भावस्य नैरन्तर्याद् निरवकाशरूपाद् विशेषाद् अभ्यासविशेषात् शिवभावे शिवत्वे समुत्पन्ने स्फुटीभूते सति स शुश्रूषुः शिववत् पूज्य एवेत्यर्थः।।८४।।

त्याचे आणखी एक कारण असे की, शिवोऽहं अशा भावाच्या निरंतर अभ्यासविशेषामुळे ज्याच्या ठिकाणी शिवभाव उत्पन्न झालेला आहे, असा तो शुश्रूषूही शिवासमान पूजनीय होतो.।।८४।।

नन्वस्य ससङ्गत्वात् शिवस्यासङ्गत्वात् कथं शिववत् पूजनीयत्वमित्यत्राह—

विषयासक्तचित्तोऽपि विषयासङ्गवर्जितः।
शिवभावयुतो योगी सेव्यः शिव इवापरः।।८५।।

अत्र शिवभावयुत इति हेतुगर्भविशेषणम् । योगी शुश्रूषुः शिवयोगी विषयनिष्ठचित्तवानपि विषयसङ्गवर्जित एव, शिवभावदार्ढ्याद् द्वितीयः शिव इव सेव्यः पूजनीय इत्यर्थः।।८५।।

संगसहित असणारा शुश्रूषूही असंग अशा शिवासमान पूज्य कसा होतो? तर—शिवभावयुक्त झालेला हा शुश्रूषू शिवयोगी विषयसंगी असला तरी तो विषयासक्त नसतो. म्हणजेच त्याच्या इंद्रियांना विषयाचा संपर्क येत असला तरी त्याचे मन विषयासक्त नसते. तसेच त्याच्या ठिकाणी दृढ शिवभावना असल्यामुळे तो द्वितीय शंभूच असतो. म्हणून तो शिवाप्रमाणे पूज्य होतो.।।८५।।

मुक्तः संशयपाशतः स्थिरमना बोधे च मुक्तिप्रदे
मोहं देहभृतां दृशा विघटयन् मूलं महासंसृतेः।
सत्तानन्दचिदात्मके निरुपमे शैवे परस्मिन् पदे
लीनात्मा क्षयितप्रपञ्चविभवो योगी जनैः सेव्यते।।८६।।

इति श्रीमत्षट्स्थलब्रह्मिणा शिवयोगिनाम्ना रेणुकाचार्येण विरचिते वीरशैवधर्मनिर्णये सिद्धान्तशिखामणौ प्रसादिस्थलाश्रितनवलिङ्ग-प्रसङ्गो नाम सप्तदशः परिच्छेदः समाप्तः।।

संशयपाशतः अहं शिवो वा न वेति सन्देहपाशतो मुक्तो विमुक्तो मुक्तिप्रदे परापरमुक्तिप्रदे बोधे च शिवाद्वैतज्ञाने स्थिरमनाः स्थिरचित्तो महासंसृतेः संसारस्य मूलं मूलकारणीभूतं देहभृतां मोहं देहिनामज्ञानं दृशा

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कृपादृष्ट्या विघटयन् निवारयन्, सच्चिदानन्दस्वरूपे उपमातीते शैवे परस्मिन् पदे लीनात्मा तदेकलोलीभूतनिजस्वरूपवान् योगी शिवयोगी क्षयितप्रपञ्चविभवः सन् स्वशक्तिलीनीकृतविश्वप्रपञ्चवैभवः सन् जनैः सेव्यते पूज्यत इत्यर्थः। अस्य प्रसादिनोऽङ्गत्रयस्यैतल्लिङ्गत्रयं क्रमेण संयोजनीयमिति सम्प्रदायः।।८६।।

इति श्रीमत्पदवाक्यप्रमाणपारावारधुरीणश्रीमरितोण्टदार्येण विरचितायां तत्त्वप्रदीपिकाख्यायां सिद्धान्तशिखामणिव्याख्यायां प्रसादिस्थलाश्रित-नवलिङ्गप्रसङ्गो नाम सप्तदशः परिच्छेदः समाप्तः।।

मी शिव आहे की नाही अशा संशयपाशातून मुक्त झालेला, परापर मुक्तिप्रद अशा शिवाद्वैतज्ञानात मन स्थिर झालेला, या घोर संसाराला मूळ कारणीभूत असे जीवांचे अज्ञान आपल्या कृपादृष्टीने नाहीसे करणारा, उपमातीत, सच्चिदानंदस्वरूप अशा परशिवात ज्याचा आत्मा लीन झाला आहे आणि सकल प्रपंचाचे वैभव ज्याच्या अध्यात्मशक्तीमध्ये विलीन झाले आहे, असा शिवयोगी सर्वजनांकडून सेवा घेण्यास योग्य अर्थात् पूज्य होतो.।।८६।।

सिद्धांतशिखामणी ग्रंथातील प्रसादिस्थलांतर्गत नवलिंगांचे वर्णन असणारा सतरावा परिच्छेद संपला.

सतरावा परिच्छेद समाप्त।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अष्टादशः परिच्छेदः

अथ प्राणलिङ्गिस्थलभेदाः कथ्यन्ते। अथागस्त्यप्रश्नः—

प्रसादिस्थलसम्बद्धाः स्थलभेदाः प्रकीर्तिताः।
प्राणलिङ्गिस्थलारूढान् स्थलभेदान् वदस्व मे।।१।।

स्थलभेदान् अवान्तरस्थलभेदानित्यर्थः। वदस्व उपदिशेत्यर्थः। शिष्टं स्पष्टम्।।१।।

आता लिंगस्थलातर्गत प्राणलिंगीस्थलाचे भेद सांगतात—अगस्त्य प्रश्न करतात-हे रेणुका, आतापर्यंत प्रसादिस्थलातील अवांतर स्थलभेदाचे वर्णन केलेत, आता प्राणलिंगी स्थलाचे अवांतर स्थलभेद मला सांगावेत.।।१।।

अथ श्रीरेणुकस्तद्भेदं सूत्रत्रयेण निरूपयति—

स्थलानां नवकं प्रोक्तं प्राणलिङ्गिस्थलाश्रितम्।
आदावात्मस्थलं प्रोक्तमन्तरात्मस्थलं ततः।।२।।
परमात्मस्थलं पश्चान्निर्देहागमसंज्ञकम्।
निर्भावागमसंज्ञं च ततो नष्टागमस्थलम्।।३।।
आदिप्रसादनामाथ ततोऽप्यन्त्यप्रसादकम्।
सेव्यप्रसादकं चाथ शृणु तेषां च लक्षणम्।।४।।

स्पष्टम्।।२-४।।

आता श्री रेणुकाचार्य तीन श्लोकांत त्याच्या पोटभेदांचे निरूपण करतात— हे अगस्त्या, प्राणलिंगी स्थलात नऊ अवांतर स्थले आहेत. त्यांची नावे अशी-१. आत्मस्थल, २. अंतरात्मस्थल, ३. परमात्मस्थल, ४. निर्देहागमस्थल, ५. निर्भावागमस्थल, ६. नष्टागमस्थल, ७. आदिप्रसादिस्थल, ८. अंत्यप्रसादिस्थल, आणि ९. सेव्यप्रसादिस्थल. यांपैकी क्रमाने प्रत्येकाची लक्षणे सांगतो ती श्रवण कर.।।२-३-४।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अथ—"एष आत्मा अपहतपाप्मा विजरो विमृत्युर्विशोकोऽविजिघित्सोऽपिपासः सत्यकामः सत्यसङ्कल्पः" इति छान्दोग्यश्रुत्यनुसारेणायं सेव्य एवात्मेत्यात्मस्थलं निरूपयति—

जीवभावं परित्यज्य यदा तत्त्वं विभाव्यते।
गुरोश्च बोधयोगेन तदात्मायं प्रकीर्तितः।।५।।

अयं सेव्य एव श्रीगुरोः शिवज्ञानसम्बन्धेन जीवभावं जीवत्वं परित्यज्य यदा परतत्त्वं विभाव्यते, तदा आत्मेति परिकीर्तित इत्यर्थः।।५।।

'आत्मा हा पाप, जरा, मृत्यु, शोक, हिंसा, तृष्णादिरहित असतो म्हणून तो सत्यकाम आणि सत्यसंकल्प असतो.' असे छांदोग्यश्रुतींत आत्म्याचे स्वरूप वर्णन केलेले आहे. आतापर्यन्त वर्णन केलेला सेव्यस्थली शिवयोगी आत्मस्वरूप असतो, असे सांगण्यासाठी निरूपण करतात—पूर्वोक्त सेव्यस्थलसंपन्न शिवयोगी, गुरूकडून उपदिष्ट शिवज्ञानामुळे आपल्या जीवभावाचा त्याग करून जेव्हा परब्रह्मभावाने वागतो, तेव्हा त्याला आत्मा या नावाने संबोधितात. म्हणेज त्याच्या ठिकाणचा जीवभाव नाहीसा होऊन आत्मभाव निर्माण होतो हे तात्पर्य.।।५।।

अथ कोऽयं जीव इत्यत्र— "वालाग्रशतभागेन शतधा कल्पितेन तु। भाग आत्मा स विज्ञेयः स चानन्त्याय कल्प्यते।।" इति श्वेताश्वतरश्रुत्यनुसारेण जीवस्वरूपं पञ्चभिः सूत्रैः प्रतिपादयति—

वालाग्रशतभागेन सदृशो हृदयस्थितः।
अश्नन् कर्मफलं सर्वमात्मा स्फुरति दीपवत्।।६।।

वालाग्रेति केशाग्रशतभागेन सदृशः सन् स्वार्जितकर्मफलं भुञ्जन् सन् हृदये हृदयकमले स्थितः, तिष्ठतीत्यर्थः। नन्वेवं चेत्, शरीरैकदेशनिष्ठत्वेन पादे मे वेदना, शिरसि सुखमिति सर्वाङ्गीणचैतन्योपलब्धिः कथमित्याशङ्क्याह— दीपवदिति। दीपस्य गृहैकदेशनिष्ठत्वेऽपि स्वप्रभया सम्पूर्णगृहं व्याप्य तदन्तर्गतसकलवस्तुप्रकाशकत्वं यथा, तद्वद् जीवस्य शरीरैकदेशनिष्ठत्वेऽपि "प्रज्ञया शरीरं समारुह्य" इति श्रुतेस्तद्बुद्धेर्व्यापकत्वेन सर्वं शरीरं व्याप्य सर्वाङ्गीणचैतन्यमनुभवन् आत्मा जीवात्मा स्फुरति प्रकाशत इत्यर्थः।।६।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जीव म्हणजे कोण या प्रश्नाचे उत्तर-स्वरूप वर्णन श्वेताश्वतर उपनिषदात दिले आहे ते असे. 'एका केसाच्या टोकाचे शंभर भाग करून त्या शंभराव्या भागाचे पुन्हा शंभर भाग केले तर जो भाग राहातो तेवढाच जीवाचा आकार असतो, त्यामुळे अंनतरूप परमात्मा होण्यास तो समर्थ आहे.' या वर्णनानुसार जीवात्म्याचे सूक्ष्म स्वरूपवर्णन पाच श्लोकांतून करतात—केसाच्या टोकाच्या शतांश भागाइतका सूक्ष्म असलेला जीवात्मा हृदयकमलात राहून आपण केलेल्या शुभाशुभ अशा सर्व कर्मांचे फल अनुभवीत दीपाप्रमाणे प्रकाशत असतो. दीप जसा घराच्या एका कोपऱ्यात असला तरी त्याचा प्रकाश सर्व घरभर पसरतो आणि त्यामुळे सर्व वस्तू प्रकाशित होतात, तशा प्रकारे हृदयस्थ असणाऱ्या आत्म्याचा ज्ञानप्रकाश शरीराच्या सर्व भागात व्याप्त होऊन सर्वांगीण सुखदुःखाचा तो अनुभव घेत असतो.।।६।।

नन्वेवंविधरूपं जीवस्य स्वाभाविकं किमित्यत्राह—

आत्मापि सर्वभूतानामन्तःकरणमाश्रितः।
अणुभूतो मलासङ्गादादिकर्मनियन्त्रितः।।७।।

सर्वभूतानां पञ्चभूतानाम् आत्मापि परमार्थतो व्यापकत्वाश्रयोऽपि मलासङ्गाद् आणवादिमलव्यापनाद् अणुभूतः परमाणुदतिसूक्ष्मः सन् आदिकर्मनियन्त्रितः प्राचीनकर्मपाशबद्धः सन् अन्तःकरणमाश्रितोऽहङ्कारमाश्रितवानित्यर्थः।।७।।

जीवाचे हे स्वरूप स्वाभाविक आहे का? ते सांगतात—हा आत्मा पंचमहाभूतांमध्ये व्यापक असल्यामुळे त्यांना आश्रयभूत असला तरी आणवादी मलत्रयांनी आवृत होऊन, आपल्या प्राचीन प्राक्तनकर्मांच्या पाशांनी बद्ध होऊन अंतःकरणाच्या आश्रयाने राहातो.।।७।।

अथैवमहङ्कारसम्बन्धाद् देहसम्बन्धोऽपि प्राप्त इत्यत्राह—

जपायोगाद्यथा रागः स्फटिकस्य मणेर्भवेत्।
तथाऽहङ्कारसम्बन्धादात्मनो देहमानिता।।८।।

परिमिताहङ्कारसम्बन्धाद् देहसम्बन्धः प्राप्त इत्यर्थः। शिष्टं स्पष्टम्।।८।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अशा रीतीने आत्म्याला अहंकाराचा संबंध झाल्यामुळे त्याला देहाचा संबंधही प्राप्त होतो, असे सांगतात—स्वभावतः निर्मल असणारा स्फटिकमणी जसा जास्वंदफुलाच्या सहवासात रक्तरंगी दिसतो तसा स्वभावतः देहाभिमानी नसलेला आत्मा अहंकाराच्या संबधाने देहाभिमानी दिसतो.।।८।।

ननु सर्वदोषरहितस्यात्मनः कथमुक्तप्रकारेण शरीरसम्बन्ध इत्यत्राह—

अशरीरोऽपि सर्वत्र व्यापकोऽपि निरञ्जनः।
आत्मा मायाशरीरस्थः परिभ्रमति संसृतौ।।९।।

परापरमोक्षकारणीभूतशुद्धविद्याशरीरवत्त्वेनाशरीरोऽपि, अपरिच्छिन्नत्वाद् व्यापकोऽपि, दोषरहितत्वान्निरञ्जनोऽपि, कलादिक्षितिपर्यन्तत्रिंशत्तत्त्वकारणीभूत-स्वकीयाधोमायाशक्तिपरिकल्पितचन्द्रकलाविशिष्टशरीरवान् सन् संसारे परिभ्रमतीत्यर्थः।।९।।

सर्व दोषरहित अशा आत्म्याला शरीरसंबंध कसा असतो? याचे उत्तर असे की—आत्मा अशरीरी, निरंजन असून सुद्धा तो मायाकल्पित शरीराचा आश्रित होऊन संसारात परिभ्रमण करतो. याचेच अधिक स्पष्टीकरण असे—परापर मोक्षाला कारणीभूत असलेली शुद्ध विद्या हेच शरीर असलेल्या आत्म्याला स्थूल शरीर नसल्यामुळे, तो अपरिच्छिन्न, व्यापक दोषरहित आणि निरंजन असा आत्मा कलादिभूमिपर्यन्त असणाऱ्या तीस तत्त्वांच्या उत्पत्तीला कारणीभूत अशी जी. अधोमाया, तिच्याद्वारा कल्पित पंचज्ञानेंद्रिये, पंच कर्मेंद्रिये, चित्त, मन, अहंकार, विद्या, वाक् व शक्ती अशा सोळा कळांनी युक्त शरीर धारण करून संसारात परिभ्रमण करतो. म्हणजेच निर्दोष आत्म्याला वास्तविक शरीर संबंध नसला तरी मायिक शरीरसंबंधाने तो संसारात देहधारी झालेला असतो.।।९।।

अथैवंरूपजीवस्यात्मत्वप्राप्तिप्रकारमाह—

आत्मस्वरूपविज्ञानं देहेन्द्रियविभागतः।
अखण्डब्रह्मरूपेण तदात्मप्राप्तिरुच्यते।।१०।।

देहेन्द्रियविभागत उक्तलक्षणमायिकप्राकृतसत्त्वादिगुणकार्यरूपशरीरेन्द्रिया-दिव्यतिरिक्तत्वेन अखण्डब्रह्मरूपेण अपरिच्छिन्नब्रह्मरूपेण आत्मविज्ञानं

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

स्वस्वरूपज्ञानं यदा भवति, तदात्मप्राप्तिरात्मत्वलाभ उच्यते, "आत्मलाभान्न परं विद्यते। नेति सति न द्वयः" इति श्रुतेरित्यर्थः।।१०।।

अशा जीवाच्या आत्मस्वरूप प्राप्तीचे प्रकार सांगतात– आत्मतत्त्व प्राकृत शरीरेंद्रियादिकांपासून वेगळे आहे, अखंड ब्रह्मस्वरूप आहे, अशाप्रकारे जेव्हा आपल्या आत्मस्वरूपाचे ज्ञान जीवाला होते तेव्हा त्याला आत्मत्व प्राप्त होते. यालाच आत्मलाभ असेही म्हणतात. अशा आत्मलाभापेक्षा अन्य कोणताही श्रेष्ठ लाभ जगात नाही, असे श्रुतींनीही सांगितले आहे.।।१०।।

नन्वपरिच्छिन्नं ब्रह्म परिच्छिन्नशरीरविशिष्टं किमर्थं जातमित्यत्राह–

न चास्ति देहसम्बन्धो निर्देहस्य स्वभावतः।
अज्ञानकर्मयोगेन देही भवति भुक्तये।।११।।

अशरीरस्य परमात्मनः परमार्थतः शरीरसम्बन्धो नास्त्येव, तथापि भुक्तये–"यथा नृपः सार्वभौमप्रभावामोदबृंहितः। क्रीडन् करोति पादातिधर्मं तद्धर्मधर्मितः।।" इति शिवदृष्टिशास्त्रोक्तदृष्टान्तेन अखण्डरसास्वादपरिबृंहितोऽपि खण्डरसास्वादनार्थमिच्छायामज्ञानकर्मयोगेन स्वातन्त्र्यपरिकल्पिताणवादिमलसम्बन्धेन देही भवति, घृतकाठिन्यन्यायेनांशतः शरीरी भवति। तस्मादंशीभूतस्य ज्ञानादिमलसम्बन्धान्नृप इवाहं शिव इति ज्ञानं नास्तीति बोध्यम्। अस्मिन्नर्थे–"स वै नैव रेमे। तस्मादेकाकी न रमते। स द्वितीयमैच्छत्। स एतावानास। तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्। तदनुप्रविश्य सच्च त्यच्चाभवत्" इति श्रुतिः। "विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत्" इति, "ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः" इति भगवदुक्तिश्च। शिवस्य निरंशत्वेऽपि स्वतन्त्रत्वात् स्वातन्त्रपरिकल्पितांशभावः सम्भवति, वत्सापहरणदृष्टान्तात्। क्रिया हि कर्मण्येव विश्राम्येन्न तु कर्तरीति न्यायान्नात्मनो बन्धः। वस्तुतस्तु– "आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत्" इति श्रुतेः, "कला सप्तदशी देवी स्वान्तर्लीनचराचरा" इत्यागमोक्तेः, "इदं पूर्वं जगत्सर्वं प्रलये पारमेश्वरे। मायाभिन्ने स्वमायाख्यकारणाभेदरूपतः।। वर्तते वासनारूपेणैव नाभावरूपतः।" इति पाराशरोपपुराणवचनाच्च सर्वं विश्वमण्डरसन्यायेनात्मसमवेतचित्क्रियासामरस्यलक्षणचिदम्बरशक्तौ तादात्म्येनास्तीति परमात्मस्थले वक्ष्यमाणरीत्या वह्निर्विस्फुलिङ्गानिव स्वतादात्म्यापन्नान् चित्कणान् तत्तत्कर्मानुसारेण सृजत्यवति संहरति तिरयतेऽनुगृह्णातीति न काचिदनुपपत्तिः।।११।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अपरिच्छिन्न असणारे परब्रह्म परिच्छिन्न होऊन शरीरधारी का बनले? तर—निर्देही, अपरिच्छिन्न अशा परब्रह्माला स्वभावतः देहसंबंध नसला तरी सांसारिक सुखभोगासाठी अज्ञान आणि कर्मामुळे तो देहधारी होतो. त्याचे स्पष्टीकरण असे— सार्वभौम असा चक्रवर्ती अपरिमित आनंदयुक्त असला तरी कधी कधी सामान्यजनांप्रमाणे साध्यासुध्या खेळातही भाग घेऊन तो जसा खेळाचा आनंद लुटतो, तसे परब्रह्म अखंड आनंदाने परिपूर्ण असले तरी, 'एकट्यानेच आनंद अनुभवता येत नाही म्हणून त्याने दुसऱ्याची अपेक्षा केली', 'त्या परमात्म्याने जग निर्माण करून त्यात स्वतःच जीवरूपाने प्रवेश केला', अशा श्रुतिवचनांनुसार, तो खंडित अशा सांसारिक सुखांचा भोग घेण्याच्या इच्छेने, आपल्या स्वातंत्र्यशक्तीने कल्पिलेल्या आणवादिमलत्रयांच्या संबंधाने घृतकाठिन्य न्यायाने, 'माझे अंशच जीवलोकात जीव झाले आहेत' अशा स्मृति-वचनानुसार तो अंशरूपाने देहधारी बनतो, त्यामुळे अंशीभूत अशा जीवाला 'मी शिव आहे' असे ज्ञान नसते. वस्तुतः परमात्मा पूर्ण आहे. त्याच्या एकांशामध्ये हे विश्व दिसून येते. सचेतन होऊन दिसणाऱ्या या जीवप्रपंचात असणारा सनातन जीव त्याचाच अंश असतो, कर्मामुळे कर्माला बंधन व कर्ममध्येच कर्माची विश्रांती होते. परमात्मा मात्र या कर्मापासून अतीत, अलिप्त असतो. हा नामरूपात्मक प्रपंच दिसण्यापूर्वी त्या परमात्म्याची महासत्ताच होती. म्हणून बंधन स्वाभाविक नव्हे हे स्पष्ट झाले. हे विश्व अंडरसन्यायाने आत्म्याशी समाविष्ट होऊन चित्क्रिया सामरस्यलक्षण चिदंबर शक्तीमध्ये तादात्म्य रूपाने आहे. अग्नीपासून ठिणगी स्फुरते, त्याच प्रमाणे आत्म्यापासून चैतन्यकण स्फुरतात. आत्मस्वरूप अशा त्या कणामध्ये एक कण ब्रह्म होऊन सृष्टी करतो. दुसरा विष्णु होऊन रक्षण करतो. तिसरा रुद्र होऊन संहार करतो. आणखी एक कण ईश्वर होऊन प्रेरणा देतो आणि एक कण सदाशिव होऊन भक्ती करणाऱ्यांवर अनुग्रह करतो व भक्तांचे आपल्या ठिकाणी ऐक्य करून घेतो. ही सर्व आत्मस्वरूपाचीच लीला होय.।।११।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तर्ह्यसौ जीवः किंनामक इत्यत्राह—

नासौ देवो न गन्धर्वो न यक्षो नैव राक्षसः।
न मनुष्यो न तिर्यक्च न च स्थावरविग्रहः।।१२।।

तत्तच्छरीरयोगेन तत्तन्नाम्ना विराजितः। स्पष्टम्।।१२।।

असे असल्यास त्या जीवाला कोणत्या नावाने ओळखावे? तर—जो जीव देव नव्हे, गंधर्व नव्हे, यक्ष नव्हे, राक्षस नव्हे, खेकड्यासारखा तिर्यक प्राणी नव्हे आणि दगड, लाकूड इत्यादी सारखा स्थावर वस्तूही नव्हे. म्हणून तो ज्या ज्या देहाचे धारण करतो त्या त्या नावाने तो ओळखला जातो. वस्तुतः त्याला स्वतःचे असे कोणतेही नाव नाही.।।१२।।

तर्ह्ययं कीदृश इत्यत्र—"स्वस्वकृतदुष्कर्मणा परमेश्वरप्रेरणया बद्धाः संसारिणो जीवाः" इति वृद्धजाबालश्रुत्यनुसारेण दृग्युगैक्यावलोकनमिव द्वैताद्वैतसामरस्यात्मनः शिवस्य स्वातन्त्र्यपरिकल्पितजीवोपाधिना नानारूपाः सन्तः शिवस्य क्रीडाभाजनरूपा इत्याह—

नानाकर्मविपाकाश्च नानायोनिसमाश्रिताः।
नानायोगसमापन्ना नानाबुद्धिविचेष्टिताः।।१३।।
नानामार्गसमारूढा नानासङ्कल्पकारिणः।
अस्वतन्त्राश्च किञ्चिज्ज्ञाः किञ्चित्कर्तृत्वहेतवः।
लीलाभाजनतां प्राप्ताः शिवस्य परमात्मनः।।१४।।

नानाविधप्राचीनकर्मविपाकवशाद् "देवाः षोडशलक्षाणि" इत्युदाहृत-वचनानुसारेण देवतिर्यङ्मनुष्यादिनानायोनिसमापन्ना नानाविधस्वर्गभोगोपाय-चिन्तका नानाविधबुद्ध्याक्रान्ताः सन्तो नानाविधवैष्णवादिदर्शनमार्गप्रविष्टा नानासङ्कल्पकारिणः किञ्चिज्ज्ञाः किञ्चित्कर्तृत्वकारणीभूताः स्वातन्त्र्यशून्या जीवाः परमात्मनः शिवस्य लीलाभाजनतां गताः, क्रीडाभाण्डरूपा इत्यर्थः।।१३-१४।।

तर मग तो कसा आहे? तर— 'आपापाल्या दुष्कर्माने आणि परमेश्वरी प्रेरणेने सांसारिक जीव बद्ध झाले आहेत', बृहज्जाबाल श्रुतीच्या या वाक्यानुसार द्वैताद्वैतसामरस्यस्वरूप अशा शिवाच्या स्वातंत्र्यशक्तीने कल्पिलेल्या उपाधींनी हे जीव अनेक रूपे धारण करून शिवाच्या खेळातील पदार्थ बनलेले आहेत, असे सांगतात— हे जीव नानाविध अशा पूर्वकर्माच्या परिपाकाने देव, तिर्यक,

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

मनुष्य अशा नाना योनींत जन्म घेऊन नानाविध अशी स्वर्गादिस्थाने प्राप्त करून घेण्यासाठी अनेक साधने वापरून नाना प्रकारच्या बुद्धीने शैववैष्णवादिमतमार्गांत प्रवर्तित होऊन, अनेक प्रकारच्या आकांक्षा बाळगून, अल्पज्ञ होऊन, स्वातंत्र्य नसलेले होऊन, अल्प कर्तृत्वाचे होऊन जगन्नाटकाचा सूत्रधार असलेल्या शिवाच्या लीलेचे साधनभूत असे पदार्थ झालेले असतात.।।१३-१४।।

अथैते किं यान्तीत्यत्राह—

चोदिताः परमेशेन स्वस्वकर्मानुरूपतः।
स्वर्गं वा नरकं वापि प्राणिनो यान्ति कर्मिणः।।१५।।

स्पष्टम्।।१५।।

अशा जीवांना कशाची प्राप्ती होते? तर —आपापल्या कर्मानुसार व परमेश्वराच्या प्रेरणेने कर्मी जीवाना स्वर्ग अथवा नरकाची प्राप्ती होते.।।१५।।

अथ स्वर्गनरकयोर्वा तेषां स्थैर्यमस्ति किमित्यत्राह—

पुनः कर्मविशेषेण जायन्ते गर्भकोटरात्।
जाता मृताः पुनर्जाताः पुनर्मरणभाजिनः।
भ्रमन्ति घोरसंसारे विश्रान्तिकथया विना।।१६।।

विश्रान्तिकथया स्वस्वरूपविश्रान्तिवार्ताव्यतिरेकेणेत्यर्थः। शिष्टं स्पष्टम् ।।१६।।

स्वर्गात असो की नरकात असो ते कायमचे राहातात काय? तर—हे जीव स्वर्गात अथवा नरकात आपापल्या कर्मांची फले भोगून झाल्यानंतर अवशिष्ट कर्माने ते पुन्हा जन्माला येतात, पुन्हा मरतात, पुन्हा जन्मतात. अशा रीतीने विश्रांती न घेता पुनःपुन्हा या घोर संसारात भ्रमण करीत असतात.।।१६।।

नन्वेवं चेत्, संसारचक्रपरिभ्रमणं शाश्वतं किमित्यत्राह—

जीवत्वं दुःखसर्वस्वं तदिदं मलकल्पितम्।
निरस्यते गुरोर्बोधाज्ज्ञानशक्तिः प्रकाशते।।१७।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जीवत्वमाणवादिमलकल्पितम्, अज्ञानादिमलकल्पितमित्यर्थः। तस्माद् दुःखसर्वस्वरूपम् । तदिदं दुःखसर्वस्वरूपं जीवत्वं गुरोर्बोधात् श्रीगुरूपदिष्टशिवाद्वैतबोधात्, निरस्यते निवार्यते, ज्ञानशक्तिः स्वस्वरूप-ज्ञानशक्तिसामर्थ्यं प्रकाशयत इत्यर्थः।।१७।।

इत्यात्मस्थलम्

असे असेल तर हे संसारचक्राचे परिभ्रमण शाश्वत आहे काय? उत्तर असे की—जीवाला प्राप्त झालेले दुःखसर्वस्व असे हे जीवत्व आणवादि मलत्रयांनीयुक्त कल्पिलेले आहे. गुरूकडून उपदेश प्राप्त झालेल्या शिवाद्वैतज्ञानामुळे ह्या जीवत्वाची निवृत्ती होते आणि स्व-स्वरूप ज्ञानशक्ती प्रकाशित होते. अर्थात् गुरूपदेशाने ह्या जीवत्वाची निवृत्ती होते आणि तो संसारचक्रातून मुक्त होतो हे तात्पर्य.।।१७।।

अथान्तरात्मस्थलम्

अथ—"सूर्यो यथा सर्वलोकस्य चक्षुर्न लिप्यते चाक्षुषैर्बाह्यदोषैः। एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा न लिप्यते लोकदुःखेन बाह्यः।।" इति कठवल्लीश्रुत्यनुसारेण निराकृतजीवभावस्यात्मनोऽन्तरात्मत्वं भवतीति निरूपयति—

यदा निरस्तं जीवत्वं भवेद् गुर्वनुबोधतः।
तदान्तरात्मभावोऽपि निरस्तस्य भवेद् ध्रुवम्।।१८।।

गुर्वनुबोधतो गुरूपदेशाज्जीवत्वं जीवभावो यदा निरस्तं भवेत्, तदा निरस्तस्य निरस्तजीवभाववत आत्मनोऽन्तरात्मभावो भवेत् स्यात्, ध्रुवं निश्चय इत्यर्थः।।१८।।

'जगाचा नेत्र असा सूर्य जसा बाह्य दृष्टिदोषाने लिप्त होत नाही तसा सर्वभूतांच्या अंतरात असणारा हा आत्मासुद्धा लोकातील दुःखापासून अलिप्त असतो,' या कठोपनिषदाच्या वचनानुसार जीवभाव नाहीसा झालेल्या अतरात्म्याचे वर्णन करतात —गुरूच्या उपदेशाने जेव्हा जीव जीवभावापासून निवृत्त होतो तेव्हा त्या जीवभावरहित जीवाला निश्चितपणे अंतरात्मभाव प्राप्त होतो.।।१८।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अथान्तरात्मस्वरूपं सूत्रत्रयेण कथयति—

देहस्थितोऽप्ययं जीवो देहसङ्गविवर्जितः।
बोधात् परात्मभावित्वादन्तरात्मेति कीर्तितः।।१९।।

अयं जीवो देहस्थितोऽपि देहसङ्गरहितः सन् बोधात् स्वस्वरूपज्ञानात् परात्मभावित्वात् परमात्मनो भाववत्त्वाद् अन्तरात्मेति कथ्यत इत्यर्थः ।।१९।।

आता अंतरात्म्याचे स्वरूप तीन श्लोकात विशद करतात—हा जीव देहात असला तरी देहसंगरहित होऊन स्वस्वरूपज्ञानाने अंतरात्मभाव प्राप्त करून घेतो. त्यामुळे तो अंतरात्मा म्हणून ओळखला जातो.।।१९।।

अथ प्रकारान्तरेणोपपादयति—

आत्मान्तरालवर्तित्वाज्जीवात्मपरमात्मनोः।
योगादुभयधर्माणामन्तरात्मेति कीर्तितः।।२०।।

आत्मा निरस्तजीवभाववान् सेव्यः, शिष्योपदेशसमये जीवात्मपरमात्मनोरन्तरालवर्तित्वात्, मध्यवर्तित्वादित्यर्थः। तदा शिष्यबुद्धिशिक्षकत्वेन तदन्तर्यामितया शिवधर्मयोगात् आहारव्याहारादेर्विद्यमानत्वेन जीवधर्मयोगात्। एवमुभयधर्माणां योगाद् अन्तरात्मेति कीर्तित इति।।२०।।

तेच दुसऱ्या रीतीने सांगतात—हा आत्मा जीवात्मा आणि परमात्मा या दोघांच्या मध्यावस्थेत असतो म्हणून याला अंतरात्मा असे म्हणतात. देहस्थ असल्यामुळे आहारव्यवहाराच्या संबधाने त्याच्याठिकाणी जीवधर्म असतो. तसेच तो गुरूपदेशामुळे स्वस्वरूपानुसंधानतत्पर झाला असल्याने शिवधर्मही त्याच्या ठिकाणी असतो. अशा रीतीने जीव आणि शिव या दोहोंच्या धर्मसंबंधाने तो मध्यावर असल्यामुळे त्याला अंतरात्मा असे म्हणतात.।।२०।।

अथ प्रकारान्तरेणाह—

अहङ्कारस्य सम्बन्धान्मनुष्यत्वादिविभ्रमः।
न स्वभाव इति ज्ञानादन्तरात्मेति कथ्यते।।२१।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

परिच्छिन्नस्वरूपाहंभाववशाद् मनुष्यत्वादिविभ्रमः स्यात्, न स्वभावत इति ज्ञानात् परिच्छिन्नस्वरूपत्वं न स्वाभाविकमिति ज्ञानाद् अन्तरात्मेति कथ्यत इत्यर्थः।।२१।।

आणखी निराळ्या प्रकाराने त्याचे वर्णन करतात —परिच्छिन्न अशा मूल अहंकाराच्या संबधाने मी मनुष्य आहे, पशू आहे, पक्षी आहे अशी जाणीव भ्रांतियुक्त असते, वास्तविक नसते. असे ज्ञान प्राप्त झाल्यामुळे हा जीव अतरात्मा म्हणविला जातो.।।२१।।

अथास्य शरीरसम्बन्धोऽस्ति न वेत्यत्र दृष्टान्तपूर्वकं सूत्रत्रयेणाह—

यथा पद्मपलाशस्य न सङ्गो वारिणा भवेत्।
तथा देहजुषोऽप्यस्य न शरीरेण सङ्गतिः।।२२।।
नीडस्थितो यथा पक्षी नीडाद्भिन्नः प्रदृश्यते।
देहस्थितस्तथात्माय देहादन्यः प्रकाश्यते।।२३।।

स्पष्टम्।।२२-२३।।

त्याला शरीरसंबंध असतो की नसतो याचे स्पष्टीकरण तीन श्लोकांतून करतात—कमल पाण्यात असले तरी त्याला जसा पाण्याचा संग घडत नाही, तशा रीतीने हा अतरात्मा देहात असला तरी देहसंबंधरहित असतो. घरट्यात असलेला पक्षी जसा त्या घरट्यापेक्षा निराळा असतो तसा देहस्थ असलेला हा अंतरात्माही देहापेक्षा निराळा असतो.।।२२-२३।।

अथ पुनर्दृष्टान्तमाह—

आच्छाद्यते यथा चन्द्रो मेघैरासङ्गवर्जितैः।
तथात्मा देहसङ्घातैरसङ्गपरिवेष्टितः।।२४।।

चन्द्र आसङ्गवर्जितैः स्वस्य सर्वत्र सङ्गरहितैर्मेघैर्यथा आच्छाद्यते, तथा आत्मा निवृत्तजीवभावः सेव्यो देहसङ्घातैः स्थूलादिदेहसमूहैः, असङ्गः सन् परिवेष्टित इत्यर्थः।।२४।।

आता पुन्हा दृष्टांत देतात—आकाशातील चंद्राला मेघाचा स्पर्श न होताही तो जसा मेघाने आच्छादित झालेला दिसतो, तसा जीवभाव नाहीसा झालेला अंतरात्माही स्थूलदेहादी संबंधरहित असूनही देहावरणात असतो.।।२४।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तर्ह्ययं कं पश्यन्नास्त इत्यत्राह—

निर्ममो निरहङ्कारो निरस्तोपाधिविक्लवः।
देहस्थोऽपि सदा ह्यात्मा शिवं पश्यति योगतः।।२५।।

विक्लवो बाधः। योगो योगसामर्थ्यम्। शिष्टं स्पष्टम्।।२५।।

अशा अंतरात्म्याचे लक्ष कोठे असते? तर—अहंकार-ममकार-रहित असा शरीरादी उपाधीच्या बाधा दूर केलेला हा अंतरात्मा सदा देहात असला तरी योगसाधनेद्वारा त्याचे लक्ष नेहमी शिवाकडे असते.।।२५।।

तर्हि शिवं पश्यन्नयं तथा भासत इत्यत्राह—

भोक्तृभोज्यपरित्यागात् प्रेरकस्य प्रसादतः।
भोक्तृताभावगलितः स्फुरत्यात्मा स्वभावतः।।२६।।

भोक्तृभोज्यपरित्यागाद् भोक्तृजीवेन भोज्यविषयपरित्यागात् प्रेरकस्येश्वरस्य प्रसन्नतावशाद् भोक्तृताभावगलितः सन् भोक्तृलक्षणजीवभाववियुक्तः सन् स्वभावतो जीवेश्वरसाधारणीभूतात्मत्वस्वरूपतः स्फुरति, प्रकाशत इत्यर्थः।।२६।।

शिवाकडे लक्ष असणारा हा शिवयोगी शिवासारखाच भासतो असे सांगतात—भोक्ता असा जीव भोज्य अशा विषयांचा त्याग केल्यामुळे प्रेरक अशा परमेश्वराच्या अनुग्रहाने भोक्तारूप जीवभावापासून मुक्त होऊन स्वभावतः आत्मस्वरूपाने प्रकाशतो.।।२६।।

अथान्तरात्मस्थलं समापयति—

सर्वेषां प्रेरकत्वेन शम्भुरन्तःस्थितः सदा।
तत्परिज्ञानयोगेन योगी नन्दति मुक्तवत्।।२७।।

स्पष्टम् ।।२७।।

इत्यन्तरात्मस्थलम्

आता अंतरात्मस्थलाचा समारोप करतात—परमात्मा सर्वांच्या हृदयात प्रेरक होऊन निवास करतो, अशा या परशिवज्ञानयोगाने योगी पुरुष मुक्तात्म्यासारखा आनंद उपभोगतो.।।२७।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अथ परमात्मस्थलम्

अथ—"एवं विदित्वा परमात्मरूपं गुहाशयं निष्कलमद्वितीयम्। समस्तसाक्षिं सदसद्विहीनं प्रयाति शुद्धं परमात्मरूपम्।।" इति कैवल्यश्रुत्यनुसारेण अयमन्तरात्मैव निर्मलत्वेन परमात्मेति निरूपयति—

निर्धूते तत्प्रबोधेन मले संसारकारणे।
सामरस्यात् परात्मस्थात् परमात्मायमुच्यते।।२८।।

अयमन्तरात्मा संसारकारणे मलेऽज्ञाने तत्प्रबोधेन तच्छिवाद्वैतज्ञानेन निर्धूते सति निवारिते सति परात्मस्थात् परमात्मस्थात् सामरस्यात् समरसभावात् परमात्मेत्युच्यत इत्यर्थः।।२८।।

'सर्व जीवांच्या हृदयगुहेत निवास करणारा, दोषरहित, अद्वितीय, सर्वसाक्षी, व्यावहारिक सदसद्विहीन, परिशुद्ध अशा परमात्म्याचे स्वरूप जाणून घेणारा परमात्माच होतो,' अशा कैवल्यश्रुतीच्या वचनानुसार हा अंतरात्माच निर्मल होऊन परमात्मा होतो असे सांगतात—संसाराला कारणीभूत असणारे अज्ञान शिवाद्वैतज्ञानाने नष्ट झाल्यामुळे व परमात्म्याशी सामरस्यभाव प्राप्त झाल्याने हा अंतरात्मा परमात्मा म्हणविला जातो.।।२८।।

अथ कोऽयं परमात्मेत्यत्राह—

सर्वेषामात्मभेदानामुत्कृष्टत्वात् स्वतेजसा।
परमात्मा शिवः प्रोक्तः सर्वगोऽपि प्रकाशवान्।।२९।।

स्वतेजसा निजतेजसा सर्वगोऽपि सर्वव्यापकोऽपि प्रकाशवान् शिवः सर्वेषामात्मभेदानाम् उत्कृष्टत्वात् परमात्मेति प्रोक्त उच्यत इत्यर्थः।।२९।।

हा परमात्मा कोण? तर—स्वयंप्रकाशवान असणारा शिव आपल्या तेजाने सर्वत्र व्यापक असून तो सर्व आत्म्यांहून श्रेष्ठ असल्यामुळे त्याला परमात्मा म्हणतात.।।२९।।

अथ प्रकारान्तरेण तल्लक्षणमाह—

ब्रह्माण्डबुद्बुदस्तोमा यस्य मायामहोदधौ।
उन्मज्जन्ति निमज्जन्ति परमात्मा स उच्यते।।३०।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

स्पष्टम्।।३०।।

दुसऱ्याप्रकारे परमात्म्याचे लक्षण सांगतात—ज्याच्या मायारूपी महासमुद्रात ब्रह्मांडरूपी बुडबुड्यांचे समूह उत्पन्न होतात आणि विलय पावतात, त्याला परमात्मा असे म्हणतात. म्हणजेच प्रपंचाच्या उत्पत्तिस्थिती आणि लयाला कारणीभूत असणारा शिवच परमात्मा होय.।।३०।।

अथ तत्स्वरूपमेव दृष्टान्तपूर्वकं सूत्रत्रयेण कथयति—

यस्मिन् ज्योतिर्गणाः सर्वे स्फुलिङ्गा इव पावकात्।
उत्पत्य विलयं यान्ति तद्रूपं परमात्मनः।।३१।।

यस्मिन् वस्तुनि सर्वे ज्योतिर्गणाः समस्तजीवतेजःसमूहा वह्नेर्जाता विस्फुलिङ्गा इव उत्पत्य विलयं यान्ति, तत्परमात्मनो रूपं स्वरूपमित्यर्थः।।३१।।

आता त्याचे स्वरूप दृष्टांतपूर्वक तीन श्लोकांतून सागतात—अग्नीपासून जसे स्फुल्लिंग प्रादुर्भूत होतात आणि विलयही पावतात, तसे ज्योतिस्वरूप जीव त्या परमात्म्याषासून उद्‌भवतात आणि त्याच्यातच लय पावतात. असे त्या परमात्म्याचे स्वरूप आहे.।।३१।।

अथ प्रकारान्तरेणाह—

यस्मिन् समस्तवस्तूनि कल्लोला इव वारिधौ।
सम्भूय लयमायान्ति तद्रूपं परमात्मनः।।३२।।

यस्मिन् वस्तुनि भूम्यादिसमस्ततत्त्वानि समुद्रे बृहत्तरङ्गा इव सम्भूय लयमायान्ति, तत्परमात्मनो रूपम्।।३२।।

दुसऱ्या प्रकाराने वर्णन करतात—समुद्रात जशा मोठमोठया लाटा उत्पन्न होतात आणि लय पावतात, तशा प्रकारे भूम्यादिसर्व तत्त्वे ज्याच्या ठिकाणी उत्पन्न होऊन पुन्हा विलय पावतात त्याला परमात्मा म्हणतात.।।३२।।

पुनः प्रकारान्तरेणाह—

निरस्तमलसम्बन्धं निःशेषजगदात्मकम्।
सर्वतत्त्वोपरि प्रोक्तं स्वरूपं परमात्मनः।।३३।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

निवारिताणवादिमलसम्बन्धं नामरूपात्मकसकलजगज्जीवनभूतं परमात्मनः स्वरूपं भूम्यादिशिवान्तसकलतत्त्वोपरि प्रोक्तम्।।३३।।

आणखी अन्य रीतीने वर्णन करतात—त्रिमलसंबधरहित, नामरूपात्मक सर्व जगाला जीवनभूत असणारा, भूम्यादि शिवपर्यन्त छत्तीस तत्त्वांपेक्षा श्रेष्ठ असा तो परमात्मा आहे.।।३३।।

अथ परमात्मा कथं प्रकाशत इत्यत्राह—

यथा व्याप्य जगत्सर्वं स्वभासा भाति भास्करः।
तथा स्वशक्तिभिर्व्याप्य परमात्मा प्रकाशते।।३४।।

भास्करः स्वकान्त्या जगत्सर्वं व्याप्य यथा वर्तते, तथा परमात्मा धूमावत्यादिस्वकीयपञ्चशक्तिभिर्विश्वं व्याप्य प्रकाशत इत्यर्थः। तथाहि— सृज्यस्य पाञ्चभौतिकत्वाद् भूम्यां धूमावत्यपरपर्यायातिरोधानशक्तिः, जले पुष्टिलक्षणा पालनशक्तिः, तेजसि विश्वप्रकाशकतालक्षणा सृष्टिशक्तिः, वायौ शोषकतालक्षणा संहारशक्तिः, नभसि व्यापकशिवैकीकरणप्रवीणानुग्रहात्मिका विभुताशक्तिः। एवं पञ्चभिर्विश्वं व्याप्य वर्तत इत्यर्थः। उक्तोऽयमर्थः पञ्चाशिकाशास्त्रे—"धूमावती पृथिव्यां ह्लादाप्सु शुचौ तु भास्वती प्रथते। वायौ स्पन्दा विभ्वी नभसि व्याप्तं जगत् ताभिः।। धूमावती तिरोधौ भास्वत्यवभासनेऽध्वनां शक्तिः। क्षोभे स्पन्दा व्याप्तौ विभ्वी ह्लादा च पुष्टौ स्यात्।।" इति। एवं स्वशक्तिभिर्विश्वं व्याप्य वर्तत इत्यर्थः। अत्र स्वकान्त्या विश्वं व्याप्य भासमानस्य सूर्यस्य यथाऽभेदः, तथा शिवाद्विश्वस्याभेदो नाशङ्कनीयः, भूम्यादेः शक्तिरूपत्वात्, शक्तीनां शिवस्वभावत्वात् । नैवं विश्वं सारतेजोरूपम्, किन्तु सम्बन्धमात्रम्, सर्वांशे दृष्टान्ताभावाद् व्याप्तावेव दृष्टान्त इति।।३४।।

तो परमात्मा कसा प्रकाशित होतो? या विषयी सांगतात— सूर्य आपल्या कांतीने सर्व जगाला व्यापून जसा प्रकाशतो तसा परमात्मा धूमवती इत्यादी शक्तींनी जगभर व्यापून प्रकाशतो. कसा? तर, तो शिव आपल्या धूमवती शक्तीने पृथ्वीमध्ये, ल्हाद नावाच्या पालन शक्तीने जलामध्ये, भास्वती नावाच्या सृष्टिशक्तीने अग्नीमध्ये, स्पंद नावाच्या संहारशक्तीने वायूमध्ये आणि विभ्वी नावाच्या अनुग्रहशक्तीने आकाशामध्ये, अशा आपल्या पंचशक्तींनी पंचभूतात्मक प्रपंचात व्यापून प्रकाशित होतो. आपल्या तेजाने सर्व जगाला प्रकाशित करणारा सूर्य पदार्थांशी अभिन्न नाही. त्यांच्यात भेद आहे. परंतु शिव आणि प्रपंचाचे तसे नाही. कारण

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भूम्यादितत्त्वे शिवाची शक्तिरूपे असल्याने ती त्याच्याशी अभिन्न आहेत.।।३४।।

नन्वेवं विश्वव्यापकत्वेन भासमानत्वादीश्वरस्य विश्वविकारत्वं कस्मान्न सम्भवति? इत्याक्षेपस्योत्तरं वदन् परमात्मस्थलं समापयति—

विश्वतो भासमानोऽपि विश्वमायाविलक्षणः।
परमात्मा स्वयंज्योतीरूपो जीवात्मनां भवेत्।।३५।।

परमात्मा विश्वस्मिन् सर्वत्र भासमानोऽपि विश्वमायाविलक्षणो विश्वोपादानकारणीभूतो व्योमवद् विश्वगतषड्भावविकारदोषरहितः सन् सच्चिदानन्दस्वरूपेण जीवात्मनां संसारहेयबुद्धिसम्पन्नानां ज्योतीरूपो बुद्धिप्रकाशको भवतीति।।३५।।

इति परमात्मस्थलम्

परमात्मा अशा रीतीने विश्वव्यापक होऊन प्रकाशित होत असल्यास त्याच्या ठिकाणी विश्वाचे विकार का उत्पन्न होत नाहीत? या आक्षेपाचे उत्तर देऊन परमात्मस्थलाचे वर्णन संपवितात—परमात्मा विश्वात चहूकडे प्रकाशित होत असला तरी तो विश्वाला उपादान कारणीभूत अशा मायेपेक्षा विलक्षण असून आकाशाप्रमाणे विश्वात (अस्ति, जायते, वर्धते, विपरिणमते, अपक्षयिते, विनश्यति या) षड्भाव विकार दोषांनी विरहित होऊन, संसाराविषयी हेयबुद्धी उत्पन्न झालेल्या जीवांच्या बुद्धीला सच्चिदानंदस्वरूपाने प्रकाश देत राहातो.।।३५।।

अथ निर्देहागमस्थलम्

अथ—"आश्रयो द्वन्द्वमित्युक्तं द्वन्द्वत्यागात् परो दमः। जीवन्मुक्तः सदा योगी देहत्यागाद्विमुच्यते।।" इति देवीकालोत्तरवचनानुसारेण देहधर्मं निराकृत्य परमात्मस्वरूपभावनावतः शिवयोगिनो निर्देहागमस्थलं निरूपयति—.

देहिनोऽपि परात्मत्वभाविनो निरहङ्कृतेः।
निरस्तदेहधर्मस्य निर्देहागम उच्यते।।३६।।

परमात्मत्वभाविनोऽहङ्कारममकारशून्यस्य निरस्तदेहधर्मस्य निरस्तस्थूलत्वादिदेहधर्मवतो देहिनो देहवतः शिवयोगिनो निर्देहागमो निर्देहप्राप्तिरुच्यते, कथ्यत इत्यर्थः।।३६।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

'जीवात्मा देहाचा आश्रय घेऊन देहधर्मांचा अभिमानी झाल्यावर त्याला संसारद्वंद्वाची प्राप्ती होते. त्या द्वंद्वाचा त्याग केल्याने बहिरिंद्रिय निग्रहरूप दम-अवस्था प्राप्त होते. अशा प्रकारे दमसंपन्न झालेला जीवन्मुक्त योगी देहधर्माभिमानाचा त्याग केल्यावर विदेही अवस्था प्राप्त करतो', अशा देवीकालोत्तराच्या वचनानुसार देहधर्मांचा त्याग करून परमात्मस्वरूप भाव प्राप्त केलेल्या शिवयोग्याच्या निर्देहागमस्थलाचे निरूपण करतात अहंकार-ममकारशून्य होऊन परमात्मभाव प्राप्त करून घेतलेले शिवयोगी, स्थूलादि देहधर्मांचा त्याग केल्यामुळे देहधारी असले तरी त्यांना निर्देहस्थिती प्राप्त होते म्हणून याला निर्देहागम असे म्हणतात.।।३६।।

अथ परमात्मभाववतः शिवयोगिनो देहसम्बन्धो नास्तीति षड्भिः सूत्रैः प्रतिपादयति—

गलिते ममताहन्ते संसारभ्रमकारणे।
पराहन्तां प्रविष्टस्य कुतो देहः कुतो रतिः।।३७।।

शरीरः प्रीतिश्च कुत इत्यर्थः।।३७।।

परमात्मभाव प्राप्त झालेल्या शिवयोग्याला देहसंबध नसतो असे सहा श्लोकातून सांगतात—संसाराच्या भ्रमाला कारणीभूत अशा अहंकार-ममकारांचा नाश होऊन पराहंता प्राप्त करून घेतलेल्या शिवयोग्याला देह कसला आणि त्याच्यावरील प्रेम तरी कोठून असणार? अर्थात् त्याला शरीराचा अभिमान नसतो म्हणून त्याविषयी प्रेमही नसते.।।३७।।

केवले निष्प्रपञ्चौघे गम्भीरे चिन्महोदधौ।
निमग्नमानसो योगी कथं देहं विचिन्तयेत्।।३८।।

निवृत्तचराचरप्रपञ्चसमूहवति अगाधे चित्समुद्रे निमग्नचित्तः शिवयोगी देहं केन प्रकारेण चिन्तयेत्? न केनापीत्यर्थः।।३८।।

केवल, निष्प्रपंच आणि गंभीर अशा चैतन्यरूपी समुद्रात ज्याचे मन पूर्णपणे निमग्न झालेले आहे, असा शिवयोगी शरीराची चिंता कसा करील? अर्थात् करीत नाही.।।३८।।

अपरिच्छेद्यमात्मानं चिदम्बरमिति स्मरन्।
देहयोगेऽपि देहस्थैर्विकारैर्न विलिप्यते।।३९।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

स्वात्मानं परिच्छेदरहितचिदाकाशं स्मरन् शिवयोगी देहे सत्यपि देहस्थेन्द्रियविकारैर्न लिप्यत इत्यर्थः।।३९।।

आपला आत्मा अपरिच्छिन्न असा चिदाकाशरूप आहे, असे चिंतन करणारा शिवयोगी देहधारी असला तरी तो देहाच्या इंद्रियविकारांनी लिप्त होत नाही.।।३९।।

अखण्डसंविदाकारमद्वितीयं सुखात्मकम्।
परमाकाशमात्मानं मन्वानः कुत्र मुह्यति।।४०।।

स्वात्मानमखण्डाद्वितीयचिदानन्दाकारं परमाकाशं सन्तं मन्वानः "आकाशशरीरं ब्रह्म सत्यात्म प्राणारामं मनआनन्दं शान्तिसमृद्धम्" इति छान्दोग्यश्रुत्यनुसारेण जानन् शिवयोगी कुत्र कस्मिन्नधिकरणे शरीर्यहमिति मुह्यति? न कुत्रापि, ब्रह्मातिरिक्तदेशाभावादित्यर्थः।।४०।।

आपला आत्मा अखंड, अद्वितीय, चिदानंदस्वरूप असा पराकाशरूप आहे, असे जाणणारा तो शिवयोगी कशाने मोहित होईल? आपल्या पेक्षा दुसरी वस्तूच नसल्याचे तो जाणत असल्यामुळे वस्तुप्राप्ती साठी होणारा मोह त्याच्या ठिकाणी नसतो हे तात्पर्य.।।४०।।

नन्वाकाशस्यापि घटाद्युपाधिना परिमितिर्दृश्यत इत्यत्राह—

उपाधिविहिता भेदा दृश्यन्ते चैकवस्तुनि ।
इति यस्य मतिः सोऽयं कथं देहमितो भवेत्।।४१।।

स्पष्टम्।।४१।।

आकाश अखंड असले तरी ते जसे घटादि उपाधीमुळे घटाकाश, मठाकाश अशा परिच्छिन्नतेला कारण होते, तसे अखंड चिदाकाशच देहादिउपाधीमुळे भिन्न भिन्न व्यवहाराला कारण होते, असे जाणणारा शिवयोगी परिच्छिन्न देहधारी कसा होईल? अर्थात् होणार नाही.।।४१।।

अथ तत्कुत इत्यत्राह—

भेदबुद्धिः समस्तानां परिच्छेदस्य कारणम् ।
अभेदबुद्धौ जातायां परिच्छेदस्य का कथा।।४२।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

घटाकाशदृष्टान्तेन भेदस्तावदौपाधिक इति ज्ञाते, अभेदबुद्धौ दृढायां वस्तुपरिच्छेदकारणीभूतभेदबुद्धेः शिथिलत्वात् परिच्छेदवार्ता न कापीत्यर्थः।।४२।।

तो देहादिउपाधींनी परिमित का होत नाही? तर—घटाकाश, मठाकाश असा भेदव्यवहार केवळ औपाधिक असतो. तो वास्तविक नाही असे ज्ञान झाल्यावर, चराचर प्रपंच परमात्म्यापेक्षा भिन्न असलेला दिसत असला तरी केवळ मायेच्या प्रभावाने दिसणारा हा भेद खरा नाही अशी अद्वैतबुद्धी जेव्हा निर्माण होते, तेव्हा द्वैतभावनेची वार्ता कुठे असणार? अर्थात् द्वैतभावना उरत नाही.।।४२।।

अथ तदद्वैतं प्रकटीकृत्य निर्देहागमस्थलं समापयति—

शिवोऽहमिति यस्यास्ति भावना सर्वगामिनी।
तस्य देहेन सम्बन्धः कथं स्यादमितात्मनः।।४३।।

शिवोऽहमिति सर्वव्यापकीभूता शिवाद्वैतभावना यस्य शिवयोगिनोऽस्ति, तस्य अपरिमितात्मनः परिच्छिन्नशरीरेण सम्बन्धः कथं स्यात्? न कथञ्चिदपीत्यर्थः।।४३।।

इति निर्देहागमस्थलम्

आता अद्वैत स्थितीचे वर्णन करून निर्देहागमस्थलाची समाप्ती करतात—मी शिवच आहे, शिवापेक्षा भिन्न वस्तू कोणतीही नाही अशी व्यापक शिवाद्वैतभावना ज्या शिवयोग्याची असते, त्या अखंड परमात्मा स्वरूप शिवयोग्याला परिच्छिन्न देहधर्माचे विकार कसे असतील? अर्थात् त्याला देहसंबंध आणि देहाचे विकारही नसतात.।।४३।।

अथ निर्भावागमस्थलम्

अथ—"नैवोर्ध्वं धारयेच्चित्तं न मध्यं नाप्यधः क्वचित् । अन्तर्भावविनिर्मुक्तं सदा कुर्यान्निराश्रयम्।।" इति देवीकालोत्तरवचनानुसारेण निर्देहागमसम्पन्नस्य शिवयोगिनो निर्भावागमस्थलं निरूपयति—

व्यतिरेकात् स्वरूपस्य भावान्तरनिराकृतेः।
भावो विकारनिर्मुक्तो निर्भावागम उच्यते।।४४।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

स्वरूपस्य निर्देहस्वरूपस्य व्यतिरेकाद् व्यतिरिक्तत्वाद् भावान्तर-निराकृतेरन्यभावनिराकरणाद् विकारनिर्मुक्त इन्द्रियविकारविनिर्मुक्तो भावो मनोभावो निर्भावागम इत्युच्यत इत्यर्थः।।४४।।

'शरीराच्या ऊर्ध्वभागी असलेल्या सहस्रारचक्रात अथवा मध्यावर असलेल्या अनाहतचक्रात किंवा अधोभागी असलेल्या मूलाधार चक्रात, यापैकी कोठेही मन स्थिर न करता ते सर्वभावरहित होऊन कोणत्याही आश्रयाचा अवलंब न करता स्वतःशीच स्वस्थ होऊन राहावे' या देवीकालोत्तर वचनानुसार निर्भावागम स्थलाचे वर्णन करतात—आपल्या स्वरूपाखेरीज अन्य भावांचे निराकरण करून इंद्रियविकाररहित मनोभावनेला निर्भावागम असे म्हणतात.।।४४।।

अथ तन्निर्भावलक्षणं पञ्चभिः सूत्रैः प्रतिपादयति—

अहं ब्रह्मेति भावस्य वस्तुद्वयसमाश्रयः।
एकीभूतस्य चिद्व्योम्नि तदभावो विनिश्चितः।।४५।।

अहं ब्रह्मेति भावस्याहमिति ब्रह्मेति वस्तुद्वयाक्षेपो भवेत्, चिद्व्योम्नि एकीभूतस्य समरसीभूतस्य भावस्य तदभावो वस्तुद्वयाक्षेपाभावो विनिश्चितो विशेषेण निश्चित इत्यर्थः।।४५।।

त्या निर्भावाचे लक्षण पाच श्लोकांत सांगतात—अहंब्रह्मास्मि अर्थात् मी ब्रह्म आहे, या भावनेत अहम् आणि ब्रह्म या वस्तुद्वयाची अपेक्षा असते. परंतु चिदाकाशरूप परब्रह्मात समरस झालेल्याला मी आणि ब्रह्म या दोन्ही वस्तू उरत नाहीत. म्हणून त्या अवस्थेला निर्भाव असे म्हणतात.।।४५।।

अथाहं ब्रह्मास्मीति भावस्य कोटिद्वयावगाहित्वेन विकल्पघटितत्वाद् अहमित्येकभावस्य विकल्पशून्यत्वाद् एकभावेन स्थितस्य मायिकजातिभेदा-दिवासना नास्तीत्याह—

एकभावनिरूढस्य निष्कलङ्के चिदम्बरे।
क्व जातिवासनायोगः क्व देहित्वं परिभ्रमः।।४६।।

निरञ्जने चिदाकाशे तादात्म्येनारूढस्य शिवयोगिनो जातिवर्णाश्रम-वासनासम्बन्धः क्व? देहित्वं शरीरवत्त्वं क्व? संसारचक्रपरिभ्रमणं च क्वेत्यर्थः।।४६।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अहंब्रह्मास्मि या भावात पक्षद्वयात्मक ज्ञान असल्यामुळे ते ज्ञान विकल्पघटित असते. अहम् हा भाव विकल्पशून्य असल्यामुळे अशा एकभाववस्थेत असणाऱ्याला जातिवर्णाश्रमादिकांच्या वासना नसतात असे सागतात—निरंजन अशा चिदाकाशात तादात्म्याने एकरूप झालेल्या शिवयोग्याला जातिवर्णाश्रमसबंध, शरीरसबंध आणि संसार चक्रातील परिभ्रमण कोठून असणार? अर्थात् या सर्वांपासून तो अलिप्त असतो.।।४६।।

नन्वेवं चेद् ध्यानादीनां का गतिरित्यत्राह—

शून्ये चिदम्बरे स्थाने दूरे वाङ्मानसाध्वनः।
विलीनात्मा महायोगी केन किं वापि भावयेत्।।४७।।

"यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह" इति श्रुतेर्वाङ्मनोमार्गागोचरे नीलपीताद्याकारशून्ये चिदाकाशस्थाने तादात्म्यापन्नः शिवयोगी केन प्रकारेण किं वा वस्तु भावयेत्? केनापि प्रकारेण किमपि वस्तु भावनायोग्यं न सम्भवतीत्यर्थः।।४७।।

अशा निर्भावावस्थेत ध्यानादिकाची गती काय? तर वाणी आणि मनाला अगोचर असणाऱ्या, नीलपीतादी आकारशून्य असलेल्या, चिदाकाशात तादात्म्य पावलेल्या शिवयोग्याने कोणत्याप्रकारे व कशाची भावना करावी? अर्थात् त्याला कोणत्याही प्रकारे कसल्याही वस्तूची भावना (ध्यान) होऊ शकत नाही.।।४७।।

ननु विधिनिषेधवासनाशून्यत्वे निन्दाप्राप्तिर्भवेदित्यत्राह—

अविशुद्धे विशुद्धे वा स्थले दीप्तिर्यथा रवेः।
पतत्येवं सदाद्वैती सर्वत्र समवृत्तिमान्।।४८।।

रवेः सूर्यस्य दीप्तिः प्रकाशो विशुद्धस्थलेऽविशुद्धस्थले च यथा पतति, एवं शिवाद्वैती सदा सर्वत्र समवृत्तिमान् समानबुद्धिवृत्तिमान् सन् सञ्चरतीत्यर्थः।।४८।।

असे विधिनिषेध-भावशून्य झाल्यावर लोकांकडून निंदा होईल ना? उत्तर असे की, सूर्याचा प्रकाश विशुद्ध अथवा अशुद्ध स्थलावर जसा समानतेने पडतो, तशाप्रकारे हा शिवाद्वैती सर्व

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ठिकाणी समान बुद्धी ठेवून संसार करीत असतो. अर्थात् स्तुती अथवा निंदा त्याच्या दृष्टीने समान असते.।।४८।।

कथं सञ्चरतीत्यत्राह—

न बिभेति जरामृत्योर्न क्षुधाया वशं व्रजेत्।
परिपूर्णनिजानन्दं समास्वादन् महासुखी।।४९।।

महासुखी भूत्वा सञ्चरतीत्यर्थः। शिष्टं स्पष्टम्।।४९।।

इति निर्भावागमस्थलम्

तो लोकांत कसा संचार करतो? तर—जरामरणाला न भिता, तहान-भुकेला वश न होता, परिपूर्ण अशा स्वात्मानंदाचा आस्वाद घेत महासुखी होऊन तो लोकांमध्ये संचार करीत असतो.।।४९।।

अथ नष्टागमस्थलम्

अथैवं निर्भावागमसम्पन्नस्य भेदज्ञानाभावेन तन्नष्टागमस्थलं प्रकाशयति—

भेदशून्ये महाबोधे ज्ञात्रादित्रयहीनकः।
ज्ञानस्य नष्टभावेन नष्टागम इहोच्यते।।५०।।

द्वैतशून्ये महाशिवज्ञाने ज्ञातृज्ञानज्ञेयात्मकत्रिपुटीमयप्रपञ्चशून्यत्वाद् इह निर्भावागमसम्पन्नशिवयोगिविषये ज्ञानस्य भेदज्ञानस्य नष्टभावेन नष्टत्वेन नष्टागम इत्युच्यत इत्यर्थः।।५०।।

अशी निर्भावस्थिती प्राप्त झालेल्यास भेदज्ञान उरले नसल्यामुळे भेदज्ञानरहित अशा नष्टागमस्थलाचे वर्णन करतात— द्वैतशून्य अशा महाशिवज्ञानात ज्ञाता, ज्ञान आणि ज्ञेय असा त्रिपुटिमय प्रपंच नसल्यामुळे निर्भावागमसंपन्न अशा शिवयोग्याच्या ज्ञानात भेदज्ञान अर्थात् त्रिपुटिभेद नष्ट झाला असल्यामुळे याला नष्टागम असे म्हणतात.।।५०।।

ननु शिवयोगिनः कथं त्रिपुटीमयप्रपञ्चशून्यत्वमित्यत्राह—

अद्वैतवासनाविष्टचेतसां परयोगिनाम्।
पश्यतामन्तरात्मानं ज्ञातृत्वं कथमन्यथा।।५१।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अन्यथा ज्ञातृत्वं स्वातिरिक्तपदार्थान्तरज्ञातृत्वमित्यर्थः। अन्तः स्वहृदय इत्यर्थः। शिष्टं स्पष्टम्।।५१।।

या शिवयोग्याला त्रिपुटिमय प्रपंचशून्यत्व कसे प्राप्त होते? तर—अद्वैतवासनेने ज्यांची मने पूर्णपणे भरलेली आहेत आणि जे आपल्या अंतरात्म्यालाच पाहात आहेत अशा परयोग्यांना स्वतःखेरीज अन्य पदार्थांचे जाणतेपण कसे असेल? त्यांना अन्य पदार्थांची जाणीव नसल्यामुळे ते त्रिपुटिव्यवहारशून्य होतात.।।५१।।

ननु तस्यान्यथा ज्ञातृत्वाभावे किं प्रकाशत इत्यत्राह—

अकर्ताऽहमवेत्ताऽहमदेहोऽहं निरञ्जनः।
इति चिन्तयतः साक्षात् संविदेव प्रकाशते।।५२।।

एवं चिन्तयतः शिवयोगिनः "ज्ञातृज्ञानज्ञेयविहीनोऽपि सदाज्ञानम्" इति श्रुतेस्त्रिपुटीमयप्रपञ्चनाशं कृत्वा विशिष्टशिवाद्वैतज्ञानमेव प्रकाशते। अयमेव नष्टागमप्रकाश इति भावः।।५२।।

अन्य पदार्थांची जाणीव नसेल तर त्याला काय जाणवते, दिसते? तर—मी कर्ता नाही, मी जाणणारा नाही, मी देहरहित आणि दोषरहित आहे, असे चिंतिणारा ज्ञाता-ज्ञान आणि ज्ञेयात्मक त्रिपुटिरहित होऊन त्याला केवळ शिवाद्वैत ज्ञानच प्रकाशित होते म्हणून त्याला नष्टागमप्रकाश म्हणतात.।।५२।।

अथ तस्य ज्ञेयान्तरं च नास्त्येवेत्याह—

निरस्तभेदजल्पस्य निरीहस्य प्रशाम्यतः।
स्वे महिम्नि विलीनस्य किमन्यज्ज्ञेयमुच्यते।।५३।।

निरस्तभेदजल्पस्य "द्वितीयाद्भयमेव पश्यन्ति" इति बृहदारण्यकश्रुते-र्युक्त्या च निराकृतद्वैतवाक्यस्य प्रशाम्यतो रागद्वेषरहितस्य स्वे महिम्नि स्वविमर्शे विलीनस्य तदेकनिष्ठस्य निरीहस्य विरक्तस्य शिवयोगिनो ज्ञेयं ज्ञातुं योग्यम् अन्यत्किम्? न किमपीत्यर्थः। नन्वत्र युक्तिः किमिति चेत्, उच्यते— भेदो नाम किमन्योन्याभावो वा वैधर्म्यं वा वस्तुस्वरूपं वेति त्रेधा विकल्पः। आद्ये तत्रान्यत्वं भावस्वभावो वा भेदनिबन्धनः कश्चिदुपाधिर्वेति द्विधा विकल्पः। तत्र नाद्यः, भावस्याभावत्वप्रसङ्गात्, अन्यत्वस्य भावस्वभावत्वात्, भावादन्योऽभाव इति प्रसिद्धत्वात्। ननु भावानां बाहुल्याद् भावस्य भावान्तरान्यत्वं स्वभाव इति चेत्, अस्तु,

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तस्य विशेषघटितत्वात् । इह तु भेदसामान्यलक्षणप्रविष्टान्यत्वस्य प्रश्नविषयत्वेन न तदुत्तरं भवितुमर्हति, तस्य भेदसिद्ध्यनन्तरभावित्वात्। किञ्च, भावस्य भावान्तरान्यत्वं स्वभाव इति नियमस्तत्तद्भावकृतो वा तद्व्यतिरिक्तमहापुरुषकृतो वा? नाद्यः, घटादिभावस्य जडत्वेन कर्तृत्वाभावात्। न द्वितीयः, कल्पनायाः प्रागनन्यत्वेनान्तरालिकतयान्यत्वस्य तत्स्वभावत्वासम्भवात्। ननु न केनापि कृतः, किन्तु स्वतःसिद्ध इति चेत्, तर्हि स्वप्रकाशोऽपि भवेत्, ब्रह्मवत् स्वतःसिद्धत्वात्। ननु ब्रह्मापि मानान्तरसिद्धमिति न स्वतःसिद्धमिति वाच्यम्, नित्यत्वेन कारकव्यापारासम्भवात्, स्वप्रकाशत्वेन ज्ञापकव्यापारासम्भवात्, अन्यथा जडत्वप्रसङ्गात्। नाप्यन्यत्वं भेदनिबन्धनः कश्चिदुपाधिः, आत्माश्रयादिदोषप्रसङ्गात्। नापि द्वितीयः, घटे पटत्वं नास्ति पटे घटत्वं नास्ति वैधर्म्यम्, एवंविधनिश्चयस्य घटपटभेदसिद्ध्यनन्तरभावित्वात्। न च घटपटयोस्तन्तुमयत्वमृण्मयत्वाभ्यां भेदः सिद्ध एवेति वाच्यम्, घट एव मृण्मयत्वं पट एव तन्तुमयत्वमित्यसाधारणप्रतीतेर्घटपटभेदसिद्ध्यधीनत्वात्, तस्या अद्यापि साध्यकोटिप्रविष्टत्वात्.। किञ्च, तन्तुमयत्वमृण्मयत्वयोर्भेदस्तत्र तदवयवभेदादिति परमाणुपर्यालोचनायां निरवयवत्वेन भेदाग्रहाद् मूलक्षयकारिण्यनवस्था स्यादिति। नापि तृतीयः, वस्तुस्वरूपं हि वस्त्वन्तरस्वरूपाननुगामीत्यङ्गीकरणीयम्, अन्यथा स्वरूपसाङ्कर्यापत्तेः, एवं चेदं रजतमित्यत्र शुक्तिरेव रजताकारेण निश्चीयत इति भ्रान्तिज्ञानोच्छेदप्रसङ्गात्। दूरत्वादिदोषवशात् तथा निश्चीयत इति चेत्, तर्हि इङ्गालादिकमपि रजतत्वेन कुतो न निश्चीयते? न च विशेषदर्शनसामग्री प्रतिबन्धिकेति वाच्यम्, शुक्तिकायामपि विशेषदर्शनसामग्रीसत्त्वेनानारोपप्रसङ्गात् । अविशेषदर्शनसामग्रीप्राबल्यादारोपः सम्भवतीति चेन्न, वस्त्वन्तरे वस्त्वन्तरस्वरूपमनुप्रविष्टमित्यङ्गीकरणीयत्वेनाननुप्रविष्टमिति वक्तुमशक्यत्वेन स्वरूपसाङ्कर्यापत्तेरनिवार्यत्वेन भेदवादोच्छेदप्रसङ्गात्, पूर्वोक्तदोषप्रसङ्गाच्च। किञ्च, वस्तुनि भासमानो भेदस्तत्तद्वस्तुस्वरूपाभिन्नो वा भिन्नो वा स्यात्? नाद्यः, अत्यन्तविरोधाद् भेदस्याभेदतासम्भवात् । न द्वितीयः, सोऽपि भेदः कीदृश इत्युपर्युपरि विचार्यमाणोऽनवस्थामेवोपस्थापयतीति विश्रान्त्यभावात्। नाप्यभेदात्यन्ताभावो भेदः, आत्माश्रयप्रसङ्गात् । नास्त्यैक्यप्रतियोगी, एकत्वस्य प्रतियोग्यभावात्, द्वित्वादीनां तन्मूलकत्वात्। नापि विभागः, तस्य संयोगपूर्वकत्वेन पूर्वापरदिशोः पूर्वपश्चिमाचलयोश्च कदापि संयोगाभावेन भेदाभावप्रसङ्गात् । तस्माद् गत्यन्तराभावेन भेदव्यवहारसिद्ध्यर्थं सकलसामरस्यात्मनो महेश्वरस्येच्छावशात् सागरतरङ्गन्यायेनाभेदपर्यवसायित्वेन कल्पितविभागो भेद इत्यङ्गीकरणी-

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

यत्वेनाप्यभेद एव सिद्धयतीति शिवाद्वैतसिद्धान्तवादिनां युक्तिरीदृशीति विचक्षणैर्विमर्शनीयेति।।५३।।

नष्टागम शिवयोग्याला जाणून घेण्यास योग्य अशी दुसरी वस्तू नाही, असे सांगतात—'दुसऱ्या वस्तू पासून भय उत्पन्न होते,' अशी बृहदारण्य-श्रुती असल्यामुळे हा नष्टागम शिवयोगी भेदभावनेचे निराकरण करून, रागद्वेषादिरहित होऊन स्वविमर्शात विलीन झालेला असतो. अशा विरक्त शिवयोग्याला ह्या प्रपंचात जाणून घेण्यास योग्य अशी कोणती वस्तू आहे? अर्थात् कोणतीही नाही. म्हणजे त्याला झालेल्या शिवज्ञानामुळे जगातील सर्व वस्तू शिवमय दिसतात. शिवाशिवाय भिन्न अशी कोणतीही वस्तू त्याच्या दृष्टीला दिसत नसल्यामुळे त्याच्याठिकाणी भेदभावना मुळीच उरलेली नसते. त्याच्या दृष्टीने त्याच्या शिवाय अन्य कोणतीही वस्तू नसल्यामुळे त्याला भय वाटण्याचा प्रसंगच नसतो.।।५३।।

अथोक्तसूत्रत्रयार्थमेव विशेषयति—

एकीभूते निजाकारे संविदा निष्प्रपञ्चया।
केन किं वेदनीयं तद्वेत्ता कः परिभाष्यते।।५४।।

निजाकारे स्वस्वरूपे निष्प्रपञ्चया संविदा शिवाद्वैतज्ञानेन एकीभूते सति सामरस्ये सति केन किं वस्तु वेदनीयं ज्ञेयं स्यात्, तद्वेत्ता ज्ञानेन ज्ञेयवेत्ता च क इति परिभाष्यते, "नातः परं वेदितव्यं हि किञ्चित्" इति श्रुतेः, "वेदितव्यं न किञ्चन" इत्यागमोक्तेश्चान्योन्याभावनिबन्धन-भेदघटितमायिकत्रिपुटीमयप्रपञ्चदर्शनं शिवयोगिनां नास्तीत्यर्थः।।५४।।

पूर्वीच्या तीन श्लोकांतील अर्थाचे विशेष स्पष्टीकरण करतात-शिवाद्वैतज्ञानाचे स्वस्वरूपात सामरस्य प्राप्त झाल्यावर कशाने व काय जाणून घ्यावयाचे आहे? व ते जाणून घेणारा तरी कोण? अर्थात् स्वस्वरूपात लीन झालेल्या शिवयोग्याला ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय अशा त्रिपुटिरूप प्रपंचाचे दर्शनच होत नाही.।।५४।।

तर्हि कीदृशं प्रपञ्चदर्शनं स्यादित्यत्र वदन् नष्टागमस्थलं समापयति—

महासत्ता महासंविद् विश्वरूपा प्रकाशते।
तद्भिना नास्ति वस्त्वेकं भेदबुद्धिं विमुञ्चतः।।५५।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

महासत्ता गगनकुसुममित्यादौ अर्थवत्पदयोरेव संमेलनरूपसंयोगात् तदुपरि विभक्तियोगाच्चार्थवत्त्वाद् गगनकुसुममङ्गीकरणीयमिति सदसत्सकल-वस्तुव्यापकत्वान्महासत्तेत्युच्यते, हृदयोल्लेखं विना गगनकुसुममिति व्यवहारासम्भवान्महासंविदित्युच्यते। एवं स्वशिरच्छायानुल्लङ्घनमिव सदस-द्विश्वव्यापकीभूतं ब्रह्मचैतन्यमेव जगद्रूपेण भासते, न तद्व्यतिरिक्तं किञ्चिदिति भेदबुद्धिं विमुञ्चतः शिवयोगिनो महासत्तास्फुरत्ताकचैतन्यं विना एकं वस्तु अन्यद्वस्तु नास्ति, सागरतरङ्गन्यायेन तद्बुद्धेरभेद-विश्रान्तत्वादिति।।५५।।

इति नष्टागमस्थलम्

असे असेल तर त्याला कोणत्या प्रपचाचे दर्शन घडते असे विचारल्यास उत्तर सागतात—सदसद्रूप अशा सकलवस्तूमध्ये व्यापून असलेले महाज्ञान-स्वरूप असे ब्रह्मचैतन्यच जगद्स्वरूप होऊन प्रकाशते. म्हणून भेदबुद्धी नाहीशी झालेल्या या शिवयोग्याला सागरतरंगन्यायाने हे विश्व ब्रह्मरूपानेच दिसते.।।५५।।

अथादिप्रसादिस्थलम्

अथ—"यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै। तं महादेवमात्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये।।" इति श्वेता-श्वतरमन्त्रानुसारेण नष्टागमसम्पन्नशिवयोग्येव सर्वादिभूतशिवप्रसादवानित्या-दिप्रसादीत्युच्यत इति तदीयस्थलं प्रतिपादयति—

सर्वाधिष्ठातृकः शम्भुरादिस्तस्य प्रसादतः।
आदिप्रसादीत्युक्तोऽयं निर्विकारपदे स्थितः।।५६।।

विश्वाधारभूमित्वात्तन्नियामकत्वाच्छम्भुरादिः सृष्ट्यादिपञ्चकृत्यमूल-कारणम् । तस्य सर्वादिभूतस्य शम्भोः प्रसादतो निर्विकारपदे विकार-रहितनष्टागमस्थले स्थितोऽयं शिवयोगी आदिप्रसादी आदिप्रसाद-वानित्यर्थः।।५६।।

'ज्याने सृष्टीच्या आरंभी हिरण्यगर्भ ब्रह्म्याला निर्माण केले, त्या ब्रह्म्याला ज्याने सर्व वेदांचे ज्ञान दिले, सर्व जीवात्म्यांच्या बुद्धीला प्रकाशित करणाऱ्या अशा त्या महादेवाला मुमुक्षू असा मी शरण जातो,' या श्वेताश्वर उपनिषद्-वचनानुसार नष्टागमसंपन्न अशा शिवयोग्याने, सर्वांना आदिभूत अशा शिवाला शरण जाऊन त्याचा प्रसाद (अनुग्रह) प्राप्त केल्यामुळे त्याला आदिप्रसादी

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

म्हणतात. आता त्या आदिप्रसादिस्थलाचे प्रतिपादन करतात— विश्वाचा आधार आणि नियामक अशा शंभूला आदि असे म्हणतात. अर्थात् सृष्ट्यादिपंचकृत्यांना मूळकारण असलेल्या त्या परमात्माच्या प्रसादाने अर्थात् अनुग्रहाने विकाररहित अशी स्थिती प्राप्त करून घेतलेला तो नष्टागमसंपन्न शिवयोगी आदिप्रसादी म्हणून ओळखला जातो.।।५६।।

अथ तस्य महत्त्वं चतुर्भिः सूत्रैः प्रतिपादयति—

अनेकजन्मशुद्धस्य निरहङ्कारभाविनः।
अप्रपञ्चस्यादिदेवः प्रसीदति विमुक्तये।।५७।।

अनेकजन्मभिः शुद्धात्मनः परिच्छिन्नदेहाद्यभिमानशून्यस्य अप्रपञ्चस्य प्रापञ्चिकभेदरहितस्य शिवयोगिन आदिदेवः सर्वादिदेवः शिवो विमुक्तये परमोक्षाय प्रसीदति प्रसन्नो भवतीत्यर्थः।।५७।।

आता त्याचे महत्त्व चार श्लोकांत सांगतात—अनेक जन्मात संपादन केलेल्या निष्काम पुण्यामुळे परिशुद्धात्म झालेला, परिच्छिन्न अशा देहादिकांचा अभिमान नसलेला आणि प्रापंचिक भेदरहित अशा शिवयोग्याला मोक्ष देण्यासाठी आदिदेव असा परमात्मा त्याच्यावर अनुग्रह करतो.।।५७।।

शिवप्रसादसम्पत्त्या शिवभावमुपेयुषि।
शिवादन्यज्जगज्जालं दृश्यते न च दृश्यते।।५८।।

शिवप्रसादप्राप्त्या शिवत्वमुपेयुषि विषये जगज्जालं जगत्समूहं शिवादन्यदिति दृश्यते, इदन्त्वेन दृश्यं सन्न च दृश्यते। भेदस्य निराकृतत्वात् सागरतरङ्गन्यायेनाभेदेन दृश्यत इत्यर्थः।।५८।।

शिवप्रसादाच्या प्राप्तीने शिवभावसंपन्न झालेल्या त्या शिवयोग्याला हा जगाचा समूह शिवापेक्षा भिन्न असा दिसत नाही. अर्थात् त्याच्या भेदबुद्धीचा नाश झाल्यामुळे सागरतरंग न्यायाने सर्व काही शिवमय आहे, अशा दृष्टीनेच तो पाहात असतो.।।५८।।

शम्भोः शिवप्रसादेन संसारच्छेदकारिणा।
मोहग्रन्थिं विनिर्भिद्य मुक्तिं यान्ति विवेकिनः।।५९।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

नित्यानित्यविवेकिनः संसारच्छेदकारिणा शिवप्रसादेनैव अज्ञानग्रन्थिं विदार्य परमोक्षं यान्तीत्यर्थः।।५९।।

नित्यानित्यविवेकसंपन्न असे शिवयोगी संसारनिवृत्तीला कारण असणाऱ्या शिवाच्या अनुग्रहानेच अज्ञानग्रंथीचा भेद करून परमोक्ष मिळवितात.।।५९।।

ननु शिवप्रसादेन विना मुक्तिर्नास्ति वेत्यत्राह—

विना प्रसादमीशस्य संसारो न निवर्तते।
विना सूर्योदयं लोके कुतः स्यात् तमसो लयः।।६०।।

स्वष्टम् ।।६०।।

शिवप्रसादाशिवाय मुक्ती मिळत नाही काय? तर—सूर्योदय झाल्याशिवाय जगातील अंधाराचा जसा नाश होत नाही, तशा प्रकारे शिवप्रसादाविना संसाराची निवृत्ती होत नाही, अर्थात् मुक्ती मिळत नाही.।।६०।।

अथ शिवस्य सर्वात्मस्वपक्षपातेन कृपाप्रसादं संसूच्यादिप्रसादिस्थलं समापयति—

सर्वानुग्राहकः शम्भुः केवलं कृपया प्रभुः।
मोचयेत् सकलान् जन्तून् न किञ्चिदिह कारणम्।।६१।।

प्रभुः स्वतन्त्रः सर्वानुग्राहकः सर्वहितोऽपि शम्भुः शिवः केवलं कृपयैव सकलान् जन्तून् प्राणिनो मोचयेत् पाशमुक्तान् कुर्यात्, इह पाशमोचनविषये शम्भोः किञ्चित्कारणं च नास्ति, सर्वानुग्रहकृत्यस्य तत्स्वभावत्वादिति।।६१।।

इत्यादिप्रसादिस्थलम्

शिव पक्षपाताविना सर्व जीवांवर अनुग्रह करतो असे सागून या आदिप्रसादि-स्थलाचा समारोप करतात—स्वतत्र आणि सर्वानुग्राहक असा शिव केवळ आपल्या कृपेने सर्व प्राण्याना संसारपाशापासून मुक्त करतो. सर्वावर अनुग्रह करणे हा शिवाचा स्वभाव असल्यामुळे कोणत्याही अपेक्षेविना तो सर्वांना मुक्त करतो.।।६१।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अथान्त्यप्रसादिस्थलम्

अथ—"अणोरणीयान् महतो महीयानात्मास्य जन्तोर्निहितो गुहायाम्। तमक्रतुं पश्यति वीतशोको धातुः प्रसादान्महिमानमीशम्।।" इति कठवल्लीश्रुत्युक्तप्रकारेण तदादिप्रसाद्येव सर्वाश्रयः सन् अन्त्यस्य शिवस्यानुभवप्रसादवानित्यन्त्यप्रसादिंस्थलं निरूपयति—

लयः सर्वपदार्थानामन्त्य इत्युच्यते बुधैः।
प्रसादोऽनुभवस्तस्य तद्वानन्त्यप्रसादवान्।।६२।।

सर्वपदार्थानां भूम्यादिशिवान्तपदार्थानां लयो लयाश्रयः परशिव एवान्त्यः सर्वान्त्य इति बुधैरुच्यते। तस्य सर्वान्त्यस्य शिवस्य अनुभवः साक्षात्कार एव प्रसादः, तद्वान् तदनुभवी, आदिप्रसाद्येवान्त्यप्रसादवानित्युच्यत इत्यर्थः।।६२।।

'अणुपेक्षाही अणू, महतापेक्षा महान् असा आत्मा प्रत्येक प्राण्याच्या हृदयगुहेत निवास करतो. वीतशोकी असे योगी अकर्ता आणि महिमाशाली अशा या आत्म्याचा साक्षात्कार परमात्म्याच्या अनुग्रहाने करून घेतात,' अशा या कठोपनिषदाच्या वचनानुसार या पूर्वी वर्णिलेला आदिप्रसादीच प्रपंचाच्या अंत्यस्थानी असणाऱ्या परशिवाचा अनुग्रह मिळवून तो अत्यप्रसादी होतो. आता त्या अत्यप्रसादिस्थलाचे निरूपण करतात —भूम्यादि शिवतत्त्वापर्यन्त सर्व पदार्थांच्या लयाला आश्रयीभूत असणाऱ्या परशिवाला वीरशैवशास्त्रज्ञ अंत्य या नावाने संबोधितात. अशाप्रकारे सर्वांच्या अंती असणाऱ्या शिवाच्या साक्षात्काराला अंत्यप्रसाद असे म्हणतात. तो प्रसाद ज्याला प्राप्त होतो तो अंत्यप्रसादी होय. म्हणजेच प्रपचाच्या लयाचे चिंतन करून त्या लयाला आश्रयीभूत असणाऱ्या शिवाच्या साक्षात्काररूप प्रसादाचा जो अनुभव घेतो त्याला अत्यप्रसादी म्हणतात.।।६२।।

अथ सर्वपदार्थलयप्रकारं सूत्रद्वयेन कथयति—

देवतिर्यङ्मनुष्यादिव्यवहारविकल्पना।
मायाकृता परे तत्त्वे तल्लये तत्क्षयो भवेत्।।६३।।

तल्लये मायालय इत्यर्थः। शिष्टं स्पष्टम्।।६३।।

सर्व पदार्थांच्या लयचिंतनाचे वर्णन दोन श्लोकांत करतात—हा देव, हा तिर्यक-प्राणी आणि हा मनुष्य असा जो भेदव्यवहार

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

असतो तो मायाकल्पित होय. ही माया परमात्म्यात विलीन झाल्यावर त्या मायेपासून उत्पन्न झालेले सर्व विकारही नाहीसे होतात.।।६३।।

अथ कथं मायाक्षय इत्यत्राह—

साक्षात्कृते परे तत्त्वे सच्चिदानन्दलक्षणे।
क्व पदार्थपरिज्ञानं कुतो ज्ञातृत्वसम्भवः।।६४।।

सच्चिदानन्दस्वरूपे परब्रह्मणि प्रत्यक्षीकृते सति मायाया निवृत्तत्वात् तत्कल्पितपदार्थपरिज्ञानं क्व? ज्ञातृत्वसम्भवो ज्ञेयज्ञानातिरिक्तज्ञातृत्वस्य आविर्भावश्च क्व? ज्ञेयाद्यपेक्षया ज्ञातृत्वस्य कल्पितत्वादिति भावः।।६४।।

त्या मायेचा विलय कसा होतो? तर—सच्चिदानंदस्वरूप अशा परब्रह्माचा साक्षात्कार झाल्यामुळेच मायेचा विलय होतो. या मायेची निवृत्ती झाल्यावर तिच्यापासून कल्पित अशा पदार्थांचे परिज्ञान असो की त्याचे ज्ञातृत्व असो, ते कसे संभवते? अर्थात् संभवत नाही.।।६४।।

अत्र दृष्टान्तमाह—

सुषुप्तस्य यथा वस्तु न किञ्चिदपि भासते।
तथा मुक्तस्य जीवस्य न किञ्चिद्वस्तु दृश्यते।।६५।।

मुक्तस्य जीवस्य जीवन्मुक्तस्येत्यर्थः। शिष्टं स्पष्टम्।।६५।।

त्याविषयी दृष्टांत सांगतात—गाढ झोपलेल्या माणसाला जसे कोणत्याही वस्तूचे भान उरत नाही. तशा प्रकारे जीवन्मुक्त झालेल्या शिवयोग्याला प्रपंचातील कोणत्याही वस्तूची जाणीव नसते.।।६५।।

अत्र जीवन्मुक्तस्य पदार्थदर्शनमस्तीति नाशङ्कनीयम्, शिवाभेदेनैव दर्शनात् प्राकृतत्वेन किमपि न दृश्यत इति । अथ जीवन्मुक्तस्वरूपं कीदृशमित्यत्र सूत्रद्वयेन कथयति—

यथाकाशमविच्छिन्नं निर्विकारं स्वरूपतः।
तथा मुक्तस्य जीवस्य स्वरूपमवशिष्यते।।६६।।

अवशिष्यते प्रकाशत इत्यर्थः। शिष्टं स्पष्टम्।।६६।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जीवन्मुक्त व्यक्तीला पदार्थांचे दर्शन होते ना? अशीशंका काढू नये. कारण तो चहूकडे शिवाद्वैत भावनेने पाहात असल्यामुळे त्याला प्राकृत असा कोणताही पदार्थ दिसत नाही. आता त्या जीवनमुक्ताचे स्वरूप दोन श्लोकात सांगतात—आकाश जसे स्वभावतः अविच्छिन्न निर्विकार असते तसे जीवनमुक्त शिवयोग्याचे स्वरूपही अखडपणे प्रकाशत असते.।।६६।।

अथ स जीवन्मुक्तः किं जानन् किं कुर्वन् कथं तिष्ठतीत्यत्राह—

न किञ्चिदपि मुक्तस्य दृश्यं कर्तव्यमेव वा।
सुखस्फूर्तिस्वरूपेण निश्चला स्थितिरुच्यते।।६७।।

स्पष्टम्।।६७।।

तो जीवन्मुक्त काय जाणून घेत आणि काय करीत असतो? तर, जीवन्मुक्त झालेल्यास काही दृश्य होत नाही आणि त्याला काही कर्तव्यही नसते. अर्थात् परिपूर्ण आनंदमय अशी त्याची निश्चल स्थिती असते. म्हणजे त्याला कसलेही कर्तव्य नसते.।।६७।।

अथ जीवन्मुक्तस्य दृश्यं कर्तव्यं कुतो नास्तीत्यत्र वदन्नन्त्यप्रसादिस्थलं समापयति—

शिवाद्वैतपरिज्ञानशिथिलाशेषवस्तुनः।
केवलं संविदुल्लासदर्शिनः केन को भवेत्।।६८।।

शिवाद्वैतपरिज्ञानेन निवृत्तसकलभेदवस्तुनः, अत एव केवलं चिद्विलास पश्यतः शिवयोगिनो ज्ञानेन्द्रियव्यापारेण कर्मेन्द्रियव्यापारेण वा केनापि किं भवेत्, किं प्रयोजनं स्यात्, न किञ्चिदित्यनयोराद्यन्तप्रसादयोरुपक्रमो-पसंहारन्यायेनैक्यं विमर्शनीयम्।।६८।।

इत्यन्त्यप्रसादिस्थलम्

•

जीवन्मुक्त व्यक्तीला अन्य दृश्य पदार्थ अथवा अन्य कर्तव्य का नसते? याचे उत्तर सांगून अंत्यप्रसादिस्थलाचा समारोप करतात—शिवाद्वैत परिज्ञानाने सकल प्रापंचिकवस्तुभेदभ्रांती मिटल्यामुळे त्या शिवाद्वैतज्ञानात लीन झालेल्या शिवयोग्याला ज्ञानेंद्रिये अथवा कर्मेंद्रियांच्या व्यवहाराचे काय प्रयोजन असते?

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अर्थात् कोणतेही प्रयोजन नसते. या पूर्वी सांगितलेल्या आदिप्रसादी आणि आता वर्णिलेल्या अंत्यप्रसादी स्थलांमध्ये उपक्रम आणि उपसहार न्यायानुसार ऐक्य असल्याचे समजावे.।।६८।।

अथ सेव्यप्रसादिस्थलम्

अथ—"अन्तःशरीर एवायं बाह्य एव न संस्थितः। महानन्दप्रसादोऽयं सर्वत्रैवावभासते।।" इति सर्वज्ञानोत्तरवचनानुसारेण सेव्यशिवगुरुप्रसाद-सम्पन्नोऽन्त्यप्रसाद्येव सेव्यप्रसादीति सूत्रत्रयेण कथयति—

सेव्यो गुरुः समस्तानां शिव एव न संशयः।
प्रसादोऽस्य परानन्दप्रकाशः परिकीर्त्यते।।६९।।

समस्तानां सेव्यः श्रीगुरुः शिव एवात्र सन्देहो नास्ति । अस्य प्रसादः श्रीगुरुरूपशिवप्रसाद एव परानन्दप्रकाश इति कीर्त्यते।।६९।।

'महानंद हा बाहेर कोठेही नसतो, तर तो आपल्या अंतरंगातच असतो. तरीही त्याची प्रतीती मात्र सामान्य लोकांना बाह्य वस्तूंत जाणवते,' असे सर्वज्ञानोत्तराचे वचन आहे. ह्या वचनानुसार सेव्य असे शिव आणि गुरू यांचा प्रसाद प्राप्त करून घेतलेला पूर्वोक्त अंत्यप्रसादीच सेव्यप्रसादी होतो, असे तीन श्लोकांतून प्रतिपादन करतात—सर्वांकडून सेवा करून घेण्यास योग्य अर्थात् पूज्य गुरू साक्षात् शिवच असतो यात कसलाही संशय नाही. अशा गुरूचा प्रसादच परमानंदरूपप्रकाशक होय.।।६९।।

सेव्यो गुरुः स्मृतो ह्यस्य प्रसादोऽनुभवो मतः।
तदेकावेशरूपेण तद्वान् सेव्यप्रसादवान्।।७०।।

गुरुः शिवस्वरूपश्रीगुरुरेव सेव्य इति स्मृतः। अस्य शिवरूपस्य श्रीगुरोरनुभव उपदेशानुभव एव प्रसाद इति सम्मतः। तदेकावेशरूपेण तयोर्गुरुप्रसादयोरेकीभावेन तद्वान् तत्प्रसादवानन्त्यप्रसाद्येव सेव्यप्रसादवान् सेव्यप्रसादीति हि प्रसिद्ध इत्यर्थः।।७०।।

शिवस्वरूप असा गुरूच सर्वांकडून सेव्य होय, अशा गुरूचा उपदेशच प्रसाद होय. हे शास्त्रसंमत आहे. त्यामुळे गुरू आणि गुरूचा उपदेश या दोहोंना अभेद बुद्धीने जाणणारा सेव्यप्रसादी म्हणविला जातो.।।७०।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

गुरुर्देवः परं तत्त्वं परतत्त्वं गुरुः स्मृतः।
तदेकत्वानुभावेन न किञ्चिदवशिष्यते।।७१।।

गुरुशिवयोः शक्तिशक्तिमद्भावेन तयोरैक्यानुसन्धानेन ज्ञातव्यं न किञ्चिदवशिष्यते, सर्वस्यापि विश्वस्य शिवशक्तिमयत्वादिति।।७१।।

गुरू हाच परशिव आणि परशिव हाच गुरू असे शास्त्रात सांगितले आहे. या प्रमाणे गुरू आणि परशिवामध्ये अभेदभाव ठेवल्याने या जगात जाणून घेण्यासारखी अशी अन्य वस्तू उरलेली नसते. म्हणजे विश्व हे शिवशक्त्यात्मक असल्यामुळे शिवरूपी गुरूचे ज्ञान झाल्यास सर्व विश्वाचे ज्ञान असल्यासारखेच होय.।।७१।।

अथ परमानन्दवतः सेव्यप्रसादिनः क्वापि प्रीतिर्नास्तीति सूत्रत्रयेण कथयति—

अपरिच्छेद्यमात्मस्थमवाङ्मनसगोचरम्।
आनन्दं पश्यतां पुंसां रतिरन्यत्र का भवेत्।।७२।।

परिच्छेदरहितं वाङ्मानसयोरगोचरं स्वस्वरूपं परमानन्दम् अपरोक्षेण पश्यतां शिवयोगिनामन्यत्र विषयेषु रतिरभिलाषो न क्वापि स्यादित्यर्थः।।७२।।

अशा प्रकारे परमानद प्राप्त करून घेतलेल्या सेव्य प्रसादीला अन्य कोठेही आसक्ती नसते, असे तीन श्लोकात सागतात—वाणी व मनाला अगोचर अशा स्वस्वरूप अखंड परमानदाचा साक्षात् अनुभव घेणाऱ्या शिवयोग्याला अन्य विषयाची अभिलाषा कशी असेल? अर्थात् मुळीच नसते.।।७२।।

ज्ञानामृतेन तृप्तस्य किमन्यैर्भोज्यवस्तुभिः।
ज्ञानादेव परानन्दं प्रकाशयति सच्छिवः।।७३।।

ज्ञानामृतेन सन्तुष्टस्य शिवयोगिनोऽन्यैश्चित्पीयूषव्यतिरिक्तैर्भोज्यपदार्थैः किम्? न किञ्चित्। सच्छिवोऽग्नेरुष्णत्वप्रकाशकत्वादय इव शिवस्य सच्चिदानन्दाः स्वभावास्तादृशः शिवो ज्ञानादेव निजज्ञानादेव परानन्दं स्वस्वभावभूतनित्यानन्दं प्रकाशयतीति।।७३।।

ज्ञानामृताने संतृप्त झालेल्या शिवयोग्याला अन्य सांसारिक भोग्य वस्तूंचे काय प्रयोजन? अर्थात् काहीच प्रयोजन नसते.

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सच्चिदानंदस्वरूप असणाऱ्या शिवाच्या ज्ञानानेच परमानद प्रकाशित होतो. म्हणजे शिवज्ञानानेच परमानंदाची प्राप्ती होते.।।७३।।

अथ तदेव विशदयति–

मुक्तिरेव परा तृप्तिः सच्चिदानन्दलक्षणा ।
नित्यतृप्तस्य मुक्तस्य किमन्यैर्भोगसाधनैः।।७४।।

नित्यतृप्तस्य सर्वज्ञताद्युपलक्षितनित्यतृप्तिमतो मुक्तस्य परममुक्तिमतः शिवयोगिन इत्यर्थः। शिष्टं स्पष्टम्।।७४।।

आता त्याचे स्पष्टीकरण करतात–शिवाद्वैत ज्ञानामृताच्या सेवनाने परमानंद प्राप्त करून घेतलेला शिवयोगी नित्य तृप्त असतो. म्हणजे तो शिवयोगी सर्वज्ञत्व, अनादिबोधत्व, स्वतंत्रत्व, अलुप्तशक्तिमत्व आणि अनंतशक्तिमत्वाने उपलक्षित अशी नित्यतृप्ती प्राप्त झालेला असतो. अशा रीतीने नित्यतृप्त आणि मुक्तही असलेल्या त्या शिवयोग्याला मुक्तीच परमतृप्ती झालेली असते. म्हणून अशा शिवयोग्याला अन्य भोग्यसाधनाचे कसलेही प्रयोजन नसते.।।७४।।

अथ तस्य परमुक्तस्यान्तर्बहिः किमपि कर्म नास्तीति निरूपयति–

न बाह्यकर्म तस्यास्ति न चान्तर्नैव कुत्रचित्।
शिवैक्यज्ञानरूढस्य देहभ्रान्तिं विमुञ्चतः।।७५।।

स्वरूपहानिवृद्धिव्यतिरेकेण सजातीयसमानसमरसभावेन शिवैक्यज्ञान-मारुह्य देहभ्रान्तिं विमुञ्चतस्तस्य सेव्यप्रसादिनो बहिरङ्गविधीयमानपूजाकर्म नास्ति, अन्तश्चान्तरङ्गे विधीयमानध्यानादिकर्म नास्ति, कुत्रचित् क्वापि बिन्दुतिरोभावमलमायाद्युपलक्षितकर्मपाशोऽपि नास्तीत्यर्थः।।७५।।

अशी परमुक्ती प्राप्त झालेल्या शिवयोग्याला अंतर्बाह्य असे कोणतेच कर्म नसल्याचे निरूपण करतात –स्वरूपात हानिवृद्धी न होता, सजातीय आणि समान वस्तूंच्या सामरस्याप्रमाणे शिवैक्यज्ञानाची प्राप्ती करून घेऊन देहाच्या भ्रांतीचा त्याग केलेल्या सेव्यप्रसादीला पूजादी बाह्य कर्मे असोत किंवा ध्यानादी अंतरंग कर्मे असोत ती करावी लागत नाहीत. अर्थात् बिंदू, तिरोधानभाव, मलमायादी उपलक्षित कर्मपाश नसतात.।।७४।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अथ प्रसादिस्थलं समापयति—

न कर्मबन्धे न तपोविशेषे न मन्त्रयोगाभ्यसने तथैव।
ध्याने न बोधे च तथात्मतत्त्वे मनःप्रवृत्तिः परयोगभाजाम्।।७६।

इति श्रीमत्षट्स्थलब्रह्मिणा शिवयोगिनाम्ना रेणुकाचार्येण विरचिते वीरशैवधर्मनिर्णये सिद्धान्तशिखामणौ प्राणलिङ्गिस्थलविषय-नवविधलिङ्गप्रसङ्गो नामाष्टादशः परिच्छेदः समाप्तः।।

परयोगभाजां सर्वोत्कृष्टपरशिवयोगभाजां सेव्यप्रसादिनां मनःप्रवृत्तिश्चित्तवृत्तिर्मन्त्रयोगाभ्यसनेऽजपागायत्रीरूपसोहंमन्त्रयोगाभ्यासे न नास्तीत्यर्थः। तथैव कर्मबन्धे षट्कर्मबन्धत्रयरूपहठयोगेऽपि न, तपोविशेषे योगानां विशिष्टराजयोगेऽपि न, ध्यानेऽनाहतब्रह्मध्यानरूपलययोगेऽपि न, किन्तु तथात्मतत्त्वे तद्योगचतुष्टयचैतन्यस्वरूपे बोधे स्वस्वरूपज्ञाने मनःप्रवृत्तिः स्यादित्यर्थः। अयं भावः— देशिकोपदेशेनापरदेहपाणिपादगुह्यानि प्रथमं संशोध्य बन्धयित्वा तदनन्तरं परापश्यन्तीमध्यमावैखरीस्वरूपरुद्र-विष्णुब्रह्मेन्द्रादिदैवतलयराजहठमन्त्रयोगात् क्रमेण पूर्वकायस्य कर्णाक्षिनासा-रसनासु संयोज्यानन्तरं पूर्वापरकायकीलकभूतबिन्दुमायाकार्यरूपवाक्त्वचौ निश्चलीकृत्य सर्वयोगज्ञानजननक्षेत्रभूताविमुक्तक्षेत्रे परब्रह्मपरशिवपरलिङ्गा-परपर्यायिनामभिः संसेव्य स्वस्वरूपसेवितसेव्यप्रसादीत्यर्थः। एतल्लिङ्गत्रयं प्राणलिङ्गिनोऽङ्गत्रयस्य क्रमेण सम्बन्धयेदिति सेव्यप्रसादिस्थलम्।।७६।।

इति श्रीमत्पदवाक्यप्रमाणपारावारधुरीणश्रीमरितोण्टदार्येण विरचितायां तत्त्वप्रदीपिकाख्यायां सिद्धान्तशिखामणिव्याख्यायां प्राणलिङ्गिस्थल-विषयनवविधलिङ्गप्रसङ्गो नामाष्टादशः परिच्छेदः समाप्तः।।

आता प्रसादिस्थलाची समाप्ती करतात—सर्वोत्कृष्ट असे महालिंग-सामरस्य प्राप्त. केलेल्या त्या सेव्यप्रसादीचे मन अजपागायत्रीरूपी मंत्रयोगाभ्यास असो, षट्कर्म आणि बंधत्रयरूप हटयोगात असो, योगामध्ये श्रेष्ठ अशा राजयोगात असो किंवा अनाहत ब्रह्मज्ञान अशा लय योगात असो, आसक्त न होता स्वस्वरूपज्ञानातच तल्लीन झालेले असते. तात्पर्य असे की श्रीगुरूच्या उपदेशाप्रमाणे आपल्या देहाचे हातपाय, गुह्येंद्रियांची प्रथम शुद्धी करून त्यांना योगासनाद्वारे बांधून लययोग, राजयोग, हटयोग, आणि मंत्रयोगाने क्रमशः श्रोत्र, नेत्र, नाक, जीभ आदी ज्ञानेंद्रियांचा निरोध करून स्थूल व सूक्ष्म देहाचा संबध

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

घडविणाऱ्या बिंदू आणि मायेचे कार्यरूप असलेली वागेंद्रिये आणि चर्मेंद्रिये याना निश्चल करून सकल योगज्ञान उत्पन्न होण्यास मूलकारण असणाऱ्या स्वस्वरूपात्मक अनुसंधानात स्वतःचे मन तल्लीन करतो.।।७५।।

असा हा सिद्धान्तशिखामणीतील प्राणलिंगी स्थलांतर्गत
नवविध लिंगस्थलाचे वर्णन असलेला
अठरावा परिच्छेद संपला.
अठरावा परिच्छेद समाप्त।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

एकोनविंशः परिच्छेदः

अथ शरणस्थलम्

अथागस्त्य उवाचेत्यगस्त्यप्रश्नः—

स्थलभेदाः समाख्याताः प्राणलिङ्गिस्थलाश्रयाः।
कथय स्थलभेदं मे शरणस्थलसंश्रितम्।।१।।

स्पष्टम्।।१।।

अगस्त्य प्रश्न करतात—हे आचार्या, प्राणलिंगी स्थलाचे त्यातील अवांतर स्थलभेदासह विवेचन केलेत. आता शरणस्थलात असलेले पोटभेद कृपया मला सांगावे.।।१।।

अथ श्रीरेणुक उत्तरं वक्ति रेणुक उवाचेति—

शरणस्थलमाश्रित्य स्थलद्वादशकं मया।
उच्यते नाम सर्वेषां स्थलानां शृणु तापस।।२।।

स्थलानामवान्तरस्थलानामित्यर्थः। शिष्टं स्पष्टम्।।२।।

आता रेणुकाचार्य सांगतात-हे तपस्वी अगस्त्या, शरणस्थलाचे बारा पोटभेद आहेत. त्यांची नावे मी सांगतो ती तू लक्षपूर्वक श्रवण कर.।।२।।

अत तानि स्थलानि सूत्रत्रयेणोद्दिशति—

दीक्षापादोदकं पूर्वं शिक्षापादोदकं ततः।
ज्ञानपादोदकं चाथ क्रियानिष्पत्तिकं ततः।।३।।
भावनिष्पत्तिकं चाथ ज्ञाननिष्पत्तिकं ततः।
पिण्डाकाशस्थलं चाथ बिन्द्वाकाशस्थलं ततः।।४।।
महाकाशस्थलं चाथ क्रियायाश्च प्रकाशनम्।
भावप्रकाशनं पश्चात् ततो ज्ञानप्रकाशनम्।
स्वरूपं पृथगेतेषां कथयामि यथाक्रमम्।।५।।

स्पष्टम्।।३-५।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

आता तीन श्लोकात त्या स्थलांची नावे सागतात १. दीक्षापादोदक २. शिक्षापादोदक ३. ज्ञानपादोदक ४. क्रियानिष्पत्ती ५. भावनिष्पत्ती ६. ज्ञाननिष्पत्ती ७. पिंडाकाशस्थल ८. बिंद्वाकाशस्थल ९. महाकाशस्थल १०. क्रियाप्रकाशनस्थल ११. भावप्रकाशनस्थल १२. ज्ञानप्रकाशस्थल ही बारा स्थले शरणस्थलाचे पोटभेद होत. त्याचे स्वरूप आता मी क्रमाक्रमाने सागतो.।।३-४-५।।

अथ— "आचार्यः पूर्वरूपं अन्तेवास्युत्तररूपं विद्या सन्धिः" इति श्रुत्युक्तप्रकारेण, "अस्मात् प्रविततादु बन्धात् परसंस्थानिरोधकात्। दीक्षैनं मोचयेत् पूर्वं शैवं धाम नयत्यपि।।" इति स्वायम्भुववचनानुसारेण चास्य सेव्यप्रसादिनः सुलभदीक्षापादोदकस्थलं निरूपयति—

दीक्षयाऽपगतद्वैतं यज्ज्ञानं गुरुशिष्ययोः।
आनन्दस्यैक्यमेतेन दीक्षापादोदकं स्मृतम्।।६।।

गुरुशिष्ययोः सेव्यगुरुशिष्ययोरानन्दस्यैक्यं निजानन्दैकीभूतं दीक्षयाऽपगतद्वैतं ज्ञानदानमलक्षयरूपचित्क्रियादीक्षानिवारितद्वैतं यज्ज्ञानमस्ति, एतेनानेन ज्ञानेन दीक्षापादोदकं सेव्यप्रसादिनः सुलभभूतदीक्षापादोदकमिति स्मृतम्। शिवदीक्षापगतद्वैतज्ञानवद्गुरुशिष्यनिजानन्दैक्यमेव दीक्षापादोदकमित्यर्थः ।।६।।

'गुरू हा पूर्वरूप आणि शिष्य हा उत्तररूप असून त्याच्या सपर्कातून निर्माण होणारी विद्या संधिरूप होय' या तैत्तरीय श्रुतिवचनानुसार आणि 'जनन-मरणाच्या बंधनातून मुक्त करून त्याला शिवधामाकडे नेणारी ती दीक्षा' या स्वायंभुव वचनानुसार सेव्य प्रसादीला सुलभ अशा दीक्षा पादोदक स्थलाचे निरूपण करतात—ज्ञानप्रदायक आणि मलक्षयकारी अशा चित्क्रियारूप दीक्षेने सेव्य अशा गुरुशिष्यांचे द्वैतज्ञान नाहीसे होऊन उदित होणारें अद्वैतज्ञान निजानंदात एकरूप होणे ह्यालाच दीक्षापादोदक असे म्हणतात. म्हणजेच अद्वैतज्ञानाचा जो दिव्यानंद गुरूला प्राप्त झालेला असतो तोच दिव्यानंद गुरूने शिष्यास दिलेल्या दीक्षेमुळे त्याच्या (मलत्रयाचा क्षय होऊन) अनुभवास येतो. त्या गुरुशिष्याच्या आनदाचे स्वरूप समान पातळीवर एकरूप होते. अशा स्थितीला दीक्षापादोदक म्हटले जाते.।।६।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अथ दीक्षासञ्जातगुरुशिष्यैक्यमेव दीक्षापादोदकमिति पक्षान्तरेणाह—

अथवा पादशब्देन गुरुरेव निगद्यते।
शिष्यश्चोदकशब्देन तयोरैक्यं तु दीक्षया।।७।।

अथवा तन्न चेत्, पादशब्देन श्रीगुरुरेव कथ्यते, उदकशब्देन शिष्यो निगद्यते, दीक्षया निजकरसञ्जातशिष्यमूर्ध्नि घ्राणस्वरूपदीक्षाविशेषेण तयोरैक्यं तु पादोदकशब्दवाच्यगुरुशिष्यैक्यं दीक्षापादोदकमिति स्मृतमित्यर्थः।।७।।

दीक्षेपासून उत्पन्न होणारे गुरुशिष्यांचे ऐक्यच दीक्षापादोदक होय, असे निराळ्यारूपाने सांगतात—पाद शब्दाने गुरू व उदक शब्दाने शिष्य असा अर्थ सूचित होतो. दीक्षेने होणाऱ्या त्यांच्या ऐक्यालाच दीक्षापादोदक असे म्हणतात. गुरूने आपल्या शिष्याच्या मस्तकाचे अवघ्राण करण्याच्या दीक्षासंस्काराने होणारे जे उभयतांचे भावैक्य तेच दीक्षापादोदक होय.।।७।।

अथ दीक्षाप्रकाशितसत्यज्ञानानन्दैक्यमेव दीक्षापादोदकमिति पक्षान्तरेण कथयति—

परमानन्द एवोक्तः पादशब्देन निर्मलः।
ज्ञानं चोदकशब्देन तयोरैक्यं तु दीक्षया।।८।।

पादशब्देन मलरहितपरब्रह्मानन्द उच्यते, उदकशब्देन ब्रह्मस्वरूपज्ञानमुच्यते, दीक्षया हृत्कमलमध्यस्थचिद्दीक्षया तयोरैक्यं तु, "विज्ञानमानन्दं ब्रह्म" इति श्रुतेः। धर्मधर्मिस्वरूपानन्दज्ञानैक्यं दीक्षापादोदकमिति स्मृतमित्यर्थः।।८।।

दीक्षेमुळे प्रकाशित होणारे, सत्यज्ञान आणि आनंदाचे जे ऐक्य, त्याला दीक्षापादोदक म्हणावे, असे वेगळ्या रीतीने प्रतिपादन करतात—मलरहित अशा परब्रह्माला पाद आणि परब्रह्मस्वरूपज्ञानाला उदक असे समजावे. 'विज्ञानं आनंद ब्रह्म' या श्रुतिवचनानुसार दीक्षेमुळे हृदयकमलात होणारे आनंद आणि ज्ञानाचे जे ऐक्य, त्यालाच दीक्षापादोदक असे म्हणतात.।।८।।

अथ—"यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह। आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् न बिभेति कुतश्चन।।" इति ब्रह्मोपनिषद्वाक्यानुसारेण तज्ज्ञानानन्दमेव विशेषयति—

परसंवित्प्रकाशात्मा परमानन्दभावनाम् ।
अधिगम्य महायोगी न भेदं क्वापि पश्यति।।९।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

महायोगी तत्पादोदकदीक्षासम्पन्नः शिवयोगी परसंवित्प्रकाशात्मा परब्रह्मस्वरूपज्ञानप्रकाशस्वरूपवान् सन् परमानन्दभावनाम् अधिगम्य भेदं नित्यपरिपूर्णज्ञानानन्दभेदं क्वापि न पश्यति, तद्बाह्यदेशाभावादिति।।९।।

'ज्याला जाणून घेण्यास वाणी आणि मन असमर्थ असतात अशा परब्रह्माची प्राप्ती करून घेतलेला ब्रह्मज्ञानी कशालाही भीत नाही,' अशा ब्रह्मोपनिषदाच्या वाक्यानुसार त्या ज्ञानानंदाचे स्वरूप विशद करतात —पूर्वोक्त दीक्षापादोदकसंपन्न महाशिवयोगी परब्रह्मस्वरूपाच्या ज्ञानाचा प्रकाशरूप होऊन परमानंदभाव प्राप्त करून घेतो. म्हणून त्याला प्रपंचात कोणताही भेद दिसत नाही.।।९।।

अत एव नान्यत् काङ्क्षतीत्याह—

देशकालाद्यवच्छेदविहीनं नित्यनिर्मलम् ।
आनन्दं प्राप्य बोधेन नान्यत् काङ्क्षति संयमी।।१०।।

संयमी शिवयोगी देशकालाद्यवच्छेदविहीनं देशकालाकारेषु विच्छेदराहित्येन विद्यमानं नित्यनिर्मलमानन्दं ब्रह्मानन्दं बोधेन ब्रह्मज्ञानस्वरूपेणैव प्राप्य अन्यन्न काङ्क्षति, तद्व्यतिरिक्तवस्त्वन्तराभावादिति।।१०।।

म्हणून त्याला दुसऱ्या कशाचीही अपेक्षा नसते, असे सांगतात—संयमी शिवयोगी सर्व देश, सर्व काल व सर्व आकारांमध्ये परिपूर्णपणे राहाणारा, नित्यनिर्मल असा ब्रह्मानंद ब्रह्मज्ञानाने प्राप्त करून घेतल्यामुळे दुसऱ्या कशाची अपेक्षा करीत नाही, कारण त्याच्या दृष्टीला ब्रह्माशिवाय दुसरे काहीच दिसत नाही.।।१०।।

अथ दीक्षापादोदकस्थलं समापयति—

ज्ञानामृतमपि स्वच्छं गुरुकारुण्यसम्भवम् ।
आस्वाद्य रमते योगी संसारामयवर्जितः।।११।।

गुरुकृपोद्भूतं निर्मलं ब्रह्मज्ञानामृतमास्वाद्य दीक्षापादोदकसम्पन्नः शिवयोगी भवरोगमुक्तः सन् स्वस्वरूपे क्रीडत इत्यर्थः।।११।।

इति दीक्षापादोदकस्थलम्

आता दीक्षापादोदक स्थलाचा समारोप करतात—गुरूकृपेने प्राप्त झालेल्या निर्मल अशा ब्रह्मज्ञानामृताचा आस्वाद घेतलेला, दीक्षा पादोदकसंपन्न असा हा शिवयोगी भवरोगापासून मुक्त होऊन स्वतःच्या आत्मस्वरूपात क्रीडा करीत असतो.।।११।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अथ शिक्षापादोदकस्थलम्

अथ—"मायामयमिदं द्वैतमद्वैतं परमार्थतः। विकल्पो विनिवर्तेत कल्पितो यदि केनचित्।। उपदेशादयं वादो ज्ञाते द्वैतं न विद्यते।।" इति मुण्डकश्रुत्यनुसारेण तद्दीक्षापादोदकसम्पन्नस्य शिवयोगिनः शिक्षापादोदकं सूत्रद्वयेन कथयति—

गुरुशिष्यमयं ज्ञानं शिक्षा योगिनमीर्यते।
तयोः समरसत्वं हि शिक्षापादोदकं स्मृतम्।।१२।।

या शिक्षा गुरुशिष्यमयं ज्ञानं पूर्ववत्पादोदकशब्दवाच्यगुरुशिष्ययोस्तन्मयीभूतज्ञानं योगिनं तद्दीक्षापादोदकसम्पन्नशिवयोगिनम् ईर्यते प्रेरयति, तयोस्तच्छिक्षाज्ञानयोः समरसत्वं हि सामरस्यं हि शिक्षापादोदकमिति स्मृतमित्यर्थः।।१२।।

'हा द्वैतप्रपंच मायामय आहे, अद्वैत हेच परमार्थाने सत्य होय. या विषयी कोणी विकल्पाची कल्पना केल्यास त्याचे निराकरण गुरूपदेशाने होते आणि द्वैत उरत नाही,' या मुडक श्रुतीच्या वचनानुसार दीक्षापादोदकसंपन्न अशा शिवयोग्याच्या शिक्षापादोदक स्थलाचे निरूपण दोन श्लोकांत करतात—गुरुशिष्यसामरस्यज्ञान झालेला शिवयोगी शिक्षणाने अर्थात् मननाने प्रेरणा प्राप्त करतो, त्या शिक्षणाच्या व ज्ञानाच्या समरसतेलाच शिक्षापादोदक असे म्हणतात. तात्पर्य असे की पूर्वी सांगितलेल्या दीक्षानुभवाने सिद्ध झालेल्या ज्ञानाचे मनन हाच शिक्षागुरू समजावा. त्या ज्ञानाच्या आणि मननरूपी शिक्षणाच्या सामरस्याने उत्पन्न होणाऱ्या सुखालाच शिक्षापादोदक स्थल असे म्हणतात.।।१२।।

अथैवंरूपज्ञानामृतं कैः केन कस्माल्लभ्यत इत्यत्राह—

मथिताच्छास्त्रजलधेर्युक्तिमन्थानवैभवात्।
गुरुणा लभ्यते बोधसुधा सुमनसां गणैः।।१३।।

युक्तिमन्थानवैभवाद् युक्तिरूपमन्थनदण्डसामर्थ्याद् मथितात् शास्त्रजलधेर्निगमागमात्मकवीरशैवशास्त्रसमुद्राद् गुरुणा शिक्षाचार्येण बोधसुधा शिवाद्वैतज्ञानामृतं सुमनसां गणैर्दीक्षापादोदकस्वीकारेण शुद्धचित्तानां शिवयोगिनां समूहैर्लभ्यते, यथा सुरगुरोः समुद्रमथनविचारेण सुराणां सुधा प्राप्ता, तथेत्यर्थः।।१३।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अशा स्वरूपाचे ज्ञानामृत कोणाकडून, कोणाला आणि कशापासून प्राप्त होते? याचे उत्तर सांगतात—निगमागमात्मक वीरशैवशास्त्ररूपी समुद्राचे युक्तिरूप रवीने मथन केल्यामुळे उत्पन्न झालेले शिवाद्वैतज्ञानरूपी अमृत, दीक्षापादोदक स्वीकाराने परिशुद्धचित्त झालेल्या शिवयोग्याला गुरुद्वारा प्राप्त होते.।।१३।।

अथ तस्य शिवयोगिनो धर्मधर्मिस्वरूपचिदानन्दयोस्तत्त्वं सूत्रत्रयेण विशेषयति—

ज्ञानचन्द्रसमुद्भूतां परमानन्दचन्द्रिकाम्।
पश्यन्ति परमाकाशे मुक्तिरात्रौ महाधियः।।१४।।

महाधियः सूक्ष्मदृशः शिवयोगिनो मुक्तिरात्रौ परमुक्तिलक्षणगाढान्धकारवति परमाकाशे परब्रह्मणः सद्रूपहृदयाकाशे ज्ञानचन्द्रसमुद्भूतां चिच्चन्द्रभित्तित आविर्भूतां परमानन्दमयीं चन्द्रिकां ज्योत्स्नां पश्यन्ति, स्वस्वरूपत्वेन परामृशन्तीत्यर्थः।।१४।।

आत्मा आणि आनंद या मध्ये धर्मी-धर्म संबंध असतो असे तीन श्लोकात सांगतात—सूक्ष्म दृष्टीचा शिवयोगी मुक्तिरूप रात्री आपल्या हृदयरूपी परमाकाशात शिवाद्वैतज्ञानरूपी चद्रापासून उत्पन्न झालेल्या परमानंदरूप चांदण्याचा अनुभव घेतो. अर्थात् तो परमानंद आपल्या स्वस्वरूपाने पाहातो.।।१४।।

अथैवमपारपरमानन्दचन्द्रिकायां दृष्टायामन्यद् द्रष्टव्यं श्रोतव्यं च नास्तीत्याह—

दृष्टे तस्मिन् परानन्दे देशकालादिवर्जिते।
द्रष्टव्यं विद्यते नान्यच्छ्रोतव्यं ज्ञेयमेव वा।।१५।।

देशकालाद्यखण्डिते तस्मिन् परानन्दे दृष्टे सति, अन्यद् द्रष्टव्यं चक्षुषा द्रष्टव्यं श्रोतव्यं श्रवणेन श्रोतव्यं ज्ञेयमेव वा ज्ञातुं योग्यं वा न विद्यते, सर्वस्यापि पदार्थस्य तत्कार्यत्वेन तदभिन्नत्वादित्यर्थः।।१५।।

अशा अपार परमानंदरूप चांदण्याचा अनुभव घेतल्यानतर त्या शिवयोग्याला पाहाण्यासारखे, ऐकण्यासारखे अथवा अनुभवण्यासारखे अन्य काही नसते असे सांगतात—देशकालादिकापासून खंडित न होणाऱ्या त्या परमानंदाचा साक्षात्कार झाल्यावर या जगामध्ये पाहाण्यासारखे आणि ऐकण्यासारखे दुसरे काही नसते.।।१५।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अथ नान्यच्च काङ्क्षतीत्याह—

आत्मानन्देन तृप्तस्य का स्पृहा विषये सुखे।
गङ्गाजलेन तृप्तस्य कूपतोये कुतो रतिः।।१६।।

आत्मानन्देन निजानन्देनेत्यर्थः। शिष्टं स्पष्टम्।।१६।।

तो दुसऱ्या पदार्थाची अपेक्षा करीत नाही असे सागतात—पवित्र गंगाजलाने तृप्त झालेल्या व्यक्तीला जशी विहिरीच्या पाण्याची गोडी नसते. तसे आत्मानंदाने तृप्त झालेल्या शिवयोग्याला विषयसुखाची अपेक्षा नसते.।।१६।।

ननु निजानन्देन तृप्तस्य परयोगिनः परिमितिरस्ति न वेत्यत्राह—

यस्मिन्नप्राप्तकल्लोले सुखसिन्धौ निमज्जति।
सामरस्यान्महायोगी तस्य सीमा कुतो भवेत्।।१७।।

स्पष्टम्।।१७।।

संतृप्त झालेल्या शिवयोग्याचा आनंद अपरिमित असतो असे सांगतात—ज्या शिवानंदरूपी समुद्रावर रागद्वेषादिकाचे तरंग उठत नाहीत, त्या प्रशांत अशा सौख्यसागरात सामरस्यरूपाने निमग्न झालेल्या शिवयोग्याच्या आनदाला मर्यादा कशी असू शकेल? अर्थात् त्याचा आनंद अमर्याद असतो.।।१७।।

नन्वस्य योगिनः कदाचित् कुत्रचिद्वा भेदभ्रान्तिः सम्भवति किमित्यत्र वदन् शिक्षापादोदकस्थलं समापयति—

गुरुप्रसादचन्द्रेण निष्कलङ्केन चारुणा।
यन्मनःकुमुदं नित्यबोधितं तस्य को भ्रमः।।१८।।

नित्यबोधितं निरन्तरविकसितमित्यर्थः। शिष्टं स्पष्टम्।।१८।।

इति शिक्षापादोदकस्थलम्

अशा योग्याला कोठेतरी आणि कधीतरी भेदभ्रांती होते काय? या प्रश्नाचे उत्तर सांगून शिक्षाप्रसादिस्थलाचे निरूपण संपवितात—कलंकरहित, सुंदर अशा गुरुप्रसादरूप चंद्रामुळे ज्याचे मनरूपी कुमुद नित्य विकसित झालेले असते, अशा व्यक्तीला भेदभ्रांती कशी असणार? अर्थात् अज्ञानजन्य भेदभ्रांती त्याला कधीही होणार नाही.।।१८।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अथ ज्ञानपादोदकस्थलम्

अथ—"नाध्यक्षं नापि तल्लैङ्गं न शाब्दमपि शाङ्करम्। ज्ञानमाभाति विमलं सर्वथा सर्ववस्तुषु।।" इति मृगेन्द्रवचनानुसारेण तच्छिक्षापादोदकसम्पन्नस्य सुलभं ज्ञानपादोदकं प्रकाशयति—

तदैक्यसम्पदानन्दज्ञानं ज्ञानगुरुर्मतः।
तत्सामरस्यं शिष्यस्य ज्ञानपादोदकं विदुः।।१९।।

आनन्दज्ञानम् "विज्ञानमानन्दं ब्रह्म" इति श्रुतिप्रसिद्धपादोदकशब्दवाच्यानन्दज्ञानमेव ज्ञानगुरुरिति मतः सम्मतः, तदैक्यसम्पदा तदानन्दज्ञानयोरैक्यसम्पत्त्या तत्सामरस्यं तयोः समरसभावः शिष्यस्य शिक्षापादोदकसम्पन्नस्य शिवयोगिनो ज्ञानपादोदकं सद् विदुर्जानन्तीत्यर्थः।।१९।।

'शांकरज्ञान हे प्रत्यक्ष, अनुमान आणि शब्द या तिन्ही प्रमाणांना अगोचर असल्यामुळे प्रमाणातीत आहे. त्या निर्मल ज्ञानाचा साक्षात्कार सदा सर्वदा सर्व वस्तूत होतो', या मृगेंद्रागमाच्या वचनानुसार हे शांकरज्ञान प्रमाणातीत असले तरी ते शिक्षापादोदकसंपन्न अशा शिवयोग्याला सुलभ असल्याचे या ज्ञानपादोदकस्थलात प्रतिपादन करतात— 'विज्ञानमानंदं ब्रह्म' या श्रुतिवचनानुसार आनंदाचे ज्ञानच ज्ञानगुरू होय. शिक्षापादोदक संपन्न अशा शिष्याला होणाऱ्या ज्ञान आणि आनंदाच्या ऐक्यालाच ज्ञानपादोदक असे शिवज्ञानी लोक म्हणतात. तात्पर्य, परमानंदरूप अशा ज्ञानाच्या मननात लीन झाल्याचे ज्ञानच ज्ञानपादोदक होय.।।१९।।

अथ तज्ज्ञानचन्द्रप्रकाशं सूत्रत्रयेणोपदिशति—

अविद्याराहुनिर्मुक्तो ज्ञानचन्द्रः सुनिर्मलः।
प्रकाशते पराकाशे परानन्दमहाद्युतिः।।२०।।

अज्ञानलक्षणराहुस्पर्शरहितोऽत्यन्तनिर्मलो मलवासनालेशतोऽप्यसंस्पृष्ट इति यावत्, ज्ञानचन्द्रः शिवाद्वैतज्ञानचन्द्रः परानन्दमहाद्युतिः परमानन्दरूपमहाकलाप्रकाशवान् सन् पराकाशे सर्वोत्कृष्टहृदयाकाशे प्रकाशते राजत इत्यर्थः।।२०।।

त्या ज्ञानरूपी चंद्राच्या प्रकाशाचे वर्णन तीन श्लोकात करतात—अज्ञानरूप राहूचा स्पर्श न झालेला, मलवासनाचा लेशमात्र संपर्क नसलेला, परमानदरूप महाकातीने युक्त असा,

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

शिवाद्वैतज्ञानरूपी चंद्र, सर्वोत्कृष्ट अशा हृदयाकाशात प्रकाशित होतो.।।२०।।

तर्ह्ययं ज्ञानचन्द्रः किं वर्धयतीत्यत्राह—

अज्ञानमेघनिर्मुक्तः पूर्णज्ञानसुधाकरः।
आनन्दजलधेर्वृद्धिमनुपश्यन् विभासते।।२१।।

नाहं शिव इत्यज्ञानावरणनिर्मुक्तोऽण्डरसन्यायेनाहमिति विश्वतः परिपूर्णज्ञानचन्द्रः स्वतन्त्रतालक्षणनिजानन्दसमृद्धस्य वृद्धिमनुपश्यन् विभातीत्यर्थः।।२१।।

तो ज्ञानचंद्र कशाची वृद्धी करतो? तर—अज्ञानरूपी मेघावरणापासून मुक्त झालेला शिवज्ञानरूपी पूर्णचद्र निजानदरूपी समुद्राला भरती आणून प्रकाशित होतो.।।२१।।

अथैवंविधज्ञानचन्द्रोदये के किं पश्यन्तीत्यत्राह--

ज्ञानचन्द्रोदये जाते ध्वस्तमोहतमोभराः।
पश्यन्ति परमां काष्ठां योगिनः सुखरूपिणीम् ।।२२।।

शिवज्ञानचन्द्रोदये जाते सति विनष्टाज्ञानान्धकारभराः शिवयोगिनः परमानन्दस्वरूपिणीं परमां काष्ठां स्वस्वरूपस्थितिं पश्यन्तीत्यर्थः।।२२।।

ज्ञानचद्र प्रकाशित झाल्यावर कोणाला कसला अनुभव येतो? तर—शिवज्ञानरूपी चंद्रोदय झाल्याने मोहरूपी गाढ अधार नाहीसा होऊन शिवयोगी परमानदरूपी स्वस्वरूपस्थितीचा अनुभव घेतो.।।२२।।

एवं चन्द्रत्वेन वर्णितं शिवज्ञानं सूर्यत्वेन वर्णयन् विचित्रं दर्शयति—

मायारजन्या विरमे बोधसूर्ये प्रकाशिते।
निरस्तसर्वव्यापारश्चित्रं स्वपिति संयमी।।२३।।

लोके तावन्निशावसाने सूर्योदये जाते सति सर्वोऽपि लोको विनिद्रः सन् सव्यापारो भवति, मायारूपनिशावसाने चिदादित्ये प्रकाशिते सति संयमी योगिजनो निरस्तव्यापारः सन् स्वपितीति चित्रम्। उक्तोऽयमर्थः श्रीभगवद्गीतायाम्—"या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी। यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः।।" इति।।२३।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

आतापर्यन्त चंद्र म्हणून वर्णिलेले शिवज्ञान आता सूर्याप्रमाणे असल्याचे सांगून आश्चर्य व्यक्त करतात—या जगात रात्र संपून सूर्योदय होताच सर्व लोक झोप सोडून आपापल्या व्यापारास उद्युक्त होतात. तरीपण संयमी असा शिवयोगी मायारूप रात्र संपून चिदादित्याचा उदय होताच सर्वव्यापारशून्य होऊन झोपतो, हे आश्चर्यच म्हणायचे! ज्या सांसारिक व्यवहारात सामान्य् लोक जागे होऊन सर्व व्यवहार करतात, त्या व्यवहारापासून हा शिवयोगी अलिप्त राहातो. हे तात्पर्य.।।२३।।

अथ तस्य परानन्दाविर्भावस्तदेत्यत्राह—

अनाद्यविद्याविच्छित्तिवेलायां परयोगिनः।
प्रकाशते परानन्दः प्रपञ्चेन विना कृतः।।२४।।

अनाद्यविद्याविच्छित्तिवेलायां मायारजन्या विरम एव प्रपञ्चेन विना कृतो निरुपाधिकपरमानन्दाविर्भाव इत्यर्थः।।२४।।

त्यावेळी अशा शिवयोग्याच्या अनुभवास येणाऱ्या आनदाचे निरूपण करतात—अनादी अशा अविद्येच्या निवृत्तीच्या वेळी त्या परयोग्यास प्रपंचाविना निरूपाधिक अशा परमानंदाचा अनुभव येतो.।।२४।।

ननु शिवयोगिनः प्रपञ्च एव सन्तीति कथं निरुपाधिकानन्दाविर्भाव इत्यत्राह—

नित्यानन्दे निजाकारे विमले परतेजसि।
विलीनचेतसां पुंसां कुतो विश्वविकल्पना।।२५।।

नित्यानन्दस्वरूपे विमले निर्मले निजाकारे निजस्वरूपवति परतेजसि चिदादित्ये विलीनचित्तानां पुंसां सत्पुरुषाणां शिवयोगिनां विश्वकल्पना कुत इत्यर्थः।।२५।।

शिवयोगी संसारात राहात असूनही त्याला निरुपाधिक आनद कसा प्राप्त होतो? तर—नित्यानंद आणि निर्मल अशा निजस्वरूपी चिदादित्यात ज्याचे मन विलीन झाले आहे, अशा शिवयोग्यास संसाराची जाणीव कशी राहू शकेल? अर्थात् राहाणार नाही.।।२५।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अथ ज्ञानपादोदकसम्पन्नस्य शिवयोगिनः पूर्णानन्दस्य ब्रह्मादीनामप्यानन्दो न सम इति सूत्रद्वयेन कथयति—

कुतो ब्रह्मा कुतो विष्णुः कुतो रुद्रः कुतो रविः।
साक्षात्कृतपरानन्दज्योतिषः साम्यकल्पना।।२६।।

ब्रह्मादीनामानन्दस्य साक्षात्कृतपरानन्दज्योतिषः शिवयोगिन आनन्दांश-लेशत्वादिति भावः, "अस्यैवानन्दस्यान्यानि भूतानि मात्रामुपजीवन्ति" इति श्रुतेः, योगिशिवयोरभेदादिति।।२६।।

ज्ञानपादोदक संपन्न शिवयोग्याच्या आनंदाची सर ब्रह्मादिकांच्या आनंदासही येऊ शकत नाही, असे दोन श्लोकात सांगतात— कुठला ब्रह्मदेव, कुठला विष्णू, कुठला रुद्र आणि कुठला सूर्य! प्रत्यक्ष लाभलेल्या आत्मस्वरूपानंदाच्या तेजाची बरोबरी कोणीही करू शकत नाही. कारण या आत्मस्वरूपानंदाचे केवळ अंशच त्यांच्या ठिकाणी प्रकाशित होत असल्यामुळे त्या इतरांना मूळ आत्मानंदाची सर येत नाही हा भावार्थ.।।२६।।

इममर्थमेव स्फुटयति—

अपरोक्षपरानन्दविलासस्य महात्मनः।
ब्रह्मविष्ण्वादयो देवा विशेषाः सुखबिन्दवः।।२७।।

महात्मनो ज्ञानपादोदकसम्पन्नस्य शिवयोगिन इत्यर्थः। शिष्टं स्पष्टम्।।२७।।

त्याचेच स्पष्टीकरण करतात—आत्मस्वरूपाचा पूर्ण आनंद प्रत्यक्षपणे मिळविलेल्या श्रेष्ठ शिवयोग्याला ब्रह्मदेव, विष्णू वगैरे देवांना मिळणारी सुखे बिंदूसमान क्षुद्र वाटतात.।।२७।।

अथ तज्ज्ञानानन्दमेव विशिष्य ज्ञानपादोदकस्थलं समापयति—

यन्मात्रासहितं लोके वाञ्छन्ति विषयं नराः।
तदप्रमेयमानन्दं परमं को न वाञ्छति।।२८।।

नरा जना लोके इह लोके यन्मात्रासहितं यस्य चिदानन्दस्यांशेन सहितं विषयसुखं वाञ्छन्ति, तदप्रमेयं तस्य विषयज्ञानसुखस्य अप्रमेयमपरिमितं परानन्दं ब्रह्मानन्दं को न वाञ्छति, सर्वेऽपि वाञ्छन्तीत्यर्थः।।२८।।

इति ज्ञानपादोदकस्थलम्

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तो ज्ञानानंदच श्रेष्ठ होय असे सांगून ज्ञानपादोदकस्थलाची समाप्ती करतात—चिदानंदाचे अंशमात्रसुख असलेल्या विषयसुखाची लोक अभिलाषा बाळगतात, तर अप्रमेय, अपरिमित अशा श्रेष्ठ चिदानंदाची अपेक्षा कोण करणार नाही? अर्थात् सर्वांनाच त्याची अपेक्षा असते.।।२८।।

अथ क्रियानिष्पत्तिस्थलम्

अथ—"अद्वैतभक्तियुक्तस्य योगिनः सकला क्रिया। आस्ते दग्धपटन्यायात् क्रियामात्रं हि न क्रिया।।" इति वीरतन्त्रवचनानुसारेण एष ज्ञानपादोदकसम्पन्न एव रज्जुसर्पन्यायेन कल्पितक्रियानिष्पत्तिमानिति क्रियानिष्पत्तिस्थलं विशदयति—

परकाये क्रियापत्तिः कल्पितैव प्रकाशते।
रज्जौ भुजङ्गवद् यस्मात् क्रियानिष्पत्तिमानयम्।।२९।।

परब्रह्मकाये ज्ञानपादोदकसम्पन्ने शिवयोगिनि क्रियानिष्पत्ती रज्जौ सर्पत्ववद् यस्मात् कारणात् कल्पितैव प्रकाशते, तस्मादयं ज्ञानपादोदकसम्पन्नः शिवयोगी क्रियानिष्पत्तिमानित्यर्थः।।२९।।

'अद्वैत भक्तियुक्त अशा योग्याच्या सर्व क्रिया दग्धपट न्यायाने दिसण्यापुरत्या असतात, त्यात वास्तविकता नसते,' अशा वीरतंत्राच्या वचनानुसार या ज्ञानपादोदकसंपन्न अशा शिवयोग्याच्या सर्व क्रिया रज्जुसर्पन्यायाने कल्पित असतात, असे सांगण्यासाठी क्रियानिष्पत्तिस्थलाचे प्रतिपादन करतात—ज्ञानपादोदकसपन्न अशा शिवयोग्याकडून होणाऱ्या क्रिया रज्जू (दोरी) वर सर्पाचा आभास होण्यासारख्या असतात, म्हणजे वास्तविक नसतात, अर्थात् त्यांच्यापासून फलनिष्पत्ती होत नाही. अशा कर्तृत्वभावरहित म्हणून फलविरहित क्रियासंपन्न शिवयोग्याला क्रियानिष्पत्तिमान म्हणतात.।।२९।।

अत एव ज्ञानिनः कर्मफलं नास्तीति षड्भिः सूत्रैः प्रतिपादयति—

ज्ञानिनां यानि कर्माणि तानि नो जन्महेतवः।
अग्निदग्धानि बीजानि यथा नाङ्कुरकारणम्।।३०।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ज्ञानिनां कर्मबीजानि ज्ञानाग्निदग्धानीति वह्निदग्धबीजवन्नाङ्कुरकारणमित्यर्थः।।३०।।

म्हणून ज्ञान्यांना कर्मांचे फल नसते असे सहा श्लोकात सांगतात—भाजलेले बीज जसे अंकुरोत्पत्तीला कारण होऊ शकत नाही, तसे ज्ञानाग्नीने दग्ध झालेले ज्ञान्याचे कर्म त्याच्या पुनर्जन्माला कारण होत नाही.।।३०।।

अस्मिन्नर्थे—"ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात् कुरुतेऽर्जुन" इति भगवदुक्तिः। तस्माद् ज्ञानिनः कृतेनापि कर्मणा प्रयोजनं नास्तीत्याह—

कर्मणा किं कृतेनापि ज्ञानिनो निरहङ्कृतेः।
विक्रिया प्रतिबिम्बस्था किं करोति हिमद्युतेः।।३१।।

अहं करोमीति मूलाहङ्कारशून्यस्य शिवज्ञानिनः कृतेनापि कर्मणा प्रयोजनं नास्ति, यथा प्रतिबिम्बस्थविकारो बिम्बरूपस्य चन्द्रस्य नास्ति, ज्ञानिनोऽप्रतिबिम्बचैतन्यरूपत्वादिति भावः।।३१।।

'हे अर्जुना, ज्ञानाग्नी कर्मांना भस्मसात् करतो', अशी गीतोक्ती आहे. म्हणून ज्ञान्यांनी केलेल्या कर्मांचे काही फळ नसते असे सांगतात—प्रतिबिंबात दिसणारे विकार बिंबरूप अशा चंद्राला जसे स्पर्श करीत नाहीत, तशा रीतीने 'मी करतो' अशा मूल अहंकाररहित शिवयोग्याची कर्मेही त्याच्यावर कसलाही परिणाम करीत नाहीत. अर्थात् त्या कर्मांची फळे त्याला भोगावी लागत नाहीत.।।३१।।

अथ ज्ञानिनि प्रतीयमाना क्रिया कल्पितेत्यत्र दृष्टान्तमाह—

चन्द्रस्य मेघसम्बन्धाद् यथा गमनकल्पना।
तथा देहस्य सम्बन्धादारोप्या स्यात् क्रियात्मनः।।३२।।

स्पष्टम्।।३२।।

ज्ञान्याने केलेले कर्म वास्तविक नसते या विषयी दृष्टांत देतात—आकाशात मेघांच्या चलनाने चंद्रच चालत आहे असे भासते, तसे आत्म्यावर देहसंबंधाने क्रियाकर्तृत्वाचा आरोप होतो. वास्तविक आत्मा कोणतेही कर्म करीत नाही.।।३२।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अथ कर्म कुर्वतोऽपि ज्ञानिनः कर्मलेपो नास्तीत्यत्र दृष्टान्तमाह—

ज्ञानी कर्मनिरूढोऽपि लिप्यते न क्रियाफलैः।
घृतादिना यथा जिह्वा भोक्त्री चापि न लिप्यते।।३३।।

निरूढस्तत्पर इत्यर्थः। शिष्टं स्पष्टम्।।३३।।

ज्ञान्याने कर्म केले तरी तो त्या कर्माच्या फलाने लिप्त होत नाही. याविषयी दृष्टांत देतात—तूप, तेल वगैरे सर्व प्रदार्थांची चव घेणारी जीभ जशी त्या पदार्थांच्या ओशटपणाने लिप्त होत नाही, तसेच ज्ञानी मनुष्य कर्म करीत असला तरी त्याची फले त्याला भोगावी लागत नाहीत.।।३३।।

ननु जिह्वाया जलतत्त्वमयत्वेनाङ्गुल्यादिवद् घृतादिलेपो नास्ति, ज्ञानिनः कस्मात् कर्मफललेपो नास्तीत्यत्र चाह—

निरस्तोपाधिसम्बन्धे जीवे या या क्रियास्थितिः।
सा सा प्रतीतिमात्रेण निष्फला चात्र लीयते ।।३४।।

निवृत्तमूलाहङ्कारसम्बन्धे चिद्रूपे जीवन्मुक्ते या या क्रियास्थितिरस्ति, सा सा दग्धरज्जुन्यायेन प्रतीतिमात्रेण स्थित्वा निष्फला सती स्वात्मन्येव लीयत इत्यर्थः। कर्मलेपस्याहङ्कारो मूलमिति शिवज्ञानिनस्तदभावात् कर्मलेपो नास्तीति भावः।।३४।।

जीभ ही जलतत्त्वप्रधान असल्याने ती स्निग्ध पदार्थांनी ओशट होत नाही हे खरे, तरीपण ज्ञानी पुरुष आपल्या कर्मफलांनी प्रभावित कसा होत नाही? याचे उत्तर असे की—कर्मफलाचा प्रभाव होण्यासाठी 'मी कर्ता आहे' असा मूल अहंकार असावा लागतो. शिवयोग्याच्या ठिकाणी असा अहंकार नसल्यामुळे ज्ञानस्वरूप असा तो जीवन्मुक्त जे जे कर्म करीत असल्याचे दिसते, ते ते निष्फळ होऊन आत्म्यात विलीन होते.।।३४।।

ननु ज्ञानिनः कर्मलेपो यथा नास्तीत्युच्यते, तथा तस्य कर्मैव नास्तीति कुतो नोच्यत इत्यत्राह—

गच्छंस्तिष्ठन् स्वपन् वापि न निष्कर्मास्ति कश्चन।
स्वभावो देहिनां कर्म ज्ञानिनां तत्तु निष्फलम्।।३५।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अनेन रज्जुभुजङ्गन्यायेन शिवयोगिनि क्रियानिष्पत्तिरारोपितेत्येतत्परास्तम्, कर्म देहिनां स्वभाव इत्युक्तत्वादिति।।३५।।

ज्ञान्याला जसे कर्मफल नसते तसे कर्मही का नसावे? उत्तर असे की—सर्व प्राणिमात्र चालणे, झोपणे इ. जीवनावश्यक कर्मे करीतच असतात. तो त्यांचा स्वभावधर्मच असतो. परंतु ज्ञानीजनांनी केलेली कर्मे फलरहित असतात.।।३५।।

अथ क्रियानिष्पत्तेः सर्वदेहस्वभावत्वेऽपि ज्ञानिनः कर्मलेपो नास्तीति वदन् क्रियानिष्पत्तिस्थलं समापयति—

परिपूर्णमहानन्दभाविनः शुद्धचेतसः।
न भवेत् कर्मकार्पण्यं नानाभोगफलप्रदम्।।३६।।

निर्मलान्तःकरणस्य नित्यपरिपूर्णपरानन्दानुभाविनः शिवयोगिनो नानाविधभोगफलप्रदं पुण्यपापलक्षणकर्मपीडनं न भवेन्न स्यादित्यर्थः।।३६।।

इति क्रियानिष्पत्तिस्थलम्

कर्म करणे हा सर्व प्राण्यांचा सहज स्वभाव असला तरी ज्ञान्यांना त्या कर्मांचे फल नसते, असे सांगून ह्या क्रियानिष्पत्तिस्थलाची समाप्ती करतात—निर्मल अंतःकरणाच्या, नित्य परिपूर्ण आनंद अनुभवीत असणाऱ्या शिवयोग्याला नानाविध भोगफले देणाऱ्या पुण्यपापरूप कर्मांची पीडा नसते.।।३६।।

अथ भावनिष्पत्तिस्थलम्

अथ—"चिरेण साध्यमानस्य भावुकैर्विगतक्रमैः। स्थिरभावो हि भावस्य भावनिष्पत्तिरुच्यते।।" इति किरणतन्त्रवचनानुसारेण तत्क्रियानिष्पत्तिमान् शिवयोगी शुक्तिरजतन्यायेन भावनिष्पत्तिमानिति प्रतिपादयति—

भावः प्रतीयमानोऽपि परकाये तु कल्पितः।
शुक्तौ रजतवद् यस्माद्भावनिष्पत्तिमानयम्।।३७।।

परकाये क्रियानिष्पत्तिमति चित्काये प्रतीयमानो भावो यस्मात् शुक्तिरजतवत् कल्पितः, तस्मादयं क्रियानिष्पत्तिमान् शिवयोगी भावनिष्पत्तिमानित्यर्थः।।३७।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

'भाविक पुरुष कालांतराने भावनेची जी स्थिरता मिळवितो ती भावनिष्पत्तीच होय.' या किरणागमवचनानुसार क्रियानिष्पत्ती साधून घेतलेल्या शिवयोग्याला प्राप्त झालेली भावनिष्पत्तीसुद्धा शिपल्यावर होणाऱ्या चांदीच्या भासाप्रमाणे केवळ भासमान होते, असे सांगतात—क्रियानिष्पत्तीने परिशुद्ध झालेल्या परब्रह्मशरीरी शिवयोग्याच्या ठिकाणी दिसणारा भाव शिंपल्यामध्ये भासणाऱ्या चांदीसारखा केवळ प्रतीत होतो, म्हणून त्याला भावनिष्पत्तिमान् असे म्हणतात. अशा शिवयोग्याच्या ठिकाणी दिसणारे कोणतेही भाव प्रत्यक्षात तसे नसतात. ते केवळ इतरांना मार्गदर्शन करण्यासाठीच असतात.।।३७।।

अथ ज्ञानयोगिनो भावसम्बन्धाभावेऽपि सच्चिदानन्दाकारे परशिवे भावः स्थापनीय इति पञ्चभिः सूत्रैः प्रतिपादयति—

भावेन नास्ति सम्बन्धः केवलज्ञानयोगिनः।
तथापि भावं कुर्वीत शिवे संसारमोचके।।३८।।

स्पष्टम्।।३८।।

या ज्ञानयोग्याला असा भावसंबंध नसला तरी सच्चिदानंद स्वरूप अशा परशिवाचा भाव मात्र असावा लागतो, असे पाच श्लोकांत निरूपण करतात—केवळ ज्ञानयोगी असणाऱ्याला भावाचा संबंध नसतो. तरीही त्याने संसारमोचक अशा परमात्म्याच्या ठिकाणी भाव ठेवला पाहिजे.।।३८।।

ननु परिपूर्णज्ञानिनः किं भावेनेत्यत्राह—

परिपूर्णप्रबोधेऽपि भावं शम्भौ न वर्जयेत्।
भावो हि निहितस्तस्मिन् भवसागरतारकः।।३९।।

परिपूर्णसदानन्दबोधस्वरूपे शम्भौ भावं न वर्जयेत् । कुतः? इत्यत्राह—तस्मिन् शम्भौ स्थापितो भावः संसारसागरतारक इति हि प्रसिद्ध इत्यर्थः।।३९।।

परिपूर्ण अशा ज्ञान्याला भावाचे काय प्रयोजन? उत्तर असे की, शिवयोगी परिपूर्ण ज्ञानानंदस्वरूप झाला तरी शिवभावना त्याने सोडू नये. कारण परशिवाच्या ठिकाणी ठेवलेली भावनाच

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

संसारसागर तरून जाण्यास साहाय्यक होते हे प्रसिद्ध आहे.।।३९।।

अनेनास्य भावस्यार्थक्रियाकारित्वेन शुक्तिरजतवैलक्षण्यं सूचितम्। तस्माच्छम्भौ भावः स्थिरीकरणीय इति भावः। तर्हि स भावो नित्यः किमित्यत्राह—

निवर्त्य जन्मजं दुःखं भावः शैवो निवर्तते।
यथा काष्ठादिकं दग्ध्वा स्वयं शाम्यति पावकः।।४०।।

जन्मजं दुःखं भवरोगमित्यर्थः। शिष्टं स्पष्टम्। अनेन नित्यमुक्तो भवति।।४०।।

ही शिवभावना संसारमोचक आहे असे सांगून ती शिंपल्याच्या ठिकाणी होणाऱ्या चांदीच्या आभासापेक्षा विलक्षण आहे असे सूचित केल्यामुळे शिवाच्या ठिकाणी असलेला भाव नित्य असतो का? असा प्रश्न उपस्थित झाल्यास त्याचे उत्तर असे की— लाकडाच्या ठिकाणी प्रकट झालेला अग्नी जसा लाकडाला जाळून शेवटी स्वतःही शांत होतो, तशा प्रकारे ह्या ज्ञानी शिवयोग्याच्या ठिकाणी उत्पन्न झालेला शिवभाव जन्मदुःख अर्थात् भवरोगाला नाहीसा करून स्वतःही नाहीसा होतो.।।४०।।

अथ भवरोगनिवृत्त्यनन्तरं भावस्य प्रयोजनं नास्ति वेत्यत्राह—

प्रकाशिते शिवानन्दे तद्भावैः किं प्रयोजनम्।
सिद्धे साध्ये चिरेणापि साधनैः किं प्रयोजनम्।।४१।।

भवरोगनिवृत्त्यनन्तरं नित्यानन्दे प्रकाशिते सति शिवभावैः प्रयोजनं नास्ति। तत्र दृष्टान्तः— बहुकाले साध्ये सिद्धे सति साधनैर्यथा प्रयोजनं नास्ति, तथेत्यर्थः।।४१।।

भवरोगाची निवृत्ती झाल्यावर भावाचे काही प्रयोजन नसते का? तर—साध्य करावयाची वस्तू बऱ्याच काळानंतर सिद्ध झाल्यावर ज्या प्रमाणे साधनांचे प्रयोजन उरत नाही, तशा प्रकारे भवरोगाची निवृत्ती होऊन नित्यानंदाची प्राप्ती झाल्यावर शिवभावाचे काय प्रयोजन? अर्थात् काही प्रयोजन नाही.।।४१।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तर्हि भावलयानन्तरं योगी कथं भासत इत्यत्राह—

एकीकृते शिवे भावे ज्ञानेन सह संयमी।
विस्मितात्मसमावेशः शिवभावे विभासते।।४२।।

कार्यनाशः कारणात्मनाशस्थितिरेवेति भावे वृत्तिज्ञानेन सह शिवैकलोलीभूते सति भावनिष्पत्तिमान् शिवयोगी आश्चर्यसङ्कल्पित-स्वस्वरूपसमावेशवान् सन् शिवोऽहमिति भावे प्रकाशत इत्यर्थः।।४२।।

भावलय झालेला शिवयोगी कसा दिसतो? तर—भावाचे ज्ञानासह अपरोक्ष अशा परशिवामध्ये ऐक्य होऊन भावनिष्पत्ती झालेला शिवयोगी आश्चर्यकारक स्वस्वरूप अनुसंधानयुक्त होऊन शिवोऽहं अशा भावरूपाने प्रकाशतो.।।४२।।

अथ भावज्ञानयोरभेदमुपपाद्य भावनिष्पत्तिस्थलं समापयति—

न भावेन विना ज्ञानं न भावो ज्ञानमन्तरा ।
मोक्षाय कारणं प्रोक्तं तस्मादुभयमाश्रयेत्।।४३।।

भावेन विना वृत्तिज्ञानं नास्ति, तेन विना भावो नास्तीति भावज्ञानयोरन्योन्यकारणत्वं प्रोक्तम् । तस्मान्मोक्षाय तदुभयमाश्रये-दिति।।४३।।

इति भावनिष्पत्तिस्थलम्

भाव आणि ज्ञान या दोहोत अभेद असल्याचे सांगून भावनिष्पत्ति-स्थलाची समाप्ती करतात—भाव नसेल तर ज्ञान होत नाही व ज्ञानाशिवाय भाव होत नाही. मोक्षासाठी भाव व ज्ञान हे दोन्ही असले पाहिजेत. म्हणून हे दोन्ही प्राप्त करून घ्यावेत.।।४३।।

अथ ज्ञाननिष्पत्तिस्थलम्

अथ—"यथा मनः परे तत्त्वे लब्धलक्ष्यं विलीयते। तथा ह्यशेषविज्ञानं विनाशमुपगच्छति।।" इति निश्वासकारिकानुसारेण सोऽयं भावनिष्पन्न एव स्वप्नवद् ज्ञाननिष्पत्तिमानिति कथयति—

ज्ञानस्य व्यवहारेऽपि ज्ञेयांभावात् स्वभावतः।
स्वप्नवज्ज्ञाननिष्पत्त्या ज्ञाननिष्पन्न इत्यसौ।।४४।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

व्यवहारे विश्वव्यावहारिकज्ञानस्य स्वभावतः स्थिरत्वेन ज्ञेयाभावाद् विषयाभावाद् असौ भावनिष्पत्तिमान् शिवयोगी अस्थिरस्वप्नसदृशज्ञान-निष्पत्त्या ज्ञाननिष्पत्तिमानिति प्रोच्यत इत्यर्थः।।४४।।

'प्राप्त झालेल्या परशिव लक्ष्यामध्ये मन जसे विलीन होते तशाप्रकारे संपूर्ण ज्ञानही त्याठिकाणी लय पावते,' अशा निश्वासकारिका वचनानुसार आता भावनिष्पत्ती झालेल्या शिवयोग्याच्या ज्ञाननिष्पत्तीचे निरूपण करतात--स्वस्वरूपज्ञानामध्ये विलीन झालेल्या शिवयोग्याला बाह्य प्रपंचात जाणून घेण्यासारखी कोणतीही वस्तू नसल्याने त्याचे व्यावहारिक ज्ञान स्वप्नातील ज्ञानाप्रमाणे विलय पावते. अशा रीतीने त्याचे व्यवहाराचे ज्ञान स्वस्वरूपज्ञानात विलीन झाले असल्यामुळे त्याला ज्ञाननिष्पत्तिमान म्हणतात.।।४४।।

अथ तदेवोपपादयति—

स्वप्नजातं यथा ज्ञानं सह स्वार्थैर्निवर्तते।
तथात्मनि प्रकाशे तु ज्ञानं ज्ञेयं निवर्तते।।४५।।

स्वप्नोत्पन्नं ज्ञानं यथा स्वविषयैः सह निवर्तते, तथा स्वस्वरूपे प्रकाशिते सति जाग्रद्दशाज्ञानेन सह ज्ञेयं विश्वं निवर्तत इत्यर्थः।।४५।।

त्याचेच स्पष्टीकरण करतात—स्वप्नातून जागा झालेल्या व्यक्तीला ज्याप्रमाणे स्वप्नपदार्थ आणि त्यांचे ज्ञान दोन्हीही नाहीसे होतात, त्याप्रमाणे स्वस्वरूपज्ञान प्रकाशित झाल्यावर जागृत व्यवहारातील पदार्थ आणि त्यांचे ज्ञान, दोन्हीही विलय पावतात.।।४५।।

ननु स्वस्वरूपे प्रकाशिते ज्ञेयं कस्मान्निवर्तत इत्यत्राह—

परिपूर्णे महानन्दे परमाकाशलक्षणे।
शिवे विलीनचित्तस्य कुतो ज्ञेयान्तरे कथा।।४६।।

स्पष्टम्।।४६।।

स्वस्वरूपाचे प्रकाशन होताच अन्य ज्ञेय पदार्थांची निवृत्ती होते असे सांगतात —परिपूर्ण, महानंदस्वरूप असलेल्या परमा-काशरूप परशिवामध्ये चित्त विलीन झालेल्या शिवयोग्याला जाणून

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

घेण्यासारखा दुसरा कोणता पदार्थ आहे? अर्थात् कोणताही नाही.।।४६।।

ननु ज्ञाननिष्पत्तिसम्पन्नस्य शिवयोगिनो ज्ञानं कीदृशमित्यत्राह—

अखण्डानन्दसंवित्तिस्वरूपं ब्रह्म केवलम्।
मिथ्या तदन्यदित्येषा स्थितिर्ज्ञानमिहोच्यते।।४७।।

ब्रह्म परशिवाख्यं ब्रह्म केवलमखण्डानन्दसंवित्स्वरूपम्। तदन्यद् तद्व्यतिरिक्तं मिथ्यैवेदमिति भासमानं जगज्जालं मृषेत्येषा स्थितिर्ज्ञान-मिहोच्यते ज्ञाननिष्पत्तिस्थलं कथ्यत इत्यर्थः।।४७।।

ज्ञाननिष्पत्ती झालेल्या शिवयोग्याचे ज्ञान कसे असते? तर— परशिव हे पर्यायनाव असलेले परब्रह्मच अखंड सच्चिदानंदस्वरूप आहे, त्याशिवाय भिन्न असलेले सर्व मिथ्या आहे, असे जाणून घेणे हेच ज्ञान होय. म्हणजेच त्या शिवयोग्याचे ज्ञान हे सर्वत्र शिवस्वरूप पाहाणारे असते.।।४७।।

अथ विशेषलक्षणं दर्शयति—

सत्तात्मनाऽनुवृत्तं यद् घटादिषु परं हि तत्।
व्यावर्तमाना मिथ्येति स्थितिर्ज्ञानमिहोच्यते।।४८।।

"सदेव सोम्येदमग्र आसीत्" इति श्रुतेः सत्तात्मना सद्रूपब्रह्मणा परम्, अव्ययत्वात् परेषु घटादिषु अनुवृत्तमनुगतं यन्नामरूपमस्ति, तद् मिथ्येति व्यावर्तमाना निवार्यमाणा स्थितिरिह ज्ञानमित्युच्यत इत्यर्थः।।४८।।

त्या ज्ञानाचे विशेष लक्षण सांगतात— 'सृष्टीच्या उत्पत्तीपूर्वी सद्रूप असे ब्रह्म होते,' या श्रुतीच्या वचनानुसार ते सद्रूप परब्रह्मच घटपटादी वस्तूंमध्ये अनुस्यूत आहे. असे सर्व पदार्थांमध्ये अनुस्यूत असलेले ब्रह्मच सत्य होय. त्याखेरीज पदार्थांची नामरूपे ही मिथ्या समजावी. अशारीतीने पदार्थांची नामरूपे व्यावर्त करून परब्रह्माचे सत्यरूप ओळखणे हेच ज्ञान होय.।।४८।।

नन्वेवं चेदाविद्यकब्रह्माद्वैतापेक्षयास्य स्वतन्त्रशिवाद्वैतस्य को विशेष इत्यत्राह—

अकारणमकार्यं यदशेषोपाधिवर्जितम्।
तद्ब्रह्म तदहं चेति निष्ठा ज्ञानमुदीर्यते।।४९।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

यद्वस्तु "न तस्य कार्यं करणं च विद्यते न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते" इति श्वेताश्वतरश्रुतेः कार्यकारणशून्यं सदशेषोपाधिवर्जितम्, तद्ब्रह्म तत् तद्ब्रह्मैव, अहं च चिरादिदमिति भासमानं पाञ्चभौतिकम्, एवं चराचरमयं विश्वमिति निष्ठादार्ढ्यं ज्ञानमित्युत्कृष्टत्वेनोच्यत इत्यर्थः।।४९।।

ज्या ज्ञानाचे स्वरूप आतापर्यन्त सांगितले त्या संदर्भात ब्रह्माद्वैतापेक्षा शिवाद्वैताचे वैशिष्ट्य कोणते? याचे उत्तर असे की, कार्यकारणभावविहीन, सकलउपाधी विरहित जे परब्रह्म आहे तेच मी आहे आणि तेच चराचर प्रपंचही आहे, अशी होणारी दृढनिष्ठा हीच शिवाद्वैत सिद्धांतानुसार उत्कृष्ट ज्ञान होय. ब्रह्माद्वैती प्रपंचाला मिथ्या मानून परब्रह्मालाच सत्य म्हणतात, परंतु शिवाद्वैत सिद्धांतात प्रपंचालाही परब्रह्मस्वरूपच समजतात.।।४९।।

अथैवं चिद्रूपब्रह्मणि सामरस्यज्ञाननिष्पत्तिमतः शिवयोगिनः स्वातिरेकेण त्रिपुटीमयप्रपञ्चव्यवहारो नास्तीति वदन् ज्ञाननिष्पत्तिस्थलं समापयति—

ज्ञाताप्यहं ज्ञेयमिदमिति व्यवहृतिः कुतः।
अभेदब्रह्मस्वारस्ये निरस्ताखिलवस्तुनि।।५०।।

"नेह नानास्ति किञ्चन" इति श्रुतेर्निरस्तसमस्तप्रापञ्चिकभेदवदद्वितीयब्रह्मसामरस्ये सत्यहं ज्ञाता ज्ञेयमिदमिति व्यवहृतिः कुतः? व्यवहारः कस्मात्? न कस्मादपीत्यर्थः।।५०।।

इति ज्ञाननिष्पत्तिस्थलम्

अशा रीतीने चिद्रूप परब्रह्मात सामरस्यज्ञान झालेल्या शिवयोग्याला आपल्यापेक्षा भिन्न असा त्रिपुटीमय प्रपंचव्यवहार नसतो, असे सांगून ज्ञाननिष्पत्तिस्थलाचा समारोप करतात—प्रापंचिक भेदरहित अशा अद्वितीय परब्रह्मात सामरस्यप्राप्ती करून घेणाऱ्याला, मी ज्ञाता आणि हे ज्ञेय होय असा व्यवहार कसा असू शकेल? अर्थात् असणे संभवत नाही.।।५०।।

अथ पिण्डाकाशस्थलम्

अथ—"एक एव हि भूतात्मा भूते भूते व्यवस्थितः। एकधा बहुधा चैव दृश्यते जलचन्द्रवत्।।" इत्यमृतबिन्दूपनिषद्वचनानुसारेण ज्ञाननिष्पत्ति-

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सम्पन्नस्य सुलभीभूतपिण्डाकाशस्वरूपं सूत्रत्रयेण निरूपयति–

यथा पिण्डस्थ आकाशस्तथात्मा पूर्ण उच्यते।
एतदर्थविवेको यः पिण्डाकाशस्थलं विदुः।।५१।।

पूर्ण आकाशो यथा पिण्डे तिष्ठति, तथा पिण्डस्थ आत्मा पूर्ण उच्यते, अस्येति शेषः। अस्य ज्ञाननिष्पत्तिसम्पन्नस्य शिवयोगिन एतदर्थविवेकोऽस्ति, तत्पिण्डाकाशस्थलं सद् जानन्तीत्यर्थः।।५१।।

'आकाशात चंद्र एकच असला तरी विविध घटातील पाण्यामध्ये त्याची प्रतिबिंबे अनेक दिसतात, तशा रीतीने एकटाच असलेला परमात्मा अनेक प्राण्यांच्या अंतःकरणात विद्यमान असतो अमृतबिदूपनिषदाच्या या वचनानुसार ज्ञाननिष्पत्तिसपन्न शिवयोग्याला प्रत्येक पिंडात परमात्म्याचे अस्तित्व जाणवते, असे सांगण्यासाठी पिंडाकाशस्थलाचे निरूपण करतात. आता पिडकाशाचे स्वरूप तीन श्लोकांत विशद करतात–अखंड परिपूर्ण असे आकाश पिंडामध्ये अर्थात् देहात जसे असते तसे आत्मा हा देहस्थ असला तरी तो परिपूर्णच होय, असा विवेक ज्ञाननिष्पत्तिसंपन्न शिवयोग्याला असणे यालाच पिंडाकाशस्थल असे म्हणतात.।।५१।।

अथ व्यतिरेकमुखेनाह–

घटोपाधिर्यथाकाशः परिपूर्णः स्वरूपतः।
तथा पिण्डस्थितो ह्यात्मा परिपूर्णः प्रकाशते।।५२।।

घटोपाधिविशिष्ट आकाशो यथा स्वस्वरूपतः पूर्णः, तथा शरीरस्थ आत्मा स्वसच्चिदानन्दस्वरूपतः परिपूर्णः सन् प्रकाशत इत्यर्थः।।५२।।

आता तेच व्यतिरेकाने सांगतात–घटोपाधीने युक्त आकाश ज्याप्रकारे स्वरूपतः पूर्ण असते, तसेच शरीरस्थ असणारा सच्चिदानंदस्वरूप आत्माही परिपूर्ण होऊन प्रकाशतो.।।५२।।

अथ पिण्डाकाशविवेकवन्तं कथयति–

अन्तःस्थितं पराकाशं शिवमद्वैतलक्षणम्।
भावयेद् यः सुमनसा पिण्डाकाशः स उच्यते।।५३।।

हृदयाकाशस्थितं महाचिदाकाशस्वरूपम्, "एक एव रुद्रो न द्वितीयाय तस्थे" इति श्रुतेरद्वितीयम्, "शिव एको ध्येयः" इत्यथर्वशिखा-

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

श्रुतिप्रसिद्धपरशिवं निरालम्बेन मनसा यो ध्यायेत्, स पिण्डाकाशस्वरूप इत्युच्यत इत्यर्थः।।५३।।

आता पिंडाकाशाचा विवेक असणाऱ्याचे लक्षण सांगतात—हृदयात असणारा पराकाशस्वरूप अद्वितीय अशा परशिवाचे निरालंब मनाने जो ध्यान करतो त्यालाच पिंडाकाश असे म्हणतात.।।५३।।

अथ—"देहः शिवालयः साक्षात्तत्रास्ते परमः शिवः। इति निश्चयसद्भावः पिण्डज्ञं लिङ्गमुच्यते।।" इति वातुलोत्तरवचनानुसारेणैवं ध्यायतः शरीरमेव शिवागारम्, तस्य शिवो भासत इति सूत्रद्वयेन कथयति—

शिवागारमिदं प्रोक्तं शरीरं बोधदीपितम्।
षट्त्रिंशत्तत्त्वघटितं सुमनःपद्मपीठकम्।।५४।।

शिवादिभूम्यन्तषट्त्रिंशत्तत्त्वमयस्तम्भकुड्यादिनिर्मितं हृत्कमललक्षणपद्मपीठेन युक्तं ज्ञानदीपेन प्रकाशमानमिदं शरीरमेव शिवागारमिति प्रोक्तमित्यर्थः।।५४।।

'देहच देवालय. तेथे साक्षात् शिवाचा वास आहे, असा निश्चल सद्भाव असलेल्या पिंडज्ञाला लिंग असे म्हणतात,' या वातुलोत्तर वचनानुसार पिंडस्थ असलेल्या शिवाचे ध्यान करणाऱ्याचे शरीर शिवालय होय आणि त्यालाच शिवाचा साक्षात्कार होतो, असे दोन श्लोकांत सांगतात—शिवादिभूम्यंत छत्तीस तत्त्वरूप खांब, भिंती इत्यादींनी बनलेले, हृदयरूपी कमलासनाने युक्त, तसेच ज्ञानदीपाने उजळलेले हे शरीरच देवालय होय.।।५४।।

पराकाशस्वरूपेण प्रकाशः परमेश्वरः।
हृदाकाशगुहालीनो दृश्यतेऽन्तः शरीरिणाम्।।५५।।

चिदाकाशस्वरूपेण प्रकाशमानः परमेश्वरः प्राणिनां हृद्गुहाविलीनः सन् उपदेशसिद्धैर्दृश्यत इत्यर्थः।।५५।।

अशा शिवालयरूप प्राण्याच्या देहातील हृदयगुहेत लीन होऊन ज्ञानप्रकाशस्वरूपाने स्थित परशिव गुरूपदेशप्राप्त व्यक्तीला गोचर होतो.।।५५।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कथं दृश्यत इत्यत्र पक्षान्तरेण कथयति—

एतच्छिवपुरं प्रोक्तं सप्तधातुसमावृतम्।
अत्र हृत्पङ्कजं वेश्म सूक्ष्माम्बरमनोहरम्।।५६।।
तत्र सन्निहितं साक्षात् सच्चिदानन्दलक्षणम्।
नित्यसिद्धः प्रकाशात्मा जलस्थाकाशवच्छिवः।।५७।।

सप्तधातुभिः पूर्यत इत्येतच्छरीरमेव शिवपुरं पत्तनमित्यर्थः। अत्र पिण्डलक्षणशिवराजधान्यां सूक्ष्मभूतान्तराकाशरम्यं हृत्कमलमेवान्तःपुरम्। तत्र नित्यपरिपूर्णत्वेन सिद्धः सन् सच्चिदानन्दस्वरूपपरशिवो हृदयस्य स्वच्छत्वेन जलान्तर्गताकाशवत् साक्षात्प्रकाशरूपः सन् तिष्ठतीत्यर्थः ।।५६-५७।।

तो कसा गोचर होतो ते दुसऱ्या रीतीने सांगतात— सप्तधातूंनी निर्मित हा स्थूल देहच शिवाची राजधानी होय. त्यात असलेले हृदयकमल हेच राजगृह. त्यातील सूक्ष्माकाश हे अंतःपुर. त्यात नित्य परिपूर्णतेने सच्चिदानंदरूप परशिव निर्मल जलात दिसणाऱ्या आकाशाप्रमाणे प्रकाशमान होऊन स्थित असतो.।।५६-५७।।

नन्वपरिच्छिन्नः परमेश्वरः कथं परिच्छिन्नहृत्कमले तिष्ठतीत्यत्र वंदन् पिण्डाकाशस्थलं समापयति—

अन्तराकाशबिम्बस्थमशेषोपाधिवर्जितम्।
घटाकाश इव च्छिन्नं भावयेच्चिन्मयं शिवम्।।५८।।

हृदयाकाशस्थानस्थं समस्तोपाधिरहितं चिन्मयं शिवं घटाकाश इव विच्छिन्नं विभावयेदित्यर्थः।।५८।।

इति पिण्डाकाशस्थलम्

अपरिच्छिन्न असणारा परमात्मा परिच्छिन्न होऊन हृदयात कसा प्रकाशतो? असे विचारल्यास त्याचे उत्तर सांगून पिंडाकाशस्थलाचा समारोप करतात—अखंड असणारे आकाश घटरूप उपाधीने घटाकाश म्हणून जसे ओळखले जाते, तसा सकलोपाधिविहीन, चिन्मय असा परशिवच शरीरात असलेल्या सूक्ष्माकार हृदयाकाशात स्थित होऊन त्याच्या उपाधीने परिच्छिन्न होऊन दिसतो असे जाणावे.।।५८।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अथ बिन्द्वाकाशस्थलम्

अथ—"सदाशिवादितत्त्वानां कारणं व्यापकः परः। बिन्दुरूपः शिवो ध्येयो बिन्द्वाकाश इतीर्यते।।" इति किरणागमवचनानुसारेण तत्पिण्डाकाश-स्थलसम्पन्नस्य सुलभीभूतबिन्द्वाकाशस्थलं निरूपयति—

यथाकाशो विभुर्ज्ञेयः सर्वप्राण्युपरि स्थितः।
तथात्मेत्युपमानार्थं बिन्द्वाकाशस्थलं विदुः।।५९।।

सर्वप्राण्युपरिवर्त्याकाशो यथा विभुः सन् ज्ञातुं योग्यः, तथास्य पिण्डाकाशस्थलसम्पन्नस्य शिवयोगिन आत्मा सर्वप्राण्युपरिवर्त्याकाशवद् व्यापकीभूतः सन् विज्ञातुं योग्य इत्युपमानार्थमेव बिन्द्वाकाशस्थलं विदुर्जानन्तीत्यर्थः।।५९।।

'सदाशिवादिभूम्यंत तत्त्वांना कारण असणारा, सर्वव्यापक आणि बिंदुरूपात ध्यान करण्यास योग्य असा परशिवच बिंद्वाकाश होय,' अशा किरणागमवचनानुसार पिंडाकाशस्थलसंपन्न शिवयोग्याला सुलभ अशा बिंद्वाकाशस्थलाचे निरूपण करतात—सर्व प्राणिमात्रांच्या वर असलेले आकाश जसे सर्वव्यापक असते, तसा पिंडाकाशस्थलसंपन्न अशा शिवयोग्याचा आत्मा सर्वव्यापक असतो, म्हणून त्याला बिंद्वाकाशस्थल असे म्हणतात. येथे ज्ञान्याच्या आत्म्याचे स्वरूप आकाशाच्या उपमानाने विशद केले असल्यामुळे याला बिंद्वाकाशस्थल म्हणतात.।।५९।।

अथ— "वायुर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव। एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहुश्च।।" इति कठवल्लीश्रुत्युक्तदृष्टान्तपूर्वकं चतुर्भिः सूत्रैस्तदेव प्रतिपादयति—

यथैको वायुराख्यातः सर्वप्राणिगतो विभुः।
तथात्मा व्यापकः साक्षात् सर्वप्राणिगतः स्वयम्।।६०।।

समस्तप्राणिनां प्राणरूपं गतो वायुरेक एव व्यापकः सन्नाख्यातः, तथाहमिति स्वयं साक्षात् सर्वप्राणिगत आत्मा व्यापक इत्यर्थः।।६०।।

'एकच असणारा वायू या जगातील प्राणिमात्रांच्या ठिकाणी अनेक रूपे धारण करून असतो, तसा एकच असलेला परमात्मा सर्व भूतमात्रांच्या अंतरात्म्यात प्रतिबिंबित होऊन अनेक रूपाने दिसतो, या कठोपनिषदात दिलेल्या दृष्टांतानुसार चार श्लोकांत आत्म्याचे स्वरूप विशद करतात—सर्व प्राणिमात्रांच्या ठिकाणी

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्राणवायूच्या रूपाने असलेला वायू जसा एकच असतो, तसा एकच असणारा व्यापक आत्मा सर्व प्राणिमात्रांमध्ये 'अहम्' रूपाने वास करतो.।।६०।।

यथा वह्निरमेयात्मा सर्वत्रैकोऽपि भासते।
तथा शम्भुः समस्तात्मा परिच्छेदविवर्जितः।।६१।।

अपरिमितस्वरूपवानेकोऽग्निर्यथासारवैद्युतपार्थिववाडवकालाग्निरूपेण विश्वव्यापकः सन् भासते, तथा सर्वचैतन्यात्मकश्चिद्वह्निरूपपरमेश्वर एक एव देवदानवमानवतिर्यक्स्थावररूपचराचरप्राणिष्वहमिति व्यक्ताव्यक्तरूपेण व्यापकः सन् विराजत इत्यर्थः।।६१।।

अपरिमितस्वरूप असा एकच अग्नी, दावाग्नी, वडवाग्नी, वीज, कालाग्नी इत्यादी रूपाने प्रपंचव्यापक होऊन प्रकाशतो, तसा सर्वचैतन्यरूप, ज्ञानमय परमेश्वर एकच असला तरी देवदानवमानवादी सकल चराचरात्मक प्राणिवर्गात व्यक्ताव्यक्त स्वरूपात 'अहम्' रूपाने व्यापून असतो.।।६१।।

सर्वेषां देहिनामन्तश्चित् ततोऽयं प्रकाशते।
तस्मिन् प्रतिफलत्यात्मा शिवो दर्पणवद् विभुः।।६२।।

समस्तदेहिनामन्तः "चित्तं तु चेतो हृदयं कमलं सलिलं जलम्" इत्यभिधानकोशप्रसिद्धहृदयकमलं दर्पणवत् प्रकाशते। तस्मिन् चित्तदर्पणे व्यापकीभूतः शिव आत्मा सन् प्रतिफलतीत्यर्थः।।६२।।

सर्व जीवांच्या हृदयात चित्तरूपी निर्मल जल विद्यमान असते. आरशात बिंबाचे प्रतिबिंब दिसल्याप्रमाणे त्या चित्तरूपी निर्मल जलात व्यापक असा परशिव आत्म्याच्या रूपाने प्रतिबिंबित होतो.।।६२।।

एको वशीकृतः संवित्प्रकाशात्मा परात्परः।
सर्वप्राणिगतो भाति तथापि विभुरुच्यते।।६३।।

विश्वोत्कृष्टपराशक्त्यपेक्षया श्रेष्ठश्चित्प्रकाशात्मा शिव एक एव सर्वप्राणिहृदयकमलं गत्वा तत्परिमितः सन् भाति, तथा सर्वानुस्यूतत्वाद्विभुरित्युच्यत इत्यर्थः।।६३।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पराशक्तीपेक्षा श्रेष्ठ, ज्ञानप्रकाशरूप एकमेवाद्वितीय असा शिव सर्व प्राणिमात्रांच्या हृदयकमलात वास करून परिच्छिन्न दिसत असला तरी तो सर्वव्यापक आहे.।।६३।।

अथ बिन्द्वाकाशस्थलं समापयति—

एक एव यथा सूर्यस्तेजसा भाति सर्वगः।
तथात्मा शक्तिभेदेन शिवः सर्वगतो भवेत्।।६४।।

सूर्य एक एव स्वकीयवृष्टिहिमोष्णकिरणतेजसा व्यापकः सन् यथा भाति, तथा शिवस्वरूप आत्मा स्वकीयेच्छाज्ञानादिशक्तिभिर्विश्वव्यापकः सन्नास्त इत्यर्थः।।६४।।

इति बिन्द्वाकाशस्थलम्

आता बिंद्वाकाशस्थलाचे निरूपण संपवितात—सूर्य एकच असला तरी आपल्या तेजाने सर्व जगाला व्यापक होऊन बर्फ वितळण्यास, पाऊस येण्यास जसा कारण होतो, तसा शिवस्वरूप आत्मा आपल्या इच्छा, ज्ञान, क्रियाशक्तींनी सर्व जग व्यापून असतो. बिंदुरूप असा शिवच आकाशाप्रमाणे व्यापक आहे असे जाणणे हे बिंद्वाकाश-स्थल होय.।।६४।।

अथ महाकाशस्थलम्

अथ—"व्योमाकारं महासूक्ष्मं व्यापकं यो न भावयेत्। संसारी स भवेल्लोके बीजकोशक्रिमिर्यथा।।" इति देवीकालोत्तरवचनानुसारेणोक्त-लक्षणबिन्द्वाकाशस्थलसम्पन्नस्य सुलभं महाकाशस्थलं सूत्रद्वयेन कथयति—

पिण्डाण्डस्थं यथाकाशं न भिन्नं तद्वदात्मनः।
अभिन्नः परमात्मेति महाकाशस्थलं विदुः।।६५।।

ब्रह्माण्डपिण्डाण्डगतमाकाशं यथा न भिन्नम्, तथास्य बिन्द्वाकाशसंम्पन्नस्य शिवयोगिन आत्मनश्चैतन्यात् परामात्मा भिन्नो नेत्यभिन्नमेव महाकाशस्थलं सद् जानन्तीत्यर्थः।।६५।।

'जो जीव आपल्या आत्म्याला आकाशासारखा सूक्ष्म व व्यापक आहे असे समजत नाही तो या जगात बीजातील कृमीसारखा जननमरणात्मक संसारी होतो.' अशा देविकालोत्तर वचनानुसार बिंद्वाकाशस्थलसंपन्न अशा शिवयोग्याचे आत्मचैतन्यही परमात्म्यापेक्षा

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

निराळे नाही असे समजणे हेच महाकाशस्थल, असे ज्ञानी समजतात.।।६५।।

यथा न भिन्नमाकाशं घटेषु च मठेषु च।
तथाण्डेषु च पिण्डेषु स्थितो ह्यात्मा न भिद्यते।।६६।।

स्पष्टम्।।६६।।

आकाश घटातील असो की मठातील, ते परस्परापासून जसे वेगळे नसते, तसा आत्माही ब्रह्मांड आणि पिंडांडामध्ये व्यापलेला असला तरी तो एकच असून भिन्न नसतो.।।६६।।

अथ महालिङ्गमेव महाकाशमिति सूत्रत्रयेण कथयति–

अनिर्देश्यमनौपम्यमवाङ्मानसगोचरम्।
सर्वतोमुखसम्पन्नं सत्तानन्दं चिदात्मकम्।।६७।।
कालातीतं कलातीतं क्रमयोगादिवर्जितम्।
स्वानुभूतिप्रमाणस्थं ज्योतिषामुदयस्थलम्।।६८।।
शिवाख्यं परमं ब्रह्म परमाकाशलक्षणम् ।
लिङ्गमित्युच्यते सद्भिर्यद्विना न जगत्स्थितिः।।६९।।

कलातीतमष्टत्रिंशत्कलातीतं क्रमयोगविवर्जितम् उत्पत्त्यादिक्रमयोगरहितं ज्योतिषामुदयस्थलम् अर्कादिज्योतिषामुत्पत्तिस्थानम् अहमिति स्वानुभूति-प्रमाणगम्यमित्यर्थः। शिष्टं स्पष्टम्।।६७-६९।।

महालिंगच महाकाश होय असे तीन श्लोकांतून सांगतात—जे दाखविता येत नाही, अनुपम, वाणीला आणि मनाला अगोचर, सर्वतोमुखी, सच्चिदानंदलक्षणयुक्त, भूतादिकालत्रयातीत, अडुसष्ट कलांच्या पलीकडील, उत्पत्ति-स्थित्यादिक्रमसबंधरहित, स्वस्वरूपाने मात्र गम्य असे, सूर्यादितेजोवलयांचे जन्मस्थान असणारे, शिव या नावाचे परमाकाश स्वरूप असणारे ते परब्रह्मच महालिंग होय, असे सत्पुरुष सांगतात. असे महालिंग नसते तर हे जगच नसते. म्हणजे हे महालिंगच जगाचे अधिष्ठान आहे.।।६७-६८-६९।।

अथोक्तमर्थमेव सूत्रद्वयेन विशेषयति–

परमाकाशमव्यक्तं प्रबोधानन्दलक्षणम् ।
लिङ्गं ज्योतिर्मयं प्राहुर्लीयन्ते यत्र योगिनः।।७०।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

यत्र महाकाशे शिवयोगिनो लीयन्त इति तं महाकाशमव्यक्तं मन्दभाग्यैर्गन्तुमशक्यं सच्चिदानन्दलक्षणं ज्योतिर्मयं लिङ्गमिति सन्तः प्राहुरित्यर्थः।।७०।।

त्या महालिंगाचे वैशिष्टय दोन श्लोकांत वर्णन करतात—ज्या महाकाशरूप महालिंगात शिवयोगी ऐक्य पावतो ते परमाकाश शिवानुग्रहभाग्यविहीन अशा व्यक्तींना प्राप्त होणे अशक्य होय. सच्चिदानंदलक्षणयुक्त अशा परमाकाशाला सत्पुरुष ज्योतिर्मयलिंग अर्थात् ज्योतिर्लिंग या नावाने ओळखतात.।।७०।।

संविदेव परा काष्ठा परमानन्दरूपिणी।
तामाहुः परमाकाशं मुनयो मुक्तसंशयाः।।७१।।

विगतसंशया वसिष्ठादिमुनयो यं महाकाशमाहुः। किमित्याहुरित्यत्र तन्महाकाशं परमानन्दरूपिणी सर्वोत्कृष्टा चितिरेवेत्याहुरित्यर्थः।।७१।।

परमानंदस्वरूप अशा सर्वोत्कृष्ट चैतन्यालाच संशयरहित झालेले वसिष्ठादिऋषिगण महाकाश या नावाने ओळखतात.।।७१।।

अथ तस्मिन् महाकाशे जगज्जालस्याभेदं दृष्टान्तपूर्वकं दर्शयति—

तरङ्गादि यथा सिन्धोः स्वरूपान्नातिरिच्यते।
तथा शिवाच्चिदाकाशाद् विश्वमेतन्न भिद्यते।।७२।।

स्पष्टम्।।७२।।

आता या महाकाशाशी जगाचा अभेद असल्याचे दृष्टांतपूर्वक प्रतिपादन करतात—समुद्रातील तरंगादी जसे समुद्रस्वरूपापेक्षा वेगळे नसतात, तसे चिदाकाशस्वरूप असलेल्या शिवापेक्षा हे विश्व भिन्न नाही.।।७२।।

अथ पुनर्दृष्टान्तान्तरमाह—

यथा पुष्पपलाशादि वृक्षरूपान्न भिद्यते।
तथा शिवात् पराकाशाज्जगतो नास्ति भिन्नता।।७३।।

स्पष्टम्।।७३।।

आणखी दृष्टांत देतात—वृक्षापासून निर्माण झालेली पाने, फुले वगैरे त्या वृक्षापासून जशी भिन्न नसतात, तशा प्रकारे

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पराकाशस्वरूप अशा परशिवापासून उत्पन्न झालेले हे जग त्याच्यापेक्षा वेगळे नाही.।।७३।।

ननु चिदाकाशस्य निरवयवत्वात् कथं तत्र विश्वं स्थितं सत्प्रकाशत इत्यत्राह—

यथा ज्योतींषि भासन्ते भूताकाशे पृथक् पृथक्।
तथा भान्ति पराकाशे ब्रह्माण्डानि विशेषतः।।७४।।

ज्योतींषि नक्षत्राणीत्यर्थः। शिष्टं स्पष्टम्।।७४।।

हे चिदाकाश निरवयव असल्यामुळे त्यामध्ये जग कसे दिसते? तर—या दिसणाऱ्या भूताकाशामध्ये जशी भिन्न भिन्न नक्षत्रे प्रकाशतात, तशा प्रकारे या महाकाशात अनेक ब्रह्मांडे दिसतात.।।७४।।

अथ तमेवाथ बन्धविशेष्यमहाकाशस्थलं समापयति—

निरस्तोपाधिसम्बन्धं निर्मलं संविदात्मकम्।
पराकाशं जगच्चित्रविलासालम्बभित्तिकम्।।७५।।

उक्तविशेषणविशिष्टपराकाशं जगज्जालरूपचित्रविलासस्याधारभूतमित्यर्थः। एतत्पिण्डाकाशादिलिङ्गत्रयं शरणस्याङ्गत्रयस्य संयोजनीयम्।।७५।।

इति महाकाशस्थलम्

सकलोपाधिरहित, मलरहित आणि ज्ञानस्वरूप असणारे ते महाकाश हे जगज्जालरूपी चित्र रेखनासाठी आधारभूत अशा भिंतीसारखे आहे.।।७५।।

अथ क्रियाप्रकाशस्थलम्

अथ—"क्रियावन्तः श्रोत्रिया ब्रह्मनिष्ठाः" इति मुण्डकश्रुत्यनुसारेण, "मोक्षप्रदं चैहिकसौख्यदं च सर्वोत्तरं शाङ्करकर्म सत्यम्" इति योगजागमवचनानुसारेण च महाकाशस्वरूपशिवयोग्येव तत्स्वरूपानुसन्धानरूपक्रियाप्रकाशवानिति कथयति—

शिवस्य परिपूर्णस्य चिदाकाशस्वरूपिणः।
आत्मत्वेनानुसन्धानात् क्रियाद्योतनवान् यमी।।७६।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

महाकाशस्वरूपः शिवयोगी परिपूर्णचिदाकारमहाकाशस्वरूपिणः शिवस्य स्वात्मत्वेनानुसन्धानरूपक्रियावानिति क्रियाप्रकाशनवानित्युच्यत इत्यर्थः ।।७६।।

'शास्त्रवेत्ते आणि ब्रह्मनिष्ठ योगीजन क्रियावंत असतात.' अशा मुडक श्रुतीच्या आणि 'परमात्मानुसंधान हे कर्म सर्वोत्कृष्ट, इहलोकात सौख्यप्रद आणि मोक्षप्रद होय' या योगजागमाच्या वचनानुसार महाकाशस्वरूप अशा शिवयोग्याकडून होणाऱ्या स्वस्वरूपानुसंधानरूपी क्रियेचे निरूपण या क्रियाप्रकाशनस्थलात करतात—शिव परिपूर्ण आणि ज्ञानाकाशस्वरूप आहे. तो शिव आणि मी एकच, असे नेहमी मनात ध्यान करणाऱ्या महाकाश-स्वरूपी शिवयोग्याला क्रियाप्रकाशवान असे म्हणतात.।।७६।।

अथ—"परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च" इति श्वेताश्वतरश्रुत्यनुसारेण, "ज्ञानक्रियात्मिका सापि सत्या नित्योदित-प्रभा। अनन्या स्याच्छिवात् सैव वस्तुतो मूर्तिरिश्वरी।।" इति पौष्कर-वचनानुसारेण च तदनुसन्धानक्रियामेव सूत्रत्रयेणोपपादयति—

निष्कलङ्कचिदानन्दगगनोपमरूपिणः।
शिवस्य परिपूर्णस्य वृत्तिश्चैतन्यरूपिणी।।७७।।

एवमुक्तरूपस्य शिवस्य वृत्तिः, अस्मीति क्रियारूपा स्थितिः, चैतन्यरूपिणी शिववच्चित्स्वरूपिणीत्यर्थः।।७७।।

'परशिवाची स्वाभाविक शक्ती ज्ञान, बल, क्रियादी रूपानी नानाप्रकारची असते,' अशा श्वेताश्वतर श्रुतीच्या आणि 'ती ज्ञानक्रियात्मक शक्ती सत्य, नित्यप्रकाशमान, शिवाशी अभिन्न आणि वस्तुतः शिवाच्या मूर्तिरूपाने असते,' या पौष्कर आगमाच्या वचनानुसार त्या आत्मानुसंधान क्रियेचे तीन श्लोकांत निरूपण करतात—कलंकरहित ज्ञानानंदाकाशस्वरूप, परिपूर्ण असा परशिवच मी आहे अशी होणारी अनुसंधानरूप मनोवृत्ती शिवासारखी ज्ञानरूपच असते.।।७७।।

अथ शिवयोगिनः स्वरूपामर्शनक्रियापि तादृशीत्याह—

निष्कलङ्के निराकारे नित्ये परमतेजसि।
विलीनचित्तवृत्तस्य तथा शक्तिः क्रियोच्यते।।७८।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

उक्तरूपे परशिवतेजसि विलीनचित्तव्यापारस्य शिवयोगिनोऽनुसन्धानरूपा या क्रियाशक्तिः, सा तथा परशिवतेजोरूपिणीत्युच्यत इत्यर्थः।।७८।।

शिवयोग्याची स्वरूपानुसंधानक्रिया परशिवतेजोरूप आहे असे सांगतात—निष्कलंक, निराकार आणि नित्य अशा परशिवाच्या तेजात सर्व चित्तव्यापार विलीन झालेल्या शिवयोग्याची स्वस्वरूपानुसंधानरूप जी क्रिया असते ती क्रियाशक्ती परशिवतेजोरूपिणी आहे असे म्हटले जाते.।।७८।।

ननु किं तदनुसन्धानेनेत्यत्राह—

सर्वज्ञः सर्वकर्ता च सर्वगः परमेश्वरः।
तदैक्यचिन्तया योगी तादृशात्मा प्रकाशते।।७९।।

"सर्वज्ञः पञ्चकृत्यसम्पन्नः सर्वेश्वर ईश्वरः" इति वृद्धजाबालश्रुतेः परमेश्वरः सर्वज्ञः सर्वकर्ता सर्वव्यापक इति बुद्ध्वा योगी शिवयोगी समानसमरसैक्यध्यानेन तादृगात्मा तत्प्रकारस्वरूपवान् प्रकाशत इत्यर्थः।।७९।।

या स्वरूपानुसंधानाचे प्रयोजन काय? तर—सर्वज्ञ, सर्वकर्ता, सर्वव्यापक अशा परमेश्वरामध्ये सामरस्यरूप अनुसंधान केल्यामुळे हा शिवयोगीही परमात्मस्वरूप झालेला दिसतो.।।७९।।

ननु शिवयोगिन इन्द्रियव्यापारस्य विद्यमानत्वात् कथं शिवं पश्यतीत्याह—

सर्वेन्द्रियाणां व्यापारे विद्यमानेऽपि संयमी।
प्रत्युन्मुखेन मनसा शिवं पश्यन् प्रमोदते।।८०।।

प्रत्युन्मुखेन पश्चिमचक्राभिमुखेन मनसेत्यर्थः। शिष्टं स्पष्टम्।।८०।।

शिवयोग्यालाही इंद्रियव्यापार असल्यामुळे त्याला शिवाचे दर्शन कसे घडते? तर— सकलेंद्रियव्यापार चालत असला तरी तो संयमी शिवयोगी पश्चिमशिखाचक्राकडे अभिमुख झालेल्या (अंतर्मुख) मनाने शिवदर्शन घेऊन आनंदित होतो.।।८०।।

अथ कीदृशं शिवं कथं पश्यन् मोदत इत्यत्राह—

कूटस्थमचलं प्राज्ञं गुणातीतं गुणोत्तरम्।
शिवतत्त्वं स्वरूपेण पश्यन् योगी प्रमोदते।।८१।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

गुणोत्तरं ज्ञानवैराग्यादिगुणैः श्रेष्ठं प्राज्ञं कुशलिनं कूटस्थं तुर्यसाक्षिक-प्रत्यगात्मादिसंज्ञितं गुणातीतं मायिकसत्त्वादिगुणातीतम् अचलं शिवतत्त्वं स्वरूपेण स्वस्वरूपेण पश्यन् शिवयोगी प्रमोदत इत्यर्थः।।८१।।

कशा शिवाला आणि कसे पाहून तो आनंदित होतो? तर– ज्ञानवैराग्यादी गुणांनी श्रेष्ठ, प्राज्ञ, कूटस्थ, तुर्य, साक्षी, प्रत्यगात्मादी संज्ञा असणारा, मायिक-सत्त्वादिगुणातीत आणि अचलही असलेल्या शिवाला स्वस्वरूपाने पाहात तो शिवयोगी आनंदित होतो.।।८१।।

अथ चित्क्रियारूपस्वस्वरूपसम्पन्नस्य शिवयोगिनो गगनतलभासमान-गन्धर्वनगरीव सर्वा क्रिया तावदस्थिरेति वदन् प्रकाशत इति प्रोक्तं क्रियाप्रकाशस्थलं समापयति–

परात्मनि क्रिया सर्वा गन्धर्वनगरीमुखा।
प्रकाशत इति प्रोक्तं क्रियायास्तु प्रकाशनम्।।८२।।

परात्मनि परशिवस्वरूपशिवयोगिविषये सर्वा क्रिया व्योम्नि गन्धर्वनगरीव प्रकाशत इति क्रियायाः प्रकाशनं तु क्रियाप्रकाशनस्थलमिति प्रोक्तमित्यर्थः।।८२।।

इति क्रियाप्रकाशनस्थलम्

चित्क्रियारूप स्वस्वरूपसंपन्न शिवयोग्याच्या सर्व क्रिया आकाशात दिसणाऱ्या गंधर्वनगरी प्रमाणे अस्थिर असतात, असे सांगून क्रियाप्रकाशस्थलाची समाप्ती करतात–परशिवस्वरूप अशा शिवयोग्याच्या सर्व क्रिया आकाशातील गंधर्व-नगरीसमान दिसतात. अशा रीतीने शिवयोग्याच्या क्रियेबद्दल अस्थिरता प्रकाशित करण्याला क्रियाप्रकाशस्थल असे म्हणतात.।।८२।।

अथ भावप्रकाशस्थलम्

अथ–"स्वदयापूर्णभावस्य स्वेनैवापचितस्य च । तस्यैव भासते भावे सोऽयमादिमहेश्वरः।।" इति योगजागमवचनानुसारेण तत्क्रियाप्रकाशन-सम्पन्नस्य शिवयोगिनः सुलभं भावप्रकाशस्थलं निरूपयति–

तरङ्गाद्या यथा सिन्धौ न भिद्यन्ते तथात्मनि।
भावा बुद्ध्यादयः सर्वे यत्तद् भावप्रकाशनम्।।८३।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तरङ्गफेनादयो भावा यथा समुद्रे न भिद्यन्ते, तथा सर्वे बुद्ध्यादयो भावा आत्मनि क्रियाप्रकाशसम्पन्ने शिवयोगिचैतन्ये न भिद्यन्त इति यत्, तद्भावप्रकाशनं स्यादित्यर्थः।।८३।।

क्रियाप्रकाशसंपन्न अशा शिवयोग्याच्या क्रिया जशा दिसण्यापुरत्या असतात तसे त्याचे भावही दिसण्यापुरते असतात, असे समजाविण्यासाठी हे भाव-प्रकाशस्थलाचे निरूपण करतात— तरंग, फेस, बुडबुडे हे जसे समुद्रापेक्षा भिन्न नसतात, तशा प्रकारे बुद्धी वगैरे भावना क्रियाप्रकाशसंपन्न शिवयोग्याच्या आत्म-चैतन्यापेक्षा भिन्न नसतात, हाच भावप्रकाश होय.।।८३।।

अथ तद्भावनां पञ्चभिः सूत्रैर्विशेषयति—

शिव एव जगत्सर्वं शिव एवाहमित्यपि।
भावयन् परमो योगी भवदोषैर्न बाध्यते।।८४।।

सर्वं जगच्छिव एव, तस्मादहमपि शिव एवेति भावयन् महाशिवयोगी सांसारिकदोषैर्न बाध्यत इत्यर्थः।।८४।।

त्या भावांचे वर्णन पाच श्लोकांत करतात—हा सर्व प्रपंच परमात्मस्वरूपच आहे, त्यामुळे मीही शिवच आहे, असा भाव असणारा महाशिवयोगी सांसारिक दोषांनी लिप्त होत नाही. अर्थात् त्याला संसाराचे बंधन नसते.।।८४।।

शिवभावे स्थिरे जाते निर्लेपस्य महात्मनः।
ये ये भावाः समुत्पन्नास्ते ते शिवमयाः स्मृताः।।८५।।

निर्लेपस्य विषयेषु लेपरहितस्येत्यर्थः। शिष्टं स्पष्टम्।।८५।।

विषयापासून अलिप्त असलेल्या, शिवभावना स्थिर झालेल्या शिवयोग्याच्या ठिकाणी उत्पन्न होणाऱ्या सर्व भावना शिवमय झालेल्या असतात.।।८५।।

अथ ते के भावा इत्यत्राह—

अद्वितीयशिवाकारभावनाध्वस्तकर्मणा ।
न किञ्चिद्भाव्यते साक्षात् शिवादन्यन्महात्मना।।८६।।

एवंरूपेण शिवयोगिना यद्यद् भव्यते, तत्सर्वं शिवमयमिति भावः।।८६।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

त्या भावना कोणत्या? तर—ज्याच्यासमान अथवा अधिक अशी दुसरी वस्तू नाही, अशा परमात्म्याच्या ठिकाणी निर्माण झालेल्या समरस भावनेने कर्मबंधन ध्वस्त केलेला शिवयोगी, शिवाशिवाय दुसऱ्या कशाची भावना करीत नाही. अर्थात् तो ज्याची भावना करतो तो केवळ शिवच होय.।।८६।।

अथ तत्कथमित्यत्राह—

गलिताज्ञानबन्धस्य केवलात्मानुभाविनः।
यत्र यत्रेन्द्रियासक्तिस्तत्र तत्र शिवात्मता।।८७।।

उक्तरूपस्य योगिनो यत्र यत्र भावरूपेन्द्रियासक्तिस्तत्र तत्र भावमयशिवात्मतेत्यर्थः।।८७।।

ते कसे? तर—मी शिव नव्हे अशा अज्ञानबधनाला शिवाद्वैत-ज्ञानाने ध्वस्त करून केवळ शिवस्वरूपानुसंधानी अशा शिवयोग्याची इंद्रिये ज्या ज्या ठिकाणी आसक्त होतात, त्या त्या ठिकाणी त्या भावनासिद्ध परशिवस्वरूपाशिवाय दुसरे काही नसते.।।८७।।

ननु रागद्वेषादिभावानां बन्धहेतुत्वात् कथं शिवमयत्वमित्यत्राह—

रागद्वेषादयो भावाः संसारक्लेशकारणम्।
तेषामुपरमो यत्र तत्र भावः शिवात्मकः।।८८।।

यत्र शिवयोगिनि बन्धकारणीभूतरागद्वेषादिभावानामुपरमोऽस्ति, तत्र, तस्मिन् शिवयोगिनि भावः शिवात्मक इत्यर्थः।।८८।।

रागद्वेषादिभावना बंधनकारक असल्याकारणाने त्या सर्व शिवमय असतात असे कसे म्हणता येईल? उत्तर असे की—रागद्वेषादिभावना संसारक्लेशाला कारण असतात हे खरे, तरी त्या भावना ज्याच्या मनातून नाहीशा झाल्या आहेत अशा शिवयोग्याच्या सर्व भावना शिवात्मकच झालेल्या असतात.।।८८।।

तस्मादीदृशं शिवयोगिनं तामसी शक्तिर्नाक्रामतीति वदन् भावप्रकाश-स्थलं समापयति—

यथा सूर्यसमाक्रान्तौ न शक्नोति तमः सदा।
तथा प्रकाशमात्मानं नाविद्याक्रमति स्वयम्।।८९।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अन्धकारो यथा सूर्यमावरितुं न समर्थः, तथा प्रकाशमात्मानं स्वच्छप्रकाशरूपं शिवयोगिनमज्ञानलक्षणं तम आवरितुं न समर्थमित्यर्थः।।८९।।

इति भावप्रकाशनस्थलम्

त्यामुळे अशा शिवयोग्याच्या मनावर तामसी भावना आक्रमण करीत नाहीत, असे सांगून भावप्रकाशस्थलाचे वर्णन संपवितात— अंधार जसा सूर्याला कधीही आवरण घालू शकत नाही, तशाप्रकारे प्रकाशस्वरूप अशा आत्म्याला अज्ञानरूप अंधार झाकू शकत नाही.।।८९।।

अथ ज्ञानप्रकाशनस्थलम्

अथ—"गवामनेकवर्णानां क्षीरस्याप्येकवर्णता। क्षीरवत् पश्यते ज्ञानं लिङ्गिनस्तु गवां यथा।।" इत्यमृतबिन्दूपनिषद्वचनानुसारेण, "शिवादिस्मरणं ज्ञानं ज्ञानात् सत्ता प्रकाशते। सत्तयानन्दसम्प्राप्तिरानन्दाच्चैव सिद्धिदः।।" इति योगजागमवचनानुसारेण च तद्भावप्रकाशनसम्पन्नस्य शिवयोगिनः सुलभं ज्ञानप्रकाशं निरूपयति—

मुख्यार्थेऽसम्भवे जाते लक्षणायोगसंश्रयात्।
तज्ज्ञानयोजनं यत्तदुक्तं ज्ञानप्रकाशनम्।।९०।।

मुख्यार्थेऽङ्गलिङ्गयोर्मुख्यार्थे, असम्भवे जाते सति, अघटिते जाते सति, लक्षणायोगसंश्रयात् कार्यकारणोपाधिविशिष्टजीवेश्वरसंज्ञकाङ्गलिङ्गयोर्लक्षणायोगसमाश्रयणेन तज्ज्ञानयोजनं यत् तदङ्गलिङ्गनिष्ठज्ञानद्वयस्य समानसमरसभावेन संयोजनं यदस्ति, तत् तस्य भावप्रभावप्रकाशनसम्पन्नस्य शिवयोगिनो ज्ञानप्रकाशनमित्युक्तं भवति। अयं भावः—घटावच्छिन्नाकाशमहाकाशवत् कूटस्थपरचैतन्यस्य नित्यसम्बन्ध एव लक्षणार्थः। घटजलावच्छिन्नाकाशमेघजलावच्छिन्नाकाशयोरिवाङ्गलिङ्गयोरुपाधिरेव मुख्यार्थः। तच्चैतन्यसामरस्यज्ञानमेव ज्ञानप्रकाश इति।।९०।।

'गाई भिन्न भिन्न रंगांच्या असल्यातरी त्यांचे दूध जसे एका पांढऱ्या रंगाचेच असते, तसे ज्ञानी शिवयोग्याला ज्ञानाचे दर्शन सर्वत्र सारखेच म्हणजे शिवमय असे घडते', या अमृतबिंदूपनिषदाच्या वचनानुसार आणि 'शिवादिकाच्या स्मरणाने ज्ञान होते. ज्ञानाने शिवादिकांची सत्ता प्रकाशित होते, सत्तेमुळे आनंदप्राप्ती होते, आणि आनंदाने सिद्धी मिळते,' या योगजागमवचनानुसार भावप्रकाशसंपन्न अशा शिवयोग्याला सुलभ

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अशा ज्ञानप्रकाशस्थलाचे निरूपण करतात—अंग आणि लिंगाचे मुख्यार्थाने सामरस्य असंभवनीय असल्यामुळे त्या अंग-लिंगाचा लक्षणार्थ स्वीकारल्यावर, उपाधिशून्य अशा दोन्ही चैतन्यांचे होणारे सामरस्यज्ञानच ज्ञानप्रकाश होय. याचे स्पष्टीकरण असे—कार्यरूप उपाधीने युक्त असा जीवात्मा हा अंग शब्दाचा वाच्यार्थ, तसा कारणरूप माया उपाधीने युक्त असा ईश्वर हा लिंग शब्दाचा वाच्यार्थ, जीवात्मा आपल्या अविद्या उपाधीमुळे अल्पज्ञ व अल्पकर्ता असतो आणि ईश्वर आपल्या माया उपाधीमुळे सर्वज्ञ व सर्वकर्ता असतो. अशा उपाधियुक्त जीवात्मा आणि ईश्वराचे सामरस्य परस्परविरोधी धर्मामुळे होऊ शकत नाही. म्हणून उपाधिरूप वाच्यार्थाचा त्याग करून त्याच्यातील लक्ष्यरूप चैतन्याचे सामरस्यज्ञान प्राप्त करणे यालाच ज्ञानप्रकाश म्हणतात.।।९०।।

अथ तदेव सूत्रत्रयेण विशेषयति—

मुक्तस्य ज्ञानसम्बन्धो ज्ञेयाभावः स्वभावतः।
उपाधिसहितं ज्ञानं न भेदमतिवर्तते।।९१।।

मुक्तस्य परमुक्तस्य लक्षणार्थकज्ञानसम्बन्धः स्वभावतो ज्ञेयाभाव आत्माश्रयादिदोषराहित्येन ज्ञेयशून्यो वेद्यशून्य इत्यर्थः। उपाधिसहितं ज्ञानं तस्य परमुक्तस्य मुख्यार्थभूतलिङ्गाङ्गोपाधिविशिष्टज्ञानं भेदं नातिवर्तते भेदमनतिक्रम्य वर्तते, उपाधिनाश एव ज्ञानसामरस्यमित्यर्थः।।९१।।

त्याचेच स्पष्टीकरण तीन श्लोकांतून करतात—जीवन्मुक्त शिवयोग्याला लक्ष्यार्थज्ञान स्वाभाविक रीतीने झालेले असल्यामुळे त्याला ज्ञेय म्हणजे जाणून घेण्यासारखे काही शिल्लक नसते. उपाधियुक्त ज्ञानाने भेदभावना दूर करता येत नाही. म्हणून उपाधीची निवृत्ती हीच ज्ञानसामरस्याला मूळ कारण असते.।।९१।।

ज्ञानमित्युच्यते सद्भिः परिच्छेदोऽपि वस्तुनः।
परात्मन्यपरिच्छेदे कुतो ज्ञानस्य सम्भवः।।९२।।

वस्तुनो लिङ्गाङ्गरूपवस्तुनः परिच्छेदः खण्डितत्वं ज्ञानमिति द्वैतज्ञानमिति सद्भिः सत्पुरुषैरुच्यते। अपरिच्छेदेऽखण्डिते परात्मनि

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

निरुपाधिकमहाचैतन्ये हि द्वैतप्रसिद्धस्य ज्ञानस्य सम्भव उद्भवः कुतः? नास्तीत्यर्थः।।९२।।

लिंगांग स्वरूप वस्तूच्या खंडितत्वाला ज्ञाते लोक द्वैतज्ञान म्हणतात, अखंड निरुपाधिक महाचैतन्याच्या ठिकाणी द्वैतज्ञानाची उत्पत्ती कोठून होईल?।।९२।।

ज्ञानस्याविषये तत्त्वे शिवाख्ये चित्सुखात्मनि।
आत्मैकत्वानुसन्धानं ज्ञानमित्युच्यते बुधैः।।९३।।

ज्ञानस्य स्वप्रकाशत्वात् स्वातिरिक्तसंविदन्तरस्याऽविषयेऽगोचरे चित्सुखात्मनि चिदानन्दस्वरूपे शिवाख्ये परशिवाख्ये तत्त्वे वस्तुनि, आत्मैकत्वानुसन्धानं स्वात्मन एकत्वानुसन्धानं ज्ञानमिति बुधैर्विद्वद्भिरुच्यत इत्यर्थः।।९३।।

स्वप्रकाशत्वामुळे ज्ञानाचा विषय न होणारे, सच्चिदानदस्वरूप, परशिव या नावाच्या तत्त्वात आपल्या आत्म्याचे ऐक्यानुसधान करण्याला विद्वान लोक ज्ञान असे म्हणतात.।।९३।।

तच्छिवज्ञानमेव ब्रह्मज्ञानमिति सूत्रत्रयेण कथयति—

अपरिच्छिन्नमानन्दं सत्ताकारं जगन्मयम् ।
ब्रह्मेति लक्षणं ज्ञानं ब्रह्मज्ञानमिहोच्यते।।९४।।

सत्तामनतिक्रान्तत्वाद्विश्वस्य तन्मयत्वमित्यर्थः। स्वरूपतो ह्यसतः सत्तासम्बन्धासम्भवात्, स्वरूपतः सतः सत्तान्तरानपेक्षणात् सद्रूपत्वमेवेति निष्कर्षः। शिष्टं स्पष्टम्।।९४।।

त्या शिवज्ञानालाच ब्रह्मज्ञान म्हणतात, असे तीन श्लोकात निरूपण करतात.—ज्याचा आनंद अखंड आणि अपरिमित, ज्याची सत्ता अबाधित आणि ज्याच्या रूपात त्रैलोक्याचा लय होतो, त्याला ब्रह्महो म्हणतात. .त्या परशिवाच्या ज्ञानाला ब्रह्मज्ञान म्हटले जाते.।।९४।।

ब्रह्मज्ञाने समुत्पन्ने विश्वोपाधिविवर्जिते।
सर्वं संविन्मयं भाति तदन्यन्नैव दृश्यते।।९५।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

विश्वोपाधिविवर्जिते विश्वभेदरहिते ब्रह्मज्ञाने समुत्पन्ने आविर्भूते सति सर्वं विश्वं संविन्मयं भाति चिच्छक्तिमयमिति भाति । तदन्यत् शिवशक्त्योरभेदात् तदन्यद् ब्रह्मातिरिक्तं न दृश्यत इत्यर्थः।।९५।।

विश्वभेदरहित असे ब्रह्मज्ञान उत्पन्न झाल्यावर सर्वत्र ज्ञानमय शिवस्वपरूपच दिसू लागते. म्हणून त्याशिवाय दुसरे काहीही दिसत नाही.।।९५।।

तस्मादद्वैतविज्ञानमपवर्गस्य कारणम् ।
भावयन् सततं योगी संसारेण न लिप्यते।।९६।।

तस्मादपवर्गस्य परापरमोक्षस्य कारणं शिवाद्वैतज्ञानं सततं भावयन् शिवयोगी संसारेण न लिप्यत इत्यर्थः।।९६।।

शिवाद्वैताचे ज्ञान होणे हे मोक्षप्राप्तीचे कारण आहे. अशी भावना नेहमी बाळगणाऱ्या शिवयोग्याला संसारदुःखाचा स्पर्श होत नाही.।।९६।।

अथ ज्ञानप्रकाशस्थलं समापयति—

नित्ये निर्मलसत्त्वयोगिषु परे निर्वासने निष्कले
सर्वातीतपदे चराचरमये सत्तात्मनि ज्योतिषि।
संविद्व्योम्नि शिवे विलीनहृदयस्तद्भेदवैमुख्यतः
साक्षात् सर्वगतो विभाति विगलद्विश्वः स्वयं संयमी।।९७।।

इति श्रीमत्षट्स्थलब्रह्मिणा शिवयोगिनाम्ना रेणुकाचार्येण विरचिते वीरशैवधर्मनिर्णये सिद्धान्तशिखामणौ शरणस्थलविषयद्वादश-विधलिङ्गप्रसङ्गो नामैकोनविंशः परिच्छेदः समाप्तः।।

नित्ये निरन्तरे निर्मलसत्त्वयोगिषु परे शुद्धसत्त्वगुणवत्सु प्राधान्येन वर्तमाने निर्वासने वेद्यवासनारहिते निष्कले निरवयवे सर्वातीतपदे सर्वोत्तीर्णस्थानभूते चराचरमये चराचरप्रपञ्चोपादानकारणीभूतचित्क्रियालक्षण-चिदम्बरशक्तिस्वरूपे सत्तात्मनि पारमार्थिकसत्तारूपिणि ज्योतिषि भासमाने संविद्व्योम्नि शिवे चिदाकाशरूपपरशिवे विलीनहृदयः, तद्भेदवैमुख्यतः शिवादन्यत्वे विमुखीभूतत्वात् सर्वगतो विश्वव्यापकः संयमी शिवयोगी विगलद्विश्वः सन् विगलितविश्वभेदविभवः सन् स्वयं साक्षाद्विशेषेण भाति प्रकाशत इत्यर्थः। शिवशरणयोः सतिपतित्वादेस्तल्लिङ्गत्रयं शरणस्याङ्गत्रयस्य योज्यम्।।९७।।

इति ज्ञानप्रकाशनस्थलम्

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इति श्रीमत्पदवाक्यप्रमाणपारावारधुरीणश्रीमरितोण्टदार्येण विरचितायां तत्त्वप्रदीपिकाख्यायां सिद्धान्तशिखामणिव्याख्यायां शरणस्थलविषय-द्वादशविधलिङ्गप्रसङ्गो नामैकोनविंशः परिच्छेदः समाप्तः।।

शाश्वत, निर्मल, मुख्यतः सात्विक शिवयोग्यामध्ये वास करणारा, वासनारहित, निरवयव, सर्वश्रेष्ठस्थानरूप, स्थावरजंगम प्रपंचाला कारणीभूत, चित्क्रियालक्षण, चिदंबर, शक्तिस्वरूप, पारमार्थिक सत्तास्वरूप, प्रकाशमय अशा ज्ञानाकाशरूप महालिंगात ज्याचे मन ऐक्य पावले आहे असा शिवयोगी त्या महालिंगाव्यतिरिक्त अन्य कोणतीही वस्तू न पाहाता, भेदभ्रांतिरहित होऊन सर्वत्र व्यापक असे स्वस्वरूप पाहात असतो.।।९७।।

असा हा सिद्धांतशिखामणीतील शरणस्थलांतर्गत बारा पोटभेदांचे वर्णन असणारा एकोणिसावा परिच्छेद सपला.

एकोणिसावा परिच्छेद समाप्त।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

विंशः परिच्छेदः

अथागस्त्यप्रश्नः—

स्थलभेदास्त्वया प्रोक्ताः शरणस्थलसंश्रिताः।
ऐक्यस्थलगतान् ब्रूहि स्थलभेदान् गणेन्द्र मे।।१।।

स्थलभेदा अवान्तरस्थलभेदा इत्यर्थः। अग्रेऽपि तथा। शिष्टं स्पष्टम्।।१।।

अगस्त्यमुनी प्रश्न करतात—हे गणेश्वरा, शरणस्थलातर्गत पोटभेद आपण सांगितले, आता ऐक्यस्थलाचे पोटभेद किती आहेत ते मला सांगावे.।।१।।

अथास्य प्रश्नस्योत्तरं वक्ति—

स्थलानां नवकं चैक्यस्थलेऽस्मिन् परिकीर्त्यते।।२।।

स्पष्टम्।।२।।

श्री रेणुकाचार्य सांगतात—हे तपोनिधे अगस्त्या, ऐक्यस्थलाचे नऊ पोटभेद आहेत.।।२।।

अथ तदवान्तरस्थलभेदं सूत्रत्रयेणोद्दिशति—

तत्स्वीकृतप्रसादैक्यस्थलमादौ प्रकीर्तितम्।
शिष्टोदनस्थलं चाथ चराचरलयस्थलम्।।३।।
भाण्डस्थलं ततः प्रोक्तं भाजनस्थलमुत्तमम्।
अङ्गालेपस्थलं पश्चात् स्वपराज्ञास्थलं ततः।।४।।
भावाभावविनाशं च ज्ञानशून्यस्थलं ततः।
तदेषां क्रमशो वक्ष्ये शृणु तापस लक्षणम्।।५।।

स्पष्टम्।।३-५।।

त्या अवांतर स्थलांची नावे तीन श्लोकातून सांगतात, ती अशी-१. स्वीकृतप्रसादिस्थल २. शिष्टोदनस्थल ३. चराचरलयस्थल ४. भांडस्थल ५. भाजनस्थल ६. अंगालेपस्थल ७. स्वपराज्ञस्थल ८. भावाभावविनाशस्थल आणि ९. ज्ञानशून्यस्थल, अशी नऊ

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अवांतर स्थले ऐक्यस्थलात आहेत. हे अगस्त्या, आता क्रमाने त्यांची लक्षणे सांगतो ती ऐक.।।३-४-५।।

अथ ऐक्यस्थलगतस्वीकृतप्रसादैक्यस्थलम्

अथ—"ज्ञानप्रसादेन विशुद्धसत्त्वस्ततस्तु तं पश्यते निष्कलं ध्यायमानः" इति मुण्डकश्रुत्यनुसारेण, "ज्ञानोत्पत्तिनिमित्तं तु क्रिया चर्या प्रकीर्तिता। योगं सालम्बनं त्यक्त्वा निष्प्रपञ्चं विचिन्तयेत्।।" इति देवीकालोत्तर-वचनानुसारेण च तज्ज्ञानप्रकाशसम्पन्नः शिवयोग्येव ज्ञानप्रसादस्वीकारात् स्वीकृतप्रसादीति निरूपयति—

मुख्यार्थो लक्षणार्थश्च यत्र नास्ति चिदात्मनि।
विशृङ्खलतया तस्य प्रसादः स्वीकृतो भवेत्।।६।।

चिदात्मनि यत्र ज्ञानप्रकाशसम्पन्ने शिवयोगिनि मुख्यार्थो जीवेश्वरवियोगरूपमुख्यार्थो नास्ति, लक्षणार्थश्च निरुपाधिकशिवात्मनो-र्नित्यावियोगरूपलक्षणार्थश्च नास्ति, तस्य शिवयोगिनो विशृङ्खलतया निरङ्कुशत्वेन प्रसादः पूर्णज्ञानप्रसादः स्वीकृतोऽङ्गीकृतो भवेदित्यर्थः।।६।।

'ज्ञानप्रसादाने मन परिशुद्ध झालेला शिवयोगी निष्कल परमात्म्याचे ध्यान करून त्याचा साक्षात्कार करून घेतो,' या मुंडकश्रुतिवचनानुसार आणि 'ज्ञानोत्पत्तीला क्रियाचरणच निमित्त असते, आलंब योगाचा त्याग करून निष्प्रपंच अशा परमात्म्याचे चिंतन करावे,' या देविकालोत्तर वचनानुसार ज्ञानप्रकाशसंपन्न अशा शिवयोग्याने ज्ञानप्रसादाचा स्वीकार केल्याने तो स्वीकृत-प्रसादी होतो, असे निरूपण करतात—ज्ञानप्रकाशसंपन्न अशा चिद्रूप शिवयोग्याला भेदाभेदरहित स्थिती प्राप्त झालेली असते. म्हणून त्याला जीवेश्वराचा वियोगरूपी मुख्यार्थ असो अथवा निरंतर अभेदरूप असा लक्ष्यार्थ असो, संभवत नाही. अशा मुख्यार्थ, लक्ष्यार्थ यांचा आश्रय न घेता निरंकुश होऊन पूर्ण ज्ञानरूपप्रसाद त्याने स्वीकारल्यामुळे त्याला स्वीकृत प्रसादी या नावाने ओळखले जाते.।।६।।

अथैतदर्थमेव सूत्रद्वयेन विशदयति—

मातृमेयप्रमाणादिव्यवहारे विहारिणीम्।
संवित्साक्षात्कृतिं लब्ध्वा योगी स्वात्मनि तिष्ठति।।७।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

मातृमानप्रमेयादित्रिपुटीमयप्रपञ्चप्रथमव्यवहारे रममाणां पूर्णचित्साक्षात्कृतिं लब्ध्वा योगी ज्ञानप्रकाशसम्पन्नः शिवयोगी स्वात्मनि स्वीकृतप्रसादवति स्वस्वरूपे तिष्ठतीत्यर्थः।।७।।

हाच अर्थ दोन श्लोकांत स्पष्ट करतात—असा पूर्णज्ञानरूप प्रसाद प्राप्त करून घेतलेला शिवयोगी प्रमातृ, प्रमाण, प्रमेय अशा त्रिपुटीमय व्यवहाराला मूल कारण असलेल्या चित्शक्तीचा साक्षात्कार मिळवून स्वस्वरूप अनुसंधानात स्थिर असतो.।।७।।

अथैवंरूपस्य शिवयोगिनः पाशबन्धनं नास्तीत्यत्राह—

अद्वैतबोधनिर्धूतभेदावेशस्य योगिनः।
साक्षात्कृतमहासंवित्प्रकाशस्य क्व बन्धनम्।।८।।

शिवाद्वैतबोधनिवारिताङ्गलिङ्गलक्षणजीवेश्वरभेदावेशवतः, अपरोक्षीकृत-निर्मलचित्प्रकाशस्य शिवयोगिनः पाशपञ्चकाद् भूतबन्धनं कुतः? नास्तीत्यर्थः।।८।।

अशा शिवयोग्याला पाशबंधने नसतात, असे सांगतात—शिवाद्वैत ज्ञानप्रसादाच्या महत्त्वाने अंगलिंग जीवेश्वराचा भेदभाव दूर करून निर्मल ज्ञानप्रकाशाचे प्रत्यक्षीकरण केलेल्या त्या शिवयोग्याला पाशपंचकाचे बंधन कोठून असणार? अर्थात् असत नाही.।।८।।

अथ तस्य पूर्णज्ञानिनः प्रपञ्चदर्शनं नास्तीति सूत्रत्रयेण सदृष्टान्तं कथयति—

चिदात्मनि शिवे न्यस्तं जगदेतच्चराचरम् ।
ज्ञायते तन्मयं सर्वमग्नौ काष्ठादिकं यथा।।९।।

अग्नौ न्यस्तं काष्ठादिकं यथाग्निमयं सद् दृश्यते, तथा शिवे स्थापितं विश्वं चिन्मयमेव दृश्यते, शिवस्य चिदग्निरूपत्वादिति भावः।।९।।

अशा पूर्णज्ञानी शिवयोग्याला प्रपचदर्शन नसते, असे तीन श्लोकांत दृष्टांतपूर्वक सांगतात—अग्नीत टाकलेले लाकूड आदी पदार्थ जसे स्वतःचे स्वरूप सोडून अग्निरूप होऊन जातात, तसे चिदग्नीरूप परशिवात असलेला हा चराचर प्रपंच चिन्मय रूपाने दिसतो.।।९।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ननु वह्नौ काष्ठमिव शिवे विश्वं न केनापि न्यस्तम्, शिवेनैव कल्पितम्, तत्कथं तन्मयं सद्भातीत्यत्राह—

न भाति पृथ्वी न जलं न तेजो नैव मारुतः।
नाकाशो न परं तत्त्वं शिवे दृष्टे चिदात्मनि।।१०।।

मृत्तिकायां ज्ञातायां घटशरावादिकं सर्वं यथा मृण्मयमेव, न तद्व्यतिरिक्तमिति ज्ञायते, तथा चिदात्मनि शिवे दृष्टे सति तत्कार्यत्वाद् भूम्यादिकं तद्भिन्नत्वेन न भाति, तदात्मकत्वेनैव भातीत्यर्थः।।१०।।

अग्नीमध्ये लाकूड ठेवल्याप्रमाणे शिवामध्ये हा प्रपच कोणी ठेवला नाही. तो प्रपंच शिवापासून निर्माण झालेला असतो, तर मग तो शिवयम होऊन कसा दिसतो? याचे उत्तर असे की— मातीचे ज्ञान झाल्याने तिच्यापासून निर्माण झालेली गाडगीमडकी मृण्यम आहेत आणि त्या शिवाय अन्य काही नाही, असे ज्ञान होते. तसे चिद्रूप अशा परमात्म्याचा साक्षात्कार झाल्यावर त्याचे कार्यरूप पृथ्वी, जल, तेज, वायू, आकाश ही पच महाभूते आणि सर्व भौतिक पदार्थ तन्मय-रूपानेच दिसतात. मातीपासून झालेली गाडगीमडकी ही जशी मृण्मय होत, तसे परमात्यापासून निर्माण झालेले सर्व काही शिवमय असते हे तात्पर्य.।।१०।।

एवं शिवात्मकं विश्वं तत्रैव लीनं चिन्तयन् योगी न लिप्यत इत्यत्राह—

ज्योतिर्लिङ्गे चिदाकारे ज्वलत्यन्तर्निरन्तरम्।
विलीनं निखिलं तत्त्वं पश्यन् योगी न लिप्यते।।११।।

अन्तः हृद्रूपाष्टदलकमलमध्ये निरन्तरं चिद्रूपे ज्योतिर्लिङ्गे महालिङ्गे ज्वलति सति प्रकाशिते सति तस्मिन् महालिङ्गे शिवयोगी निखिलं तत्त्वं शिवादिभूम्यन्तं विलीनं लयीभूतं पश्यन् सन् न लिप्यते तनुकरणभुवन-भोगात्मकषट्त्रिंशत्तत्त्वैर्न लिप्यत इत्यर्थः।।११।।

असे शिवात्मक विश्वाचे शिवामध्ये लयचितन करणारे शिवयोगी तनुकरणादीनी लिप्त होत नाहीत, असे सागतात— आपल्या हृदयाच्या अष्टदलकमलामध्ये नेहमी प्रकाशणाऱ्या चिद्रूप महालिंगात शिवादिभूम्यंत छत्तीस तत्त्वांचे लयचिंतन करणारा शिवयोगी या भुवनातील भोगसाधने अशा छत्तीस तत्त्वानी लिप्त होत नाही.।।११।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अथैतदर्थमेव होमरूपेण विशेषयति—

अन्तर्मुखेन मनसा स्वात्मज्योतिषि चिन्मये।
सर्वानप्यर्थविषयान् जुह्वन् योगी प्रमोदते।।१२।।

अन्तर्मुखेन मनसा प्रत्युन्मुखेन मनसा चिन्मये स्वस्वरूपवह्निप्रकाशे समस्तपदार्थान् जुह्वन् तादात्म्येन समर्पयन् शिवयोगी प्रमोदत इत्यर्थः।।१२।।

तोच आशय होमाच्या रूपकातून स्पष्ट करतात—चिन्मय अशा स्वस्वरूपाग्नीच्या प्रकाशात अंतर्मुख मनाने सर्व पदार्थांचा होम करून अर्थात् तादात्म्यरूपाने चिंतन करून शिवयोगी आनंद उपभोगतो.।।१२।।

अथ स्वीकृतप्रसादिस्थलं समापयति—

सच्चिदानन्दजलधौ शिवे स्वात्मनि निर्मलः।
समर्प्य सकलान् भुङ्क्ते विषयान् तत्प्रसादतः।।१३।।

निर्मलः शिवयोगी सच्चिदानन्दानां समुद्रभूते स्वात्मनि स्वप्रकाशात्मनि शिवे सकलान् शब्दादिपदार्थान् समर्प्य तत्प्रसादतस्तत्प्रसादरूपेण भुङ्क्त इति।।१३।।

इति स्वीकृतप्रसादिस्थलम्

आता स्वीकृतप्रसादिस्थलाचा समारोप करतात—निर्मल असा शिवयोगी सच्चिदानंदसागर, स्वात्मस्वरूप अशा परशिवामध्ये शब्द स्पर्शादिसकलविषयांचे समर्पण करून, शिवाचा प्रसाद म्हणून त्यांचा उपभोग घेतो, म्हणून त्याला स्वीकृतप्रसादी असे म्हणतात. ।।१३।।

अथ शिष्टोदनस्थलम्

अथ—"मायां तु प्रकृतिं विन्द्यात्" इति श्रुत्यनुसारेण, "ग्रन्थिजन्यं कलाकालविद्यारागनृमातरः। गुणधीगर्वचित्ताक्षमात्राभूतान्यनुक्रमात्।।" इति मृगेन्द्रवचनानुसारेण च तच्चित्प्रसादस्वीकारवतः शिवयोगिनो मायातत्त्वमेव शिष्टोदनमिति सूत्रचतुष्टयेन कथयति—

प्रकाशते या सर्वेषां माया सैवोदनाकृतिः।
लीयते तत्र चिल्लिङ्गे शिष्टं तत्परिकीर्तितम्।।१४।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

या माया मिश्रा शुद्धाध्वनिवासिनां तनुकरणभुवनभोगरूपिणी अधोमायाऽस्ति, सैव सर्वेषां प्रकाशते लीयते च । तत् कलादिभूम्यन्तत्रिंशत्तत्त्वात्मकमायातत्त्वमेव चिल्लिङ्गे ज्ञानचिह्ने तत्र विषये तत्स्वीकृतप्रसादिविषये शिष्टोदनाकृतिरवशिष्टोदनाकारवदिति प्रकीर्तितमित्यर्थः।।१४।।

'माया ही सकल प्रपंचाची प्रकृती अर्थात् मूल कारण होय,' असे श्रुतिवचन आहे. स्वीकृत प्रसादी शिवयोग्याला हे मायातत्त्व जेवावयाच्या शिल्लक अन्नाप्रमाणे आहे, असे सांगण्यासाठी शिष्टोदनस्थलाचा प्रारंभ करून शिष्टोदनाचा अर्थ चार श्लोकात स्पष्ट करतात—शिव, शक्ती, सदाशिव, ईश्वर आणि शुद्ध विद्या ही पंचतत्त्वे बिंदुमय असून त्यांना शुद्धाध्व असे म्हणतात. माया, कला, विद्या, राग, काल, नियती आणि पुरुष ह्या सात तत्त्वांना मिश्राध्व असे म्हणतात. उरलेले प्रकृती, महत्, अहंकार, मन, श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, रसना, घ्राण, वाक्, पाणी, पाद्, उपस्थ, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, आकाश, वायू, तेज, जल, आणि पृथ्वी ह्या चोवीस तत्त्वाना अशुद्धाध्व असे म्हणतात. शुद्धाध्व, मिश्राध्व आणि अशुद्धामध्ये निवास करणाऱ्या विज्ञानकल (आणवमलमात्रयुक्त), प्रलयाकल (आणव आणि कार्ममलद्वयाने युक्त) आणि सकल (आणवमायाकार्ममलत्रयाने युक्त) जीवांना तत्तदुचित तनु, करण, भुवन, आणि भोग या रूपांनी माया दिसत असते. अशी ही माया चिन्मयलिंगात विलीन होते. ती माया या स्वीकृतप्रसादीला शिष्टोदनासारखी असल्याने त्या मायेला शिष्टोदन असे म्हणतात.।।१४।।

जगदङ्गे परिग्रस्ते मायापाशविजृम्भिते।
स्वात्मज्योतिषि बोधेन तदेकमवशिष्यते।।१५।।

मायापाशविजृम्भिते कलादिक्षित्यन्तत्रिंशत्तत्त्वात्मकमायापाशनिबद्धे जगदङ्गे विश्वशरीरवति स्वात्मज्योतिषि स्वस्वरूपज्ञाने बोधेन स्वात्मज्ञानेन परिग्रस्ते सति आक्रान्ते सति तदेकं तन्मायातत्त्वमेकमेवावशिष्यत इत्यर्थः।।१५।।

कलादिभूम्यंत तीस तत्त्वात्म मायापाशांनी बांधलेले हे जग स्वात्मज्ञानाने आक्रमिल्यानंतर ते सर्व स्वात्मरूप झालेले दिसते तरी त्या तीस तत्त्वांना कारणीभूत असणारी माया मात्र शिल्लक राहाते.।।१५।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ननु शारीरिकस्वरूपस्य बोधाक्रान्तत्वात् कथं मायातत्त्वमवशिष्यत इत्यत्राह—

अखण्डसच्चिदानन्दपरब्रह्मस्वरूपिणः।
जीवन्मुक्तस्य धीरस्य माया कैङ्कर्यवादिनी।।१६।।

अखण्डसच्चिदानन्दलक्षणपरब्रह्मैव यस्य स्वरूपं तादृशस्य जीवन्मुक्तस्य धीरस्य जितेन्द्रियस्य शिवयोगिनो माया कैङ्कर्यवादिनी दासभावं वदन्ती सत्यास्त इत्यर्थः।।१६।।

हे तीस तत्त्वात्मक जगरूपी शरीर आत्मज्ञानाने आक्रमित झाल्यावर हे मायातत्त्व कशा रूपाने उरते? अखड, सच्चिदानद परब्रह्मस्वरूप, जीवन्मुक्त आणि जितेंद्रिय अशा शिवयोग्यापुढे ही माया दासी होऊन राहाते.।।१६।।

एवंरूपायां स्थितौ—

विश्वसंमोहिनी माया बहुशक्तिर्निरङ्कुशा।
शिवैकत्वमुपेतस्य न पुरः स्थातुमीहते।।१७।।

जगन्मोहिनी माया बहुविधशक्तिभिरनर्गलापि शिवे समानसमरस-भावमुपेतस्य शिवयोगिनः पुरतो मोहकत्वेन स्थातुं नेहते नेच्छतीत्यर्थः।।१७।।

विश्वमोहिनी, बहुविधसामर्थ्यशालिनी, निरंकुशा अशी माया शिवाशी सामरस्यभाव प्राप्त झालेल्या शिवयोग्यापुढे मोहक रूपात उभी राहात नाही.।।१७।।

अथ तस्य शिवैक्यस्य विषयनाशं सूत्रत्रयेण कथयति—

ज्योतिर्लिङ्गे चिदाकारे निमग्नेन महात्मना ।
भुज्यमाना यथायोगं नश्यन्ति विषयाः स्वतः।।१८।।

स्पष्टम्।।१८।।

हे समजावण्यासाठी, शिवैक्यज्ञान प्राप्त केलेल्या शिवयोग्याला विषयमोह नसतो, असे तीन श्लोकांत प्रतिपादन करतात—चिद्रूप महालिंगात ऐक्यस्थिती प्राप्त करून घेतलेल्या शिवयोग्याकडून शिवार्पण बुद्धीने उपभोगिले जाणारे शब्दस्पर्शादी विषय आपोआप आत्म्यात लय पावतात.।।१८।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अथ कथं लयं गच्छन्तीत्यत्राह—

शब्दादयोऽपि विषया भुज्यमानास्तदिन्द्रियैः।
आत्मन्येव विलीयन्ते सरितः सागरे यथा।।१९।।

कारणान्तरव्यतिरेकेण नदीसागरन्यायेन स्वत एव लयं गच्छन्तीत्यर्थः। स्वीकृतप्रसादस्तैलवत् सारभूतचिदानन्दः, शिष्टोदनस्तु पिण्याकवन्निःसारा मायेति तद्भोगो निःसारः सन् नश्यतीति भावः।।१९।।

हे विषय कसे लय पावतात? उत्तर असे की, नद्या जशा समुद्रात विलीन होतात, त्याप्रमाणे शब्दादिविषय त्या त्या इंद्रियाकडून उपभोगल्यानंतर आत्म्यातच विलीन होतात.।।१९।।

अथैवं विनष्टविषयसमूहवान् शिवयोगी कथमास्त इत्यत्र वदन् शिष्टोदनस्थलं समापयति—

अर्थजातमशेषं तु ग्रसन् योगी प्रशाम्यति।
स्वात्मनैवास्थितो भानुस्तेजोजालमशेषतः।।२०।।

शिवयोगी अशेषं पदार्थसमूहं स्वस्वरूपेण ग्रसन् तेजोजालं स्वकिरणसमूहम् अशेषतो निशेषं यथा भवति तथा ग्रसन्नुपसंहरन् आस्थितो भानुरिव अस्तं गच्छन् भानुरिव शाम्यति स्वस्थो भवतीत्यर्थः।।२०।।

इति शिष्टोदनस्थलम्

विषयसमूहाचा नाश झाल्यावर शिवयोगी कसा राहातो ते सांगून या शिष्टोदनस्थलाची समाप्ती करतात—सूर्य आपले सर्व किरण आपल्यातच सामावून जसा अस्तंगत होतो तसा हा शिवयोगी सकल पदार्थांचा स्वस्वरूपाने उपभोग घेऊन परमशांत होतो.।।२०।।

अथ चराचरलयस्थलम्

अथ—"सोऽविद्याग्रन्थिं विकिरतीह सोम्य" इति छान्दोग्यश्रुत्यनुसारेण, "विषसम्बन्धिनी शक्तिर्यथा मन्त्रैर्निरुध्यते। यथा न तदिति क्षीणमेवं पुंसो मलक्षयः।।" इति किरणागमवचनानुसारेण च केवलचित्प्रसादस्वीकारेणा-

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

वशिष्टमायोदनः शिवयोगी चराचरे प्रत्येकं परिपक्वानुसारेण व्याप्तमलशक्ति परिपक्वानुसारेण विनाशकरणेन चराचरविनाशक इति कथयति—

लिङ्गैक्ये तु समापन्ने चरणाचरणे गते।
निर्देही स भवेद्योगी चराचरविनाशकः।।२१।।

चरणाचरणे गते चराचरप्रपञ्चगते लिङ्गैक्ये महालिङ्गतादात्म्ये समापन्ने प्राप्ते सति स योगी शिष्टोदनसम्पन्नः शिवयोगी निर्देही भूत्वा चराचरविनाशको जङ्गमस्थावरगतमलशक्तिविनाशको भवेदित्यर्थः।।२१।।

केवळ शिवप्रसाद स्वीकारल्याने ज्याचे मायारूप ओदन (अन्न) मात्र शिल्लक राहिलेले आहे अशा शिवयोग्याने या चराचर प्रपंचातील प्रत्येक वस्तूच्या परिपक्वतेनुसार तिच्यात व्याप्त असलेल्या मलशक्तीचा विनाश केल्यामुळे त्याला चराचर विनाशक या नावाने ओळखतात, असे सांगण्यासाठी चराचर-विनाशस्थलाचा प्रारंभ करतात—शिवाशी सामरस्य पावलेल्या शिवयोग्यामध्ये चराचर प्रपंचाचा लय झाल्यामुळे तो शिवयोगी विदेही होऊन चराचर-प्रपंच-विनाशक या नावाने ओळखला जातो.।।२१।।

अथ स शिवयोगी चराचरव्याप्तमलशक्तिनिवारणेन मायाप्रपञ्चं न पश्यतीति षड्भिः सूत्रैः प्रतिपादयति—

अनाद्यविद्यामूला हि प्रतीतिर्जगतामियम्।
स्वात्मैकबोधात् तन्नाशे कुतो विश्वप्रकाशनम्।।२२।।

इदमेतादृगिति प्रतिनियतविश्वभुवनप्रतीतिर्लीलाशक्त्यनादिकल्पितमायैव मूलकारणवती स्वात्मैकबोधात् स्वात्मैवेति बोधात् स्वात्मप्रधानीभूतज्ञानात् तन्नाशे मलशक्तिनाशे विश्वप्रकाशनं तन्मूलकजगद्दर्शनं कुतो नास्तीत्यर्थः।।२२।।

त्या शिवयोग्याने चराचर प्रपंचात व्यापलेल्या मलशक्तीचे निवारण केले असल्यामुळे तो मायाप्रपंच पाहात नाही असे सहा श्लोकांत प्रतिपादन करतात—शिवाची अनादी अशी मायाच जगाच्या प्रतीतीचे मूल कारण आहे. ती मायाशक्तीच नाहीशी झाल्यावर स्वस्वरूप ज्ञानसंपन्न शिवयोग्याला तिचे कार्यरूप अशा जगाचे दर्शन कसे होईल? अर्थात् त्याला जगद्भावदर्शनच नसते हा भाव.।।२२।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

नन्विदं विश्वं कुत्र लयं गच्छतीत्यत्राह–

यथा मेघाः समुद्भूता विलीयन्ते नभस्तले।
तथात्मनि विलीयन्ते विषयाः स्वानुभाविनः।।२३।।

नभस्थले मेघाः संभूय यथा विलीयन्ते, तथा स्वस्वरूपानुभाविनः शिवयोगिन आत्मनि चैतन्ये विषयाः शब्दादिविषयाः समुद्भूता उत्पन्नाः सन्तो विलीयन्त इत्यर्थः।।२३।।

या विश्वाचा लय कोठे होतो? या संबधी सांगतात– आकाशात उत्पन्न झालेले मेघ जसे आकाशातच विलीन होतात तसे स्वस्वरूपानुभवी शिवयोग्याच्या आत्म्यात उत्पन्न होणारे शब्दादिविषय पुन्हा तेथेच विलय पावतात.।।२३।।

अथेदं विश्वं स्वात्मैकबोधात् कथं नश्यतीत्यत्राह–

स्वप्ने दृष्टं यथा वस्तु प्रबोधे लयमश्नुते।
तथा सांसारिकं सर्वमात्मज्ञाने विनश्यति।।२४।।

आत्मज्ञाने सतीत्यर्थः। नन्वेवं चेद्विश्वस्य स्वप्नसादृश्याङ्गीकारान्मिथ्यात्वप्रसङ्ग इति नाशङ्कनीयम्, स्वप्नेनापि फलाफलदर्शनात्, रेतःपातादिदर्शनाच्च सत्यत्वमेवेति। शिष्टं स्पष्टम् ।।२४।।

स्वात्मबोधाने हे विषय कसे नाश पावतात? या विषयी सांगतात–स्वप्नात पाहिलेले पदार्थ जागृतावस्थेत जसे विलीन होतात, तशा प्रकारे आत्मज्ञान झाल्यावर सांसारिक पदार्थांचा लयरूप विनाश होतो. प्रपंचाला स्वप्नाचा दृष्टांत दिल्यामुळे त्याला मिथ्या मानू नये. कारण जागृत अवस्थे प्रमाणे स्वप्नावस्थेतही सुखदुःखांचा अनुभव येत असतो.।।२४।।

पुनश्च कारणान्तरमाह–

जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिभ्यः परावस्थामुपेयुषः।
किं वा प्रमाणं किं ज्ञेयं किं वा ज्ञानस्य साधनम्।।२५।।

परावस्थां तनुत्रयाश्रितजाग्रदाद्यवस्थातीतबोधखेचरीमुद्रासुलभसर्वोत्कृष्टतुरीयावस्थाम् उपयुषो गतस्य शिवयोगिनः किं वा प्रमाणं किं ज्ञेयं किं वा ज्ञानस्य साधनम्? त्रिपुटीमयप्रपञ्चोत्तीर्णत्वात् तद्दर्शनं नास्तीति भावः।।२५।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

शिवयोग्याला प्रपंच का दिसत नाही? याचे निराळे कारण सांगतात—स्थूलादितनुत्रयाशी संबंधित जागृतादी अवस्थात्रयाच्या अतीत झालेला, खेचरी मुद्रेच्या साधनेने प्राप्त होणाऱ्या तुरीय अवस्थेला पोचलेला शिवयोगी प्रमातृ-प्रमाण-प्रमेयरूप त्रिपुटीमय प्रपंच व्यवहाराच्या पलीकडे गेला असल्यामुळे त्याला प्रपंचाचे दर्शन होत नाही.।।२५।।

अथ तत्तुर्यातीतपदं विशदयति—

तुर्यातीतपदं यत्तद् दूरं वाङ्मनसाध्वनः।
अनुप्रविश्य तद्योगी न भूयो विश्वमीक्षते।।२६।।

यत्तुर्यातीतपदं मौनान्तमुद्रासुलभतुर्यातीतस्थानमस्ति, वाङ्मनसाध्वनो दूरं स्तुतिध्यानयोरविषयं तत्तुर्यातीतस्थानम् अनुप्रविश्य तद्योगी तुर्यस्थानयोगवान् शिवयोगी भूयो विश्वं नेक्षते न पश्यतीत्यर्थः।।२६।।

स्तुती आणि ध्यानाला अगोचर असणाऱ्या तुर्यातीत अवस्थेला पोचलेल्या शिषयोग्याला पुन्हा पूर्वीप्रमाणे प्रपचाची प्रतीती होत नाही.।।२६।।

कुत इत्यत्राह—

नान्यत् पश्यति योगीन्द्रो नान्यज्जानाति किञ्चन।
नान्यच्छृणोति सन्दृष्टे चिदानन्दमये शिवे।।२७।।

चिदानन्दस्वरूपे शिवे संदृष्टे, सतीति शेषः। अपरोक्षीकृते सति योगीन्द्रो निजस्वरूपस्थः शिवयोगीश्वरः, अन्यत् स्वातिरिक्तं रूपं न पश्यति, तादृशं शब्दजालं न शृणोति, किमपि तदन्यं न जानातीत्यर्थः। मलशक्तिक्षयाद् मायिकरूपादिदर्शनं नास्तीति भावः।।२७।।

त्याला प्रपंचाची प्रतीती का होत नाही? तर—सच्चिदानंदस्वंरूप परशिवाचा स्वात्मरूपात साक्षात्कार घडलेला शिवयोगी आपल्यापेक्षा भिन्न असे रूप पाहात नाही, भिन्न असा शब्द ऐकत नाही, आपल्यापेक्षा भिन्न असे काही जाणत नाही. तात्पर्य, या शिवयोग्याला, मलरूप शक्तीचा क्षय झाल्यामुळे मायिक रूपादी दिसत नाही. म्हणून त्याला प्रपंचाची प्रतीती होत नाही.।।२७।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अथोक्तार्थं स्फुटयन् चराचरमलनाशस्थलं समापयति—

असदेव जगत् सर्वं सदिव प्रतिभासते।
ज्ञाते शिवे तदज्ञानं स्वरूपमुपपद्यते।।२८।।

सर्वं जगद् असदेव शिवातिरेकेण नास्त्येव, सदिव प्रतिभासते मलशक्तिवशात् तद्व्यतिरेकेण सदिव भासते, शिवे सच्चिदानन्दलक्षणे परशिवे ज्ञाते साक्षात्कृते सति तदज्ञानं भेदप्रतीतिकारणं तन्मूलाज्ञानं नष्टं सत् स्वरूपं कारणीभूतचिच्छक्त्याकारम्, उपपद्यते गच्छतीत्यर्थः। तस्मात् शिवातिरेकेण स्वविमर्शनं शिवयोगिनो नास्तीत्यर्थः।।२८।।

इति चराचरमललयस्थलम्

आतापर्यन्त सांगितलेला विषय अधिक स्पष्टपणे सागून या चराचर-विनाश-स्थलाचा समारोप करतात—हे सकल जग शिवापेक्षा भिन्न नसते तरीही मायाशक्तीला वश झाल्यामुळे ते भिन्न दिसते. सच्चिदानंद परशिवरूपाचा साक्षात्कार झाल्यामुळे भेदरूप प्रपंचाच्या प्रतीतीला कारण अशा अज्ञानाचा नाश झाल्यावर सर्व काही स्वाभिन्न चिच्छक्ती आकाररूपाने दिसते. म्हणून शिवयोगी आपण स्वतः व हे जग शिवापेक्षा भिन्न आहेत असे कधीच मानीत नाही. त्यामुळे त्याला चराचरभेदभावना नसते हे तात्पर्य.।।२८।।

अथ भाण्डस्थलम्

अथ—"ऊर्ध्वमूलोऽवाक्शाख एषोऽश्वत्थः सनातनः। तदेव शुक्लं तद्ब्रह्म तदेवामृतमुच्यते।। तस्मिन् लोकाः श्रिताः सर्वे तदु नात्येति कश्चन ।" इति कठवल्लीश्रुत्यनुसारेण, "यथा कुण्डलिनीशक्तिर्मायाकर्मानुसारिणी। नादबिन्द्वादिकं कार्यं तस्या इति जगत्स्थितिः।।" इति विश्वसारोत्तरवचनानुसारेण च चराचरमलशक्तिविनाशकस्य शिवयोगिनो विचाररूपः परबिन्दुरेव भाण्डस्थलमिति निरूपयति—

ब्रह्माण्डशतकोटीनां सर्गस्थितिलयान् प्रति।
स्थानभूतो विमर्शो यस्तद्भाण्डस्थलमुच्यते।।२९।।

अनेककोटिब्रह्माण्डसृष्टिस्थितिलयान् प्रत्याधारभूतो यो विमर्शः, अस्य चराचरमलविनाशकस्य शिवयोगिनः शब्दब्रह्मरूपविचारोऽस्ति, तद् भाण्डस्थलमित्युच्यत इत्यर्थः।।२९।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

'संसार हा एक सनातन अश्वत्थ वृक्ष आहे. त्याची मुळे वर व शाखा खाली वाढल्या आहेत. त्या वृक्षाचा परमाधार ते तत्त्वच शुक्ल (परंज्योती) तोच ब्रह्म होय. तेच अमृत. त्यातच सर्व लोक (जग) आश्रय पावतात. अन्य कोणतेच तत्त्व त्याच्याहून श्रेष्ठ नाही. ते परब्रह्म तत्त्व पूर्ण आहे.' आणि 'विश्वाधार अशी चिच्छक्ती त्या परशिवात एक होऊन राहिली आहे. ती त्या परशिवाइतकीच व्यापक आहे. त्या चित्छक्तीलाच महामाया, कुंडलिनी, शब्दब्रह्म, पराबिंदू, शुद्धमाया वगैरे नावे आहेत. तिच्या पदरात अनंत तत्त्वे, असंख्य ब्रह्मांडे दिसून येतात, राहातात व विलीन होतात.' अशा कठवल्ली आणि विश्वसारोत्तर वचनांनुसार विश्वाच्या उत्पत्ति-स्थिती आणि लयाला आधार असणारी विमर्शशक्ती म्हणजे भांड होय. आणि तिचे परिज्ञान असलेला शिवयोगी भांडस्थली होय, हे सांगण्यासाठी भांडस्थलाचे निरूपण करतात—अनंतकोटी ब्रह्मांडाच्या उत्पत्ति-स्थिति-लयाला पराबिंदु अर्थात् पराशक्तीच आधार आहे. तिला भांड म्हणतात. तिच्या विषयीचा जो विचार त्याला भांडस्थल असे म्हणतात.।।२९।।

अथ तद्विमर्शस्वरूपं विशदयति—

विमर्शाख्या पराशक्तिर्विश्वोद्भासनकारिणी।
साक्षिणी सर्वभूतानां समिन्धे सर्वतोमुखी।।३०।।

षडध्वस्फारलक्षणशब्दार्थविचारपरत्वेन विमर्शाख्या पराशक्तिः शुद्धमाया विश्वोद्भासनकारिणी स्वकार्यरूपज्ञानादिभिर्विश्वप्रकाशिनी सर्वतत्त्वानां साक्षिणी सर्वतोमुखी सती समिन्धे शुद्धाध्ववासिनां परशक्तिसदाशिवेश्वर-विद्यातत्त्वलक्षणतनुकरणभुवनभोगरूपेण प्रकाशत इत्यर्थः।।३०।।

आता त्या विचाराचे अर्थात् विमर्शाचे स्वरूप विशद करतात—विमर्शशक्ती षडध्वांच्या उत्पत्तीला कारण आहे. सकल जगाच्या प्रकाशनाला तीच कारण असून तीच सकलतत्त्वांना साक्षीस्वरूपही आहे. तीच शक्ती सर्वतोमुखी होऊन शुद्धाध्ववासी देवतांना पराशक्तिरूपाने तनू होऊन, सदाशिव तत्त्वरूपाने करण होऊन, ईश्वरतत्वरूपाने भुवन होऊन आणि विद्यातत्त्वरूपाने भोग होऊन प्रकाशते. अशा प्रकारे विचार करणे हेच भांडस्थल होय.।।३०।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अथ तामेव विमर्शकलां विशेषयति—

विश्वं यत्र लयं याति विभात्यात्मा चिदाकृतिः।
सदानन्दमयः साक्षात् सा विमर्शमयी कला।।३१।।

स्पष्टम्।।३१।।

त्या विमर्शकलेचे विशेष रूपाने वर्णन करतात—जिच्यामध्ये सर्व जगाचा लय होतो, जिच्यामुळे आत्मा चिद्रूपाने प्रकाशित होतो. जी साक्षात् सदानंद-रूपिणी आहे, तीच विमर्शकला होय. अशा रीतीने विमर्शकलेसंबंधी ज्ञान असणे हे भांडस्थल होय.।।३१।।

अथ भाण्डस्थलार्थं सूचयन् तत्त्वंपदप्रसिद्धलिङ्गाङ्गरूपशिवजीवयोः स विमर्श एवाश्रय इति सूत्रद्वयेन प्रतिपादयति—

पराहन्तासमावेशपरिपूर्णविमर्शवान्।
सर्वज्ञः सर्वगः साक्षी सर्वकर्ता महेश्वरः।।३२।।

महेश्वरः परमेश्वरः पराहन्तासमावेशपरिपूर्णविमर्शवान् शिवजीवसाधारणीभूतात्मतत्त्वाक्रमणेन परिपूर्णविमर्शवान् सन् सर्वज्ञः सर्वकर्ता सर्वगः सर्वव्यापकः कर्मसाक्षी भवेत्, अन्यथा स्फटिकादिप्रकाशवज्जडो भवेदिति भावः।।३२।।

असा भाडस्थलार्थ निरूपण करून तत् आणि त्वम् पदानी प्रसिद्ध असणाऱ्या लिंगागरूप शिवजीवाच्या विमर्शाला भांडस्थल म्हणतात, असे दोन श्लोकांत प्रतिपादन करतात—शिव आणि जीव यांना साधारण असलेल्या आत्मतत्त्व स्वसमवेत विमर्शशक्तीच्या क्षोभाने त्याच्या ठिकाणी पराहंतेचा अभिनिवेश होतो. म्हणून तो महेश्वर परिपूर्ण विमर्शवान (पूर्ण विचारवान) होऊन सर्वज्ञ, सर्वकर्ता, सर्वव्यापक आणि सर्वसाक्षी होतो. जर त्या आत्मतत्त्वात विमर्शशक्ती नसती तर ते आत्मतत्त्व प्रकाशवान जरी दिसले असते तरी ते स्फटिकाप्रमाणे जड झाले असते.।।३२।।

अथ किं तस्य स्वरूपमित्यत्राह—

विश्वाधारमहासंवित्प्रकाशपरिपूरितम्।
पराहन्तामयं प्राहुर्विमर्शं परमात्मनः।।३३।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

परमात्मनः "अहमस्मि प्रथमजा ऋतस्य पूर्वं देवेभ्यो अमृतस्य नाभिः" इति श्रुतेः, "अहमादिर्हि देवानाम्", "अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते" इति भगवदुक्तेश्च परसंविद्रूपस्याहमात्मनः शिवस्य महासंवित्प्रकाशपरिपूरितं महाचित्प्रकाशपरिपूर्णं विश्वाधारं विश्वरूपाविद्या-लक्षणाधोमायाधारं पराहन्तामयम्, यथा घटस्य कम्बुग्रीवादिमत्त्वं तदनतिरिक्तम्, तथा अहमो भावोऽहन्तेति "पृ पालनपूरणयोः" इति धातु-गत्याण्डरसन्यायेनाशुद्धमिश्रशुद्धाध्वलक्षणसकलविश्वतः पूर्णजीवनभूतपराहन्ता-मयोर्ध्वमायारूपं विमर्शं सन्तं प्राहुः शिवाद्वैतशास्त्रप्रवीणाः प्रकर्षेणाहुरित्यर्थः। अयं भावः—"पादोऽस्य विश्वा भूतानि" इति श्रुतेश्चराचरप्रपञ्चस्य माहेश्वरीयचित्क्रियालक्षणचरविस्ताररूपत्वात् तत्प्रतिस्फुरणायमानोर्ध्वमाया-रूपा विमर्शशक्तिरेव घृतकीटन्यायेनैकदेशविकारीभूता, "वागीश्वरी परा विद्या कुटिला कुण्डली परा। शुद्धमायापरो बिन्दुः शब्दब्रह्मेति कथ्यते।।" इति पौष्करवचनप्रसिद्धपर्यायनामवती षडध्वजननीति देशिकोपदेशेन विज्ञेया। अस्याश्चिद्रूपत्वेन निरंशत्वेऽप्यघटनघटनापटीयस्त्वेन स्वातन्त्र्यकल्पितांश-भेदसम्भवान्न काचिदनुपपत्तिरिति।।३३।।

त्या विमर्शशक्तीचे स्वरूप काय? याचे उत्तर सांगतात-जगाला आधारभूत असलेली, महाज्ञान प्रकाशाने परिपूर्ण असलेली, अशा परशिवाच्या विमर्शशक्तीला शिवाद्वैतज्ञानी पराहंता असे म्हणतात. अर्थात् अहम्पदवाच्य परब्रह्माचा असाधारण धर्मच पराहंता होय.।।३३।।

विमर्शभाण्डविन्यस्तविश्वतत्त्वविजृम्भणः।
अनन्यमुखसम्प्रेक्षी मुक्तः स्वात्मनि तिष्ठति।।३४।।

मुक्तो मायापाशपटलनिर्मुक्तः शिवयोगी विमर्शभाण्डस्थापितशक्त्यादि-पृथ्वन्तसमस्ततत्त्वबुद्बुदः सन् स्वात्मन्येवोन्मुखः सन् स्वस्वरूपेण तिष्ठतीत्यर्थः।।३४।।

इति भाण्डस्थलम्

आता भांडस्थलाचे निरूपण संपवितात—मायापाशातून मुक्त झालेला शिवयोगी, शक्तितत्त्वापासून पृथ्वीतत्त्वापर्यन्त सर्व तत्त्वांना आपल्या विमर्श-शक्तिरूपी भांड्यात ठेवून, अनन्यपणे अंतर्मुख होऊन स्वस्वरूपात स्थिर होतो.।।३४।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अथ भाजनस्थलम्

अथ—"परास्य शक्तिर्विपुला विकर्ता स्वाभाविकी रुद्रसमानधर्मिणी। ज्ञानक्रियेच्छादिसहस्ररूपा तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु।।" इति शिवसङ्कल्पश्रुत्यनुसारेण, "या सा माहेश्वरी शक्तिः सर्वानुग्राहिका शिवा। धर्मानुवर्तनादेव पाश इत्युपचर्यते।।" इति मृगेन्द्रवचनानुसारेण च तद्भाण्डस्थलसम्पन्नस्य शिवयोगिनो विमर्शस्याश्रयीभूता तिरोभावशक्तिरेव भाजनमिति सूत्रद्वयेन निरूपयति—

समस्तजगदण्डानां सर्गस्थित्यन्तकारणम्।
विमर्शो भासते यत्र तद्भाजनमिहोच्यते।।३५।।

समस्तभुवनाण्डसृष्ट्यादिकारणीभूतविमर्शपरबिन्दुर्यत्र तिरोधानरूपशिवसमवेतशक्तौ भासते, तत् तच्छक्तिस्वरूपम्, इह भाण्डस्थलसम्पन्नशिवयोगिविषये भाजनमित्युच्यते। अयं भावः—पञ्चकञ्चुकयुक्तचैतन्यस्य पुरुष इत्यभिधानवतः पाशत्रयानुसारिण्याः शिवशक्तेस्तिरोभाव इत्युपचारः ।।३५।।

'परमेश्वराची शक्ती विपुल (अनत व अनेक), विशेष कर्तृरूपिणी, स्वभावसिद्ध अशी, रूद्राच्या समान धर्मांनी युक्त, ज्ञानरूपिणी, क्रियारूपिणी, इच्छारूपिणी व बलरूपिणी अशा हजारो रूपांनी युक्त अशी ती आहे. तिच्यामुळे माझे मन कल्याणकारक शिवाच्या सकल्पाने सदैव युक्त असो,' अशा प्रकारे शिवसंकल्प श्रुतीमध्ये शक्तीची अनेक रूपे वर्णिली आहेत. त्यापैकी भांडस्थलसंपन्न अशा शिवयोग्याच्या विमर्शशक्तीला आश्रयीभूत असणारी जी तिरोभाव शक्ती आहे तिलाच भाजन असे म्हणतात, हे दोन श्लोकांत सागतात—समस्त भुवन ब्रह्माडाच्या सृष्टि-स्थिती-लयाला कारणीभूत असणारी विमर्शशक्ती ज्या परशिवब्रह्मात प्रकाशित होते तो परशिव ब्रह्मच भाजन असे म्हणविला जातो.।।३५।।

विमर्शाख्या परा शक्तिर्विश्ववैचित्र्यकारिणी।
यस्मिन् प्रतिष्ठिता ब्रह्म तदिदं विश्वभाजनम्।।३६।।

विश्ववैचित्र्यकारिणी विमर्शाख्या परकुण्डलिनी शक्तिर्यस्मिन् तिरोभावशक्तेर्दृक्क्रियास्वरूपे प्रतिष्ठिता, ब्रह्म ब्रह्मस्वरूपं तदिदं वह्न्युष्णत्वशुक्ल-

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पटन्यायेन स्वसमवेततिरोभावशक्तिदृक्क्रियास्वरूपं विश्वभाजनमित्यर्थः ।।३६।।

चित्रविचित्र विश्वाची उत्पत्ती करणारी विमर्शनामक पराशक्ती ज्याच्या ठिकाणी अविनाभाव संबधाने प्रतिष्ठित असते ते परब्रह्मच विश्वभाजन होय.।।३६।।

अथ तिरोभावविमर्शयोः किञ्चिन्मिश्रीभावं सूत्रद्वयेन प्रकाशयति—

अन्तःकरणरूपेण जगदङ्कुररूपतः ।
यस्मिन् विभाति चिच्छक्तिर्ब्रह्मभूतः स उच्यते।।३७।।

चिच्छक्तिः स्थूलवेद्यतिरोभावलक्षणा समवेतशक्तिर्जगदङ्कुररूपतो जगदङ्कुरकारणीभूतेन अन्तःकरणरूपेण मूलाहङ्काररूपेण यस्मिन् परबिन्दौ भाति, स विमर्शाख्यपरबिन्दुरेव ब्रह्मभूतः परब्रह्माख्यपरशिव इत्युच्यते। तच्चिद्वच्चक्तिमत्परबिन्दुरेव महालिङ्गमित्यर्थः।।३७।।

परशिवसमवेत अशी ज्ञानशक्ती जगाच्या उदयास कारणीभूत असणाऱ्या मूलाहंकाराचे रूप धारण करून विमर्श नामक परबिंदूमध्ये समाविष्ट होते. तो परबिंदूच परशिव या औपचारिक नावाने ओळखला जातो. म्हणून तो परबिंदूच महालिग होय असे समजावे.।।३७।।

नन्वहङ्कारमिश्रत्वान्मिथ्याभूतः किमित्यत्राह—

यथा चन्द्रे स्थिरा ज्योत्स्ना विश्ववस्तुप्रकाशिनी।
तथा शक्तिर्विमर्शात्मा प्रकारे ब्रह्मणि स्थिता।।३८।।

चन्द्रे स्थिरा ज्योत्स्ना चन्द्रिका विश्ववस्तु सर्वविश्वं प्रकारे एकदेशे यथा प्रकाशिनी प्रकाशयति, तथा ब्रह्मणि दृक्क्रियात्मकपरशिवे स्थिरा स्थिरेण स्थिता विमर्शशक्तिः परामर्शमयी पराशक्तिः, विश्ववस्तु सर्वं जगत् प्रकारे स्वस्वातन्त्र्यकल्पितांशे प्रकाशिनी प्रकाशयतीत्यर्थः। मनोवाचामगोचरत्वेन पशुजनानां तिरोहितत्वात् तिरोधानशक्तिरिति प्रसिद्धा या अस्ति, तथ्यकर्मकस्फूर्तिरूपायाश्चित्क्रियाशक्तेः परब्रह्मपरशिवपरलिङ्गादिनामानि मुख्यानि, महाबिन्द्वादीनां गौणानीति विवेकः।।३८।।

त्या विमर्शशक्तीमध्ये मूलाहंकाराचे मिश्रण झाल्याने ती मिथ्या समजावी काय? याचे उत्तर असे की, समस्त वस्तूना प्रकाशित करणारी चंद्रिका चंद्रामध्ये जशी स्थिर असते तशी विमर्शनामक

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

शक्ती प्रकाशस्वरूप अशा परशिव ब्रह्मामध्ये स्थिर असते. म्हणजे चंद्राला सोडून चंद्रिका आणि चंद्रिकेला सोडून चंद्र जसा असत नाही, तसे शिवाला सोडून शक्ती आणि शक्तीला सोडून शिव असत नाही. एकूण विमर्शशक्ती शिवामध्ये अविनाभाव रूपाने स्थित असते हा भाव.।।३८।।

ननु मुख्यप्रकाशात्मकं ब्रह्म शक्त्येकरूपं सत् कथमास्त इत्यत्राह—

अकारः शिव आख्यातो हकारः शक्तिरुच्यते।
शिवशक्तिमयं ब्रह्म स्थितमेकमहं वदे।।३९।।

"अक्षराणामकारोऽस्मि" इति भगवदुक्तेः, "अकारो वै सर्वा वाक्" इति श्रुतेश्च अकारः सप्तदशीयः शिव इत्याख्यातः, हकारः शक्तिः, "हकारोऽन्त्यः कलारूपः" इत्यागमोक्तेश्चैतन्यरूपिणी दृक्क्रियाशक्तिरित्युच्यते। शिवशक्तिमयम् एवं शिवशक्तिरूपं ब्रह्म परब्रह्म एकं सद् अहंपदे अहमिति स्थाने स्वरूपे स्थितं कालत्रयेऽपि वर्तत इत्यर्थः। अनेनाहंरूपं ब्रह्मेति वदन्तो वैयासिकाः प्रत्युक्ताः, नित्यापरोक्षं ब्रह्मेत्यङ्गीकृतत्वे तद्व्यतिरिक्तस्य कथञ्चिदप्यदृश्यत्वादिति।।३९।।

मुख्य प्रकाशस्वरूप असणारा परशिव शक्तीशी एकरूप होऊन कसा राहातो? उत्तर असे की-'अ' कराला शिव म्हणावे, 'ह' काराला शक्ती म्हणावे असे श्रुती आणि आगमांतून प्रतिपादिले आहे, त्यामुळे 'अहम्' या एकाच पदामध्ये शिवशक्तिमय असे परब्रह्म कालत्रयात अर्थात् नेहमी असते.।।३९।।

अथैवंरूपाहन्तां प्राप्य शिवयोगी विश्वरूपः सन् प्रतिभातीत्याह—

अहन्तां परमां प्राप्य शिवशक्तिमयीं स्थिराम्।
ब्रह्मभूयंगतो योगी विश्वात्मा प्रतिभासते।।४०।।

परमां देशकालाकारोत्तीर्णां शिवशक्तिमयीं शिवाभिन्नशक्तिमयीम् अहन्तां सप्तदशीयचित्कलां प्राप्य स्वात्माभेदेन स्थिरां स्थिरीभूतां ज्ञात्वा विमृश्य ब्रह्मभूयंगतो ब्रह्मस्वरूपं गतः शिवयोगी विश्वात्मा जगद्रूपः सन् प्रतिभासते, प्रकाशत इत्यर्थः।।४०।।

असे अहंतारूप प्राप्त झालेला शिवयोगी विश्वरूप झालेला दिसतो असे सांगतात— देशकालातीत आणि शिवशक्त्यात्मक अशी

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

स्थिर पराहंता प्राप्त करून ब्रह्मस्वरूप झालेला शिवयोगी जगद्रूप होऊन प्रकाशतो.।।४०।।

अथ कथं विश्वरूपः सन् शिवयोगी भासत इत्यत्र—"यथा न्यग्रोधबीजस्थः शक्तिरूपो महाद्रुमः। तथा हृदयबीजस्थं जगदेतच्चराचरम्।।" इति श्रीपरात्रिंशिकाशास्त्रोक्तप्रकारेण वदन् भाजनस्थलं समापयति—

वृक्षस्थं पत्रपुष्पादि वटबीजस्थितं यथा।
तथा हृदयबीजस्थं विश्वमेतत् परात्मनः।।४१।।

वृक्षस्थं वटवृक्षस्थं पत्रपुष्पादि समस्तं यथा वटबीजे स्थितं तिष्ठतीत्यर्थः, तथा एतद् विश्वं समस्तं परात्मनः परब्रह्मरूपस्य भाजनस्थलसम्पन्नस्य शिवयोगिनो हृदयबीजस्थम्, "कला सप्तदशी ज्ञेया स्वान्तर्लीनचराचरा" इत्यागमोक्तेः, "अथाद्यास्तिथयः सर्वाः स्वरा बिन्द्ववसानकाः। तदन्तःकालयोगेन सोमसूर्यौ प्रकीर्तितौ।। पृथिव्यादीनि तत्त्वानि पुरुषान्तानि पञ्चसु। क्रमात् कादिषु वर्गेषु मकारान्तेषु सुव्रते।। वाय्वग्निसलिलेन्द्राणां धारणानां चतुष्टयम्। तदूर्ध्वे शादि विख्यातं पुरस्ताद् ब्रह्मपञ्चकम्।। अमूलात्तत्क्रमाज्ज्ञेया क्षान्ता सृष्टिरुदाहृता।" इति श्रीपरात्रिंशिकाशास्त्रोक्तप्रकारेण आदिक्षान्तपञ्चाशद्वर्णानां देशकालाकाररूपत्वात्, "प्रत्यवमर्शात्मासौ चितिः स्वरसवाहिनी परा वाग् या। आद्यन्तप्रत्याहृतवर्णगणा सत्यहन्ता सा।।" इति पञ्चाशिकाशास्त्रस्थित्या क्षकारस्य कषयोगरूपत्वेन हकारस्यैवान्त्यत्वाद् देशकालाकारवाचकसकलमातृकार्णक्रोडीकारलक्षणप्रत्याहृताकारहकाररूपशिवशक्तिसम्मेलनस्फुरिततदन्तर्गतवेद्यसंस्कारलक्षणबिन्दुस्पन्दमयनरशक्तिशिवात्मकाऽहंपरामर्शरूपचित्क्रियासामरस्यलक्षणहृदयबीजे तादात्म्येन तिष्ठतीत्यर्थः। अत्र अकारादिहकारान्तसूक्ष्मादिवाक्शक्तिरूपो विमर्शस्तदात्मकाहंपदे पशुजनागोचरत्वेन भासमानानाहतनादलक्षणपरावाक्शक्तिमयी चिच्छक्तिस्तिरोधानशक्तिरिति रहस्यम्, "न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके यः शब्दानुगमादृते। अनुविद्धमिव ज्ञानं सर्वं शब्देन गम्यते।।" इति वैयाकरणवचनानुसारादिति।।४१।।

इति भाजनस्थलम्

तो शिवयोगी विश्वरूप होऊन कसा दिसतो? असा प्रश्न उपस्थित झाल्यास, 'वटवृक्षाचे बीज जसे आपल्या शक्तीच्या विकासाने महावृक्षरूप धारण करते, तसे शिवयोग्याच्या हृदयात बीजरूपाने असणारी पराहंताच विश्वरूपाने प्रकाशित होते,' अशा परात्रिंशिकावचनानुसार स्पष्टीकरण करून भाजनस्थलाची समाप्ती

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

करतात—वटवृक्षाची पाने, फुले ही जशी वृक्ष उगवण्यापूर्वी त्याच्या बीजात सूक्ष्मरूपाने असतात तशा प्रकारे भाजनस्थलसपन्न होऊन परब्रह्मरूप झालेल्या शिवयोग्याच्या हृदयात अहंतारूप शिवशक्त्यात्मक बीजरूपाने हे चराचर विश्व स्थित असते.।।४१।।

अथ अङ्गालेपस्थलम्

अथ—"यथा पुष्करपलाश आपो न श्लिष्यन्ते, एवमेव पापकर्म न श्लिष्यते" इति छान्दोग्यश्रुत्यनुसारेण, "एवंभूतस्य कर्माणि क्रियमाणानि योगिनः। प्रयान्ति नैव लिप्यन्ते पुण्यापुण्यानि संक्षयम्।।" इति योगजागमवचनानुसारेण च तिरोभावलक्षणदृक्क्रियाभाजनवतः शिवयोगिनः कर्माङ्गं लेपकं न भवतीत्यङ्गालेप इति सूत्रत्रयेण कथयति—

दिक्कालाद्यनवच्छिन्नं चिदानन्दमयं महत्।
यस्य रूपमिदं ख्यातं सोऽङ्गालेप इहोच्यते।।४२।।

दिग्देशकालत्रयेऽपि परिच्छेदरहितं चिदानन्दस्वरूपं बृहद् इदं प्रादुर्भूतदृक्क्रियारूपं यस्य तिरोभावभाजनसम्पन्नस्य शिवयोगिनो रूपं स्वरूपमिति ख्यातम्, स तद्भाजनस्थलसम्पन्नः शिवयोगी अङ्गकर्मलेपरहित इति इहोच्यत इत्यर्थः।।४२।।

'कमलपत्र आपल्या अंगाला पाणी चिकटू देत नाही, तशाप्रकारे पुण्यात्मा शिवयोगी त्याच्या कर्मांनी लिप्त होत नाही, अशा छांदोग्य श्रुतीप्रमाणे आणि 'शिवयोग्याकडून केली जाणारी पुण्य पापात्मक कर्मे त्याला लिप्त न होताच नाश पावतात,' या योगजागमाच्या वचनानुसार भाजनस्थलसंपन्न शिवयोग्याला कर्मांचा लेप होत नाही, हे सांगण्यासाठी अंगालेपन स्थलाचा प्रारंभ करून शिवयोग्याच्या असंग स्थितीचे वर्णन तीन श्लोकांतून करतात—परब्रह्म स्थिती प्राप्त झालेल्या शिवयोग्याचे स्वरूप देशकालादिमर्यादारहित सच्चिदानंदस्वरूप, व्यापक होऊन प्रसिद्ध झालेले असते. अशा स्वरूपाचा शिवयोगी शरीरसंबंधित कर्मांपासून अलिप्त असल्याने त्याला अंगालेप असे म्हणतात.।।४२।।

अत्र दृष्टान्तमाह—

समस्तजगदात्माऽपि संविद्रूपो महामतिः।
लिप्यते नैव संसारैर्यथा धूमादिभिर्नभः।।४३।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सकलजगच्चैतन्यात्मकः सन् चिद्रूपो महाधीमान् शिवयोगी धूममेघादिभिर्नभो यथा न लिप्यते, तथा संसारपापकर्मभिर्न लिप्यत इत्यर्थः।।४३।।

आता त्याविषयी दृष्टांत सांगतात—आकाश जसे आपल्या-ठिकाणी संचरणाऱ्या धूर, मेघादिकांपासून निर्लिप्त असते, तशा प्रकारे महाबुद्धिशाली, ज्ञानस्वरूप शिवयोगी समस्त प्रपंचस्वरूप व्यापक असला तरी संसारपापकर्मांपासून तो लिप्त होत नाही.।।४३।।

कुत इत्यत्राह—

न विधिर्न निषेधश्च न विकल्पो न वासना।
केवलं चित्स्वरूपस्य गलितप्राकृतात्मनः।।४४।।

गलितेति निवृत्तप्राकृतकर्मप्रयत्नवतः केवलं चिद्रूपस्य शिवयोगिनो न विधिः विध्युक्तकर्म नास्ति, न निषेधश्च निषिध्यमानकर्मापि नास्ति, न विकल्पः अस्तिनास्तीति विकल्पो नास्ति, न वासना तद्वासनापि नास्तीत्यर्थः।।४४।।

का लिप्त होत नाही? तर—प्राकृतिक कर्मप्रवृत्ती नसलेल्या केवळ ज्ञानस्वरूप अशा शिवयोग्याला शास्त्रविहित कर्माचरण असो, शास्त्रनिषिद्ध कर्मांचा परित्याग असो, सकल्पविकल्पात्मक वृत्ती असो अथवा मायिक कर्मवासना असो, त्याच्या ठिकाणी मुळीच नसतात म्हणून तो कोणत्याही कर्माने लिप्त होत नाही.।।४४।।

अथ वासनारहितस्य शिवयोगिनोऽभेदज्ञानं सदृष्टान्तं सूत्रद्वयेन विशेषयति—

घटादिषु पृथग्भूतं यथाकाशं न भिद्यते।
तथोपाधिगतं ब्रह्म नानारूपं न भिद्यते।।४५।।

घटमठादिषु पृथग्भूतं व्योम यथा न भिन्नम्, तथा देवदानवाद्युपाधिगतं ब्रह्म नानारूपमपि न भिद्यत इत्यर्थः।।४५।।

वासनारहित शिवयोग्याच्या अभेदज्ञानाचे दृष्टांतपूर्वक दोन श्लोकांतून निरूपण करतात—घटमठादिउपाधीमुळे आकाश भिन्नभिन्न झालेले दिसत असले तरी वस्तुतः ते तसे नसते. तशाप्रकारे देवदानवादी शरीरोपाधीमुळे नानारूपे दिसत असली

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तरी त्यांच्यातील ब्रह्मतत्त्व वस्तुतः भिन्न नसते. असे हे अभेदज्ञान वासनारहित शिवयोग्याचे स्वरूप असते.।।४५।।

अनश्वरमनिर्देश्यं यथा व्योम प्रकाशते।
तथा ब्रह्मापि चैतन्यमत्र वैशेषिकी कला।।४६।।

व्योम नाशरहितमनुपमं सद् यथा प्रकाशते, तथा ब्रह्मापि प्रकाशते। अत्र ब्रह्मणि चैतन्यं दृक्क्रियारूपं वैशेषिकी कला जडभूतभूताकाशापेक्षया विशेषीभूतकलेति चिदाकाशरूपं ब्रह्मेत्यर्थः। अत्रानश्वरत्वं निरवयवत्वं न नित्यत्वमिति बोध्यम्, जडत्वादिति।।४६।।

आकाश अविनाशी, उपमारहित जसे असते तसे परब्रह्मही अविनाशी आणि उपमातीत असते, तरीपण आकाशात ज्ञानशक्ती नसल्याने ते जडाकाश म्हणविले जाते आणि परब्रह्मात दृक्क्रियारूप कलाशक्ती असल्यामुळे परब्रह्मरूपी महालिंग चिदाकाश या नावाने ओळखले जाते.।।४६।।

अथ चिदाकाशरूपः शिवयोगी पूर्ण इत्युक्त्वा अङ्गालेपस्थलं समापयति—

न देवत्वं न मानुष्यं न तिर्यक्त्वं न चान्यथा।
सर्वाकारत्वमाख्यातं जीवन्मुक्तस्य योगिनः।।४७।।

जीवन्मुक्तस्य योगिनः कर्मपाशरहितत्वात् पुण्यकर्मसिद्धदेवत्वं नास्ति, पुण्यपापमिश्रतोद्भूतमानुष्यमपि नास्ति, पापजन्यतिर्यक्प्राणित्वं च नास्ति, तद्व्यतिरेकेण मायागर्भे मलमूर्च्छितत्वेन विद्यमानतापि नास्ति, किन्तु सर्वत्र परिपूर्णचिदाकाशरूपत्वमाख्यातम् । नित्यपरिपूर्णचित्प्रसादवतः शिवयोगिनः सिद्धान्तप्रसिद्धमायामलबिन्दुतिरोभावकर्मरूपपञ्चपाशबन्धो नास्तीति भावः।।४७।।

इत्यङ्गालेपस्थलम्

चिदाकाशरूप शिवयोगी परिपूर्ण असतो असे सांगून अंगालेपस्थलाची समाप्ती करतात—जीवन्मुक्त शिवयोगी चिदाकाशस्वरूप झाला असल्याने तो कर्मबंधनापासून मुक्त असतो. यामुळे केवळ पुण्याधिक्याने प्राप्त होणारा देवभाव असो, पुण्यपाप मिश्रणाने येणारा मनुष्यभाव असो, केवळ पापकर्मांनी प्राप्त होणारा तिर्यकभाव असो अथवा प्रकृतिगर्भात मूर्च्छित असणारा

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जडभाव असो, त्या शिवयोग्याच्या ठिकाणी यापैकी कोणतीच भावना नसते. त्याऐवजी तो स्वतःच सर्वमय झाला असल्याकारणाने त्याच्यात कसल्याही प्रकारची भेदभावना उरलेली नसते. म्हणून त्याला अंगालेपस्थली म्हणतात.।।४७।।

अथ स्वपराज्ञस्थलम्

अथ—"यथा प्रियया संपरिष्वक्तो न बाह्यं किञ्चन वेद नान्तरम्, एवमेवायं पुरुषः प्राज्ञेनात्मना संपरिष्वक्तो न बाह्यं किञ्चन वेद नान्तरम्" इति बृहदारण्यकश्रुतेः, "स्वयं स्वस्य परो नैव न परः स्वस्य विद्यते। इति धार्येऽपि संलीने तस्मिन् ज्ञेयं न तस्य हि।।" इति सर्वज्ञानोत्तरवचनाच्च अङ्गालेपः शिवयोगी प्राथमिकपञ्चस्थलप्रतिपादित-पाशपञ्चकराहित्येन स्वं परं न जानातीति प्रतिपादयति—

अप्रमेये चिदाकारे ब्रह्मण्यद्वैतवैभवे।
विलीनः किं नु जानाति स्वात्मानं परमेव वा।।४८।।

अपरिमितेऽस्फुरणरूपे "एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म" इति श्रुतेः स्वगत-सजातीयविजातीयभेदशून्ये परब्रह्मणि सामरस्यं गतोऽङ्गालेपः स्वात्मानं वा परं वा जानाति किम्? न जानातीत्यर्थः।।४८।।

'परस्परप्रिय स्त्रीपुरुषाना प्रेमालिगनक्षणी जसा अन्य सर्व गोष्टींचा विसर पडतो, तसे ब्रह्मज्ञानाने आलिंगित आत्म्यालाही स्वपरज्ञान उरत नाही, अशी बृहदारण्य श्रुतीची उक्ती आहे. 'आपण आपणास अन्य नव्हे तसे दुसराही आपणास परका नव्हे. हा भाव दृढ होऊन शिवसामरस्य मिळविलेल्या शिवयोग्याला ज्ञेय असे काही राहात नाही' अशा ह्या सर्वज्ञानोत्तर-वचनानुसार पूर्वोक्त अंगालेपस्थली शिवयोग्याला स्व आणि परज्ञान नसते, हे सांगण्यासाठी स्वपराज्ञस्थलाचे निरूपण करतात—अप्रमेय, ज्ञानमय, स्वगत-सजातीय-विजातीय असे भेद नसलेल्या एकमेव अशा परब्रह्मात ऐक्य पावलेला हा शिवयोगी आपण असो किंवा इतर कोणी असो, त्या परब्रह्माशिवाय भिन्न काही आहे असे कसा समजेल? अर्थात् सर्वत्र परब्रह्मच भरलेले आहे हे तो जाणतो.।।४८।।

अथ अमुमेवार्थं पञ्चभिः सूत्रैर्विशेषयति—

यत्र नास्ति भिदायोगादहंत्वमिति विभ्रमः।
न संयोगो वियोगश्च न ज्ञेयज्ञातृकल्पना।।४९।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

न बन्धो न च मुक्तिश्च न देवाद्यभिमानिता।
न सुखं नैव दुःखं च नाज्ञानं ज्ञानमेव वा।।५०।।
नोत्कृष्टत्वं न हीनत्वं नोपरिष्टान्न चाप्यधः।
न पश्चान्नैव पुरतो न दूरे किञ्चिदन्तरे।।५१।।
सर्वाकारे चिदानन्दे सत्यरूपिणि शाश्वते।
पराकाशमये तस्मिन् परे ब्रह्मणि निर्मले।।५२।।
एकीभावमुपेतानां योगिनां परमात्मनाम्।
परापरपरिज्ञानपरिहासकथा कुतः।।५३।।

यत्र अद्वैतवैभववति ब्रह्मणि योगाद् दृग्द्वयवत् समानसमरसयोगाद् अहं त्वमिति भेदविभ्रमो नास्ति, उभयोरप्यहंप्रत्ययैकत्वविश्रान्तत्वात्। संयोगवियोगौ च न स्तः, ज्ञेयज्ञातृकल्पना च यत्र नास्ति, बन्धो मुक्तिश्च यत्र नास्ति, देवत्वाद्यभिमानोऽपि यत्र नास्ति, न सुखं वैषयिकसुखं यत्र नास्ति, नैव तादृग् दुःखं नेन्द्रियजं ज्ञानं नाज्ञानं न श्रेष्ठत्वं न निकृष्टत्वं नोपरिभागो न चाधोभागो न पश्चाद्भागो न पूर्वभागश्च। तस्मिन्नदूरे किञ्चिद्दूरे सर्वस्वरूपे चिदानन्दसत्यरूपिणि शाश्वते निर्मले पराकाशमये ब्रह्मणि एकीभावं गतानाम् अत एव परब्रह्मस्वरूपाणां शिवयोगिनां परं स्वं च जानामीति परिहासप्रसङ्गः कुतः? व्यापकत्वादेकत्वान्नास्तीत्यर्थः।।४९-५३।।

हाच विषय पाच श्लोकातून विशद करतात—ज्या परब्रह्मस्वरूपात मी वेगळा व परमात्मा वेगळा असा भेदभाव भ्रम नाही. त्यात संयोग नाही, वियोग नाही. त्याला बंध नाही, मोक्ष नाही, देवत्वाचा अभिमान नाही. सुख नाही, दुःख नाही. ज्ञान नाही, अज्ञान नाही. त्याला श्रेष्ठत्व नाही, हीनत्व नाही. उच्चत्व नाही, नीचत्व नाही. मागे नाही, पुढे नाही. दूर नाही, जवळ नाही. परब्रह्मस्वरूप सर्व त्रैलोक्य मिळून एकरूप झाल्यासारखे आहे. ते ज्ञानस्वरूप, सत्यस्वरूप, श्रेष्ठ व निर्दोष आहे. त्या परब्रह्मस्वरूपात सामरस्याने एक झालेल्या परकाय शिवयोग्यास आप-परभाव थट्टेला सुद्धा उरत नाही..।।४९-५३।।

अथेममर्थमेव विशेषयन् स्वपराज्ञस्थलं समापयति—

देशकालानवच्छिन्नतेजोरूपसमाश्रयात्।
स्वपरज्ञानविरहात् स्वपराज्ञस्थलं विदुः।।५४।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तेजोरूपं चित्प्रकाशरूपमित्यर्थः। शिष्टं स्पष्टम्।।५४।।

इति स्वपराज्ञस्थलम्

तोच विषय विशेषत्वाने सांगून स्वपराज्ञस्थलाचे निरूपण संपवितात—देशकालवस्तुमर्यादारहित, ज्ञानप्रकाशरूप परशिवब्रह्मात समरस झालेल्या शिवयोग्याला स्व आणि पराचे ज्ञान उरले नसल्यामुळे त्याला स्वपराज्ञ असे म्हणतात आणि त्याची ती अवस्था स्वपराज्ञस्थल होय.।।५४।।

अथ भावाभावलयस्थलम्

अथ—"निद्रान्तं जागरितान्तं चोभौ यो वा न पश्यति। महान्तं विभुमात्मानं मत्वा धीरो न शोचति।।" इति कठवल्लीश्रुत्यनुसारेण, "भावाभावद्वयातीतं स्वप्नजागरणातिगम्। मृत्युजीवननिर्मुक्तं तत्त्वं तत्त्वविदो विदुः।।" इति योगजागमवचनानुसारेण च तत्स्वपरज्ञानशून्यस्य शिवयोगिनो भावाभावौ न स्त इति निरूपयति—

त्वन्ताहन्ताविनिर्मुक्ते शून्यकल्पे चिदम्बरे।
एकीभूतस्य सिद्धस्य भावाभावकथा कुतः।।५५।।

परिच्छिन्नशरीरविशिष्टत्वमहंभावरहिते शून्यसदृशे चिदाकाशे एकरसीभूतस्य स्वपरज्ञानशून्यस्य सिद्धस्य शिवयोगिनो भावाभावप्रसङ्गः कुतः? नास्तीत्यर्थः।।५५।।

शिवयोग्याला स्व आणि पर याचे ज्ञान नसते, असे सांगितले तर त्याला जडस्थिती प्राप्त होणार नाही का? या संदेहाचे निराकरण 'शिवयोगी जड नाही तर तो चिद्रूप आहे' अशा रीतीने करून त्या चिद्रूप शिवयोग्यात 'मी जाणणारा आणि दुसरा जाणला जाणारा आहे अशी आपपर भावना नसते' तसेच 'भाव-अभाव या दोहोंच्या पलीकडे, स्वप्नजाग्रावस्थेच्या पलीकडे असलेले व जन्ममरणातून पूर्णपणे मुक्त झालेले परशिवतत्त्व, तत्त्वज्ञ धीर-पुरुष जाणतो' या योगजागमाच्या वचनानुसार स्वपराज्ञस्थली शिवयोग्याची अवस्था भाव आणि अभावाच्या पलीकडे गेलेली असल्याने आता त्याच्या भावाभावलयस्थलाचे निरूपण सुरू करतात-शून्यस्वरूप, चिदाकाररूप आणि परिच्छिन्न देहसंबंधाने उत्पन्न होणाऱ्या मी-तूपणाचा भाव नसलेल्या परशिवब्रह्मात समरसभूत झालेल्या स्वपरज्ञानशून्य अशा

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

शिवयोग्याला भाव-अभावाचा प्रसंग कोठे असणार? अर्थात् असत नाही. म्हणजेच शरीरच आत्मा असा परिच्छिन्न भाव असो अथवा शरीर आत्मा नव्हे असा अभाव असो, हे दोन्ही त्याच्याठिकाणी नसतात, हे तात्पर्य.।।५५।।

अथ तद्भावाभावलयस्वरूपं सूत्रद्वयेन प्रतिपादयति—

अहंभावस्य शून्यत्वादभावस्य तथात्मनः।
भावाभावविनिर्मुक्तो जीवन्मुक्तः प्रकाशते।।५६।।

अहंभावराहित्याद् आत्मनः "अयमात्मा ब्रह्म" इति प्रसिद्धपरमात्मनोऽ-भावस्य तथा शून्यत्वाज्जीवन्मुक्तः स्वपरज्ञानशून्यः सन् अमनस्कतन्द्रि-मुद्रास्थितः **शिवयोगी** भावाभावविनिर्मुक्तः, अहमिति परिच्छिन्नदेहाहं-भावः, आत्मा नास्तीत्यभावः, एवंरूपभावाभावशून्यः सन् स्वस्वरूपेण प्रकाशते। सकलदुःखभोक्ता सन् सुप्तिलयगामिमूलाहङ्कारोऽस्तीति भावेन सर्वसाक्षिकत्वेनावस्थात्रयेऽप्यवच्छेदेन भासमानचैतन्यं नास्तीत्यभावेन च विविक्त एव भावाभावरहित इत्यर्थः।।५६।।

ह्या भावाभावाचे लयस्वरूप दोन श्लोकांतून विशद करतात— स्वपरज्ञानशून्य अशा जीवन्मुक्त शिवयोग्याला 'अहम्' अशा परिच्छिन्न देहात अहंभाव असो अथवा आत्मा नाही असा अभाव असो, हे दोन्ही त्याला नसतात. म्हणून तो भावाभावविमुक्त होऊन स्वस्वरूपाने प्रकाशतो.।।५६।।

सुखदुःखादिभावेषु नाभावो भाव एव वा।
विद्यते चित्स्वरूपस्य निर्लेपस्य महात्मनः।।५७।।

उक्तलक्षणमूलाहङ्कारलेपरहितस्य चित्स्वरूपस्य महापुरुषस्य सुखदुःखा-दिसम्बन्धेष्वभावो भाव एव वा न विद्यते, निर्लेपत्वेन व्यापकत्वादित्यर्थः।।५७।।

या पूर्वी वर्णिलेला मूलाहंकारलेपरहित, चित्स्वरूप, निर्लेप, व्यापक अशा महाशिवयोग्याला सुखदुःखादींच्या संबंधाचा भाव असो अथवा संबंध नाही असा अभाव असो हे दोन्हीही असत नाहीत. म्हणून त्याला भावाभावलयस्थली असे म्हणतात.।।५७।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

एवं भावाभावशून्यस्य किमपि न दृश्यत इत्यत्राह—

यस्मिन् ज्योतिषि चिद्रूपे दृश्यते नैव किञ्चन ।
सद्रूपं वाप्यसद्रूपं भावाभावं विमुञ्चतः।।५८।।

स्पष्टम्।।५८।।

अशा भावाभावशून्य असलेल्या शिवयोग्याला काही दिसत नाही असे सांगतात—भावाभावाचा त्याग केलेल्या चैतन्य प्रकाशरूप अशा त्या शिवयोग्याला सद्रूप अथवा असद्रूप असा कोणताही पदार्थ दिसत नाही.।।५८।।

अथ भावाभावलयस्थलं समापयति—

प्रतीयमानौ विद्येते भावाभावौ न कुत्रचित् ।
लिङ्गैक्ये सति यत्तस्माद्भावाभावलयस्थलम्।।५९।।

प्रकाशमानौ भावाभावौ शिवलिङ्गैकरसीभूतमहापुरुषविषये क्वचिदपि यस्मात् कारणान्न विद्येते न स्तः, तस्माद् भावाभावलयस्थलमित्युक्तमित्यर्थः।।५९।।

इति भावाभावलयस्थलम्

आता भावाभावलयस्थलाची समाप्ती करतात—शिवलिंगात समरस झालेल्या त्या महापुरुषाला बाह्य प्रपचात दिसणारे भावाभाव कोठेही दिसत नसल्यामुळे शिवयोग्याच्या त्या अवस्थेला भावाभावलयस्थल असे म्हणतात.।।५९।।

अथ ज्ञानशून्यस्थलम्

अथ—"अप अप्स्वग्निमग्नौ वायुं वायौ व्योम्नि व्योम लक्षयेत् । एवमन्तर्गतं चित्तं पुरुषे प्रतिमुच्यते" इति मैत्रेयश्रुत्यनुसारेण, "सर्वशून्यं निराभासं सामरस्यं तथा भवेत्। घृते घृतं यथा न्यस्तं क्षीरे क्षीरं यथैव च।।" इति सर्वज्ञानोत्तरवचनानुसारेण च स्वपरज्ञानशून्यत्वेन भावाभावलयसम्पन्नस्य शिवयोगिनोऽभेदसुलभज्ञानशून्यस्थलं सूत्रत्रयेण निरूपयति—

परापरसमापेक्षभावाभावविवेचनम्।
ज्ञानं ब्रह्मणि तन्नास्ति ज्ञानशून्यस्थलं विदुः।।६०।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

परापरज्ञानाभिलाषयुक्तभावाभावविवेकवज्ज्ञानं ब्रह्मणि परब्रह्मस्वरूपे भावाभावलयसंपन्ने शिवयोगिनि नास्ति, तद् ज्ञानशून्यस्थलमिति विदुः, जानन्तीत्यर्थः।।६०।।

'जसे पाण्यामध्ये पाणी, अग्नीमध्ये अग्नी, वाऱ्यामध्ये वारा आणि आकाशामध्ये आकाश लय पावतात, तसे परब्रह्मात ज्याचे मन विलय पावले आहे असा पुरुष मुक्त होतो. असे मैत्रेय श्रुतीचे वचन आहे. आणि 'जसे तुपामध्ये तूप मिसळल्यास अथवा दुधामध्ये दूध ओतल्यास ते एकरूप होतात, तसे सर्ववस्तुशून्य व निराभास असे सामरस्यही अशाच प्रकारे होते', असे सर्वज्ञानोत्तराचे वचन आहे. यात वर्णिल्यानुसार स्वपरज्ञानशून्य आणि भावाभावशून्य झालेल्या शिवयोग्याच्या अभेदसुलभ ज्ञानशून्यस्थलाचे वर्णन तीन श्लोकात करतात —परस्पर सापेक्ष, अस्तिनास्तिरूप भावाभाव विवेचनयुक्त असे जे भेदज्ञान ते परब्रह्मस्वरूप शिवयोग्यात नसते. अशा भेदज्ञानशून्यतेचे प्रतिपादन करणाऱ्या स्थलाला शिवज्ञानी लोक ज्ञानशून्यस्थल असे म्हणतात. ज्ञानशून्य म्हणजे भेदज्ञानशून्य असा अर्थ होय.।।६०।।

तर्हि स कथं तिष्ठतीत्यत्राह—

जले जलमिव न्यस्तं वह्नौ वह्निरिवार्पितम्।
परे ब्रह्मणि लीनात्मा विभागेन न दृश्यते।।६१।।

जलमिश्रजलमिव वह्निस्थापितवह्निरिव परब्रह्मस्वरूपमहालिङ्गे लयीभूतभावाभावप्रयत्नवान् शिवयोगी भिन्नभावेन न दृश्यते, न तिष्ठतीत्यर्थः, ज्ञानशून्यत्वादिति । अत्र द्वैतज्ञानशून्यशिवाद्वैते जलवह्निदृष्टान्त आप्यतैजसस्थलरूपदृग्युगैक्यवत् समानसमरसरूपः, न तु स्वरूपहानिवृद्धिकरः, समुद्रजलवदिति।।६१।।

त्या ज्ञानशून्य शिवयोग्याची स्थिती कशी असते? तर— पाण्यामध्ये मिसळलेले पाणी, अग्नीमध्ये घातलेला अग्नी यांचे निराळे अस्तित्व जसे दिसत नाही, तसे परब्रह्मस्वरूप महालिंगात भावाभावरहित होऊन समरस झालेल्या शिवयोग्याचे त्याहून वेगळे अस्तित्व उरत नाही. लौकिक दृष्टांतात समरस झालेल्या वस्तूंमध्ये हानिवृद्धी दिसून येते तशी स्थिती परशिवाशी ऐक्य पावलेल्या शिवयोग्याची नसते. हानिवृद्धीविना तो परब्रह्माशी समान समरसरूपाने ऐक्य पावतो.।।६१।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सर्वात्मनि परे तत्त्वे भेदशङ्काविवर्जिते।
ज्ञात्रादिव्यवहारोत्थं कुतो ज्ञानं विभाव्यते।।६२।।

स्पष्टम्।।६२।।

भेदशंकावर्जित सकलचराचरप्रपंचरूप अशा परतत्त्वात ज्ञातृज्ञेयादी व्यवहाराने उत्पन्न होणारे भेदज्ञान कसे दिसेल बरे? अर्थात् दिसत नाही.।।६२।।

अथ तदेव सूत्रत्रयेण विशेषयति—

निर्विकारं निराकारं नित्यं सीमाविवर्जितम्।
व्योमवत् परमं ब्रह्म निर्विकल्पतया स्थितम्।।६३।।
न पृथ्व्यादीनि भूतानि न ग्रहा नैव तारकाः।
न देवा न मनुष्याश्च न तिर्यञ्चो न चापरे।।६४।।
तस्मिन् केवलचिन्मात्रसत्तानन्दैकलक्षणे।
त्वन्ताहन्तादिसंरूढं विज्ञानं केन भाव्यते।।६५।।

मृदादिवद्विकाररहितं नीलपीताद्याकाररहितम् अवधिरहितं परं ब्रह्म व्योमवन्निर्विकल्पतया भेदराहित्येन स्थितं तिष्ठति। अत एव भिन्नतया प्रतीयमानभूम्यादिभूतानि न, आदित्यादिनवग्रहाश्च न, अश्विन्यादितारकाश्च न, विष्ण्वादिदेवाश्च न, मनुष्याश्च न, तिर्यक्प्राणिनश्च न, परे च न । तस्मात् केवलसच्चिदानन्दस्वरूपे ब्रह्मणि त्वमहमादिकव्यवहारोत्थविशेषज्ञानं केन भाव्यते?न केनापि भाव्यत इत्यर्थः।।६३-६५।।

आता तोच आशय तीन श्लोकांत सांगतात— विकाररहित, हेय असे आकाररहित, नित्य सीमातीत असे परब्रह्म आकाशाप्रमाणे निर्विकल्प होऊन असते. स्थूल अशी पृथिव्यादिभूते असोत, सूर्यादिग्रह असोत, अश्विन्यादि नक्षत्रे असोत, देवदेवता असोत, मनुष्य असोत, पशुपक्षी असोत, अशा कोणत्याही वस्तू त्या परब्रह्मात राहात नाहीत. केवळ सच्चिदानंदस्वरूप परब्रह्मात मी-तू पणाने होणारे भेदज्ञान कोणापासून होईल? अर्थात् त्या ठिकाणी मी-तूपणाचा भेदच नसतो त्यामुळे भेदज्ञान संभवत नाही.।।६३-६४-६५।।

अथ—"एतज्ज्ञेयं नित्यमेवात्मसंस्थं नातः परं वेदितव्यं च किञ्चित्" इति श्वेताश्वतरश्रुत्यनुसारेण, "केवलं ज्ञेयमित्युक्तं वेदितव्यं च किञ्चन"

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इति देवीकालोत्तरवचनानुसारेण च स्वस्वरूपज्ञानिनस्त्रिपुटीमयप्रपञ्चज्ञानं नास्तीति पञ्चभिः सूत्रैः प्रतिपादयति—

ज्ञेयाभावाद्विशेषेण शून्यकल्पं विभाव्यते।
ज्ञातृज्ञेयादिभिः शून्यं शून्यं ज्ञानादिभिर्गुणैः।।६६।।
आदावन्ते च मध्ये च शून्यं सर्वत्र सर्वदा।
द्वितीयेन पदार्थेन शून्यं शून्यं विभाव्यते।।६७।।

ज्ञेयाभावात् सकलवस्तुविषयकज्ञानाभावेन ज्ञेयपदार्थशून्यत्वात्, "संविदेव भगवती विषयसत्त्वोपगमे शरणम्" इति प्राभाकरैरप्यङ्गीकृतत्वात्, शून्यकल्पं ज्ञानमिति शेषः, विभाव्यते। तस्माद् ज्ञातृज्ञेयादित्रिपुटीमयप्रपञ्चशून्यं ज्ञानादिभिर्ज्ञानेच्छादिगुणैश्च शून्यम् आद्यन्तमध्येषु सर्वत्र सर्वदा शून्यम्। केनेत्यत्र द्वितीयेन पदार्थेन शून्यमिति। तस्मात् शून्यं शून्यज्ञानं विभाव्यते ।।६६-६७।।

'आत्मवस्तू ही एकच जाणण्यास योग्य अशी वस्तू आहे. त्यापेक्षा भिन्न काहीही नाही,' अशा श्वेताश्वतरवचनानुसार व 'केवल परमात्माच ज्ञेय होय असे जाणावे, अन्य काही नाही,' या देविकालोत्तर वचनानुसार स्वस्वरूपज्ञानसंपन्न अशा शिवयोग्याला त्रिपुटीमय प्रपंचाचे ज्ञान असत नाही, असे पाच श्लोकात प्रतिपादन करतात—जाणून घेण्यास योग्य वस्तू असली तरच ज्ञानाचे अस्तित्व. ज्ञेय अशी दुसरी वस्तू नसल्यास ज्ञान शून्यवत् होते. म्हणून ते ज्ञान ज्ञातृज्ञेयादि-त्रिपुटीमय प्रपंचशून्य, इच्छा ज्ञानादिगुणशून्य, आदिमध्यान्तशून्य, सर्वदिक्कालशून्य असे असते. ते का तर दुसरा कोणताही ज्ञेय पदार्थ नसल्यामुळे त्या ज्ञानाला शून्यज्ञान असे म्हणतात.।।६६-६७।।

अथ तत्किमित्यत्राह—

केवलं सच्चिदानन्दप्रकाशाद्वयलक्षणम् ।
शून्यकल्पं पराकाशं परब्रह्म प्रकाशते।।६८।।

केवलसच्चिदानन्दप्रकाशाद्वितीयशून्यचिह्नम्, अत एव शून्यसदृशं परब्रह्म महाकाशरूपं सत् प्रकाशत इत्यर्थः।।६८।।

मग ते काय आहे? असे विचारल्यास उत्तर असे की, केवळ सच्चिदानंदप्रकाश, अद्वयस्वरूप महाकाश परब्रह्म शून्यसदृश होऊन प्रकाशते.।।६८।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अथैवंरूपे ब्रह्मणि तादात्म्यापन्नस्य विकल्पज्ञानोत्पत्तिर्न सम्भवतीत्यत्राह—

शून्यज्ञानादिसङ्कल्पे शून्यसर्वार्थसाधने।
ज्योतिर्लिङ्गे चिदाकारे स्वप्रकाशे निरुत्तरे।
एकीभावमुपेतस्य कथं ज्ञानस्य सम्भवः।।६९।।

शून्यज्ञानेच्छादिसङ्कल्पवति शून्यसर्वार्थसाधने स्वस्मादुत्तररहिते परमशिवलिङ्गज्योतीरूपचिदाकारस्वप्रकाशे एकीभावं गतस्य शिवयोगिनो ज्ञानस्य सम्भवो वृत्तिज्ञानाविर्भावः कथं स्यात्? न कथञ्चिदपीत्यर्थः ।।६९।।

अशा परब्रह्मामध्ये तादात्म्य पावलेल्या शिवयोग्याला विकल्पज्ञान नसते असे सांगतात—ज्ञान-इच्छा-संकल्परहित, धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष या अर्थसाधने पासून मुक्त, एकैक, चित्स्वरूप, स्वयंप्रकाश ज्योतिर्लिंगात ऐक्य पावलेल्या शिवयोग्याला अन्य वस्तूचे ज्ञान कसे होऊ शकेल? अर्थात् स्वस्वरूपज्ञानाशिवाय अन्य कोणत्याही ज्ञानाला अवकाशच नाही.।।६९।।

अथ—"नेति नेत्यस्थूलमनण्वह्रस्वदीर्घप्लुतम्" इति बृहदारण्यश्रुत्यनुसारेण, 'अनाख्ये तु निरालम्बे ह्यग्राह्ये भाववर्जिते। निस्तत्त्वे योजितो मुक्त इति शास्त्रस्य निश्चयः।।" इति निश्वासकारिकातन्त्रानुसारेण, "पशुपशुपतियोगो दृग्युगैक्यप्रयोगो गगनगगनदेशः सिन्धुसिन्धुप्रदेशः। समसमरसरूपो भिन्नभिन्नस्वरूपो निशि समरसकान्तावल्लभाश्लेषकान्तः।।" इति त्रयीतन्त्रयुक्तियुक्ताभियुक्तोक्त्यनुसारेण च परमुक्तलक्षणमुक्त्वा ज्ञानशून्यस्थलं समापयति—

यस्य कार्यदशा नास्ति कारणत्वमथापि वा।
शेषत्वं नैव शेषित्वं स मुक्तः पर उच्यते।।७०।।

यस्य सर्वं नेति नेति निवार्य तत्त्वातीतस्य स्वस्वरूपसम्पन्नस्य कार्यावस्था नास्ति, अथापि वा तन्न चेत्कारणत्वं च नास्ति, यस्य परब्रह्मपरशिवपरलिङ्गादिपर्यायनामोच्चारवतः स्वस्वरूपसम्पन्नस्य शेषत्वम् अवशेषत्वं शेषित्वं शेषवत्त्वं च नास्ति, स नित्यपरिपूर्णः सच्चिदानन्दस्वरूपपरमुक्त एवेत्युच्यत इत्यर्थः। अयं भावः— "अनीशश्चात्मा बध्यते भोक्तृभावाद् ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः" इति श्वेताश्वतरश्रुत्या, "पाशबद्धो भवेज्जीवः पाशमुक्तः परः शिवः" इति वीरागमवचनेन, देशिकोपदेशेन, स्वानुभवेन च मायामलबिन्दुतिरोभावकर्मपाशविमुक्तपरशिव-

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

शब्दवाच्यस्वस्वरूपाभिव्यक्तिरेव परमुक्तिरिति। एतल्लिङ्गत्रयं शिवलिङ्गैक्यस्याङ्गत्रयस्य क्रमेण संयोजनीयम्।।७०।।

इति ज्ञानशून्यस्थलम्

परमुक्ती मिळविलेला शिवयोगी परब्रह्मस्वरूप झालेला असतो. ते परब्रह्म वाणी आणि मनाला अगोचर असल्यामुळे त्याचे वर्णन श्रुती 'नेति नेति' अशा नकारदर्शक शब्दांनी करतात. ते परब्रह्म स्थूल नाही, अणू नाही. ह्रस्व नाही, दीर्घ नाही. आणि प्लुतही नाही', असे परब्रह्माचे स्वरूप बृहदारण्यश्रुतीत वर्णिले आहे. 'अनिर्वाच्य, निरालंब, अग्राह्य; प्रमाणातीत, निस्तत्त्वरूप अशा परशिव ब्रह्मात समरसभावाने युक्त असलेला पुरुष मुक्त होतो असा शास्त्राचा निश्चय आहे' असे निश्वासकारिकेचे वचन आहे. तसेच 'पशु-पशुपतियोग, उभय दृष्टीचा योग, गगनगगनाचा योग, सिंधुसिंधूचा योग, स्त्रीपुरुषयोग, हे सर्व योग समरस ऐक्याचेच सूचन करतात' अशी अभियुक्तांची (अनुभवी विद्वानांची) उक्ती आहे. या प्रकारे श्रुती, तंत्र आणि युक्तियुक्त अनुभवोक्तीच्या अनुसार परमुक्ताचे लक्षण सांगून ज्ञानशून्य स्थलाचे निरूपण संपवितात—जो स्वतः शिवाय दुसरी वस्तू न पाहाणारा, परब्रह्म, परलिंगादी पर्यायिनावे असलेला, स्वस्वरूपसंपन्न, सकलतत्त्वातीत अशा शिवयोग्याला कार्यरूप अवस्था असो, की कारणरूप अवस्था असो, ती असत नाही. तो नित्य परिपूर्ण असल्याने त्याच्या ठिकाणी शेषशेषीभाव असत नाही. अशा त्याला सच्चिदानदस्वरूप परमुक्त असे म्हणतात. तात्पर्य असे की 'जीवामध्ये भोक्तृत्वाचा भाव आल्यास तो बद्ध होतो. परमात्म्याला जाणून तो परमुक्त होतो.' असे श्वेताश्वतर श्रुतीचे वचन आहे. आणि 'पाशबद्धतेने जीव होतो व पाशमुक्त झाल्यावर तो परमशिव होतो,' अशी वीरागमाचीही उक्ती आहे. म्हणून गुरूच्या उपदेशाने आणि स्वानुभवाने माया, मल, बिन्दू, तिरोभाव कर्मरूपपाशापासून मुक्त झालेल्या जीवाची शिवरूप स्वस्वरूपाभिव्यक्ती हीच मुक्ती होय असे समजावे.।।७०।।

अथैतच्छास्त्रसंग्रहकृच्छिवाचार्यः स्वशिष्यप्रशिष्यान् प्रत्येतच्छास्त्रोपरमं सूचयन् रेणुकगणेश्वरो निरुत्तरः सन् तूष्णीं स्थित इति सूत्रद्वयेन कथयति—

एतावदुक्त्वा परमप्रबोधमद्वैतमानन्दशिवप्रकाशम्।
देव्यै पुरा भाषितमीश्वरेण तूष्णीमभूद् ध्यानपरो गणेन्द्रः।।७१।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

गणेन्द्रो रेणुकगणेश्वरः परमेश्वरेण देव्यै पार्वत्यै पुरा रहस्यं सद्भाषितं शिवानन्दप्रकाशकं शिवाद्वैतरूपं परमप्रबोधम् उपक्रमोपसंहारमध्यपरामर्शेष्वपि स्वस्वरूपप्रकाशकपिण्डादिवृत्तिज्ञानशून्यान्तवीरशैवशास्त्रमेतावदनेन प्रकारेणोक्त्वा कुम्भसम्भवायोपदिश्य स्वस्वरूपध्यानासक्तः सन् तूष्णीमभूद् मौनमुद्रावलम्बी बभूवेत्यर्थः।।७१।।

ह्या शास्त्राचे संग्रहकर्ते श्री शिवयोगी शिवाचार्य आपल्या शिष्यप्रशिष्यांना या शास्त्राच्या परिसमाप्तीची सूचना देण्यासाठी श्रीरेणुकगणेश्वर मौन धारण करून राहिले, असे दोन श्लोकात सागतात—पूर्वी परमेश्वराने पार्वतीला रहस्यमयतेने उपदेशिलेले शिवानंदप्रकाशक, स्वस्वरूपसाधक, शिवाद्वैतरूप असे पिंडस्थलापासून ज्ञानशून्यस्थलापर्यंतचे वीरशैव शास्त्र श्रीमद्रेणुकाचार्य अगस्त्यमहर्षींना सागून स्वस्वरूप ध्यानासक्त होऊन मौन राहिले.।।७१।।

एवमुक्त्वा समासीनं शिवयोगपरायणम्।
रेणुकं तं समालोक्य बभाषे प्राञ्जलिर्मुनिः।।७२।।

बभाषे स्तुतिमारब्धवानित्यर्थः। शिष्टं स्पष्टम्।।७२।।

अशा रीतीने शिवयोगध्यानात बसलेल्या रेणुकाचार्यांना पाहून अगस्त्यमहर्षी हात जोडून त्याना विनती करतात.।।७२।।

अथ सप्तभिः सूत्रैः श्रीरेणुकस्तुतिं करोत्यगस्त्य उवाचेति—

शिवयोगविशेषज्ञ शिवज्ञानमहोदधे।
समस्तवेदशास्त्रादिव्यवहारधुरन्धर।।७३।।
आलोकमात्रनिर्धूतसर्वसंसारबन्धन।
स्वच्छन्दचरितोल्लास स्वप्रकाशात्मवच्छिव।।७४।।
अवतीर्णमिदं शास्त्रमनवद्यं त्वदाननात्।
श्रुत्वा मे मोदते चित्तं ज्योतिः पश्ये शिवाभिधम्।।७५।।

शिवध्यानयोगविशेषज्ञ, शिवज्ञानस्य समुद्र, समस्तवेदागमपुराणादिशास्त्रव्यवहारभारवाहक, दर्शनमात्रनिवारितसमस्तजनसंसारबन्ध, स्वेच्छाचाराविर्भाव, स्वप्रकाशेनैव चैतन्यवच्छिवस्वरूप, भो गणेन्द्र, त्वन्मुखादाविर्भूतं दोषरहितमिदं वीरशैवशास्त्रं श्रुत्वा मे मनो नन्दति शिवप्रकाशं पश्ये।।७३-७५।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

आता अगस्त्यमहर्षींनी केलेल्या रेणुकाचार्यस्तुतीचे सात श्लोकांत वर्णन करतात—शिवयोगाचे रहस्य विशेषत्वाने जाणलेला, शिवज्ञानाचा सागर, सकलवेदागमपुराणशास्त्रव्यवहारात प्रवीण, केवळ दृष्टिक्षेपाने सकलसंसारबंधनाचे निवारण करणारा, स्वेच्छाचाराचा उल्हास असणारा, स्वप्रकाशस्वरूप, शिवस्वरूप, अशा हे गणश्रेष्ठा, आपल्या मुखातून प्रकट झालेले हे वीरशैवशास्त्र ऐकून माझे मन आनंदित झाले. आणि त्यायोगाने मी ज्योतिस्वरूप शिवाचे दर्शन घेत आहे.।।७३-७४-७५।।

अद्य मे सफलं जन्म गतो मे चित्तविभ्रमः।
संजाता पाशविच्छित्तिस्तपांसि फलितानि मे।।७६।।

'अद्य मे' इति सर्वत्र सम्बन्धः।।७६।।

आज माझा जन्म सफल झाला. माझ्या मनाची भ्रांती फिटली, माझे सर्व पाश तुटून गेले आणि माझी तपे सफल झाली.।।७६।।

इदानीमेव मे जातं मुनिराजोत्तमोत्तमम्।
इतः परं मया नास्ति सदृशो भुवनत्रये।।७७।।

मुनीश्वराणाम् ऋषिश्रेष्ठानां उत्तमोत्तमत्वमित्यर्थः, धर्मधर्मिणोरभेदात्। शिष्टं स्पष्टम्।।७७।।

ऋषिगणांत आज मला श्रेष्ठत्व प्राप्त झाले. यापुढे तिन्ही लोकांत माझी बरोबरी करणारा कोणी नाही.।।७७।।

शास्त्रं तव मुखोद्गीर्णं शिवाद्वैतपरम्परम् ।
मां विना कस्य लोकेषु श्रोतुमस्ति तपः शुभम्।।७८।।
तपसां परिपाकेन शङ्करस्य प्रसादतः।
आगतस्त्वं महाभाग मां कृतार्थयितुं गिरा।।७९।।

उद्गीर्णं बहिर्निर्गतमित्यर्थः। शास्त्रं वीरशैवशास्त्रम्। महाभाग श्रेष्ठेत्यर्थः। शिष्टं स्पष्टम्।।७८-७९।।

आपल्या मुखातून निघालेले हे शिवाद्वैतशास्त्र ऐकण्यासाठी मोठ्या तपश्चर्येची गरज असते. या जगात अशा तपश्चर्येच्या परिपक्वतेमुळे आणि शिवाच्या अनुग्रहाने मला उपदेश करून

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कृतार्थ करण्यासाठी आपण अवतार घेऊन आला आहात.।।७८-७९।।

अथ संग्रहकृच्छिवाचार्यः कुम्भसम्भवं श्रीरेणुकः स्तुतिं कृतवानित्याह—

इति स्तुवन्तं विनयादगस्त्यं मुनिपुङ्गवम्।
आलोक्य करुणादृष्ट्या बभाषे स गणेश्वरः।।८०।।

विनयाद् भक्त्येत्यर्थः। शिष्टं स्पष्टम्।।८०।।

आता श्री रेणुकाचार्यांनी अगस्त्यमहर्षींच्या केलेल्या स्तुतीचे वर्णन करतात—भक्तीने स्तुती करणाऱ्या अगस्त्यमहर्षींकडे करुणामय दृष्टीने पाहून श्री रेणुकगणेश्वर असे म्हणाले,।।८०।।

अगस्त्य मुनिशार्दूल तपःसिद्धमनोरथ।
त्वां विना शिवशास्त्रस्य कः श्रोतुमधिकारवान्।।८१।।

"एकोत्तरशतं प्रोक्ता दीक्षाभेदा मया पुरा। दीक्षितस्तासु गुरुणा भक्तोऽस्मिन्नधिकारवान्।।" इति योगजागमवचनाद् अस्मिन् शास्त्रे त्वां विना अधिकारी नास्तीत्यर्थः।।८१।।

तपःसामर्थ्याने मनोरथ पूर्ण झालेल्या हे अगस्त्यमुनिश्रेष्ठा, तुझ्याशिवाय हे शिवशास्त्र ऐकण्याचा अधिकार दुसऱ्या कोणाला आहे? अर्थात् तू एकटाच त्याचा अधिकारी आहेस.।।८१।।

पात्रं शिवप्रसादस्य भवानेको न चापरः।
इति निश्चित्य कथितं मया ते तन्त्रमीदृशम्।।८२।।

ईदृशं वीरशैवतन्त्रमित्यर्थः।।८२।।

म्हणून शिवाच्या अनुग्रहास तूच एकटा पात्र आहेस, तुझ्याशिवाय दुसरा कोणी नाही, असा मनाचा निश्चय झाल्यामुळे मी ह्या शिवशास्त्राचा उपदेश तुला केला.।।८२।।

स्थाप्यतां सर्वलोकेषु तन्त्रमेतत् त्वया मुने।
ईदृशं शिवबोधस्य साधनं नास्ति कुत्रचित्।।८३।।

स्पष्टम् ।।८३।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

हे मुनिश्रेष्ठा, शिवशास्त्राच्या उत्पत्तीस या शास्त्राशिवाय दुसरे कोणतेही साधन नाही. म्हणून सर्वोत्तम अशा ह्या शैवतंत्राची सकल लोकांमध्ये तू स्थापना कर.।।८३।।

रहस्यमेतत् सर्वज्ञः सर्वानुग्राहकः शिवः।
अवादीत् सर्वलोकानां सिद्धये पार्वतीपतिः।।८४।।

सिद्धये भोगमोक्षसिद्धय इत्यर्थः। एतद्रहस्यं वीरशैवरहस्यमित्यर्थः। शिष्टं स्पष्टम्।।८४।।

सर्वज्ञ, सर्वलोकानुग्राहक अशा परमेश्वराने, जगातील सर्व लोकांना भोग आणि मोक्षाची प्राप्ती व्हावी या हेतूने, दयाळू होऊन या रहस्यमय वीरशैवशास्त्राचा उपदेश पार्वतीला केला.।।८४।।

तदिदं शिवसिद्धान्तसाराणामुत्तमोत्तमम्।
वेदवेदान्तसर्वस्वं विद्याचारप्रवर्तकम्।।८५।।
वीरमाहेश्वरग्राह्यं शिवाद्वैतप्रकाशकम्।
परीक्षितेभ्यो दातव्यं शिष्येभ्यो नान्यथा क्वचित्।।८६।।

तदिदं वीरशैवषट्स्थलशिवयोगमार्गप्रतिपादकं तदिदं शास्त्रं कामिकादि-वातुलान्ताष्टाविंशतिदिव्यागमसाराणामुत्तमोत्तमं चतुर्वेदद्वात्रिंशदुपनिषत्सर्वस्वं ज्ञानक्रियाप्रकाशकं वीरमाहेश्वरैरङ्गीकरणीयं परशिवाद्वैतप्रतिपादकमिदं शास्त्रम् "तावत्यः संहिता अन्तेवासिने ब्रूयान्नासंवत्सरवासिने न प्रवक्तयिताचार्यः" इत्यैतरेयश्रुतेः, "भक्तस्यैवात्मशिष्यस्य विरक्तस्य महामतेः। गुरुणा ज्ञानिना देयमानन्दरसनिर्भरम्।।" इति योगजागमवचनाच्च परीक्षितेभ्यः शिष्येभ्यो देयम्, अनधिकारिणे न ब्रूयादिति भावः।।८५-८६।।

कामिकादिवातुलान्त अठ्ठावीस दिव्यागमांचे सारससर्वस्व असलेले, चारी वेद व बत्तीस उपनिषदांचे सार असे, ज्ञान आणि क्रिया या दोहोंचे निरूपण करणारे, वीरमाहेश्वरांनी अंगीकारलेले, परशिवाद्वैताचे प्रतिपादन करणारे, वीरशैव षट्स्थल शिवयोगमार्गाचे निरूपण करणारे हे शास्त्र, परीक्षा घेऊन योग्य ठरलेल्या शिष्याला शिकवावे. अन्य कोणाला याचा उपदेश करू नये.।।८५-८६।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

एतच्छ्रवणमात्रेण सर्वेषां पापसंक्षयः।
अवतीर्णं मया भूमौ शास्त्रस्यास्य प्रवृत्तये।
प्रवर्तय शिवाद्वैतं त्वमपि ज्ञानमीदृशम्।।८७।।

इति श्रीमत्षट्स्थलब्रह्मिणा शिवयोगिनाम्ना रेणुकाचार्येण विरचिते वीरशैवधर्मनिर्णये सिद्धान्तशिखामणौ शिवैक्यस्थलविषयनवविध-लिङ्गप्रसङ्गो नाम विंशः परिच्छेदः समाप्तः।।

स्पष्टम्।।८७।।

इति श्रीमत्पदवाक्यप्रमाणपारावारधुरीणश्रीमरितोण्टदार्येण विरचितायां तत्त्वं-प्रदीपिकाख्यायां सिद्धान्तशिखामणिव्याख्यायां शिवैक्यस्थलविषय-नवविधलिङ्गप्रसङ्गो नाम विंशः परिच्छेदः समाप्तः।।

या शास्त्राचे श्रवण केल्याने सर्वांच्या पापाचा नाश होतो. म्हणून शिवाच्या आज्ञेने भूलोकात ह्या वीरशैवशास्त्राचे प्रवर्तन करण्यासाठी अर्थात् स्थापनेसाठी मी अवतार घेऊन आलो आहे. हे अगस्त्या, तूही या शिवाद्वैत शास्त्राच्या रहस्यज्ञानाचा जगामध्ये प्रचार कर.।।८७।।

अशारीतीने सिद्धान्तशिखामणी ग्रंथातील शिवैक्यस्थलातर्गत
नऊ प्रकारच्या लिंगाचे वर्णन करणारा
हा विसावा परिच्छेद संपला.
विसावा परिच्छेद समाप्त।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

एकविंशः परिच्छेदः

विभीषणाभीष्टदानम्

अथ रेवणसिद्धेश्वरेण कुम्भसम्भवाय पिण्डादिवृत्तिज्ञानशून्यान्तोपदिष्टं वीरशैवसंग्रहं शिवयोगिसंज्ञकाचार्यः स्वशिष्यप्रशिष्येषु प्रख्यातं कृत्वा अनन्तरं रेणुकविभीषणसंवादं रेवणसिद्धेश्वरैक्यं च पञ्चपञ्चाशत्सूत्रैः संगृह्याह—

इत्युक्त्वा पश्यतस्तस्य पुरस्तादेव रेणुकः।
अन्तर्दधे महादेवं चिन्तयन्नन्तरात्मना।।१।।

स्पष्टम्।।१।।

श्री रेणुकाचार्यांनी अगस्त्य महर्षींना पिंडस्थला पासून वृत्तिज्ञानशून्यापर्यन्त एकशेएक स्थलाचे केलेले निरूपण सांगून ग्रथकार शिवयोगी शिवाचार्य आता रेणुक बिभीषणांच्या संवादाचे वर्णन पुढील श्लोकातून करतात—श्री रेणुक अशारीतीने अगस्त्यमुनींना उपदेश करून अंतःकरणात परमात्म्याचे स्मरण करीत, अगस्त्यमुनी त्यांच्याकडे पाहात असतानाच त्याच्या समोरून अतर्धान पावले.।।१।।

य इदं शिवसिद्धान्तं वीरशैवमतं परम्।
शृणोति शुद्धमनसा स याति परमां गतिम्।।२।।

यः पुरुषो वीरशैवमतमङ्गलिङ्गषट्स्थलरूपं सद् वीरशैवधर्मनिर्णयसम्मतं परं सर्वोत्कृष्टम् इदं शिवसिद्धान्तं श्रुतिसम्मतमेतच्छिवसिद्धान्तं शुद्धमनसा निर्मलचित्तेन शृणोति, स परमां गतिं परमुक्तिं यातीत्यर्थः।।२।।

अंगलिंगषट्स्थलरूप सर्वोत्कृष्ट असा हा वीरशैवांचा शिवसिद्धांत जो कोणी परिशुद्ध मनाने श्रवण करील त्याला परमुक्ती प्राप्त होईल.।।२।।

अथान्तर्हितो रेणुको लङ्कां प्रविष्टवानित्याह—

स्वच्छन्दाचाररसिकः स्वेच्छानिर्मितविग्रहः।
आससाद पुरीं लङ्कां रेणुको गणनायकः।।३।।

निर्मलस्वेच्छाचाररसिक इत्यर्थः। शिष्टं स्पष्टम्।।३।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

आता अंतर्धान पावलेले श्री रेणुकाचार्य लंकेत प्रविष्ट झाले असे सांगतात—स्वच्छंदाचाराची आवड असणारे, आपल्या इच्छेप्रमाणे देहधारण करण्याचे सामर्थ्य असणारे, गणामध्ये श्रेष्ठ असे श्रीरेणुक लंकानगरीस गेले.।।३।।

तमागतं महाभागं सर्वागमविशारदम्।
विभीषणः समालोक्य गेहं प्रावेशयन्निजम्।।४।।

महाभागः श्रेष्ठः सर्वागमविशारदः कामिकादिवातुलान्तदिव्यागमकुशल इत्यर्थः। शिष्टं स्पष्टम्।।४।।

कामिकादिवातुलान्त दिव्यागमांचे विशेषज्ञ, महामहिमाशाली असे श्री रेणुकाचार्य आलेले पाहून ब्रिभीषणाने आपल्या राजवाड्यात त्यांचे स्वागत केले.।।४।।

भद्रासने निजे रम्ये निवेश्य गणनायकम्।
अर्घ्यपाद्यादिभिः सर्वैरुपचारैरपूजयत्।।५।।

निजे भद्रासने स्वकीयसिंहासन इत्यर्थः। शिष्टं स्पष्टम्।।५।।

गणनायक अशा श्री रेणुकांना आपल्या रमणीय सिंहासनावर बसवून बिभीषणाने अर्घ्यपाद्यादी उपचारांनी त्यांची यथाविधी पादपूजा केली.।।५।।

पूजितेन प्रसन्नेन रेणुकेन निरूपितः।
निषसाद तदभ्याशे स निजासनमाश्रितः।।६।।

स विभीषणः पूजाप्रसन्नेन श्रीरेणुकेनाज्ञापितः सन् तत्समीपे स्वकीयासनान्तरमाश्रितवान् सन् निषसाद उपविष्टवानित्यर्थः।।६।।

पूजेने प्रसन्न झालेल्या श्री रेणुकाचार्यांच्या आज्ञेप्रमाणे बिभीषण समीप असलेल्या दुसऱ्या आसनावर बसला.।।६।।

अथ विभीषणः—

आबभाषे गणेन्द्रं तं कृताञ्जलि विभीषणः।
मानुषाकारसम्पन्नं साक्षाच्छिवमिवापरम्।।७।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

विभीषणो मानुषाकृतिं साक्षादपरं शिवमिव स्थितमिति शेषः। तं गणेन्द्रं रेणुकं कृताञ्जलि कृतमञ्जलिपुटं यस्मिन् कर्मणि यथा भवति तथा आबभाषे विज्ञापनवचनं प्रयुक्तवानित्यर्थः।।७।।

त्यानंतर बिभीषणाने आपले हात जोडून मनुष्य देहधारी, दुसरे साक्षात् शिवच अशा रेणुकगणेंद्राना उद्देशून विनंती केली.।।७।।

रेणुक त्वां गणाधीश शिवज्ञानपरायण।
अवतीर्णं महीमेनामिति सम्यक् श्रुतं मया।।८।।

भो शिवज्ञानपरायण गणाधीश श्रीरेणुक, त्वामेनां महीं भूलोकं प्रत्यवतीर्णं सन्तं मया सम्यग् इति लोकवार्तया श्रुतमित्यर्थः।।८।।

शिवज्ञानपरायण, गणाधिपती, हे रेणुका, आपण या भूलोकात अवतार घेतला आहे असे लोकांकडून मी ऐकले होते.।।८।।

मद्भाग्यगौरवादद्य समायास्त्वं पुरीमिमाम्।
कथं भाग्यविहीनानां सुलभाः स्युर्भवादृशाः।।९।।

स्पष्टम्।।९।।

माझे विशेष भाग्य म्हणून आज आपण माझ्या नगरींत आगमन केले आहे. भाग्यहीनाना आपणासारख्याच्या दर्शनाचा लाभ कोठून होणार? अर्थात् होणार नाही.।।९।।

मत्समो नास्ति लोकेषु भाग्यातिशयवत्तया।
यस्य गेहं स्वयं प्राप्तो भवान् साक्षान्महेश्वरः।।१०।।

भो रेणुक, भूलोकगतप्रत्यक्षमहेश्वरो भवान् स्वयमेव यस्य मे राजालयं प्राप्तोऽसि, ततो भाग्यातिशयवत्त्वेन लोकेषु मत्समः कोऽपि नास्तीत्यर्थः।।१०।।

हे रेणुका, भूलोकात अवतार धारण केलेले आपण साक्षात् महेश्वरच आहात. आपण स्वतः माझ्या घरी आगमन केल्यामुळे माझ्यासारखा श्रेष्ठ भाग्यशाली या जगात दुसरा कोणी नाही.।।१०।।

अथ न तावन्मात्रमित्यत्राह—

कृतार्था मे पुरी ह्येषा कृतार्थो राक्षसान्वयः।
जीवितं च कृतार्थं मे यस्य त्वं दृष्टिगोचरः।।११।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भो रेणुक, त्वं यस्य मे दृष्टिगोचरः, तस्मात् मे ममैषा लङ्कापुरी कृतार्थेत्यादि।।११।।

एवढेच नव्हे तर, हे रेणुका, आपल्या दर्शनाने माझी ही लंकानगरी धन्य झाली, राक्षस वंश कृतार्थ झाला, इतकेच नाही तर माझ्या जन्माचेही सार्थक झाले.।।११।।

इति ब्रुवाणं कल्याणं राक्षसेन्द्रं गणेश्वरः।
बभाषे सस्मितो वाणीं विश्वोल्लासकरीं शुभाम्।।१२।।

सस्मितः, मन्दस्मितेन युक्तः सन्नित्यर्थः। विश्वोल्लासकरीं सर्वेषामानन्दकरीमित्यर्थः। शिष्टं स्पष्टम्।।१२।।

अशा रीतीने शुभवचन बोलणाऱ्या राक्षसश्रेष्ठ विभीषणाला उद्देशून श्री रेणुकगणेश्वर मंदस्मित करून, विश्वातील सर्व मानवांना उल्हासजनक अशा मगलमय वाणींने बोलू लागले.।।१२।।

अथ तत्प्रकारं चतुर्भिः श्लोकैर्वर्णयति—

विभीषण महाभाग जाने त्वां धर्मकोविदम्।
त्वां विना कस्य लोकेषु जायते भक्तिरीदृशी।।१३।।

स्पष्टम्।।१३।।

श्री रेणुकांच्या बोलण्याचे चार श्लोकांत वर्णन करतात—हे भाग्यवंत बिभीषणा, तू श्रेष्ठ धर्मज्ञ आणि धर्माचारी असल्याचे मी जाणतो. म्हणून अशी भक्ती तुझ्या शिवाय अन्य कोणाच्या ठिकाणी असेल?।।१३।।

समस्तशास्त्रसारज्ञं सर्वधर्मपरायणम् ।
अध्यात्मविद्यानिरतमाहुस्त्वां राक्षसेश्वर।।१४।।

भो विभीषण, त्वां समस्तनिगमादिशास्त्रसारज्ञं सकलशिवधर्मेषु परायणं तत्परमित्यर्थः। शिवाद्वैतज्ञानयोगरूपाध्यात्मविद्यानिरतं सन्तम् आहुरित्यर्थः, ।।१४।।

हे राक्षसेश्वरा, ब्रह्मलोकात राहाणारे सर्व लोक, तू समस्त शास्त्रांचे रहस्य जाणणारा आहेस, समस्तशिवधर्मतत्पर आहेस,

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

शिवाद्वैतज्ञान योगरूप अध्यात्मविद्यानिरत आहेस असे सांगतात. ।।१४।।

अतः कारणात्—

त्वदीयधर्मसम्पत्तिं श्रुत्वाहं विस्मिताशयः।
व्रजन् कैलासमचलं त्वदन्तिकमुपागतः।।१५।।

कैलासमचलं व्रजन्नहं त्वदीयशिवधर्मसम्पत्तिं श्रुत्वाऽऽश्चर्ययुक्तचित्तः सन् त्वत्समीपमागतोऽस्मीत्यर्थः।।१५।।

कैलास पर्वतावर जात असताना तुझ्या ठिकाणच्या शिवधर्मसंपत्तीची कीर्ती ऐकून आश्चर्यचकित मनाने मी तुझ्याजवळ आलो आहे.।।१५।।

प्रीतोऽस्मि तव चारित्रैः शोभनैर्लोकविश्रुतैः।
दास्यामि ते वरं साक्षात् प्रार्थयस्व यथेप्सितम्।।१६।।

स्पष्टम्।।१६।।

जगप्रसिद्ध आणि मंगलमय अशा तुझ्या चरित्रामुळे मी सतुष्ट झालो आहे. मी स्वतः तुला वर देणार आहे. तुला हवे असेल ते माग.।।१६।।

इति प्रसादसुमुखे भाषमाणे गणेश्वरे।
प्रणम्य परया प्रीत्या व्याजहार विभीषणः।।१७।।

व्याजहार विज्ञापनवाक्यं प्रयुक्तवानित्यर्थः।।१७।।

प्रसन्नमुख गणेश्वराचे असे बोलणे ऐकून बिभीषण त्यांना साष्टांगनमन करून अत्यंत भक्तिभावनेने विनंती करू लागला.।।१७।।

अथ तत्प्रकारं षड्भिः सूत्रैः प्रदर्श्य स्वस्य रावणोक्ताभिप्रायमष्टभिः सूत्रैः सूचयति—

आगमानुग्रहादेव भवतः शिवयोगिनः।
दुर्लभाः सर्वलोकानां समपद्यन्त सम्पदः।।१८।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भो गणेश्वर, शिवयोगिनो भवत आगमनरूपानुग्रहादेव सर्वजनदुर्लभाः सम्पदः समपद्यन्त प्राप्ता इत्यर्थः।।१८।।

त्याच्या विनंतीची विविधता सहा श्लोकात सांगून पुढे रावणाचा मनोदय आठ श्लोकांत व्यक्त करतात—हे गणेश्वरा, शिवयोगी अशा आपल्या आगमनरूप अनुग्रहानेच लोकाना दुर्लभ अशी सर्वसंपत्ती प्राप्त होते.।।१८।।

तथापि प्रार्थनीयं मे किञ्चिदस्ति गणेश्वर।
सुकृते परिपक्वे हि स्वयं सिद्ध्यति वाञ्छितम्।।१९।।

मे मयेत्यर्थः। शिष्टं स्पष्टम्।।१९।।

तरीपण हे गणेश्वरा, माझी एक अल्पशी प्रार्थना आहे. पुण्य परिपक्व झाल्याबरोबर मनोरथही आपोआप परिपूर्ण होतात.।।१९।।

रावणो हि मम भ्राता माहेश्वरशिखामणिः।
अदृष्टशत्रुसम्बाधं शशास हि जगत्त्रयम्।।२०।।

अदृष्टशत्रुसम्बाधं यथा भवति तथा जगत्त्रयं हि प्रसिद्धं सत् शशास पालयामासेत्यर्थः।।२०।।

शिवभक्तांमध्ये शिखामणी असा माझा वडील बंधू रावण कोणाही शत्रूची पीडा न होता तिन्ही लोकांवर राज्य करीत होता.।।२०।।

यस्य प्रतापमतुलं सोढुमक्षमशक्तयः।
इन्द्रादयः सुराः सर्वे राज्यलक्ष्म्या वियोजिताः।।२१।।

स्पष्टम्।।२१।।

अतुल प्रतापी अशा रावणाचा पराक्रम असह्य झाल्यामुळे इंद्रादिदेव आपापल्या राज्यवैभवाला पारखे झाले. तात्पर्य असे की इंद्रादिसर्व देवांचा त्याने पराभव केला.।।२१।।

स तु कालवशेनैव स्वचारित्रविपर्ययात्।
रणे विष्णववतारेण रामेण निहतोऽभवत्।।२२।।

स्पष्टम्।।२२।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

असा पराक्रमशाली रावण कालौघात चारित्र्यभ्रष्ट झाल्यामुळे विष्णूचा अवतार अशा रामाकडून रणांगणात मारला गेला.।।२२।।

स तु रामशराविद्धः कण्ठस्खलितजीवितः।
अवशिष्टं समालोक्य मामवादीत् सुदुःखितः।।२३।।

स रावणो रामबाणेन क्षतं लब्धवान् सन् कण्ठगतप्राणः सन् अवशिष्टं राक्षसेषु हतशिष्टं मां दृष्ट्वात्यन्तदुःखितः सन् प्रत्यवददित्यर्थः।।२३।।

रामाच्या बाणाने घायाळ झालेला तो रावण कंठात प्राण धरून, राक्षसांपैकी जिवंत उरलेल्या एकमात्र माझ्याकडे पाहून अत्यंत दुःखित स्वराने बोलू लागला.।।२३।।

अथ रावणोक्तप्रकारमुपपादयति—

विभीषण विशेषज्ञ महाबुद्धे सुधार्मिक।
अवशिष्टोऽसि वंशस्य रक्षसां भाग्यगौरवात्।।२४।।

स्पष्टम्।।२४।।

रावणाच्या बोलण्याचा आशय सांगतात—महाबुद्धीशाली, धर्माचारशील, विचक्षण अशा हे बिभीषणा, राक्षसवंशाच्या सौभाग्याने तू एकटाच जिवंत राहिलास.।।२४।।

वयमज्ञानसम्पन्ना महत्सु द्रोहकारिणः।
ईदृशीं तु गतिं प्राप्ता दुस्तरा हि विधिस्थितिः।।२५।।

वयमज्ञानसम्पन्नाः सन्तो महत्सु महतां विषये द्रोहकारिण इति ईदृशी गतिं प्राप्ताः। तथाहि विधिस्थितिः दैवाधीनवृत्तिः, दुस्तरा हि लङ्घितुमशक्या खल्वित्यर्थः।।२५।।

अज्ञानाने ग्रस्त असे आपण सर्व मोठ्यांच्याविषयी द्रोह केल्यामुळे अशा दुःखावस्थेला प्राप्त झालो आहोत. दैवगती मोठी दुस्तर असते हेच खरे. तिला पार करणे साध्य नसते.।।२५।।

नवकं लिङ्गकोटीनां प्रतिष्ठाप्यमिह स्थले।
इति सङ्कल्पितं पूर्वं मया तदवशिष्यते।।२६।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इह स्थले अस्मिन् लङ्कापत्तनस्थले नवकोटिलिङ्गं प्रतिष्ठाप्यमिति मया पूर्वं संकल्पितम्, तत्र किञ्चिदवशिष्टमस्तीत्यर्थः।।२६।।

ह्या लंकानगरीत नऊ कोटी शिवलिंगांची स्थापना करावी असा संकल्प मी पूर्वी केला होता. तरीपण तो संकल्प पूर्ण न होता थोडा शिल्लक आहे.।।२६।।

कियदवशिष्टमित्यत्राह—

कोटिषट्कं तु लिङ्गानां मया साधु प्रतिष्ठितम्।
कोटित्रयं तु लिङ्गानां स्थापनीयमतस्त्वया।।२७।।

अतस्तत्संकल्पपूरणार्थमित्यर्थः।।२७।।

तो किती शिल्लक आहे? तर—सहाकोटी शिवलिगाचीं स्थापना मी शास्त्रानुसार केली आहे. परंतु माझ्या सकल्पाप्रमाणे अजून उरलेल्या तीन कोटी शिवलिगाची स्थापना तू करावीस.।।२७।।

इति तस्य वचः श्रुत्वा दीनबुद्धेर्मरिष्यतः।
तथा साधु करोमीति प्रतिज्ञातं मया तथा।।२८।।

स्पष्टम्।।२८।।

मरणोन्मुख, दीनबुद्धी अशा रावणाचे बोलणे ऐकून 'बरे आहे, तीन कोटी शिवलिंगांची स्थापना शास्त्रविधीप्रकारे करतो' अशी प्रतिज्ञा मी त्यावेळी केली.।।२८।।

युगपच्छिवलिङ्गानां कोटित्रयमनुत्तमम्।
प्रतिष्ठाप्यं यथाशास्त्रमिति मे निश्चयोऽभवत्।।२९।।

स्पष्टम्।।२९।।

अत्युत्तम अशा तीन कोटी शिवलिंगांची विधीप्रकारे स्थापना एकाच वेळी करावी असा मी निश्चय केला आहे.।।२९।।

लिङ्गकोटित्रयस्येह युगपत् स्थापनाविधौ।
अविदन्नेकमाचार्यमहमेवमवस्थितः।।३०।।

इह लङ्कायामित्यर्थः। युगपल्लिङ्गत्रिकोटिस्थापनविषये मुख्यमाचार्यमलब्धवान् सन्नेवं स्थितोऽस्मीत्यर्थः।।३०।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

या लकानगरीत एकाच वेळी तीन कोटी शिवालिंगाची प्रतिष्ठापना करण्यास समर्थ असा आचार्य न आढळल्यामुळे मी आतापर्यन्त निराश झालो होतो.।।३०।।

शिवशास्त्रविशेषज्ञ शिवज्ञाननिधिर्भवान्।
आचार्यभावमासाद्य मम पूरय वाञ्छितम्।।३१।।

शिवशास्त्रविशेषज्ञ भो रेवणसिद्ध, भवान् शिवज्ञानस्य निधिर्निक्षेपस्थानभूतः, अत आचार्यभावमासाद्य युगपत्कोटित्रयाचार्यभावं प्राप्य ममाभीष्टं पूरयेत्यर्थः।।३१।।

शिवशास्त्ररहस्यज्ञ, शिवज्ञानाचा सागर असलेल्या हे रेणुकाचार्या, आपण एकाच वेळी तीन कोटी गुरूंचे रूप धारण करून माझे मनोरथ पूर्ण करावेत.।।३१।।

अथ श्रीरेणुकस्तस्याभीष्टं पूरयित्वाऽन्तर्हित इति श्लोकपञ्चकेन प्रतिपादयति—

तस्येति वचनं श्रुत्वा राक्षसेन्द्रस्य धीमतः।
तथेति प्रतिशुश्राव सर्वज्ञो गणनायकः।।३२।।

प्रतिशुश्राव अङ्गीकृतवानित्यर्थः। शिष्टं स्पष्टम्।।३२।।

आता रेणुकाचार्य बिभीषणाचे अभीष्ट पूर्ण करून अतर्धान ावल्याचे पाच श्लोकात वर्णन करतात—सर्वज्ञ, गणनायक श्री रेणुकाचार्यांनी राक्षसराज बिभीषणाचे बोलणे ऐकून 'तसेच होवो' अशी अनुमती दिली. अर्थात् त्यांनी बिभीषणाची प्रार्थना मान्य केली.।।३२।।

तत्र सन्तुष्टचित्तस्य पौलस्त्यस्येष्टसिद्धये।
कोटित्रयं तु लिङ्गानां यथाशास्त्रं यथाविधि।
त्रिकोटयाचार्यरूपेण स्थापितं तेन तत्क्षणे।।३३।।

तत्र लङ्कायां पौलस्त्यस्य विभीषणस्येत्यर्थः। शिष्टं स्पष्टम्।।३३।।

संतुष्टचित्त झालेल्या बिभीषणाच्या मनोरथसिद्धीसाठी श्री रेणुकाचार्यांनी तीन कोटी गुरूंचे रूप धारण करून त्या लंकानगरीत तत्क्षणी तीन कोटी शिवलिंगांची शास्त्रविधीवत् स्थापना केली.।।३३।।

3'5

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तादृशं तस्य माहात्म्यं समालोक्य विभीषणः।
प्रणनाम मुहुर्भक्त्या पादयोस्तस्य विस्मितः।।३४।।

स्पष्टम्।।३४।।
श्री रेणुकाचार्यांचा अशा प्रकारचा महिमा पाहून बिभीषण आश्चर्यचकित झाला. त्यांच्या पायांशी असाधारण भक्तिभावनेने त्याने पुनः पुन्हा नमन केले.।।३४।।

प्रणतं विनयोपेतं प्रहृष्टं राक्षसेश्वरम् ।
अनुगृह्य स्वमाहात्म्याद् रेणुकोऽन्तर्हितोऽभवत्।।३५।।

स्पष्टम्।।३५।।
अशा रीतीने नमस्कार केलेल्या, विनयांकित, संतुष्ट, राक्षस सार्वभौम बिभीषणावर अनुग्रह करून श्री रेणुकाचार्य आपल्या महिम्याने अंतर्धान पावले.।।३५।।

बिभीषणोऽपि हृष्टात्मा रेणुकस्य प्रसादतः ।
शिवभक्तिरसासक्तः स्थिरराज्यमपालयत्।।३६।।

स्पष्टम्।।३६।।
श्री रेणुकाचार्यांच्या अनुग्रहामुळे संतुष्ट झालेला शिवभक्तिरूपरसास्वादासक्त बिभीषण चिरकाल आपल्या प्रजेचे पालन करीत राहिला.।।३६।।

अथाष्टदिक्षु प्रसिद्धस्य रेवणसिद्धेश्वरस्य महत्त्वं सङ्कोचेनाष्टभिः सूत्रैः प्रकाशयति—

रेणुकोऽपि महातेजाः संचरन् क्षितिमण्डले।
प्रच्छन्नश्च प्रकाशश्च परमाद्वैतभावितः।।३७।।
कांश्चिद् दृष्टिनिपातेन करुणारसवर्षिणा।
अपरानुपदेशेन शिवाद्वैताभिमर्शिना।।३८।।
अन्यांश्च सहवासेन समस्तमलहारिणा।
कृतार्थयन् जनान् सर्वान् कृतिनः पक्वकर्मिणः।।३९।।
दर्शयित्वा निजाधिक्यं शिवदर्शनलालसः।
खण्डयित्वा दुराचारान् पाषण्डान् भिन्नदर्शनान्।।४०।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

यन्त्रमन्त्रकलासिद्धान् विमतान् सिद्धमण्डलान्।
विजित्य स्वप्रभावेण स्थापयित्वा शिवागमान्।।
आजगाम निजावासं कोल्लिपाक्यभिधं पुरम्।।४१।।

प्रच्छन्नश्च सप्तशतवर्षपर्यन्तमिति शेषः। तथा प्रकटितः सन् कांश्चिज्जनान् करुणारसपूरितकटाक्षेण कृतार्थयन्, अपरान् शिवाद्वैतप्रकाशकोपदेशेन कृतार्थयन्, अन्यान् निर्मलसहवासेन कृतार्थयन्, अवशिष्टसर्वजनान् कृतिनः सकलकलाकुशलान् पक्वकर्मिणः परिपक्वमलमायापाशवन्तः सन्तश्च कृतार्थयन् सन्, शिवदर्शनलालसः शिवसमयलम्पटः श्रीरेवणसिद्धो निजाधिक्यम् अनेकचित्रविचित्रनिजमहत्त्वं दर्शयित्वा भिन्नदर्शनान् वैष्णवाद्यन्यसमयनिष्ठान् पाषण्डान् शङ्खचक्राद्यन्यलाञ्छनयुक्तान् दुराचारान् खण्डयित्वा यन्त्रमन्त्रादिचतुःषष्टिकलासिद्धियुक्तान् कापालिकादिपरमतसिद्धमण्डलान् गोरक्षादिनवकोटिसिद्धान् स्वसामर्थ्येन विजित्य कामिकादिशिवसिद्धान्तान् स्थापयित्वा निजावासं कोल्लिपाक्यभिधं पुरमाजगाम आससादेत्यर्थः ।।३७-४१।।

अष्टदिशांत प्रसिद्धी पावलेला रेणुकमहिमा संक्षेपाने आठ श्लोकांत सांगतात—महातेजस्वी, शिवमतप्रसारधुरंधर असे श्री रेणुकाचार्य शिवाद्वैतभावनासंपन्न होऊन भूलोकात सातशे वर्षे गुप्त राहून पुन्हा सातशे वर्षे प्रकट होऊन संचार करीत, काहींना आपल्या कृपाकटाक्षाने पाहून, काहींना शिवाद्वैतज्ञानप्रकाशक उपदेश करून, काहींना मलत्रयनिवारक अशा आपल्या सहवासाने कृतार्थ करीत, आणखी काहींना कर्तव्यकुशल करीत, काहींचा कर्मपरिपाक करीत, अत्यंत आश्चर्यकारक असे आपले माहात्म्य दाखवून, दुराचारी, पाखंडी, तसेच अन्य नास्तिक दर्शनाचे वादविवादाने खंडन करीत, यंत्रतंत्रमंत्रादी चौसष्ट कलांमध्ये सिद्धी प्राप्त केलेल्या कापालिकादी मतांचे खर्परगोरक्षादी नवकोटी सिद्धांच्या समूहाला आपल्या माहात्म्याने जिंकून, कामिकादिवातुलान्त शिवागमांतील शिवसिद्धांताची प्रतिष्ठापना करून आपले मुख्य स्थान अशा कोल्लिपाकास परत आले.।।३७-४१।।

तत्र सम्भावितः सर्वैर्जनैः शिवपरायणैः।
सोमनाथाभिधानस्य शिवस्य प्राप मन्दिरम्।।४२।।

सम्भावितः सत्कृत इत्यर्थः। शिष्टं स्पष्टम्।।४२।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

त्या कोल्लिपाकात असलेल्या सकल शिवभक्ताकडून होणारा सत्कार स्वीकारीत, श्री रेणुकाचार्य सोमनाथ देवालयास आले.।।४२।।

पश्यतां तत्र सर्वेषां भक्तानां शिवयोगिनाम्।
तन्वानो विस्मयं भावैस्तुष्टाव परमेश्वरम्।।४३।।

भावैर्निर्मलगुणैरित्यर्थः। विस्मयमाश्चर्यं तन्वानो विस्तारयन्नित्यर्थः।।४३।।

तेथे त्याना पाहात असलेल्या सकलशिवयोग्यांना आपल्या निर्मल गुणांनी आश्चर्यचकित करीत त्यांनी परशिवाची स्तुती करण्यास प्रारंभ केला.।।४३।।

अथ सप्तभिः सूत्रैः सोमेश्वरस्य स्तुतिं करोति—

देवदेव जगन्नाथ जगत्कारणकारण।
ब्रह्मविष्णुसुराधीशवन्द्यमानपदाम्बुज।।४४।।

अत्र जगच्छब्देन भुवनान्युच्यन्ते। तत्कारणीभूतबिन्दुमायादीनामपि कारणीभूत! इत्यर्थः।।४४।।

आता सात श्लोकांत सोमेश्वराची स्तुती करतात—सकलदेवांचा स्वामी अशा शिवा, तू सर्व जगाचा अधिपती आहेस. सर्व जगाच्या उदयास कारण अशा बिंदुमायादींनासुद्धा तूच कारण आहेस. ब्रह्माविष्णू आदी सर्व श्रेष्ठ देव तुझ्या चरणकमलाची सेवा करतात.।।४४।।

संसारनाटकभ्रान्तिकलानिर्वहणप्रद।
समस्तवेदवेदान्तपरिबोधितवैभव।।४५।।

संसारनाटकभ्रान्तिकलाजयप्रद इत्यर्थः।।४५।।

तुझ्या आश्रितांची जनन मरणात्मक संसाररूपनाटकाची भ्रांती तू दूर करतोस. सकलवेदोपनिषदे तुझ्या वैभवाची स्तुती गातात.।।४५।।

संसारवैद्य सर्वज्ञ सर्वशक्तिनिरङ्कुश।
सच्चिदानन्द सर्वस्व परमाकाशविग्रह।।४६।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"आकाशशरीरं ब्रह्म" इति श्रुतेश्चिदाकाशस्वरूप इत्यर्थः। शिष्टं स्पष्टम्।।४६।।

हे परमात्म्या तू भवरोगवैद्य, सर्वज्ञ, सर्वकर्तृत्वादी महाशक्तिसंपन्न आणि निरंकुशही आहेस. तू सच्चिदानंद स्वरूप असून महाचिदाकाश हीच तुझी मूर्ती होय.।।४६।।

समस्तजगदाधारज्योतिर्लिङ्गविजृम्भण।
सदाशिवमुखानेकदिव्यमूर्तिकलाधर।।४७।।

"ज्वाललिङ्गाय नमः" इति श्रुतेर्ज्योतिलिङ्गस्वरूपेण जृम्भमाण इत्यर्थः। "स्थिरेभिरङ्गैः पुरुरूप उग्रः" इति श्रुतेः सकलनिष्कलसदाशिवप्रभृतिदिव्य-मूर्तिकलाधर इत्यर्थः। अत्र--"स एको रुद्रः स ईशानः स भगवान् स महेश्वरः स महादेवः" इति श्रुतिः।।४७।।

तूच सकल जगाचा आधार आहेस. या जगात ज्योतिर्लिंगस्वरूपाने तूच दिसतोस. सदाशिव, रुद्र, भर्गादी अनेक लीलारूपे तू धारण करतोस.।।४७।।

गुणत्रयपदातीत मलत्रयविनाशन।
जगत्त्रयविलासात्मन् श्रुतित्रयविलोचन।।४८।।

सत्त्वरजस्तमोगुणस्थानातीत आणवकार्मणमायिकाख्यमलत्रयोन्मूलनकर स्वर्गमर्त्यपाताललक्षणजगत्त्रयसृष्ट्यादिपञ्चकृत्यक्रीडाविलासोन्मुख ऋग्यजुः-सामाख्यश्रुतित्रयविलोचन इत्यर्थः।।४८।।

तू सत्वादिगुणत्रयातीत आहेस. आणवादिमलत्रयाचा नाशक आहेस. त्रैलोक्याची सृष्टिसंरक्षणादी पंचकर्मे करणे ही तुझी लीला आहे. ऋग्वेद, यजुर्वेद आणि सामवेद हे तुझे तीन नेत्र आहेत.।।४८।।

पाहि मां परमेशान पाहि मां पार्वतीपते।
त्वदाज्ञया मयैतावत्कालमात्रं महीतले।।
अचारि भवदुक्तानामागमानां प्रसिद्धये।।४९।।

स्पष्टम्।।४९।।

अशा हे परमेश्वरा, माझे रक्षण कर, हे पार्वतीपते माझे रक्षण कर. तुझ्या आज्ञेप्रमाणे मी आजपर्यन्त या भूतलावर तू

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सांगितलेल्या शिवागमांतील आशयाचा प्रचार करण्यासाठी संचार केला.।।४९।।

अतः परं स्वरूपं ते प्राप्तुकामोऽस्मि शङ्कर।
अन्तरं देहि मे किञ्चिदनुकम्पाविशेषतः।।५०।।

भो शङ्कर सुखकर, तेन प्रसिद्ध सोमेश्वर, अतः परम् इतः परमित्यर्थः। अहं ते स्वरूपं लब्धुकामोऽस्मि, मे मम अन्तरमवकाशं देहि। अनुकम्पां कृपां विशेषतो देहि कुर्वित्यर्थः।।५०।।

हे शंकरा, आता मी तुझ्या निजस्वरूपात ऐक्य पावण्याची इच्छा बाळगून आहे. म्हणून विशेष कृपा करून तुझ्या ठिकाणी ऐक्य पावण्यासाठी मला थोडासा अवकाश दे.।।५०।।

अथ वृत्तत्रयेण शिवप्रसन्नतां रेवणसिद्धेश्वरस्य लिङ्गैक्यं च प्रतिपादयति—

इत्युक्ते गणनायकेन सहसा लिङ्गात् ततः शाङ्कराद्
वत्सागच्छ महानुभाव भवतो भक्त्या प्रसन्नोऽस्म्यहम्।
इत्युच्चैरगदाद् वचस्तनुभृतामाश्चर्यमासीत् तदा
दिव्यो दुन्दुभिराननाद गगने पुष्पं ववर्षुर्गणाः।।५१।।

गणनायकेन रेवणसिद्धेश्वरेण इत्युक्ते एवं विज्ञापिते सति सहसा तत्क्षणेन शाङ्करात् ततो लिङ्गात् सोमोश्वरलिङ्गाद् भो महानुभाव निगमागमेषु महानिश्चयबुद्धिमन् वत्स रेवणसिद्धाख्यकुमार, भवतस्तव भक्त्या नवविधभक्त्या अहं प्रसन्नोऽस्मि, आगच्छ आयाहीति वचः शिव उच्चैरगदाद् अवादीत् । तदा तस्मिन् समये तनुभृतां शरीरिणामाश्चर्यं कौतुकमासीत्, गगने दिव्यो दुन्दभिः देवदुन्दुभिः, आननाद सर्वत्र ध्वनितवान्, गणाः प्रमथगणा देवगणाश्च, पुष्पं कुसुमवृष्टिं ववर्षुरित्यर्थः।।५१।।

आता तीन श्लोकात शिवाच्या प्रसन्नतेचे आणि रेणुकाचार्यांच्या लिंगैक्याचे वर्णन करतात—अशा प्रकारे रेणुक गणेश्वरांनी प्रार्थना केल्यावर तत्क्षणी त्या सोमेश्वर लिंगातून-'वेदागमांत विशेषनिश्चयबुद्धिसपन्न वत्सा, रेणुका, तुझ्या भक्तिविशेषाने मी प्रसन्न झालो आहे, ये.' अशी परशिवाची हाक ऐकू आली. ती

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ऐकून सकलजनांना आश्चर्य वाटले. अंतरिक्षात देवदुदुभी वाजू लागल्या, शिवगणांनी पुष्पवृष्टी केली.।।५१।।

श्रुत्वा लिङ्गाद् वचनमुदितं शाङ्करं सानुकम्पं
संहृष्टात्मा गणपतिरथो ज्योतिषा दीप्यमानः।
जातोत्कण्ठैः परमनुचरैर्योगिभिः स्तूयमानो
ज्योतिर्लिङ्गं परमनुविशत् स्वप्रकाशं तदानीम्।।५२।।

अथो पुष्पवृष्ट्यनन्तरं संहृष्टात्मा सन्तुष्टचित्तो गणपतिः शिवगणपतिः श्रीरेवणसिद्धो ज्योतिषा शिवप्रकाशेन दीप्यमानः प्रकाशमानः सन् लिङ्गात् सोमेशलिङ्गाद् उदितम् उद्भूतं सानुकम्पं कृपासहितं शाङ्करं वचनं शिवसम्बन्धिवचनं पूर्वोक्तवाक्यं श्रुत्वा, जातोत्कण्ठैर् उद्भूताश्चर्यवद्भिः, अनुचरैः सहचरैः शिवयोगिभिः परमधिकतया स्तूयमानः सन्, तदानीं तस्मिन् समये परं सर्वोत्कृष्टं स्वप्रकाशं निजप्रकाशरूपं ज्योतिर्लिङ्गं "तस्य भासा सर्वमिदं विभाति", "तमेव भान्तमनुभाति सर्वम्" इति श्रुतिसिद्धचिल्लिङ्गमनुविशत् स्वरूपहानिवृद्धिव्यतिरेकेण सामरस्येन प्रविष्टवानित्यर्थः।।५२।।

त्या सोमेश्वरलिंगातून बाहेर पडलेले दयामय असे वचन ऐकून रेणुकगणेश्वर संतुष्ट अंतःकरणाने, शिवतेजाने तळपत, आपल्या आजूबाजूचे शिवयोगी आश्चर्यचकित होऊन स्तुती करीत असतानाच, सर्वोत्कृष्ट निजप्रकाशरूप अशा त्या प्रसिद्ध ज्योतिर्मय सोमेश्वरलिंगात सामरस्याने प्रवेश करून ऐक्य पावले.।।५२।।

लीने तस्मिन् शाङ्करे स्वप्रकाशे
दिव्याकारे रेणुके सिद्धनाथे।
सर्वो लोको विस्मितोऽभूत् तदानीं
शैवी भक्तिः सप्रमाणा बभूव।।५३।।

दिव्याकारे मनोहरस्वरूपे रेणुके सिद्धनाथे रेवणसिद्धेश्वरे स्वप्रकाशे शाङ्करे तस्मिन् लिङ्गे सोमेशलिङ्गे लीने सति ऐक्यं गते सति सर्वो लोकः समस्तजनो विस्मित आश्चर्ययुक्त आसीत्। तदानीं तस्मिन् काले शैवी भक्तिः शिवसम्बन्धिनी भक्तिः सप्रमाणा प्रमाणेन सह वर्तमाना बभूव आसीदित्यर्थः।।५३।।

दिव्य देहधारी असलेले श्री रेणुकगणनायक स्वप्रकाशमय अशा त्या सोमेश्वरलिंगात ऐक्य पावले, हे ऐकून सकलजनांना आश्चर्य

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

वाटले. तेव्हा पासून शिवभक्ती ही सर्वोत्कृष्ट होय हे प्रत्यक्ष प्रमाणाने सिद्ध झाले.।।५३।।

अथास्य ग्रन्थस्य माहात्म्यमाह—

श्रीवेदागमवीरशैवसरणिं श्रीषट्स्थलोद्यन्मणिं
श्रीजीवेश्वरयोगपद्मतरणिं श्रीगोप्यचिन्तामणिम्।
श्रीसिद्धान्तशिखामणिं लिखयिता यस्तं लिखित्वा परान्
श्रुत्वा श्रावयिता स याति विमलां भुक्तिं च मुक्तिं पराम्।।५४।।

इति श्रीमत्षट्स्थलब्रह्मिणा शिवयोगिनाम्ना रेणुकाचार्येण विरचिते वीरशैवधर्मनिर्णये सिद्धान्तशिखामणौ रेणुकविभीषणसंवादे रेणुकशिवलिङ्गैक्यप्रसङ्गो नामैकविंशः परिच्छेदः समाप्तः।।

।।श्रीसिद्धान्तशिखामणिश्च समाप्तः।।

श्रीवेदागमवीरशैवसरणिं मङ्गलकरसकलसमयशास्त्रोत्तरवेदागमप्रतिपाद्यवीरशैवसरणिरेव सरणिर्यस्येत्यर्थः, श्रीषट्स्थलोद्यन्मणिं मङ्गलात्मकैकोत्तरशतस्थलरूपाङ्गलिङ्गषट्स्थलमार्गप्रकाशनशाणोल्लीढरत्नम्, श्रीजीवेश्वरयोगपद्मतरणिं शोभमानजीवपरमैक्यलक्षणकमलविकसनार्कम्, श्रीगोप्यचिन्तामणिं मङ्गलकरशिवरहस्यार्थप्रकाशनचिन्तारत्नं तं श्रीसिद्धान्तशिखामण्याख्यवीरशैवशास्त्रं यो लिखित्वा परान् लेखयिता, यः श्रुत्वा परान् श्रावयिता, स विमलां भक्तिं परां मुक्तिं च याति प्राप्नोतीत्यर्थः।।५४।।

इति श्रीमत्पदवाक्यप्रमाणपारावारधुरीणश्रीमरितोण्टदार्येण विरचितायां तत्त्वप्रदीपिकाख्यायां सिद्धान्तशिखामणिव्याख्यायां रेणुकविभीषणसंवादे रेणुकशिवलिङ्गैक्यप्रसङ्गो नामैकविंशः परिच्छेदः समाप्तः।।

आता ह्या ग्रंथाचे माहात्म्य सांगतात—हा सिद्धान्तशिखामणी ग्रंथ वेदागमांमध्ये प्रतिपादन केलेल्या वीरशैव सिद्धांतपद्धतीचा अवलंब करणारा आहे. मंगलमय अशा एकशेएक अवांतर स्थलांनी युक्त अगलिंगमय षट्स्थलाचा मार्ग प्रकाशमान करणारे हे उज्ज्वल रत्न आहे. शिवजीवऐक्यज्ञानाचे कमल विकसित करणारा हा सूर्य आहे. शिवाद्वैतज्ञानाचे गुप्तधन प्राप्त करून देणारा चितामणी आहे. आणि सर्व सिद्धांतामध्ये श्रेष्ठ असल्यामुळे याला सिद्धांतशिखामणी हे अन्वर्थक नाव प्राप्त झाले आहे. असा हा

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सिद्धातशिखामणी ग्रंथ जो स्वतः लिहितो, इतरांकडून लिहवितो, स्वतः ऐकतो अथवा इतरांना ऐकवितो, तो निर्मल असे सुखोपभोग आणि सर्वोत्कृष्ट अशी मुक्ती मिळवितो.।।५४।।

अशा रीतीने सिद्धांतशिखामणी ग्रंथातील बिभीषणाला अभीष्टदान आणि श्रीरेणुकांचे सोमेश्वर लिंगात ऐक्य नामक एकविसावा परिच्छेद संपला.

एकविसावा परिच्छेद समाप्त।।

।।श्रीसिद्धान्तशिखामणी ग्रंथ समाप्त ।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

परिशिष्टानि

- श्लोकार्धानुक्रमणी
- व्याख्योद्धृतग्रन्थ-संकेत सूची
- व्याख्योद्धृतवचनानुक्रमणी
- मूलव्याख्याधृत-ग्रन्थ-ग्रन्थकार सूची
- न्यायसूची
- नामसूची

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

श्लोकार्धानुक्रमणी

अकर्ताऽहमवेत्ता	१८.५२	अज्ञातोपायसम्पत्ते	२.१६
अकारणमकार्यं	१९.४९	अज्ञानकर्मयोगेन	१८.११
अकारः शिव आख्यातो	२०.३९	अज्ञानतिमिरोद्रिक्ता	१४.१२
अकुण्ठशक्तिरव्याज	३.६२	अज्ञानमलिनं चित्त	१३.२५
अक्षयं फलमाप्नोति	११.६२	अज्ञानमेघनिर्मुक्तः	१९.२१
अखण्डज्ञानरूपत्वं	१५.५०	अज्ञानमेव सर्वेषां	१७.१२
अखण्डपरमानन्द	१५.३९	अज्ञानराक्षसोन्मेष	१२.३१
अखण्डब्रह्मरूपेण	१८.१०	अणिमादिकमैश्वर्यं	३.४७
अखण्डसच्चिदानन्द	२०.१६	अणुभूतो मलासङ्गा	१८. ७
अखण्डसंविदाकार	१८.४०	अतप्ततनुरज्ञो वै	६.६१
अखण्डं येन चैतन्यं	१५.११	अतः परं स्वरूपं	२१.५०
अखण्डानन्दसंवित्ति	१९.४७	अत्यन्तकठिनोत्तुङ्ग	३.३१
अखण्डारातिदोर्दण्ड	३.६५	अत्यन्तगूढचैतन्यं	५.४३
अखण्डे ब्रह्मचैतन्ये	५.४१	अत्यन्ततामसोपाधिः	५.४०
अगस्त्य खलु सिद्धान्ता	५. ३	अत्यन्तपापकर्माऽपि	११.५०
अगस्त्य मुनिशार्दूल	५. २	अत्र दानत्रयं प्रोक्तं	५.३०
अगस्त्य मुनिशार्दूल	२०.८१	अत्र प्रेरयिता शम्भुः	५.४२
अग्निदग्धानि बीजानि	१९.३०	अत्र हृत्पङ्कजं वेश्म	१९.५६
अग्निरित्यादिमन्त्रेण	७.३४	अथ त्रिलिङ्गविषये	४. १
अग्निहोत्रं त्रयो वेदा	८.४३	अथवाऽगस्त्य तेजस्विन्	४.३८
अघोराद्भस्म संजातं	७. ९	अथवा पादशब्देन	१९. ७
अघोरापापकाशीति	६.६२	अथवा पूर्वकर्म स्यात्	९.३९
अघोरापापकाशीति	१०.५९	अथवा शिवभक्तानां	९.३४
अघोरापापकाशीति	१०.७४	अथागस्त्यवचः श्रुत्वा	५. १
अङ्गभूताः स्त्रियः	३.४३	अदृष्टशत्रुसम्बाधं	२१.२०
अङ्गलिङ्गस्थलं चाथ	१२. ५	अद्य मे सफलं जन्म	२०.७६
अङ्गलिङ्गी ज्ञानरूपः	१३. २	अद्वितीयमनिर्देश्यं	२. ६
अङ्गालेपस्थलं	२०. ४	अद्वितीयशिवाकार	१९.८६
अङ्गे लिङ्गं समारूढं	१२.४३	अद्वितीयं परानन्दं	८.१९
अचरे मन्त्रसंस्कारा	९.६२	अद्वैतकृतसिद्धान्तो	१५.१६
अचलं ध्रुवमात्मान	१५.६८	अद्वैतपरमानन्द	१५.६१
अचारि भवदुक्ताना	२१.४९	अद्वैतपरमानन्द	१७.७३
अचेतनत्वात् पृथ्व्यादे	१०.५३	अद्वैतबुद्धिपोतेन	१४.११
अच्छिद्रं कनकप्रख्य	७.५२	अद्वैतबोधनिर्धूत	२०. ८
अजङ्गमं तु यल्लिङ्गं	९.६१	अद्वैतभावनाजातं	१४.१४
अजङ्गमे यथा भक्ति	९.६०	अद्वैतवासनाविष्ट	१८.५१

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अद्वैतवासनोपायं १५.१५
अधमे चोत्तमे वापि ९. ४
अधमे न स्पृशेत् १६.६१
अधिगम्य महायोगी १९. ९
अध्यात्मविद्यानिरत २१.१४
अनन्तपरमानन्द ३.१३
अनन्यदेवसादृश्यं ११.३४
अनन्यमुखसम्प्रेक्षी २०.३४
अनयो: स्वामिभृत्यत्व १०.४०
अनश्वरमनिर्देश्यं २०.४६
अनादिनिधनं लिङ्गं १२.४७
अनादिमुक्तो भगवा १०.१२
अनाद्यविद्यामूला हि २०.२२
अनाद्यविद्याविच्छित्ति १९.२४
अनाद्यविद्यासम्बन्धात् ५.३४
अनित्यबुद्ध्या सर्वत्र ५.७५
अनिर्देश्यमनौपम्य १९.६७
अनुगतसकलार्थे १.३२
अनुगृह्णाति यल्लोकान् १७. ५
अनुगृह्य स्वमाहात्म्या २१.३५
अनुग्रहाय लोकाना १.३०
अनुप्रविश्य तद्योगी २०.२६
अनेकजन्मशुद्धस्य १८.५७
अनेकजन्मशुद्धानां ९.१३
अनेन पञ्चयज्ञेन ९.२५
अनेन मूलमन्त्रेण ८.३४
अनेनैव निरुक्तेन ५.१७
अन्तरस्थलभेदेन ११. ३
अन्तरं देहि मे किञ्चि २१.५०
अन्तराकाशबिम्बस्थ १९.५८
अन्तरेण गुरुं सिद्ध १३.२४
अन्तर्गतं चिदाकारं १२.१३
अन्तर्दधे महादेवं २१. १
अन्तर्धारयितुं लिङ्ग ६.४८
अन्तर्बहिश्च सर्वत्र १६.१८
अन्तर्मुखेन भावेन १६.७२
अन्तर्मुखेन मनसा २०.१२
अन्तर्लिङ्गानुसन्धान ६.४३
अन्तर्लिङ्गानुसन्धाने ६.४४
अन्तर्वासितचित्ताना १२.२८
अन्तर्विभावयेद्विद्वान् ६.४७
अन्त:क्रियारतस्यास्य १२.२१
अन्त:पवनसंस्पृष्टे १२.१४
अन्त:पुरद्वारगतौ २.३३
अन्त:पुरद्वारपालौ २.३२
अन्त:प्रकाशमानस्य १६.७१
अन्त:शिवे समावेशो १७.१६
अन्त: षट्चक्ररूढानि १२. २
अन्त:स्थितं परं लिङ्ग १२. ९
अन्त:स्थितं पराकाशं १९.५३
अन्त्यजो वापि मुच्येत ११.७२
अन्त्यजो वा शिवे भक्त: ११.५४
अन्धपङ्गुवदन्योन्य १६.११
अन्धो यथा पुरस्थानि १६.३२
अन्नजाते तु भक्तेन ९.७४
अन्नशुद्ध्या हि सर्वेषां ११. ९
अन्नाद्यं सर्वभोज्यं ९.७१
अन्यत्र शम्भोरति १०.७७
अन्यात्मविदितं ९.२०
अन्यांश्च सहवासेन २१.३८
अन्येऽपि बहवो मन्त्रा ८.४०
अन्यैरापादितं भस्म ७.१८
अपगच्छतु सर्वस्वं १०.२२
अपरानुपदेशेन २१.३८
अपरिच्छिन्नमव्यक्त ६.३६
अपरिच्छिन्नमानन्दं १९.९४
अपरिच्छेद्यमभवत् ११.३०
अपरिच्छेद्यमात्मस्थ १८.७२
अपरिच्छेद्यमात्मानं १८.३९
अपरोक्षपरानन्द १९.२७

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अपरोक्षिततत्त्वस्य	१३.२६	अवमत्य सभामध्ये	३.७४
अपश्यदाश्रमं दिव्य	४.१७	अवमानाद्भवेत्तस्य	९.६५
अपूर्वरूपमभजन्	३.३६	अवमानान्महाधीरो	९.२६
अप्रत्यक्षो महादेव:	९.५३	अवलम्ब्य प्रवृत्तो यो	१६.७९
अप्रपञ्चस्यादिदेव:	१८.५७	अवशिष्टं समालोक्य	२१.२३
अप्रमेयमनिर्देश्यं	६.३३	अवशिष्टोऽसि वंशस्य	२१.२४
अप्रमेये चिदाकारे	२०.४८	अवादीत् सर्वलोकानां	२०.८४
अप्राकृतगुणाधार	२.११	अवान्तरस्थलान्यत्र	५.२७
अप्राकृतैर्गुणै: स्वीयै:	१५.६१	अविचारेण मद्भक्तो	३.७७
अब्भक्षा वायुभक्षाश्च	८.३६	अविदन्नेकमाचार्य	२१.३०
अभङ्गुरभुजङ्गस्त्री	४.१४	अविद्याकल्पितं वस्तु	१७. ९
अभजन्त महादेव	३.५३	अविद्यामोहिता जीवा	५.४७
अभवच्छिवयोगीति	१.२०	अविद्याराहुनिर्मुक्तो	१९.२०
अभिधानाभिधेयत्वा	८. ६	अविद्याशक्तिभेदेन	५.४५
अभिन्न: परमात्मेति	१९.६५	अविशुद्धे विशुद्धे	१८.४८
अभिषिच्य गुरु: शिष्य	६.२०	अव्यक्तं लिङ्गमित्याहु	१२.३७
अभेदबुद्धौ जाताया	१८.४२	अशक्तं मुक्तिदाने तु	१०.११
अभेदब्रह्मस्वारस्ये	१९.५०	अशरीरोऽपि सर्वत्र	१८. ९
अमुञ्चता सदा पार्श्व	३.६१	अशुद्धोपाधिरप्येव	५.४५
अमृतार्थं प्रपन्नाना	१.१२	अशुद्धो वा विशुद्धो वा	८.३८
अयथार्थप्रपञ्चोऽयं	१७.७७	अशेषजगतां हेतु:	८. ५
अयं शिवो गुरुश्चैष	१४.३६	अश्नन् कर्मफलं	१८. ६
अर्घ्यपाद्यादिभि: सर्वै	२१. ५	अष्टकृत्वाऽथ मूलेन	७.२१
अर्चनं वन्दनं दास्यं	९. २	अष्टत्रिंशत्प्रभेदेन	७.४९
अर्चयन्ति शिवं लोके	११.५६	अष्टौ विद्येश्वरा देव	३.४४
अर्चयेद् गन्धपुष्पाद्यै:	६.५४	असदेव जगत् सर्वं	२०.२८
अर्थजातमशेषं तु	२०.२०	असन्मार्गनिरासाय	१.२६
अर्थहीना यथा वाणी	१६.१९	अस्ति सच्चित्सुखाकार	८. ३
अर्पयित्वा निजे लिङ्गे	९.७१	अस्पृशन् मानुषं भावं	३.८४
अर्पितेनान्नपानेन	१०.२५	अस्पृष्टमखिलैर्दोषै:	१.२७
अल्पभक्त्यापि यो मर्त्य	९.१४	अस्पृष्टमदसम्बन्धो	१०.१७
अवतीर्णमिदं शास्त्र	२०.७५	अस्पृष्ट्वाधरमस्पन्दि	८.२९
अवतीर्णमिमां भूमिं	४.५०	अस्मदादि जगत्सर्व	२.१८
अवतीर्णं मया भूमौ	२०.८७	अस्य ज्ञानसमाचारो	१६.७६
अवतीर्णो महीमेना	२१. ८	अस्य माहेश्वरस्योक्तं	१०.२१

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अस्वतन्त्राश्च किञ्चिज्ज्ञाः	१८.१४
अहङ्कारमदोद्रिक्त	१७.४१
अहङ्कारस्य सम्बन्ध	१८.२१
अहन्तां परमां प्राप्य	२०.४०
अहमेव मुनीन्द्राणां	४.४६
अहर्निशमहं वन्दे	१.१२
अहं चेति मतिर्यस्य	१४.३६
अहंप्रत्ययवेद्यत्वाद्	५.५७
अहंभावस्य शून्य	२०.५६
अहं ब्रह्मेति भावस्य	१८.४५
अहं भृत्यः शिवः स्वामी	१४.३७
अहं शिवो गुरुश्चाह	१४.३९
अहिंसा सत्यमस्तेयं	१६.५९
आकाङ्क्षन्ते पदं येषां	३.५०
आगतस्त्वं महाभाग	२०.७९
आगमानुग्रहादेव	२१.१८
आगमा बहुधा प्रोक्ताः	५. ९
आचान्ते भवता पूर्वं	४.४०
आचार एव सर्वेषा	१६.१३
आचारहीनः पुरुषो	१६.१३
आचारं महतां दृष्ट्वा	१६.६५
आचार्यभावमासाद्य	२१.३१
आचार्यवर्य संप्राप्तं	६. ९
आचार्यस्योपशान्तस्य	९.५६
आचार्यं ज्ञानदं शुद्धं	११.२२
आचार्यः सममृत्विग्भि	६.१९
आचिनोति हि शास्त्रार्था	१५. ९
आच्छाद्यते यथा चन्द्रो	१८.२४
आजगाम निजावासं	२१.४१
आत्मज्योतिषि चिद्रूपे	१७.४८
आत्मज्योतिषि सर्वेषा	१६.७२
आत्मज्ञानावसानं	१६.५६
आत्मतत्त्वविचारज्ञं	६. २
आत्मत्वमीश्वरत्वं च	५.३७
आत्मत्वेनानुसन्धानात्	१९.७६
आत्मनस्तद्विनाशे	१४. ८
आत्मनोऽकर्तृभावं च	९.८३
आत्मन्येव विलीयन्ते	२०.१९
आत्मभूतस्य देवस्य	१०.५२
आत्मभोगाय नियतं	११.११
आत्मयोगप्रभावेण	१५.११
आत्मवत् सर्वभूतानि	१६.६२
आत्मशक्तिलतापुष्प	३.१३
आत्मशक्तिविकासेन	१०.६६
आत्मशक्त्यमृतास्वाद	३.६३
आत्मस्थसकलाकारा	१५.५२
आत्मस्थितिविवेकी यः	५.५८
आत्मस्वरूपविज्ञानं	१८.१०
आत्मानन्दपरिस्फूर्ति	२.२९
आत्मानन्देन तृप्तस्य	१९.१६
आत्मानमखिलं	१६.७५
आत्मान्तरालवर्ति	१८.२०
आत्माऽपि सर्वभूताना	१८. ७
आत्मा मायाशरीरस्थः	१८. ९
आत्मारणिसमुत्थेन	१२.२९
आत्मैकत्वानुसन्धान	१९.९३
आदातृदातृदेयानां	९.८३
आदावन्ते च मध्ये च	२०.६७
आदावात्मस्थलं प्रोक्त	१८. २
आदितः क्रमशो वक्ष्ये	१०. ७
आदितः परिशुद्धत्वा	८. ८
आदित्या वसवो रुद्रा	३.५३
आदिप्रसादिनामाथ	१८. ४
आदिप्रसादीत्युक्तोऽयं	१८.५६
आदृतं ब्रह्मविष्ण्वाद्यै	११.१६
आदृतं मुनिभिः सर्वै	६.२९
आदौ नवस्थलानीह	१५. ४
आदौ भक्तस्थलं प्रोक्तं	५.८४
आदौ शरणमाख्यातं	१३. ३
आधारवह्नौ चिद्रूपे	१४.४०

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

आधाराधेयभावेन	१४.३०	आह्वानवर्जनं पश्चा	१०. ५
आधारे कनकप्रख्यं	६.४०	इच्छाज्ञानक्रियारूप	३.२५
आधारे हृदये वापि	६.३९	इच्छाज्ञानादिरूपेण	१.११
आधिदैविकमन्यच्च	५.६७	इतः परं मया नास्ति	२०.७७
आधिदैविकमाख्यातं	५.७०	इति चिन्तयतः साक्षात्	१८.५२
आधिभौतिकमेतद्धि	५.६९	इति तस्य वचः श्रुत्वा	४.४५
आध्यात्मिकं तु प्रथमं	५.६७	इति तस्य वचः श्रुत्वा	२१.२८
आध्यात्मिकं द्विधा प्रोक्तं	५.६८	इति निश्चित्य कथितं	२०.८२
आध्यात्मिकादिना नित्यं	५.६६	इति पञ्चप्रकारोऽयं	९.२४
आनन्दकणिका येषां	३.४९	इति पृष्टो महायोगी	४. ९
आनन्दजलधेर्वृद्धि	१९.२१	इति प्रश्ने कृते	१७.७५
आनन्दस्यैक्यमेतेन	१९. ६	इति प्रसादसुमुखे	२१.१७
आनन्दं पश्यतां पुंसां	१८.७२	इति ब्रुवाणं कल्याणं	२१.१२
आनन्दं प्राप्य बोधेन	१९.१०	इति भावयतो नित्यं	१७.५६
आन्तरा भावपूजा तु	१५.४४	इति यत्पूज्यते सिद्धै	१५.३४
आप्ताधिकारिणः केचि	३.४४	इति यश्चिन्तयेन्नित्यं	१०.५४
आबभाषे गणेन्द्रं	२१. ७	इति यस्य मतिर्नास्ति	१४.३७
आग्नेयं भस्मना स्नानं	७.२५	इति यस्य मतिः सोऽयं	१८.४१
आयुधालङ्कृतप्रान्ताः	३.५२	इति यस्य स्थिरा बुद्धिः	१०. ८
आयुः श्रियं कुलं कीर्ति	३.७०	इति शुद्धेन शिष्येण	६.१०
आरूढपतितो ज्ञेयः	९.४०	इति श्रवणसंसक्तो	१७.६९
आरोग्यकारणं पुंसा	११.१३	इति सङ्कल्पितं पूर्वं	२१.२६
आर्द्रस्नानात् परं भस्म	७.२५	इति संचिन्त्य मनसा	१६.६९
आर्द्रं तु प्रकृतिं विन्द्यात्	७.२६	इति संप्रार्थितः शम्भु	२.२०
आलवालजलास्वाद	४.१९	इति संप्रार्थितो देवो	३.८२
आलोकमात्रनिर्धूत	२०.७४	इति संबोधितः शिष्यो	६.२८
आलोकमात्रनिर्भिन्न	४. ८	इति स्तुवन्तं विनया	२०.८०
आलोक्य करुणादृष्ट्या	२०.८०	इत्याद्या मुनयः सर्वे	३.५५
आलोक्य शैवतन्त्राणि	१.२५	इत्युक्तः परमेशेन	३.७८
आश्रितो नित्य एवासा	५.५९	इत्युक्ते गणनायकेन	२१.५१
आससाद पुरीं लङ्कां	२१. ३	इत्युक्त्वा परमेश्वरः	३.८८
आसञ्जनं समस्तानां	१७.३९	इत्युक्त्वा पश्यतां तेषां	४.१३
आसेवन्त तमीशान	३.४०	इत्युक्त्वा पश्यतस्तस्य	२१. १
आस्पदत्वादशेषाणां	८. ९	इत्युच्चैरगदाद् वचस्तु	२१.५१
आस्वाद्य रमते योगी	१९.११	इत्येवं प्रार्थितः शम्भु	२.२५

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इदन्ताहव्यहोमेन १४.३८
इदं मुख्यमिदं हीन १५.५९
इदानीमेव मे जात २०.७७
इन्दीवरवरज्योति ४.२१
इन्द्रादयः सुराः सर्वे २१.२१
इन्द्रियप्रीतिहेतूनि १७.३६
इन्द्रियाणां बहिर्वृत्तिः १७.१६
इन्द्रियाणां वशीकारो १७.४३
इन्द्रियाणां समस्तानां १७.१५
इन्द्रियाणां समस्तानां १७.४२
इन्द्रियाणां तथात्मत्व ५.५६
इन्द्रियाणि मनोवृत्ति १६.५२
इन्द्रियाणि समस्तानि १७.४९
इन्द्रियानुग्रहः प्रोक्तः १७.१४
इन्द्रियैरेव जायन्ते १७.४५
इन्धनेष्वग्निदग्धेषु ११.५५
इष्टलिङ्गमिदं साक्षा ६.५१
इष्टलिङ्गमिदं स्थूलं ६.४९
ईदृशं शिवबोधस्य २०.८३
ईदृशीं तु गतिं प्राप्ता २१.२५
ईश्वरः सर्वभूतानां १०.१०
ईषत्स्पृष्ट्वाधरपुटं ८.२८
उक्ताखिलाचारपरा ९.९४
उक्तो माहेश्वरः साक्षा ११. १
उक्त्वा भवान् सकल ४.५४
उच्यते नाम सर्वेषां १९. २
उत्तमाङ्गे ललाटे च ७.३२
उत्तमां गतिमाश्रित्य ९.४०
उत्थाय व्योममार्गेण ४.१३
उत्पत्य विलयं यान्ति १८.३१
उदपश्यत् पुरा योग ७.४७
उदारगुणमोङ्कार ३.११
उद्धूलयेत् तेन देहं ७.२९
उन्मज्जन्ति निमज्जन्ति १८.३०
उपतस्थे महादेव ३.३९
उपदेष्टोपदेशानां १५.२१
उपमन्युभृगुव्यास ३.५५
उपमन्युः पुरा योगी ८.४६
उपशान्तिर्भवेत् पुंसा १७.४४
उपशाम्यति यः स्वान्ते १७.७०
उपाधिविहिता भेदा १८.४१
उपाधिः पुनराख्यातः ५.४४
उपायमवदत् तस्मै २.२०
उपायमीश्वरेणोक्तं ८.८१
उपायं वद मे शम्भो २.१९
उपायं शृणुयाच्छिष्यः १७.७३
उपायो घोरसंसार १४.१३
उपासनार्थमन्तःस्थं ६.३६
उपैति लोकविख्यातं ६. २
उभयात्मा शिवो मन्त्रे ८.२२
उमया सममासीनं ३.३६
उमाख्यया महाशक्त्या १२.२३
उल्लङ्घितः सभामध्ये ३.६९
उल्लङ्घ्य पार्श्वमग ३.६७
उवाच शान्तया वाचा ४.३७
ऋगित्याह पवित्रं ते ६.५९
ऋजुश्वेतमनुव्यासं ७.३८
एक एव कथं चैष १२. १
एक एव यथा सूर्य १९.६४
एक एव शिवः साक्षा ५.३३
एक एव शिवः साक्षा ९.५९
एक एव शिवः साक्षा १६.६३
एकत्वेन चिदाकारे १४.३५
एकपुष्पप्रदानेन ९.८६
एकभाजनयोगेन १४.२९
एकभावनिरूढस्य १८.४६
एकभावेन सततं १६.७५
एका शिवेन निर्दिष्टा १०.३५
एकीकृते शिवे भावे १९.४२
एकीभावमुपेतस्य २०.६९

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

एकीभावमुपेतानां २०.५३
एकीभूतस्य चिद्व्योम्नि १८.४५
एकीभूतस्य सिद्धस्य २०.५५
एकीभूते निजाकारे १८.५४
एको वशीकृतः संवि १९.६३
एतच्छ्रवणमात्रेण २०.८७
एतच्छिवपुरं प्रोक्तं १९.५६
एतदर्थविवेको यः १९.५१
एतदस्ति द्वयं यस्य १२.४३
एतन्नामावलम्बेन ८.१२
एतानि नामधेयानि ८.२३
एतानि पञ्च नामानि ७. ४
एतानि मानभूतानि ५. ४
एतानि शिवभक्तस्य ५.३०
एतावदुक्त्वा परम २०.७१
एतेषां देहिनां साक्षी ५.५०
एतेष्वेतेन विधिना ८.३३
एतैर्युक्तो महायोगी १३.१६
एवमन्येऽपि बहवो ३.७६
एवमाचारसंयुक्तो ९.५०
एवमाद्या महाभागा ३.४६
एवमुक्त्वा समासीनं २०.७२
एवमुत्पत्तिभेदेन ७.५१
एवं कृत्वा गुरुर्लिङ्गं ६.२५
एवं नवविधं प्रोक्त १०. ६
एवं नवविधा भक्तिः ९. ३
एवं प्रचोदितः शिष्यो १७.८०
एवं रुद्राक्षधारी यः ७.५९
एवंविधं विभूत्या ७.४०
एवंविधानां चित्राणां ४.४१
एवंविधैर्भावशुद्धै १२.२०
एवं सल्लक्षणोपेतं ७.३८
एवं स्थिरे शिवाद्वैते १७.७९
एष त्वं रेणुकानेन ३.७७
एष मन्त्रो महाशक्ति ८.४१
एषामादिममुत्कृष्ट ७.१४
एष्वेकतममादाय ७.१९
ऐक्यमाचारसम्पत्ति १४. ३
ऐक्यस्थलगतान् २०. १
ऐक्यस्थलमिदं १४. ३
ऐहिके क्षणिके सौख्ये ५.६२
ॐकारतालवृन्तेन ३.३९
ॐकारपूर्वो मन्त्रोऽयं ८.१७
औपचारिकदेहित्वा १६.४३
कः कुर्यात् कर्मकार्पण्ये १६.८१
कटाक्षचन्द्रमा यस्य १५.२६
कटाक्षलेशमात्रेण १५.२८
कटाक्षस्तव कल्याणं ४.४८
कटीतटीपटीभूत ४. ४
कण्ठनालजितानङ्ग ३.३०
कर्तारं सर्वलोकानां २.१४
कथमेष प्रसादीति ११. १
कथमेष समादिष्ट १३. १
कथय स्थलभेदं मे १९. १
कथं भाग्यविहीनानां २१. ९
कथं मत्तगजान् ११.५३
कथं याति परिच्छेदं १६.५७
कथं विज्ञायते लोके ११.२९
कथ्यन्ते गुणसारेण १५. ४
कदाचित् कुत्रचिद्वापि ६.२६
कदाचिदथ कैलासे ३. १
कदाचिद्भस्मना कुर्यात् ७.४०
कपिला कृष्णा च धवला ७. ७
कर्मकालादिकार्पण्य ३.५१
कर्म ज्ञानाग्निना १६.८२
कर्मणा किं कृतेनापि १९.३१
कर्मणा किं नु भाव्यं १४.१७
कर्मणा मनसा वाचा ११.४६
कर्मप्राधान्ययोगेन १२. २
कर्ममूलेन दुःखेन ५.६६

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कर्माणि सर्वाणि निमि	७.६६	किं यज्ञैरग्निहोत्राद्यैः	१५.३५
कर्मातीतपदस्थस्य	१५.६९	किं वा प्रमाणं	२०.२५
करणार्पितमाख्यातं	१७. ३	किं वा फलं न सिद्ध्येत	११.४४
करणेषु निवृत्तेषु	१७.२६	किं वेदैः किं ततः	११.४८
करणैः सहितं प्राणं	१७.२२	किं सत्यं किं नु वासत्यं	१७.६९
करिपोतकराकृष्ट	४.१५	कुक्षौ हस्तस्थलं वापि	६.५२
कलकण्ठकुलालाप	३. ३	कुङ्कुमस्तबकामोद	३. ३
कलङ्कवानसौ चन्द्रः	१५.२३	कुण्डमण्डलिकोपेता	६.१४
कल्पं चैवानुकल्पं	७.१३	कुटीभावाद् यथा	१०.६६
कल्पं तद्ब्रह्म विज्ञेय	७.१६	कूटस्थमचलं प्राज्ञं	१९.८१
कल्पितानि हि रूपाणि	१५.४८	कुतस्तमोविकाराः	१३.२१
कल्याणपुष्पकलिका	३.१६	कुतस्तस्येन्द्रिय	१७.२५
कश्चिदाचारसिद्धाना	१.१३	कुतो देहेन सम्बन्धो	१६.४५
कस्य साक्षात्क्रिया	१७.७४	कुतो ब्रह्मा कुतो विष्णुः	१९.२६
काङ्क्षणीयफलो	३.५०	कुर्वन्नपि महाकर्म	१४.१८
कामक्रोधमहामोह	१३.१७	कुर्वाणः संचरेद् योगी	१५.६०
कामक्रोधादिनिर्मुक्तः	१५.५८	कुलक्रमागताचारं	६. ४
काययोगेन सिद्ध्यन्ति	१६.३७	कृतार्थयन् जनान्	२१.३९
कायवन्तो हि कुर्वन्ति	१६.४१	कृतार्था मे पुरी	२१.११
कार्यं विना समस्तानां	१६.२६	कृताश्वमेधो दक्षोऽपि	३.७४
कायानुग्रहणं पूर्व	१७. २	कृतोद्योगोऽपि निर्माणे	२.१६
कारणं सर्वलोकानां	११.२८	कृत्यानां तु भवान् कर्ता	४.४१
कालातीतं कलातीतं	१९.६८	कृत्वानिष्टमभूद	३.७२
कालिम्ना कालकूटस्य	३.१९	कृष्णा दशविधा जाता	७.५१
काष्ठं विना यथा	१६.३८	कुसुमायुधकोदण्ड	३.२९
कांश्चिद् दृष्टिनिपातेन	२१.३८	कुसुम्भकुसुमच्छाया	३.३३
किञ्चित्कर्ता च किञ्चिज्ज्ञो	५.४७	केन किं वेदनीयं	१८.५४
किञ्चित्सत्त्वरजोरूपं	५.४०	केनचित् कारणेनाहं	४.११
किं तत्त्वं परमं ज्ञेयं	१७.७४	केन वा धर्मभेदेन	१०. १
किं तेन क्रियते तस्य	१५.३८	केवलं कर्ममात्रेण	१६.२६
किन्नरीगीतमाधुर्य	३. ४	केवलं चित्स्वरूपस्य	२०.४४
किं पूर्वकालिकैर्धर्मैः	१०.३२	केवलं सच्चिदानन्द	२०.६८
किमन्यैर्धर्मकलिलैः	१०.२४	केवलं सहजे दाने	१०. २
किमिह बहुभिरुक्तै	८.४९	केवलं संविदुल्लास	१८.६८

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

केवले निष्प्रपञ्चौघे १८.३८
कैलासे मन्दरे १०.७२
कैवल्यकल्पतरवो १३.२७
कोटिसूर्यप्रतीकाशं २.११
कोटित्रयं तु लिङ्गानां २१.२७
कोटित्रयंतु लिङ्गानां २१.३३
कोटिषट्कं तु लिङ्गानां २१.२७
कोल्लिपाक्यभिधानोऽस्ति ३.८३
को वा सूर्यं विना १३.२३
क्रमाल्लक्षणमेतेषां ११. ५
क्रमाल्लक्षणमेतेषां १३. ४
क्रियागमस्थलं पूर्वं १६. २
क्रिया यथा लयं प्राप्ता १५.३७
क्रियारूपा तु या पूजा १५.४४
क्रियां विना तथान्तस्थो १६. ६
क्व जातिवासनायोगः १८.४६
क्व पदार्थपरिज्ञानं १८.६४
क्षणमन्तः शिवं १७.१७
क्षणं गन्धर्वराजानां ३.५७
क्षणं देवमृगाक्षीणां ३.५८
क्षणं स शम्भुर्देवानां ३.५७
क्षमाऽभिषेकसलिलं १२.१६
क्षयातिशयसंयुक्ता १०.१३
क्षयित्वादियुते स्वर्गे ५.६२
क्षान्तिः कारुण्यसम्पत्तिः १३.१५
क्षीराब्धिरिव सिन्धूनां १३.२८
खण्डयन् जैनचार्वाक ४.१२
खण्डयित्वा दुराचारान् २१.३८
गङ्गयेव कृताश्लेषं ३.२२
गङ्गाजलेन तृप्तस्य १९.१६
गङ्गामृतं परित्यज्य १३. ७
गच्छंस्तिष्ठन् स्वपन् १४.२३
गच्छंस्तिष्ठन् स्वपन् १९.३५
गण्डमण्डलपर्यन्त ३.१९
गणेन्द्रं रेणुकाभिख्यं ४.३४
गणेश्वरेण कथित १.२९
गणेश्वरौ रेणुकदारुका २.३३
गतवैषम्यधीर्धीरो १५.६२
गन्धः समाधिसम्पत्ति १२.१७
गन्धर्वपुरवद् १०.६९
गन्धर्ववामनयना ३. १
गर्भस्थो जायमानो वा ११.७२
गम्भीरगुणया वाचा ४.४५
गलिताज्ञानबन्धस्य १९.८७
गलिताहङ्कृतिग्रन्थिः १७.१३
गलिते ममताहन्ते १८.३७
गले भुजद्वये चैव ७.३२
गवां कोटिप्रदानस्य ७.६३
गुणत्रयपदातीत २१.४८
गुणत्रयविभेदेन ५.३८
गुणत्रयात्मिका शक्ति ५.३९
गुणातीतमरूपं च १५. ८
गुणातीतं गुकारं च १५. ८
गुरुजङ्गमलिङ्गात्मा ५.५९
गुरुणा लभ्यते बोध १९.१३
गुरुत्वात् सर्वभूतानां ९.७२
गुरुदेवः परं तत्त्वं १८.७१
गुरुप्रसादचन्द्रेण १९.१८
गुरुभक्तिविहीनस्य ११.२४
गुरुमाहात्म्ययोगेन ११.२५
गुरुमेव शिवं पश्ये १७.६१
गुरुरूपो महादेवो ११.१९
गुरुरेव परं तत्त्वं १३.२३
गुरुरेवात्र सर्वेषां ११.१९
गुरुलिङ्गादिमाहात्म्य ११.५७
गुरुलिङ्गादिमाहात्म्य ११.६७
गुरुवाक्यामृता १७.८१
गुरुशिष्यमयं ज्ञानं १९.१२
गुरुशिष्यसमारूढ ११.३५
गुरुः शिवः परः १३.२९

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

गुरूपदिष्टे विज्ञाने	१७.७२	चतुर्भिः संविराजन्तं	३.२०
गुरूपासनशक्तिश्च	६.४३	चण्डो यथा पुरा भक्त्या	११.५०
गुरोरभ्यर्चनेनापि	९.५१	चन्द्रकान्ते यथा तोयं	५.३६
गुरोराज्ञां न लङ्घेत	९.५७	चन्द्रबिम्बायुतच्छाया	३.१५
गुरोरादेशमात्रेण	१७.६२	चन्द्रवत् स्फाटिकं पीठं	३.२३
गुरोरादेशमासाद्य	१६. ९	चन्द्रस्य मेघसम्बन्धा	१९.३२
गुरोरालोकमात्रेण	६.१३	चन्द्रार्धशेखरं शुद्धं	२.१०
गुरोरालोकमात्रेण	१७.७२	चर्मपात्रे जलं	९.४२
गुरोर्लब्ध्वा महाज्ञानं	१७.६७	चलच्चामरिकाहस्ता	३.४०
गुरोर्लिङ्गस्य माहात्म्य	११.४५	चामराणां विलोलाना	३.४१
गुरोर्विज्ञानयोगेन	१५.३०	चित्तद्रव्यं समादाय	१७.४७
गुरोश्च बोधयोगेन	१८. ५	चित्तवृत्तिषु लीनासु	१७. ९
गुरोः कटाक्षवेधेन	१७.६४	चित्तवृत्तिसमालीन	१४.१५
गुरोः कटाक्षे संसिद्धे	१३.२६	चित्तस्थसकलार्थानां	१७.५१
गुरोः कवलयत्याशु	१७.६३	चित्तारविन्दसंगूढ	४. ६
गुरोः शिवस्य शिष्यस्य	१४.३४	चित् प्रकाशयते विश्वं	१४.३२
गुरौ निजे गुणोदारे	१७.५९	चिदाकारं परब्रह्म	१२. ८
गुरौ शिवे समानस्थः	१७.६०	चिदाकारे पराकाशे	१४.४१
गुर्वादिज्ञानशून्यान्ता	१५. ३	चिदात्मनि शिवे न्यस्तं	२०. ९
गृहे यस्मिन् प्रसूता	९.४५	चिदानन्दनिजात्मस्थो	१५.६३
गृह्यते यदि भक्तेन	९.४२	चिदानन्दपराकाश	१.२१
गौरीपयोधराश्लेष	३.२१	चिदानन्दमयः	१२.३४
घटाकाश इव च्छिन्नं	१९.५८	चिदानन्दमये लिङ्गे	१२.११
घटादिषु पृथग्भूतं	२०.४५	चिदेकनिष्ठचित्तानां	१४.३२
घटोपाधिर्यथाकाशः	१९.५२	चिदेकभाजनं यस्य	१४.३१
घण्टाकर्णः पुष्पदन्तः	३.४५	चिद्रूपं परमं लिङ्गं	६.३१
घृतादिना यथा जिह्वा	१९.३३	चिद्रूपं हि परं तत्त्वं	६.३२
घोरसंसारतिमिर	११.३८	चिद्वह्नौ जुह्वतामन्तः	१७.४७
घोरसंसारसन्ताप	११.३९	चिद्विलासपरिस्फूर्ति	१७.३२
घोरसंसारसर्पस्य	१४.१०	चिन्तयन् हृदयाम्भोजे	८.२५
चकोरस्तृषितः	१३. ९	चिन्तामणिः प्रपन्नानां	३.६५
चक्रनेमिक्रमेणैव	५.४९	चिन्मये शाङ्करे	१०.२६
चक्षुर्हीनो यथा रूप	१६.२०	चूडालं सोमकलया	३.१६
चक्षुरानन्दलतया	३.३५	चूतप्रवालसुषमा	३.३४
चतुर्दशमुखं यज्ञ	७.५८	चोदितान् वासयन्	३.६१

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

चोदिता: परमेशेन	१८.१५	ज्ञानन्त्यतिशयाद्	११.३६
चोरत्ववदपि स्थाणौ	१०.६८	जायते शिवकारुण्यात्	५.५३
छन्दोरूपमृषिं चास्य	६.२१	जायते हंसयोर्लोपा	८.२०
छेदने कर्ममूलस्य	१२.३०	जिज्ञासा शिवतत्त्वस्य	१३.३०
जगत्त्रयविलासात्मन्	२१.४८	जिज्ञासु: सर्वसंसार	६. १
जगत्सिसृक्षु: प्रथमं	२.१४	जितकामा जितक्रोधा	११.३९
जगत्सृष्ट्यादिसंसिद्ध्यै	१६.४०	जीर्णस्ते जाठरे वह्नौ	४.४०
जगदङ्गे परिग्रस्ते	२०.१५	जीवत्वं दु:खसर्वस्वं	१८.१७
जगदेकात्मताभावा	१६.६२	जीवन्मुक्तश्चरेद् योगी	१७.१३
जगदेतच्छरीरं स्याद्	१६.४६	जीवन्मुक्तस्य धीरस्य	२०.१६
जङ्गमस्य तथा ह्येषां	५.२९	जीवन्मुक्तिर्भवेत् सद्य	१६.५५
जङ्गमे च तथा नित्य	९.५८	जीवन्मुक्तो भवेच्छिष्य:	१५.२९
जटाग्रे त्रिकभागे च	६.५३	जीवभावं परित्यज्य	१८.५
जटामुकुटसंयुक्तं	४. ३	जीवितं च कृतार्थं	२१.११
जननोत्थं मृतोत्थं	९.४३	जुहोति ज्ञानयज्वा य:	१४.४०
जन्तुरन्त्यशरीरोऽसौ	५.५४	जुह्वन् समस्तविषयान्	१७.४८
जन्तुर्मरणजन्मभ्यां	५.६३	ज्ञाताप्यह ज्ञेयमिद	१९.५०
जन्मैव जन्म नान्येषां	११.६४	ज्ञातृज्ञेयादिभि: शून्यं	२०.६६
जपति परमभक्त्या	८.४९	ज्ञाते पञ्चाक्षरीमन्त्रे	८. ३
जपस्तु त्रिविध: प्रोक्तो	८.२७	ज्ञाते शिवे जगन्मूले	८. ३
जप: पञ्चाक्षराभ्यास:	९.२३	ज्ञाते शिवे तदज्ञानं	२०.२८
जपादि वाचिकी सेवा	९.१६	ज्ञातोपायस्तत: कुर्या	२.२४
जपायोगाद्यथा राग:	१८.८	ज्ञात्वा य: सतत	१२.४४
जपेत् पञ्चाक्षरीमेता	८.३३	ज्ञानचन्द्रसमुद्भूता	१९.१४
जपेत् पञ्चाक्षरीविद्यां	८. १	ज्ञानचन्द्रोदये जाते	१९.२२
जपेत् समाहितो भूत्वा	८.२४	ज्ञानदीपिकयाऽनेन	१५.१९
जपेदेतां महाविद्यां	८.२६	ज्ञानध्वस्तप्राकृता	१६.८४
जले जलमिव न्यस्तं	२०.६१	ज्ञानपादोदकं चाथ	१९. ३
जाग्रत्स्वप्नसुषुप्ति	२०.२५	ज्ञानमङ्गमिति प्राहु	१२.४२
जातस्य हि ध्रुवो मृत्यु	५.६३	ज्ञानमेव समभ्यस्येत्	१६.२९
जाता मृता: पुनर्जाता:	१८.१६	ज्ञानशक्ति: परा येषां	३.४९
जातेन निधनं प्राप्तं	५.६४	ज्ञानस्य नष्टभावेन	१८.५०
जातोत्कण्ठै: परम	२१.५२	ज्ञानस्य व्यवहारे	१९.४४
जात्यायुर्भोगवैषम्य	३.७९	ज्ञानस्य विषये तत्त्वे	१९.९३
जात्यायुर्भोगवैषम्य	५.४९	ज्ञानहीनस्तथा देही	१६.३२

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ज्ञानहीनं सदा कर्म	१६.२७	ज्योतिर्लिङ्गे चिदाकारे	२०.१८
ज्ञानं चोदकशब्देन	१९. ८	ज्योतिर्लिङ्गे चिदाकारे	२०.६९
ज्ञानं परशिवाद्वैत	१६.३०	झणत्कङ्कणजातेन	३.३९
ज्ञानं ब्रह्मणि तन्नास्ति	२०.६०	त एव वर्णा विख्याता	७.१२
ज्ञानं मुक्तिप्रदं प्राप्य	१६.८१	तच्छान्तौ योगिनां	१७.२७
ज्ञानं वस्तुपरिच्छेदो	१६.१७	तच्छुश्रूषारतः शिष्यः	१७.६८
ज्ञानं विना तथा चित्ते	१६.३४	तज्ज्ञानयोजनं	१९.९०
ज्ञानागमस्थलं चाथ	१६. ३	तज्ज्ञानलिङ्गमाख्यातं	१५.४५
ज्ञानाग्निना दहेत् सर्वं	१२.२९	तटित्सु वीचिमालासु	५.७१
ज्ञानाचारस्थलं	१६. ४	तडित्पिङ्गजटाभारे	४.२६
ज्ञानाचारो यदुक्तोऽयं	१६.७६	तडिदङ्कुरसंकाशे	५.७२
ज्ञानाचार्यः समस्ताना	१५.२५	ततः पञ्चाक्षरीं शैवी	६.२०
ज्ञानादाधिक्यसम्पत्ति	१७.७३	ततः शिवे यथा भक्ति	११.२४
ज्ञानादिव्यवहारोत्थं	२०.६२	ततः सेव्यस्थलं	१७. ४
ज्ञानादेव परानन्दं	१८.७३	ततोऽकायस्थलं	१६. ३
ज्ञानामृतमतिस्वच्छं	१९.११	ततो नन्दीमहाकाला	३.४५
ज्ञानामृतेन तृप्तस्य	१८.७३	ततो निर्देशमुद्दिष्टं	१३. ४
ज्ञानामृतेन तृप्तोऽपि	१६.६५	ततो भक्तस्य माहात्म्यं	११. ५
ज्ञानिनः कर्मसंकल्पा	१६.८३	ततो लिङ्गप्रशंसा च	११. ४
ज्ञानिनां योगयुक्ताना	१२. ८	ततो विवेकसंपन्नो	६. १
ज्ञानिनो यानि कर्माणि	१९.३०	तत्कुलं हि सदा शुद्धं	११.६६
ज्ञानी कर्मनिरूढोऽपि	१९.३३	तत्क्रियालिङ्गमाख्यातं	१५.३७
ज्ञानेन योजयेत्	१६.८०	तत्तच्छरीरयोगेन	१८.१२
ज्ञानेन हीनः पुरुषः	१६.८३	तत्तच्छिवमयत्वेन	१४.२५
ज्ञानेनाचार्युक्तेन	१६.१४	तत्तच्छिवे समर्प्यैष	१७.४०
ज्ञानेन्द्रियाणि पञ्चापि	८.१४	तत्तत् समर्प्य देवाय	११.११
ज्ञाने सिद्धेऽपि विदुषां	१६.१२	तत्तत् सर्वं शिवाकारं	१७.२१
ज्ञायते तन्मयं सर्व	२०. ९	तत्तत् स्वीकारयोगेन	११.१७
ज्ञायते लिङ्गमेवैकं	१२.४५	तत्तन्निवेदयन् शम्भो	१७.३८
ज्ञेयाभावाद्विशेषेण	२०.६६	तत्तृप्त्या तन्मयं	९.९१
ज्योतिर्मयमनिर्देश्य	११.२९	तत्परा आगमा	१६. ५
ज्योतिर्मयं परं लिङ्ग	१२.३९	तत्परिज्ञानयोगेन	१८.२७
ज्योतिर्लिङ्गं सदा भाति	६.३५	तत्प्रसादात्तु मोक्षार्थी	१७.५८
ज्योतिर्लिङ्गानुसन्धान	६.३९	तत्प्राणलिङ्गमुद्दिष्टं	१२. ७
ज्योतिर्लिङ्गे चिदाकारे	२०.११	तत्प्राणानुग्रहः	१७.२४

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तत्फलं लभते मर्त्यो ७.६३
तत्र कुत्रचिदाभोग ४.१७
तत्र प्राणान् विहायापि ९.३५
तत्र लीनमभूत् पूर्व २. ७
तत्र सन्तुष्टचित्तस्य २१.३३
तत्र सन्निहितं साक्षात् १९.५७
तत्र सम्भावितः २१.४२
तत्रस्थं भावयेच्छम्भुं १२.२७
तत्राह्वानं न कर्तव्यं १०.४६
तत्सम्प्रदायसिद्धेन १.२९
तत्सामरस्यविज्ञानात् १२.१२
तत्सामरस्यं शिष्यस्य १९.१९
तत्सुखं कोटिवर्षेण १४.१४
तत् सोपाधिकमाख्यातं ९.८१
तत्स्वीकृतप्रसादैक्य २०. ३
तथा गुरुवरे कुर्या ९.५२
तथा गुरोः प्रसादान्नं ११.१८
तथाज्ञालब्धनेनापि ९.५७
तथाण्डेषु च पिण्डेषु १९.६६
तथात्मनि प्रकाशे १९.४५
तथात्मनि विलीयन्ते २०.२३
तथात्मा देहसङ्घातै १८.२४
तथात्मा व्यापकः साक्षा १९.६०
तथात्मा शक्तिभेदेन १९.६४
तथात्मेत्युपमानार्थ १९.५९
तथा देहजुषोऽप्यस्य १८.२२
तथा देहस्य सम्बन्धा १९.३२
तथा देहात्मनैवास्य १६.३९
तथा पञ्चाक्षरीमन्त्रा ८. २
तथा पञ्चाक्षरो मन्त्रः ८.१३
तथा पिण्डस्थितो ह्यात्मा १९.५२
तथापि प्रार्थनीयं २१.१९
तथा प्रकाशमात्मानं १९.८९
तथा प्रसादं देवेश ३.८१
तथा प्रसादस्वीकाराद् ९.७७
तथा प्रसूतिकायाश्च ९.४४
तथा ब्रह्मापि चैतन्य २०.४६
तथा भवसि तद्रूपं १७.३५
तथापि भावं कुर्वीत १९.३८
तथा भान्ति पराकाशे १९.७४
तथा भूम्यादिरूपेण १०.७०
तथा मुक्तस्य जीवस्य १८.६५
तथा मुक्तस्य जीवस्य १८.६६
तथा योगी शरीरस्थः १७. ६
तथा योगी शरीरस्थो १७. ७
तथा शक्तिर्विमर्शात्मा २०.३८
तथा शम्भुः समस्तात्मा १९.६१
तथा शिवस्य विज्ञाने १७.११
तथा शिवाच्चिदाकाशा १९.७२
तथा शिवात् पराकाशा १९.७३
तथा शिवात् पृथिव्यां १०.४८
तथा शिवात्मनो ९.६७
तथा शिवात् समुत्पन्नं १०.६५
तथा शिवानुरागेण १३.३४
तथा सकायो लोकोऽयं १६.३५
तथा साधु करोमीति २१.२८
तथा सांसारिकं सर्व २०.२४
तथा स्वकीयभक्तेषु १०.७३
तथा स्वशक्तिभिर्व्याप्य १८.३४
तथाऽहङ्कारसम्बन्धा १८. ८
तथा हृदयबीजस्थं २०.४१
तथेति प्रतिशुश्राव २१.३३
तथोपाधिगतं ब्रह्म २०.४५
तदक्षयमिति प्रोक्तं ९.६४
तदधिष्ठातृभावेन १०.४९
तदनन्तसुखं प्राप्य १३.१२
तदन्यविमुखः सोऽयं १३. ५
तदप्रमेयमानन्दं १९.२८
तदभिन्नतया भाति १०.६७
तदर्पणं शिवे १७.५१

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तदवान्तरभेदांश्च	५.२५	तद्धानेष समाख्यातः	१५.५१
तदसज्ज्ञेयरूपत्वा	१२.३६	तद्विना नास्ति वस्त्वेकं	१८.५५
तदाद्वैतसमापत्ति	१०.४१	तद्वैषम्यात् समुत्पन्ना	५.३९
तदाधारः शिवः	१७.२८	तनुरीशस्य चात्मायं	१०.५१
तदाधारा तनुर्ज्ञेया	१७.२९	तन्त्रीझङ्कारशालिन्या	३.३८
तदान्तरात्मभावो	१८.१८	तन्निवृत्तौ कथं भूयः	१७.१२
तदाप्रभृति भक्तोऽसौ	९.२८	तन्वानो विस्मयं	२१.४३
तदा माहेश्वरः प्रोक्तो	१०. ३	तपसां परिपाकेन	२०.७९
तदारभ्य शिवस्तत्र	१०.४५	तपस्तत्कायमूलं हि	१६.४२
तदासक्तमना योगी	१३.११	तपः कर्म जपो ध्यानं	९.२१
तदासक्तमनोवृत्ति	१३.३३	तपो हि मूलं सर्वासां	१६.४२
तदिच्छयाऽभवत् साक्षात्	२.१३	तमपृच्छन् जनाः सर्वे	४. ९
तदिदं सर्वसिद्धान्त	२०.८५	तमागतं महाभाग	२१. ४
तदीया परमा शक्तिः	२.१२	तमागतं महासिद्धं	४.३४
तदीयायुधधारिण्य	३.४३	तमालोक्य विभुस्तत्र	३.६८
तदेकतानता सिद्धिः	१२.२३	तमास्थानगतं देवं	३.१०
तदेकत्वानुभावेन	१८.७१	तमोमूला हि संजाता	१३.२०
तदेकभावमननात्	१२.२४	तयोर्नास्ति भिदा	९.५१
तदेकावेशरूपेण	१८.७०	तयोः समरसत्वं	१९.१२
तदेव ज्ञानयोगेन	१६.२७	तरङ्गादि यथा सिन्धोः	१९.७२
तदेव तु स्वसंवेद्य	९.२०	तरङ्गाद्या यथा सिन्धौ	१९.८३
तदेव लिङ्गं विज्ञेयं	११.२६	तल्लिङ्गं तस्य तु प्राणे	६.२५
तदेव सदनं पुण्य	११ ४२	तस्माच्छतगुणोपांशुः	८.३१
तदेव सर्वभूताना	६.३४	तस्माच्छिवमयं	१०.६७
तदेवं सर्वकालं तु	११.१०	तस्माज्ज्ञानागमा	१७.७३
तदेवाहमिति ज्ञानी	१५.६७	तस्मात् तत्पूजनादेव	१५.३२
तदेषां क्रमशो वक्ष्ये	२०. ५	तस्मात्तपांसि यज्ञाश्च	८.३७
तदैक्यचिन्तया योगी	१९.७९	तस्मात्तमाचरन्	१६.६०
तदैक्यसम्पदानन्द	१९.१९	तस्मात् त्रिपुण्ड्रमेवैकं	७.२९
तद् ब्रह्म तदहं चेति	१९.४९	तस्मात् पवित्रं तल्लिङ्ग	६.४९
तद्भावज्ञापकं ज्ञानं	१५.४५	तस्मात् सर्वप्रयत्नेन	६.४७
तद्भावज्ञापकं ज्ञानं	१५.५१	तस्मात् सर्वप्रयत्नेन	९.६३
तद्भावो जायते	१६.२२	तस्मात् सर्वप्रयत्नेन	९.९२
तद्रूपलिङ्गविज्ञानी	१२. ३	तस्मात् सर्वप्रयत्नेन	१०.६०
तद्वरं जङ्गमं लिङ्ग	९.६१	तमात् सर्वप्रयत्नेन	१३.१२

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तस्मात् स्थायिफल १६.२८
तस्मादन्यत्र विमुखः १०.५६
तस्मादभ्यन्तरे कुर्युः ५.२१
तस्मादद्वैतभावस्य १४.१३
तस्मादद्वैतविज्ञान १९.९६
तस्मादाचारवान् १६.१४
तस्मादेतन्न भिद्येत १०.६३
तस्मादेते महाभागा ५.१५
तस्मादेष समाख्यातः १७. ५
तस्माद् गुरुं महादेवं ९.७८
तस्माद् ज्ञाते महादेवे १६.१७
तस्माद् भावनया १६.६८
तस्मान्नास्ति परं ९.८९
तस्मान्निःश्रेयसप्राप्त्यै ११.२३
तस्मान्माहेश्वरो ९.४८
तस्मान्मुख्यतरं ८.११
तस्माल्लिङ्गमिति ख्यातं ६.३८
तस्माल्लिङ्गं परं ब्रह्म १२.४१
तस्मिन् केवलचिन्मात्र २०.६५
तस्मिन् प्रतिफलत्यात्मा १९.६२
तस्मिन् प्रलयमापन्ने १४. ९
तस्मै दत्तं तु यत्किञ्चि ९.८७
तस्मै निवेदितं सर्वं ९.७२
तस्मै प्रथमपुत्राय २.१५
तस्य दक्षिणकर्णे तु ६.२१
तस्य देहेन सम्बन्धः १८.४३
तस्य पापकथा नास्ति ७.५९
तस्य भासा सर्वमिदं १२.३९
तस्य मध्ये समासीनं ४.२५
तस्य वंशे समुत्पन्नो १.१५
तस्य वाचकमन्त्रोऽयं ८. ५
तस्य वीरशिवाचार्य १.२०
तस्यानुभावं विज्ञाय ४.३५
तस्यानुष्ठेयधर्माणां ५.२६
तस्याभिधानमन्त्रोऽय ८. ६
तस्यासीन्नन्दनः शान्तः १.१७
तस्यां रमन्ते ये शैवाः ५.१६
तस्येति वचनं श्रुत्वा २१.३२
तस्यै मायास्वरूपायै १. ९
तस्यैव परकायस्य १६.५८
तं च कामविनिर्मुक्तं १६.६१
तादृशं तस्य माहात्म्यं २१.३४
तादृशौ तौ महाभागौ २.३१
तानि ज्ञानागमत्वेन १६.२४
तानि भावागमत्वेन १६.१५
तानि सर्वाणि वस्तूनि ८.१६
तापत्रयमहारोग ११.१३
तापत्रयमहावह्नि ५.६५
तामसत्यागसम्बन्धा १४. १
तामाहुः परमाकाशं १९.७१
तां धर्मचारिणीं शम्भोः १. ८
तुर्यातीतपदं यत्तद् २०.२६
तृणवन्मन्यते १०.१३
तृणीकुर्वन् जगज्जालं १५.६५
तृणीकृतजगज्जालं ४.३२
तृप्तिं कुर्यात् सदाकालं ९.९२
तेजो विना सहस्रांशोः १७.७१
तेभ्यो जाता हि रुद्राक्षा ७.४८
तेषामुपरमो यत्र १९.८८
तेषामेतैर्व्रतैर्नास्ति ८.३६
तेषां गृहेषु भुञ्जीत ९.२९
तेषां तु शिवनिर्माल्य ९.७३
तेषां महात्मनां हस्ते १०.२३
तेषां समर्पणादीशे १७.४५
तेषु प्रमथवर्गेषु .२.२६
तेषु शैवं चतुर्भेदं ५.१०
ते सारूप्यपदं प्राप्ताः ३.५१
तैः समं प्राणमारोप्य १७.२६
त्यजन् माहेश्वरो १०.३१
त्यागो देहाभिमानस्य १७.३४

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

त्रयोदशमुखान् ७.५७
त्र्यन्तकमलारण्य ३.१०
त्रिकोट्याचार्यरूपेण २१.३३
त्रिपुण्ड्रधारणोत्कण्ठं ६. ५
त्रिपुण्ड्रमुक्तस्थानेषु ७.३५
त्रिपुण्ड्रं धारयन्त्येव ७.४१
त्रिपुण्ड्रं धारयेन्नित्यं ७.३१
त्रिपुण्ड्रं भस्मना ७.३३
त्रिमूर्तिभेदनिर्मुक्तं १५.४६
त्रिसन्ध्यमाचरेत् स्नानं ७.१९
त्रिस्रोतसेव सम्बद्ध ४.२९
त्रैलोक्यसम्पदालेख्य १. १
त्वत्पदाम्बुकणास्वादा ४.४९
त्वदाज्ञया मयैता २१.४९
त्वदीयधर्मसम्पत्ति २१.१५
त्वन्ताहन्तादिसंरूढं २०.६५
त्वन्ताहन्ताविनिर्मुक्ते २०.५५
त्वन्मुखाच्छ्रोतुमिच्छामि ४.५२
त्वया राजन्वती लोके ४.४४
त्वां विना कस्य २१.१३
त्वां विना शिव २०.८१
दग्धं चैवानुकल्पाख्य ७.१७
दग्धं प्रागुक्तविधिना ७.१८
ददर्श स महायोगी ४.३३
ददाति यः पतिज्ञानं १५.१५
दद्यात्तेभ्यः समादद्यात् ९.४९
दधानं योगदण्डं च ४. ४
दधीचिर्गौतमश्चैव ३.५४
दधौ तस्य महालक्ष्मीः ३.३७
दर्शनात् परकायस्य १७.१४
दर्शनात् स्पर्शनाच्चैव ७.६१
दर्शनात् स्पर्शनाद् १७.३७
दर्शनैः स्पर्शनैः १५.७०
दर्शयित्वा निजाधिक्यं २१.४०
दशसप्तपञ्चवक्त्रान् ७.५५
दानवा राक्षसा दैत्या ३.५३
दानं कुर्याद् यथाशक्ति ९.७९
दानं तु त्रिविधं प्रोक्तं ९.८७
दानं पूजा जपो ध्यान १६.५९
दानात् स्वर्णसहस्रस्य ९.८६
दास्यामि ते वरं २१.१६
दिक्कालाद्यनवच्छिन्नं २०.४२
दिव्यमप्राकृतं नित्यं २. ९
दीक्षयाऽपगतद्वैतं १९. ६
दीक्षया रहितः साक्षात् ६.६१
दीक्षागुरुरसौ शिक्षा १५.१२
दीक्षागुरुस्थलं पूर्वं १५. ५
दीक्षापादोदकं पूर्वं १९. ३
दीक्षा लिङ्गधृतिश्चैव ५.२८
दीपं विना यथा गेहे १६.३४
दीपाकारं यजन् १५.४२
दीयते च शिवज्ञानं ६.११
दीयते परमं ज्ञानं १५. ७
दुराचारैरनाघ्रातं ४.५३
दुर्लभं पापचित्तानां ११.१५
दुर्लभं मानुषं प्राप्य ११.६५
दुर्लभं हि शिवज्ञानं ११.४१
दुर्लभा पापिनां लोके ९. ३
दुर्लभा हि जगत्यस्मिन् १३.२७
दुर्लभा हि शिवे भक्तिः ११.४७
दुर्लभाः सर्वलोकानां २१.१८
दुष्टचित्ता दुराचारा ७.४६
दुःखहेतौ शरीरेऽस्मिन् ५.७४
दुःखैरेतैरुपेतस्य ५.७०
दृष्टे तस्मिन् परानन्दे १९.१५
देवतिर्यङ्मनुष्यादि ५.३५
देवतिर्यङ्मनुष्यादि ५.४८
देवतिर्यङ्मनुष्यादि १८.६३
देवदेव जगन्नाथ २१.४४
देवदेव महादेव २.२२

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

देव्यै पुरा भाषित २०.६२
देशकालाद्यवच्छेद १९.१०
देशकालानवच्छिन्न २०.५४
देशिको हि न लिप्येत १४.१६
देहद्वारेण यद्यत् १७.३८
देहयोगेऽपि देहस्थै १८.३९
देहवानपि निर्देहो १६.५४
देहस्तिष्ठतु वा यातु १६.५५
देहस्थितस्तथा १८.२३
देहस्थितोऽप्ययं १८.१९
देहस्थोऽपि सदा १८.२५
देहाभिमाननिर्मुक्तः १६.५७
देहाभिमानहीनस्थ १६.४६
देहिनां प्रेरकः शम्भु ५:५१
देहिनोऽपि परात्मत्व १८.३६
देहिवद्भासमानस्य १४.२१
द्रष्टव्यं विद्यते १९.१५
द्रुमाणामिव भद्रश्री १३.२९
द्वारतोरणसंरूढ ३. ६
द्वारं ज्ञानावतारस्य ११.१४
द्विजो न तस्यास्ति ७.६६
द्वितीयेन पदार्थेन २०.६७
द्वित्रिद्वादशवक्त्राणि ७.५४
धम्मिल्लमल्लिकामोद ३.२६
धर्म एव समस्तानां १६.६४
धर्मभेदसमायोगा ५.२३
धर्माचारस्थलं १६. ४
धारणीयं समस्तानां ७.४३
धारयन्ति सदाकाल ७.४२
धारयन्ति सदा लिङ्गं ६.५६
धारयन्त्यलिकाग्रेषु ६.५७
धारयेच्छाङ्करं लिङ्ग ६.२८
धारयेत् सार्वकालं तु ७.५८
धारयेदवधानेन ६.५१
धारयेद्यस्त्रिपुण्ड्राङ्कं ७.३८
धारयेन्नित्यकार्येषु ७.१०
धृतश्रीभूतिरुद्राक्षः ८. १
ध्यात्वा क्षणं महादेवं ५. १
ध्यानं शिवस्य रूपादि ९.२४
ध्यानं शैवं तथा ज्ञानं १५.५६
ध्यानेन बोधे च १८.७६
ध्रियते येन स गुरुः ९.५४
न कर्मबन्धे न तपो १८.७६
न किञ्चिदपि मुक्तस्य १८.६७
न किञ्चिद्भाव्यते १९.८६
न चास्ति देहसम्बन्धो १८.११
न चेन्द्रियभवं दुःख १६.४७
न जरा मरणं नास्ति १७.१९
न ज्ञानमात्रं नाचारो १६.१६
न ज्ञानं यत् ततो योगी १६.३६
न तन्नैवेद्यमश्नीया ९.३१
न तयोरन्तरं कुर्याद् ११.२१
न तस्य निष्कृतिः ९.३८
न तस्य सूतकं ९.४३
न तारका महालिङ्गे १२.३८
न तेषां पुनरावृत्ति ६.४२
न देवत्वं न मानुष्यं २०.४७
न देवा न मनुष्याश्च २०.६४
नन्दादीनां गवां वर्णाः ७. ८
नन्दादीनां तु ये वर्णाः ७.१२
नन्दा भद्रा च सुरभिः ७. ६
नन्दिना वेत्रहस्तेन ३.६०
न पश्चान्नैव पुरतो २०.५१
न पश्यति जगज्जालं १४. ६
न पृथ्व्यादीनि भूतानि २०.६४
न प्रपञ्चे निजे देहे १५.६२
न बन्धो न च मुक्तिश्च २०.५०
न बिभेति जरामृत्यो १८.४९
न बुध्यति गुरोर्वाक्यं १७.७१
न ब्राह्मकर्म तस्यास्ति १८.७५

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

न भवेत् कर्मकार्पण्यं १९.३६
न भाति पृथ्वी न जलं २०.१०
न भावेन विना ज्ञानं १९.४३
न मनुष्यो न तिर्यक् च १८.१२
न मनुष्यो न देवोऽहं १६.४८
नमस्तस्मै गुणातीत १. ४
नमस्तस्मै महेशाय १. ७
नमस्ते देवदेवेश २.१८
नमस्ते सच्चिदानन्द २.२३
नमःशब्दं वदेत् पूर्व ८. ७
नमः शिवाय साम्बाय २. १
नमः शिवायेति भस्म ७.२९
न यथा विधिलोपः १६. ७
न योनियन्त्रपीडा ९.१५
नरकं स्वर्गमकरोत् ८.४५
न लङ्घयेद् गुरोराज्ञां १७.६५
न लिङ्गमात्रे तन्निष्ठो १०.५५
नवकं लिङ्गकोटीनां २१.२६
नवचन्दनकान्तार ४.१४
नववल्कलवासोभि ४.२७
न विधिर्न निषेधश्च २०.४४
नश्वराणि शरीराणि ५.५९
न समर्थोऽभवत् कर्तुं २.२१
न समानेषु सम्प्रीति १५.६०
न संयोगो वियोगश्च २०.४८
न सुखं नैव दुःखं च २०.५०
न सूर्यो भाति तत्रेन्दु १२.३८
न स्पृशेन्नैव वीक्षेत ९.२७
न स्वभाव इति १८.२१
नहि स्थावरलिङ्गानां ९.३३
नहुषो रोषलेशात् ते ४.३९
नाकाशे नापरं तत्त्वं २०.१०
नात्मनां जायते १६.२६
नानाकर्मविपाका १८.१३
नानापथमहाशैव २.३०
नानामार्गसमारूढा १८.१४
नानायोगसमापन्ना १८.१३
नान्नतोयसमं दानं ९.४८
नान्यच्छृणोति संदृष्टे २०.२७
नान्यत् तस्य किमेतेन १४.३१
नान्यत् पश्यति योगीन्द्रो २०.२७
नान्यदेवार्चकान् ९.३२
नाभिस्थानावलम्बिन्या ३.२२
नाभेरधस्ताल्लिङ्गस्य ६.५३
नाम्ना प्रतीयते लोके १.३१
नाम्ना रेणुकसिद्धोऽहं ४.११
नार्चयेदन्यदेवांस्तु ९.३१
नावमन्येत कुत्रापि ९.६५
नासामौक्तिकलावण्य ३.२७
नासौ देवो न गन्धर्वो १८.१२
नास्तिको भिन्नमर्यादो ७.४४
नास्ति चेच्छाङ्करी ११.४८
नाह्वानं न विसर्गं १०.४७
निजरूपमिति ध्यानात् १२.४१
नित्यतृप्तस्य मुक्तस्य १८.७४
नित्यनैमित्तिकस्नान ४.२२
नित्यप्रकाशनैर्मल्य ३.१२
नित्यसिद्धः प्रकाशात्मा १९.५७
नित्यसिद्धा भवन्त्येव ११.७३
नित्यसिद्धेन देवेन ११.१२
नित्यसिद्धौ निरातङ्कौ २.३१
नित्यं नियमसम्पन्नः ८.३४
नित्यं भाति त्वदीयेषु १०.७४
नित्यं भासि तदीयस्त्वं १०.५९
नित्यं सन्तोषयुक्ताना १०.७६
नित्यानन्दचिदाकार ५.७३
नित्यानन्दपदे ५.७७
नित्यानन्दशिवप्राप्ति १०.२८
नित्यानन्दे निजाकारे १९.२५
नित्यानि काम्यानि ७.६६

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

नित्यानित्यविवेकिन:	५.७७
नित्ये निर्मलभावने	१५.७१
नित्ये निर्मलसत्त्व	१९.९७
निदानज्ञं विना वैद्य	१३.२४
निधाने महति प्राप्ते	१३. ६
निपेतुस्तस्य नेत्रेभ्यो	७.४८
निमग्नमानसो योगी	१८.३८
निरङ्कुशमहासत्त्वा	३.४६
निरस्तदेहधर्मस्य	१८.३६
निरस्तदोषसम्बन्धं	२. ९
निरस्तभेदजल्पस्य	१८.५३
निरस्तभेदसद्भावे	१०.६९
निरस्तमदनोन्मेषो	१०.१८
निरस्तमलसम्बन्धं	१८.३३
निरस्तविश्वविभ्रान्ति	१५.६८
निरस्तविश्वकालुष्यं	६.३२
निरस्तविश्वसम्बाधो	१४.४२
निरस्तविश्वसंभेदं	१५.२२
निरस्तसर्वदोषत्वाद्	१५.४०
निरस्तसर्वव्यापार	१९.२३
निरस्तहृत्कलङ्कस्य	५.६१
निरस्तोपाधिसम्बन्ध	१९.७५
निरस्तोपाधिसम्बन्धो	१९.३४
निरस्यते गुरोर्बोधात्	१८.१७
निरस्यन्ते तमोभावा:	१३.१३
निराकृत्य तमोभागं	१३.२२
निराधार: शिव: साक्षात्	१७.२९
निरुपाधिकचिद्रूप	९.९३
निरुपाधिकमाख्यातं	६.४१
निरुपाधिकमाख्यातं	९.८२
निरोद्धुं न क्षमं कर्म	११.५३
निर्दग्धकर्मबीजस्य	१४.२१
निर्दिश्यते तु यज्ज्ञानं	१३.२२
निर्दिष्टमुत्तरे भागे	५.१४
निर्देश्ययोगादार्याणां	१३.३०
निर्देही स भवेद्योगी	२०.२१
निर्धूतमलसम्बन्धो	१४. ५
निर्धूतमलसंस्पर्शा	११.३७
निर्धूतसर्वसंसार	४. ५
निर्धूते तत्प्रबोधेन	१८.२८
निर्ध्यातुमसमर्थोऽपि	१६.२३
निर्भावागमसंज्ञं	१८. ३
निर्ममो निरहङ्कारो	१०.१७
निर्ममो निरहङ्कारो	१५.५३
निर्ममो निरहङ्कारो	१८.२५
निर्मलं शिवनामान	१. ३
निर्मलं हि शिवज्ञानं	१६.७८
निर्मलैस्तत्परैर्धार्यं	९.७५
निर्माल्यं तत्तु शैवानां	११. ७
निर्माल्यं निर्मलं शुद्धं	९.७५
निर्मुक्तदोषकलिला	७.२८
निर्विकल्पं निराकारं	२. ३
निर्विकल्पे परे धाम्नि	१६.८०
निर्विकल्पो निराकारो	५.३४
निर्विकारं निराकारं	२०.६३
निर्विघ्नं वर्तसे किं नु	४.३८
निवर्त्य जन्मजं दु:खं	१९.४०
निवारणसमुद्योगी	१०.१९
निषसाद तदभ्याशे	२१. ६
निष्कलङ्कचिदानन्द	१९.७७
निष्कलङ्कमहासत्त्व	३.६४
निष्कलङ्कस्थितो ज्ञान	१५.२३
निष्कलङ्कस्वभावाय	१. ५
निष्कलङ्कं निराकारं	१६.२३
निष्कल: संविदाकार:	८.२२
निष्कलङ्के निराकारे	१९.७९
निष्कलो हि महादेव:	१६.४०
निष्कलो हि महादेवो	११.२०
नि:स्पृहा निरहङ्कारा	११.४०
नि:स्पृहोऽपि महायोगी	१६.६४

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

नीडस्थितो यथा पक्षी	१८.२३	पत्रशाखादिरूपेण	१०.७०
नेत्रद्वितयसौन्दर्य	३.२७	पत्रं पुष्पं फलं तोयं	११.१७
नेत्रयुग्मप्रमाणेन	७.३७	पदेन मणिमञ्जीर	३.२३
नेत्रात् सूर्यात्मनः शम्भो	७.५०	परकाये क्रियापत्तिः	१९.२९
नेदं जगदिति ज्ञाते	१७.१०	परकायोऽयमाख्यातः	१६.४९
नेदं रजतमित्युक्ते	१७.१०	परतत्त्वमयोपाधि	५.४०
नेन्द्रियाणां न देहस्य	५.५७	परब्रह्मणि लीनात्मा	२०.६१
नैतत्साक्षान्महेशोऽयं	१०.५०	परब्रह्म महालिङ्गं	१२.२४
नैतयोरन्तरं किञ्चि	१७.६१	परब्रह्मवपुर्यस्य	१६.५०
नैमित्तिकेषु भसितं	७.१०	परमाकाशमव्यक्तं	१९.७०
नैरन्तर्येण सम्पन्ने	१६.२२	परमाकाशमात्मानं	१८.४०
नैर्मल्यं मनसो लिङ्ग	११. ६	परमात्ममनुर्ज्ञेयः	८.२०
नैव सा शक्यते प्राप्तुं	९.१२	परमात्मस्थलं प्रोक्तं	१८. ३
नोत्कृष्टत्वं न हीनत्वं	२०.५१	परमात्मा शिवः प्रोक्तः	१८.२९
न्यक्कृतप्राकृताहन्तं	४.३२	परमात्मा स्वयंज्योती	१८.३५
पञ्च गावो विभोर्जाताः	७. ६	परमाद्वैतविज्ञान	१५.२०
पञ्चधा कथ्यते सद्भि	९.२१	परमानन्द एवोक्तः	१९. ८
पञ्चधा पञ्चधा यानि	८.१६	परलिङ्गे विलीनस्य	१६.४५
पञ्चब्रह्ममयैस्तत्र	६.१८	परसंवित्प्रकाशात्मा	१९. ९
पञ्चब्रह्माणि पञ्चापि	८.१५	परस्त्रीसङ्गनिर्मुक्तः	१०.१५
पञ्चभूतानि सर्वाणि	८.१४	परस्य ज्ञानचिह्नानि	१६.२४
पञ्चाक्षरजपस्यैते	८.४३	परस्य देहयोगेऽपि	१६.४४
पञ्चाक्षरजपोद्योगी	९. १	परस्य या तनुर्ज्ञेया	१६.३५
पञ्चाक्षरं समुच्चार्य	८.४४	परं नास्तीति बोधस्य	१५.६४
पञ्चाक्षरार्चनस्यैते	८.३७	परं पवित्रममलं	११.२७
पञ्चाक्षरीमिमां विद्यां	८.२४	परं ब्रह्म महालिङ्गं	६.३४
पञ्चाक्षरीं समुच्चार्य	८.४२	पराकाशमये तस्मिन्	२०.५२
पञ्चाक्षरेण मन्त्रेण	८.२१	पराकाशस्वरूपेण	१९.५५
पञ्चाक्षरोपदेशी च	९.४१	पराकाशं जगच्चित्र	१९.७५
पञ्चाशद्धारयेद् विद्वान्	७.५६	परात्परं तु यत्प्रोक्तं	६.५०
पटीरदलपर्यङ्क	४.१६	परात्परं तु यद् ब्रह्म	१५.४९
पतत्येवं सदाद्वैती	१८.४८	परात्मनि क्रिया सर्वा	१९.८२
पतिव्रताया यच्छीलं	१३.३४	परानन्दचिदाकारं	१५.३१
पतिं विना यथा स्त्रीणां	१३.३५	परापरपरिज्ञान	२०.५३
पतिः साक्षान्महादेवः	१०.४०	परापरसमापेक्ष	२०.६०

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पराहन्ताप्रविष्टस्य	१८.३७	पार्वत्या सहितो गणै	३.८८
पराहन्तामनुप्राप्य	१६.५३	पार्श्वस्थतिमिरं हन्ति	१५.२४
पराहन्तामयं प्राहु	२०.३३	पार्श्वस्थपरिवाराणां	३.५६
पराहन्तामये स्वात्म	१४.३८	पार्श्वस्थैरश्रुतः सोऽय	८.२९
पराहन्तासमावेश	२०.३२	पाहि मां परमेशान	२१.४९
परिच्छेदकथाशून्यं	२. ४	पिण्डता पिण्डविज्ञानं	५.२७
परिज्ञाते शिवे साक्षात्	१३. ६	पिण्डाकाशस्थलं	१९. ४
परित्यज्य क्रियाः सर्वा	१५.३३	पिण्डाण्डस्थं यथा	१९.६५
परिपूर्णनिजानन्द	१८.४९	पिनाकिनः पार्श्ववर्ती	४.१०
परिपूर्णप्रबोधेऽपि	१९.३९	पीठस्थितेऽभिषिक्ते च	६.२३
परिपूर्णमहाज्ञानं	१६.७९	पीठिका परमा शक्ति	११.३२
परिपूर्णमहानन्द	१९.३६	पुण्डरीकाकृति स्वच्छं	३.३७
परिपूर्णमहानन्दे	१९.४६	पुण्याधिकः क्षीणपापः	५.३२
परिभूता हताश्चासन्	३.७६	पुनरावृत्तिरहित	५.५१
परिभ्रमन्ति संसारे	५.४८	पुनस्तं प्रार्थयामास	२.१७
परिवीतं मुनिगणैः	४.२७	पुनस्तं प्रार्थयामास	२.२२
परीक्षितेभ्यो दातव्यं	२०.८६	पुनः कर्मविशेषेण	१८.१६
पर्याप्तचन्द्रसौन्दर्य	३.१७	पुनः पुनः समुत्पत्तिं	६.३७
पवित्रं तद्धि विख्यातं	६.६०	पुरा त्रिपुरसंहारे	७.४७
पशुत्वं च पतित्वं च	१४. ९	पुरा देवेन कथितं	१.२८
पश्यतः किं न जायेत	१६.६३	पुरा सानन्दयोगीन्द्रः	८.४४
पश्यतामन्तरात्मानं	१८.५१	पुरा हैमवतीसूनु	४.४३
पश्यतां तत्र सर्वेषां	२१.४३	पूजनाच्छिवभक्तस्य	९.२६
पश्यन्ति परमाकाशे	१९.१४	पूजयन्नपि देवस्य	१०.६२
पश्यन्ति परमां काष्ठां	१९.२२	पूजयेत् तत्प्रसादान्नं	९.७८
पश्यन्ति हृदये लिङ्गं	६.४६	पूजयेत् पतितो वापि	८.३८
पश्यन् सर्वाणि भूतानि	१५.५५	पूजयेत् परया भक्त्या	९.५०
पाञ्चरात्रस्य सांख्यस्य	५. ६	पूजयेदादरेणैव	९.६६
पात्रं शिवप्रसादस्य	२०.८२	पूजयेद् भावपुष्पैर्यो	१५.४१
पादाग्ररेणवो यत्र	११.४२	पूजयेद् भावयेन्नित्यं	१२.४४
पादौ प्रक्षालयामास	४.३५	पूजाकर्माद्यसम्पत्ते	१०.३७
पादोदकं यथा भक्त्या	९.६७	पूजादिव्यवहारः	१०.४३
पादौ सद्येन सर्वाङ्गं	७.२२	पूजाविधौ नियम्यत्वा	१०.६२
पद्मपीठे समासीनं	१२.१५	पूजितेन प्रसन्नेन	२१.६
पापानां भर्त्सनाद्भस्म	७. ५	पूजिते परमेशाने	१६. ९

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पूज्यते भावपुष्पै १२.१३
पूज्यपूजकयोर्लिङ्ग १०.३७
पूरणं सर्वतत्त्वस्य ११.२८
पूर्वपक्षं समादाय १५.१६
पूर्वाश्रयगतान् १०.३०
पूर्वाश्रयनिरासश्च १०. ५
पृथिव्याद्यष्टमूर्तित्व १०.४९
पृथिव्याद्यात्मपर्यन्त १०.५१
पृथ्व्यादिकमिदं सर्वं १०.५०
प्रकाशत इति प्रोक्तं १९.८२
प्रकाशते पराकाशे १९.२०
प्रकाशते परानन्द १९.२४
प्रकाशते यथा नाम्नि १६. ६
प्रकाशते या सर्वेषां २०.१४
प्रकाशमाने चिद्वह्नौ १७.४६
प्रकाशय महीभागे ३.८७
प्रकाशिते शिवानन्दे १९.४१
प्रकृतेस्तु प्रहाणार्थं ७.२६
प्रकृष्टमणिसोपानै ४.२३
प्रच्छन्नश्च प्रकाशश्च २१.३७
प्रज्ञागुरुस्थलं पूर्व १५. ५
प्रज्ञाविभूतियोगेन १३.२५
प्रणतं विनयोपेतं २१.३५
प्रणनाम मुहुर्भक्त्या २१.३४
प्रणम्य परया प्रीत्या २१.१७
प्रणवेनैकवर्णेन ८.१९
प्रणवेनैव मन्त्रेण ८.२१
प्रतिक्षणं भवेत्तस्य ९.६९
प्रतिष्ठाप्यं यथाशास्त्र २१.२९
प्रत्यक्षादिप्रमाणाना २. ४
प्रत्यक्षो गुरुरूपेण ९.५३
प्रत्यङ्मुखमना भूत्वा १२.२०
प्रत्युन्मुखेन मनसा १९.८०
प्रत्युवाच शिवाद्वैत ४.१०
प्रत्येकं द्वादश ७.५७
प्रध्वस्तवासनासङ्गात् १७.३३
प्रध्वस्ताश्रमवर्ण १५.७१
प्रपत्त्या किं न जायेत ११.६३
प्रपद्यते शिवं यत्तु ११.५८
प्रपन्नपारिजातस्य ११.६३
प्रपन्नानां महादेवं ११.६४
प्रपन्नानां विशुद्धानां ११.६८
प्रपन्नार्तिहरे देवे १३.३१
प्रबोधपरमानन्द २.२६
प्रबोध्यते महादेवः ८.१८
प्रभवन्ति कथं देवाः १३. ८
प्रमथान् विश्वनिर्माण २.२६
प्रवर्तय शिवाद्वैतं २०.८७
प्रवालवलभीशृङ्ग ३. ८
प्रवृत्तिरीदृशी लोके ४.५१
प्रशंसन्ति सदाकालं १०.२९
प्रश्नोत्तरप्रवक्ता च १५.१२
प्रसन्नं परमाचार्यं ६. ८
प्रसन्ने सति मुक्तो ९.१४
प्रसादपूर्विका येयं ९.१२
प्रसादमूला सर्वेषां ११.७१
प्रसादं सुलभं दातुं ३.६६
प्रसादादेव सा भक्ति ९.११
प्रसादार्थं महेशस्य ११.७०
प्रसादिस्थलमन्यत्तु ५.२४
प्रसादिस्थलमादौ ११. ४
प्रसादिस्थलमित्येत ११. ३
प्रसादिस्थलसंबद्धाः १८. १
प्रसादेन विना शम्भो ११.७५
प्रसादे शाम्भवे सिद्धे ११.७४
प्रसादोऽनुभवस्तस्य १८.६२
प्रसादोऽपि महेशस्य ११.६९
प्रसादोऽस्य परानन्द १८.६९
प्राकृतानां न धर्मेषु १०.३३
प्राकृतेन शरीरेण १६.५०

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्राकृतैश्वर्यसम्पत्ति	१५.६३	बध्नीयाद् यः शिवालाने	१७.४१
प्राण एव मनुष्याणां	१७.२८	बन्धूककुसुमच्छाया	३.२९
प्राणलिङ्गमिदं सूक्ष्मं	६.५०	बभाषे सस्मितो वार्णी	२१.१२
प्राणलिङ्गं तदाख्यातं	१२. ६	बहिरन्तस्तमश्छेदी	१५.२७
प्राणलिङ्गादियोगेन	१४. २	बहिर्वासनया विश्व	१२.२८
प्राणलिङ्गिस्थलं चादौ	१२. ४	बहिस्तिमिरविच्छेत्ता	१५.२७
प्राणलिङ्गिस्थलं चैतत्	१२. ४	बहुजन्मकृतैः पुण्यैः	५.३१
प्राणलिङ्गिस्थलारूढान्	१८. १	बहुनात्र किमुक्तेन	९.१०
प्राणवद्धारणीयं	६.२६	बहुनात्र किमुक्तेन	११.३१
प्राणात्ययेऽपि सम्पन्ने	१०.२१	बहुनात्र किमुक्तेन	११.७६
प्राणानुग्रहणं पश्चात्	१७. ३	बहुनात्र किमुक्तेन	१२.३५
प्राणान् विमुञ्च सहसा	६.२७	बहुनात्र किमुक्तेन	१३.३६
प्राणापानसमाघातात्	१२. ६	बाणं वा सूर्यकान्तं वा	६.८२
प्राणायामत्रयं कृत्वा	८.२५	बाधकं परमाद्वैत	१४.९०
प्राणो यत्र लयं याति	१२. ७	बाहुद्वितयसौभाग्य	३.३०
प्राणो यस्य लयं याति	१७.२५	बाहुयुग्मे ककुद्देशे	७.३३
प्रातःकाले च मध्याह्ने	७.३९	बाह्यक्रियां परित्यज्य	१५.५०
प्रातः संफुल्लकमल	३.१८	बाह्यपीठार्चनादेतन्	६.५५
प्रादुर्भूतं तमालोक्य	४. २	बाह्यमाभ्यन्तरं चेति	६.३०
प्राप्तविद्यो महादेवात्	२.१४	बाह्यमाभ्यन्तरं चैव	९.१७
प्रामाण्यं सदृशं ज्ञेयं	५.१३	बाह्यं च धारयेल्लिङ्ग	६.४८
प्रायश्चित्तेषु सर्वेषु	७.११	बाह्यार्थानामनुभवं	१७.१७
प्रार्थयामास देवेशं	३.७८	बाह्या स्थूलान्तरा सूक्ष्मा	९. ६
प्रार्थयेदग्रतः शिष्यः	६. ८	बिम्बत्वं प्रतिबिम्बत्वं	५.३७
प्रीतोऽस्मि तव चारित्रैः	२१.१६	बीजे यथाङ्कुरः सिद्धः	५.३६
प्रेरकं यो विजानाति	५.६०	बुद्धितत्त्वगतैर्बौद्धैः	५.५६
प्रेरकं शङ्करं बुद्ध्वा	१०.३९	बुद्धियोगात्तदासक्तो	१०.१०
प्रेषितं सकलं द्रव्य	९.३०	बुद्धिस्तदात्मिका शक्ति	१२.१९
फलं क्रियावतां पुंसां	१६.२८	बृहत्वाद् बृंहणत्वाच्च	६.३८
फलाभिसन्धिनिर्मुक्त	९.८२	बोधकोऽयं समाख्यातो	१५.१३
फलाभिसन्धिसहितं	१६.१२	बोधात् परात्मभावित्वा	१८.१९
फलाभिसन्धिसंयुक्तं	९.८१	बोध्यमानः स गुरुणा	१७.६८
फलोत्पत्तौ विरक्तस्य	१६.११	बोध्यानि पञ्चभिर्वर्णैः	८.१५
फेनोर्मिबुद्बुदाकारं	१०.६४	बौद्धादिप्रतिसिद्धान्त	१.२६
बद्धेन्द्रियनवद्वारे	१२.१५	ब्रह्मज्ञाने समुत्पन्ने	१९.९५

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ब्रह्मणा विष्णुना पूर्व	११.३०	ब्रह्मोपेन्द्रमहेन्द्राद्या	३.५२
ब्रह्मभूयंगतो योगी	२०.४०	ब्राह्मणः क्षत्रियो वाऽपि	११.५४
ब्रह्म यद्वोध्यते तत्तु	१५.४६	ब्राह्मणो वान्त्यजो वापि	७.६२
ब्रह्मविष्णुसुराधीश	२१.४४	ब्रूयात् तत्त्वं गुरुस्तस्मै	१७.७५
ब्रह्मविष्ण्वादयः सर्वे	१५.३६	भक्तमार्गक्रिया चैव	५.२९
ब्रह्मविष्ण्वादयो देवा	६.५६	भक्तस्थलं प्रवक्ष्यामि	५.२५
ब्रह्मविष्ण्वादयो देवा	१९.२७	भक्तस्थलं समाख्यातं	१०. १
ब्रह्मविष्ण्वादयो देवाः	१२.३३	भक्तादिधामार्पित	१४.४४
ब्रह्मविष्ण्वादिदेवेषु	८. ४	भक्तादिव्यवहारेण	५.२२
ब्रह्मविष्ण्वादिभिर्देवै	३.५८	भक्ताद्यैक्यावसानानि	१५. २
ब्रह्महा मद्यपायी च	७.६०	भक्तानामुपचारेण	१५.३९
ब्रह्माण्डकुण्डिकाषण्ड	३.१४	भक्तानां हृदयाम्भोजे	१०.७१
ब्रह्माण्डबुद्बुदस्तोमा	१८.२०	भक्तिः शैवी महाघोर	४.४४
ब्रह्माण्डबुद्बुदोद्भूतं	१७.६३	भक्तिः स्थिरीकृता	९. ५
ब्रह्माण्डबुद्बुदोद्भेद	१४. ७	भक्तेर्यदा समुत्कर्षो	१०. ३
ब्रह्माण्डशतकोटीना	२०.२९	भक्तो माहेश्वरश्चेति	१२. १
ब्रह्मादयः सुरा येषा	३.४७	भक्तो माहेश्वरश्चैव	१२. २
ब्रह्मादयः सुरा सर्वे	११.३३	भक्त्या चूडामणिं कान्तं	३.४२
ब्रह्मादिदेवताजाल	१०.११	भक्त्या तदपि विख्यातं	९.८५
ब्रह्मादिविबुधान्	११.५८	भक्त्या पञ्चाक्षरेणैव	८.३५
ब्रह्मादिसम्पत्सु	९.९४	भक्त्या परमया युक्तः	९.२५
ब्रह्मादिस्थानभूतानि	१२.२५	भग्नचक्रायुधः पूर्वं	३.७३
ब्रह्मादिस्थानविमुखो	१०. २	भद्रासने निजे रम्ये	२१. ५
ब्रह्मादीनां च देवानां	८.४८	भवदागमसंपत्ति	४.४६
ब्रह्माद्या देवताः सर्वा	१६.४१	भवदुक्तो ह्युपायो मे	२.२४
ब्रह्माद्या विबुधाः सर्वे	७.२७	भवद्दर्शनपुण्येन	४.४७
ब्रह्माद्या विबुधाः सर्वे	११.७३	भवन्तमेकं शंसन्ति	४.४२
ब्रह्माद्याः किं नु कुर्वन्ति	१५.६९	भव शर्व महेशान	२.२३
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च	६.४५	भवादृशानां सिद्धानां	४.५१
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च	७.४९	भवेन्माहेश्वरः कर्मी	१०.३८
ब्रह्माद्यैर्मलिनप्रायै	१०. ९	भस्मत्रिपुण्ड्रधारी	७.४४
ब्रह्मेति लक्षणं ज्ञानं	१९.९४	भस्मधारणसंयुक्तः	७. १
ब्रह्मेति लिङ्गमाख्यातं	६.६०	भस्मना विहितस्नानं	७.४५
ब्रह्मेति विश्वधामेति	१२.४५	भस्मना विहितं स्नानं	७.२३
ब्रह्मेति व्यपदेशस्य	१. २	भस्मस्नानयुताः सर्वे	७.२८

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भस्मस्नानवतां पुंसां	७.२४	भावाभावविनाशं च	२०. ५
भस्मालङ्कृतसर्वाङ्गं	४.३०	भावाभावविनिर्मुक्तो	२०.५६
भस्मोत्पादनमुद्दिष्टं	७.१३	भावार्पितमिदं प्रोक्तं	१७.५०
भस्मोद्धूलननिष्णातं	६. ५	भावेन किं फलं पुंसां	१६.२५
भस्मोद्धूलितसर्वाङ्गं	४. ३	भावेन गृह्यते देवो	१५.३८
भस्मोद्धूलितसर्वाङ्गा	७.६५	भावेन नास्ति सम्बन्ध	१९.३८
भस्मोद्धूलितसर्वाङ्गैः	४.२६	भावेन यदुपस्थानं	१६.७१
भाण्डस्थलं ततः प्रोक्तं	२०. ४	भावेन हि मनःशुद्धि	१६.६९
भारती यस्य विदधे	१.१४	भावो मानसचेष्टा	१६.६७
भाव एव हि जन्तूनां	१७.५२	भावो यस्य स्थिरो	१७.५९
भाव एवास्य सर्वेषां	१६.६७	भावो विकारनिर्मुक्तो	१८.४४
भावकर्मसमायुक्तं	१६.२५	भावो हि निहित	१९.३९
भावचिह्नानि विदुषो	१६.१५	भाव्यते वर्णरूपेण	८.२९
भावनातीतमव्यक्तं	६.५१	भिक्षामात्रप्रदानेन	९.९०
भावनाविहितं कर्म	१६.६८	भिक्षाशी समबुद्धिश्च	१५.५३
भावनिष्पत्तिकं चाथ	१९. ४	भिन्नाधारसमायुक्ता	५. ३
भावप्रकाशनं पश्चात्	१९. ५	भुज्यमाना यथायोग	२०.१८
भावयन् परमो योगी	१९.८४	भुञ्जीयाद् रुद्रभुक्तान्नं	९.७०
भावयन् शिवरूपेण	१०.५४	भूतिरुद्राक्षसंयुक्तो	९. १
भावयन् सततं योगी	१९.९६	भूत्वा कर्मवशाज्जन्तु	५.६५
भावयित्वा सदाकालं	१२.१५	भूयो भूयः समभ्यासात्	८.४०
भावयेत्तत्र विमलं	१२.२६	भृगोश्च शङ्कुकर्णस्य	३.७२
भावयेत् परमानन्द	१६.१८	भेदबुद्धिसमुत्पन्न	१४.११
भावयेत् सर्वकर्माणि	१६.७३	भेदबुद्धिः समस्तानां	१८.४२
भावयेद् यः सुमनसा	१९.५३	भेदशून्ये महाबोधे	१८.५०
भावयेल्लीनमात्मानं	१४.४२	भेदस्य कर्महेतुत्वात्	१०.४२
भावलिङ्गस्थलं चाथ	१५. ६	भेदात् तं पूजयेन्नित्यं	१०.३९
भावशुद्धेन मनसा	१६.२१	भो कल्याण महाभाग	६. ९
भावशुद्धौ भवेन्मुक्ति	१७.५२	भोक्ता भोग्यं प्रेरयिता	५.४१
भावस्य शुद्धिराख्याता	१७.५३	भोक्ता भोग्यं भोज	१७.५०
भावस्य स्थिरतायोगः	१३.३१	भोक्तृताभावगलितः	१८.२६
भावहीनस्तथा योगी	१६.२०	भोक्तृत्वं चैव भोज्यत्वं	५.३८
भावहीनां न गृह्णाति	१६.२१	भोक्तृभोज्यपरित्यागा	१८.२६
भावः प्रतीयमानोऽपि	१९.३७	भोज्यमव्यक्तमित्युक्तं	५.४३
भावा बुद्ध्यादयः सर्वे	१९.८३	भ्रमन्ति घोरसंसार	१८.१६

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भ्रान्तिमूलप्रपञ्चस्य	१२.१८	मलकोशे शरीरेऽस्मिन्	५.७२
भ्रूमध्यादूर्ध्वमार्गे	१२.२८	मल्लीमरन्दनिष्यन्द	३. २
भ्रूमध्ये स्फटिकच्छायं	६.४०	महतां शिवतात्पर्य	११.४४
मणिकङ्कणकेयूर	३.२०	महाकाशस्थलं	१९. ५
मणिताटङ्करङ्गान्त	३.२८	महातापत्रयोपेता	३.८०
मण्डले स्थापयेच्छिष्यं	६.१७	महाभस्मेति संचिन्त्यं	७. २
मत्पादताडनादासीत्	३.७१	महासत्ता महासंविद्	१८.५५
मत्समो नास्ति लोकेषु	२१.१०	माणिक्यदीपकलिका	३. ६
मत्स्यकूर्मवराहाङ्गै	५.६४	माणिक्यमुकुटज्योति	३.१५
मथिताच्छास्त्रजलधे	१९.१३	मातरं तां समस्तानां	१.१०
मदद्वैतपरं शास्त्रं	३.८६	मातृमेयप्रमाणाद्धि	२०. ७
मरालालापवाचालु	४.२०	मातृहा पितृहा चैव	७.६०
मदीयलिङ्गसम्भूतं	३.८५	माधवीमल्लिकाजाती	४.१६
मद्भक्तेन दधीचेन	३.७३	मानसो हि जपः श्रेष्ठो	८.३२
मद्भाग्यगौरवादद्य	२१. ९	मानुषाकारसम्पन्नं	२१. ७
मध्यमानामिकाङ्गुष्ठै	७.३७	मानुषीं योनिमासाद्य	३.७९
मध्याङ्गुलित्रयेणैव	७.३६	मान्त्री दीक्षेति सा प्रोक्ता	६.१४
मनःप्रसादमतुलं	११.१०	मा भैषीर्मम भक्तानां	३.८२
मनःप्रसादयोगेन	११. २	मायाकृता परे तत्त्वे	१८.६३
मनःप्रसादसिद्ध्यर्थ	११. ८	मायाब्धितारणोपाय	१५.१०
मनो महेशध्याना	९.१८	मायामलविनिर्मुक्तौ	२.२८
मनो महेशप्रवणं	९.२०	मायारजन्या विरमे	१९.२३
मनो यत्र प्रवर्तेत	१७.२०	मायाविकल्पजं	१२.११
मनोवाक्कायभेदैश्च	९.१७	मायाशक्तिनिरोधा	१४. ८
मन्त्रन्यासादिभूतेन	८.१८	मायाशक्तिवशादीशो	५.४६
मन्त्रपूते कलां शैवीं	६.२३	मायासम्बन्धराहि	१६.४३
मन्त्रस्यास्यैव माहा	८.४८	मायासिन्धुर्लयं	१४. ७
मन्त्रः पञ्चाक्षरो ह्येष	८. ७	मायी महेश्वरस्तेषां	५.३५
मन्त्रेण तमसेवन्त	३.४२	मार्गेऽन्नपानदानं	९.४७
मन्त्रेणानेन संसिद्धा	८.४७	माहात्म्यं निजभक्तानां	३.६८
मन्दस्मितमितालाप	३.१८	माहात्म्यं वाचिकस्यैत	८.३१
मन्दारचन्दनप्रायै	४.१८	माहेश्वरप्रशंसादौ	१०. ४
मन्दारवकुलाशोक	३. २	माहेश्वरस्थलं	१०. ४
मम प्रतापमतुलं	३.८७	माहेश्वरस्थले सन्ति	१६. २
मम भक्तमवज्ञाय	३.७१	माहेश्वरस्थले सिद्धं	१६. १

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

माहेश्वरः प्रसादीति	१३. १	मोक्षश्रीबिम्बरूपेण	१५.१८
माहेश्वराणामन्तःस्थो	१०.७६	मोक्षाय कारणं प्रोक्तं	१९.४३
माहेश्वराः समाख्याताः	५.२१	मोचयेत् सकलान्	१८.६१
माहेश्वरो न मुञ्चेत	१०.२२	मोदते यः सुखी	१७.६७
मां विना कस्य लोकेषु	२०.७८	मोहग्रन्थिं विनिर्भिद्य	१८.५९
मिथ्या तदन्यदित्येषा	१९.४७	मोहान्धकारतपनं	४.३३
मिथ्येति भावयन् विश्वं	१७.५५	मौनं घण्टापरिस्पन्द	१२.१८
मुक्तः संशयपाशतः	१७.८६	य इदं शिवसिद्धान्तं	२१. २
मुक्तातारकितोदार	३. ७	यजुषा गीयते यस्मात्	६.६२
मुक्तावलयसम्बद्ध	३.१७	यज्ञादयः क्रियाः सर्वा	१५.३४
मुक्तिदश्चेति यो	१०.१२	यज्ञास्तपांसि मन्त्राणां	११.७०
मुक्तिरित्युच्यते सद्भिः	१७.४३	यतेश्चत्वारि कर्माणि	१५.५६
मुक्तिरूपमिदं	१२.४६	यत्कटाक्षकला	९.५५
मुक्तिरेव परा तृप्तिः	१८.७४	यत्किञ्चिद् दीयते	९.८८
मुक्तो भवति संसारा	१७.७८	यत्किञ्चिद्भाषितं	१४.२६
मुख्यवृत्त्या तदन्येषां	८.१०	यत्तस्य धारणं चित्ते	६.३१
मुख्यार्थेऽसम्भवे	१९.९०	यत्र कुत्रापि वा द्वेष्टि	१३.१८
मुख्यार्थो लक्षणार्थश्च	२०. ६	यत्र चाचारनिन्दा	९.३७
मुद्ददेवेति विख्याता	१.१६	यत्र तद्देशिकैरुक्तं	१५.३७
मुद्ददेवाभिधाचार्यो	१.१५	यत्र नास्ति भिदायोगा	२०.४९
मुद्दानात् सर्वजन्तूनां	१.१६	यत्र यत्रेन्द्रियासक्ति	१९.८७
मुनयः सिद्धगन्धर्वा	६.४५	यत्र यान्ति लयं तेन	१६.५२
मुनिकन्याकरानीत	४.१९	यत्र विश्राम्यतीशत्व	१. ७
मुनिर्विनयसम्पन्नो	४.३६	यत्र स्थावरलिङ्ग	९.३४
मूर्तिं विना तथा योगी	१६.३८	यत्फलं लभते	९.६४
मूर्त्यात्मनैव देवस्य	१६.३९	यत्फलं लभ्यते	९.९०
मूर्धन्यचन्द्रविगल	१२.१४	यत्सूक्तिदर्पणाभोगे	१५.१८
मूर्ध्नि वा कण्ठदेशे वा	६.५२	यत्सूक्तिधारा विमला	१५.१७
मूलं विद्या शिवः शैवं	८.२३	यत्सौख्यं तत्समावेशे	१३. २
मूलाधारे च हृदये	६.३५	यथाकाशमविच्छिन्नं	१८.६६
मूलाधारेऽथवा चित्ते	१५.४२	यथाकाशो विभुर्ज्ञेयः	१९.५९
मृच्छिला विहिता	१५.४०	यथा काष्ठादिकं	१९.४०
मृणालवल्लरीतन्तु	३.३२	यथागमः प्रमाणं	१६. ७
मृत्युकाले च रुद्राक्षं	७.६४	यथा गुरौ यथा लिङ्गे	९.५८
मोक्षलक्ष्मीपरिष्वङ्ग	३.४८	यथा चन्द्रे स्थिरा	२०.३८

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

यथा ज्योतिषि भासन्ते	१९.७४	यद्भासा भासते विश्व	१. ४
यथा तथा न भिद्यन्ते	५.२०	यद्यच्चिन्तयते योगी	१४.२५
यथा तन्तुभिरुत्पन्नः	१०.६५	यद्यत्करणमालम्ब्य	१७.४०
यथात्मशिवयो	१०.४८	यद्यत् पश्यति सामोदं	१४.२४
यथा देवे जगन्नाथे	९.५२	यद्यत् पश्यन् दृशा	१७.२१
यथा न भिन्नमाकाशं	१९.६६	यद्यत् प्रसादितं भुक्त्वा	११.१२
यथाऽनादिर्महादेवः	८.१३	यन्त्रमन्त्रकलासिद्धान्	२१.४१
यथा पद्मपलाशस्य	१८.२२	यन्मनःकुमुदं	१९.१८
यथा पिण्डस्थ आकाश	१९.५१	यन्मात्रासहितं	१९.२८
यथा पुष्पपलाशादि	१९.७३	यमादियोगतन्त्रज्ञं	४. ७
यथा मेघाः समुद्भूता	२०.२३	यया दीक्षेति सा तस्यां	१५. ७
यथा मे मानुषो भावो	३.८१	यया महेश्वरः शम्भुः	१. ९
यथाविधि यथायोगं	६.१६	यया विज्ञायते सम्यक्	१४.३९
यथा व्याप्य जगत्सर्वं	१८.३४	यस्तस्य वाजपेयानां	८.४२
यथा शास्त्रोक्तविधिना	७.१४	यस्माच्छिवप्रसादात्	११.६७
यथा शिवप्रसादान्न	११.१८	यस्मादतः सदा जप्यो	८.१२
यथा शिवोऽनुगृह्णाति	१७. ६	यस्मादतः समाख्याता	६.११
यथा सूर्यसमाक्रान्तौ	१९.८९	यस्मादेतत् समुत्पन्नं	१०.६३
यथास्थानं यथावक्त्रं	७.५३	यस्मिन् ज्योतिर्गणाः	१८.३१
यथा स्वप्नकृतं वस्तु	१७.११	यस्मिन् ज्योतिषि चिद्रूपे	२०.५८
यथैको वायुराख्यातः	१९.६०	यस्मिन्नप्राप्तकल्लोले	१९.१७
यथैवाङ्कुरतो बीज़ं	९.११	यस्मिन् प्रतिष्ठिता	२०.३६
यदाचार्यकुलाज्जाता	१.१९	यस्मिन् समस्त	१८.३२
यदा दीक्षाप्रवेशः	९.२८	यस्य कार्यदशा नास्ति	२०.७०
यदा निरस्तजीव	१८.१८	यस्य गेहं स्वयं	२१.१०
यदा योगी निजं देहं	१७.३५	यस्य चित्तं शिवे	११.६६
यदा शिवकलायुक्तं	१०.४५	यस्य ज्ञानं तमोमिश्रं	१३.१४
यदाहुः संसृतेर्मूलं	१६.८२	यस्य प्रतापमतुलं	२१.२१
यदि प्रमादात् पतिते	६.२७	यस्य रूपमिदं ख्यातं	२०.४२
यदीयकीर्तिपुष्पेण	१.२२	यस्यैव परलिङ्गस्य	१२.३२
यथा वह्निरमेयात्मा	१९.६१	यस्योर्मिबुद्बुदाभासः	१. ३
यदृच्छालाभसन्तुष्टो	१५.५४	यः पिबेच्चिन्तयन् रुद्र	७.६४
यदेतद्रूपतां धत्ते	१२.४०	यः प्राणलिङ्गार्चन	१२.४८
यद्गृहे शिवनिन्दा	९.३७	यः शिवत्वसमावेशो	६.१३
यद्गृहेष्वन्यदेवोऽस्ति	९.३२	यः शिवः स गुरुर्ज्ञेयो	११.२१

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

यः सदा वर्तते योगी	१२.१०
यः सदा वर्तते योगी	१४.३३
यः सर्वभूताधिपतिं	९.३८
यामाहुः सर्वलोकाना	१. ८
या या चेष्टा समुत्पन्ना	१४.२७
यावन्तः कर्मयज्ञाद्या	८.३०
युगपच्छिवलिङ्गानां	२१.२९
ये देहवृत्तिं कुर्वन्ति	१०.२५
ये धारयन्ति हृदये	६.४२
ये न जानन्ति ते	१२.४७
ये न जानन्ति देवेशं	११.६५
येन रक्षावती जाता	१.२३
येन संसारसम्बन्ध	१६.३०
ये पश्यन्ति जगज्जालं	११.३७
ये प्रपन्ना महादेवं	११.६१
ये भजन्ति महादेवं	११.४६
ये भवन्ति महात्मान	७.६५
ये ये भावाः समुत्पन्ना	१९.८५
ये लिङ्गधारिणो	९.७३
येषामस्ति शिवज्ञानं	११.३८
येषामीषत्करं विश्व	३.४८
येषामेतद् द्वयं	११.४१
येषां विक्रमसन्नाहा	३.५१
योगादुभयधर्माणा	१८.२०
योगिनः सनकाद्याश्च	७.२७
योगिनो यत्र लीयन्ते	११.३१
योजयेत् स शिवः	१७.२२
यो द्वेष्टि सकलान्	१३.१९
यो भस्मरुद्राक्षधरो	७.६६
यो लिङ्गधारी नियता	६.६३
योऽसत्यभावनायुक्त	१३.१९
रक्षणात् सर्वभूतेभ्यो	७. ५
रक्षा च मोक्षकार्येषु	७.११
रक्षा चेशानवक्त्राच्च	७. ९
रज्जौ भुजङ्गवद्	१९.२९
रज्जौ सर्पत्ववद्भाति	१०.६८
रणे विष्णववतारेण	२१.२२
रत्नसिंहासनं दिव्य	३. ९
रराज राजहंसानां	३.४१
रसवेधाद् यथा लोहो	१७.६४
रहस्यमेतत् सर्वज्ञः	२०.८४
रागद्वेषादयो भावाः	१९.८८
रागद्वेषादिकलुषं	१६.७८
रागद्वेषादिसंपन्न	५.६३
रागो वा जायते	१७.१५
रावणो हि मम भ्राता	२१.२०
रुद्रनेत्रसमुत्पन्ना	७.४९
रुद्राक्षधारणं पश्चात्	५.२८
रुद्राक्षधारणं वक्ष्ये	७.५३
रुद्राक्षधारणादेव	७.४६
रुद्राक्षधारणादेव	७.६०
रुद्राक्षधारणादेव	७.६१
रुद्राक्षधारणाल्लोके	७.६१
रुद्राक्षं धारयेत् प्राज्ञः	७.५२
रुद्राघ्रातं सदा	९.७०
रुद्राध्यायादिका	९.२३
रेणुक त्वां गणाधीश	२१. ८
रेणुकं तं समालोक्य	२०.७२
रेणुकं त्वां विजानामि	४.५०
रेणुको दारुकश्चेति	२.२७
रेणुकोऽपि महातेजा	२१.३७
रे रे रेणुक दुर्बुद्धे	३.३९
लक्षीकृते शिवे	१७.४३
लक्ष्म्यादिशक्तयः सर्वा	६.५७
लङ्घनं मम भक्तानां	३.७०
लब्धवान् परमेशाना	८.४६
लभ्यते शिवरूपत्वं	९.५५
लयं गच्छति यत्रैव	६.३७
लयः सर्वपदार्थाना	१८.६२
लिङ्गकोटित्रयस्येह	२१.३०

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

लिङ्गधारणमाख्यातं ६.३०
लिङ्गधारणमाख्यातं ६.५८
लिङ्गधारणसंयुक्तं ६. ६
लिङ्गधारी सदा शुद्धो ६.५४
लिङ्गनिष्ठस्य किं तस्य १०.२८
लिङ्गनिष्ठादिभावेन ११. २
लिङ्गनिष्ठापरं १०.२९
लिङ्गनिष्ठापरो १०.४७
लिङ्गपूजादिकर्म १०.४२
लिङ्गपूजापर १०.४३
लिङ्गपूजामकृत्वा १०.२३
लिङ्गमित्युच्यते १२.३४
लिङ्गमित्युच्यते १९.६९
लिङ्गमेव परं ज्योति १५.३२
लिङ्गस्थलानि कथ्यन्ते १५. १
लिङ्गस्थलानि कानीह १५. २
लिङ्गस्य धारणं पुण्यं ६.२९
लिङ्गस्यापि च माहात्म्यं ११.२५
लिङ्गं च द्विविधं ९.६०
लिङ्गं चिदात्मकं ब्रह्म १२. ३
लिङ्गं ज्योतिर्मयं १९.७०
लिङ्गं तु त्रिविधं प्रोक्तं ६.४९
लिङ्गं सद्रूपतापन्नं १५.३१
लिङ्गाङ्गयोगतत्त्वज्ञं ६. ६
लिङ्गाङ्गस्थलभेदज्ञं ६. ६
लिङ्गान्नास्ति परं १२.४९
लिङ्गार्चनपरः १०.४४
लिङ्गार्चनपरो १०.२७
लिङ्गार्चनरतायाश्च ९.४४
लिङ्गार्चनरतिर्यस्य १५.३५
लिङ्गी महेश्वरश्चेति १२.३७
लिङ्गे प्राणं समाधाय ९. ८
लिङ्गे यस्य मनो लीन १०.२७
लिङ्गैकनिष्ठहृदयः १०.३०
लिङ्गैक्ये तु समापन्ने २०.२१
लिङ्गैः शिवस्य चोद्दिष्टै ९.१९
लिप्यते नैव संसारे २०.४३
लीने तस्मिन् शाङ्करे २१.५३
लीयते यत्र चिल्लिङ्गे २०.१४
लीयन्ते यत्र गम्यन्ते १२.३३
लीलाभाजनतां १८.१४
लोपामुद्राकरानीतै ४.३५
लोपामुद्रापदन्यास ४.२१
लौकिकस्तु सदाचारः १४.२०
वडवाग्निशिखाजाल ४.३१
वदस्व स्थलभेदं १७. १
वनेषु गोमयं यच्च ७.१६
वन्दारुदेवमुकुट ३. ९
वन्दे तां परमानन्द १.११
वन्दे माहेश्वरीं शक्तिं २. २
वयमज्ञानसम्पन्ना २१.२५
वराहदंष्ट्रिकाध्वस्त ४.१५
वर्णाश्रमसदाचारै १४.२०
वर्णाश्रमसमाचार १५.६६
वर्णाश्रमादिधर्मा १०.३५
वर्तते यो महाभाग १६.७४
वर्तते शाङ्करी भक्तिः ९. ४
वर्तन्ते ये महाभागा ७. २
वर्तन्ते योगिनः सर्वे १५.३३
वशिष्ठवामदेवाद्या ८.४७
वशिष्ठाद्या महाभागा ७.४२
वशिष्ठो वामदेवश्च ३.५४
वशीकृतत्वात् प्रकृते १६.४९
वशीकृते शिवे १७.४२
वसानं वल्कलं नव्यं ४.३०
वस्त्रेणोत्तारितं भस्म ७.१७
वाचिकः स तु विज्ञेयः ८.२७
वाचिकात् तदुपांशोश्च ८.३२
वाचो यस्य प्रवर्तन्ते १५.१४
वाजिनां दिननाथस्य ११.५२

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

वातपित्तादिजं दुःखं ५.६८
वातुलान्तानि शैवानि १.२५
वामपार्श्वनिवासिन्या ३.२४
वामहस्ततले भस्म ७.२०
वामहस्ततले भस्म ७.३४
वामं च दक्षिणं चैव ५.१०
वारुणाद्यैरलं स्नानै ७.२४
वालाग्रशतभागेन १८. ६
विक्रिया प्रतिबिम्बस्था १९.३१
विजित्य स्वप्रभावेण २१.४१
विदधतु मतिमस्मिन् १.३२
विदधानः क्षणं देव्या ३.५८
विद्यते चित्स्वरूपस्य २०.५७
विद्यते तद् द्वयं यस्य १२.४२
विद्यातत्त्वप्रकाशिन्या ३.२५
विद्यायां रमते तस्यां ५.१८
विद्यायां रमते यस्मा ५.१७
विद्यायां शिवरूपायां ५.१५
विद्यावैशद्यकरणं ११.१४
विधातुमखिलान् २.१७
विधिः शिवनियोगोऽयं १६. ८
विना प्रसादमीशस्य १८.६०
विना सूर्योदयं लोके १८.६०
विन्ध्यो निरुद्धो भवता ४.३९
विपरीतफलं च ११.४९
विपरीतसमायोगे १७.५३
विभीषण महाभाग २१.१३
विभीषण विशेषज्ञ २१.२४
विभीषणः समालोक्य २१. ४
विभीषणोऽपि हृष्टात्मा २१.३६
विभूतिपट्टं दत्त्वाग्रे ६.१८
विभूतिर्भसितं भस्म ७. ३
विभूतिर्भूतिहेतुत्वा ७. ४
विभूतिं शिवभक्तेभ्यो ६.१५
विमर्शभाण्डविन्यस्त २०.३४
विमर्शाख्या परा शक्ति २०.३०
विमर्शाख्या परा शक्ति २०.३६
विमर्शो भासते यत्र २०.३५
विमुक्तभोगलालस्यो ११.६०
विमुक्तसत्त्ववैरस्य ४.८३
विमुक्तेतरसर्वार्थं १०.२६
विरक्तानां प्रबुद्धानां ९.१३
विलक्षणं महादेवं १०.५४
विलीनचित्तवृत्तस्य १९.७८
विलीनचित्तवृत्तीनां १४.४१
विलीनचेतसां १९.२५
विलीनं निखिलं तत्त्वं १९.११
विलीनः किं नु जानाति २०.४८
विलीनात्मा महायोगी १८.४७
विवेकिनो विरक्तस्य ५.७६
विवेकी रमते देहे ५.७३
विवेकी शुद्धहृदयो ५.७४
विशिष्टं कोटिगुणितं ६.४१
विशुद्धज्ञानकरणं २.११
विशुद्धभस्मकृतया ४.२९
विशुद्धमन्त्रजातं हि ११. ९
विशुद्धाः प्राकृता १०.३४
विशुद्धे शिवनिर्माल्ये ९.७६
विशुद्धेषु विरक्तेषु १०.७५
विशृङ्खलतया तस्य २०. ६
विश्वतो भासमानो १८.३५
विश्वसंमोहनी २०.१७
विश्वस्मादधिको १०. ८
विश्वं यत्र लयं याति २०.३१
विश्वं शिवमयं चेति १४.२८
विश्वातीतं परं ब्रह्म १५.६७
विश्वाधारमहासंवि २०.३३
विश्वाधिपत्यमीशस्य ११.३४
विषयभ्रान्तिराहित्यं १२.१९
विषयानन्दकणिका १४. ४

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

विषयासक्तचित्तोऽपि	१७.८५	व्योमवत् परमं ब्रह्म	२०.६३
विषयेभ्यो यदु	१७.३७	व्रजन् कैलासमचलं	२१.१५
विस्मितात्मसमावेश	१९.४२	शक्तिपातं समालोक्य	६.१०
विस्मिता मानुषाः सर्वे	३.८५	शक्तिप्रधानं वामाख्यं	५.११
विहाय त्वत्पदाम्भोज	३.८०	शब्दस्पर्शादिसम्पन्ने	१०.१४
विहाय बाह्यलिङ्गस्था	१२. ९	शब्दादयोऽपि विषया	२०.१९
विहाय बाह्यलिङ्गानि	१५.४१	शमीगर्भे यथा	१०.५७
वीरमाहेश्वरग्राह्यं	२०.८६	शमो दमो विवेकश्च	१३.१५
विस्मिताः प्राणिनः सर्वे	४. ८	शम्भोराह्वानसन्तोष	३.६७
वीरशैवमहातन्त्र	१.३०	शम्भोरेकत्वभावेन	१४.१८
वीरशैवशिखारत्नं	१.१८	शम्भोः प्रियः स	९. ५
वीरशैवास्तु षड्भेदाः	५.२२	शम्भोः शिवप्रसादेन	१८.५९
वीरसिद्धान्तनिर्वाह	४. ८	शरणस्थलमाख्यातं	५.२४
वीशब्देनोच्यते विद्या	५.१६	शरणस्थलमाश्रित्य	१९. २
वृक्षस्थं पत्रपुष्पादि	२०.४१	शरणाख्यस्य भूयोऽस्य	१४. १
वृत्तिशून्ये स्वहृदये	१४.३३	शरणाख्यः शिवेनैक्य	१४. २
वेदधर्माभिधायित्वात्	५.१२	शरण्यः सर्वभूतानां	११.५९
वेदबाह्यविरोधित्वात्	५.१२	शरीरभूतादेतस्मात्	१०.५२
वेदमार्गविरोधेन	१.२६	शरीरमेव चार्वाकै	५.४५
वेदवेदान्तसर्वस्वं	२०.८५	शरीरात् पृथगात्मान	५.६०
वेदशास्त्रपुराणेषु	६.५८	शरीरात्मविवेकेन	५.५५
वेदसिद्धान्तयोरैक्य	५.१३	शरीरेन्द्रियबुद्धिभ्यो	५.५८
वेदः प्रधानं सर्वेषां	५. ५	शाखाशिखरसंलीन	४.१८
वेदानुसरणादेषां	५. ५	शातकुम्भमयस्तम्भ	३. ५
वेदान्तजन्यं यज्ज्ञानं	५.१८	शान्तत्वात् प्राणवृत्तीनां	१७.२७
वेदान्तवाक्यजां विद्यां	१२.३६	शान्तो दान्तस्तपश्शीलः	१७.६०
वेदान्तसारसर्वस्व	२.३०	शासनीयो भवेद्यस्तु	१७.५८
वेदान्तिनो जगन्मूल	१. २	शास्त्रं तव मुखोद्गीर्णं	२०.७८
वेदैकदेशवर्तित्वं	५. ६	शास्त्रं तु वीरशैवानां	५.२३
वेदैकदेशवर्तिभ्यः	५. ७	शास्त्राभ्यासाद्धि यत्नेन	१६.२९
वेधारूपा क्रियारूपा	६.१८	शिखायामेकमेकास्यं	७.५४
वैराग्यज्ञानयुक्तानां	६.४४	शिर ईशानमन्त्रेण	७.२१
वैराग्यसंपदो मूलं	११.५५	शिरसा धारयेद्यस्तु	९.६९
व्यतिरेकात् स्वरूपस्य	१८.४४	शिलामृद्दारुसंभूत	१५.४३
व्यावर्तमानो मिथ्येति	१९.४८	शिव इत्यक्षरद्वन्द्वं	८.१०
व्यासादीनां क्षणं कुर्वन्	३.५९	शिव इत्युच्यते	८. ८

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

शिव एव जगत्सर्वं	१९.८४	शिवप्रसादहीनस्य	११.७१
शिव एव परं तत्त्वं	१७.७६	शिवप्रसादं यद् द्रव्यं	११. ७
शिव एव परं पात्रं	९.८७	शिवप्रसादं स्वीकुर्वन्	११. ८
शिव एव समस्तानां	१३.१०	शिवप्रसादाज्जीवोऽयं	५.५२
शिवक्षेत्रोत्सवमहा	९.४७	शिवप्रसादे सति	११.७७
शिवज्ञानकरं वक्ष्ये	५. २	शिवप्राप्तिसमुत्कण्ठा	१३.३२
शिवज्ञानकुठारेण	१३.२०	शिवप्रीतिकराण्येव	१६.७३
शिवज्ञानप्रदं	८.८४	शिवभक्तिरसासक्तः	२१.३६
शिवज्ञानमहासिन्धु	१.१८	शिवभक्तिर्न सन्देह	९.१०
शिवज्ञानमृगेन्द्रस्य	१२.१७	शिवभक्तिविहीनस्य	११.४९
शिवज्ञानसमापन्न	१४.२२	शिवभक्तिविहीनानां	९.७६
शिवज्ञानसमायोगा	१४.२३	शिवभक्तिविहीनानां	११.५१
शिवज्ञानं महाघोर	९.५४	शिवभक्तिसमावेशे	११.५५
शिवज्ञाने समुत्पन्ने	१३.११	शिवभक्तिसुधासिन्धु	१.१४
शिवज्ञाने समुत्पन्ने	१३.२१	शिवभक्तिः परो धर्मः	१३.१६
शिवज्ञानैकनिष्ठस्य	१६.४७	शिवभक्तिः स्थिरा यस्मिन्	१.१९
शिवतत्त्वपरिज्ञान	१.२४	शिवभक्तो महातेजाः	९.२७
शिवतत्त्वपरिज्ञान	२.२९	शिवभावनया युक्तः	१७. ८
शिवतत्त्वस्वरूपेण	१९.८१	शिवभावनया सर्वं	१६.७०
शिवतत्त्वात् परं नास्ति	८. २	शिवभावयुतो योगी	१७.८५
शिवतत्त्वात् समुत्पन्नं	१०.६४	शिवभावे समुत्पन्ने	१७.८४
शिवतत्त्वावलम्बी	१६.५१	शिवभावे स्थिरे जाते	१९.८५
शिवत्वं भावयेद्यत्र	१५.२८	शिवमभ्यर्थयन् मोक्षं	११.६०
शिवदर्शनमप्याहुः	१६.३३	शिवमेव जगत् पश्यन्	१७.८०
शिवदर्शनसम्पत्ति	१४.२४	शिवयात्रोत्सवं नित्यं	९.४६
शिवद्वेषी स विज्ञेयो	१३.१८	शिवयोगरतो योगी	१६.१०
शिवधर्मोत्तरं नाम	४.४३	शिवयोगविशेषज्ञ	२०.७३
शिवध्यानपरं शान्तं	६. ४	शिवयोगसमाधिश्च	१२. ५
शिवध्यानं तु संसार	१२.३१	शिवयोगिनि यद् दत्तं	९.६३
शिवनामरता वाणी	९.१८	शिवयोगिनि सन्तृप्ते	९.९१
शिवनिन्दाकरं दृष्ट्वा	९.३६	शिवयोगीति नामोक्तिः	१.२१
शिवपादाम्बुसंस्पर्शात्	९.४५	शिवयोगीति विख्यातः	१.१३
शिवपूजाङ्गभावेन	१७.४९	शिवयोगी महत्पात्रं	९.८९
शिवपूजापरो भूत्वा	९.३९	शिवयोगी शिवः साक्षा	९.६६
शिवप्रसादमाहात्म्य	११. ५	शिवयोगी शिवः साक्षा	९.८८
शिवप्रसादसम्पत्त्या	१८.५८	शिवरुद्रमहादेव	२. ६

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

शिवरूपादिचिन्ता	९.१६	शिवः शरीरयोगेऽपि	१७. ७
शिवलिङ्गप्रसादस्य	९.७७	शिवः सर्वगतश्चापि	१०.५७
शिवलिङ्गस्य पूजा	९. ७	शिवाख्यं ज्ञायते येन	१५.४९
शिवलिङ्गार्चनादेव	११.३३	शिवाख्यं परमं ब्रह्म	१९.६९
शिवलिङ्गे शिवाचार्ये	९.७९	शिवारामपरिज्ञान	१.२२
शिवशक्तिमयं ब्रह्म	२०.३९	शिवारामसुधासिन्धु	४. ६
शिवशक्तिसमायोगं	११.३२	शिवागमार्थविज्ञानं	९.२४
शिवशक्तिसमुत्पन्ने	५.३२	शिवागारमिदं प्रोक्तं	१९.५४
शिवशब्दाभिधेयो	८. ९	शिवाग्न्यादिसमुत्पन्नं	७. ३
शिवशास्त्रविशेषज्ञ	२१.३१	शिवाचारे शिवध्याने	१७.६२
शिवसंस्कारयोगेन	१०.३२	शिवात्मकमिदं सर्वं	१६.३१
शिवसंस्कारयोगेन	१०.३३	शिवात्मकं विश्वमिदं	१०.७७
शिवसंस्कारहीनानां	१०.३६	शिवात्मध्यानसम्पत्तिः	१२.२१
शिवसंस्कारिणः	१०.३४	शिवात्मबोधैकरतः	१३.३७
शिवसिद्धान्ततत्त्वज्ञं	६. ३	शिवात्मैक्यमहाबोध	४.५३
शिवसिद्धान्तनिर्णेता	१.१७	शिवादन्यज्जगज्जालं	१८.५८
शिवस्तिष्ठति सर्वात्मा	१०.७५	शिवादन्यज्जगन्मिथ्या	१७.६६
शिवस्तुतिरसास्वाद	१०.१६	शिवादन्यत्र विज्ञाने	१३.३३
शिवस्तोत्रमिदं सर्वं	१४.२६	शिवाद्यादिसमुत्पन्न	१.१०
शिवस्त्वमिति निर्दिष्टो	१७.६६	शिवाद्वैतपरं ज्ञानं	१६.७७
शिवस्थानानि तीर्थानि	९.४६	शिवाद्वैतपरानन्द	४.४२
शिवस्य दर्शनात् पुंसां	१६.३३	शिवाद्वैतपरिज्ञान	४. ५
शिवस्य नाम कीर्तिं च	६.१७	शिवाद्वैतपरिज्ञान	१८.६८
शिवस्य परकायस्य	१७.२४	शिवाद्वैतपरिज्ञाने	१४.१७
शिवस्य पररूपस्य	१७.३४	शिवानन्दपरिस्फूर्ति	१४.१५
शिवस्य परिपूर्णस्य	१९.७६	शिवानन्दमहासिन्धु	१४. ४
शिवस्य परिपूर्णस्य	१९.७७	शिवानन्दं समासाद्य	१३. ७
शिवस्य बोधलिङ्गं यद्	११.२६	शिवानन्दे समुत्कण्ठो	१०.१४
शिवस्य लिङ्गरूपस्य	११: ६	शिवापकर्षसंप्राप्तौ	१०.२०
शिवस्य सर्वगत्वेऽपि	१०.६१	शिवाभिधं परं ब्रह्म	२. ८
शिवस्येव यतस्तस्मा	१६.४४	शिवाभिधं परं ब्रह्म	१२.३५
शिवस्वीकृतमन्नाद्यं	११.१६	शिवाभिधानं चिन्मात्रं	११.२७
शिवं भावय चात्मानं	१७.७९	शिवाभिधानं यत्प्रोक्तं	७. १
शिवं विना तथान्येषां	१३.३५	शिवाय शिवभक्ताय	९.८५
शिवं विश्वं गुरुं साक्षाद्	१४.३५	शिवाराधनबुद्ध्यैव	१६. ८
शिवं शिवङ्करं शान्तं	७.३५	शिवार्चनपरो नित्यं	७.४५

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

शिवार्चा कर्म विज्ञेयं	९.२२	शिवो महेश्वरश्चेति	५.१९
शिवार्थकार्यसम्पन्न	१०.१५	शिवोऽहमिति भावस्य	१७.८४
शिवार्थं भावयन्	१७.५७	शिवोऽहमिति भावेन	१४. ५
शिवार्थं मुक्तजीवश्चे	९.३५	शिवोऽहमिति भावेन	१७.७८
शिवार्थे देहसंशोष	९.२२	शिवोऽहमिति भावोऽपि	१६.१६
शिवावेधकरे ज्ञाने	१५.२९	शिवोऽहमिति यस्यास्ति	१८.४३
शिवाश्रितानां जन्तूनां	११.५२	शिवोऽहमिति या बुद्धि	१६.३१
शिवाश्रितेषु ते शैवा	५.२०	शिवोऽहमिति यो बुद्ध्यात्	१६.४८
शिवासक्तपरानन्द	१३.१३	शिवो हि परम: साक्षात्	१६. ५
शिवासक्तेन मनसा	१७.६५	शिष्टौदनस्थलं	२०. ३
शिवाहितमना योगी	१७.१८	शिष्यश्चोदकशब्देन	१९. ७
शिवाहितेन्द्रियस्यास्य	१७.१९	शिष्यस्थलं तत:	१७. ४
शिवेन चिद्व्योम	१४.४४	शिष्यस्य प्राणमादाय	६.२४
शिवेन विहितो यस्मा	१६.६०	शिष्याणां हृदयालेख्यं	१५.१९
शिवे निवेश्य सकलं	१६.७४	शिष्यो नियुज्यते येन	१५.१३
शिवे निश्चलभावेन	१७.५०	शीलमित्युच्यते	१३.३६
शिवेनैक्यं समापन्न	१४. ६	शीलं शिवैकविज्ञानं	१३.३२
शिवे प्राणो विलीनोऽपि	१७.३०	शुकसंसत्समारब्ध	४.२४
शिवे मनसि संलीने	१७.२०	शुक्तौ रजतवद्	१९.३७
शिवे यत्तदिदं	१७.३९	शुद्धमुक्ताफलाभास	२.१०
शिवे विलीनचित्तस्य	१९.४६	शुद्धाचारे शुद्धभावो	१६.८४
शिवे विलीन: सर्वात्मा	१७.३२	शुद्धा नियमसंयुक्ता:	११.५६
शिवे विश्वमिदं सर्वं	१४.३०	शुद्धान्त:करणे जीवे	५.५३
शिवैकज्ञानयुक्तस्य	१६.३७	शुद्धान्त:करणो देही	५.३१
शिवैकत्वमुपेतस्य	२०.१७	शुद्धोपाधि: परा माया	५.४४
शिवैकनिष्ठ: सर्वात्मा	१०.२०	शुभमासे शुभतिथौ	६.१५
शिवैकनिष्ठाहित	१३.३७	शुश्रूषुरेव सर्वेषां	१७.८१
शिवैकभावनापन्न	१४.१६	शून्यकल्पं पराकाशं	२०.६८
शिवैकभावयुक्तानां	१४.१९	शून्यज्ञानादिसङ्कल्पे	२०.६९
शिवैकभाजनात्मत्वा	१४.२८	शून्ये चिदम्बरे स्थाने	१८.४७
शिवैकीभूतसर्वात्मा	१७.३३	शृङ्गारतटिनीतुङ्ग	३.३२
शिवैक्यज्ञानरूढस्य	१८.७५	शृङ्गारोद्यानसंरम्भ	३.३३
शिवोत्कर्षप्रमाणानां	१०.१६	शृणोति शुद्धमनसा	२१. २
शिवो भवति निर्धूत	१७. ८	शेषत्वं नैव शेषित्वं	२०.७०
शिवोक्तधर्मनिष्ठा	१०.३६	शैवतन्त्रमिति प्रोक्तं	५. ८
शिवोपचारनिरत:	९.१९	शैवं पाशुपतं सोमं	५. ८

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

शैवागमेषु वेदेषु	७.४३	संचरत्प्रमथश्रेणी	३. ८
शैवागमेषु वेदेषु	८.१७	संजाता पाशविच्छित्ति	२०.७६
शैवागमेषु सर्वेषु	१.२८	सतीव रमणे यस्तु	१३. ५
शैवी भक्तिः समुत्पन्ना	५.२६	स तु कालवशेनैव	२१.२२
शैवैर्माहेश्वरैश्चैव	५.१९	स तु रामशराविद्धः	२१.२३
शोषयेत् पुरुषेणैव	७.१५	सत्तात्मनाऽनुवृत्तं	१९.४८
श्रद्धा धूपो महाज्ञानं	१२.१७	सत्तानन्दचिदाकारं	१७.५५
श्रवणं कीर्तनं शम्भो	९. २	सत्तानन्दचिदात्मके	१७.८६
श्रीवेदागमवीर	२१.५४	सत्तानन्दपरिस्फूर्ति	६.३३
श्रीशैलस्योत्तरे भागे	३.८३	सत्ता प्राणमयी शक्तिः	१२.१२
श्रीसिद्धान्तशिखामणि	२१.५४	सत्त्वं हि ज्ञानयोगस्य	१३.१४
श्रुतिस्मृतिभ्यामिह	७.६७	सत्यमाभरणं प्रोक्तं	१२.१६
श्रुतिहीना यथा	१६.१९	सदाकालं वसत्येव	९.६२
श्रुत्वा मे मोदते	२०.७५	सदाचारप्रियः शम्भुः	१६.६६
श्रुत्वा लिङ्गाद् वचन	२१.५२	सदाचारं विना तस्य	१६.६६
श्रुत्वा श्रुत्वा गुरो	१७.७०	सदात्मनि यथा शुक्तौ	१७.७७
श्रूयते यस्तु पार्श्वस्थै	८.२७	सदानन्दमयः साक्षात्	२०.३१
श्वेतस्य मम भक्तस्य	३.७५	सदा लिङ्गैकनिष्ठानां	११.६८
श्वेताः षोडश संजाताः	७.५०	सदाशिवमुखानेक	२१.४७
षट्त्रिंशत्तत्त्वघटितं	१९.५४	सदाशिवमुखाशेष	१. ५
षट्त्रिंशद्धारयेन्मूर्ध्नि	७.५५	सदाशिवमुखाशेष	२. २
षट्स्थलोक्तसदाचार	१५. १	सदा शिवार्चनोपाय	१६.१०
षडङ्गुलायतं मान	७.३६	सदा शिवैकनिष्ठानां	९.३३
षडध्वातीतयोगेन	१५.१०	सदा संतुष्टहृदय	१०.१८
षडष्टवदनान् कण्ठे	७.५५	सदेहोऽतिभ्रमस्तस्य	१६.५३
षण्मासान् वत्सरं वापि	६. ७	सद्यः कृतार्थयितु	४.५४
स एव तुर्यः परि	१२.४८	सद्यः सिद्धिकरं पुंसां	४.५३
सकलो गुरुरूपेण	११.२०	सद्येन वामदेवेन	७.१७
सकृदुच्चारमात्रेण	८.३९	सद्योजाताद्विभूतिश्च	७. ८
सकृदुच्चारणादेव	८.४१	सद्रूपं वाप्यसद्रूपं	२०.५८
स चाभ्यासवशा	१७.३१	स धर्मः सर्वलोकाना	१६.५८
सच्चिदानन्दजलधौ	२०.१३	स धारयेत् सर्वमला	६.६३
सच्चिदानन्दरूपस्य	८.११	सन्देहवनसन्दोह	१५.१७
सच्चिदानन्दरूपाय	१. १	सप्तकोटिषु मन्त्रेषु	८. ४
सच्चिदानन्दरूपाय	२. १	सप्तमातृपरं मिश्रं	५.११
सच्चिदानन्दसर्वस्व	२१.४६	सभान्तरगतं तन्त्र	३.६६

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

समबुद्ध्या चरेद् योगी	१५.५८	स यथार्थस्तदन्यस्य	१७.७६
समर्थौ सर्वकार्येषु	२.३२	स रौद्रधर्मसंयुक्त	७.४९
समर्प्य विषयान्	१७.४६	सर्वगत्वनिरासश्च	१०. ६
समर्प्य सकलान्	२०.१३	सर्वगत्वं महेशस्य	१०.५८
समलोष्टाश्मकनका	११.३९	सर्वगत्वे महेशस्य	१०.५५
समवृत्तिर्भवेद् योगी	१५.५४	सर्वगामि तमो हन्ति	१५.२४
समस्तजगदण्डानां	२०.३५	सर्वगोऽपि स्थितः	१०.५६
समस्तजगदात्मापि	१०.७१	सर्वचिद्रूपविज्ञाना	११.३५
समस्तजगदात्मापि	२०.४३	सर्वज्ञ वद मे साक्षा	४.५२
समस्तजगदाधार	२१.४७	सर्वज्ञस्य महेशस्य	१०.५३
समस्तदेवकैङ्कर्य	३.८०	सर्वज्ञं सर्वगं शान्तं	२. ५
समस्तदेवताचक्र	३.१४	सर्वज्ञः सर्वकर्ता च	५.४६
समस्तभुवनाधीश	३.६२	सर्वज्ञः सर्वकर्ता च	१९.७९
समस्तलोकनिर्माण	२.१२	सर्वज्ञः प्रेरकः शम्भु	५.४३
समस्तलोकनिर्माण	३.२४	सर्वज्ञः सकला विद्या	२.१५
समस्तलोकसंदाह	४.४९	सर्वज्ञः सर्वगः साक्षी	२०.३२
समस्तलोकान्निर्मातुं	२.१६	सर्वज्ञः सर्वशक्तिश्च	२.१८
समस्तवेदवेदान्त	२१.४५	सर्वतत्त्वोपरिगतं	१२.२२
समस्तवेदशास्त्रादि	२०.७३	सर्वतत्त्वोपरि प्रोक्तं	१८.३३
समस्तशास्त्रसारज्ञं	२१.१४	सर्वतन्त्रप्रयोगज्ञं	६. ३
समस्तसिद्धसन्तान	४. ७	सर्वतो मुखसम्पन्नं	१९.६७
स महावीरशैवानां	१.२४	सर्वत्र संचरेद् योगी	१५.५९
समानमधिकं चापि	११.७६	सर्वप्राणिगतो भाति	१९.६३
समाप्तं सकलं यस्य	९.९३	सर्वमङ्गलमाङ्गल्यं	९.६८
समासीनं मुनिवरं	४.३७	सर्वमङ्गलसौभाग्य	३.११
समाः शत्रौ च मित्रे च	११.४०	सर्वलक्षणसम्पन्ने	६.२३
समिश्रोपाधयः सर्वे	५.४२	सर्वविद्याविशेषज्ञौ	२.२८
स मुक्तो देहयोगेऽपि	१२.४६	सर्ववेदानुसारित्वा	५. ७
समुज्ज्वलजटाजालै	४.२८	सर्ववेदार्थरूपत्वात्	५. ८
सम्पत्सु कर्ममूलासु	५.७१	सर्वसंविन्मयं भाति	१९.९५
सम्पूज्य तं यथाशास्त्रं	४.३६	सर्वसिद्धिकरं पुंसां	९.६८
सम्पूर्णचन्द्रसौभाग्य	३.२७	सर्वसिद्धिकरं पुंसां	११.४३
सम्भावयंस्तथा	३.६१	सर्वस्वं वीरशैवानां	१.२७
सम्भूय लयमायान्ति	१८.३२	सर्वं कर्मार्चनं	१७.५६
सम्यग् ज्ञानप्रदः	१५.२१	सर्वं शिवमयं विश्वं	११.७४
सम्यग् ज्ञानाग्नि	१६.५१	सर्वाकारत्वमाख्यातं	२०.४७

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सर्वाकारे चिदानन्दे	२०.५२	सहजं दानमुत्कृष्टं	९.८४
सर्वाङ्गोद्धूलनं	७.३०	सहभोजनमाख्यातं	१४.३४
सर्वात्मना प्रपन्न	११.५९	सहभोजनमित्येषां	१४. ३
सर्वात्मना शिवापत्तिः	११.५७	संवित्साक्षात्कृतिं	२०.२७
सर्वात्मनि परे तत्त्वे	२०.६२	संविदेव पराकाष्ठा	१९.७१
सर्वात्माऽपि परि	१०.७३	संविद्व्योम्नि शिवे	१९.९७
सर्वाद्वैतविचारस्य	१०.३८	संविल्लिङ्गपरामर्शी	१२.१०
सर्वाधिष्ठातृकः	१८.५६	संसारकालरात्रिस्तु	१४.१२
सर्वानप्यर्थविषयान्	२०.१२	संसारचक्रनिर्वाह	११.७५
सर्वानुग्राहकः शम्भुः	१८.६१	संसारतिमिरच्छेदी	१५.२६
सर्वान्तर्गतमात्मानं	३.५६	संसारतिमिरच्छेदे	१३. ८
सर्वार्थसाधकज्ञान	१५.२५	संसारतिमिरोन्माथि	१५.१४
सर्वालङ्कारसंयुक्तं	८.२६	संसारदुःखविच्छेद	५.७६
सर्वासामपि विद्यानां	४.३१	संसारनाटकभ्रान्ति	२१.४५
सर्वे च ज्ञानयोगेन	६.४६	संसाररोगनिर्माथी	१५.२०
सर्वे ते जपयज्ञस्य	८.३०	संसारविषकान्तार	३.२६
सर्वेन्द्रियगतं सौख्यं	१७.५७	संसारविषकान्तार	१७.४४
सर्वेन्द्रियनिरूढोऽपि	१७.१८	संसारविषमूर्च्छालु	३.१२
सर्वेन्द्रियप्रवृत्त्या च	१७.२३	संसारविषवृक्षस्य	१२.३०
सर्वेन्द्रियाणां व्यापारे	१९.८०	संसारवैद्य सर्वज्ञ	२१.४६
सर्वेषामपि जन्तूनां	८.३९	संसारसर्पदष्टानां	४.४८
सर्वेषामपि यज्ञानां	११.६०	संसारहेयताबुद्धि	५.६१
सर्वेषामात्मभेदाना	१८.२९	संसारार्तः शिवं	१३. ९
सर्वेषां देहिनामन्त	१९.६२	संसाररोगदष्टानां	१३.१०
सर्वेषां प्रेरकत्वेन	१८.२७	साक्षात्करोति या	१५.२२
सर्वेषां वीरशैवानां	६.५५	साक्षात्कृतपरानन्द	१९.२६
सर्वेषां शैवतन्त्राणा	१.३१	साक्षात्कृतमहा	२०.७८
सर्वेषु वर्णाश्रम	७.६५	साक्षात्कृतशिवः	१७.७२
सर्वोत्कृष्टं स्वमात्मानं	१५.६६	साक्षात्कृतं परं	१०.४१
सर्वो लोको विस्मितो	२१.५३	साक्षात्कृते परे	१८.६४
स शम्भुर्भगवान्	२.१३	साक्षान्मोक्षप्रदः	१०.२४
ससर्जात्मसमप्रख्यान्	२.२५	साक्षिणी सर्वभूतानां	२०.३०
ससंस्कारेषु लिङ्गेषु	१०.४६	सांख्यं योगः पाञ्चरात्रं	५. ४
सहचारी सदाकाले	१०.१९	साङ्गा न्यूना च या	९.१५
सहजं चेति निर्दिष्टं	५.३०	सा दीक्षा त्रिविधा प्रोक्ता	६.१२
सहजं चेति सर्वेषां	९.८०	सानन्दवरयोगीन्द्र	३. ४

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सा पुनर्भिद्यते त्रेधा	९.१६	सेव्यो गुरुः स्मृतो	१८.७०
सा भक्तिर्द्विविधा ज्ञेया	९. ६	सैषा विद्या परा ज्ञेया	१४.४३
साभ्यन्तरा भक्तिरिति	९. ९	सोऽपि गच्छेच्छिवस्थानं	८.३५
सामरस्यात् परात्म	१८.२८	सोमनाथाभिधानस्य	२१.४२
सामरस्यान्महायोगी	१९.१७	सोमेश्वरमहालिङ्गात्	४. १
साम्योक्तिं यो न सहते	१०. ९	सोमेश्वराभिधानस्य	३.८४
सा यत्र वर्तते साक्षात्	११.४७	सोऽलिङ्गी स दुराचारी	९.४१
सा यस्मिन् वर्तते	९. ९	स्थलभेदा नव	१७. २
सा सा पूजा महेशस्य	१४.२७	स्थलभेदास्त्वया	२०. १
सा सा प्रतीतिमात्रेण	१९.३४	स्थलभेदाः प्रकीर्त्यन्ते	१५. ३
सिक्थे सिक्थेऽश्वमेधस्य	९.७४	स्थलभेदाः समाख्याताः	१९. १
सिद्धं भक्तस्य माहात्म्यं	११.४५	स्थलमेतत्समाख्यातं	१३. ३
सिद्धान्ताख्ये महातन्त्रे	५.१४	स्थलानां नवकं चैक्य	२०. २
सिद्धाः स्वस्वपदे	१५.३६	स्थलानां नवकं प्रोक्तं	१६. १
सिद्धेन वाप्यसिद्धेन	१६.७७	स्थलानां नवकं प्रोक्तं	१८. २
सिद्धे साध्ये चिरेणापि	१९.४१	स्थलानि तानि चोक्तानि	१७. १
सिद्ध्या पञ्चाक्षरस्यास्य	८.४५	स्थानभूतो विमर्शो	२०.२९
सिंहासने शुद्धदेशे	९. ७	स्थानं वा तत्परि	९.३६
सुकुमारदलच्छाया	४.२५	स्थानेषु पञ्चदशसु	७.३१
सुकृतं दुष्कृतं चापि	११.५१	स्थापयिष्यसि भूलोके	३.८६
सुकृती दुष्कृती वापि	१४.१९	स्थाप्यतां सर्वलोकेषु	२०.८३
सुकृते परिपक्वे	२१.१९	स्थिरमङ्गलभृङ्गार	३.३४
सुखदुःखादिभावेषु	२०.५७	स्थिरमध्यशिवज्ञानं	४.४७
सुखस्फूर्तिस्वरूपेण	१८.६७	स्थिरयौवनलावण्य	३.३१
सुखानि सुखचिद्रूपे	१७.३६	स्थिरयौवनसौरभ्य	३.६३
सुवर्णब्रह्मसूत्राङ्क	३.२१	स्थूलसूक्ष्मपदातीते	१५.४७
सुषुप्तस्य यथा वस्तु	१८.६५	स्थूले क्रियासमापत्तिः	१५.४७
सुहृत्सु बन्धुवर्गेषु	५.७५	स्नातं शुक्लाम्बरधरं	६.१६
सूक्ष्मरन्ध्रं विजानीयात्	१२.२७	स्नानकाले करौ पादौ	७.२०
सूक्ष्माण्यपि च तैः	१५.४८	स्नानेषु वारुणाद्येषु	७.२३
सूर्यस्योदयमात्रेण	१७.७२	स्पर्शनं पापशमन	११.४३
सूर्योदयेऽपि किं	१६.५६	स्पर्शलक्षितवैडूर्य	३. ७
सृष्टिं विधेहि भगवन्	२.२४	स्फाटिकं शैलजं वापि	६.२२
सेवेत परमाचार्यं	६. ७	स्फुरत्सौदामिनीकल्पैः	४.२८
सेव्यप्रसादिकं	१८. ४	स्मयमानः परानन्दे	१५.५५
सेव्यो गुरुः समस्तानां	१८.६९	स्मृतीहासकल्पेषु	७.४३

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

स्वकर्मणा न लिप्येत १४.२२
स्वकर्मपरिपाकेन ५.५२
स्वकर्ममुक्तः शिव ११.७७
स्वच्छन्दचरितो २०.७४
स्वच्छन्दचारी लोके ४.१२
स्वच्छन्दचारी सर्वज्ञ १७.२३
स्वच्छन्दाचारसन्तुष्टो १५.५२
स्वच्छन्दाचाररसिकः २१. ३
स्वजातिकुलजान् १०.३१
स्वतन्त्रः सर्वकृत्येषु १५.६५
स्वपरज्ञानविरहात् २०.५४
स्वप्नजातं यथा १९.४५
स्वप्नवज्ज्ञाननिष्पत्त्या १९.४४
स्वप्ने दृष्टं यथा वस्तु २०.२४
स्वप्रकाशमनिर्देश्य १२.२२
स्वप्रकाशविराजन्त २. ५
स्वभावो देहिनां १९.३५
स्वमार्गाचारनिरताः ९.२९
स्वमार्गाचारवर्तिभ्यः ९.४९
स्वमार्गाचारविमुखैः ९.३०
स्वयमाचरते यस्मा १५. ९
स्वयमेव स्वयं भूत्वा १५.५७
स्वयमेव स्वयं भूत्वा १५.६४
स्वयं चरं परं चेति १५. ६
स्वरूपज्ञानसम्पन्नो १५.५७
स्वरूपमादधे किञ्चित् २. ८
स्वरूपं पृथगेतेषां १९. ५
स्वर्गं वा नरकं वापि १८.१५
स्वर्गे वा यदि वा भूमौ ५.७०
स्वशक्तिवासना १७.३०
स्वस्थं मनस्तथा कृत्वा ९. ८
स्वस्य सर्वस्य लोकस्य १४.२९
स्वस्वरूपतया ते तु ११.३६
स्वस्वरूपं शिवाकारं १६.५४
स्वात्मज्योतिषि बोधेन २०.१५
स्वात्मनैवास्थितो २०.२०
स्वात्मलीनं ज़गत्कार्यं २. ७
स्वात्मैकबोधात्तन्नाशे २०.२२
स्वानुभूतिप्रमाणस्थं १९.६८
स्वानुभूतिप्रमाणेन १५.४३
स्वान्तःस्थशिवलिङ्गस्य १२.३२
स्वाभाविकमहैश्वर्य ३.६४
स्वेच्छया संचरेद् १५.७०
स्वेच्छाकृतत्रिलोकाय १. ६
स्वेच्छाविग्रहयुक्ताय १. ६
स्वे महिम्नि विलीनस्य १८.५३
स्वेष्टलिङ्गे महादेवं १०.६०
स्वेष्टलिङ्गे यजन् १०.६१
स्वेष्टलिङ्गे शिवाकारे १०.४४
हस्तापादादिसाम्येन ११.२२
हंसरूपं परात्मानं १२.२३
हारनीहारकर्पूर ४.२२
हारनूपुरकेयूर ३.३५
हास्यनृत्यं क्षणं पश्यन् ३.६०
हितमेव चरेन्नित्यं ९.५६
हूयमानाज्यसन्तान ४.२४
हृत्प्रदेशमघोरेण ७.२२
हृदाकाशगुहालीनो १९.५५
हृदयेषु च भक्ताना १०.७२
हेमारविन्दकलिका ३. ५
हेमारविन्दनिष्यन्द ४.२०

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

व्याख्योद्धृतग्रन्थ-संकेतसूची

अ. को.	अमरकोश	पु.	पुराण
अम. उ.	अमनस्कोपनिषत्	पौ. आ.	पौष्करागम
अ. व.	अभियुक्तवचन	प्र. उ.	प्रश्नोपनिषत्
अ. शिखो.	अथर्वशिखोपनिषत्	प्राभा.	प्राभाकर
अ. शिर.	अथर्वशिर उपनिषत्	बृ. उ.	बृहदारण्यकोपनिषत्
अ. श्रु.	अथर्वश्रुति	बृ. जा. उ.	बृहज्जाबालोपनिषत्
आ.	आगम	ब्र. उ.	ब्रह्मोत्तरखण्ड
आ. पु.	आदित्यपुराण	ब्र. बि. उ.	ब्रह्मबिन्दूपनिषत्
आ. श्रु.	आथर्वणश्रुति	ब्र. सू.	ब्रह्मसूत्र
ई. प्र.	ईश्वरप्रत्यभिज्ञा	भ. गी.	भगवद्गीता
ऋ.	ऋग्वेद	भ. जा. उ.	भस्मजाबालोपनिषत्
ऐ. आ.	ऐतरेयारण्यक	म. ना. उ.	महानारायणोपनिषत्
ऐ. उ.	ऐतरेयोपनिषत्	म. म. प.	महार्थमञ्जरीपरिमल
ऐ. श्रु.	ऐतरेयश्रुति	म. स्त.	महिम्नस्तव
क. उ.	कठोपनिषत्	महो.	महोपनिषत्
का. आ.	कामिकागम	मा. का.	माण्डूक्यकारिका
कि. त.	किरणतन्त्र	मा. सं.	माध्यन्दिनसंहिता
कि. आ.	किरणागम	मी. सू.	मीमांसासूत्र
कै. उ.	कैवल्योपनिषत्	मु. उ.	मुण्डकोपनिषत्
कौ. ब्रा. उ.	कौषातकिब्राह्मणोपनिषत्	मृ. वि.	मृगेन्द्रागम विद्यापाद
छा. उ.	छन्दोग्योपनिषत्	मै. उ.	मैत्र्युपनिषत्
जा. उ.	जाबालोपनिषत्	मैत्रा. उ.	मैत्रायण्युपनिषत्
जै. ब्रा.	जैमिनीयब्राह्मणोपनिषत्	मैत्रे. उ.	मैत्रेयोपनिषत्
त. प्र.	तत्त्वप्रकाश	या. श्रु.	याज्ञवल्क्यश्रुति
तै. आ.	तैत्तिरीयारण्यक	यो. आ.	योगागम
तै. उ.	तैत्तिरीयोपनिषत्	यो. शा.	योगशास्त्र
त्र. त.	त्रयीतन्त्र	यो. सू.	योगसूत्र
त्रि. म.	त्रिपाद्विभूतिमहानारायणोपनिषत्	रु. जा.	रुद्राक्षजाबालोपनिषत्
दे. का.	देवीकालोत्तर	लि. उ.	लिङ्गोपनिषत्
नि. का.	निश्वासकारिका	लि. सू.	लिङ्गसूक्त
नृ. उ.	नृसिंहोत्तरतापनीयोपनिषत्	व. उ.	वराहोपनिषत्
प. त.	(पति)परातन्त्र	वा. उ.	वातुलोत्तर
प. त्री.	परात्रीशिका	वा. त.	वातुलतन्त्र
पा. उ.	पाराशरोपपुराण	वा. प.	वाक्यपदीय

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

वा. व.	वासिष्ठवचन	श्रु.	श्रुति
वा. सं.	वायवीयसंहिता	श्वे. उ.	श्वेताश्वतरोपनिषत्
वि. प.	विरूपाक्षपञ्चाशिका	स. ज्ञा.	सर्वज्ञानोत्तर
वि. सा.	विश्वसारोत्तर	स. प.	सङ्केतपद्धति
वी. आ.	वीरागम	स. म.	सर्वमङ्गलाशासन
वी. त.	वीरतन्त्र	सि. व.	सिद्धान्तवचन
वे. व.	वेदान्तवचन	सि. शि.	सिद्धान्तशिखामणि
व्या. व.	व्यासवचन	सू. गी.	सूतगीता
श. सं.	शङ्करसंहिता	सू. सं.	सूतसंहिता
शि. आ.	शिवागम	स्क. पु.	स्कन्दपुराण
शि. दृ.	शिवदृष्टि	स्मृ.	स्मृति
शि. ध.	शिवधर्मोत्तर	स्वा. आ.	स्वायम्भुवागम
शि. र.	शिवरहस्य	हं. उ.	हंसोपनिषत्
शि. सं. उ.	शिवसङ्कल्पोपनिषत्		

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

व्याख्योद्धृतवचनानुक्रमणी

अकारं ब्रह्माणं नाभौ १६१, नृ. उ. ३.४
अकार: शिव २७६, सि. शि. २०.३९
अकारो वै सर्वा ५१७, ऐ. आ. २.३.६
अक्षराणामकारो ५१७, भ. गी. १०.३३
अग्निरिति भस्म १३६, जा. उ. ६
अग्राह्यमग्राह्येण ३१८, अ. शिर. ३
अचिन्त्यं चाप्रमेयं ३४२, शि. सं. उ. १२
अच्छायमशरीरं ३७०, प्र. उ. ४.१०
अजात इत्येवं १५१, श्वे. उ. ४.२१
अजात इत्युदाहृत: १५१, श्रु.
अणोरणीयान् ४५२, क. उ. २.२०
अतप्ततनूर्न तदामो १२४, ऋ. ९.८३.१
अतोऽस्मिन् लोके १९४, भ. गी. १५.१८
अत्याश्रमिभ्य: परमं २१८,
अत्र पुरा त्रिपुर १४१, बृ. जा. उ.
अथाद्यास्तिथय: १५२, ५१८ प. त्री. ५
अद्वैतभक्तियुक्तस्य ३८७, ४७१ वी. त.
अध्वनामध्वपते ३२७, श्रु.
अनन्या स्याच्छिवा ७,४९० पौ. आ.
अनयोर्योगमेवैतत् २६८ वी. आ.
अनाख्ये तु निरालम्बे ५३० नि. का.
अनादिमलमुक्तत्वात् ८७, कि. आ.
अनादिमलसम्बन्धात् ८७, कि. आ.
अनायासेन सतत ४१५, यो. आ.
अनीशश्चात्मा ८७,५३० श्वे. उ. १.८
अनुविद्धमिदं ज्ञानं ५१८, वा. प. १.११५
अन्तर्भावविनिर्मुक्तं ४४२, दे. का. ३८
अन्त:शरीर एवायं ४५५, स. ज्ञा.
अन्त:शरीरे ज्योति ९५, मु. उ. ३.१.५
अप अप्स्वग्निमग्नौ ५२६, मै. उ.
अपश्यन्नन्धको दग्धो ७१,३५७, शि. र.
अपि वा यश्चाण्डाल: १०८,
अमूला तत्क्रमाज्ज्ञेया ५१८, प. त्री. ८
अयमात्मा ब्रह्म २८२,५२५ ऐ. उ. ५.३
अर्थजालमशेषं तु १०४, वा. सं.
अलं नमस्क्रियायुक्तो १५६, ब्र. उ.
अलोकरञ्जकं रूपं २९८, वा. व.
अल्पक्रिया बहुफलं ३५४, वा. त.
अविद्यातच्छिवतोर्योग: ८२,
अशरीरं यदात्मानं ९५, दे. का. ५१
अशेषपाशविच्छित्त्यै १५६, ब्र. उ.
अष्टोत्तरसहस्रं वा १६३, शि. आ.
अष्टौ च पाशलक्षाणि ७८, स्क. पु.
असन्नेव स भवति १५, तै. उ. २.६
असंपूज्य शिवं स्तोत्र १६३, शि. आ.
असौ ततोऽतीतवर्णा ३४९, वा. उ.
अस्ति ब्रह्मेति चेद्वेद १५, तै. उ. २.६
अस्थिचर्मस्नायुमज्जा मै. उ. १.२
अस्थूलमनण्व ५३०, बृ. उ. ३.८.८
अस्मात्प्रविततात् ४६१, स्वा. आ.
अस्यैवानन्दस्या ३, ४७०,
अहमस्मि १८, तै. उ. ३.१०.६
अहमस्मि प्रथम २७६, ५१४,
तै. उ. ३.१०.६
अहमादिर्हि देवानां २७६, ५१४,
भ. गी. १०.२
अहमेको न मे कश्चि ३०७, दे. का. ४९
अहं ब्रह्मास्मि २८२, ४४३,
बृ. उ. १.४.१०
अहंममत्वशून्यात्मा ३४७, वा. उ.
अहंशब्दस्य रूढत्वात् २७६, सू. सं.
अहं सर्वस्य प्रभवो २७६, ५१४,
भ. गी. १०.८
आकाशशरीरं ब्रह्म १०, ४४१, ५४९,
तै. उ. १.६.२

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

आचार्यः पूर्वरूपं २५२, ३२९, ४६१, तै. उ. १.३.२-३

आचार्योऽन्तेवासिन ३२९, तै. उ. १.११.१

आचार्यो वक्ता कुशलो ३२७, क. उ.

आत्मन आकाशः ८२, २३२, तै. उ. २.१

आत्मरतिरात्म ३४७, छा. उ. ७.२५.२

आत्मलाभान्न परं ७५, ११८, ४२८, श्रु.

आत्मवत् सर्वभूतानि ३७८,

आत्मा त्वं गिरिजा ३१४, अ. व.

आत्मा वा इदमेक ४,२८, ऐ. उ. १.१

आदित्यानामहं १५१, भ. गी. १०.२१

आद्यन्तप्रत्याहृत ३२१, ५१८, वि. प. ९

आधारामादिशक्तिं १११,

आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् ४६२, तै. उ. २.४

आमूलात् तत्क्रमात् १५२ प. त्री. ७

आशयं भासयन्तं च ३८०, का. आ.

आश्रयो द्वन्द्वमित्युक्तं ४३९, दे. का. ४४

आस्ते दग्धपटन्यायात् ४७१, वी. त.

आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः २४२, छा. उ. ७.२६.२

इतरेषां तु शैवानां १७७, वी. आ.

इति धार्येऽपि संलीने ५२२, स. ज्ञा.

इति निश्चयसद्भावः ४८२, वा. उ.

इति पूर्वं जगत्सर्वं ४२८, पा. उ.

इदं शरीरं कौन्तेय ९५, भ. गी. १३.१

इन्द्रियाणां मनो ३९६, ४०५, व. उ. २.८०

इयं योनिः समाख्याता १५२, प. त्री. ९

इष्टमूर्जं तपसा १२०, ३३५, अ. श्रु.

इष्टमूर्जं स्वभक्ताना ३३५, वा. त.

इष्टलिङ्गमिति प्राह ३३५, वा. त.

इ़ष्टावाप्तिकरं ३३५, वा. त.

ईशानः सर्वविद्यानां १९९, २०४, २११, म. ना. उ. १०.८

ईश्वरः सर्वभूतानां १८६,

ईश्वरः सर्वभूतानां २११, भ. गी. १८.६१

उतैनं गोपा अदृशन् ७७, मा. सं. १६.७

उपदेशादयं वादो ४६४, मा. का. १.१८

ऊर्ध्वमूलोऽवाक्शाखः ५११, क. उ. ६.१

ऊर्ध्वरेतं विरूपाक्षं १५५, तै. आ. १०.१२.१

ऊर्ध्वं प्राणमुन्नम २६९, क. उ. ५.३

ऋतं सत्यं परं १५५, तै. आ. १०.१२.१

एक एव रुद्रो २१०, ४८१, श्वे. उ. ३.२

एक एव हि भूतात्मा ४८०, ब्र. बि. उ. ११

एकधा बहुधा चैव ४८०, ब्र. बि. उ. ११

एकमेव तद्भवत्यवि ३०५, नृ. उ. ८.७

एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म ७७, १५९, ५२२, छा. उ. ६.२.१

एकस्तथा सर्वभूता ४३२, ४८४ क. उ. ५.१०-११

एकेन जन्मना मुक्तिः १७७, वीं. आ.

एकोत्तरशतं प्रोक्ताः ५३४, यो. आ.

एको ह वै नारायणः १५०, महो. १.१

एतज्ज्ञेयं नित्यमेवा ५२८, श्वे. उ. १.१२

एतत् सोमस्य सूर्यस्य ११०,

एतद्यो वेद तं प्राहुः ९५, भ. गी. १३.१

एवंभूतस्य कर्माणि ५१९, यो. आ.

एवं विदित्वा परमात्म ४३६, कै. उ. २३

एष आत्मा अपहत ४२५, छा. उ. ८.१.५

ऐतदात्म्यमिदं सर्वं ४१४, छा. उ. ६.८.७

ॐकारात्मतया भाति १५८, आ.

औष्ण्यं हुताश इव ७९, म. म. प., पृ. ३१

अंशो नानाव्यपदेशात् ७७, ब्र.सू. २.३.४३

कलात्मतिर्यग्गत ११९, शि. आ.

कला सप्तदशी ज्ञेया ५१८, आ.

कला सप्तदशी देवी ४२८, आ.

कलासर्गकरं देवं ३३८, श्वे. उ. ५.१४

कल्याणं मङ्गलं १५५, अ. को. १.४.२५

कारणं तु ध्येयः सर्वे २११, अ. शिखो. ३

कुलं पवित्रं जननी २६३, सू. सं.

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कुशलोऽस्य लब्धः ३२७, क. उ.
केवलं ज्ञेयमित्युक्तं ५२८, दे. का. १८
क्रमात् कादिषु वर्गेषु १५२, ५१८, प. त्री. ६
क्रियाद्वैतं न कर्तव्यं २२१, सि. व.
क्रियावन्तः श्रोत्रिया: ४८९, मु. उ. ३.२.१०
क्रियाशक्त्यात्मकं पीठं २५०, शि. आ.
क्रीडन् करोति पादा ४२८, शि. दृ. १.३८
क्षीयन्ते चास्य कर्मा ४२०, मु. उ. २.२.८
क्षीरवत् पश्यते ज्ञानं ४९५, ब्र. बि. उ. १९
क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि ९५, भ. गी. १३.२
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं ९५, भ. गी. १३.२
क्षोभे स्पन्दा व्याप्तौ ४३८, वि. प. २६
गगनं गगनाकारं १७७,
गवामनेकवर्णानां ४९५, ब्र. बि. उ. १९
गुणधीगर्वचित्ताक्ष ५०४, मृ. वि. १०.१
गुदमवष्टभ्याधार २७७, हं. उ. १
गुरवो बहवः सन्ति २९९, शि. र.
गुरुसंस्कृतभावः सन् २१७, यो. आ.
गुरुणा ज्ञानिना देयं ५३५, यो. आ.
गुरूपदिष्टश्रवणा ४११, यो. आ.
ग्रन्थिजन्यं कला ५०४, मृ. वि. १०.१
घृतकाठिन्यवन्मूर्तिः ४, सू. गी.
घृते घृतं यथा न्यस्तं ५२६, स. ज्ञा.
चत्वारि वाक्परिमिता ८३, ऋ. १.१६४.४५
चन्द्रकान्ते यथा तोयं ९५, सि. शि. ५.३६
चन्द्रललाटाय कृत्ति १०२, अ. श्रु.
चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं भ. गी. ४.१३
चित्तस्य हि प्रसादेन २४१, मैत्रे. उ. १.११
चित्तं तु चेतो ४८५, अ. को. १.४.३१
चित्तं स्थिरं यस्य विना ४२०, यो. आ.
चिदात्मैव हि देवोऽन्तः ८०, ई. प्र. १.५७
चिरेण साध्यमानस्य ४७४, कि. आ.
जना मुक्तिपदं यान्ति १९६, यो. आ.
जपकोटिसमं ज्ञानं १६३ शि. आ.
जीव ईशो विशुद्धा ८२,
जीवन्मुक्तस्तदा योगी ४३९, दे. का. ४४
ज्ञाज्ञौ द्वावजावीशा ८७, श्वे. उ. १.९
ज्ञातृज्ञानज्ञेय ४४६ श्रु.
ज्ञात्वा देवं मृत्युपाशान् ३६३
ज्ञानकर्मेन्द्रियैर्विश्वं २५०, पु.
ज्ञानक्रियात्मिका सापि ४९०, पौ. आ.
ज्ञानक्रियेच्छादि ६, ५१५, शि. सं. श्रु.
ज्ञानप्रसादेन विशुद्ध ५०१, मु. उ. ३.१.८
ज्ञानमाभाति विमलं ४६७, मृ. वि. ५.१६
ज्ञानमेतच्छैवसंस्थं ३६३, प. त.
ज्ञानं प्रधानं न तु कर्म ७१, ३५८, अ. व.
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि ४७२, भ. गी. ४.३७
ज्ञानादेव तु कैवल्यं ३५७,
ज्ञानान्मुक्तिं दिशति ३२७, का. आ.
ज्ञानी विज्ञानतत्परः ३६३, ब्र. बि. उ. १८
ज्ञानोत्पत्तिनिमित्तं तु ५०१, दे. का. २५
ज्योतीरूपं शिवं पूर्णं ३८०, का. आ.
ज्वललिङ्गाय नमः५४९, म. ना. उ. १४.९
तज्ज्ञानं सद्गुरोर्ज्ञेयं २४८, शि. र.
तत्त्वमसि २८२, छा. उ. ६.८.७
तत्र पञ्चाक्षरी तस्यां १४९,
तत्परं ब्रह्म स एकः २१२, अ. शिर. ३
तत्प्राणेष्वन्तर्मनसो २६९, ३४०, आ. श्रु.
तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत् तै. उ. २.६
तथा शक्तिर्विमर्शात्मा ८१, सि. शि. २०.३८
तथा हृदयबीजस्थं ५१८, प. त्री. २४
तथा ह्यशेषविज्ञानं ४७७, नि. का.
तथैव योगी विषयान् ३१०, शि. र.
तदन्तः कालयोगेन १५२, ५१८, प. त्री. ५

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तदस्य तृतीयं जन्म ९०, ऐ. उ. ४.४
तदा भवति शान्तात्मा ९५, दे. का. ५१
तदा शैवो भवेद्देवि ४०१, यो. आ.
तदिच्छयाऽभवत् ८०, सि. शि. २.१३
तदीया परमा शक्तिः ८०, सि. शि. २.१२
तदूर्ध्वं शादि विख्यातं १५२, ५१८, प. त्री. ७
तदेव शुक्लं तद् ब्रह्म ५११, क. उ. ६.१
तद् ब्रह्माहमिति ज्ञात्वा ३४९, ब्र. बि. उ. ८
तद्विज्ञानार्थं स १०३, ४१७, मु. उ. १.२.१२
तम आसीत् ८२, ऋ. १०. १२९.३
तमक्रतुं पश्यति ४५२, क. उ. २.२०
तमीश्वराणां परमं ४, श्वे. उ. ६.७
तमेव भान्तमनु २८३, ५५१, क. उ. ५.१५
तमेव शरणं गच्छ २२१, भ. गी. १८.६२
तमेवं वेदानुवचनेन २६४, बृ. उ. ४.४.२
तरति शोकमात्मवित् ३६४, छा. उ. ७.१.३
तव श्रियै मरुतो २५०, ऋ. ५.३.३
तस्मात्प्रपञ्चसम्बन्ध ४०८, यो. आ.
तस्मादुपश्रितात् सम्यक् ४१५, यो. आ.
तस्माद् द्वयोरेव भवेत् ७१, ३५८, अ. व.
तस्मिन् लोकाः श्रिताः ५११, क. उ. ६.१
तस्मै स विद्वान् ४१८, मु. उ. १.२.१३
तस्य तावदेव चिरं ३१३, छा. उ. ६.१४.२
तस्य पुत्रा दायं ३१३, जै. ब्रा. १.४५-५०
तस्य भासा सर्वमिदं ३, २५२, ५५१, क. उ. ५.१५
तस्य सर्वेषु लोकेषु ३४७, छा. उ. ७.२५.२
तस्येन्द्रियाणि वश्यानि ४०३, क. उ. ३.६
तस्यैव भासते भावे ४९२, यो. आ.
तं महादेवमात्मबुद्धि ४४९, श्वे. उ. ६.१८
तावत्यः संहिता अन्ते ५३५, ऐ. श्रु.
तृतीयं कुण्डलाकारं १५९, शि. आ.
ते तं भुक्त्वा ९६, ३६४, भ. गी. ९.२१
त्रयी सांख्यं योगः ६४, म. स्त. ७
त्रिरुन्नतं स्थाप्य समं ३९३, श्वे. उ. २.८
त्रैगुण्यविषया वेदा १८१, भ. गी. २.४५
दर्शनादर्चनात्तस्य १९६, यो. आ.
दशभिर्दशभिस्तद्व ७८, स्क. पु.
दीक्षितस्तासु गुरुणा ५३४, यो. आ.
दीक्षैनं मोचयेत् पूर्वं ४६१, स्वा. आ.
दीयते च यथा ज्ञानं ३२६, वा. उ.
दुःखप्रवृत्तिरागौ च २९४, सू. सं.
दृष्टिः स्थिरा यस्य ४२०, यो. आ.
देवाः षोडशलक्षाणि ७८, ४३०, स्क. पु.
देहदानात् सत्यसिद्धिः २०१, यो. आ.
देहः शिवालयः साक्षात् ४८२, वा. उ.
द्वयमस्पर्शमित्यष्टौ २२६,
द्वयमुष्णं द्वयं शीतं २२६,
द्वा सुपर्णा सयुजा २८५, श्वे. उ. ४.६
द्वितीयाद् भयमेव ४४६, बृ. उ. १.४.२
धर्मानुवर्तनादेव ५१५, मृ. वि. ७.११
धात्वाद्युत्पत्तिपूर्वं १५३,
धूमावती तिरोधौ ४३८, वि. प. २६
धूमावती पृथिव्यां ४३८, वि. प. २५
न कर्मणा ३५८, ३६४, कै. उ. ३
न कर्माणि अम. उ. २.१०३
न कारणम् २११,
नकारस्तारकारूपं १५९, शि. आ.
न क्रियारहितं ज्ञानं ७१, ३५७, शि. र.
न गुरोरधिकं २४५, शि. र.
न तत्र सूर्यो भाति २८३, क. उ. ५.१५
न तत्समश्चाभ्यधिकः १७७, २१०, २५१, श्वे. उ. ६.८
न तस्य कार्यं करणं च ४८०, श्वे. उ. ६८

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

न तं पश्यामि यस्याहं ३०७, दे. का. ४९
न त्वनभ्यर्च्य भुञ्जीयाद् २१४, शि. ध.
नमस्ताराय नमः १५८, मा. सं. १६.४०-४१
न वज्रचक्राङ्कसरोरुहाङ्कं २५०, पु.
न स पुनरावर्तते न स १७८,
न सोऽस्ति प्रत्ययो ३२९, ५१८, वा. प. १.११५
नातः परं वेदितव्यं ४४८, श्वे. उ. १.१२
नात्मनः परदेवता ७५, आ.
नादबिन्द्वादिकं कार्यं ५११, वि. सा.
नाध्यक्षं नापि तल्लैङ्गं ४६७, मृ. वि. ५.१६
नाभावो विद्यते सतः ८०, भ. गी. २.१६
नारुद्रो रुद्रमर्चयेत् १६६, २५९,
नाशिवस्य शिवोपास्ति २५९,
नासतो विद्यते १८, ८०, भ. गी. २.१६
नित्यानन्दा निरुपम १११,
निद्रान्तं जागरितान्तं ५२४, क. उ. २.२१
निरञ्जनः परमं साम्य ३५२, मु. उ. ३.१.३
निष्कलं भावलिङ्गं ३३८, वा. त.
निस्तत्त्वे योजितो मुक्तः ५३०, नि. का.
नीलकण्ठांस्त्रिनेत्रांश्च २२, आ. पु.
नेति नेति ४२८, ५३०, बृ. उ. ३.९.२६
नेह नानास्ति किञ्चन १५९, ४८०, बृ. उ. ४.१४.९
नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति २१८, भ. गी. २.४०
नैवोर्ध्वं धारयेच्चित्तं ४४२, दे. का. ३८
पञ्चमं दर्पणाकारं १५९, शि. आ.
पञ्चाशद्वर्णमाला १५३,
पञ्चाशन्निजदेहजा १५३, त्रि. म. २७
पतिं विश्वस्य २२२, स्मृ.
पतिं विश्वस्यात्मेश्वरं ३३०, म. ना. उ. ९.३
पदं यद् विष्णोरुपमं २५०, ऋ. ५.३.३
परं ज्योतिरुपसंपद्य ३४४, छा. उ. ८.१२.३
परात्परं तु यत्प्रोक्तं ३४२, वा. उ.
परास्य शक्तिर्विमला ६, ५१५, शि. सं. श्रु.
परास्य शक्तिर्विवि ८०, ४९० श्वे. उ. ६.८
पराहन्तामयं प्राहु ८१, सि. शि. २०.३३
पराहन्तासमावेश ८०, सि. शि. २०.३२
परेऽव्यये सर्व एकी ३१५, मु. उ. ३.२.७
पवित्रं ते विततं १२३, ऋ. ९.८३.१
पशुपशुपतियोगो ५३०, त्र. त.
पाणिमन्त्रं पवित्रं लि. उ. १
पादोऽस्य विश्वा ५१४, ऋ. ८.४.१७
पाशबद्धो भवेज्जीवः ५३०, वी. आ.
पुनर्जन्मान्तरकर्म ७५, श्रु.
पुरा त्रिपुरवधायो १४१, रु. जा. १
पुरुषः प्रकृतिस्थो १३४, भ. गी. १३.३१
पूजाकोटिसमं स्तोत्रं १६३, शि. आ.
पृथिव्यादीनि तत्त्वानि १५२, ५१८, प. त्री. ६
प्रजाः सृजेति निर्दिष्ट २२, आ. पु.
प्रज्ञया शरीरं समा ४२५, कौ. ब्रा. उ. ३.६
प्रज्ञानं ब्रह्म २८२, २९८, ऐ. उ. ५.३
प्रत्यवमर्शात्मासौ ३२१, ५१८, वि. प. ९
प्रथमं तारकारूपं १५९, शि. आ.
प्रयान्ति नैव लिप्यन्ते ५१९, यो. आ.
प्रसन्नात्माऽऽत्मनि स्थित्वा २४१, मैत्रे. उ. १.११
प्राणदानाज्ज्ञानसिद्धि २०१, यो. आ.
प्राणरूप इह जीव २७७, श. सं.
प्राणलिङ्गपरिज्ञाना ३४४, वा. उ.
प्राणान् प्रपीड्येह २९७, श्वे. उ. २.९
प्राणारूढो भवेज्जीवः २७७, आ.
प्राणेष्वन्तर्मनसो लिङ्ग २६९, अ. शिर.
प्रापञ्चिकसुखं नास्ति २९०, श. सं.

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

बाणलिङ्गे स्वयंभूते १९८,
बाह्यकर्मपरित्यागी ३४४, वा. उ.
ब्राह्येषु मोह इव ७९, म. म. प., पृ. ३१
बिन्दुरूपः शिवो ज्ञेयो ४८४, कि. आ.
बिन्दुस्वरूपामलमूल ११९, शि. आ.
बोध्यबोधकभावेन ३२८, वा. उ.
ब्रह्मविद् ब्रह्मैव २०५
ब्रह्मविष्णुरुद्रेन्द्रास्ते ११९, १५१, २११, २२७, अ. शिखो. ३
ब्रह्माण्डशतकोटीनां ८०, सि. शि. २०.२९
भक्तभावपरानन्दो २३६, यो. आ.
भक्तस्यैवात्मशिष्यस्य ५३५, यो. आ.
भगवन्नस्थिचर्म ९९, मै. उ.
भवेत् प्राणपरित्यागः २१४, शि. ध.
भस्मध्यानात् सन्धानं १२६, भ. जा. उ.
भाग आत्मा स विज्ञेयः ४२५, श्वे. उ. ५.९
भावग्राह्यमनीडाख्यं ३३८, श्वे. उ. ५.१४
भावनातीतमव्यक्तं ३४२, वा. उ.
भावमाश्रित्य यत्नेन ४०८, यो. आ.
भावाभावद्वयातीतं ५२४, यो. आ.
भिद्यते हृदयग्रन्थि ४२०, मु. उ. २.२.८
भूत्यै न प्रमदितव्यम् १२६, तै. उ. १.११.१
भोक्ता भोज्यं प्रेरयिता २६६, सू. सं.
भोक्ता भोज्यं प्रेरितारं २०३, ४०९, श्वे. उ. १.१२
भ्रमद्भ्रमरचिन्तायां ३६२, वी. आ.
भ्रामयन् सर्वभूतानि २११, भ. गी. १८.६१
मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपों ९३, भ. गी. १५.१५
मध्ये वामनमासीनं २६९, क. उ. ५.३
ममैवांशो जीवलोके ७७, ४२८, भ. गी. १५.७
महानन्दप्रसादोऽयं ४५५, स. ज्ञा.
महान्तं विभुमात्मानं ५२४, क. उ. २.२१
मातृवत्परदारांश्च ३७८,
मायाभिन्ने स्वमायाख्यं ४२८, पा. उ.
मायामयमिदं द्वैतम् ४६४, मा. का. १.१७
मायां तु प्रकृतिं विन्द्याद् ६, ७८, २८३, ५०४, श्वे. उ. ४.१०
मायिनं तु महेश्वरं श्वे. उ. ४.१०
मुमुक्षोर्मोक्षसिद्ध्यर्थं ३३२, वा. उ.
मृत्युजीवननिर्मुक्तं ५२४, यो. आ.
मे अस्तु सदाशिवोऽम् १५८, १९९, म. ना. उ. १०
मोक्षप्रदं चैहिकसौख्यदं ४८९, यो. आ.
मोहो भ्रान्तिस्तथाऽऽलस्यं २९४, सू. सं.
मौनी भस्माभिमन्त्रयेत् १३२, शि. आ.
य इदं त्रिपुण्ड्रं धरते १३८,
य ॐकारः स प्रणवः १५९, अ. शिर. ३
यकारो दर्पणाकारः १५९, शि. आ.
यतो वाचो निवर्तन्ते २७६, ४४४, ४६२. तै. उ. २.४; ब्रह्मो. २२
यथा कुण्डलिनी शक्तिः ५११, वि. सा.
यथा चन्द्रे स्थिरा ज्योत्स्ना ८१, सि. शि. २०.३८
यथा न तदिति क्षीण ५०७, कि. आ.
यथा नृपः सार्वभौमः ४२८, शि. दृ. १.३७
यथा न्यग्रोधबीजस्थः ५१८, प. त्री. २४
यथा पुष्करपलाश ३१३, ३८७, ५१९, छा. उ. ४.१४.३
यथापूर्वमकल्पयत् १९, ऋ. ८.८.४८
यथा मनः परे तत्त्वे ४७७, नि. का.
यथा वायुः सुशीघ्रोऽपि ३१३, नि. का.
यथा रविः सर्वरसान् ३१०, शि. र.
यथा सिद्धरसस्पर्शात् ४११, यो. आ.
यथा स्त्रिया संपरिष्वक्तो २८९, ५२२, बृ. उ. ४.३.३१
यथाऽहं सर्वलोकानां २४६, आ.
यथेह कर्मचितो ३६३, छा. उ. ८.१.६
यदा शिवाय स्वात्मानं ४०१, यो. आ.

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

यद्धि मनसा ध्यायति १७८, २१६, २५६, बृ. जा. उ. १.१

यद्यदात्महितं वस्तु २४३, शि. र.

यद्वेदविद्याधिगमः ३७७, मैत्रा. उ. ४.३

यस्तदैक्यमिति वेदिता २७७, श. सं.

यस्तु विज्ञानवान् भवति ४०३, क. उ. ३.६

यस्य देवे परा भक्ति १९१, २४७, श्वे. उ. ६.३

यस्य निःश्वसिता वेदाः ६३,

यस्य पृथिवी शरीरं २२६, बृ. उ. ३.७.३

यस्य यस्य पदार्थस्य १०३-१०४, स. म.

यस्यात्मा शरीरं २२६, बृ. उ.

यस्यां जाग्रति भूतानि ४६८, भ. गी. २.६९

यं यथोपासते तदेव ३५९, बृ. उ..४.४.५

या ते रुद्र शिबा १२४, २३०, श्वे. उ. ३.५

या निशा सर्वभूतानां ४६८, भ. गी. २.६९

यान्यनवद्यानि कर्माणि ३५४, तै. उ. १.११.२

यावदायुस्त्रयो वन्द्या २२१, वे. व.

या सा माहेश्वरी ५१५, मृ. वि. ७.११

येनाक्षरं पुरुषं वेद ४१८, मु. उ. १.२.१३

योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः २७५, यो.सू. १.२

योगं सालम्बनं त्यक्त्वा ५०१, दे. का. २५

योगीव निरुपादानं ८०, ई. प्र. १.५.७

यो ब्रह्माणं विदधाति १९, ४४९, श्वे. उ. ६.१८

यो रुद्राक्षं धत्ते १४४,

यो वै रुद्रः स भग १५९, अ .शिर. २-३

योऽसावसौ पुरुषः १६०, २७६, बृ. उ. ५.१५.१

रविरग्निर्यथा वायु १८९, शि. आ.

रसोऽहमप्सु ७९, भ. गी. ७.८

रुद्र यत्ते दक्षिणं १५१, श्वे. उ. ४.२१

रुद्रेणात्तमश्नन्ति १९८, जा. उ.

रोहितो लोहितादासीत् १५०,

लाञ्छने शरणे भक्तिः ७४,

लिङ्गं तु शिवयोर्देहः १२४, आ.

लिङ्गाङ्कितं पश्य ७६, व्या. व.

लिङ्गार्चनरता नारी १८८, शि. आ.

वराहो विष्णुर्निममज्ज २४९, लि. सू.

वर्तते वासनारूपे ४२८, पा. उ.

वागीश्वरी परा विद्या ५१४, पौ. आ.

वाचा विरूपनित्यया २८७, ऋ. ८.७५.६

वाच्यवाचकयोर्भेदः १५८,

वायुर्यथैको भुवनं ४८४, क. उ. ५.१०

वायौ स्पन्दा विभ्वी ४३८, वि. प. २७

वाय्वग्निसलिलेन्द्राणां १५२, ५१८, प. त्री. ७

वालाग्रशतभागेन ४२५, श्वे. उ. ५.९

विकल्परहितं ज्ञानं २९८, वा. व.

विकल्पो विनिवर्तेत ४६४, मा. का. १.१८

विकारो मानसो ४०८, अ. को. १.७.२१

विज्ञानमानन्दं ब्रह्म ४६२, ४६७, बृ. उ. ३.९.३४

विज्ञानयोगसंन्यासैः ८९, शि. आ.

विद्यासु श्रुतिरुत्कृष्टा १४९,

विश्वं नारायणं हरिम् २१०, म. ना. उ. १३.१

विश्वं महेश्वर भवान् २२६, अ. व.

विश्वाधारमहासंवित् ८१, सि. शि. २०.३३

विश्वाधिको रुद्रो १९, २१०, २५१, श्वे. उ. ३.४

विषसंबन्धिनी शक्तिः ५०७, कि. आ.

विष्टभ्याहमिदं २३५, ४२८, भ. गी. १०.४२

विष्णुरित्था परम १५१, ऋ. १०.१.३.

विस्मृत्य पूर्वदुर्भावं २१७, यो. आ.

वेदवेदान्तवाक्यार्थ २३६, यो. आ.

वेदान्तवाक्यजा ७, ६८, ७०, सू. गी.

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

वेदितव्यं न किञ्चन ४४८, आ.
वैराग्येण वपुस्त्यागो ३६९, दे. का. ४५
व्योमाकारं महासूक्ष्मं ४८६, दे. का. २४
शक्तो यया स शम्भु ५, त. प्र. ३
शब्दजातमशेषं तु १०४, वा. सं.
शरीरमाद्यं खलु धर्म ३६७,
शालग्रामशिलोद्भूते १९८,
शिकारः कुण्डलाकारो १५९, शि. आ.
शिरोललाटवक्षःस्थलेषु १३६,
शिव एको ध्येयः १४९, २३९, २६०, ४८१, अ. शिखो. ३
शिव एव सदा ध्येयः १५१, १५६, अ. शिखो. ३
शिवचिन्तासमाक्रान्तः ३६२, वी. आ.
शिवभावानुसन्धाना ३५९, यो. आ.
शिवरूपानुसन्धायी ३३२, वा. उ.
शिवस्वरूपो भवति १७७,
शिवं परात्परं सूक्ष्मं १५९, शि. आ.
शिवः शूली महे ७०, अ. को. १.१.३०
शिवादिस्मरणं ज्ञानं ४९५, यो. आ.
शिवाभिधेन सैवास्ति ४, सू. गी.
शिवोक्तां जातिमर्यादा १८३, श. सं.
शिवो वा प्रणवः प्रोक्तः १५८,
शिष्यहृत्तापहारस्तु २९९, शि. र.
शिष्यो हि येन गुरुणा ३२८, वा. उ.
शुचिः समग्रीव ३८९, कै. उ. ५
शुद्धमायापरो बिन्दुः ५१४, पौ. आ.
षट् षट् कर्णयोरेक १४४, रु. जा.
स उत्तमः पुरुषः ३१३, ३४४, ३४७ छा. उ. ८.१२.३
स एको रुद्रः स ४, ५४९, अ. शिर. ३
स एष भस्मज्योतिः १२६, भ. जा. ४४
स ऐक्षत लोकानसृजत १९, ऐ. उ. १.१
सकलं दृक्कलाग्राह्य ३३५, वा. त.
स चाण्डाल इति ज्ञेय १८३, श. सं.
सञ्चारः पदयोः ३१४, अ. व.
सती चाहं पतिर्लिङ्ग २९०, श. सं.
सत्तयाऽऽनन्दसम्प्राप्ति ४९५ यो. आ.
सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म १०, ३८४, तै. उ. २.१.१
सत्येन लभ्यस्तपसा ९५, मु. उ. ३.१.५
सत्त्वात् सुखं च ज्ञानं च २९४, सू. सं.
सदाचारः शिवे भक्तिः ७४,
सदाशिवादितत्त्वानां ४८४, कि. आ.
सदेव सोम्येदमग्र १६, १५०, ४७९, छा. उ. ६.२.१
सन्ति दग्धपटन्यायात् ३८७. वी. आ.
समसमरसरूपो ५३०, त्र. त.
समस्तलोकनिर्माण ८०, सि. शि. २.१२
समस्तसाक्षिं सदसत् ४३६, कै. उ. २४
समं स्यादश्रुतत्वात् १४४, मी. सू. १०.३.५३
सम्पूज्य च शिवं पश्चात् १६३, शि. आ.
सरीसृपास्तु लक्षाणि ७८, स्क. पु.
सर्वज्ञः पञ्चकृत्यसम्पन्नः ८७, ४९१, जा. उ. २
सर्वज्ञः सर्वगः साक्षी ८०, सि. शि. २०.३२
सर्वतत्त्वमयः प्राणः २६८, वी. आ.
सर्वमन्यत् परित्यज्य १५१, १५६, अ. शिखो. ३
सर्वलिङ्गं स्थापयति लि. उ. १
सर्ववेदेषु यद् दृष्टं ६८, वी. आ.
सर्वशून्यं निराभासं ५२६, स. ज्ञा.
सर्वं खल्विदं ब्रह्म १६१, छा. उ. १.४.१
सर्वं शिवमयं भाति २६६, सू. सं.
सर्वेषां चैव मन्त्राणां १५२, प. त्री. ८
सर्वेषु गात्रेषु शिरः ३९६, पु.
स वै नैव रेमे ४२८, बृ. उ. १.४.३
सर्वो वै रुद्रः २०५, म. ना. उ. १३.२

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

स वा एष पुरुषो १३४, तै. उ. २.१
स वेदैतत् परमं ३७२, मु. उ. ३.२.१
ससर्ज मनसा रुद्रान् २२, आ. पु.
सहस्रं वा तदर्धं वा १६३, शि. आ.
संविदेव भगवती ५२९, प्राभा.
संसारी स भवेल्लोके ४८६, दे. का.२४
सा दीक्षा संज्ञिता ३२६, वा. उ.
साभिप्रायसदर्थकर्म १५३, त्रि. म. २७
सा सा सर्वेश्वरी देवी १०४, स. म.
सूक्ष्मात् सूक्ष्मतरं ३४२, शि. सं. उ. १२
सूर्यो यथा सर्वलोक ४३२, क. उ. ५.११
सोऽविद्याग्रन्थिं ५०७, मु. उ. २.१.१०
स्थाणुवज्ज्वलति २४८, या. श्रु.
स्थानभूतो विमर्शो ८०, सि. शि. २०, २९
स्थिरभावो हि भावस्य ४७४, कि. त.
स्थिरेभिरङ्गैः पुरुरूप ४, ५४९, ऋ. २.३३.९
स्वदयापूर्णभावस्य ४९२, यो. आ.
स्वयमेव स्वयं भूत्वा ३४७, वा. उ.
स्वयं स्वयत्वमापाद्य ३४९, वा. उ.
स्वयं स्वस्य परो ५२२, स. ज्ञा.
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य २१८, भ. गी. २.४०
स्वशक्तिप्रचयो ३७०, शि. सू. ३.३०
स्वस्वकृतदुष्कर्मणा ४३०, बृ. जा. उ.
हकारोऽन्त्यः कलारूपः ५१७, सं. प.
हिरण्यगर्भं जनया १९, २१०, २५१, श्वे. उ. ३.४
हृदयकमलमध्ये ३४०, यो. शा.
हृद्यन्तर्ज्योतिः पुरुषः २७०,

❋

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

मूलव्याख्याधृत ग्रन्थ-ग्रन्थकारसूची

अथर्वणश्रुति १०२
अथर्वशिखा १८१, ४८१
अथर्वशिरस् ५, १२०, १५९, २१२, २६९
अथर्वश्रुति १४९, ३१८, ३३५
अद्वैतशास्त्र ४६
अपरे ९१, ९२, २८२
अभिधानकोश ७०, ४८५
अभियुक्त ७९, २२६, ३१४, ३५८, ५३०
अमर ४०८
अमृतबिन्दूपनिषत् ३४९, ३६३, ४८०, ४९५
आगम १२,६१, ६६, ७६, ११३, ११५, १२२, १२४, १५८, १६०, २०२, २१७, २४६, २७७, २८४, २८७, ३३५, ३५५, ४२८, ४४८, ५३८, ५४९
आगमोक्ति १५८, ५१७
आदित्यपुराण २२
इतिहास १३९
ईश्वरप्रत्यभिज्ञा ८०
उत्तरतापनीय ३०५
उपनिषत् ३५, १५५, २७०, ५३५ (३२ उप.)
ऋक् १४९, १६९, ५४९
ऋग्वेद १२३, २५०
ऐतरेयश्रुति ५३५
कठवल्ली २६९, २८३, २८४, ३२७, ४०३, ४३२, ४५२, ४८४, ५११, ५२४
कपिल ६३
कल्पसूत्र १३९
कापालिक ५४७
कामिक ११, ६१, ६८, १२२, ३२७, ३८०, ५३५, ५३८, ५४७
किरणतन्त्र ४७४
किरणागम ८७, ४८४, ५०७
केचित् ९२
कैवल्यश्रुति ३८९, ४३६
चतुष्षष्टितन्त्र १०४
चार्वाक ५०, ६७, ९०, ९१, १४०
छान्दोग्यश्रुति २४२, ३१३, ३४४, ३४७, ३८७, ४१४, ४२५, ४४१, ५०७, ५१९
जाबालश्रुति १९८
जैन ११, ५०, ६०, ६१, ६७
जैमिनि - ६३
तत्त्वप्रकाश ५
तन्त्र(शास्त्र) ४०, १०३, १२६, १२७, १३०, २०२, ५३४
तापनीयश्रुति १६१
त्रयीतन्त्र ५३०
त्रय्यन्त २७
दक्षिण ६६, ६७
दूर्वासभगवदुक्ति १५३
देवीकालोत्तर ९५, ३०७, ३६९, ४३९, ४४२, ४८६, ५०१, ५२९
नारायणोपनिषत् ३३०
निगमागम ११, ६५, १०२, १२०, २८४, २८७, ३६५, ४६४, ५५०
निरुत्तर १२, १३
निर्विशेषब्रह्माद्वैत ४
निश्वासकारिका ३१३, ४७७, ५३०
पञ्चाशिकाशास्त्र ३२१, ४३८, ५१८

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पतञ्जलि ६३
पतिपरातन्त्र ३६३
परात्रिंशिकाशास्त्र १५३, ५१८
पशुपतिमतसार १३
पाञ्चरात्र ६३, ६४, ६५
पाराशरोपपुराण ४२८
पाशुपत ६३, ६४
पाशुपतागम ६६
पिप्पलादश्रुति १५१, १५६
पुराण ११, १२, १२२, १३९, १९८, २१७, २५०, ३९६
पुष्पदन्त ३६, ६४
पूर्वमीमांसा ६३-६४
पौराणिकोक्ति १४९, १५८
पौष्करवचन ७, ४९०, ५१४
प्रतिसिद्धान्त १०
प्राभाकरा: ३१७, ५२९
बाह्यतन्त्र ६१
बृहज्जाबालश्रुति १४१
बृहदारण्यकश्रुति २२६, २८९, ३५९, ४४६, ५२२, ५३०
बौद्ध (मत) १०, ११, ५०, ६०, ६१, ९१, ९२, २८२
ब्रह्मसूत्र ७७
ब्रह्मोत्तरखण्ड १५६
ब्रह्मोपनिषत् ४६२
भगवदुक्ति १८, ७७, ९३, ९६, १३४, १९४, २१८, २३५, ४२८, ४७२, ५१४, ५१७
भगवद्गीता ८०, ९५, २११, ४६८
भस्मजाबालश्रुति १२६
भेदवादी २८६, ४४७
मण्डूक(मुण्डक)श्रुति ९५
महामाहेश्वर २१५
महिम्नस्तोत्र ६४
माहेश्वर ७०-७२, १८३, १८९, २०६, २०८, २१०-२१२, २१४, २१७, २१८, २२१, २२४, २३८
मिश्र ६६, ६७
मुण्डकोपनिषत् ९५, १०३, ३१५, ३७२, ४१७, ४१८, ४२०, ४६४, ४८९, ५०१
मृगेन्द्रागम ४६७, ५०४, ५१५
मैत्रेयश्रुति ९९, २४१, ३७७, ५२६
यजुष् १४९, १६९, ५४९
याजुषश्रुति १९, १२४
याज्ञवल्क्यश्रुति २४८
योग ६३- ६५
योगजागम १९६, २०१, २१७, २३६, ३५९, ४०१, ४०८, ४११, ४१५, ४२०, ४८९, ४९२, ४९५, ५१९, ५२४, ५३४, ५३५
योगतन्त्रज्ञ ४९
योगशास्त्र २७३, ३४०
योगसूत्र २७५
रुद्रश्रुति १२४, १५८
रुद्राक्षजाबालश्रुति १४४
रुद्राध्याय १८१
लाकुल ६६
लिङ्गसूत्र (क्त) २४९
लौकिक ९१
वातुलतन्त्र ११, ६१, ६८, ३३५, ३३८, ३५४, ५३५, ५३८
वातुलोत्तर ३२६, ३२८, ३३२, ३४२, ३४४, ३४७, ३४९, ४८२
वाम ६६, ६७
वायुसंहिता १०४
वासिष्ठवचन २९८
वासुदेव ६३
विश्वसारोत्तर ५११

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

वीरतन्त्र ४७१
वीरमाहेश्वर ६९-७२, १७४, २१२, २१३, २१७, २२३, ५३५
वीरशैव ९, ११, १३, ६८, ७०-७४, ११९, १२२, १७७, १८३, १८४, १९०, ३४२, ५३५, ५३७
वीरशैव(महा)तन्त्र १२, १३, ५३४
वीरशैवशास्त्र ११३, ३२७, ३६५, ४६४, ५३२, ५३३, ५५२
वीरशैवसिद्धान्त १, १२, ४९, ५३६
वीरशैवागम ११३, १८३
वीरशैवाचार्यः ३३५, ३८२
वीरागम ६८, २६८, ३६२, ३८७, ५३०
वृद्धजाबालश्रुति ८७, १३८, १७७, ४३०, ४९१
वेद . ३६, ६३-६८, १३९, १४०, १४९, १५८, १६९, १८१, १९४, २१७, २५६, २८१, ३३४, ३६७, ५३२, ५३५
वेदबाह्य ६७
वेदवेदान्त ४६, ५३५, ५४८
वेदवेदी ६०
वेदाङ्ग १४९
वेदादिशास्त्र २०, १२२
वेदान्त २, २३, २७, ७०, २८२, २८४, ३५८
वेदान्तमहावाक्य २८२
वेदान्तवचन २२१
वेदान्त्री २
वैयाकरण ३२९, ५१८
वैयासिक ९३, ५१७
वैष्णव ६४, ५४७
व्याकरण १४९
व्यासवचन ७६
शङ्करसंहिता २७७, २९०
शास्त्र(कृत्) ९१, २८६
शिक्षाद्यङ्ग ३६
शिखोपनिषत् १५१
शिल्पशास्त्र १११
शिवदृष्टि ४२८
शिवधर्म २१४, ५४०, ५४१
शिवधर्मोत्तर ५८
शिवरहस्य २४३, २४५, २४८, २९९, ३१०, ३५७
शिवसङ्कल्पश्रुति ५१५
शिवसिद्धान्त २, ८, १०३, १०४, ३३५, ५३५, ५३७, ५४५, ५४७
शिवसूत्र ३७०
शिवागम ८, ४९, ६७, ६८, ८९, १०४, १०७, ११५, १२७, १३२, १५८, १५९, १६३, १६८, १८१, १८९, २१३, २५०, २५७, ५४७,
शिवाद्वैतशास्त्र (सिद्धान्त) ५, ४८, ५०, ५८, ६३, ४४८, ५१४, ५३३, ५३५, ५३६, ५४०, ५४६
शिवालोक ११९
शैव ७०, ७२
शैवतन्त्र ११- १३, २३, ६५- ६७
शैवशास्त्र ६५, १७०
शैवसिद्धान्त ६०
शैवागम ६६, १३९, १५८
श्रुति ३, ४, ६, १०, १५, १६, १९, ७६-७८, ८०, ८२, ८३, ९०, १०८, ११०, ११८, ११९, १२३, १२४, १२६, १३४, १३६, १३८, १४४, १४७-१५१, १५५, १५९-१६१, १६६, १७७, १७८, १८६, १९८, १९९, २०४, २०५, २१०, २११, २१६, २१८, २२७, २३०,

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

२३२, २३७-२३९, २५२, २५६, २६०, २६४; २७६, २८४, २८५, २८७, २९८, ३२७, ३२९, ३४२, ३५२, ३५४, ३५८, ३६१, ३६३, ३६४, ३७०, ३७८, ३८४, ४०५, ४२५, ४२८, ४४४, ४४६, ४४८, ४६१, ४६२, ४६७, ४७०, ४७९-४८१, ५०४, ५१४, ५१७, ५२२, ५४९, ५५१

श्रुतिशास्त्र ५३

श्वेताश्वतरश्रुति १९, ८७, १५१, १९१, २०३, २१०, २४७, २५१, २८३, ३३८, ३९३, ३९७, ४०९, ४२५, ४४९, ४८०, ४९०, ५२८, ५३०

संगीतविद्या ३५

सद्वाद ८८

सर्वज्ञानोत्तर ४५५, ५२२, ५२६

सवमङ्गला १०४

सांख्य ६३-६५, ८२, ९५, १८१

साम १४९, १६९, ५४९

सिद्धान्तवचन २२१

सिद्धान्तशास्त्र ६३, ६५, ६६, ६७, ७०

सिद्धान्तशिखामणि १, १२, १३, ५५२

सिद्धान्तश्रुति ६०-६२, ६६, ६८, ७०

सूतगीता ४, ६८, ७०

सूतसंहिता ७, २६३, २६६, २७६, २९४

सूत्र २५७

सोम ६६

स्कन्दवचन ७८

स्मृति १३९, १४७, १४८, १७७, २२२

स्वायम्भुवागम ४६१

हंसोपनिषत् २७७

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

न्यायसूची

अण्डरसन्याय १८, ८०, ८८, १९२, ३२१, ४२८, ५१४

अहिकुण्डलन्याय २३५

काकाक्षिन्याय १८०

कूर्मभङ्गिन्याय १८

क्षीरनीरन्याय ८२

घृतकाठिन्यन्याय ३, १६, ८०

घृतकीटन्याय ५१४

दग्धपटन्याय ३१२, ३८७, ४७१

दण्डभाण्डन्याय २३५

दशमदृष्टान्त १९२, २२२

नहि भिक्षुको....मिति न्याय १५०

बीजाङ्कुरन्याय १६, ३१६

मयूराण्डरसन्याय ४, ८०

रज्जुसर्प(भुजङ्ग)न्याय ४७१, ४७४

वह्न्युष्णत्वन्याय ५१५

वृक्षगतफलपुष्पादिन्याय १८

शिखण्डचण्डरसन्याय २४८

शुक्लपटन्याय २७५, ५१५-५१६

सन्दिग्धाऽर्थन्याय ९१

सर्वं ज्ञानं धर्मिण्यभ्रान्तमिति न्याय १९२

सागरतरङ्गन्याय ३८२, ४५०

सिंहमाणवकन्याय १५५

स्वर्णकुण्डलन्याय १५७, १५८

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

नामसूची

अगस्त्य १, २, १२, ३९, ५१, ५३, ५५-५८, ६२, ५३४
अनन्त ३६
आन्ध्रदेश ४६
उपमन्यु ३९, १७०
एकनेत्र ३६
एकरुद्र ३६
कपाली ३६
कपिल ६३
कुम्भसंभव २, ५५, ५३२, ५३४, ५३७
कैलास ५४१
कोल्लिपाक्य ४६, ४८, ५४७
गोरक्ष ५४७
गौतम ३९, १२२
घण्टाकर्ण ३६
चण्ड ३६, २५७
त्रिमूर्ति ३६
त्रिमकुट १८९
त्रिलिङ्ग ४६, ४८
दक्ष ४३
दधीच ४३
दधीचि ३९
दारुक २२. २४, ४२, ४४
नन्दी ६, ४०, ४७
नहुष ५७
नारद ३९, १३४
पाराशर ३९
पुलस्त्य ३९
पुष्पदन्त ३६
बाण १३४
भृगु ३९, ४३
भृङ्गी ३६, ४०
मरीचि ३९
मलयाद्रि ४९-५१
महाकाल ३६
महामेरु ५७
मार्कण्डेय ४३
मुद्ददेव ८
राम ५४२, ५४३
रावण ५४२
रिटि ३६
रेणुक १, २, १२, २२, २४, २५, ४१, ४२, ४४, ४५, ४७-५०, ५५, ५६, ६०, ६२, ५३२, ५३४, ५३७-५४०, ५४५, ५४६, ५५१
रेणुक गणेश्वर २, ४८, ५५, ५३१, ५३२
रेणुकाचार्य ५५, ५८, ६२
रेवणसिद्धेश्वर २, ७, ५०, ५६, ६१, ५३७, ५४५-५४७, ५५०, ५५१
लङ्कापुरी ५३७, ५४०
लोपामुद्रा ५६
वसिष्ठ ३९, १३९, १७०, २४४, ४८८
वातापि ५७
वामदेव ३९, १७०
विद्येश्वर ३६
विन्ध्य ५७
विभीषण ५३६, ५३८-५४१, ५४३, ५४५, ५४६
वीरभद्र ३६
वीरशिवाचार्य ९
व्यास ३९, ४०
शङ्कुकर्ण ४३
शतानन्द १७०
शिखण्डी ३६

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

शिवयोगी १, ७-१२, १४, २५, ४७, ४८, ६२, ५३१, ५३४, ५३७
शिवयोगीश्वर २
शिवोत्तम ३६
शुक ३९
शौनक ३९, २५०
श्रीकण्ठ ३६
श्रीशैल ४६, ११०, १८९
श्वेत ४३
षडानन ५८
सङ्गिर १७०
सनक १३४, ३३७
सानन्द ३९, १६९, १७०
सिद्धनाथ ८, ९
सिद्धरामेश्वर २, ७-९
सूक्ष्म ३६
सोमनाथ ५४७
सोमेश्वर ४६, ४८, ५५१

❈

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi